महर्षि श्री वाल्मीकि प्रणीत

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

भाषा

सातों काण्ड सम्पूर्ण

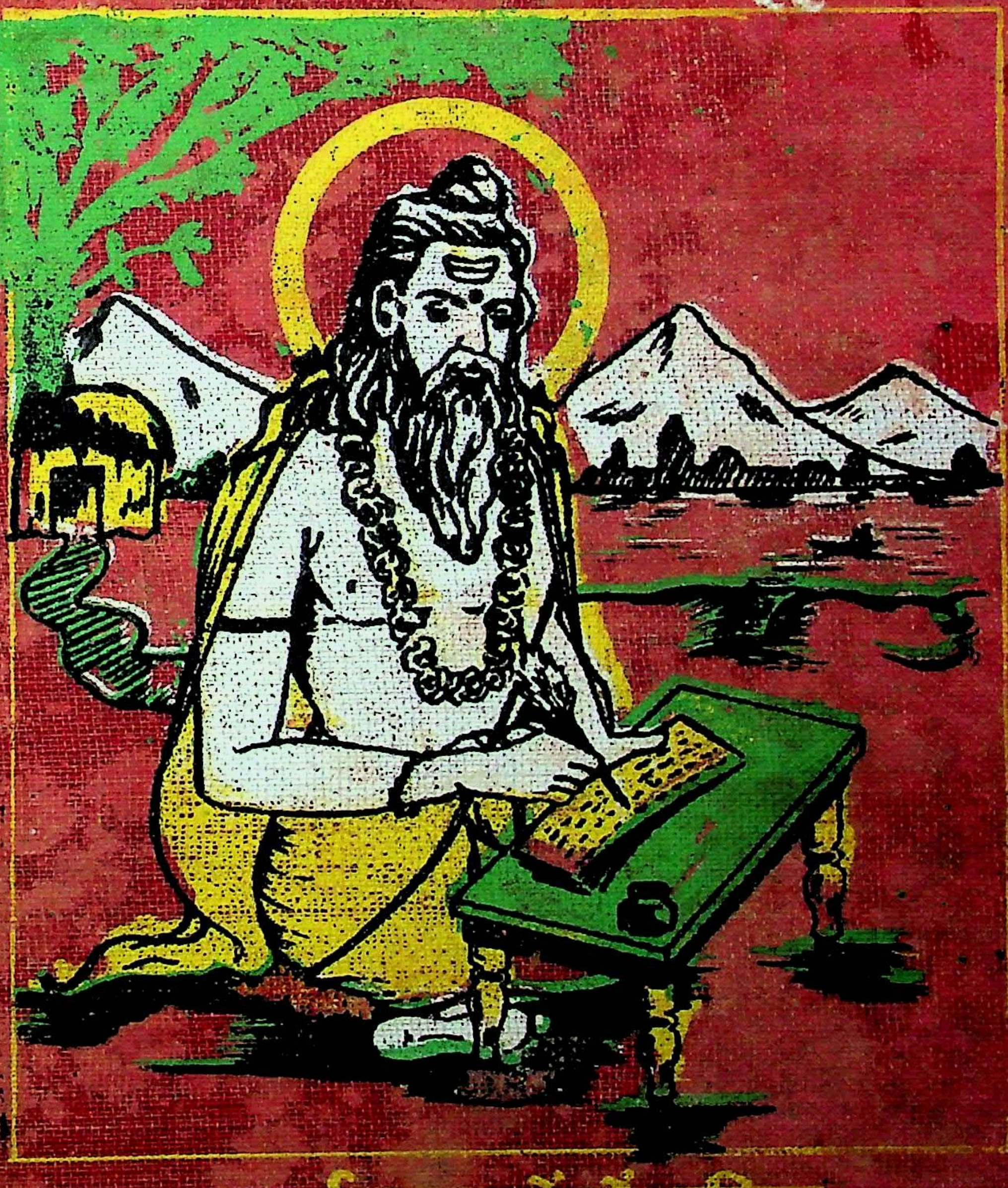

बम्बई अक्षरों में मुद्रित

'महर्षिश्रीवाल्मीकिप्रणीत'

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

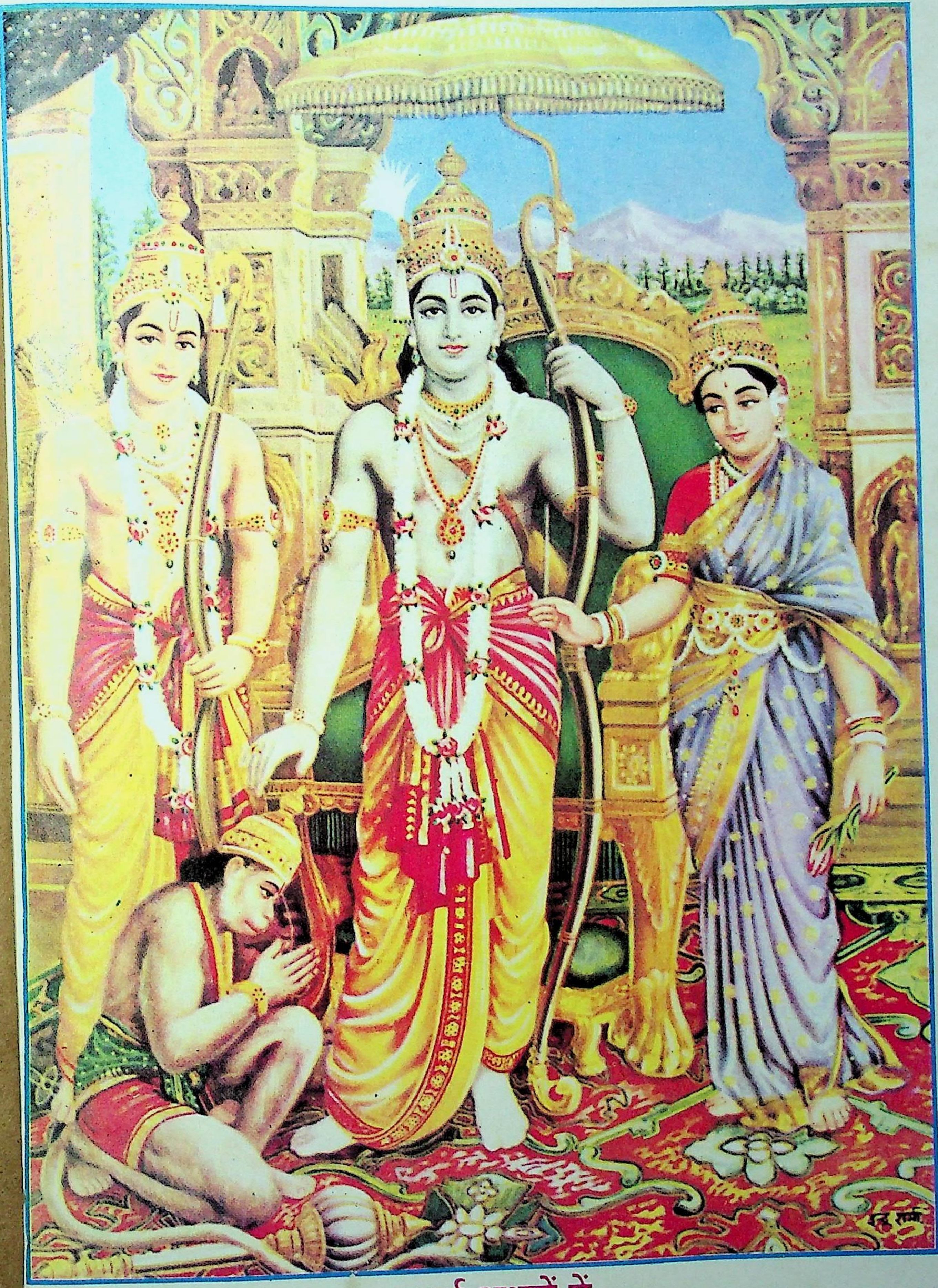

बम्बई अक्षरों में

श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः

महर्षिश्रीवाल्मीकिप्रणीत

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

भाषा

सातों काण्ड सम्पूर्ण

टीकाकार

श्री प्रेम नारायण गौड़

सम्पादक

संगम लाल मेहरोत्रा

प्रकाशक

श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार

द्वारा

बम्बई

अक्षरों में मुद्रित

मूल्य रु० २२५--००
मूल्य राजसंस्करण रु० २५१-००

नम्र निवेदन

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥
रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥
वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत साक्षाद् रामायणात्मना॥

वेदवेद्य परमपुरुषोत्तम के दशरथनन्दन श्रीराम के रूप में अवतीर्ण होने पर साक्षात् वेद ही श्रीवाल्मीकि के मुख से श्रीरामायण रूप में प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकों की चिरकाल से मान्यता है। इसलिये श्रीमद्-वाल्मीकीय रामायण की वेदतुल्य ही प्रतिष्ठा है। यों भी महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं, अतः विश्व के समस्त कवियों के गुरू हैं। उनका 'आदिकाव्य' श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण भूतल का प्रथम काव्य है। वह सभी के लिये पूज्य वस्तु है। भारत के लिये तो वह परम् गौरव की वस्तु है और देश की सच्ची बहुमूल्य राष्ट्रीय निधि है। इस नाते भी वह सबके लिये संग्रह, पठन, मनन एवं श्रवण करने की वस्तु है। इसका एक-एक अक्षर महापातक का नाश करनेवाला है–

श्रीव्यासदेवादि सभी कवियों ने इसी का अध्ययन कर पुराण, महाभारतादि का निर्माण किया। 'बृहद्धर्मपुराण' में यह बात विस्तार से प्रतिपादित है। श्रीव्यासजी ने अनेक पुराणों में रामायण का माहात्म्य गाया है।

महर्षि वाल्मीकिजी को कुछ लोग निम्न जाति का बतलाते हैं। पर वाल्मीकिरामायण तथा अध्यात्मरामायण में इन्होंने स्वयं अपने को प्रचेता का पुत्र कहा है। मनुस्मृति १।३५ में **"प्रचेतसं वशिष्ठं च भृगुं नारदमेव च'** प्रचेता को वसिष्ठ, नारद, पुलस्त्य, कवि आदि का भाई लिखा है। स्कन्दपुराण के वैशाखमाहात्म्य में इन्हें जन्मान्तर का व्याध बतलाया है। इससे सिद्ध है कि जन्मान्तर में ये व्याध थे। व्याध-जन्म के पहले भी स्तम्भ नाम के श्रीवत्स-गोत्रीय ब्राह्मण थे। व्याध-जन्म में शङ्ख ऋषि के सत्सङ्ग से, रामनाम के जप से ये दूसरे जन्म में 'अग्निशर्मा' (मतान्तर से रत्नाकर) हुए। वहाँ भी व्याधों के सङ्ग से कुछ दिन प्राक्तन संस्कारवश व्याध-कर्म में लगे। फिर, सप्तर्षियों के सत्सङ्ग से मरा-मरा जपकर– बाँबी पड़ने से वाल्मीकि नाम से ख्यात हुए और वाल्मीकिरामायण की रचना की।

इन सभी गुणों के आगर होने से ही यह काव्य सर्वाधिक लोकप्रिय, अजर, अमर, दिव्य तथा कल्याणकर है। संतों के शब्दों में यह 'रामायण श्रीरामतनु' है। इसका पठन-मनन, अनुष्ठान साक्षात् प्रभु श्रीराम का संनिधान प्राप्त करना है। हनुमान्जी की प्रसन्नता के लिये इस श्रीरामचरित के गान से बढ़कर दूसरा उपाय नहीं। (इसमें हनुमच्चरित्र भी निरुपम उज्ज्वल तथा दिव्य है।) इसलिये अनादिकाल से इसके श्रवण-पठन-अनुष्ठानादि की परम्परा है।

हिन्दी जाननेवालों के लिये केवल हिन्दी का ही यह सुलभ संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, पाठकगण इससे लाभ उठायेंगे।

–भोला नाथ

विषयानुक्रमणिका

श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण पाठविधि १७
श्रीमद्‌वाल्मीकीय रामायण माहात्म्य २४

पृष्ठ संख्या

बालकाण्ड

सर्ग पृष्ठ संख्या

१-नारदमुनि का वाल्मीकि मुनि को श्रीराम का चरित्र सुनाना १
२-रामायण काव्य का उपक्रम—क्रौंच वध से संतप्त महर्षि वाल्मीकि के शोक का श्लोक रूप में प्रकट होना ५
३-वाल्मीकि मुनि द्वारा रामायण काव्य में विषयों का संक्षेप में उल्लेख ७
४-वाल्मीकि का २४००० श्लोकों युक्त रामायण का निर्माण, रामायण गान से लवकुश का प्रशंसित होना ९
५-राजा दशरथ द्वारा सुरक्षित अयोध्यापुरी का वर्णन १०
६-राजा के शासन में नागरिकों का वर्णन १२
७-राज्य मंत्रियों के गुण और नीति १३
८-राजा दशरथ का पुत्र हेतु अश्वमेध यज्ञ १३
९-सुमंत्र की ऋष्य शृंग मुनि को बुलाने की सलाह १४
१०-ऋष्य शृंग का आगमन व शान्ता से विवाह १५
११-दशरथ जी का अंगराज के यहाँ से ऋष्य शृंग को लाना १७
१२-राजा का यज्ञ कराने का प्रस्ताव १८
१३-राजा का वशिष्ठजी से यज्ञ की तैयारी का अनुरोध १९
१४-राजा द्वारा यज्ञ का सांगोपांग अनुष्ठान २०
१५-पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ २२
१६-यज्ञ में प्राजापत्य पुरुष का खीर अर्पण करना २३
१७-ब्रह्मा जी के प्रेरणा से वानरों की उत्पत्ति २५
१८-दशरथजी द्वारा अतिथियों की विदाई २६
१९-विश्वामित्र द्वारा श्रीराम की माँग २८
२०-राजा दशरथ का पुत्र देने से इनकार २८
२१-विश्वामित्र का रोषपूर्ण वचन २९
२२-राजा दशरथ का राम, लक्ष्मण को मुनि के साथ भेजना ३०
२३-श्रीराम का विश्वामित्र सहित पुण्य आश्रम में ठहरना ३१
२४-श्रीराम का गंगा पार होना ३२
२५-विश्वामित्र का ताड़का की उत्पत्ति बताना ३३
२६-श्रीराम द्वारा ताड़का वध ३४
२७-विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को दिव्यास्त्र-दान ३५
२८-विश्वामित्र का अस्त्रों की संहार विधि बताना ३६
२९-श्रीराम को सिद्धाश्रम का वृतान्त बताना ३७
३०-श्रीराम के द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा ३९
३१-विश्वामित्र का राम लक्ष्मण तथा ऋषियों सहित मिथिला को प्रस्थान ४०
३२-ब्रह्मपुत्र कुश के चार पुत्रों का वर्णन तथा कन्याओं का कुब्जा होना ४१
३३-ब्रह्मदत्त के साथ कन्याओं का विवाह होना ४२
३४-गाधि की उत्पत्ति और कौशिकी की प्रशंसा ४३

Mookerji sharma Jammu Collection

३५-विश्वामित्र आदि का शोणभद्र पार करना ४४
३६-उमादेवी का पृथ्वी और देवताओं को शाप देना ४५
३७-गंगा से कार्तिकेय की उत्पत्ति ४६
३८-राजा सगर के पुत्रों की उत्पत्ति ४७
३९-अश्व का अपहरण, पुत्रों द्वारा पृथ्वी का भेदन ४८
४०-पुत्रों का कपिलजी के रोष से भस्म होना ४९
४१-अंशुमान का रसातल में जा कर घोड़े को लाना ५१
४२-अंशुमान और भगीरथ की तपस्या ५२
४३-भगवान शंकर का गंगाजी को धारण करना ५३
४४-गंगावतरण के उपाख्यान की महिमा ५४
४५-क्षीर सागर का मंथन, अमृत आदि की उत्पत्ति ५५
४६-पुत्रंबध से दुःखी दिति का कुशप्लव में तप करना ५७
४७-पुत्रों को मरूद्गण बनाकर देवलोक में रखने का अनुरोध ५८
४८-श्रीराम से अहल्या को शाप प्राप्त की कथा सुनाना ५९
४९-श्रीराम द्वारा अहल्या उद्धार ६०
५०-श्रीराम आदि का मिथिला पहुँचना तथा जनक जी द्वारा सत्कार ६१
५१-शतानंद के पूछने पर अहल्या उद्धार का वर्णन ६२
५२-महर्षि वशिष्ठ द्वारा विश्वामित्र का सत्कार ६२
५३-विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ से कामधेनु को माँगना ६३
५४-विश्वामित्र का कामधेनु को बलपूर्वक ले जाना ६४
५५-विश्वामित्र का तप से शिवजी से दिव्यास्त्र पाना ६५
५६-दिव्यास्त्रों का वशिष्ठ द्वारा ब्रह्मदण्ड से शमन ६६
५७-विश्वामित्र का तप, राजा त्रिशंकु का यज्ञ ६७
५८-त्रिशंकु का विश्वामित्र की शरण में जाना ६८
५९-विश्वामित्र का ऋषि पुत्रों को शाप देकर नष्ट करना ६९
६०-विश्वामित्र का ऋषियों से त्रिशंकु का यज्ञ कराने का अनुरोध ७०
६१-राजा अम्बरीष की कथा ७१
६२-विश्वामित्र द्वारा शुनःशेप की रक्षा का प्रयत्न ७२
६३-विश्वामित्र को महर्षि पद की प्राप्ति ७३
६४-विश्वामित्र का रम्भा को शाप देना ७४
६५-विश्वामित्र की घोर तपस्या एवं ब्राह्मणत्व की प्राप्ति ७४
६६-राजा जनक का धनुष का परिचय देना ७५
६७-श्रीराम का धनुर्भंग ७७
६८-राजा दशरथ का मिथिला जाने को तैयार होना ७८
६९-राजा दशरथ का जनकजी द्वारा स्वागत-सत्कार ७९
७०-श्रीराम और लक्ष्मण का सीता तथा उर्मिला का वरण करना ७९
७१-राजा जनक का अपने कुल का परिचय देना ८०
७२-विश्वामित्र द्वारा भरत और शत्रुघ्न के लिये कुशध्वज की कन्याओं का वरण करना ८१
७३-चारों भाइयों का विवाह ८२

सर्ग पृष्ठ सं०

७४-राजा जनक का कन्याओं को विदा करना ८४

७५-परशुराम का श्रीराम को वैष्णव धनुष चढ़ाने को कहना ८५

७६-श्रीराम का धनुष चढ़ाना, परशुराम का लौटना ८६

७७-राजा दशरथ का पुत्रों और वधुओं सहित अयोध्या में प्रवेश। ८७

अयोध्याकाण्ड

१-दशरथ जी का राम को युवराज बनाने का विचार ८९

२-श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव ९०

३-राजा दशरथ का राजनीति की बात बताना ९१

४-श्रीराम को बुलवाकर आवश्यक बातें बताना ९३

५-वशिष्ठजी का श्रीराम और सीता को उपवास व्रत की दीक्षा देना ९४

६-सीता सहित श्रीराम का नियम परायण होना ९५

७-अभिषेक के समाचार से मन्थरा का खिन्न होना ९६

८-मन्थरा का श्रीराम के राज्याभिषेक को कैकेयी के लिये अनिष्टकारी बताना ९७

९-कैकेयी का कोप भवन में जाना ९८

१०-राजा दशरथ का कैकेयी को कोप भवन में देखकर दुःखी होना १००

११-कैकेयी का राजा को दो वरों का स्मरण दिलाना १०१

१२-दशरथ जी की चिंता तथा वर न मांगने के लिये अनुरोध करना १०२

१३-राजा का विलाप और अनुनय विनय १०५

१४-कैकेयी का राजा को सत्य पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देना १०६

१५-सुमन्त्र का श्रीराम को बुलाने के लिये जाना १०७

१६-सुमन्त्र का श्रीराम को महाराज का संदेश देना १०८

१७-राम का पिता के भवन में प्रवेश ११०

१८-श्रीराम का कैकेयी से पिता के चिंतित होने का कारण पूछना ११०

१९-श्रीराम का वन में जाना स्वीकार करना ११२

२०-श्रीराम का कौसल्या के भवन में जाना ११३

२१-लक्ष्मण का रोष करना ११४

२२-श्रीराम का लक्ष्मण को समझाना ११६

२३-लक्ष्मण द्वारा दैव का खण्डन और पुरुषार्थ पर जोर देना ११७

२४-कौसल्या का भी श्रीराम से अपने साथ ले चलने का आग्रह ११८

२५-कौसल्या का श्रीराम की वन यात्रा के लिये स्वस्तिवाचन करना ११९

२६-श्रीराम का सीता को वन जाने का समाचार देना १२१

२७-सीता की श्रीराम से अपने साथ ले चलने के लिये प्रार्थना करना १२२

२८-सीता से वन के कष्टों का वर्णन १२३

२९-सीता का साथ में वन जाना उचित बताना १२४

३०-सीता का वन चलने का पुनः आग्रह १२५

३१-लक्ष्मण का वन गमन के लिये तैयार होना १२६

३२-श्रीराम का ब्राह्मणों एवं सुहृदजनों को धन का वितरण १२७

३३-श्रीराम का पिता के दर्शन के लिये महल में जाना १२९

३४-राजा दशरथ से वनवास के लिये विदा माँगना १३०

सर्ग पृष्ठ सं०

३५-सुमन्त्र का कैकेयी को समझाना १३२
३६-राम के साथ खजाना भेजने पर कैकेयी का विरोध १३३
३७-श्रीराम का वल्कल वस्त्र धारण करना १३४
३८-राजा दशरथ का कैकेयी को फटकारना १३५
३९-राजा दशरथ का विलाप एवं श्रीराम का माताओं से विदा माँगना १३६
४०-श्रीराम का दशरथ की परिक्रमा तथा वन के लिये प्रस्थान १३८
४१-रनिवास की स्त्रियों का विलाप १३९
४२-राजा दशरथ का पृथ्वी पर गिरना १४०
४३-महारानी कौसल्या का विलाप १४१
४४-सुमित्रा का कौसल्या को समझाना १४२
४५-श्रीराम का पुरवासियों को समझा-बुझाकर लौटाना १४३
४६-श्रीराम का तमसा तट पर रात्रि निवास १४४
४७-प्रातःकाल पुरवासियों का निराश होकर लौटना १४६
४८-नगर की स्त्रियों का विलाप १४६
४९-ग्रामवासियों की बातें सुनते हुए श्रीराम का आगे जाना १४८
५०-श्रीराम का शृंगवेरपुर में गंगातट पर पहुँचना १४९
५१-निषादराज से लक्ष्मण का विलाप १५१
५२-श्रीराम की आज्ञा से गुह का नाव मँगाना १५२
५३-श्रीराम का लक्ष्मण को अयोध्या लौट जाने के लिये कहना १५६
५४-श्रीराम का भरद्वाज आश्रम में जाना १५७
५५-श्रीराम को चित्रकूट का मार्ग बताना १५९
५६-श्रीराम का चित्रकूट पहुँचना १६०
५७-सुमन्त्र का अयोध्या लौटना १६२
५८-सुमन्त्र का संदेश सुनाना १६३
५९-राजा दशरथ का विलाप १६५

सर्ग पृष्ठ सं०

६०-सुमन्त्र का समझाना १६६
६१-कौसल्या का राजा को उलाहना १६८
६२-दशरथ का कौसल्या को मनाना १६९
६३-मुनिकुमार के मारे जाने का प्रसंग बतलाना १७०
६४-पुत्रबध से माता-पिता का विलाप १७३
६५-राजा दशरथ का निधन १७५
६६-कौसल्या आदि का शोक १७७
६७-मुनियों का राजा बनाने के लिये अनुरोध १७८
६८-वशिष्ठ की आज्ञा से दूतों का कैकय देश में जाना १७९
६९-भरत का दुःस्वप्न देखना १८०
७०-दूतों का भरत आदि को उपहार देना १८१
७१-भरत का अयोध्या के निकट पहुँचना १८२
७२-भरत का कैकेयी को प्रणाम करना १८४
७३-भरत का कैकेयी को धिक्कारना १८६
७४-भरत का कैकेयी को कड़ी फटकार १८७
७५-कौसल्या के आगे भरत का शपथ १८८
७६-राजा का अंत्येष्टि संस्कार १९०
७७-पिता के श्राद्ध में धन-रत्न आदि का दान १९१
७८-शत्रुघ्न का कुब्जा पर रोष करना १९३
७९-श्रीराम को वन से लौटाने के लिये आज्ञा देना १९४
८०-अयोध्या से गंगातट तक मार्ग निर्माण १९५
८१-मंगल वाद्य सुनकर भरत का दुःखी होना १९६
८२-वशिष्ठ जी का भरत को राज्याभिषेक का आदेश देना १९६
८३-भरत की वन यात्रा १९८
८४-निषादराज का भरत से भेंट १९९
८५-गुह और भरत की बातचीत २००
८६-लक्ष्मण के सद्भाव का वर्णन २०१

८७-गुह की बात से भरत का मूर्च्छित होना २०२
८८-श्रीराम की शय्या देखकर भरत को शोक २०३
८९-भरत का भरद्वाज आश्रम पर जाना २०४
९०-भरद्वाज के आश्रम पर भरत का ठहरना २०५
९१-सेनासहित भरत का दिव्य सत्कार २०६
९२-श्रीराम के आश्रम का मार्ग पूछना २०९
९३-भरत की चित्रकूट यात्रा का वर्णन २१०
९४-श्रीराम का सीता को चित्रकूट दिखाना २१२
९५-मंदाकिनी नदी की शोभा वर्णन २१३
९६-लक्ष्मण का भरत की सेना को देखना २१४
९७-श्रीराम का भरत के सद्भाव का वर्णन २१५
९८-भरत द्वारा श्रीराम के आश्रम की खोज २१६
९९-भरत आदि का आश्रम पर जाना २१७
१००-श्रीराम का भरत को उपदेश २१९
१०१-भरत का राज्य ग्रहण करने को कहना २२१
१०२-भरत का पुनः अनुरोध २२३
१०३-श्रीराम आदि का जलान्जलि दान २२३
१०४-माताओं की चरण वन्दना २२५
१०५-भरत का श्रीराम से अयोध्या में राज्य करने के लिये कहना २२६
१०६-अयोध्या लौटने की पुनः प्रार्थना २२८
१०७-श्रीराम का भरत को समझाना २३०
१०८-जाबालि का श्रीराम को समझाना २३१
१०९-जाबालि के मत का खंडन २३२
११०-वशिष्ठ का राज्य ग्रहण औचित्य बताना २३३
१११-पिता की आज्ञा पालन से विरत न होना २३५
११२-भरत को लौटने की सलाह देना २३७
११३-भरद्वाज से मिलते हुये अयोध्या लौटना २३८
११४-अन्तःपुरी में प्रवेशकर दुःखी होना २३९
११५-श्रीराम के चरण पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त २४०
११६-ऋषियों का चित्रकूट छोड़कर दूसरे आश्रम में जाना २४२
११७-श्रीराम का अत्रिमुनि के आश्रम पर जाना २४३
११८-सीता अनसूया सम्वाद २४४
११९-अन्यत्र जाने के लिये ऋषियों से विदा लेना। २४६

अरण्यकाण्ड

१-श्रीराम आदि का तापसों के आश्रम में सत्कार २४९
२-वन के भीतर विराध का आक्रमण २५०
३-लक्ष्मण द्वारा विराध पर प्रहार २५१
४-विराध का बध २५२
५-शरभंग मुनि के आश्रम में जाना २५४
६-मुनियों का राक्षसों से अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना २५५
७-सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाकर उनसे बातचीत करना २५७
८-श्रीराम लक्ष्मण सीता का प्रस्थान २५८
९-सीता का निरपराध प्राणियों को न मारने का अनुरोध २५९
१०-राक्षसों के बध के निमित्त प्रतिज्ञा २६०
११-पंचाप्सर तीर्थ माण्डकर्णि मुनि की कथा २६१
१२-श्रीराम का अगस्त्य आश्रम में प्रवेश २६५
१३-महर्षि अगस्त्य का पंचवटी में कुटी बनाकर रहने का आदेश २६६

सर्ग पृष्ठ सं०
१४-जटायु का मिलना और अपना परिचय देना २६७
१५-लक्ष्मण द्वारा पर्णशाला का निर्माण २६९
१६-श्रीराम आदि का गोदावरी में स्नान २७०
१७-आश्रम में सूर्पणखा का आना २७२
१८-लक्ष्मण द्वारा सूर्पणखा का नाक-कान काटना २७४
१९-खर का चौदह राक्षसों का भेजना २७५
२०-श्रीराम द्वारा चौदहों राक्षसों का बध २७६
२१-सूर्पणखा का खर के पास पुनः जाना २७७
२२-चौदह हजार राक्षसों के साथ खर दूषण का प्रस्थान २७८
२३-खर का श्रीराम के समीप पहुँचना २७९
२४-श्रीराम का युद्ध के लिये उद्यत होना २८०
२५-श्रीराम द्वारा राक्षसों का संहार २८१
२६-चौदह हजार राक्षसों का बध २८३
२७-त्रिशिरा का बध २८४
२८-खर के साथ श्रीराम का घोर युद्ध २८५
२९-श्रीराम का खर को फटकारना २८७
३०-खर को मार गिराना २८८
३१-रावण का मारीच से मिलने जाना २८९
३२-सूर्पणखा का लंका में जाना २९१
३३-सूर्पणखा का रावण को फटकारना २९२
३४-सूर्पणखा का राम लक्ष्मण और सीता का परिचय देना २९४
३५-रावण का पुनः मारीच के पास जाना २९५
३६-सीता हरण में मारीच से सहायता माँगना २९६
३७-मारीच का रावण को रोकना २९७
३८-श्रीराम के शक्ति को बताना २९८
३९-मारीच का रावण को समझाना ३००
४०-मारीच को रावण का फटकारना ३०१
४१-रावण को पुनः समझाना ३०२
४२-मारीच का सुवर्णमय मृग बनना ३०३

सर्ग पृष्ठ सं०
४३-सीता का श्रीराम से मृग लाने को कहना ३०४
४४-श्रीराम द्वारा मारीच का बध ३०६
४५-लक्ष्मण का श्रीराम के पास जाना ३०८
४६-रावण का सीता के पास साधु वेष में जाना ३०९
४७-रावण का सीता को अपना परिचय देना ३११
४८-रावण का अपना पराक्रम बताना ३१३
४९-रावण द्वारा सीता हरण ३१४
५०-जटायु का रावण को समझाना ३१५
५१-जटायु-रावण का युद्ध ३१६
५२-रावण द्वारा सीता का अपहरण ३१८
५३-सीता का रावण को धिक्कारना ३२०
५४-सीता को लंका के अन्तःपुर में रखना ३२१
५५-सीता को भार्या बनने के लिये समझाना ३२२
५६-सीता का राम के प्रति अनुराग ३२४

प्रक्षिप्त सर्ग

ब्रह्मा के आदेश से इन्द्र का लंका में जाकर सीता को दिव्य खीर अर्पित करना ३२५
५७-श्रीराम का लौटना ३२६
५८-आशंका करते हुए दोनों भाइयों का आश्रम में आना ३२७
५९-श्रीराम और लक्ष्मण की बातचीत ३२८
६०-श्रीराम का सीता की खोज करना ३२९
६१-श्रीराम की व्याकुलता ३३१
६२-श्रीराम का सीता की याद में विलाप ३३२
६३-श्रीराम का विलाप ३३३
६४- श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा सीता की चारों ओर खोज ३३४
६५-श्रीराम को लक्ष्मण का समझा-बुझा कर शान्त करना ३३६

सर्ग पृष्ठ सं०

६६-लक्ष्मण का श्रीराम को समझाना ३३७
६७-दोनों भाइयों का जटायु से भेंट ३३८
६८-जटायु का दाह संस्कार ३४०
६९-लक्ष्मण का अयोमुखी को दण्ड देना ३४१
७०-कबन्ध की भुजाओं को काटना ३४३
७१-कबन्ध की आत्म कथा ३४४
७२-कबन्ध का दाह ३४६
७३-कबन्ध का ऋष्यमूक का पता बताना ३४७
७४-शबरी के आश्रम पर जाना ३४९
७५-श्रीराम लक्ष्मण का पम्पा सरोवर तट पर जाना ३५१

किष्किंधाकाण्ड

१-पम्पा सरोवर के दर्शन से श्रीराम की व्याकुलता बढ़ना ३५३
२-सुग्रीव का हनुमान जी को श्रीराम के पास भेद लेने भेजना ३५७
३-हनुमान जी का वन में आने का कारण पूछना ३५८
४-लक्ष्मण का सारा वृतान्त बताना ३६०
५-श्रीराम-सुग्रीव को मैत्री ३६१
६-श्रीराम को सीता का आभूषण दिखाना ३६२
७-सुग्रीव का श्रीराम को समझाना ३६४
८-सुग्रीव का अपना दुःख कहना ३६४
९-बाली के साथ वैर का कारण बताना ३६६
१०-अपने निष्कासित होने का वृतान्त सुनाना ३६८
११-बाली के पराक्रम का वर्णन ३६९
१२-श्रीराम द्वारा साल वृक्षों का भेदन ३७३
१३-श्रीराम आदि का किष्किंधा पहुँचना ३७४
१४-किष्किंधापुरी में सुग्रीव की गर्जना ३७६
१५-बाली का युद्ध के लिये निकलना ३७७
१६-तारा को डाँट कर लौटाना ३७८

सर्ग पृष्ठ सं०

१७-बाली का श्रीराम को फटकारना ३७९
१८-बाली की बात का उत्तर देना ३८२
१९-तारा का बाली की दुर्दशा देखकर रोना ३८४
२०-तारा का विलाप ३८६
२१-हनुमानजी का तारा को समझाना ३८७
२२-बाली का अंगद से मन की बात कहकर प्राण त्यागना ३८८
२३-तारा का विलाप ३८९
२४-तारा का अपने बध के लिये श्रीराम से प्रार्थना करना ३९०
२५-अंगद और तारा को समझाना ३९२
२६-किष्किंधा में अंगद और सुग्रीव का अभिषेक ३९४
२७-प्रवर्षण गिरि पर श्रीराम और लक्ष्मण की बातचीत ३९६
२८-श्रीराम द्वारा वर्षा ऋतु का वर्णन ३९७
२९-सुग्रीव का वानर सैनिकों को एकत्र करने का आदेश ४००
३०-लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना ४०२
३१-सुग्रीव को कर्तव्य का उपदेश देना ४०४
३२-हनुमान जी का सुग्रीव को समझाना ४०६
३३-लक्ष्मण का सुग्रीव के महल में प्रवेश ४०७
३४-लक्ष्मण का सुग्रीव को फटकारना ४०९
३५-तारा का लक्ष्मण को समझाना ४१०
३६-सुग्रीव का क्षमा माँगना ४११
३७-वानरसेना एकत्र करने की आज्ञादेना ४१२
३८-सुग्रीव का श्रीराम के पास जाकर उन्हें प्रणाम करना ४१३
३९-श्रीराम का कृतज्ञता प्रकट करना ४१४
४०-सीता की खोज में वानरों को पूर्व दिशा में भेजना ४१६
४१-दक्षिण दिशा के स्थानों में वानरों को भेजना ४१८
४२-पश्चिम दिशा में सुषेण को भेजना ४१९

४३-उत्तर दिशा में शतबलि को भेजना ४२१
४४-श्रीराम का हनुमान जी को अंगूठी देकर भेजना ४२३
४५-जाते हुए वानरों को उत्साहित करना ४२४
४६-सुग्रीव का श्रीराम को भूमण्डल भ्रमण से परिचित कराना ४२४
४७-तीन दिशाओं के वानरों का निराश लौटना ४२५
४८-दक्षिण दिशा में सीता की खोज ४२६
४९-अंगद और गन्धमादन का उत्साह ४२७
५०-भूखे-प्यासे वानरों का गुफा में प्रवेश ४२८
५१-वृद्धा तापसी का परिचय ४२९
५२-वानरों का अपना परिचय देना ४३०
५३-वानरों का उपवास द्वारा प्राण त्याग का निश्चय ४३१
५४-हनुमान जी का अंगद को अपने साथ चलने के लिये समझाना ४३२
५५-वानरों का प्रायोपवेशन ४३३
५६-सम्पाति से वानरों को भय होना ४३४
५७-सम्पाति को जटायु का वृतान्त सुनाना ४३५
५८-पंख जलने की कथा सुनाना ४३६
५९-सीता और रावण को देखने की घटना का वृतांत बताना ४३८
६०-सम्पाति की आत्म कथा ४३९
६१-पंख जलने का कारण बताना ४४०
६२-निशाकर मुनि का सम्पाति को सांत्वना देना ४४१
६३-पंखयुक्त होकर उड़ जाना ४४१
६४-अंगद का सबसे उनकी शक्ति के बारे में पूछना ४४२
६५-वानरों का अपनी शक्ति का वर्णन ४४३
६६-जाम्बवान् का हनुमान को उनकी उत्पत्ति की कथा सुनाना ४४४
६७-हनुमानजी का समुद्र लाँघने के लिये महेन्द्र पर्वत पर चढ़ना ४४६

सुन्दर काण्ड

१-हनुमान जी द्वारा समुद्र लँघन ४४८
२-लंकापुरी का वर्णन ४५६
३-हनुमान जी का विस्मित होना ४५८
४-रावण के अन्तःपुर में प्रवेश ४६०
५-सीता की खोज करना ४६१
६-सर्वत्र सीता की खोज करना ४६२
७-पुष्पक विमान का वर्णन ४६३
८-पुष्पक विमान का दर्शन ४६४
९-सुन्दर स्त्रियों का अवलोकन करना ४६५
१०-मन्दोदरी का सीता को समझना ४६७
११-वह स्त्री सीता नहीं है ४६९
१२-सीता के मरण की आशंका ४७०
१३-पुनः खोजने का विचार करना ४७१
१४-अशोक बाटिका में पहुँचना ४७३
१५-सीताजी को दयनीय अवस्था में देखना ४७५
१६-हनुमान जी का शोक करना ४७७
१७-हनुमान जी का प्रसन्न होना ४७८
१८-रावण का अशोक बाटिका में आना ४७९
१९-सीता का दुःख और चिंता में डूबना ४८०
२०-रावण का प्रलोभन देना ४८१
२१-सीता जी का रावण को समझाना ४८२
२२-रावण का दो मास की अवधि देना ४८३
२३-राक्षसियों का सीता को समझाना ४८५
२४-राक्षसियों का धमकाना ४८५
२५-शोक संतप्त सीता का विलाप ४८७
२६-प्राण त्यागने का निश्चय करना ४८८
२७-त्रिजटा का स्वप्न ४८९
२८-सीता का प्राण त्यागने को उद्यत होना ४९१
२९-सीता जी को शुभ शकुन ४९२

सर्ग पृष्ठ सं०

३०-वार्तालाप करने के लिये हनुमान जी का विचार ४९३
३१-राम कथा का वर्णन करना ४९४
३२-सीता जी का तर्क वितर्क ४९५
३३-सीता जी द्वारा अपहरण वृतांत सुनाना ४९५
३४-हनुमान जी के प्रति संदेह ४९७
३५-हनुमान जी द्वारा सीता को विश्वास दिलाना ४९८
३६-सीता को मुद्रिका देना ५००
३७-राम को शीघ्र बुलाने का आग्रह ५०२
३८-चित्रकूट पर्वत पर एक कौवे के प्रसंग को सुनाना ५०४
३९-श्रीराम आदि को उत्साहित करने को कहना ५०७
४०-सीता का श्रीराम को संदेश देना ५०८
४१-अशोक बाटिका का विध्वंस ५०९
४२-रावण का किंकर राक्षसों को भेजना ५११
४३-चैत्य प्रासाद का विध्वंस ५१२
४४-प्रहस्त पुत्र जम्बुमाली का बध ५१३
४५-मंत्री के सात पुत्रों का बध ५१४
४६-पाँच सेनापतियों का बध ५१५
४७-रावण पुत्र अक्षकुमार का बध ५१७
४८-इन्द्रजित् और हनुमान का युद्ध ५१९
४९-हनुमान जी का रावण के प्रभाव को देखना ५२१
५०-हनुमान जी के आने का कारण पूछना ५२२
५१-राम के प्रभाव का वर्णन ५२३
५२-विभीषण का दूत बध अनुचित बताना ५२५
५३-हनुमान जी के पूँछ में आग लगाना ५२६
५४- लंकापुरी का दहन ५२७
५५-सीता के लिये हनुमान जी की चिंता ५२९
५६-हनुमान जी का सीता जी से मिलना ५३१

सर्ग पृष्ठ सं०

५७-समुद्र लाँघकर सुहृदों से मिलना ५३२
५८-हनुमान जी का सारा वृतांत बताना ५३४
५९-सीता जी की दुरावस्था बताना ५४०
६०-अंगद का लंका जीतने का उत्साह ५४१
६१-वानरों का मधुवन में जाना ५४२
६२-दधिमुख का सुग्रीव के पास जाना ५४३
६३-हनुमान आदि वानरों की सफलता का अनुमान ५४४
६४-वानरों का किष्किंधा पहुँचना ५४६
६५-श्रीराम को सीता का समाचार सुनाना ५४७
६६-चूणामणि देखकर श्रीराम का विलाप ५४८
६७-श्रीराम को सीता का संदेश देना ५४९
६८-हनुमान जी का सीता का संदेह बताना ५५१

युद्धकाण्ड

१-श्रीराम का हनुमान को हृदय से लगाना ५५३
२-सुग्रीव का श्रीराम को उत्साह प्रदान करना ५५४
३-हनुमान जी का सेना को कूच करने की श्रीराम से प्रार्थना करना ५५५
४-श्रीराम आदि का वानर सेना सहित प्रस्थान ५५६
५-श्रीराम का सीता के लिये विलाप ५६०
६-रावण का मन्त्रियों से सलाह ५६१
७-राक्षसों का रावण और इन्द्रजित् के बल का वर्णन ५६३
८-प्रहस्त, दुर्मुख, निकुम्भ का उत्साह दिखाना ५६४
९-विभीषण का सीता को लौटाने का अनुरोध ५६५
१०-सीता को लौटा देने की प्रार्थना करना ५६६

११-रावण और सभासदों का एकत्र होना ५६७

१२-रावण का सभासदों की सम्मति माँगना ५६९

१३- महापार्श्व का बलात्कार हेतु उकसाना ५७१

१४-विभीषण का सीता को लौटाने की सम्मति ५७२

१५-इन्द्रजित् द्वारा विभीषण का उपहास ५७३

१६-रावण द्वारा विभीषण का तिरस्कार ५७४

१७-विभीषण का श्रीराम के शरण में जाना ५७५

१८-श्रीराम का शरणागत की रक्षा ५७८

१९-विभीषण का श्रीराम की शरण लेना ५७९

२०-रावण का सुग्रीव के पास संदेश भेजना ५८१

२१-श्रीराम का समुद्र तट पर धरना देना ५८३

२२-नल के द्वारा सौ योजन लम्बे पुल का निर्माण ५८४

२३-उत्पात सूचक लक्षणों का वर्णन ५८७

२४-श्रीराम का लंका की शोभा वर्णन ५८८

२५-शुक और सारण का वानर सेना में भेजना ५९०

२६-सारण का यूथपतियों का परिचय देना ५९२

२७-प्रधान यूथपतियों का परिचय ५९४

२८-शुक के द्वारा वानरों की संख्या का निरूपण करना ५९६

२९-रावण का शुक और सारण को फटकारना ५९७

३०-शार्दूल का वानर सेना का समाचार देना ५९९

३१-रावण द्वारा सीता को मोह में डालना ६००

३२-श्रीराम के मारे जाने का विश्वास कर सीता का विलाप ६०२

३३-सरमा का सीता को आश्वासन देना ६०४

३४-रावण का निश्चित विचार बताना ६०५

३५-माल्यवान् का संधि के लिये समझाना ६०७

३६-रावण का आरोप लगाना ६०८

३७-विभीषण द्वारा लंकापुरी के प्रबंध का वर्णन ६०९

३८-श्रीराम का वानरों के साथ सुवेल पर्वत पर चढ़ना ६११

३९-शिखर से लंकापुरी का निरीक्षण ६११

४०-सुग्रीव और रावण का मल्लयुद्ध ६१२

४१-सुग्रीव को दुस्साहस से श्रीराम का रोकना ६१४

४२-लंका पर वानरों की चढ़ाई ६१८

४३-वानरों द्वारा राक्षसों की पराजय ६१९

४४-रात में वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध ६२१

४५-इन्द्रजित् के बाणों से राम लक्ष्मण का अचेत होना ६२२

४६-श्रीराम और लक्ष्मण को मूर्च्छित देख वानरों का शोक ६२४

४७-वानरों द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण की रक्षा ६२५

४८-सीता का विलाप त्रिजटा का समझाना ६२६

४९-श्रीराम का सचेत होकर लक्ष्मण के लिये विलाप करना ६२७

५०-विभीषण को इन्द्रजित् समझकर वानरों का पलायन ६३०

५१-रावण का चिंतित होना ६३२

५२-धूम्राक्ष का हनुमान जी द्वारा बध ६३४

५३-बज्रदंष्ट्र का युद्ध के लिये प्रस्थान ६३५

५४-बज्रदंष्ट्र और अंगद का युद्ध ६३७

सर्ग	पृष्ठ सं०
५५-अकम्पन आदि का युद्ध में जाना	६३८
६-हनुमान जी द्वारा अकम्पन का बध	६३९
५७-प्रहस्त का युद्ध के लिये प्रस्थान	६४१
५८-नील के द्वारा प्रहस्त का बध	६४३
५९-रावण का युद्ध के लिये पधारना	६४५
६०-रावण की आज्ञा से कुंभकर्ण को जगाना	६५२
६१-श्रीराम को कुंभकर्ण का परिचय देना	६५५
६२-कुंभकर्ण का रावण के भवन में प्रवेश	६५७
६३-कुंभकर्ण का उपालम्भ देना	६५८
६४-महोदर का बिना युद्ध के ही इच्छित वस्तु की प्राप्ति का उपाय	६६०
६५-कुंभकर्ण की रथ यात्रा	६६१
६६-कुंभकर्ण को देखकर वानरों का पलायन	६६३
६७-कुंभकर्ण का श्रीराम के हाथों बध	६६५
६८-कुंभकर्ण का बध सुन कर रावण का विलाप	६७१
६९-रावण के पुत्रों आदि का युद्ध में आना	६७१
७०-त्रिशिरा, महोदर तथा महापार्श्व का बध	६७५
७१-अतिकाय का लक्ष्मण द्वारा बध	६७७
७२-रावण का पुरी की रक्षा का प्रबंध	६८१
७३-ब्रह्मास्त्र से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना	६८३
७४-हनुमान जी का दिव्य औषधियों का लाना	६८५
७५-लंकापुरी दहन और राक्षसों वानरों का युद्ध	६८८
७६-वानरों द्वारा प्रमुख राक्षसों का बध	६९०
७७-हनुमान जी द्वारा निकुंभ का बध	६९४
७८-मकराक्ष का युद्ध के लिये प्रस्थान	६९४
७९-श्रीराम द्वारा मकराक्ष का बध	६९५
८०-इन्द्रजित्-द्वारा घोर युद्ध	६९७
८१-इन्द्रजित् द्वारा मायामयी सीता का बध	६९९
८२-इन्द्रजित् का निकुम्भिला मंदिर में जाना	७०१
८३-श्रीराम का शोक से मूर्च्छित होना	७०२
८४-विभीषण का इन्द्रजित् की माया का रहस्य बताना	७०३
८५-लक्ष्मण को युद्ध में जाने की आज्ञा देना	७०५
८६-लक्ष्मण का इन्द्रजित को युद्ध के लिये ललकारना	७०७
८७-इन्द्रजित् और विभीषण की बातचीत	७०८
८८-लक्ष्मण और इन्द्रजित की बातचीत	७०९
८९-इन्द्रजित् के सारथी और घोड़े का बध	७१२
९०-इन्द्रजित का बध	७१४
९१-श्रीराम को इन्द्रजित के बध का समाचार सुनाना	७१७
९२-रावण का शोक	७१८
९३-श्रीराम द्वारा राक्षस सेना का संहार	७२०
९४-राक्षसियों का विलाप	७२१
९५-रावण का रणभूमि में पराक्रम दिखलाना	७२३
९६-सुग्रीव द्वारा विरूपाक्ष का बध	७२५
९७-सुग्रीव के साथ महोदर का युद्ध और उसका बध	७२६
९८-अंगद के द्वारा महापार्श्व का बध	७२८
९९-श्रीराम का रावण से युद्ध	७२९
१००-रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना	७३०
१०१-औषधि से लक्ष्मण का सचेत हो उठना	७३२
१०२-श्रीराम का रावण के साथ युद्ध	७३४
१०३-श्रीराम का रावण को घायल करना	७३५

१०४-रावण का सारथि को फटकारना ७३८
१०५-अगस्त्य मुनि का श्रीराम को आदित्य हृदय के पाठ की सम्मति देना ७३९
१०६-रावण की पराजय के सूचक उत्पातों का वर्णन ७४०
१०७-श्रीराम और रावण का घोर युद्ध ७४१
१०८-श्रीराम के द्वारा रावण का बध ७४३
१०९-रावण का अंत्येष्टि संस्कार का आदेश ७४५
११०-रावण की स्त्रियों का विलाप ७४६
१११-मंदोदरी का विलाप तथा रावण के शव का दाह संस्कार ७४७
११२-विभीषण का राज्याभिषेक ७५१
११३-हनुमान जी का सीता जी से बातचीत ७५२
११४-विभीषण का सीता को ले आना ७५४
११५-श्रीराम का सीता को ग्रहण करने से इंकार करना ७५६
११६-सीता का श्रीराम को उपलम्भ पूर्ण उत्तर देना ७५७
११७-श्रीराम के पास देवताओं का आगमन ७५९
११८-अग्नि का सीता को लेकर प्रकट होना ७५९
११९-श्रीराम और लक्ष्मण का विमान द्वारा आये हुए राज़ा दशरथ को प्रणाम करना ७६०
१२०-इन्द्र का मरे हुए वानरों को जीवित करना ७६२
१२१-श्रीराम का अयोध्या जाने को तैयार होना ७६३
१२२-विभीषण द्वारा वानरों का विशेष सम्मान ७६४
१२३-श्रीराम का सीता जी को मार्ग के स्थान दिखलाना ७६५
१२४-भरद्वाज आश्रम पर मुनियों से मिलना ७६७
१२५-हनुमान जी का गुह तथा भरत जी को श्रीराम के आगमन की सूचना देना ७६८
१२६-श्रीराम के वन सम्बन्धी वृतान्त भरत को सुनाना ७७०
१२७-अयोध्या में श्रीराम के स्वागत की तैयारी ७७२
१२८-भरत का श्रीराम को राज्य लौटाना ७७३

उत्तरकाण्ड

१-श्रीराम के दरबार में महर्षियों का आगमन ७७७
२-पुलस्त्य के गुण और तपस्या का वर्णन ७७८
३-विश्रवा से वैश्रवण की उत्पत्ति ७८०
४-राक्षस वंश का वर्णन ७८१
५-माल्यवान्, सुमाली और माली का वर्णन ७८२
६-राक्षसों के बध के लिये भगवान् विष्णु की शरण में जाना ७८४
७-भगवान् विष्णु द्वारा राक्षसों का संहार ७८६
८-सुमाली का रसातल में प्रवेश ७८७
९-रावण आदि का जन्म ७८९
१०-रावण आदि की तपस्या ७९१
११-पिता के आदेश से कुबेर का लंका छोड़ना ७९२
१२-शूर्पणखा तथा रावण आदि का विवाह ७९४
१३-रावण का अत्याचार करना ७९६
१४-रावण का यक्षों पर आक्रमण ७९७
१५-कुबेर की पराजय ७९८
१६-नन्दीश्वर का रावण को शाप देना ७९९
१७-वेदवती का रावण को शाप देना ८०१

सर्ग पृष्ठ सं०

१८-रावण से मरूत्त की पराजय ८०३
१९-रावण द्वारा अनरण्य का बध ८०४
२०-नारद जी का रावण को समझाना ८०५
२१-रावण का यमलोक पर आक्रमण ८०७
२२-यमराज और रावण का युद्ध ८०८
२३-रावण द्वारा वरुण पुत्रों की पराजय ८१०
२४-देवता आदि की कन्याओं का विलाप ८११
२५-यज्ञों द्वारा मेघनाद को सफलता ८१३
२६-रावण का रंभा से बलात्कार ८१४
२७-रावण का इन्द्रलोक पर आक्रमण ८१६
२८-मेघनाद और जयन्त का युद्ध ८१७
२९-रावण का देव सेना के बीच होकर निकलना ८१८
३०-ब्रह्माजी का इन्द्र को कैद से छुड़ाना ८१९
३१-रावण का महिष्मती नगर में जाना ८२१
३२-नर्मदा के प्रवाह का अवरुद्ध होना ८२२
३३-पुलस्त्य जी का रावण को अर्जुन की कैद से छुड़ाना ८२४
३४-बाली के द्वारा रावण का पराभव ८२५
३५-हनुमान जी की उत्पत्ती ८२६
३६-हनुमान जी को जीवित कर उन्हें वरदान देना ८२८
३७-श्रीराम का सभासदों के साथ राजसभा में बैठना ८३०
३८-श्रीराम द्वारा नरेशों की विदाई ८३१
३९-राजाओं का श्रीराम के लिये भेंट देना ८३२
४०-वानर, रीछों और राक्षसों की विदाई ८३२
४१-कुबेर के भेजे हुए पुष्पक विमान का आना ८३३
४२-श्रीराम और सीता का विहार ८३४
४३-पुरवासियों के मुख से अशुभ चर्चा सुनना ८३५
४४-श्रीराम के बुलाने पर सब भाइयों का आना ८३६

सर्ग पृष्ठ सं०

४५-लोकापवादों के विषय में भाइयों को बताना ८३६
४६-लक्ष्मण का सीता को गंगा तट पर छोड़ने जाना ८३७
४७-सीता जी को उनके त्यागे जाने की बात बताना ८३८
४८-श्रीराम के लिये सीता का संदेश ८३९
४९-वाल्मीकि का सीता के पास जाना ८४०
५०-लक्ष्मण और सुमन्त्र की बातचीत ८४१
५१-भृगु ऋषि के शाप की कथा कहना ८४२
५२-लक्ष्मण का दुःखी राम से मिलना ८४३
५३-राजा नृग को शाप मिलने की कथा ८४४
५४-पुत्र को राज्य देकर शाप का उपभोग ८४५
५५-राजा निमि और वशिष्ठ का एक दूसरे को शाप देना ८४६
५६-वशिष्ठ का वरुण के वीर्य में आवेश ८४७
५७-वसिष्ठ का नूतन शरीर धारण ८४८
५८-ययाति को शुक्राचार्य का शाप ८४९
५९-पुरू को अपना बुढ़ापा देकर उसका यौवन लेना ८५०
प्रक्षिप्त सर्ग-१– श्रीराम के द्वार पर कार्यार्थी कुत्ते का आगमन ८५१
प्रक्षिप्त सर्ग-२– कुत्ते के प्रति श्रीराम का न्याय ८५२
६०-च्यवन आदि ऋषियों का दरबार में आना ८५३
६१-लवणासुर के बल और अत्याचार का वर्णन ८५४
६२-श्रीराम का लवणासुर के विषय में पूछना ८५५
६३-श्रीराम द्वारा शत्रुघ्न का आभषेक ८५६
६४-श्रीराम की आज्ञा से शत्रुघ्न का प्रस्थान ८५७
६५-महर्षि वाल्मीकि का शत्रुघ्न को कथा सुनाना ८५७

६६-सीता के दो पुत्रों का जन्म ८५९
६७-शत्रुघ्न को लवणासुर के शूलशक्ति से परिचित होना ८५९
६८-लवणासुर के आहार के लिये निकलना ८६०
६९-शत्रुघ्न और लवणासुर का युद्ध ८६१
७०-शत्रुघ्न का मधुरापुरी बसाना ८६२
७१-शत्रुघ्न का अयोध्या जाना ८६३
७२-वाल्मीकि से विदा होकर शत्रुघ्न का प्रस्थान ८६४
७३-एक ब्राह्मण का मरे बालक को राज द्वार पर लाना ८६५
७४-शूद्र के अधर्म आचरण से बालक की मृत्यु ८६६
७५-श्रीराम का शूद्र तपस्वी का पता लगाना ८६७
७६-श्रीराम द्वारा शम्बूक का बध ८६८
७७-एक स्वर्गीय पुरुष के शव भक्षण का प्रसंग ८६९
७८-राजा श्वेत का घृणित कार्यका कारण बताना ८७०
७९-इक्ष्वाकु पुत्र राजा दण्ड का राज्य ८७१
८०-दण्ड का भार्गव कन्या के साथ बलात्कार ८७२
८१-शुक्राचार्य के शाप से दण्ड के राज्य का नाश ८७३
८२-श्रीराम का आयोध्या लौटना ८७३
८३-श्रीराम का राजसूय यज्ञ करने का विचार ८७४
८४-लक्ष्मण द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रस्ताव ८७५
८५-भगवान् विष्णु के तेज का इन्द्र में प्रवेश ८७६
८६-इन्द्र का ब्रह्म हत्या से मुक्त होना ८७७
८७-लक्ष्मण को राजा इल की कथा सुनाना ८७७
८८-इला और बुध का एक दूसरे को देखना ८७८
८९-बुध और इला का समागम ८७९
९०-इला को पुरुषत्व की प्राप्ति ८८०
९१-श्रीराम के अश्वमेध की तैयारी ८८१
९२-श्रीराम का कृष्णसार नामक घोड़े को छोड़ना ८८२
९३-यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि का आगमन ८८२
९४-लव कुश द्वारा रामायण काव्य का गान ८८३
९५-श्रीराम का सीता से शुद्धता प्रमाणित कराने का विचार ८८४
९६-महर्षि वाल्मीकि द्वारा सीता की शुद्धता का समर्थन ८८५
९७-सीता का शपथ ग्रहण ८८६
९८-सीता के लिये श्रीराम का खेद ८८७
९९-श्रीराम की जीवनचर्या ८८८
१००-ब्रह्मर्षि गार्ग्य का भेंट लेकर आना ८८८
१०१-भरत का गंधर्वों पर आक्रमण ८८९
१०२-लक्ष्मण द्वारा कुमार अंगद और चंद्रकेतु की विभिन्न राज्यों पर नियुक्ति ८९०
१०३-श्रीराम के यहाँ काल का आगमन ८९१
१०४-श्रीराम को ब्रह्माजी का संदेश सुनाना ८९१
१०५-महर्षि दुर्वासा का आगमन ८९२
१०६-लक्ष्मण का स्वर्ग गमन ८९३
१०७-श्रीराम का पुरवासियों को अपने साथ ले चलने का विचार ८९४
१०८-श्रीराम का परमधाम जाने का निश्चय ८९५
१०९-श्रीराम के साथ समस्त अयोध्यावासियों का प्रस्थान ८९६
११०-श्रीराम का विष्णु रूप में प्रवेश ८९७
१११-रामायण काव्य का उपसंहार ८९८

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की पाठविधि

चैत्र, माघ एवं कार्तिक शुक्ल पञ्चमी से त्रयोदशी तक इसके नवाह्न-पारायण की विधि है। किसी पुण्यक्षेत्र, पवित्र तीर्थ, मन्दिर में या अपने घर पर ही भगवान विष्णु तथा तुलसी के संनिधान में वाल्मीकि -रामायण का पाठ करना चाहिये। एतदर्थ यथासम्भव कथा-स्थान की भूमि को संशोधन, मार्जन, लेपनादि संस्कारों से संस्कृत कर कदली-स्तम्भ तथा ध्वजा-पताका-वितानादि से मण्डित कर देना चाहिये। मण्डप का मान १६ हाथ लंबा-चौड़ा हो और उसके बीच में सर्वतोभद्र से युक्त एक वेदी हो। अन्य वेदियाँ, कुण्ड तथा स्थण्डिल आदि भी हों। मण्डप के दक्षिण -पश्चिम भाग में वक्ता (व्यास) एवं श्रोता का आसन हो। व्यासासन के आगे पुस्तक का आसन होना चाहिये। श्रोताओं का आसन विस्तृत हो। व्यास का आसन श्रोता से तथा पुस्तक का आसन वक्ता से भी ऊँचा होना चाहिये। फिर प्रायश्चित्त तथा नित्यकृत्य करके भगवान् श्रीराम की प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये। अथवा पुस्तक पर ही सपरिकर सपरिच्छद श्रीसीतारामजी का अर्थात् भगवान् श्रीरामचन्द्र, भगवती सीताजी, लक्ष्मणजी, भरतजी, शत्रुघ्नजी, श्रीहनुमानूजी आदि का आवाहन करना चाहिये। तत्पश्चात् समस्त उपकरणों से अलंकृत, पञ्चपल्लवादि से युक्त कलश स्थापित कर स्वस्त्ययनपूर्वक गणपतिपूजन, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, मातृका, नवग्रह, तुलसी, लोकपाल, दिक्‌पाल आदि का पूजन तथा नान्दीश्राद्ध करके सपरिकर-सपरिच्छद भगवान् रामकी पूजा करे।

तदनन्तर काल-तिथि-गोत्र-नाम आदि बोलकर—

ॐ भूर्भुवः स्वरोम्। ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीसीताराम प्रीत्यर्थं श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्न-हनुमत्समेतश्रीरामचन्द्रप्रसादसिद्ध्यर्थं च श्रीराम-चन्द्रप्रसादेन सर्वाभीष्टसिद्ध्यर्थं श्रीरामचन्द्रपूजन-महं करिष्ये। श्रीवाल्मीकीयरामायणस्य पारायणं च करिष्ये, तदङ्गभूतं कलशस्थापनं स्वस्त्ययनपाठं गणपतिपूजनं वटुकक्षेत्रपालयोगिनीमातृकानव-ग्रहतुलसीलोकपालदिक्पालादिपूजनं चाहं करिष्ये।

—इस प्रकार संकल्प करने के बाद पूजन करे।

ॐ अच्युताय नमः, ॐ अनन्ताय नमः, ॐ गोविन्दाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ मधुसूदनाय नमः, ॐ हृषीकेशाय नमः, ॐ माधवाय नमः, ॐ त्रिविक्रमाय नमः, ॐ दामोदराय नमः, ॐ मुकुन्दाय नमः, ॐ वामनाय नमः, ॐ पद्मनाभाय नमः, ॐ केशवाय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ श्रीधराय नमः, ॐश्रीसीतारामाभ्यांनमः।

इस प्रकार नमस्कार करके निम्न प्रकार से पूजा करे-**श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेतं श्रीरामचन्द्रं ध्यायामि**— भगवान् राम का ध्यान करे।

श्रीरामचन्द्रं आवाहयामि— आवाहन करे।

श्रीसीतालक्ष्मणभरतशत्रुघ्नहनुमत्समेताय श्रीरामचन्द्राय नमः- रत्नसिंहासनें समर्पयामि- सिंहासन अर्पण करे।

नमः पाद्यं समर्पयामि—पाद्य दे।

नमः अर्घ्यं समर्पयामि—अर्घ्य दे।

नमः स्नानीयं समर्पयामि—स्नान करावे

नमः आचमनीयं समर्पयामि—आचमन करावे।

नमः वस्त्रं समर्पयामि—वस्त्र अर्पण करे।

नमः यज्ञोपवीताभरणं समर्पयामि—यज्ञोपवीत-आभूषण दे।

नमः गन्धान् समर्पयामि—चन्दन-कुङ्कुम लगावे।

नमः अक्षतान् समर्पयामि—चावल चढ़ावे।

नमः पुष्पाणि समर्पयामि—पुष्पमाला दे।

नमः धूपमाघ्रापयामि—धूप दे।

नमः दीपं दर्शयामि—दीपक दिखावे।

नमः नैवेद्यं फलानि च समर्पयामि—नैवेद्य और फल अर्पण करे।

नमः ताम्बूलं समर्पयामि—पान दे।

नमः कर्पूरनीराजनं समर्पयामि—आरती करे।

नमः छत्रचामरादि समर्पयामि—छत्र-चँवरादि अर्पण करे।

नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि—पुष्पाञ्जलि अर्पण करे।

नमः प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि—प्रदक्षिणा और नमस्कार करे।

तत्पश्चात् निम्न प्रकार से पञ्चोपचार से श्रीरामायण-ग्रन्थ की पूजा करे—

ॐ सदा श्रवणमात्रेण पापिनां सद्‌गतिप्रदे।
शुभे रामकथे तुभ्यं गन्धमद्य समर्पये॥
—इति गन्धं समर्पयामि।

ॐ बालादिसप्तकाण्डेन सर्वलोकसुखप्रद।
रामायण महोदार पुष्पं तेऽद्य समर्पये॥
—इति पुष्पाणि पुष्पमालां च समर्पयामि।

ॐ यस्यैकश्लोकपाठस्य फलं सर्वफलाधिकम्।
तस्मै रामायणायाद्य दशाङ्गं धूपमर्पये॥
—इति धूपमाघ्रापयामि।

ॐ यस्य लोके प्रणेतारो वाल्मीक्यादिमहर्षयः।
तस्मै रामचरित्राय घृतदीपं समर्पये॥
—इति दीपं दर्शयामि।

ॐश्रूयते ब्रह्मणो लोके शतकोटिप्रविस्तरम्।
रूपं रामायणस्यास्य तस्मै नैवेद्यमर्पये॥
—इति नैवेद्यं समर्पयामि।

पूजा करने के बाद कर्पूर की आरती करके चार बार प्रदक्षिणा कर पुष्पाञ्जलि अर्पण करे। फिर साष्टाङ्ग प्रणामकर इस प्रकार नमस्कार करे—

वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामसागरगामिनी।
पुनाति भुवनं पुण्या रामायणमहानदी॥
श्लोकसारसमाकीर्णं सर्गकल्लोलसंकुलम्।
काण्डग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम्॥

फिर देवता, ब्राह्मणादि की पूजा कर पाठ का संकल्प करके ऋष्यादिन्यास करे। अनुष्ठानप्रकाश के अनुसार कामनाभेद से यदि पूरी रामायण का पाठ न हो सके तो अलग-अलग काण्डों के अनुष्ठान की भी विधि है। जैसे पुत्र की कामनावाला बालकाण्ड पढ़े, लक्ष्मी की इच्छावाला अयोध्याकाण्ड पढ़े। इसी प्रकार नष्टराज्य की प्राप्ति की इच्छावालों को किष्किन्धाकाण्ड का, सभी कामनाओं की इच्छावालों को सुन्दरकाण्ड का और शत्रुनाश की कामनावालों को लङ्काकाण्ड का पाठ करना चाहिये। 'बृहद्धर्मपुराण' के अनुसार इनका अन्य भी सकाम उपयोग है। वह तथा उसके न्यासादि का प्रकार आगे लिखा जायगा।

ॐ अस्य श्रीवाल्मीकिरामायणमहामन्त्रस्य भगवान् वाल्मीकिर्ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरामः परमात्मा देवता। अभयं सर्वभूतेभ्य इति बीजम्। अङ्गुल्यग्रेण तान् हन्यामिति शक्तिः। एतदस्त्रबलं दिव्यमिति कीलकम्। भगवान्नारायणो देव इति तत्वम्। धर्मात्मा सत्यसंधश्चेत्यस्त्रम्। पुरुषार्थ-चतुष्टयसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः

ॐ श्रीं रां आपदामपहर्तारमित्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ ह्रीं रीं दातारमिति तर्जनीभ्यां नमः। ॐ रों रूं सर्वसम्पदामिति मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ श्रीं रैं लोकाभिराममित्यनामिकाभ्यां नमः। ॐ श्रीं रौं श्रीराममिति कनिष्ठिकाभ्यां नमः॥

ॐ रौं रः भूयो भूयो नमाम्यहमिति करतलकर-पृष्ठाभ्यांनमः।

इन्हीं मन्त्रों से इसी प्रकार हृदयादि * न्यास करे। फिर—

ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् देवाश्चैव तपस्विनः।

---

* हृदयादि न्यास की विधि यह है कि 'अङ्गुष्ठाभ्यां नमः' के स्थान पर 'हृदयाय नमः' कहकर पाँचों अङ्गुलियों से हृदय का स्पर्श किया जाय। 'तर्जनीभ्यां नमः' के स्थानपर 'शिरसे स्वाहा' कहकर सिर का अग्रभाग छुआ जाय। 'मध्यमाभ्यां नमः' के स्थान पर 'शिखायै वौषट्' कहकर शिखा का स्पर्श किया जाय। 'अनामिकाभ्यां नमः' के बदले 'कवचाय हुम्' कहकर दाहिने हाथ से बायें कंधे तथा बायें हाथ से दाहिने कंधे का स्पर्श करे। 'कनिष्ठिकाभ्यां नमः' के बदले 'नेत्रत्रयाय वौषट्' कहकर नेत्रों का स्पर्श करे तथा 'करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः' के बदले 'अस्त्राय फट्' कहकर तीन बार ताली बजाये।

सिद्धि दिशन्तु में सर्वे देवाः सर्षिगणास्त्विह।।
–इति दिग्बन्धः।

यों कहकर चारों ओर हाथ घुमाकर अन्त में फिर इस प्रकार ध्यान करे–

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्।।
'आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।'

यह सम्पुट का मन्त्र है। इससे सम्पुटित पाठ करने से समस्त मनः कामनाओं की सिद्धि होती है।

फिर निम्न प्रकार से मङ्गलाचरण करके पाठ आरम्भ करना चाहिये–

गणपति का ध्यान

शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये।। १ ।।
वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम्।। २ ।।

गुरु की वन्दना

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

सरस्वती का स्मरण

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण।
भासा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमानासमाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना।।

वाल्मीकिजी की वन्दना

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्।।
यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्।।

हनुमान्जी को नमस्कार

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्।।
अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम्।।
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्।।
आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम्।
पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम्।।
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्।।
मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि।।

श्रीराम के ध्यान का क्रम

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने संस्थितम्।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजेश्यामलम्।।
वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पश्चात् सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्।।

श्रीरामपरिकर को नमस्कार

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः।।
नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः।।

रामायण को नमस्कार

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥
वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामाम्भोनिधिसंगता।
श्रीमद्रामायणी गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम्॥
वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
श्रृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्॥

पाठ आरम्भ करने के बाद अध्याय के बीच में रुकना नहीं चाहिये। रुक जाने पर फिर उसी अध्याय को आरम्भ से पढ़ना चाहिये। मध्यम स्वर से, स्पष्ट उच्चारण करते हुए श्रद्धा तथा प्रेम से पाठ करना चाहिये। गीत गाकर, सिर हिलाकर, जल्दबाजी से तथा बिना अर्थ समझे पाठ करना ठीक नहीं है। संध्या-समय निम्नलिखित स्थलों पर प्रतिदिन विश्राम करते जाना चाहिये।

प्रथम	**दिन**	**अयोध्याकाण्ड के**	**६ ठे**	**सर्ग का**	**समाप्ति पर**	**प्र०**	**विश्राम**
द्विताय	,,	,,	**८० वें**	,,	,,	**द्विताय**	,,
तृताय	,,	**अरण्यकाण्डके**	**२० वें**	,,	,,	**तृताय**	,,
चतुर्थ	,,	**किष्किन्धाकाण्डके**	**४६ वें**	,,	,,	**चतुर्थ**	,,
पञ्चम	,,	**सुन्दरकाण्ड के**	**४७ वें**	,,	,,	**पञ्चम**	,,
षष्ठ	,,	**युद्धकाण्ड के**	**५० वें**	,,	,,	**षष्ठ**	,,
सप्तम	,,	,,	**९९ वें**	,,	,,	**सप्तम**	,,
अष्टम	,,	**उत्तरकाण्ड के**	**३६ वें**	,,	,,	**अष्टम**	,,
नवम	,,	,,	**अन्तिम सर्ग के बाद पुनः युद्धकाण्ड-काअन्तिम सर्ग पढ़करविश्राम करना चाहिये।***				

इसके अन्य भी विश्रामस्थल हैं। एक पारायण-क्रम ऐसा भी है, जिसमें उत्तरकाण्ड का पाठ नहीं किया जाता। उसके विश्रामस्थल क्रमशः इस प्रकार हैं--

प्रथम	दिवस	बालकाण्ड के	७७वेंसर्गकी	समाप्तिपर
द्वितीय	,,	अयोध्याकाण्ड के	६०वें	,,
तृतीय	,,	,,	११९वें	,,
चतुर्थ	,,	अरण्यकाण्ड के	६८वें	,,
पञ्चम	,,	किष्किन्धाकाण्डके	४९वें	,,
षष्ठ	,,	सुन्दरकाण्ड के	५६वें	,,
सप्तम	,,	युद्धकाण्ड के	५०वें	,,
अष्टम	,,	,,	१११वें	,,
नवम	,,	,,	१३१वें	,,

प्रतिदिन कथा-समाप्ति के समय निम्नाङ्कित श्लोकों के द्वारा मङ्गलाशासन करके पारायण पूरा करे।

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम्॥
चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम्॥
शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥
यन्मङ्गलं सहस्त्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते।
वृत्रनाशे समभवत् तत् ते भवतु मङ्गलम्॥
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम्॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम्॥

---

* प्रथमे तु अयोध्यायाःषट्सर्गान्ते शुभा स्थितिः।
तस्यैवाशातिसर्गान्ते द्विताये दिवसे स्थितिः॥
तथा विंशतिसर्गान्ते चारण्यस्य तृतीयके।
दिने चतुर्थे षट्चत्वारिंशत्सर्गे कथास्थितिः॥
किष्किन्धाख्यस्य काण्डस्य पाठविद्भिरुदाहृता।
सुसप्तचत्वारिंशत्के सर्गान्ते सुन्दरेस्थितिम्॥
पञ्चमे दिवसे कुर्यादथ षष्ठे तथोच्यते।
युद्धकाण्डस्य पञ्चाशत्सर्गान्ते विमला स्थितिः॥
एकोनशतसंख्याके सर्गान्ते सप्तमे दिने।
युद्धस्यैव तु काण्डस्य विश्रामः सम्प्रकीर्तितः॥
तथा चोत्तरकाण्डस्य षट्त्रिंशत्सर्गपूरणे।
अष्टमे दिवसे कृत्वा स्थितिं च नवमे दिने॥
शेषं समाप्य युद्धस्य चान्त्य सर्गं पुनः पठेत्।
रामराज्यकथा यस्मिन् सर्ववाञ्छितदायिनी॥
एवं पाठक्रमः प्रर्वैराचार्यैश्च विनिर्मितः।

(अनुष्ठानप्रकाश)

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत्।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत् ते भवतु मङ्गलम्॥
त्रीन् विक्रमान् प्रक्रमतो विष्णोरमिततेजसः।
यदासीन्मङ्गलं राम तत् ते भवतु मङ्गलम्॥
ऋषयः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च तां।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्याऽऽत्मना वा प्रकृतिस्वभावात्।
करोमि यद् यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पये तत्॥

अलग-अलग काण्डों के सकाम* पाठ का ऋष्यादिन्यास इस प्रकार है—

बालकाण्ड का विनियोग

ॐ अस्य श्रीबालकाण्डमहामन्त्रस्य ऋष्यशृङ्ग ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। दाशरथिः परमात्मा देवता। रां बीजम्। नमः शक्तिः। रामायेति कीलकम्। श्रीरामप्रीत्यर्थे बालकाण्डपारायणे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास

ॐ ऋष्यशृङ्गऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ दाशरथिपरमात्मदेवतायै नमः हृदि। ॐ रां बीजाय नमः गुह्ये । ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ रामाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सुप्रसन्नाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शान्तमनसे तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सत्यसन्धाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ जितेन्द्रियाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ धर्मज्ञाय नयसारज्ञाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ राज्ञे दाशरथये जयिने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रों से पूर्वोक्त प्रकार से हृदयादि न्यास कर निम्न प्रकार से ध्यान करे—

श्रीराममाश्रितजनामरभूरुहेश-
मानन्दशुद्धमखिलामरवन्दिताङ्घ्रिम्।
सीताङ्गनासुमिलितं सततं सुमित्रा-
पुत्रान्वितं धृतधनुःशरमादिदेवम्॥
ॐ सुप्रसन्नः शान्तमनाः सत्यसंधो जितेन्द्रियः।
धर्मज्ञो नयसारज्ञो राजा दाशरथिर्जयी॥

इस मन्त्र से श्रीराम की पूजा करे और इसी से अथवा श्रीराममन्त्र से सम्पुटित कर बालकाण्ड का पाठ करे। इससे ग्रहशान्ति, ईति-भीति-शान्ति तथा पुत्रप्राप्ति सम्भव है।

अयोध्याकाण्ड का विनियोग तथा ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीअयोध्याकाण्डमहामन्त्रस्य भगवान् वसिष्ठ ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। भरतो दाशरथिः परमात्मा देवता। भं बीजम्। नमः शक्तिः। भरतायेति कीलकम्। मम भरतप्रसादसिद्ध्यर्थमयोध्याकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ वसिष्ठऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ दाशरथिभरतपरमात्मदेवतायै नमः हृदि। ॐ भं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ भरताय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ भरताय नमस्तस्मै—अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ

---

* वृहद्धर्मपुराण में अलग-अलग काण्डों के पाठ के प्रयोजन इस प्रकार बतलाये गये हैं—

अनावृष्टिर्महापीडाग्रहपीडाप्रपीडिताः ।
आदिकाण्डं पठेयुर्वै तेमुच्यन्ते ततो भयात्॥
पुत्रजन्मविवाहादौ गुरुदर्शन एव च।
पठेच्च शृणुयाच्चैव द्वितीयं काण्डमुत्तमम्॥
वने राजकुले वह्निजलपीडायुतो नरः।
पठेदारण्यकं काण्डं शृणुयाद् वा स मङ्गलो॥
मित्रलाभे तथा ,नष्टद्रव्यस्य च गवेषणे।
श्रुत्वा पठित्वा कैष्किन्ध्यं काण्डं तत्तत् फलं लभेत्॥
श्राद्धेषु देवकार्येषु पठेत् सुन्दरकाण्डकम्।
शत्रोर्जये समुत्साहे जनवादे विगर्हिते॥
लङ्काकाण्डं पठेत् किं वा शृणुयात् स सुखी भवेत्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि काण्डमभ्युदयोत्तरम्।
आनन्दकार्ये यात्रायां स जयी परतोऽत्र च॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं भक्त्यर्थी भक्तिमेव च।
ज्ञानार्थी लभते ज्ञानं ब्रह्मतत्त्वोपलम्भकम्॥
(बृहद्धर्मपुराण पूर्वखण्ड अध्याय २६ । ९-१५)

सारज्ञाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ महात्मने मध्यमाभ्यां नमः। ॐ तापसाय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ अतिशान्ताय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शत्रुघ्न-सहिताय च करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

फिर इसी प्रकार हृदयादि का भी न्यास करके निम्नलिखित श्लोकानुसार ध्यान करना चाहिये—

श्रीरामपादद्वयपादुकान्तसंसक्तचित्तं कमलायताक्षम्।
श्यामं प्रसन्नवदनं कमलावदातशत्रुघ्नयुक्तमनिशं भरतं नमामि॥
भरताय नमस्तस्मै सारज्ञाय महात्मने।
तापसायातिशान्ताय शत्रुघ्नसहिताय च॥

इस मन्त्र से पञ्चोपचार द्वारा भरतजी की पूजा करे। चाहे तो इसी मन्त्र से लक्ष्मी-प्राप्ति की इच्छा से अयोध्याकाण्ड का सम्पुटित पाठ करे।

अरण्यकाण्ड का विनियोग एवं ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीमदरण्यकाण्डमहामन्त्रस्य भगवानृषिः। अनुष्टुप् छन्दः। श्रीरामो दाशरथिः परमात्मा महेन्द्रो देवता। ईंबीजम्। नमः शक्तिः। इन्द्रायेतिकीलकम् इन्द्रप्रसादसिद्ध्यर्थे अरण्यकाण्ड-पारायणे जपे विनियोगः। ॐ भगवदृषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ दाशरथिश्रीरामपरमात्ममहेन्द्रदेवतायै नमः हृदि। ॐ ईं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ इन्द्राय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सहस्रनयनाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ देवाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सर्वदेवनमस्कृताय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ दिव्यवज्रधराय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ महेन्द्राय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शचीपतये करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रों से हृदयादिन्यास करके इस श्लोक से ध्यान करना चाहिये।

शचीपतिं सर्वसुरेशवन्द्यं सर्वार्तिहर्तारमचिन्त्यशक्तिम्।
श्रीरामसेवानिरतं महान्तं वन्दे महेन्द्रं धृतवज्रमीड्यम्॥

फिर—

सहस्रनयनं देवं सर्वदेवनमस्कृतम्।
दिव्यवज्रधरं वन्दे महेद्रं च शचीपतिम्॥

इस मन्त्र से इन्द्र की पूजा करे और नष्ट द्रव्य-प्राप्ति आदि की कामना से इसी से सम्पुटित कर पाठ करे।

किष्किन्धाकाण्ड का ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीकिष्किन्धाकाण्डमहामन्त्रस्य भगवान् ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। सुग्रीवो देवता। सुं बीजम्। नमः शक्तिः। सुग्रीवेति कीलकम्। मम सुग्रीवप्रसादसिद्ध्यर्थे किष्किन्धाकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ भगवदृषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप् छन्दसे नमः मुखे। ॐ सुग्रीव देवतायै नमः हृदये। ॐ सुं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ सुग्रीवाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सुग्रीवाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ सूर्यतनयाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सर्ववानरपुङ्गवाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ बलवते अनामिकाभ्यां नमः। ॐ राघव-सखाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ वशी राज्यं प्रयच्छतु इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इन्हीं मन्त्रों से हृदयादिन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे—

सुग्रीवमर्कतनयं कपिवर्यवन्द्य-
मारोपिताच्युतपदाम्बुजमादरेण ।
पाणिप्रहारकुशलं बलपौरुषाढ्य-
माशास्यदास्यनिपुणं हृदि भावयामि॥

फिर सुं सुग्रीवाय नमः तथा-

सुग्रीवः सूर्यतनयः सर्ववानरपुङ्गवः।
बलवान् राघवसखा वशी राज्यं प्रयच्छतु॥

इस मन्त्र से सुग्रीव की पूजाकर— चाहे तो इसी श्लोक से किष्किन्धाकाण्ड का सम्पुटित पाठ करे।

सुन्दरकाण्ड का विनियोग एवं ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीमत्सुन्दरकाण्डमहामन्त्रस्य भगवान् हनुमान् ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः।

श्रीजगन्माता सीता देवता। श्रीं बीजम्। स्वाहा शक्तिः। सीतायै कीलकम्। सीताप्रसादसिद्ध्यर्थं सुन्दरकाण्डपारायणे विनियोगः। ॐ भगवद्धनुमद्दषये नमः शिरसि। अनुष्टुपूछन्दसे नमः मुखे। श्रीजगन्मातृसीतादेवतायै नमः हृदि। श्रीं बीजाय नमः गुह्ये। स्वाहाशक्तये नमः पादयोः। सीतायै कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ सीतायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ विदेहराजसुतायै तर्जनीभ्यां नमः। रामसुन्दर्यै मध्यमाभ्यां नमः। हनुमता समाश्रितायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भूमिसुतायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शरणं भजे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

फिर इन्हीं मन्त्रों से हृदयादिन्यास करके इस प्रकार ध्यान करे–

सीतामुदारचरितां विधिसाम्बविष्णु-
वन्द्यां त्रिलोकजननीं शतकल्पवल्लीम्।
हेमैरनेकमणिरञ्जितकोटिभागै-
र्भूषाचयैरनुदिनं सहितां नमामि॥

सुन्दरकाण्ड के पाठ की विशेष विधि है कि प्रतिदिन एकोत्तरवृत्ति से क्रमशः एक-एक सर्ग पाठ बढ़ाते हुए ग्यारहवें दिन पाठ समाप्त कर दे। १२ वें दिन अवशिष्ट दो सर्ग के साथ आरम्भ के १० सर्ग पढ़े जायँ, १३ वें दिन ११ से २३ तक इस तरह तीन आवृत्ति के पाठ से समस्त कार्य की सिद्धि होती है। दूसरा क्रम है– प्रतिदिन ५ अध्याय पाठ का। इसमें भी पूर्व की भाँति १४ वें दिन अन्त के ३ तथा प्रारम्भ के दो सर्ग का पाठ करे। सम्पुट पाठ का मन्त्र है–

'श्रीसीतायै नमः।*

लङ्काकाण्ड का विनियोग एवं ऋष्यादिन्यास

ॐ अस्य श्रीयुद्धकाण्डमहामन्त्रस्य विभीषण ऋषिः। अनुष्टुप् छन्दः। विधाता देवता। यं बीजम्। नमः शक्तिः विधातेति कीलकम्। श्रीधातृप्रसादसिद्ध्यर्थे युद्धकाण्डपारायणेविनियोगः। ॐ विभीषणऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुपूछन्दसे नमः मुखे। ॐ विधातृदेवतायै नमः हृदि। ॐ बं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ नमः शक्तये नमः पादयोः। ॐ विधातेति कीलकाय नमः सर्वाङ्गे।

करन्यास

ॐ विधात्रे नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ महादेवाय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ भक्तानामभयप्रदाय मध्यमाभ्यां नमः। ॐ सर्वदेवप्रीतिकराय अनामिकाभ्यां नमः। ॐ भगवत्प्रियाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ईश्वराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

फिर इन्हीं मन्त्रों से हृदयादिन्यास करके इस प्रकार ध्यान करना चाहिये–

देवं विधातारमनन्तवीर्यं भक्ताभयं श्रीपरमादिदेवम्।
सर्वामरप्रीतिकरं प्रशान्तं वन्दे सदा भूतपतिं सुभूतिम्॥

फिर–

विधातारं महादेवं भक्तानामभयप्रदम्।
सर्वदेवप्रीतिकरं भगवत्प्रियमीश्वरम्॥

इस मन्त्र से पञ्चोपचार द्वारा पूजाकर चाहे तो इसी मन्त्र से सम्पुटित पाठ करे। इससे शत्रु पर विजय प्राप्त होती एवं अप्रतिष्ठा नष्ट होती है।

पुनर्वसु से प्रारम्भ कर आर्द्रा तक २७ दिनों में भी पूर्ण रामायण-पाठ की विधि है। ४० दिनों का भी एक पारायण होता है। नवरात्र में भी इसके नवाह्न पाठ का नियम है।

---

* रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम । भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षां देहि श्रियं च ते॥
इस मन्त्र के सम्पुट से सुन्दरकाण्ड का पाठ भी किया जा सकता है।

॥ श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण माहात्म्य

रामायण आदिकाव्य है। यह सम्पूर्ण वेदार्थों की सम्मति के अनुकूल है। इसके द्वारा समस्त पापों का निवारण हो जाता है। यह पुण्यमय काव्य सम्पूर्ण दुःखों का विनाशक तथा समस्त पुण्यों और यज्ञों का फल देनेवाला है।

जो विद्वान् इसके एक या आधे श्लोक का भी पाठ करते हैं, उन्हें कभी पापों का बन्धन नहीं प्राप्त होता। पाठक गण! भगवान् मधुसूदन संसार रूपी भयंकर एवं दुर्गम वन को भस्म करने के लिये दावानल के समान हैं। वे अपना स्मरण करने वाले मनुष्यों के पापों को नाश कर देते हैं।

इस पवित्र काव्य के प्रतिपाद्य विषय वे ही हैं, अतः यह परम उत्तम काव्य सदा ही श्रवण करने योग्य है। इसका श्रवण अथवा पाठ करने से यह समस्त पापों का नाश करने वाला है।

जिसकी श्रीराम-रस में प्रीति एवं भक्ति है, वही सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थ-ज्ञान में निपुण और कृतकृत्य है।

श्रीराम को समर्पित किया हुआ यह पुण्यकाव्य सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला है। जो लोग भक्तिपूर्वक इसे सुनते और समझते हैं, उनको प्राप्त होनेवाले पुण्यफल का वर्णन सुनो।

वे लोग सौ जन्मों में उपार्जित किये हुए पापों से तत्काल मुक्त हो अपनी हजारों पीढ़ियों के साथ परम पद को प्राप्त होते हैं।

जो प्रतिदिन श्रीराम का कीर्तन सुनते हैं, उनके लिये तीर्थ-सेवन, गोदान, तपस्या तथा यज्ञों की क्या आवश्यकता है।

चैत्र, माघ तथा कार्तिक में रामायण की अमृतमयी कथा का नवाह्न-पारायण सुनना चाहिये।

रामायण श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नता प्राप्त करानेवाला, श्रीरामभक्ति को बढ़ाने वाला, समस्त पापों का विनाशक तथा सभी सम्पत्तियों की वृद्धि करनेवाला है।

जो एकाग्रचित्त होकर रामायण को सुनता अथवा पढ़ता है, वह सब पापों से मुक्त हो भगवान् विष्णु के लोक में जाता है।

श्री गणेशाय नमः

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

बालकाण्ड

पहला सर्ग

नारद मुनि का वाल्मीकि मुनि को श्रीराम का चरित्र सुनाना

एक बार तपस्या में लगे हुए बाल्मीकि जी ने विद्वानों में श्रेष्ठ नारद मुनि से पूछा– मुने! इस संसार में वीर्यवान, गुणवान, दृढ़ प्रतिज्ञ, सत्यवक्ता, उपकार माननेवाला धर्मज्ञ कौन है? समस्त प्राणियों का हितैषी, विद्वान, सामर्थ्यशाली तथा एक मात्र सुन्दर पुरुष कौन है? वह कौन है, जो क्रोध को जीतनेवाला, मन पर अधिकार रखनेवाला, कान्तियुक्त तथा किसी की निंदा करने वाला नहीं है। युद्ध में किसके कुपित होने से देवता भी डरते हैं। महर्षे! ऐसे पुरुष को आप ही जानने में समर्थ हैं। अतएव मुझे यह सुनाकर मेरी उत्सुकता को शांत करें।

यह सुनकर महर्षि नारद ने प्रसन्नतापूर्वक कहा, मुने! आपने जिन दुर्लभ गुणों का वर्णन किया है उनके अनुसार इक्ष्वाकु वंश में जन्मे एक ऐसे पुरुष हैं जो राम नाम से विख्यात हैं। वे ही जितेन्द्रिय, कान्तिवान, महाबलवान और मन को वश में रखनेवाले हैं। वे ही नीतिज्ञ, वक्ता, शत्रु संहारक तथा बुद्धिमान हैं। उनके कंधे मोटे, भुजाएं बड़ी, गर्दन शंख के समान तथा ठोढ़ी मांसल है।

उनकी छाती चौड़ी है तथा गले के नीचे की हड्डी मांस से छिप गयी है। उनकी भुजायें घुटनों तक लम्बी, मस्तक सुन्दर तथा ललाट भव्य हैं। उनकी चाल मनोहर है और वे शत्रुओं का दमन करनेवाले हैं।

उनका शरीर सुडौल और देह का रंग चिकना है। उनका वक्षःस्थल भरा हुआ तथा आँख बड़ी-बड़ी है। साथ ही वे बड़े प्रतापी भी हैं। वे सत्यप्रतिज्ञ प्रजा के हित साधन में लगे रहनेवाले, यशस्वी ज्ञानी पवित्र तथा मन को

एकाग्र रखने वाले हैं।

वे वैरि विध्वंसक, श्री सम्पन्न और धर्म के रक्षक हैं तथा स्वजनों के पालक, वेद वेदांगों के तत्व वेत्ता तथा धनुर्वेद में प्रवीण हैं। वे शास्त्रों के तत्व वेत्ता, स्मरण शक्ति से युक्त प्रतिभा सम्पन्न हैं। वे उदार हृदयवाले तथा समस्त लोकों को प्रिय हैं। समुद्र में नदियों के मिलने के समान ही साधु पुरुष राम से मिलते रहते हैं। वे सम्पूर्ण गुणों से युक्त अपनी माता कौशल्या के आनन्द बढ़ानेवाले हैं। वे हिमालय के समान धैर्यवान हैं और गंभीरता में समुद्र के समान हैं। वे विष्णु की तरह बलवान हैं और उनका दर्शन चन्द्रमा के समान मनोहारी है।

इस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त और पराक्रमी तथा सद्‌गुणशाली अपने ज्येष्ठ पुत्र को राजा दशरथ ने प्रजाओं के हित के लिये युवराज पद अभिषिक्त करना चाहा। लेकिन राज्याभिषेक की तैयारियां देखकर रानी कैकेयी ने जिसे पहले ही वर दिया जा चुका था, यह वर माँगा कि राम को वनवास और भरत का राज्याभिषेक हो।

सत्य वचन के बंधन में बंधने के कारण राजा दशरथ ने राम को वनवास दे दिया। कैकेयी को प्रसन्न करने के लिए रामचन्द्र वन को चल दिये। यह देखकर सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण अपने सुबन्धुत्व का परिचय देते हुए उन्हीं का अनुसरण किया। फिर जनक कुल में उत्पन्न स्त्रियों में उत्तम राम की पत्नी सीता भी रामचन्द्र के पीछे चलीं। उस समय उनके पिता दशरथ और अन्य पुरवासी दूर तक उनका अनुसरण किया। तत्पश्चात् शृंगवेरपुर में गंगा के किनारे पहुँचकर राम ने अपने सारथी को भी विदा कर दिया।

वहां वे अपने प्रिय निषाद राज गुह के साथ एक वन से दूसरे वन में गये। फिर अनेक नदियों को पार करने के बाद भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुंचे। इसके बाद गुह को वहीं छोड़ कर वे मुनि की आज्ञा से चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे। वहाँ वे पर्ण कुटी बनाकर सबके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

इधर राम के चित्रकूट चले जाने पर राजा दशरथ पुत्र वियोग में स्वर्गवासी हुए। अब भरत राज्य की इच्छा न करते हुए राम को प्रसन्न करने के लिये वन को गये और वहाँ पहुँचकर राम से बोले, धर्मज्ञ! राजा आप ही हों! किंतु राम ने राज्य की इच्छा न करते हुए उन्हें चिह्न के रूप में अपनी

खड़ाऊँ देकर विदा किया। भरत राम की इच्छा देखकर उनके आगमन की प्रतीक्षा करते हुए नन्दिग्राम में राज्य करने लगे।

राम ने जब वहाँ नागरिकों का आना-जाना देखा तो वे दण्डकारण्य में चले गये। वहाँ विराध नामक राक्षस को मार कर शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य तथा उनके भाई का दर्शन किया। वहाँ अगस्त्य मुनि ने ऐन्द्र धनुष, एक खड्ग और दो तूणीर, जिसके बाण कभी घटते नहीं थे, उन्हें दिए। उसी समय बहुत से ऋषि मुनि उनके पास राक्षसों का बध करने का निवेदन लेकर आये। श्रीराम ने उन्हें राक्षसों के मारने का वचन दिया।

उस स्थान पर सूर्पणखा नामक राक्षसी का लक्ष्मण के द्वारा नाक कटवा कर उसे कुरूप करवा दिया और उसके भाई खर, दूषण, त्रिशिरा तथा अन्य राक्षसों का बध किया। इधर अपने भाइयों का बध का समाचार सुनकर रावण मुर्छित हो उठा और मारीच राक्षस से सहायता माँगी। मारीच ने उसको राम का विरोध करने के लिये मना किया। किन्तु रावण न माना और उसे साथ लेकर राम के आश्रम पर गया। तत्पश्चात् मायावी मारीच के द्वारा उसने राम और लक्ष्मण को उनके आश्रम से हटवा दिया और राम की पत्नी सीता का अपहरण कर लिया और मार्ग में जटायु द्वारा बाधा पहुँचने के कारण रावण ने उसका बध किया। इस जटायु के मुख से जब राम को सीता हरण की बात मालूम हुई, तो वे शोकाकुल होकर विलाप करने लगे।फिर जटायु का दाह-संस्कार कर एक अन्य राक्षस कबन्ध का बध किया। आगे वे सबरी के यहां गये और उससे पूजित हुए। तत्पश्चात् उनकी भेंट हनुमान से हुई जिनकी सहायता से वे सुग्रीव से मिले और फिर अग्नि को साक्षी मानकर आपस में मित्र बने।

उस समय दुःखी होकर सुग्रीव ने उनसे बाली के शत्रुता की बात बतायी। जिसे सुनकर राम ने बाली कोमारने की प्रतीज्ञा की। किंतु सुग्रीव को राम की शक्ति पर संदेह हो रहा था। इसलिये उन्होंने परीक्षा हेतु उन्हें दुंदुभि दैत्य का विशाल शरीर दिखलाया। इस पर राम ने मुस्कराते हुए उसे पैर के अंगूठे से दस योजन दूर फेंक दिया। फिर एक बाण से सात ताल वृक्षों को बींध डाला। राम के इस कार्य को देखकर सुग्रीव को उन पर विश्वास हो गया और वे उनके साथ किष्किंधा गुफा में गये। वहाँ सुग्रीव के महानाद को सुनकर

वानरराज बाली अपनी पत्नी तारा को आश्वासन दे बाहर निकला। किंतु उसे राम ने तुरंत एक बाण से मार गिराया। बाली को मार कर राम ने सुग्रीव को उसके के राज्य पर बैठा दिया।

सुग्रीव राजा बनते ही सभी वानरों को सीता का पता लगाने चारों दिशाओं में भेजा और तत्पश्चात् बलवान हनुमान जी सम्पाति नामक गिद्ध के कहने पर सौ योजन लम्बा क्षार समुद्र को लांघ गये। वहां लंकापुरी में पहुँचकर उन्होंने सीता को अशोक वाटिका में चिंता मग्न बैठे देखा। तब सीता को अपनी पहचान देकर उनको राम का संदेश सुनाया और वाटिका के दरवाजे को तोड़ डाला। फिर पाँच सेनापति और अक्ष कुमार सहित सात कुमारों की हत्या कर जानबूझकर अपने को पकड़वा दिया। उस समय उन्होंने राक्षसों का अपराध स्वेच्छा से सहा और सीता के स्थान को छोड़कर सारी लंका को जला डाला और फिर राम को सीता का संदेश देने के लिये वापस लौटे। जब राम को सत्य की जानकारी हुई तो उन्होंने अपने बाणों से समुद्र को क्षुब्ध किया। फिर समुद्र की सलाह से ही नल से पुल का निर्माण करवाया।

अब उसी पुल से होते हुए वे लंका में पहुंचे और रावण का बध किया। उस समय सीता से मिलने पर राम को बड़ी लज्जा आयी और उन्होंने भरी सभा में सीता के प्रति मर्मभेदी वचन कहे। साध्वी सीता इसे सहन न कर सकीं और तुरंत अग्नि में प्रवेश कर गयीं। तत्पश्चात् अग्नि के कहने से सीता निष्कलंक मान ली गयीं और महात्मा रामचन्द्र के इस कार्य से सभी देवता संतुष्ट हुए। राक्षस राज विभीषण को लंका का राजा बनाया गया। फिर राम ने देवताओं से वर पाकर सभी वानरों को जीवन दान दिया और सभी साथियों सहित पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या के लिये लौटे।

मार्ग में भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुंचकर उन्होंने हनुमान को भरत के पास भेजा। फिर पुष्पकारूढ़ होकर वे नन्दिग्राम को गये और जटाओं को कटाकर अपना राज्य प्राप्त किया। अब इस राम के राज्य में रहनेवाले सुखी संतुष्ट और व्याधि मुक्त रहेंगे। कोई अपने पुत्र का मृत्यु नहीं देखेगा और न कोई स्त्री विधवा होगी। सभी नगर धन धान्य सम्पन्न होगा और सभी सत्ययुग की भाँति प्रसन्न रहेंगे।

महायशस्वी राम सौ अश्वमेध यज्ञ करेंगे और ब्राह्मणों को अपरिमित धन देकर सौगुने राजवंशों की स्थापना करेंगे। फिर ग्यारह हजार वर्षों तक राज्य करने के अनन्तर वे अपने परमधाम को पधारेंगे।

वेदों के समान पवित्र इस रामचरित को जो पढ़ेगा वह सब पापों से मुक्त हो जायेगा। इसे ब्राह्मण पढ़े तो विद्वान हो, क्षत्रिय पढ़े तो पृथ्वी का राज्य प्राप्त करे और वैश्य को व्यापार में लाभ हो तथा शुद्र को प्रतिष्ठा प्राप्त हो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

दूसरा सर्ग

रामायण काव्य का उपक्रम। क्रौंचवध से संतप्त महर्षि वाल्मीकि के शोक का श्लोक रूप में प्रकट होना।

देवर्षि नारद के वचन सुनकर ऋषि वाल्मीकि ने अपने शिष्यों सहित उनका पूजन किया। वाल्मीकि से सम्मानित होने के पश्चात् नारद आकाश मार्ग से चले गये। इसके दो घड़ी बाद वाल्मीकि तमसा नदी के तट पर पहुंचे और वहां के सुन्दर तट को देखकर अपने शिष्यों से कहा, "यहां का जल वैसा ही साफ है जैसे सत्पुरुष का मन। मैं इस उत्तम तीर्थ में स्नान करना चाहता हूँ। यह सुनकर शिष्यों ने उन्हें वल्कल वस्त्र दिया जिसे लेकर वे वहाँ की शोभा देखते हुए विचरने लगे। उनके पास ही क्रौंच पक्षियों का एक जोड़ा भी विचर रहा था। भगवान् वाल्मीकि उन पक्षियों के जोड़े को देख ही रहे थे कि उसी समय वहाँ एक निषाद ने आकर उसमें से नर पक्षी को अपने वाणों से मार डाला। फिर क्या, पक्षी तड़पता हुआ पृथ्वी पर आ गिरा और उसकी भार्या करुणाजनक स्वरों में चीत्कार कर उठी।

धर्मात्मा ऋषि को इससे बड़ी दया आयी। उन्होंने क्रौंच पक्षी की ओर देखकर निषाद से कहा, निषाद! तुझे कभी भी शांति न मिले क्योंकि तूने क्रौंच के उस जोड़े की हत्या कर डाली है जो काम से मोहित हो रहा था।

ऐसा कहकर जब उन्होंने इस पर विचार किया, तब उनके मन में यह चिंता हुई कि अहो! इस पक्षी के शोक से पीड़ित होकर यह मैंने क्या कर

Mookerji Sharma (I.R.S) Jammu Collection

डाला।

यह सोचते हुए मुनिवर वाल्मीकि एक निश्चय पर पहुँच गये और अपने शिष्य से इस प्रकार बोले– तात! शोक से पीड़ित हुए मेरे मुख से जो वाक्य निकला है वह चार चरणों में आबद्ध है। इसके प्रत्येक चरण में बराबर–बराबर अक्षर हैं तथा इसे वीणा के लय पर गाया भी जा सकता है अतः मेरा यह वचन श्लोक रूप होना चाहिए या नहीं?

मुनि की बात सुनकर शिष्य भरद्वाज इसका समर्थन करते हुए बोले, हाँ, आपका यह वाक्य श्लोक रूप ही होना चाहिए।

मुनि को इस कथन से बड़ा संतोष हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने उत्तम तीर्थ में विधि पूर्वक स्नान किया और इसी पर विचार करते हुए आश्रम की ओर लौटे। आश्रम में पहुंचने पर भी उनका मन उस श्लोक की ओर ही लगा रहा। इसी समय उनसे मिलने के लिए स्वयं ब्रह्माजी उनके आश्रम पर आये।

उन्हें देखते ही महर्षि वाल्मीकि उठकर खड़े हो गये और उनकी स्तुति करते हुए उनसे कुशल समाचार पूछा। ब्रह्माजी उस समय परम उत्तम आसन पर विराजमान होकर वाल्मीकि को भी आसन ग्रहण करने की आज्ञा दी। यद्यपि वाल्मीकि जी लोक पितामह जी के सामने बैठ तो गये, तो भी उनका मन उस क्रौंच पक्षी वाली घटना की ओर ही लगा था। हठात् सोचते-सोचते उन्होंने उसका आर्तनाद सुनकर जो श्लोक कहा था उसे ब्रह्मा जी के सामने भी दुहराया। इसी समय उन्हें अपने दिए हुए श्राप का भी ध्यान आया और वे चिंता में डूब गये। ब्रह्मा जी ने सारी बातें समझाते हुए कहा, ब्रह्मन्! तुम्हारे मुख से निकला हुआ वह छन्दोबद्ध वाक्य श्लोक रूप ही होगा। तुम्हारे मुख से यह वाणी मेरे ही संकल्प से निकली है। मुनि श्रेष्ठ! अब तुमने जैसा नारद जी के मुख से सुना है उसी के अनुसार राम के चरित्र का चित्रण करो। उनसे सम्बंध रखनेवाले सभी गुप्त या प्रकट वृतान्त अज्ञात् होने पर भी तुम्हें ज्ञात हो जायेंगे। इसमें अंकित तुम्हारी कोई भी बात झूठी नहीं होगी और पृथ्वी पर जब तक नदियों और पर्वतों की सत्ता रहेगी तब तक इस राम कथा का प्रचार होता रहेगा साथ ही इस राम कथा का जब तक प्रचार होता रहेगा तब तक तुम इच्छानुसार ऊपर नीचे तथा मेरे लोकों में निवास करते रहोगे।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। इसके बाद उनके सभी शिष्य उनके इस श्लोक का बार-बार गान करने लगे और बोले गुरुदेव ने क्रौंच पक्षी के दुख से दुखी होकर जिस समान चार अक्षरों का गान किया था वह उनकी वाणी से उच्चारित होकर श्लोक (काव्य) बन गया।

इधर वाल्मीकि जी के शुद्ध मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं ऐसे ही श्लोकों में सम्पूर्ण राम कथा की रचना करूँ। यह सोचते ही भगवान वाल्मीकि ने हजारों श्लोकों से युक्त महाकाव्य की रचना की जो श्रीराम के उदार चरित्रों का प्रतिपादन करनेवाला है।

महर्षि वाल्मीकि के बनाये हुए इस महाकाव्य में तत्पुरुष आदि समासों, दीर्घ, गुण आदि संधियों और प्रकृति प्रत्यय के सम्बंध का यथा योग्य निर्वाह हुआ है। इसमें समता है माधुर्य है और प्रसाद गुण की अधिकता है। भावुक जनों! शास्त्रीय पद्धति के अनुकूल बने हुए इस रघुवर चरित्र को ध्यान देकर सुनो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में दूसरा सर्ग पूरा हुआ। (२)

तीसरा सर्ग

वाल्मीकि मुनि द्वारा रामायण काव्य में निबद्ध विषयों का संक्षेप से उल्लेख

नारद जी के मुख से सम्पूर्ण रामचरित्र को सुनकर महर्षि वाल्मीकि उसे भलीभाँति साक्षात्कार करने का प्रयत्न करने लगे। वे कुशों के आसन पर बैठ गये और श्रीराम- लक्ष्मण, सीता, राजा दशरथ आदि के सम्बंध में जितना चेष्टाएं हुईं उनका अपने योग बल से अच्छी तरह साक्षात्कार किया। उसकी सारी घटनाओं को उन्होंने हाथ में रखे हुए आँवले की तरह प्रत्यक्ष देखा। अब उनके सम्पूर्ण चरित्रों को उन्होंने महाकाव्य का रूप देने की चेष्टा की। जैसे समुद्र सब रत्नों की निधि है उसी प्रकार यह महाकाव्य गुण अलंकार आदि रत्नों का भण्डार है। यह अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष रूपी गुणों से युक्त तथा उनका विस्तारपूर्वक प्रतिपादन करनेवाला है।

इस काव्य में उन्होंने श्रीराम के जन्म, उनके पराक्रम तथा उनकी

Mookerji Sharma (I.A.S.) Jammu Collection

विभिन्न लीलाओं का वर्णन किया है। श्रीराम के मिथिला में धनुष तोड़े जाने और सीता तथा उर्मिला आदि के विवाह, श्रीराम-परशुराम संवाद, श्रीराम के राज्याभिषेक विघ्न, दशरथ के शोक विलाप आदि का उल्लेख भी इसमें किया गया है।

तत्पश्चात् श्रीराम आदि का गंगापार जाना, भरद्वाज मुनि का दर्शनकर उनकी आज्ञा से चित्रकूट जाना और वहां कुटिया बनाकर निवास करना, भरत का वहाँ आकर उनसे अयोध्या लौट चलने के लिये प्रार्थना करना, श्रीराम द्वारा पिता को जलान्जलि दान, भरत द्वारा अयोध्या के सिंहासन पर श्रीराम के पादुकाओं का अभिषेक एवं स्थापन, नन्दिग्राम में भरत का निवास, श्रीराम का दण्डकारण्य गमन विराध वध, शरभंगमुनि दर्शन, अगस्त्य मुनि के वैष्णव धनुष का ग्रहण, सूर्पणखा संवाद मारीच बध, सीता हरण पम्पा सरोवर पर हनुमान जी से भेंट, बाली का विनाश, सुग्रीव के द्वारा सीता की खोज करवाना, हनुमान का समुद्र लांघ कर लंका में प्रवेश करना और अशोक वाटिका में सीताजी के दर्शन करना, पहचान के लिये उन्हें श्रीराम की अंगूठी देना, हनुमानजी का अशोक वाटिका के वृक्षों को तोड़ना वायुनन्दन हनुमान का रावण की सभा में बंदी होकर जाना लंका दाह, लौटती बार समुद्र लांघना, सीता की दी हुई चूड़ामणि राम को सौंपना;श्रीराम का लंका यात्रा समय समुद्र से भेंट, नल का समुद्र में सेतु बांधना, उसी के द्वारा वानर सेना का समुद्र पार जाना, रात को चारों ओर से लंका में घेरा डालना, विभीषण का राम से मैत्री होना, विभीषण का श्रीराम को रावण के बध का उपाय बताना, रावण का विनाश, सीता की प्राप्ति, पुष्पक विमान का अवलोकन कर उसके द्वारा राम का अयोध्या के लिए प्रस्थान, श्रीराम का भरद्वाज मुनि से मिलना, हनुमान को भरत के पास दूत बनाकर भेजना तथा अयोध्या में आकर भरत से मिलना, श्रीराम का राज्याभिषेक उत्सव, राम का सारी वानर सेना को विदा करना। प्रजा को प्रसन्न रखना और उनकी प्रसन्नता के लिये सीता को त्याग देना इत्यादि वृतान्तों को एवं इस पृथ्वी पर जितना भी राम का भविष्य चरित्र था, उसको भी ऋषि वाल्मीकि ने अपने

उत्कृष्ट महाकाव्य में अंकित किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ। (३)

चौथा सर्ग

ऋषि वाल्मीकि का चौबीस हजार श्लोकों से युक्त रामायण काव्य का निर्माण, रामायण गान करके लव और कुश का प्रशंसित होना

श्री रामचन्द्रजी वन से लौटने पर अयोध्या का शासन अपने हाथों में ले लिया तत्पश्चात् वाल्मीकि मुनि ने उनके सम्पूर्ण चरित्र के आधार पर विचित्र पद और अर्थ से युक्त रामायण काव्य का निर्माण किया। इसमें महर्षि ने चौबीस हजार श्लोक,पाँच सौ सर्ग तथा उत्तर सहित सात कांड प्रतिपादित किया है। इसका भविष्य तथा उत्तर काण्ड सहित सम्पूर्ण रामायण पूरा करने के बाद महर्षि ने सोचा कि ऐसा कौन शक्तिशाली पुरुष होगा जो इसे पढ़कर जन समुदाय में सुना सके। अब उनके ऐसा सोचते ही मुनि वेष धारी लवकुश ने उन्हें प्रणाम किया। ये दोनों ही धर्म के ज्ञाता थे और इनका स्वर भी मधुर था। वे दोनों ही मुनि के आश्रम में रहते थे। अतएव उन्हें सब तरह से योग्य समझकर भगवान् वाल्मीकि ने उन्हें सम्पूर्ण रामायण जिसका दूसरा नाम दशानन बध था, का अध्ययन कराया यह सभी रसों से पूर्ण था। अतः दोनों भाई इस महाकाव्य को पढ़कर उसका गान करने लगे।

इन दोनों भाइयों के सुन्दर रूप और शुभ लक्षण इनकी सहज सम्पत्ति थी। ये दोनों ही युगल श्रीराम प्रतीत होते थे। उन्होंने सम्पूर्ण महाकाव्य को जिह्वाग्र कर लिया। एक दिन मुनि के आश्रम पर महर्षियों की मण्डली एकत्र हुई। उन्होंने उस रामायण का उनके समीप बैठकर गान किया।जिसे सुनकर सभी मुनियों के नेत्र आँसुओं से भर गये और सभी उन्हें साधुवाद देने लगे।

फिर वे उस रामायण कथा के गायक लव और कुश की प्रशंसा करते हुए बोले, यद्यपि इस काव्य में वर्णित घटनाएं बहुत दिन पहले हो चुकी हैं किंतु इन बालकों के राम युक्त गान से ये इस तरह प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ने लगी हैं

Mookesh Sharma (IPS), Jammu Collection

जैसे अभी-अभी आँखों के सामने घटित हो रही है। तत्पश्चात् उस गान से संतुष्ट हुए किसी मुनि ने उठकर उन्हें एक कलश प्रदान किया। किसी ने उन्हें वल्कल वस्त्र दिया तो किसी ने यज्ञोपवीत और काला मृग चर्म दिया। इस प्रकार अनेक मुनियों ने उन्हें अनेक प्रकार के भेंट दिये।

इसी प्रकार मुनियों ने उन्हें नाना प्रकार के वर दिये। राजकुमारों!महर्षि वाल्मीकि द्वारा वर्णित यह काव्य आनेवाले कवियों के लिये आधारशिला होगी। साथही यह आयु तथा पुष्टि प्रदान करनेवाला होगा। हठात् एक समय लव और कुश अयोध्या की गलियों और सड़कों पर रामायण के श्लोकों का गान करते हुए विचर रहे थे। इसी समय उन पर श्रीराम की दृष्टि पड़ गयी। उन्होंने उन दोनों भाइयों को अपने घर बुलाकर उनका सम्मान किया तत्पश्चात् वे एक स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान हुए और अपने मंत्री और भाइयों को अपने पास ही बैठाया। फिर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न से बोले, ये दोनों भाई पदों से युक्त मधुर काव्य बड़े सुन्दर ढंग से सुनाते हैं तुम सब लोग इसे सुनो। इतना कहकर उन्होंने दोनों भाइयों को गाने की आज्ञा दी।

आज्ञा पाकर दोनों भाई मधुर स्वर और राग अलापते हुए रामायण का गान करने लगे। इसे सुनकर सभी की आत्मा में आनन्द की तरंगे उठने लगीं।

उस समय श्रीराम ने अपने भाइयों से कहा, ये दोनों कुमार मुनि होकर भी राजोचित लक्षणों से सम्पन्न हैं। इनका यह काव्य सुन्दर रीति आदि से युक्त होने के कारण बहुत प्रभावशाली है अतः तुम सब लोग इसे ध्यान देकर सुनो। तदन्तर दोनों भाई मार्ग विधान रीति से इसका गान करने लगे और सभा के लोग उस गान को सुनने में तन्मय हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ। (४)

पाँचवाँ सर्ग

राजा दशरथ द्वारा सुरक्षित अयोध्यापुरी का वर्णन

यह पृथ्वी पूर्वकाल में जिस वंश के विजयशाली नरेशों के अधिकार में रही उन्हीं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओं की कुल परम्परा में इस महान

ऐतिहासिक काव्य की अवतारणा हुई। हम दोनों आदि से अंत तक उसे पूर्ण रूप से गान करेंगे। यह पुरुषार्थ दायिनी है अतः आप सब दोष दृष्टि का परित्याग कर इसका श्रवण करें।

कोशल नामक जनपद जो सरयू किनारे बसा है, उसी में अयोध्या नाम की एक नगरी है, जिसे स्वयं मनु महाराज ने बसाया था। तत्पश्चात् जैसे इन्द्र ने अमरावती बसायी उसी प्रकार राजा दशरथ ने अयोध्यापुरी को पहले की अपेक्षा विशेष रूप से बसाया। यह पुरी बड़े-बड़े फाटकों से सुशोभित थी और यहाँ पृथक-पृथक बाजारें थीं। यहाँ हर प्रकार के अस्त्र-शस्त्र संचित थे तथा यह पुरी सभी कलाओं के शिल्पिओं का निवास स्थान था। यहां ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ थीं जिन पर सदैव ध्वज फहराया करते थे।

इस पुरी में अनेक नाटक मण्डलियां थीं जिनमें केवल स्त्रियाँ ही नृत्य और अभिनय किया करती थीं। इसके चारों ओर गहरी खाईं खुदी थी। जिसे लांघना बहुत कठिन था इसलिये दूसरों के लिये यह दुर्गम और अजेय थी। कर देनेवाले सामन्त और नरेश इसे घेरे रहते थे। वहाँ के महलों का निर्माण विशेष प्रकार के रत्नों से हुआ था। वे गगनचुम्बी प्रासाद पर्वतों के समान दिखलायी पड़ते थे। वह इन्द्र की अमरावती के समान जान पड़ती थी। पुरवासियों के घरों से उसकी आबादी इतनी घनी हो गयी थी कि कहीं थोड़ा भी अवकाश नहीं दिखलायी पड़ता था। वहाँ का जल इतना मीठा और स्वादिष्ट था जैसे ईख का रस। पृथ्वी की वह सर्वोत्तम नगरी सदैव, मृदंग, वीणा आदि वाद्यों से गूँजती रहती थी। बहुत से श्रेष्ठ पुरुष उस पुरी में निवास करते थे। जो अपने समूह से बिछुड़कर असहाय हो गया हो अथवा जो युद्ध छोड़कर भागे जा रहे हों, ऐसे पुरुषों पर लोग बाणों का प्रहार नहीं करते, जिनके सधे सधाये हाथ शीघ्रतापूर्वक लक्ष्य वेध करने में समर्थ हैं तथा जो वन में गरजते हुए मतवाले सिंहों, व्याघ्रों, सुअरों को तीखे अस्त्रों एवं भुजाओं से मारने का सामर्थ रखते हैं ऐसे सहस्त्रों महारथी वीरों से अयोध्या नगरी भरी पुरी थी। उन सबको महाराज दशरथ ने बसाया था। साथ ही सम्पूर्ण वेदों के पारंगत विद्वान श्रेष्ठ ब्राह्मण उस पुरी को सदा घेरे रहते थे। वे सहस्रों का दान करनेवाले और सत्य में तत्पर रहनेवाले थे। इन महात्माओं और

ऋषियों की रक्षा राजा दशरथ किया करते थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठा सर्ग

राजा दशरथ के राज्यकाल में वहाँ के नागरिकों का वर्णन

ऐसे अयोध्यापुरी में राजा दशरथ प्रजावर्ग का पालन करते और प्रजा भी उनसे बड़ी प्रेम करती। वे इक्ष्वाकुवंश के वीर थे साथ ही धर्म पारायण और जितेन्द्रिय भी थे। उस समय उस उत्तम नगर में निवास करनेवाले सभी मनुष्य प्रसन्न धर्मात्मा, निर्लोभ, सत्यवादी और अपने-अपने धन से संतुष्ट रहनेवाले थे। उसमें कोई ऐसा कुटुम्बी न था जिसके पास उत्कृष्ट वस्तुओं का संग्रह अधिक मात्रा में न हो और जिसके अर्थ, धर्म और काम मय पुषार्थ सिद्धि न हो। उस समय अयोध्या में कोई कामी, क्रूर, नास्तिक, कृपण, मूर्ख देखने को भी नहीं मिलता था। वहां किसी के पास भोग सामिग्री की कमी नहीं थी। उसमें सभी स्नानादि करके साफ सुथरे रहनेवाले थे। उस समय अयोध्या में कोई भी ऐसा पुरुष न था जो अपवित्र भोजन करनेवाला या दान न देनेवाला हो। ऐसा भी कोई न था जो अग्नि होम या यज्ञ न करनेवाला हो। क्षुद्र, चोर, सदाचार शून्य अथवा वर्ण संकरों का उस राज्य में सर्वथा अभाव था। सब अपने कर्मों में लगे रहनेवाले थे। श्रीहीन, रूप रहित, तथा राजभक्ति से शून्य व्यक्ति देखने को नहीं मिलते थे। उसमें निवास करनेवाले सभी मनुष्य दीर्घायु तथा सत्य का आश्रय लेनेवाले थे। क्षत्रिय ब्राह्मणों कामुँह देखते, वैश्य क्षत्रियों की आज्ञा पालन करते और शूद्र उपरोक्त तीनों की सेवा में लगे रहते थे। जैसे पर्वतों की गुफा सिंहों के समूह से परिपूर्ण रहता है वैसे ही वह पुरी अस्त्र शस्त्रों के ज्ञाता के समूहों से भरी-पूरी थी। उत्तम घोड़े और श्रेष्ठ गजों से वह नगरी परिपूर्ण थी। उस तीन योजन के विस्तार वाली अयोध्या में दो योजन भूमि तो ऐसी थी जहाँ पहुँचकर किसी के लिये युद्ध करना असम्भव था। जैसे चन्द्रमा नक्षत्र लोक के शासक थे वैसे महाराज दशरथ अयोध्यापुरी के शासक थे। उन्होंने अपने शत्रुओं को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था और पूरे राज्य में न्याय की स्थापना कर दी थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

राज्य मंत्रियों के गुण और नीति का वर्णन

महामना दशरथ के आठ मंत्री थे जो सभी मंत्री जनोचित गुणों से सम्पन्न थे। वे मंत्र तत्व के ज्ञाता और सदैव प्रजा के हित में लगे रहनेवाले थे। उनके नाम थे धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और आठवें सुमंत्र। इनके पुरोहित ऋषियों में श्रेष्ठ वशिष्ठ और वामदेव थे तथा सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मारकण्डेयऔर कात्यायन भी महाराज के मंत्रिपरिषद में थे। वे सभी विद्वान और कभी झूठ न बोलनेवाले थे। वे सभी व्यवहार कुशल थे और गुप्तचरों के द्वारा शत्रु पक्ष की सभी बातों की जानकारी रखते थे। वे राज्य के भीतर रहनेवाले सभी सत्पुरूषों की रक्षा करते और अवसर पड़ने पर अपने पुत्र को भी दण्ड देने से न हिचकते। वे उत्तम व्रत का पालन करनेवाले राजा के परम हितैषी थे। इसीलिए राजा के अनुग्रह के पात्र थे। विदेशों में भी उनकी अच्छी ख्याति थी। सारे राजकीय मंत्रणाओं को वे गुप्त रखते और सदैव अच्छी लगनेवाली वाणी बोलते। राजा दशरथ भी इन मंत्रियों के साथ इस भू-मण्डल का शासन करते और धर्म पूर्वक प्रजा पालन में लीन रहते। जिस प्रकार सूर्य अपने तेजस्वी किरणों सहित उदित होकर जगत को प्रकाशित करता है उसी प्रकार राजा दशरथ भी अपने ऐसे मंत्रियों के साथ घिरे रहकर स्वयं भी तेजस्वी नरेश प्रतीत होते थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

राजा दशरथ का पुत्र के लिये अश्वमेध यज्ञ

सारे सुख होते हुए भी राजा दशरथ संतान न होने के कारण सदैव चिंतित रहा करते। सहसा एक दिन उनके मनमें यह विचार आया कि मैं पुत्र प्राप्ति हेतु क्यों न अश्वमेध यज्ञ करूँ। यह सोचते ही उन्होंने सुमंत्र के द्वारा अपने पास समस्त गुरुजन और पुरोहितों को बुला भेजा। उनके आने पर

Mookerji sharma (I.A.S) Jammu collection

राजा ने उनकी पूजा करते हुए कहा, महर्षियों! मेरे मन में पुत्र प्राप्ति के लिए सदैव चिंता बनी रहती है अतएव मैं उसके लिये अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ।

राजा के इस कथन को सुनकर सभी इसकी प्रशंसा करते हुए बोले, महाराज! यज्ञ सामग्री एकत्र कर भू-मण्डल भ्रमण हेतु घोड़ा छोड़ा जाय। इससे आपको पुत्र अवश्य प्राप्त होगा। ब्राह्मणों के इस बात को सुनकर राजा बहुत प्रसन्न होकर अपने मंत्रियों से बोले, गुरुजनों के आदेशानुसार यज्ञ की सामग्री एकत्र की जाये और वीरों की देख-रेख में अश्व को छोड़ दिया जाये। सरयू के तट पर यज्ञशाला का निर्माण हो। मेरा यह यज्ञ निर्विघ्न होना चाहिए। कारण, जिस यज्ञ में किसी प्रकार की त्रुटि रहती है तो वह ब्रह्म राक्षस द्वारा यज्ञ कर्ता को नष्ट करने में सहायक होती है। इसलिये मेरा यह यज्ञ जिस प्रकार विधिपूर्वक सम्पन्न हो सके वैसा उपाय किया जाये। राजा की बात सुनकर सभी मंत्री बोल उठे बहुत अच्छा ऐसा ही होगा। फिर वहाँ उपस्थित हुए सारे ब्राह्मण भी राजा की आज्ञा पाकर जैसे आये थे वैसे चले गये। तत्पश्चात् राजा मंत्रियों को इस यज्ञ को विधिपूर्वक पूर्ण करने का आदेश देकर अपने महल में चले गये। वहां जाकर राजा अपनी पत्नियों से कहा, मैं पुत्र प्राप्ति के लिये यज्ञ करूँगा अतएव तुम सब यज्ञ के नियमों को भली भाँति जान लो। राजा के इस मनोहर वचन को सुनकर सभी रानियों का मुख कमल की भांति खिल उठा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

मंत्री सुमंत्र की राजा को ऋष्य शृंग मुनि को बुलाने की सलाह देना

अश्वमेध यज्ञ की बात सुनकर सुमंत्र ने राजा से एकान्त में कहा, महाराज! प्राचीन काल में सनत्कुमार ने ऋषियों को एक कथा सुनायी थी वह आपको पुत्र प्राप्ति से सम्बंध रखनेवाली है। महर्षि काश्यप के एक पुत्र है जिनका नाम विभान्डक है। उनके भी ऋष्यशृंग नामक एक पुत्र होगा जो

सदा वन में रहेंगे और वहीं लालन-पालन पाकर बड़े होंगे। सदा पिता के साथ ही रहने से वे और किसी को नहीं पहचानेंगे और पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करेंगे।

उसी समय अंग देश में रोमपाद नामक एक बलवान राजा होंगे किंतु उनके द्वारा धर्म का उल्लंघन होने से उनके देश में अनावृष्टि होगी और सारी प्रजा भयभीत रहने लगेगी। इससे मुक्ति पाने हेतु राजा रोमपादविद्वानों से उपाय पूछेंगे। ऐसा पूछने पर वे सारे विद्वान सलाह देंगे– महाराज! आप अपने राज्य में विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रृंग को आदर सहित ले आइये और अपनी शान्ता नामक कन्या का उनके साथ विवाह कर दीजिए। विद्वानों की इस सलाह से राजा बड़ी सोच में पडेंगे कि आखिर उन्हें किस उपाय से यहां लाया जाये। अब वे इसके लिये पुरोहित एवं मंत्रियों को भेजना चाहेंगे। किंतु पुरोहित गण ऋषि के भय के कारण जाने से इनकार कर देंगे और सोच विचार कर योग्य उपाय बतायेंगे और कहेंगे कि इस उपाय द्वारा हम ऋषि को यहां ला सकेंगे और इसमें कोई दोष भी न होगा। इस प्रकार वेश्याओं की सहायता से राजा रोमपाद ऋष्य श्रृंग को अपने यहां बुलायेंगे और उनके आते ही सारे राज्य में वर्षा होगी और राजा अपनी पुत्री शान्ता उन्हें दान में दे देंगे। वे ही आपके लिये पुत्रों को सुलभ कराने वाले यज्ञ कर्म का सम्पादन कर सकेंगे। यह बात मैंने आपको सनत्कुमार जी द्वारा कही हुई बतायी है। इस कथा को सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और सुमंत्र से मुनि कुमार को जिस उपाय से बुलाया गया उसे पूछने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

अंग देश में ऋष्य श्रृंग के आने तथा शान्ता से विवाह का प्रसंग

सुमन्त्र ने कहा– राजन! जिस उपाय से राजा रोमपाद ने ऋष्य श्रृंग को अपने राज्य में बुलाया उसे मैं बता रहा हूँ। आप मंत्रियों सहित सुनें। राजा रोमपाद से उनके मंत्रीगण और पुरोहितों ने कहा– हे राजन! हमने एक उपाय सोचा है जिसें काम में लेने से आपको असफल नहीं होना पड़ेगा। ऋष्य श्रृंग

Mookerji Sharma (CFS) Jammu Collection

मुनि वन में केवल तपस्या और स्वाध्याय में ही लगे रहते हैं। वे स्त्री सुख से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। उन्हें विषयों का प्रलोभन देकर अपने नगर में लाया जा सकता है। इसके लिये मनोहर रूपवाली वेश्याएं वहां जायें और हर तरह से उन्हें लुभाकर यहां ले आयें।

मंत्रियों की इस सलाह पर राजा ने उन्हें वैसे ही करने की आज्ञा दी। राजा के इस आदेश को पाकर मंत्रियों ने नगर की मुख्य-मुख्य वेश्याओं को वहां भेजा जो आश्रम से थोड़ी दूर पर ठहर कर मुनि के दर्शन के लिये प्रयत्न करने लगीं। ऋष्य शृंग बहुत ही धीर स्वभाव के थे और सदा अपने पिता के पास ही रहते थे। उन्होंने जन्म से ही किसी दूसरे प्राणी के दर्शन नहीं किये थे। हठात् एक दिन घूमते हुए वे उस जगह पहुँचे जहाँ वेश्याएँ ठहरी थीं। जब ऋषि कुमार के आगमन से सभी वेश्याएं उनके पास जाकर पूछने लगीं, आप कौन हैं और यहां अकेले क्यों विचर रहे हैं।

ऋष्य शृंग ने पहले कभी स्त्री नहीं देख था। इसलिए उन्हें देखकर उनके मन में स्नेह पैदा हो गया और वे अपना परिचय देते हुए बोले, मैं विभाण्डक का पुत्र ऋष्य शृंग हूँ। मेरा तप और कर्म सारे भूमण्डल में प्रसिद्ध है। अच्छा हो आप लोग मेरे साथ मेरे आश्रम पर चलें। ऋषि कुमार की बात सुनकर सभी सुन्दरियां उनका आश्रम देखने के लिए वहाँ गयीं। वहाँ ऋषि कुमार की पूजा प्राप्त कर वे सब वहाँ से चलने को तैयार हुईं और उनसे बोली, ब्रह्मन। अब हमारे पास भी जो उत्तम-उत्तम फल हैं उन्हें शीघ्र खा लें। इतना कहकर उन्होंने ऋष्य शृंग का आलिंगन किया और उन्हें खाने को उत्तम पदार्थ और मिठाइयाँ दीं। उनका रसास्वादन करके तेजस्वी ऋषि ने उन्हें भी फल समझा। तत्पश्चात् उनके हटते ही ऋष्य शृंग व्याकुल होकर इधर-उधर टहलने लगे। तदन्तर दूसरे दिन वे फिर उसी समय पर जा पहुँचे जहां उन वेश्याओं को देखा था। ऋष्य शृंग मुनि को वहाँ आया देख वेश्याएँ प्रफुल्लित हो उठीं उनसे बोलीं, सौम्य! आज आप हमारे आश्रम पर चलें। वहां आपको नाना प्रकार के फल-फूल मिलेंगे। ऋष्य शृंग यह सुनकर तुरंत उनके साथ चलने को तैयार हो गये और वे स्त्रियां उन्हें अंग देश ले गयीं।

अंग देश में उनके पैर रखते ही इन्द्र ने प्रसन्न होकर पानी बरसाना शुरू कर दिया। इस वर्षा से राजा ने समझ लिया कि तपस्वी ब्राह्मण कुमार आ गये

हैं। फिर राजा ने उन्हें साष्टांग प्रणाम करते हुए निवेदन किया भगवन्! आप और आपके पिताजी का कृपा प्रसाद मुझे प्राप्त हो। ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि उनके यहाँ कपटपूर्वक लाने का रहस्य जानने पर भी वे लोग उन पर क्रोध न करें। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया। इस प्रकार राजा से पूजित हो वे अपनी धर्मपत्नी शान्ता के साथ वहीं सुख पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

महाराजा दशरथ का अंगराज के यहां से ऋष्य शृंग को लाना

सुमंत्र ने फिर कहा– अब सनत्कुमार जी ने ऋषियों को जो सुनाया था वह हित की बात आप भी सुनिये। उन्होंने कहा था– इक्ष्वाकुवंश में दशरथ नामक राजा होंगे जिनकी मित्रता अंगराज से होगी। पुत्र यज्ञ के समय राजा दशरथ उनके पास जाकर कहेंगे धर्मात्मिन्! आप ऋष्य शृंग को मेरा पुत्र यज्ञ कराने की आज्ञा दें। इससे मुझे पुत्र प्राप्त होकर मेरे वंश की रक्षा होगी। राजा रोमपाद उनके साथ ऋष्य शृंग को भेज देंगे। राजा दशरथ उन्हें पाकर यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे। इससे उनके चार पुत्र होंगे जो उनके वंश की मर्यादा बढ़ानेवाले होंगे। यह कथा सत्युग में सनत्कुमार जी ने ऋषियों से कही थी इसलिए महाराज! आप स्वयं जाकर उन्हें यहां ले आइये।

सुमन्त्र की बात सुनकर राजा ने वशिष्ठ जी की आज्ञा लेकर सुमंत्र और मंत्रियों सहित अंगदेश के लिए प्रस्थान किया। वहां राजा रोमपाद ने उनका विशेष सम्मान किया। इस सम्मान को पाकर वे वहां सात-आठ दिनों तक रहे। तत्पश्चात् वे अंग राज से बोले प्रजापालक नरेश! तुम्हारी पुत्री शान्ता अपने पति के साथ मेरे नगर में पदार्पण करें क्योंकि वहां एक अति आवश्यक कार्य आ गया है। रोमपाद ने इसके लिये अपनी स्वीकृति दे दी। अब ऋष्य शृंग अपनी पत्नी के साथ राजा दशरथ के साथ अयोध्या को चल पड़े। राजा ने फिर अपने दूतों से सारे नगर को सुसज्जित करने का संदेश भेजा। राजा के आगमन की बात सुनकर समस्त पुरवासी बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने नगर

को खूब सजाया। तदन्तर राजा ने ऋष्य शृंग के साथ नगर में बड़े धूमधाम से प्रवेश किया। वहां द्विज कुमार का दर्शन कर सभी नगर निवासी बड़े प्रसन्न हुए और उनका खूब आदर सत्कार किया। तत्पश्चात् ऋषि को अन्तःपुर में लाया गया। वहाँ शान्ता को अपने पति के साथ उपस्थित देखकर रानियाँ आनन्दमग्न हो गयीं। वहाँ ऋषि की पत्नी अनेक प्रकार का आदर सत्कार पाकर आनन्दपूर्वक महलों में रहने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में
ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११)

बारहवाँ सर्ग

राजा का यज्ञ कराने का ऋषि से प्रस्ताव

बहुत समय बीत जाने पर राजा ने एक शुभ समय में यज्ञ करने का विचार किया और इसके लिये ऋषि से प्रार्थना की। मुनि ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करते हुए राजा से कहा, राजन्, यज्ञ की सामग्री एकत्र करें और भ्रमण के लिए घोड़ा को छोड़ दिया जाये। यज्ञ भूमिका निर्माण सरयू के तट पर किया जाये। तब राजा ने सुमंत्र के द्वारा सभी वेदपाठी ब्राह्मणों को बुलवा लिया। उनके आने पर राजा ने कहा,महर्षियों ! मैं पुत्र प्राप्ति हेतु अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहता हूँ। उनकी यह बात सुनकर सभी साधु-साधु कहकर इसकी सराहना करने लगे।

तदन्तर ऋष्य शृंग अपनी बात दुहराते हुए राजा से फिर कहा, तुम इस यज्ञ द्वारा चार पराक्रमी पुत्र पैदा करोगे। यह सुनकर राजा ने हर्षित होकर मंत्रियों से कहा तुम लोग शीघ्र मेरे यज्ञ की सामग्री जुटाओ और वीरों की संरक्षण में यज्ञ का अश्व छोड़ो। इसके साथ ही सरयू के उत्तर तट पर यज्ञ भूमि का निर्माण हो। इसमें शास्त्रोक्त विधि से सारा अनुष्ठान हो जिसमें विघ्नों का निवारण हो सके। कारण इस श्रेष्ठ यज्ञ में यदि बाधा न उत्पन्न हो तो सभी राजा इसको कर बैठते। अतः वही किया जाये जिससे मेरा यज्ञ विधिपूर्वक सम्पूर्ण हो।

सभी मंत्रियों ने बहुत अच्छा कहकर राजा के इस कथन का आदर किया और उनकी आज्ञा अनुसार सारी व्यवस्था कर दी। तत्पश्चात् उनमें

आये हुए ब्राह्मणों ने दशरथकी प्रशंसा की और राजा की आज्ञा पाकर जैसे आये थे वैसे चले गये। उनके जाने के बाद राजा भी अपने महल में गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२)

तेरहवाँ सर्ग

राजा का वशिष्ठ जी से यज्ञ की तैयारी का अनुरोध तथा पत्नी सहित यज्ञ की दीक्षा लेना

एक वर्ष पूरा होने पर राजा दशरथ यज्ञ की दीक्षा लेने हेतु वशिष्ठ जो के पास गये और बोले अब शास्त्रोक्त विधि से मेरा यज्ञ पूर्ण करायें जिससे इसमें कोई विघ्न न आये। वशिष्ठ जी ने कहा, नरेश्वर! मैं वही करूँगा जिसके लिये आप ने प्रार्थना की है। इसके बाद उन्होंने राज्य के कारीगरों को बुलाकर यज्ञ का आवश्यक प्रबंध करने की आज्ञा दी। इसके बाद ब्राह्मण और राजाओं के लिये अनेक उपकरणों से युक्त बहुत से महल बनवाये तथा उसमें भोजन इत्यादि के लिये अच्छी व्यवस्था करवा दी। उन्होंने यह आदेश भी दिया कि जो शिल्पी इस काम में लगे हों उन्हें विशेष रूप से सम्मानित किया जाये और सभी वर्ण के लोगों का ख्याल रखा जाये। तब सारे कर्मचारी मिलकर वशिष्ठ जी से बोले, आपने जैसी आज्ञा दी है उसी के अनुसार व्यवस्था की जायेगी। उसमें कोई कमी न आने देंगे। इसके बाद उन्होंने सुमन्त्र को बुलाकर आज्ञा दी– इस पृथ्वी पर जो धार्मिक राजा, ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र हो उन सबको इसमें आमंत्रित करो। मिथिला नरेश, काशी के राजा आदि जिनके साथ पुराना सम्बन्ध हो उन्हें स्वयं जाकर ले आओ ऐसी मेरी आज्ञा है। इसके अलावा दक्षिण भारत के सभी नरेशों को भी निमन्त्रण भेजा जाये।

वशिष्ठजी की ऐसी आज्ञा पाकर सुमन्त्र ने तुरंत अच्छे पुरुषों को राजा के बुलाहट के लिए जाने की आज्ञा दी तथा खास-खास राजाओं को बुलाने के लिए स्वयं गये। तत्पश्चात् यज्ञ कर्म की व्यवस्था के लिये जो सेवक नियुक्त थे उन लोगों ने यज्ञ सम्बंधी जो कार्य हुए थे उसकी सूचना महर्षि वशिष्ठ को दे दी तथा इसके कुछ दिनों बाद राजा गण अनेक रत्नों की भेंट, लेकर अयोध्या

में आये। इसे देखकर महर्षि वशिष्ठ प्रसन्न होकर राजा से बोले, नृपश्रेष्ठ! मैंने जिस योग्य का राजा देखा है वैसा ही उनका आदर सत्कार किया है। मेरे कार्यकर्ताओं ने यज्ञ की पूरी तैयारी भी कर दी है अब तुम भी यज्ञ करने के लिये यज्ञ मण्डप के समीप चलो। मुनि वशिष्ठ और ऋष्य श्रृंग की आज्ञा से शुभ दिन देखकर राजा दशरथ यज्ञ के लिये राजभवन से निकले। तत्पश्चात् वशिष्ठ आदि ने ऋष्य श्रृंग को आगे कर शास्त्रोक्त विधि से यज्ञ कर्म आरम्भ किया और पत्नियों सहित राजा ने यज्ञ की दीक्षा ली।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१३)

चौदहवाँ सर्ग

महाराज दशरथ द्वारा यज्ञ का सांगोपांग अनुष्ठान

एक वर्ष पूरा होने पर यज्ञ का घोड़ा भू-मण्डल भ्रमण कर वापस लौटा तथा ऋष्य श्रृंग की देखभाल में राजा का यज्ञ आरम्भ हुआ। यज्ञ के सभी ब्राह्मण विद्वान थे। अतएव वे सारे कर्म उचित रीति से सम्पादन करते रहे। राजा दशरथ ने इन्द्र का भाग सोम लता के रस सहित दिया और विधि पूर्वक सारा कर्म किया। प्रातः काल का कर्म समाप्त होने के बाद मध्याह्न को सम्पादित होनेवाले कार्यों की तैयारियाँ होने लगी। तत्पश्चात् उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने शास्त्र से देखभाल कर राजा दशरथ के द्वारा तीसरा हवन विधि पूर्वक करवाया। शुद्ध मंत्रों के द्वारा सुरेन्द्र आदि देवताओं का आवाहन कर उनका जो भाग था उसे विधिपूर्वक दिया गया। यज्ञ में किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं होने दी गयी। यज्ञ के समय कोई भूखा व दुखी नहीं दिखायी पड़ा। कारण उस समय प्रत्येक वर्ण के लोगों को सम्मानपूर्वक भोजन दिया जाता था। वह भोजन इतना स्वादिष्ट होता था कि अतिथि रात दिन भोजन ही करते रहते। भोजन करने के बाद सभी लोग यही कहते सुनायी पड़ते कि हम लोग खूब तृप्त हुए। आप का कल्याण हो। इस यज्ञ में नियुक्त हुए कर्मचारी ब्राह्मण प्रतिदिन शास्त्र के अनुसार सब कार्यों का सम्पादन करते थे। उस यज्ञ में कोई भी ऐसा सदस्य न था जो व्याकरण आदि का अच्छा ज्ञाता न हो तथा ऐसा कोई द्विज भी न था जो वाद-विवाद में कुशल न हो। इस यज्ञ में

अनेक प्रकार के खम्भे गड़े थे जिनमें बेल वृक्ष खैर की लकड़ी देवदास पलास लगी हुई थी। यज्ञ शाला की शोभा बढ़ाने के लिये ये खम्भे स्वर्ण से गढ़े गये थे। इन खम्भों की संख्या इक्कीस इक्कीस थी। इन्हें इक्कीस कपड़ों से सजाया गया था। कुशल कारीगरों के द्वारा बनाये गये ये खम्भे विधिपूर्वक स्थापित किये गये थे। जैसे आकाश में सप्तर्षियों की शोभा होती है वैसे ये खम्भे सुशोभित थे। सूत्र ग्रन्थों के अनुसार ठीक नाप से यज्ञ की ईंटें तैयार की गयी थीं। उनके द्वारा कुशल ब्राह्मणों ने अग्नि का चयन किया था। उस अग्नि की आकृति दोनों पंख और पूंछ फैलाकर नीचे देखते हुए गरुड़ की-सी प्रतीत होती थी। उन खम्भों में शास्त्र विहित पशु सर्प और पक्षी विभिन्न देवताओं के उद्देश्य से बाँधे गये थे। उस समय उनमें तीन सौ पशु बंधे हुए थे तथा राजा का वह उत्तम अश्व रत्न भी वहीं बांध दिया गया था। रानी कौशल्या ने वहाँ सब ओर से उसका संस्कार कर बड़ी प्रसन्नता से तीन तलवारों से उसका स्पर्श किया। तत्पश्चात् वे सुस्थित चित्त से धर्मपालन की इच्छा रखकर अश्व के निकट एक रात निवास किया। इसके बाद पुरोहितों ने विधि पूर्वक अश्व कन्द के गूदे को निकाल कर शास्त्रोक्त रीति से उसे पकाया और फिर उसकी आहुति दी गयी। अपने पाप को दूर करने के लिये राजा ने विधिपूर्वक उसके धुएं की गंध को सूंघा। कल्प सूत्र और ब्राह्मण ग्रन्थों के द्वारा अश्वमेध के तीन दिन बताये गये हैं। यज्ञ कर्ता ब्राह्मणों ने प्रथम दिवस अग्निष्टोम नाम का यज्ञ किया तथा दूसरे और तीसरे दिन उक्थ्य तथा अतिरात्र यज्ञ कराये। इसके अतिरिक्त और भी अनेक यज्ञ विधिपूर्वक कराये गये।

अपने कुल की वृद्धि चाहनेवाले राजा दशरथ ने यज्ञ पूर्ण होते ही होता को दक्षिणा रूप में अयोध्या के पूर्व दिशा का सारा भाग सौंप दिया, अध्वर्यु को पश्चिम दिशा तथा ब्रह्मा को दक्षिण दिशा का राज्य दे दिया। इसी तरह उद्गाता को उत्तर दिशा की सारी भूमि दे दी गयी। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ समाप्त करके अपने कुल की वृद्धि करनेवाले राजा दशरथ ने पुरोहितों को सारी पृथ्वी दान कर दी तदन्तर सभी पुरोहितों ने राजा दशरथ से कहा महाराज! आप ही इस पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ हैं अतः इस भूमि से हमारा कोई प्रयोजन नहीं। आप केवल हमें इसका मूल्य दे दें। नृपश्रेष्ठ! मणि रत्न गौ अथवा जो भी वस्तु यहाँ हो वही हमें दे दीजिये। ब्राह्मणों के ऐसा

Mookerji Sharma (MS) Jammu Collection

कहने पर राजा ने उन्हें दस लाखगौएं, दस करोड़ स्वर्ण मुद्रा तथा उसकी चौगुनी रजत मुद्रा अर्पित की। फिर उन लोगों ने मिलकर उस सारे धन को मुनिवर ऋष्य श्रृंग तथा वशिष्ठ को सौंप दिया। उन्होंने इस धन को न्यायपूर्वक सबको बांट दिया। इसके अलावा राजा ने उन ब्राह्मणों को भी दक्षिणा दी जो वहाँ दर्शक बनकर आये थे। इसी बीच एक दरिद्र ब्राह्मण ने भी आकर धन की याचना की। किंतु सारा धन समाप्त हो जाने के कारण राजा ने उसे अपने हाथ का उत्तम आभूषण उतार कर दे दिया। तत्पश्चात् उस यज्ञ का पुण्य फल पाकर राजा दशरथ के मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने ऋष्य श्रृंग से कहा मुनीश्वर। अब जो कर्म मेरी कुल परम्परा को बढ़ाने वाला हो उसका सम्पादन आपको करना है। तब द्विज श्रेष्ठ ऋष्य श्रृंग ने कहा राजन्! आपके चार पुत्र होंगे जो इस कुल के भार को वहन करने में समर्थ होंगे। उनका यह मधुर वचन सुनकर महाराज दशरथ हर्ष को प्राप्त हुए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौदहवाँ पूरा हुआ।

पन्द्रहवाँ सर्ग

पुत्रेष्टि यज्ञ का आरम्भ तथा ब्रह्माजी का रावण के वध का उपाय ढूंढ़ निकालना

अश्वमेध यज्ञ समाप्त होने पर ऋष्य श्रृंग ने राजा दशरथ से कहा, महाराज अब मैं आपको पुत्र की प्राप्ति कराने के लिए अथर्ववेद के मंत्रों से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूँगा। इतना कहकर उन्होंने विधिपूर्वक यज्ञ करना आरम्भ किया। तब देवता सिद्ध गंधर्व आदि विधि के अनुसार अपना-अपना भाग लेने के लिए एकत्र हो गये। वहां एकत्र होकर उन लोगों ने ब्रह्माजी से कहा भगवन्! रावण नामक राक्षस आपके ही वर से हमें बड़ा कष्ट दे रहा है। वह दुष्ट जिसको भी ऊँची स्थिति में देखता है उन्हीं के साथ द्वेष रखने लगता है। इस समय वह देवराज इन्द्र को परास्त करने की अभिलाषा रखता है। वह ऋषि,यक्ष,गंधर्व, सूर्य, वायु सबको पीड़ित किये रहता है। उस राक्षस से हमें महान् भय प्राप्त हो रहा है। उसके बध का कोई न कोई उपाय अवश्य होना चाहिए। देवताओं के ऐसा कहने पर बह्माजी कुछ

सोचकर बोले- वर मांगते समय उसने कहा था कि मैं गंधर्व, यक्ष, देवता, राक्षस किसी के हाथों न मारा जाऊँ। मैंने तथास्तु कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली है। मनुष्य से अवध्य होने का वरदान उसने नहीं मांगा। इसलिये मनुष्य के हाथों ही उसका बध होना सम्भव है। इसी समय गरुण पर सवार हो भगवान् विष्णु भी वहाँ आ पहुँचे और सावधानी से उस सभा में विराजमान हो गये। उस समय सम्पूर्ण देवताओं ने उनकी स्तुति करते हुए कहा- परमेश्वर! हम लोग तीनों लोकों के हित के लिए आपको एक गुरुतर भार सौंप रहे हैं। प्रभो! अयोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ तथा उदार हैं। उनके तीन रानियां हैं। विष्णु देव! आप अपने चार स्वरूप बनाकर राजा के उन तीन रानियों के गर्भ में पुत्र रूप में अवतार ग्रहण करें। इस प्रकार मनुष्य रूप में आकर दुष्ट रावण को जो अन्य देवताओं के लिये अवध्य है समर भूमि में मार डालिये। हम उसके बध की कामना लेकर आपकी शरण में आये हैं। कारण वह देवताओं को बहुत संताप देनेवाला है। हम उससे बहुत क्षुब्ध हैं।

उन लोगों के इस प्रकार विनती करने पर भगवान् ने वहाँ एकत्र हुए सभी देवताओं से कहा- देवगण! तुम भय को त्याग दो। मैं तुम लोगों के हित के लिये रावण को पुत्र, पौत्र, आमात्य, मंत्री और बन्धु बान्धव सहित युद्ध में मार डालूँगा। इसके बाद कमल नयन भगवान् ने अपने चार स्वरूपों में दशरथ को अपना पिता बनाने का निश्चय किया। तब सब देवताओं ने दिव्य स्तुतियों द्वारा भगवान विष्णु का स्तवन किया। वे फिर कहने लगे- प्रभो! रावण बहुत उद्दण्ड है वह साधु संन्यासियों को कष्ट देता हुआ तीनों लोकों को सताता है। अतः आप उसे जड़ से उखाड़ डालिए फिर अपनी स्वाभाविक निश्चिंतता के साथ वैकुण्ठ लोक को वापस आ जाइये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१५)

सोलहवाँ सर्ग

राजा के पुत्रेष्टि यज्ञ में प्राजापत्य पुरुष का प्रकट होकर खीर अर्पण करना

सर्वव्यापी नारायण सब कुछ जानते हुए भी देवताओं से पूछा-

देवतागण! कृपया बतायें वह कौन सा उपाय है जिससे रावण का वध किया जा सकता है। इस पर देवताओं ने कहा- प्रभो! आप मनुष्य रूप धारण कर उसे मार डालें। कारण, ब्रह्माजी तो उसे वर दिया था कि तुम्हें मनुष्य के सिवा और किसी प्राणी से भय नहीं। वर लेते समय उसने मनुष्यों को दुर्बल समझ उनकी अवहेलना कर दी थी। अतएव उसका मरण मनुष्य के हाथों ही लिखा है। तब देवताओं की ऐसी बात सुनकर भगवान् विष्णु ने राजा दशरथ को हो अपना पिता बनाने की इच्छा की और फिर देवताओं से पूजित होकर वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

इधर पुत्रेष्टि यज्ञ करते हुए राजा दशरथ के अग्निकुण्ड से एक विशालकाय पुरुष प्रकट हुआ। उसने अपने शरीर पर लाल वस्त्र धारण कर रक्खा था और उसका मुख भी लाल था। वहशुभ लक्षणों से सम्पन्न तथा दिव्य आभूषणों से विभूषित था। उसकी आकृति सूर्य के समान तेजोमयी थी। उसके हाथ में स्वर्ण निर्मित एक परात थी जो चाँदी के ढक्कन से ढकी थी। वह परात खीर से भरी थी और मायावी जान पड़ती थी। अब वह दिव्य पुरुष उसे लिए हुए राजा दशरथ के सामने आकर बोला, नरेश्वर! मैं प्रजापति की आज्ञा से यहाँ आया हूँ। तुमने देवताओं की आराधना की है इसलिये आज तुम्हें यह वस्तु प्राप्त हुई है। तुम इसे ग्रहण करो और अपनी पत्नी को खिलाओ। ऐसा करने से आपको उनके गर्भ से अनेक पुत्रों की प्राप्ति होगी।

राजा दशरथ उस खीर को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद वह दिव्य पुरुष भी अपना काम पूरा करके अन्तर्धान हो गया। तत्पश्चात् राजा दशरथ उस खीर को लेकर अन्तःपुर में गये और कौशल्या से बोले- यह अपने लिये पुत्र प्राप्त करानेवाली खीर ग्रहण करो। तत्पश्चात् उन्होंने खीर का आधा भाग कौशल्या को दे दिया। फिर उस बची हुई खीर का आधा भाग रानी सुमित्रा को अर्पण किया। उन दोनों को देने के बाद जितनी खीर बची उसका आधा भाग उन्होंने कैकेयी को दे दी। तत्पश्चात् उस खीर का जो अवशिष्ट आधा भाग था उसे कुछ सोच विचार कर राजा ने पुनः सुमित्रा को दे दिया। उस समय उस उत्तम खीर को खाकर उन तीनों रानियों ने पृथक-पृथक गर्भ धारण किया। अब उन्हें गर्भवती देखकर राजा दशरथ को बड़ी प्रसन्नता

हुइ। उन्होंने समझ लिया कि अब मेरा मनोरथ सफल हो गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१६)

सत्रहवाँ सर्ग

ब्रह्माजी की प्रेरणा से विभिन्न वानर यूथ पतियों की उत्पत्ति

भगवान् विष्णु के पुत्र भाव के प्राप्त होने पर ब्रह्माजो समस्त देवताओं से बोले, देवताओं! मृत्यु लोक में रावण बध हेतु विष्णु मनुष्य रूप धारण कर अवतरित हो रहे हैं। अतएव तुम लोगों को भी वहां जाकर रावण बध में सहायता करनी चाहिए। तुम लोग उनके सहायक के रूप में अप्सराओं, गंधर्व की स्त्रियों, किन्नरियों रीछों की स्त्रियों एवं वानरियों के गर्भ से ऐसे पुत्रों की सृष्टि करो जो बलवान इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ, माया जाननेवाले तथा शूरवीर हों। मैंने पहले ही ऋक्षराज जाम्बवान की सृष्टि कर रक्खी है।

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर देवताओं ने उनकी आज्ञा स्वीकार कर वानर रूप में अनेकानेक पुत्र उत्पन्न किये। इन्द्र ने वानरराज बाली को उत्पन्न किया तो सूर्य ने सुग्रीव को जन्म दिया। तेजस्वी गंधमादक कुबेर का पुत्र था तो विश्वकर्मा ने नल नामक पुत्र उत्पन्न किया। वरुण ने सुषेण को और पर्जन्य ने शरभ को जन्म दिया। वायु महाबली हनुमान के पिता बने। इस प्रकार ब्रह्मा की आज्ञा से कई हजार वानरों की उत्पत्ति हुई जो वीर पराक्रमी और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। देवताओं के गुण गानेवाले वनवासी चारणों ने भी बहुत से वीर विशालकाय वानर पुत्र उत्पन्न किए। मुख्य-मुख्य अप्सराओं, विद्याधारियों,नाग कन्याओं के गर्भ से भी इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बल से युक्त वानरों ने जन्म लिया। वे सभी वानर बल में शेर के समान थे। वे पल में पर्वतों को भी हिला सकते थे और जड़ भाव से खड़े वृक्षों को तोड़ डालने की शक्ति रखते थे। वे आकाश में घुसकर बादलों को पकड़ सकते थे और आकाश में उड़नेवाले पक्षियों को भी अपने सिंहनाद से गिरा सकते थे। इन वानरों की संख्या एक करोड़ थी। उनमें से जो युद्ध विद्या में नीतिज्ञ थे वे नायक चुने गये। इन्द्र कुमार बाली और सूर्यनन्दन सुग्रीव ये दोनों भाई थे और समस्त वानरगण उन दोनों भाइयों की सेवा में उपस्थित

रहते। इसी प्रकार वे नल, नील तथा अन्य वानर सरदारों का आश्रय लिए हुए थे। वे सभी वानर मेघ समूह तथा पर्वत शिखर के समान विशाल काय थे। श्रीराम की सहायता के लिये उत्पन्न उन वानर वीरों से समस्त पृथ्वी भर गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

अठारहवाँ सर्ग

राजाओं तथा ऋष्य शृंग का दशरथ के द्वारा विदा करना तथा दरबार में विश्वामित्र का आगमन

राजा दशरथ का यज्ञ समाप्त होने पर सभी देवता अपना-अपना भाग लेकर जैसे आये थे वैसे लौट गये। राजा दशरथ पत्नी समेत पुरी में चले गये। राजा द्वारा अत्यंत सम्मानित होकर मुनिवर वशिष्ठ तथा ऋष्य शृंग मुनि भी शान्ता के साथ अपने-अपने स्थानों पर चले गये। उन सारे अतिथियों को विदा करने के बाद राजा दशरथ पुत्रोत्पत्ति की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ बड़े सुख से रहने लगे। यज्ञ समाप्ति के पश्चात् जब छः ऋतुएं बीत गयीं तब बारहवें मास चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में कौशल्या देवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त जगदीश्वर श्रीराम को जन्म दिया। ये विष्णु स्वरूप खीर के आधे भाग से प्रकट हुए थे। तदनन्तर कैकेयी से सत्य पराक्रमी भरत का जन्म हुआ। ये समस्त सद्‌गुणों से सम्पन्न थे। इसके बाद रानी सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन दो पुत्रों को जन्म दिया। भरत सदा प्रसन्न रहते। उनका जन्म पुष्य नक्षत्र तथा मीन लग्न में हुआ था। सुमित्रा के दोनों पुत्र आश्लेषा नक्षत्र एवं कर्क लग्न में पैदा हुए थे। इनके जन्म के समय गंधर्वों ने मधुर गीत गाये एवं अप्सराओं ने नृत्य किया। अयोध्या में भी उत्सवों की धूम मची थी। गलियों में नट और नर्तक अपनी कलाएँ दिखा रहे थे। राजा दशरथ ने सूत मागध और बंदीजनों को विशेष पुरस्कार दिये और दीन दुखियों के लिये रत्न लुटाये गये तथा ब्राह्मणों को गोदान दिये गये। ग्यारह दिन बीतने पर महर्षि वशिष्ठ ने सब का नामकरण संस्कार किया। उन्होंने ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम, कैकेयी कुमार का भरत तथा सुमित्रा के एक पुत्र का

नाम शत्रुघ्न तथा दूसरे का लक्ष्मण निश्चित किया। इसके बद समय-समय पर उन्होंने सब का जात कर्म आदि संस्कार भी करवाये। उन सब में श्रीरामचन्द्र ज्येष्ठ होने के साथ ही कुल की कीर्ति ध्वजा को फहरानेवाली पताका के समान थे। वैसे तो राजा के सभी पुत्र वेदों के विद्वान और शूरवीर थे, किंतु श्रीरामचन्द्रजी उसमें सबसे अधिक पराक्रमी थे। छोटे भाई लक्ष्मण बाल्यावस्था से हीश्रीरामचन्द्रजी के प्रति अनुराग रखनेवाले थे और सदा उनकी सेवा में जुटे रहनेवाले थे। श्रीरामचन्द्रजी को भी उनके बिना नींद नहीं आती थी। यदि उन्हें उत्तम भोजन दिया जाता तो वे बिना लक्ष्मण को खिलाये नहीं खाते थे। इसी प्रकार लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न भरत जी को प्राणों से अधिक प्रिय थे। जैसे चार दिक्पालों से ब्रह्माजी को प्रसन्नता होती है वैसे अपने चार पुत्रों से राजा दशरथ को बड़ी प्रसन्नता होती थी।

ये चारों राजकुमार वेदों के स्वाध्याय एवं पिता की सेवा में दत्त चित्त रहते। अचानक एक दिन जब राजा दशरथ बन्धु बान्धवों तथा पुरोहितों के साथ बैठकर पुत्रों के विवाह के विषय में विचार कर रहे थे कि उनके यहाँ महामुनि विश्वामित्र आ पहुँचे। उन्होंने द्वारपालों से कहा कि जाकर महाराज से कहो कि उनसे मिलने कुशिकवंशी गाधि पुत्र विश्वामित्र आये हैं। राजा यह सुनकर बड़ी सावधानी से पुरोहितों के साथ उनकी अगवानी की और उन्हें अर्घ्य निवेदन किया। विश्वामित्र ने राजा का वह अर्घ्य स्वीकार करते हुए उनसे कुशल मंगल पूछा।इसके बाद उन्होंने वशिष्ठ जी तथा अन्य ऋषियोंका यथावत कुशल समाचार पूछा। फिर वे सब प्रसन्न होकर यथा योग्य आसनों पर बैठ गये। तब राजा दशरथ ने पुलकित होकर विश्वामित्र जी से पूछा। महामुने ! आपकी कौन सी उत्तम कामना है जिसे मैं हर्ष के साथ पूर्ण करूँ। जो आपने यहाँ तक पधारने का कष्ट किया उससे मेरा जीवन सफल हो गया। प्रभो आप जो भी आज्ञा देंगे उसकी पूर्ति होगी। कार्य सिद्ध होगा या नहीं ऐसे संशय को आप मन में स्थान न दीजिए। राजा दशरथ के कहे हुए इस विनय युक्तवाणी को सुनकर महर्षि विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र के मुख से श्रीराम को साथ ले जाने की माँग सुनकर राजा दशरथ का मूर्छित होना

महर्षि विश्वामित्र राजा दशरथ के वचन से पुलकित होकर बोले- महाराज! इस पृथ्वी पर आपके अतिरिक्त किसी दूसरे के मुख से ऐसे वचन निकलने की संभावना नहीं। राजन्! वास्तव में मैं एक नियम का अनुष्ठान करता हूँ उसमें इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले दो राक्षस विघ्न डाल रहे हैं। उनके नाम मारीचि और सुबाहु है। अब नियम का अधिकांश कार्य पूरा हो गया है और उसकी समाप्ति का समय आ पहुँचा है। इसी समय वे दोनों राक्षस फिर आ धमके हैं और मेरी यज्ञवेदी पर रक्त और माँस की वर्षा शुरू कर दी है। नरेश मैं इसके लिए क्रोधित होकर उन्हें शाप दूँ। ये विचार मेरे मन में नहीं आता। अतः इसके लिए आप अपने शूरवीर पुत्र श्रीराम को मुझे दे दें। श्रीराम के सामने आकर वे राक्षस किसी प्रकार नहीं ठहर सकते। इनके अलावा कोई उन राक्षसों को मारने का साहस भी नहीं कर सकता। महाराज! आप पुत्र का स्नेह मन में न लाइये और उन दोनों राक्षसों को इनके हाथों से मरा हुआ ही समझिये। इसके लिए आप वशिष्ठ आदि मंत्रियों से अनुमति भी प्राप्त कर सकते हैं। रघुनन्दन! ऐसा न करें कि मेरे यज्ञ का समय ही निकल जाये। आप का कल्याण हो। आप इसके लिये शोक और चिंता बिल्कुल न करें। इतना कहकर परम बुद्धिमान विश्वामित्र जी चुप हो गये। विश्वामित्र के इस वचन से महाराज दशरथ को बड़ा क्लेश हुआ और वे इसे सहन न कर सकने के कारण अपने आसन से विचलित होकर मूर्छित हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का पुत्र देने से इन्कार करना

दो घड़ी मूर्च्छित रहने के बाद राजा दशरथ फिर सचेत होकर बोले, मेरा

राम तो अभी सोलह वर्ष का भी नहीं हुआ है इसलिए उसमें राक्षसों से युद्ध करने की योग्यता ही कहाँ है। मेरे पास अक्षौहिणो सेना है। अच्छा होगा आप इन्हें साथ ले जायें। राम का ले जाना किसी तरह उचित प्रतीत नहीं होता। कारण, उसने अभी तक युद्ध को विद्या ही नहीं सीखी है। फिर राम के वियोग में मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकूँगा। यदि आपकी इच्छा राम को ही ले जाने की है तो उनके साथ चतुरंगिणी सेना लेकर मैं भी चलूँगा। कौशिक नन्दन! साठ हजार वर्ष की अवस्था में मुझे बड़ी कठिनाई से पुत्र की प्राप्ति हुई अतः आप राम को न ले जाइये।

राजा दशरथ की बात सुनकर विश्वामित्र जी बोले- राजन्! महर्षि पुलत्स्य वंशज विश्रवा मुनि का औरस पुत्र रावण बहुत ही बलशाली राक्षस है। उसी की प्रेरणा से दो बलवान राक्षस मारीच और सुबाहु इस यज्ञ में विघ्न डालने आया करते हैं। महर्षि विश्वामित्र की ऐसो बात सुनकर राजा दशरथ बोले- मुने! मेरा भी उस दुरात्मा रावण के सामने ठहरना कठिन है फिर मेरा देवोमय पुत्र तो युद्ध की कला से सर्वथा अनभिज्ञ है। अतः आप मुझ मन्दभागी दशरथ और मेरे पुत्र पर कृपा करें। इसकी अवस्था अभी इतनी कम है मैं इसे किसी तरह भी नहीं जाने दे सकता। मैं उन दोनों में से किसी एक के साथ युद्ध करने चल सकता हूँ लेकिन अगर आप मुझे न ले जाना चाहें तो मैं भाई बन्धुओं सहित आपसे अनुनय विनय करूँगा। कि आप राम को छोड़ दें। राजा दशरथ के यह वचन सुनकर विश्वामित्र के मन में क्रोध का आवेश हो आया और वे इसी क्रोध में जलने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र का रोषपूर्ण वचन और वशिष्ठ का राजा को समझाना

राजा दशरथ के वचन से महर्षि विश्वामित्र कुपित होकर बोले—पहले तो आपने मुझे मांगो हुई वस्तु देने को प्रतिज्ञा की अब उसी को तोड़ना चाहते हो। प्रतिज्ञा तोड़ना यह आपके वंश के अनूकूल नहीं। यह आपके कुल के

विनाश का सूचक है। अब विश्वामित्र को इस तरह कुपित होते देखकर सारो पृथ्वी काँप उठी ;,और देवताओं के मन में भी भय समा गया। यह देखकर महर्षि वशिष्ठ ने दशरथ को समझाया-महाराज! आप उत्तम व्रत के पालक और श्रोसम्पन्न हैं। आप धर्म का परित्याग कर अधर्म का बोझ अपने सिर न उठाइये। कारण जो भी अपने प्रतिज्ञा का पालन नहों करता उसके सभी पुण्यों का क्षय हो जाता है। अतः आप श्रीराम को विश्वामित्र जो के साथ भेज दीजिए। ये अस्त्र विद्या जाने या न जाने पर विश्वामित्र से सुरक्षित हुए श्रीराम का वे राक्षस कुछ बिगाड़ नहों सकते। श्रीराम और विश्वामित्र दोनों ही साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं। ये बलवानों में श्रेष्ठ तथा विद्या में सबसे बढ़े चढ़े हैं। इन्हें मेरे सिवा दूसरा कोई न तो अच्छी तरह जानता है न जानेगा। प्रायः सभी अस्त्र प्रजापति कृशाश्व के धर्मात्मा पुत्र हैं। उन्हें प्रजापति ने पहले ही कुशिका नंदन विश्वामित्र सौंप दिये थे। प्रजापति दक्ष की दो सुन्दरो कन्याएं हैं उनके नाम है 'जया और सुप्रभा'। उनके द्वारा सौ अस्त्र-शस्त्र पैदा हुए। उनमें से जया ने वर पाकर पचास पुत्रों को जन्म दिया। फिर सुप्रभा ने संहार नामक पचास पुत्रों को जन्म दिया जो अत्यंत दुर्लभ हैं। इनके नाम संहार हैं। उन पर आक्रमण करना किसी के लिये भी सर्वथा कठिन है। धर्मज्ञ विश्वामित्र उन सबको अच्छी तरह जानते हैं तथा भूत और भविष्य की कोई बात इनसे छिपी नहीं है। राजन्! अब इनके साथ राम को भेजने में आप किसी तरह का संदेह न करें। महर्षि विश्वामित्र स्वयं भी उन राक्षसों का संहार कर सकते हैं किन्तु वे आपके पुत्र का कल्याण करना चाहते हैं इसलिये यहाँ आकर आपसे याचना कर रहे हैं। महर्षि वशिष्ठ के इस वचन से राजा दशरथ आनन्द मग्न होकर विश्वामित्र के साथ श्रीराम को भेजना निश्चय कर लिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाइसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का राम, लक्ष्मण को मुनि के साथ भेजना, मार्ग में उन्हें विश्वामित्र से बला और अति बला नामक विद्या की प्राप्ति

गुरू वशिष्ठ की आज्ञा पाकर राजा दशरथ ने लक्ष्मण सहित श्रीराम

को विश्वामित्र के साथ भेज दिया। मुनि विश्वामित्र ने उन दोनों भाइयों को लेकर अयोध्या से प्रस्थान किया। उस समय धूल रहित सुखदायिनी वायु चलने लगी और देवताओं ने आकाश से फूलों की भारी वर्षा की। उस समय आगे-आगे विश्वामित्र उनके पोछे महायशस्वी राम और उनके पीछे लक्ष्मण चल रहे थे। उन दोनों के पोठ पर तरकस बंधे थे। वे विश्वामित्र के पीछे तीन-तीन फन वाले दो सर्पों के समान चल रहे थे। अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर सरयू के दक्षिण तट पर विश्वामित्र ने राम को सम्बोधित करते हुए कहा– वत्स राम अब सरयू के जल से आचमन करो और देखो आवश्यक कार्य में देरी न हो। साथ ही मैं तुम्हें बला और अति बला नामक प्रसिद्ध मंत्र दे रहा हूँ। इसके प्रभाव से तुम्हारे पास ज्वर, थकावट या चिंता फटकने नहीं पायेगी। असावधानी की अवस्था में कोई राक्षस तुम्हारे ऊपर हमला नहीं कर पायेगा तथा बल में तुम्हारी समानता में कोई न होगा। श्रीराम! इसके अभ्यास से तुम्हें भूख-प्यास का भो कष्ट न होगा। इससे इस भूतल में तुम्हारे सुयश का विस्तार होगा क्योंकि ये विद्याएं ब्रह्माजी की तेजस्विनी पुत्रियाँ हैं। मैं तुम्हें इस विद्या को इसलिए दे रहा हूँ क्योंकि तुम्हीं इसके योग्य पात्र हो। तब श्रीराम आचमन करके पवित्र हो गये और महर्षि से वे दोनों विद्याएँ ग्रहण कर लीं। इस समय वे सहस्त्रों किरणों वाले सूर्य के समान तेजस्वी लगने लगे। उसके बाद श्रीराम गुरु विश्वामित्र की सेवा करके हर्ष का अनुभव किया और उस समय तृण शय्या पर लेटे रहने पर भी कोई कष्ट न हुआ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेइसवाँ सर्ग

श्रीराम का विश्वामित्र सहित पुण्य आश्रम में ठहरना

अब रात बीतते ही प्रातः काल होने पर विश्वामित्र ने दोनों राजकुमारों को जगाते हुए कहा– तुम्हारे जैसे पुत्र पाकर कौशल्या सुपुत्र जननी कही जाती हैं अतः तुम शीघ्र उठकर प्रतिदिन होनेवाले देव सम्बंधी कार्य को पूर्ण करो। महर्षि विश्वामित्र के वचन सुनकर दोनों वीरों ने स्नानादि करके गायत्री मंत्र

का जप करने लगे। इसके बाद उन्होंने विश्वामित्र को प्रणाम किया और उनके साथ ही आगे बढ़ने को तैयार हुए। वहाँ से चलते हुए वे गंगा और सरयू के संगम पर पहुँचकर त्रिपथगा नदी गंगाजी का दर्शन किया। उसके पास ही शुद्ध अंतःकरण वाले महर्षियों का एक पवित्र आश्रम था। उसे देखकर श्रीराम ने विश्वामित्र से पूछा– भगवान् यह किसका पवित्र आश्रम है ? विश्वामित्र तब हँसते हुए बोले– पूर्व समय में कंदर्प (कामदेव) सशरीर विचरता रहता था। उनदिनों इसी आश्रम में भगवान शिव एकाग्र चित्त से यहाँ तपस्या करते थे। सहसा एक दिन शिव समाधि से उठकर मरुद्‌गणों के साथ कहीं जा रहे थे कि दुर्बुद्धि काम ने उन पर आक्रमण कर दिया। यह देखकर शिव ने रोष भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। बस फिर तो उस दुर्बुद्धि के सारे अंग जीर्ण शीर्ण होकर उसके शरीर से अलग होकर गिर गये। राम उसी समय से वह अनंग नाम से विख्यात हुआ और इस स्थान का भी अनंग देश नाम पड़ा। यह उन्हीं महादेवजी का पुण्य आश्रम है। ये समस्त मुनि उन्हीं के शिष्य हैं। फिर उन्होंने दोनों राजकुमारों से कहा– आज, यहीं संगम में स्नान कर रात्रि शिवाश्रम में बिताएँ तत्पश्चात् कल प्रातः काल नदी पार कर आगे बढ़ेंगे। इतना कहकर मुनि उन्हें लेकर आश्रम में गये जहाँ ऋषियों ने इनका बड़ा आदर सत्कार किया तदन्तर वहाँ रहनेवाले मुनियों ने विश्वामित्र इत्यादि को शयन के लिए उपयुक्त स्थान पर पहुँचा दिया। वहां मुनि श्रेष्ठ ने मनोहर कलाओं द्वारा राजकुमारों का काफी मनोरंजन किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीराम का गंगा पार होना तथा ताड़का वध

तत्पश्चात् प्रभात काल में विश्वामित्र को आगे करके श्रीराम और लक्ष्मण गंगा नदी के तट पर आये। वहाँ मुनियों ने एक सुन्दर नाव मँगवाकर विश्वामित्र जी से कहा-महर्षे इस नाव पर बैठ जायें और मार्ग को निर्विघ्नता पूर्वक तय कीजिए। जब महर्षि-राम लक्ष्मण के साथ गंगापार करने लगे। अचानक गंगा की बीच धारा में आने पर दोनोंराजकुमारों को दो जलों के

टकराने की बड़ी भारी आवाज सुनायी दी। विश्वामित्र से इसका कारण पूछने पर उनहोंने बताया-नर श्रेष्ठ! कैलाश पर्वत पर एक मानस सरोवर है जिसे ब्रह्मा जी ने अपने संकल्प से पैदा किया है उससे सरयू नामक एक पवित्र नदी निकली है। उसी का जल गंगाजी में मिल रहा है। इन्हीं दोनों नदियों के जलों के संघर्ष से यह भारी आवाज हो रही है। राम अब तुम तुरंत इस संगम के जल को प्रणाम करो। यह सुनकर दोनों भाइयों ने नदियों के जल को प्रणाम किया और किनारे उतरकर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए आगे बढ़ने लगे। आगे एक भयंकर और वीरान वन देखकर श्रीराम ने विश्वामित्र से पूछा-गुरु देव ! यहाँ तो भीषण स्वरों में सारे पक्षी चह चहा रहे हैं और चारों ओर सिंह, व्याघ्र, सुअर आदि हिंसक पशु ही विचरण कर रहे हैं। इस भयंकर वन का नाम क्या है ? विश्वामित्र ने कहा– नरश्रेष्ठ ! यहाँ पूर्व काल में धन-धान्य से पूर्ण दो जनपद बसे थे। एक समय देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर का बध किया और मल से लिप्त हो गये। तब देवताओं ने उन्हें गंगा जल के भरे हुए कलश से उन्हें नहलाया और उनके मल और कारुष को छुड़ा दिया। फिर उस मल और कारुष को इसी जनपद को दिया और यह स्थान लोक में मलद और कारुष नाम से विख्यात हुए। फिर इन्द्र के वर से ये दोनों देश बड़े समृद्धिशाली हुए। कालान्तर में यहाँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एक यक्षिणी आयी। उसका नाम ताड़का है। मारीच उसी का पुत्र है। यही राक्षसी इन दोनों जनपदों का विनाश करती रहती है। तुम अब अपने बाहुबल का सहारा लेकर उस दुरा चारिणी को मारकर यहाँ के लोगों को निष्कंटक बना दो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पच्चीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र का ताड़का की उत्पत्ति बताना और ताड़का बध के लिए प्रेरित करना

विश्वामित्र के वचन को सुनकर श्रीराम ने पूछा, मुनिश्रेष्ठ वह अबला इतनी शक्तिशालिनी कैसे हुई? राम के इस प्रश्न को सुनकर महर्षि

विश्वामित्र ने कहा- रघुनन्दन पूर्वकाल में सुकेतु नामक एक प्रसिद्ध यक्ष थे। उन्होंने एक बार संतान के लिये बड़ी भारी तपस्या की। सुकेतु के इस तप से प्रसन्न होकर उसे ब्रह्मा ने ताड़का नामक एक कन्या रत्न प्रदान किया। यही नहीं उन्होंने उस कन्या को एक हजार हाथियों के समान बल दे दिया। सुकेतु ने उसका विवाह जम्भ पुत्र सुन्द के साथ कर दिया। जिससे उसे मारीच नाम का एक दुर्जय पुत्र हुआ। किंतु बाद में अगस्त्य मुनि के शाप से मारीच राक्षस हो गया। यही नहीं उन्होंने शाप देकर सुन्द को भी मार डाला। श्रीराम,अपने पति के मरने से वह पुत्र सहित वहाँ जाकर मुनिवर अगस्त्य को मारने की इच्छा रखने लगी। फिर क्रोध में आकर अगस्त्य ने उसे भी राक्षसी बनने का शाप दे दिया। इससे ताड़का का क्रोध बढ़ गया और इसीसे वह उस सुन्दर देश को उजाड़ने लगी जहां अगस्त्य जी रहते थे। श्रीराम!अब इस ताड़का को तुम्हारे सिवा कोई दूसरा मारने की सामर्थ्य रखता ही नहीं। अतः तुम शीघ्र ही इसका बध कर डालो। नरेश्वर! प्रजापालन हेतु स्त्री वध जैसा क्रूर कर्म करना पड़े तो कर लेना चाहिए। इसमें कोई दोष नहीं। इसी तरह प्राचीन काल में विरोचन की पुत्री मन्थरा सारी पृथ्वी को नष्ट करना चाहती थी तो इन्द्र ने उसका बध कर दिया था। श्रीराम! पूर्वकाल में शुक्राचार्य की माता तथा भृगु की पत्नी भी त्रिभुवन को इन्द्र से शून्य कर देना चाहती थीं तो भगवान विष्णु ने उन्हें मार डाला। अतएव हे नरेश्वर! मेरी आज्ञा से तुम भी इसका बध कर डालो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा ताड़का बध

ऋषि विश्वामित्र के इस वचन को सुनकर श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा- भगवन्! मेरे पिता ने आदेश दिया था मार्ग में विश्वामित्र के आदेशों का निःशंक होकर पालन करना। अतएव आपकी इस आज्ञा का पालन मैं अवश्य करूँगा। इतना कहकर श्रीराम ने धनुष के मध्य भाग को मुट्ठी बाँधकर उसे जोर से पकड़ा और उसकी प्रत्यंचा पर तीव्र टंकार दिया। उसकी

आवाज से सम्पूर्ण दिशाएं गूंज उठी। वह राक्षसी भी इस आवाज को सुनकर रोषपूर्वक उसी दिशा की ओर दौड़ी जिधर से आवाज आयी थी। उसके भयानक मुखाकृति को देखकर श्रीराम लक्ष्मण से कहा– देखो, मैं अभी इसके नाक कान काट कर इसे लौटने के लिए विवश किये देता हूँ। लेकिन ताड़का ने आते ही उन दोनों रघुवंशियों पर भयंकर धूल उड़ाना शुरू किया और उन पर पत्थरों की भारी वर्षा करने लगी। यह देखकर श्रीराम उससे अत्यंत कुपित होकर अपने तीखे बाणों से उसके दोनों हाथ काट डाले। भुजाएँ कटते ही वह उनके निकट खड़ी होकर भयंकर गर्जना करने लगी। यह देखकर लक्ष्मण ने भी क्रोध में भरकर उसके नाक कान काट लिये। अब वह अपनी माया से श्रीराम और लक्ष्मण को मोह में डालती हुई आकाश विचरने लगी और अदृश्य रूप से उन पर पत्थरों की वर्षा करने लगी। यह देखकर गाधिनन्दन ने कहा– श्रीराम इस पर दया करना बेकार है। यह दुराचारिणी यज्ञ में विघ्न डालती है। संध्याकाल के पहले इसका बध हो जाना चाहिए क्योंकि उसके बाद राक्षास दुर्जय हो जाते हैं। तब राम ने अपने शब्दभेदी बाणों द्वारा सब ओर से उसका मार्ग ही रोक दिया। यह देखकर ताड़का भयंकर गर्जना करती हुई श्रीराम लक्ष्मण पर टूट पड़ी। श्रीराम ने तुरंत अपने तीखे बाणों से उसका बध कर दिया। यह देखकर इन्द्र इत्यादि सभी देवता श्रीराम को साधुवाद देते हुए विश्वामित्र से श्रीराम पर अपना स्नेह प्रकट करने के लिए कहा। ताड़का बध से संतुष्ट हुए मुनि ने श्रीराम को स्नेह करते हुए कहा– रघुकुल नन्दन राम ! आज रात को हम लोग यहीं निवास करें। कल सबेरे अपने आश्रम पर चलेंगे। श्रीराम ने ताड़का वन में वह रात बड़े सुख से व्यतीत की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२६)

सत्ताइसवाँ सर्ग

विश्वामित्र द्वारा श्रीराम को दिव्यास्त्र-दान

ताड़का वन में वह रात बिताकर विश्वामित्र ने श्रीराम से हँसते हुए कहा, ताड़का बध के कारण मैं तुम पर बहुत संतुष्ट हूँ अतः बड़ी प्रसन्नता से

Mookerji Sharma Ji - Jammu Collection

मैं तुम्हें सब प्रकार के अस्त्र दे रहा हूँ। इनके प्रभाव से तुम अपने हर प्रकार के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकोगे। हे रामचन्द्र ! मैं तुमको दण्ड चक्र, काल चक्र, विष्णु चक्र, इन्द्र चक्र और अंगणित दूसरे अस्त्र देता हूँ। साथ ही तुम्हें ऐषीकास्त्र तथा परम उत्तम ब्रह्मास्त्र भी प्रदान करता हूँ। रघुनन्दन ! सूखी और गीली दो प्रकार की पिनाक एवं नारायण अस्त्र भी तुम्हें अर्पित करता हूँ। इसके अलावा कंकाल घोर मूसल, कपाल तथा किंकणी आदि सब अस्त्र जो राक्षसों के बध में उपयोगी होते हैं तुम्हें दे रहा हूँ। रघुनन्दन ! नन्दन नाम से प्रसिद्ध विद्याधरों का उत्तम अस्त्र औरखड्गभी तुम्हें अर्पित करता हूँ। महाबाहो। गंधर्वों का प्रिय सम्मोहन, प्रस्वापन विलापन तथा कामदेव का प्रियमादन आदि सभी अस्त्र मुझसे ग्रहण करो। ऐसा कहकर विश्वामित्र स्नानादि से शुद्ध हो पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये और अत्यंत प्रसन्नता के साथ श्रीराम चन्द्र को उन सभी उत्तम अस्त्रों का उपदेश दिया। तत्पश्चात् विश्वामित्र ने ज्यों ही जप आरम्भ किया त्यों ही वे सभी परम पूज्य दिव्यास्त्र अपने आप आकर श्रीरघुनाथ जी के पास उपस्थित हो गये और हाथ जोड़करश्रीरामचन्द्र जी कहने लगे– परम उदार रघुनन्दन ! आप का कल्याण हो। हम आपके चाकर हैं। आप हमसे जो भी सेवा लेना चाहेंगे हम उसके लिए तैयार हैं। यह देखकर श्रीरामचन्द्र मन-ही-मन प्रसन्न होकर उनका स्पर्श किया और कहा– आप सब मेरे मन में निवास करें। तन्दन्तर श्रीरामने महर्षि विश्वामित्र को प्रणाम किया और उनकी आगे की यात्रा आरम्भ हुई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२७)

अट्ठाइसवाँ सर्ग

विश्वामित्र का श्रीराम को अस्त्रों की संहार विधि बताना।

आगे विश्वामित्र जी चलते-चलते श्रीराम विश्वामित्र से बोले– इन अस्त्रों को पाकर मैं देवताओं के लिए भी दुर्जय हो गया हूँ। अब मैं उनका संहार विंधि जानना चाहता हूँ। विश्वामित्र ने उन्हें संहार विधि का उपदेश देते हुए कहा– राम ! तुम अस्त्र विद्या के सुयोग्य पात्र हो। अतःनिम्नांकित

अस्त्र को भी ग्रहण करो– सत्यवान, सत्य कीर्ति, धृष्ट, रभस, प्रतिहारतर, पद्मनाभ, दुन्दुनाभ, महानाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, विमल, दैत्य नाश, यौगंधर और विनिद्र, शुचि बाहु और महाबाहु कामरूप, काम रुचि, मोह आवारण, सर्पनाथ, पन्थान और वरुण आदि- ये सब प्रजापति कृशाश्व के पुत्र हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले तथा परम तेजस्वी हैं। तुम इन्हें ग्रहण करो। विश्वामित्र के इतना कहते ही वे सब-के-सब श्रीराम के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये और बोले– हम आपके दास हैं हमें आज्ञा दें हम आपकी क्या सेवा करें ?

श्रीराम बोले– इस समय आप जायें। अवसर आने पर मेरे मन में स्थित होकर मेरी सहायता करते रहें। तत्पश्चात् वे राम की परिक्रमा कर जैसे आये थे वैसे चले गये। तदन्तर मार्ग में चलते हुए श्रीराम ने विश्वामित्र से पूछा भगवन् यह सामने जो मेघों की छटा के समान सघन वृक्षों से भरा स्थान दिखाई देता है वह क्या है ? कारण वहाँ अनेक पक्षी उड़ रहे हैं। आप जहाँ यज्ञ करते हैं वह स्थान कौन-सा है। जिस जगह आपको राक्षस सताते हैं वह कौन-सी जगह है। क्योंकि मुझे यज्ञशाला की रक्षा करनी है और राक्षसों का संहार करना है। भगवन्! मुझे इन सबके बारे में जानने की प्रबल इच्छा है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र जी का श्रीराम को सिद्धाश्रम का वृतान्त बताना

श्रीराम के वचन सुनकर विश्वामित्र बोले– श्रीराम! पूर्व काल में भगवान विष्णु तपस्या हेतु यहाँ बहुत काल तक निवास किया। यह स्थान उनके वामन अवतार ग्रहण के पूर्व का आश्रम था। यह सिद्धाश्रम नाम से प्रसिद्ध था। कारण यहीं विष्णु को सिद्धि प्राप्त हुई थी। एक समय विरोचन का पुत्र बलि देवताओं पर विजय प्राप्त कर स्वयं राजा बन बैठा। इससे वह तीनों लोक में विख्यात हो गया। तत्पश्चात् उसने एक यज्ञ का आयोजन किया यह देखकर अग्नि आदि देवता स्वयं इस आश्रम में पधार कर विष्णु से बोले–

राजा बलि इस समय एक यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। इस समय जो भी याचक उनके पास जाता है उसकी इच्छाओं को वे पूरी कर देते हैं। अतः आप वामन रूप धारण कर उनके यज्ञ में जाइये और हमारा कल्याण करें। इसी समय महर्षि कश्यप अपनी पत्नी सहित वहाँ आकर भगवान विष्णु की स्तुति करते हुए कहा– प्रभो ! मैं इस सारे जगत में आपको स्थित देखता हूं। अतएव हम आपकी शरण आये हैं। इस पर श्री हरि ने प्रसन्न होकर कहा– तुम्हारा कल्याण हो। तुम इच्छानुसार कोई वर माँगो। इस पर कश्यप बोले– भगवान ! आप प्रसन्न होकर मेरे और अदिति के पुत्र हो जायें आप इन्द्र के छोटे भाई हैं अतएव शोक में डूबे हुए देवताओं की सहायता करें। तदन्तर भगवान विष्णु अदिति के गर्भ से वामन रूप धारण करके उत्पन्न हुए और विरोचन पुत्र बलि के पास जाकर उनसे तीन पग भूमि मांगी। फिर उस तीन पग भूमि को लेकर उन्होंने उसे इन्द्र को लौटा दिया। हे रघुनन्दन ! वामन ने भी इसी आश्रम में वास किया था। उन्हीं वामन भगवान में मेरी भक्ति होने के कारण मैं इस स्थान को अपने उपयोग में लाता हूँ। यहीं मेरे यज्ञमें विघ्न डालनेवाले राक्षस आते हैं। पुरुष सिंह ! यहीं तुम उन दुराचारियों का बध करो। अबं हम उस सिद्धाश्रम में पहुँच रहे हैं, इतना कहकर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मण का हाथ पकड़कर आश्रम में प्रवेश किया। वहां विश्वामित्र को आये हुए देखकर सिद्धाश्रम के सभी तपस्वियों ने उनकी पूजा की और राजकुमारों का अतिथि सत्कार किया। उस समय रामचन्द्र ने विश्वामित्र से कहा– मुनिश्रेष्ठ ! आज आप इसी आश्रम में यज्ञ कीजिए। यह सिद्धाश्रम वास्तव में यथानाम तथा गुण सिद्ध हो। उनके ऐसा कहने पर महर्षि विश्वामित्र यज्ञ की दीक्षा में प्रविष्ट हुए और दोनों राजकुमार सावधानी के साथ रात व्यतीत करके सबेरे उठे और स्नानादि से शुद्ध होकर अग्नि होम करके बैठे हुए विश्वामित्र के चरणों की बंदना की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा

तदन्तर श्रीराम और लक्ष्मण ने मुनि विश्वामित्र से कहा– भगवन् हम दोनों जानना चाहते हैं कि उन दोनों निशाचरों का किस समय आक्रमण होता है। कहीं ऐसा न हो असावधानी से वह समय हाथ से निकल जाये। तत्पश्चात् राजकुमारों की ऐसी इच्छा देख वहाँ के सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए और श्रीराम और लक्ष्मण को समझाया– राजकुमारों। मुनिवर यज्ञ की दीक्षा ले चुके हैं अतः वे मौन रहेंगे। इस बीच आप दोनों सावधान होकर आज से छः रातों तक इनके यज्ञ की रक्षा करते रहें।

मुनियों के इस वचन को सुनकर दोनों राजकुमार छः दिन और छः रात तक उनकी यज्ञ की रक्षा करते रहे। लेकिन छठवें दिन श्रीराम ने अपने अनुज से कहा सौमित्र नन्दन! तुम अपने चित्त को एकाग्र करके सावधान हो जाओ। श्रीराम अभी इतना कह ही रहे थे कि यज्ञ की वेदी एकदम प्रज्वलित हो उठी। वेदी का इस प्रकार से जलना इस बात का सूचक था कि राक्षस आ रहे हैं। इसके बाद जैसे ही वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ यज्ञ का कार्य आरम्भ हुआ वैसे ही आकाश में बड़े जोरों का शब्द हुआ और राम ने देखा मारीच और सुबाहु नामक राक्षस आकाश के रास्ते दौड़े आ रहे हैं। वहाँ आकर उन लोगों ने अपने अनुचरों सहित यज्ञ मण्डप पर रक्त की धाराएँ बरसाना आरम्भ किया।

यह देखकर श्रीराम लक्ष्मण से बोले–लक्ष्मण! वह देखो दुराचारी राक्षस आ पहुँचे हैं किंतु मैं अपने अस्त्रों से इनको उसी प्रकार भगाऊँगा जैसे वायु वेग से बादल छिन्न भिन्न हो जाते हैं। ऐसा कहकर राम ने तुरन्त अपने मानवास्त्र का संधान किया जिसके लगते ही मारीच पूरे सौ योजन की दूरी पर समुद्र के जल में जा गिरा। तत्पश्चाात् अपने हाथ की फुर्ती दिखलाते हुए वे शीघ्र ही महान आग्नेयास्त्र का संस्थान कर सुबाहु पर चलाया उसकी चोट से वह तत्काल पृथ्वी पर गिर कर मर गया। फिर धीरे-धीरे उन्होंने शेष सभी निशाचरों का भी अंत कर दिया।

यज्ञ समाप्ति पर सभी दिशाओं को विघ्न बाधा रहित देखकर श्री

विश्वामित्र जी ने कहा- यशस्वी वीर तुमने इस सिद्धाश्रम का नाम सार्थक कर दिया है। फिर उन्होंने उनकी अनके प्रकार से प्रशंसा करते हुए दोनों भाइयों के साथ संध्योपासन की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३०)

इकतीसवाँ सर्ग

विश्वामित्र का राम लक्ष्मण तथा अन्य ऋषियों सहित मिथिला को प्रस्थान

यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने के बाद श्रीराम और लक्ष्मण ने वह रात यज्ञशाला में ही बितायी। प्रातःकाल होने पर वे दोनों भाई विश्वामित्र की सेवा में उपस्थित होकर बोले- मुनिप्रवर! हमें आज्ञा दें हम क्या सेवा करें। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर बतलाया- परमश्रेष्ठ! अब हम सभी ऋषिगण राजा जनक का यज्ञ देखने मिथिलापुरी जायेंगे। इसलिये तुम लोग भी हमारे साथ चलो। वह धनुष बहुत ही अनोखा है। उसे जनक के पुरखों ने यज्ञ द्वारा देवताओं से प्राप्त किया था। वह राजा जनक के यज्ञ स्थान पर ही रक्खा हुआ है तथा उसे अनेक महाबली देवता गंधर्व, राक्षस भी नहीं उठा सके। फिर मनुष्यों की गिनती ही क्या? हे पुरुष सिंह राम तुम वहाँ जाकर उस धार्मिक यज्ञ को देख सकोगे। तदन्तर मुनि विश्वामित्र राम लक्ष्मण तथा ऋषि समुदाय को लेकर मिथिलापुरी को गमन किया। इस प्रस्थान के समय यात्रा करते हुए मुनिवर विश्वामित्र के पीछे उनके साथ जानेवाले ब्रह्मवादी ऋषियों की सौ गाड़ियां चलीं। तब सिद्धाश्रम में निवास करनेवालेमृग और पक्षी भी विश्वामित्र के पीछे पीछे जानेलगे। कुछ दूर जाने पर जब सूर्य अस्ताचल को जाने लगा तब उन ऋषियों ने शोणभद्र (सोन नदी) के तट पर अपना पड़ाव डाला फिर अग्निहोम आदि समाप्त कर सभी विश्वामित्र के सामने बैठ गये। उस समय श्रीराम ने विश्वामित्र जी से पूछा-भगवन्! यह हरे-भरे वन से सुशोभित देश कौन सा है। मुनि विश्वामित्र ने उन ऋषियों के बीच उस देश का परिचय देना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में इक्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

ब्रह्मपुत्र कुश के चार पुत्रों का वर्णन तथा कुश नाम की सौ कन्याओं का कुब्जा होना

विश्वामित्र बोले-श्रीराम ! पूर्वकाल में कुश नाम से एक राजा थे। वे धर्म के ज्ञाता थे और विदर्भ देश की राजकुमारी उनकी पत्नी थी। उनके गर्भ से उन्हीं के समान चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम थे कुशांब, कुशनाभ असूर्तरजस और वसु। तत्पश्चात् अपने पिता की आज्ञा से उन चारों ने अपने लिए अलग-अलग नगर बसाये। कुशाम्ब ने 'कौशाम्बी' पुरी बसायी। कुशनाभ ने 'महोदय' नामक नगर का निर्माण कराया। असूर्तरजस ने 'धर्मारण्य' और वसु ने 'गिरिव्रज' नामक नगर का निर्माण करवाया। यही गिरि व्रज वसुमती के नाम से प्रसिद्ध हुई। इनके चारों ओर पांच श्रेष्ठ पर्वत हैं। यह सोन नदी दक्षिण पश्चिम की ओर से मगध देश में आने के कारण सुमागधी कहलायी। वह इन्हीं पांच पर्वतों के बीच माला की तरह सुशोभित है तथा इसके दोनों तटों पर सुंदर उपजाऊ खेत हैं। श्रीराम ! धर्मात्मा कुशनाभ ने धृताची नामक अप्सरा के गर्भ से सौ कन्यओं को जन्म दिया। वे सभी सुंदर तथा लावण्यमयी थीं। वे स्त्रियोचित सभी गुणों से पूर्ण थीं। अब उनके गुणों और रूप को देखकर वायु देवता ने उनसे कहा, तुम सब मेरी पत्नी बनो इससे तुम्हें अन्य देवाङ्गनाओं की तरह दीर्घायु प्राप्त होगी। लेकिन यह सुनकर उन सुंदरियों ने वायुदेव की हंसी उड़ाते हुए कहा-सुरश्रेष्ठ! प्राणवायु के रूप में आप सब के भीतर विचरण करनेवाले हैं इसलिये आपको यह स्वयं जान लेना चाहिए कि हमारे मन में आपके प्रति कोई आकर्षण नहीं है। इस अनुचित प्रस्ताव के लिए यदि हम चाहें तो आपको शाप देकर वायु पद से भ्रष्ट कर सकती हैं। लेकिन हम लोग अपने तप को सुरक्षित रखती हैं इसलिए ऐसा नहीं करना चाहतीं। इसके लिए हमारे पिता ही हमें जिसके हाथ में देंगे वही हमारा पति होगा। उनकी इन बातों को सुनकर वायुदेव कुपित हो उठें और उनके भीतर प्रविष्ठ हो उनके सारे अंगों को मोड़कर टेढ़ा कर दिय। शरीर मुड़ जाने से वे कुबड़ी होकर भय से व्याकुल हो उठीं। फिर

उसी हालत में जब उन्होंने अपने राज भवन में प्रवेश किया। उनकी दयनीय दशा देखकर कुशनाभ घबरा उठे और बोले-पुत्रियों किसने धर्म की अवहेलना करते हुए तुम्हें कुबड़ी बनाया। इतना कहकर वे लंबी सांस खींचकर उनका उत्तर सुनने के लिए सावधान होकर बैठ गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

राजा कुशनाभ द्वारा कन्याओं के क्षमाशीलता की प्रशंसा और ब्रह्मदत्त के साथ उनका विवाह होना

कन्याओं ने कुशनाभ को प्रणाम करते हुए कहा-राजन्! मार्ग में वायुदेव हम पर बलात्कार करना चाहते थे। किंतु हमने उन्हें ऐसा करते हुए देखकर कहा-देव! यदि आप मेरा वरण करना चाहते हैं तो मेरे-पिताजी के पास जाकर मेरा वरण कीजिए किंतु उन्होंने हमारी बात नहीं मानी और हम लोगों को अकारण दंडित किया। यह सुनकर कुशनाभ ने कहा-पुत्रियों! तुम लोगों ने वायुदेव को क्षमा प्रदान करके मेरे कुल की मर्यादा बढ़ाई है। क्योंकि क्षमा ही दान है, क्षमा सत्य है, क्षमा यश है क्षमा यज्ञ है और क्षमा धर्म है। इतना कहकर उन्होंने अपनी पुत्रियों को अन्तःपुर जाने का आदेश दिया। तत्पश्चात् अपने मंत्रियों के साथ बैठकर कन्याओं के विवाह के सम्बंध में विचार करने लगे। श्रीराम! उन्हीं दिनों चूली नाम से प्रसिद्ध एक मुनि वेदोक्त तप का अनुष्ठान कर रहे थे। उन तपस्वी मुनि की उपसाना वहां रहकर सोमदा नामक एक गंधर्व कुमारी किया करती थी। वह ऊर्मिला की पुत्री थी। उसकी सेवा से संतुष्ट हो एक दिन चूली ने उस कन्या से कहा-शुभे। मैं तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हूँ। बोलो तुम्हारा कौन सा कार्य सिद्ध करुँ। गंधर्व कन्या बोली-मुने! मैं अभी तक अविवाहिता हूँ और आगे भी रहूँगी क्योंकि मुझे आपकी ही सेवा करनी है फिर भी आप मुझे अपने ब्रह्म बल से एक पुत्र प्रदान करें। ब्रह्मर्षि चूली ने उसे अपने संकल्प से एक ब्रह्म तप सम्पन्न पुत्र प्रदान किया जिसका नाम ब्रह्मदत्त हुआ। श्रीराम! तदनंतर कुशनाभ ने उन्हीं ब्रह्मदत्त के साथ अपनी सौ कन्याओं का विवाह करने का निश्चय

Mookerji Sharma (IDS) Jammu Collection

किया। जब विवाह के समय जैसे ही उन कन्याओं के हाथों का स्पर्श ब्रह्म दत्त के हाथों से हुआ वैसे ही उन सब कन्या ओं का कुब्जापन समाप्त हो गया और वे निरोग होने लगीं। यह देखकर राजा कुशनाभ बड़े प्रसन्न हुए और ब्रह्म दत्त को उनकी पत्नियों के साथ आदरपूर्वक विदा कर दिया। उधर गंधर्वी सोमदा अपने पुत्र के योग्य वधुओं को पाकर उनका यथोचित अभिनंदन करती हुई वहाँ से प्रस्थान किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३ ३)

चौतीसवाँ सर्ग

गाधि की उत्पत्ति और कौशिकी की प्रशंसा

रघुनंदन ! ब्रह्म दत्त के चले जाने के बाद महाराज कुशनाभ ने पुत्र प्राप्ति के लिए एक पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया। उस समय महाराज कुश ने कुशनाभ से कहा-बेटा ! तुम शीघ्र ही गाधि नामक पुत्र प्राप्त करोगे। उसके द्वारा तुम संसार में अक्षय कीर्ति प्राप्त करोगे। इसके कुछ काल बाद कुशनाभ को धर्मात्मा गाधि नाम का एक पुत्र प्राप्त हुआ। श्रीराम ! वे ही धर्मात्मा गाधि मेरे पिता थे और कुशवंश में जन्म लेने के कारण मैं कौशिक कहलाता हूँ। इसके साथ मेरे एक ज्येष्ठ बहन भी थी। उसका नाम सत्यवती था और वह ऋचीक मुनि को ब्याही गयी थी। वह सशरीर अपने पति का अनुसरण कर स्वर्ग चली गयी थी और बाद में वही कौशिकी नदी के नाम से इस भूतल पर प्रकट होकर प्रवाहित होने लगी। श्रीराम ! मेरा स्नेह मेरी बहन कौशिकी के प्रति अधिक होने से मैं हिमालय के निकट उसी के तट पर निवास करता हूँ। किंतु यज्ञ सम्बंधी नियम की सिद्धि हेतु मुझे सिद्धाश्रम (बक्सर) आना पड़ा जो कि मुझे प्राप्त हो गया। महाबाहु ! मैंने शोणभद्र तटवर्ती देश का परिचय देते हुए अपने कुल की उत्पत्ति भी बतायी। अब मैं चाहता हूँ तुम लोग थोड़ी देर तक सो लो। ताकि अधिक जागरण करने से हमारी यात्रा में विघ्न न पड़े। श्रीराम देखो सारे वृक्ष निष्कम्प हो गये हैं तथा सम्पूर्ण दिशाएं अंधकारपूर्ण हो गयी हैं। चंद्रमा उदित हो रहा है तथा यक्ष-राक्षसों का समुदाय इधर-उधर विचर रहे हैं। इतना कहकर विश्वामित्र चुप हो गये। यह सुनकर वहाँ उपस्थित

Mookerji Sharda ... Jammu Collection

मुनियों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उन्हें साधुवाद देने लगे। इस प्रकार उन मुनियों द्वारा प्रशंसित होकर विश्वामित्र सुख की नींद लेने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

पैंतीसवाँ सर्ग

शोणभद्र पार कर विश्वामित्र आदि का गंगा के तट पर पहुँचना

इस तरह वह रात शोणभद्र के तट पर बिताने के बाद वे श्रीराम को जगाकर आगे बढ़ने की तैयारी करने लगे। नित्य कर्म पूर्ण करके श्रीराम चलने की तैयारी की और कहने लगे-ब्रह्मन् ! शोण भद्र तो अथाह है। हम इसे किस रास्ते से पार करेंगे ? श्रीराम के पूछने पर विश्वामित्र जी ने कहा-जिस मार्ग से महर्षिगण शोणभद्र पार करते हैं हम उसी मार्ग से जायेंगे। तदन्तर बहुत दूर का मार्ग तय कर लेने के बाद वे सरिताओं में श्रेष्ठ गंगाजी के तट पर पहुँचकर उनका दर्शन किया। वहां देवताओं और पितरों का तर्पण करने के बाद सभी महात्मा विश्वामित्र को चारों ओर से घेर कर बैठ गये। तब श्रीराम ने प्रसन्न चित्त होकर मुनि विश्वामित्र से पूछा-भगवन् ! मैं सुनना चाहता हूँ कि तीन मार्गों से प्रवाहित होनेवाली गंगाजी किस प्रकार तीन लोकों में घूमकर समुद्र में जा मिली हैं ? विश्वामित्र जी बोले-श्रीराम! पूर्वकाल में हिमवान नामक राजा की दो कन्याएं थीं। इनमें ज्येष्ठ का नाम गंगा और छोटी काम नाम उमा था। गंगा को देवताओं ने आगे चलकर गिरिराज हिमालय से देवकार्य सिद्धि के लिये माँग लिया। श्रीराम ! उनकी दूसरी पुत्री उमा कठोर व्रत का पालन करती हुई घोर तपस्या में लग गयीं। गिरिराज हिमालय ने उसके कठोरतप को देखकर उसका विवाह भगवान् रूद्र से कर दिया। इस प्रकार गंगा और भगवती उमा हिमालय की कन्याएँ हैं जिन्हें सारा संसार मस्तक झुकाता है। श्रीराम ! इस तरह मैंने तुम्हें गंगा की उत्पत्ति के बारे में सारी बातें बता दीं। अब यह भी सुन लो कि वह त्रिपथ गामिनी कैसे हुईं। पहले तो ये गंगा आकाश मार्ग में गयी। फिर देवनदी के रूप में देवलोक में आरूढ़ हुई। फिर जल रूप में प्रवाहित हो लोगों के पाप हरती हुई रसातल में

जा पहुँची।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

उमा देवी का पृथ्वी और देवताओं को शाप देना

तदनंतर श्रीराम लक्ष्मण ने विश्वामित्र से पूछा- ब्रह्मन् ! अब आप गंगा के दिव्य लोक और मनुष्य लोक से सम्बंध होने का वृतांत विस्तार से बतायें गंगा किस मार्ग से प्रवाहित होती हैं और उनका नाम त्रिपथगा क्यों पड़ा? ऋषि विश्वामित्र यह सुनकर बोले-जब महादेव को उमा के साथ रमण करते हुए कई वर्ष बीत गये और उन्हें कोई पुत्र न हुआ तो देवताओं को बड़ी चिंता हुई। यह देखकर वे सब मिलकर महादेव जी के पास गये और बोले- भगवन् ! आपको उमा के साथ रमण करते हुए सौ वर्ष हो गये और इस समय जब आपके पुत्र पैदा होगा तो उसका तेज कौन सह सकेगा। इसलिए हम देवताओं पर कृपा करते हुए आप उमा देवी के साथ तपस्या करें और हे त्रिलोकी नाथ! अपने तेज को तेज में ही बसाये रखिए जिससे सारे लोकों की रक्षा हो सके। देवताओं की इस विनती को सुनकर महादेवजी ने कहा- देवताओं! उमा सहित मैं अपने तेज को तेज में ही धारण कर लूँगा। किंतु यदि मेरा वह सर्वोत्तम तेज क्षुब्ध होकर स्खलित हो जाये तो उसे कौन धारण करेगा? देवतागण यह सुनकर बोले- भगवन्! आज जो तेज क्षुब्ध होकर गिरेगा उसे पृथ्वी देवी धारण करेगी। तब महादेवजी ने अपना तेज छोड़ दिया जिससे पर्वत और वनों सहित यह सारी पृथ्वी व्याप्त हो गयी। तब देवताओं ने अग्नि से कहा-अग्ने! तुम वायु के सहयोग से इस तेज को अपने भीतर रख लो। अग्नि से व्याप्त होने पर वह तेज श्वेत पर्वत के रूप में परिणित हो गया और साथ ही सरकडों का वन प्रकट हुआ और उसी वन में महातेजस्वी कार्तिकेय का जन्म हुआ। तदन्तर देवताओं ने भक्ति भाव से पार्वती और शंकर का पूजन किया। श्रीराम! किंतु इसके बाद पार्वती जी क्रोधित हो उठीं और देवताओं को शाप देते हुए कहा-मैंने पुत्र के लिए ही पति का समागम किया था किंतु तुम लोगों ने उसमें बाधा पहुँचायी। इस

कारण, अब तुम लोग भी अपनी पत्नियों से संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं रह जाओगे। इसके बाद उन्होंने पृथ्वी को भी शाप दिया भूमे ! तेरा एक रूप नहीं रह जायेगा तू बहुतों की भार्या हो जाओगी। मेरी तरह तू भी पुत्र जनित सुख का अनुभव न कर सकोगी। उन देवताओं को उमा देवी के शाप से दुखी होते देख भगवान शिव पश्चिम दिशा की ओर गये और वहाँ से हिमालय के शिखर पर पहुँचकर उमा देवी के साथ तप करने लगे। श्रीराम ! मैंने तुम्हें उमा का विस्तृत वृत्तान्त सुनाया अब तुम गंगा के अवतीर्ण होने की कथा सुनो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

गंगा से कार्तिकेय की उत्पत्ति

जब महादेव तप कर रहे थे उसी समय देवता अपने लिए सेनापति की इच्छा लेकर ब्रह्माजी के पास आये और बोले-प्रभो ! जिन भगवान महेश्वर ने हमें बीज रूप से सेनापति प्रदान किया था वे ही अब उमा देवी के साथ उत्तम तपस्या कर रहे हैं। पितामह ! अब लोक हित के लिए जो कर्तव्य उचित हो उसको आप पूर्ण कीजिए। यह सुनकर ब्रह्माजी ने कहा-देवताओं ! गिरिराज कुमारी पार्वती ने जो शाप दिया है उससे अब तुम्हारी पत्नियों के गर्भ से कोई संतान न होगी। अब उमा की बड़ी बहन आकाश गंगा के गर्भ से उस तेज को स्थापित कर अग्नि देव एक ऐसे पुत्र को जन्म देंगे जो देवताओं का समर्थ सेनापति होगा। गंगा अपने छोटी बहन के उस पुत्र को अपने ही पुत्र के समान मानेंगी। श्रीराम ! तदन्तर कैलाश पर्वत पर जाकर उन देवताओं ने अग्नि देव को पुत्र उत्पन्न करने के कार्य में नियुक्त करते हुए कहा-देव ! यह कार्य देवताओं का है आप भगवान शिव के उस महान तेज को गंगा जी में स्थापित कर दीजिये। देवताओं की यह बात सुनकर अग्निदेव गंगाजी के निकट आकर बोले-देवि! आप इस गर्भ को धारण करें क्योंकि यह देवताओं का प्रिय कार्य है। गंगाजी ने यह सुनकर जल रूप को छोड़कर रमणीय रूप धारण किया। उनका यह रूप देखकर अग्नि देव ने उस रुद्र तेज को उनके

सब ओर बिखेर दिया और गंगाजी को सब ओर से उस रुद्र तेज द्वारा अभिषिक्त कर दिया। तब गंगाजी ने अग्नि देव से कहा-देव! मैं आपके द्वारा स्थापित तेज को धारण करने में असमर्थ हो रही हूँ। यह सुनकर अग्नि ने गंगाजी से कहा कि अब आप इस गर्भ को हिमालय के पार्श्व भाग में स्थापित कर दीजिए। तब गंगा ने उस गर्भ को अपने स्रोतों से निकालकर यथोचित स्थान में रख दिया। यह गर्भ बड़ा ही तेजवान था वह जिस भूमि पर गिरा उस भूमि की वस्तुएँ स्वर्ण की हो गयीं और उस सथान के निकटवाली वस्तुएँ चाँदी की हो गयीं तथा उससे दूरस्थ की वस्तुएं तांबे और लोहे की हो गयीं। यह गर्भ एक आग के अंगारे केसमान था इसलिए इसके मल-मूत्र का रांगा और शीशा बना। जिस भूमि पर यह गिरा वह स्वर्ण का पर्वत हो गया। इस गर्भ से जिस बालक का जन्म हुआ देवताओं ने इसे दूध पिलाने के लिए कृत्तिकाओं को नियुक्त किया। इसीलिये यह बालक कार्तिकेय कहलाया। श्रीराम कार्तिकेय गर्भस्राव काल में स्कन्दित हुए थे इसलिए देवताओं ने इन्हें स्कंद कह कर पुकारा। तत्पश्चात् कृत्तिकाओं के स्तनों में परम उत्तम दूध प्रकट हुआ। उस समय स्कंद ने अपने छः मुख पैदाकर उन छओं का स्तनपान किया और अपने पराक्रम से दैत्यों की सारी सेनाओं पर विजय प्राप्त की और देवताओं के सेनापति बनें। श्रीराम! मैंने तुम्हें गंगाजी के प्रसंग के साथ कार्तिकेय के जन्म का प्रसंग भी सुनाया। यह कथा श्रोताओं को पुण्यात्मा बनाने वाली है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

अड़तीसवाँ सर्ग

राजा सगर के पुत्रों की उत्पत्ति

इस कथा को सुनाने के बाद विश्वामित्र ने दूसरी कथा प्रारंभ की। वे बोले वीर! पूर्वकाल में अयोध्या में सगर नाम से प्रसिद्ध एक धर्मात्मा राजा थे। उनके पत्नियों के नाम केशिनी और सुमतिथा उनके कोई संतानन थी अतएव वे संतान के लिए हिमालय पर जाकर तप करने लगे। इस तपस्या के

सौ वर्ष पूर्ण होने पर। महर्षि भृगु ने उन्हें वर दिया-निष्पाप नरेश! तुम्हे बहुत से पुत्रों को प्राप्ति होगी। किंतु तुम्हारी एक पत्नी से एक ही पुत्र होगा जो तुम्हारे वंश परम्परा का विस्तार करनेवाला होगा तथा दूसरी पत्नी साठ हजार पुत्रों की जननी होगी। यह सुनकर दोनों रानियों ने हाथ जोड़कर पूछा, ब्रह्मन् ! किस रानी के एक पुत्र होगा और कौन साठ हजार पुत्रों की माता होगी। इस पर भृगु ने दोनों से अपनी-अपनी इच्छाएँ प्रकट करने के लिए कहा। उनके इस वचन को सुनकर केशिनी ने वंश चलानेवाले एक ही पुत्र की मांग की। सुमति ने साठ हजार यशस्वी पुत्र होने का वर माँगा। कुछ काल पश्चात् केशिनी ने सगर के औरस पुत्र 'असमंज' को ज़न्म दिया। सुमति ने तुम्बी के आकार का एक गर्भ पिण्ड उत्पन्न किया। उसको फोड़ने से साठ हजार बालक निकले। धीरे-धीरे वे ही बालक युवास्था को पाकर सगर के साठ हजार पुत्र हुए। इधर सगर का ज्येष्ठ पुत्र असमंज नगर के बालकों को पकड़ कर सरयू के जल में डूबा देता और उन डूबते हुए बालकों को देखकर खूब हँसा करता। उसके इस पापाचार को देखकर एक दिन राजा सगर ने उसे नगर के बाहर निकाल दिया। असमंज के पुत्र का नाम अंशुमान था। वह बड़ा पराक्रमी और सबका प्रिय था। नरश्रेष्ठ! कुछ काल के पश्चात् महाराज सगर को यज्ञ करने का विचार हुआ और फिर वे इसकी तैयारी में लग गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में

अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३८)

उन्तालिसवाँ सर्ग

राजा सगर के अश्व का अपहरण, सगर पुत्रों का सारी पृथ्वी का भेदन

श्रीराम ने विश्वामित्र कीयह कथा सुनकर कहा-मुने! मैं इस कथा को विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ। विश्वामित्र बोले, राम! तुम उनके यज्ञ का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनो! राजा सगर ने हिमालय और विंध्याचल के बीच के स्थान को यज्ञ के लिए उत्तम माना। उस यज्ञिय अश्व के रक्षा का भार महारथी अंशुमान ने स्वीकार किया। लेकिन यज्ञ सम्बंधी इस घोड़े को इन्द्र ने

राक्षस का रूप धारण करके चुरा लिया। यह देखकर पुरोहितों ने राजा से कहा-राजन्! कोई यज्ञ सम्बंधी घोड़े को चुरा ले गया है आप चोर को मारकर घोड़ा वापस लाइये, क्योंकि यह अमंगल सूचक है। सगर ने यह सुनकर अपने साठ हजार पुत्रों से कहा-पुत्रों! इस यज्ञ में कोई राक्षस आ सके यह सम्भव नहीं,अतः उसे चुरानेवाला कोई देवकोटि का पुरुष होगा। अतः अश्व की खोज में पृथ्वी का चप्पा-चप्पा देख डालो और जब तक अश्व न मिले इस पृथ्वी को भी खोदकर ढूंढ़ निकालो। मैं यज्ञ की दीक्षा ले चुका हूँ इसलिए स्वयं नहीं जा सकता। अश्व का पता लगने तक मैं पुरोहित और पौत्र अंशुमान के साथ यहीं रहूँगा। श्रीराम! तत्पश्चात् सगर पुत्र सारी पृथ्वी का चक्कर लगाने के बाद भी अश्व को न पा सके। तब उन्होंने अपनी भुजाओं द्वारा पृथ्वी को खोदना प्रारंभ किया। रघुनंदन! उस समय शूलों से विदीर्ण की जानेवाली पृथ्वी आर्तनाद कर उठी। उनके द्वारा मारे जानेवाले नाग, राक्षस तथा अन्य प्राणी भी भयंकर चीत्कार करने लगे। इसी समय गंधर्व, असुरों और नागों सहित सभी देवता घबरा उठे और ब्रह्माजी के पास जाकर उनसे बोले-भगवन्! सगर के पुत्र इस पृथ्वी को खोदे डालते हैं और अनेक महात्माओं और जलचारी जीवों को यह कहकर मारे डालते हैं कि उन्हीं लोगों ने हमारा अश्व चुराकर हमारे यज्ञ में विघ्न डाला है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में उन्तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३९)

चालीसवाँ सर्ग

ब्रह्माजी का देवताओं को शान्त करना और सगर पुत्रों का कपिलजी के रोष से भस्म होना।

तदनन्तर ब्रह्माजी ने उन सब लोगों से कहा- देवगण! पृथ्वी जिस लक्ष्मीपति की रानी है वे ही कपिलमुनि का रूप धारण करेंगे और उन्हीं के कोपाग्नि से ये सारे राजकुमार जलकर भस्म हो जायेंगे। पृथ्वी का यह भेदन हर कल्प से होता आया है अतएव इसके लिये शोक व्यर्थ है। ब्रह्माजी के इस वचन से संतुष्ट होकर देवता जिस ढंग से आये थे उसी ढंग से चले गये। इधर सारी पृथ्वी खोद डालने के बाद भी जब उन्हें अश्व न मिला तो वे खाली हाथ

Mookerji sharing (HFG) Jammu Collection

लौटकर अपने पिता से बोले- पिताजी ! सारी पृथ्वी खोद डालने के बाद भी हमें न तो अश्व ही मिला न उसका चुरानेवाला। अब हमें क्या करना है इसे आप ही बतायें। यह सुनकर राजा सगर ने कहा- तुम लोग पुनः जाओ और सारी पृथ्वी विदीर्ण करके अश्व का पता लगाओ।

अब अपने पिता की आज्ञा मानकर साठ हजार राजकुमार रसातल की ओर बढ़े और रोष में भरकर सारी पृथ्वी खोदने लगे। इसी समय उन्हें भूतल को धारण किये हुए विरुपाक्ष नामक एक दिग्गज दिखायी दिया। श्रीराम ! जिस समय वह महान् दिग्गज थक कर अपना मस्तक इधर-उधर हटाता था उस समय भूकम्प होने लगता था अब उस दिग्गज का सम्मान करते हुए वे फिर अपने काम में लग गये। इस तरह पूर्व दिशा का भेदन करने के बाद जब वे दक्षिण दिशा की भूमि खोदने लगे तो उन्हें पुनः एक महान दिग्गज दिखायी पड़ा। उसका नाम महापद्म था सगर पुत्रों ने उसकी भी परिक्रमा करके पश्चिम दिशा की भूमि खोदने लगे। यहाँ उन्हें सौमनस नामक दिग्गज के दर्शन हुए। अब वे उसकी भी परिक्रमा करके उत्तर दिशा की ओर पहुँचे। श्रीराम ! उत्तर दिशा की ओर उन्हें श्वेत भद्र नामक दिग्गज दिखायी दिया। उसका भी कुशल समाचार पूछकर वे सब पूर्वोत्तर दिशा में गये और रोषपूर्वक वहाँ भी पृथ्वी खोदनी शुरू की। इस बार उन्होंने वासुदेव स्वरूप भगवान कपिल को देखा। राजा सगर के यज्ञ का घोड़ा भी वहीं चरता हुआ दिखायी पड़ा। अब उन्होंने भगवान कपिल को ही यज्ञ का घोड़ा चुरानेवाला समझकर उनकी ओर हल और पत्थरों के टुकड़े लेकर दौड़े तथा उन्हें भला बुरा कहने लगे। यह देखकर कपिलमुनि क्रोध से भर उठे और उनके मुंह से एक हुंकार निकल पड़ा और फिर उस हुंकार ने देखते ही देखते राजा सगर के पुत्रों को जलाकर राख कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४०)

इकतालीसवाँ सर्ग

अंशुमान का रसातल में जाकर घोड़े को लाना और चाचाओं के निधन का समाचार देना।

श्रीराम!पुत्रों को बहुत दिन तक न लौटते हुए देखकर राजा सगर ने अपने पौत्र अंशुमान से कहा– तुम अपने चाचाओं का अनुसरण करते हुए चोर का पता लगाओ और अपने शत्रुओं से टक्कर लेने के लिए तुम तलवार और धनुष भी लेते जाओ। मार्ग में बंदनीय पुरुषों को प्रणाम करना और विघ्न डालनेवालों को मार डालना ऐसा करते हुए सफल मनोरथ लेकर लौटो और मेरे इस यज्ञ को पूर्ण कराओ। महाराजा सगर की बात सुनकर अंशुमान तलवार और धनुष लेकर चल दिया। श्रीराम ! उनके चाचाओं ने पृथ्वी के भीतर जो मार्ग बना दिया था वह उसी मार्ग से गया। वहां उसे एक दिग्गज दिखायी पड़ा। अंशुमान ने उसकी परिक्रमा करके अपने चाचाओं का हाल तथा अश्व चुरानेवाले का पता पूछा। यह सुनकर दिग्गज ने कहा, तुम अपना कार्य सिद्ध करके घोड़ा सहित शीघ्र वापस लौटोगे। उससे यह आशीर्वाद प्राप्त कर अंशुमान शीघ्रतापूर्वक चलकर उस स्थान पर पहुँचा जहाँ सगरपुत्रों के राख के ढेर पड़े थे। अंशुमान यह देखकर फूट-फूट कर रोने लगा। उसे यज्ञ का घोड़ा भी वहां पास में चरता हुआ दिखायी पड़ा। इस समय अंशुमान ने उन राजकुमारों को जलांजलि देना चाहा किंतु इसके लिए उन्हें आसपास कोई जलाशय न दिखायी पड़ा। लेकिन अचानक इसी समय उन्हें दूर से पक्षीराज गरुड़ आते दिखायी दिये। वे सगर पुत्रों के मामा थे। उन्होंने अंशुमान को समझाया कि राजकुमार का बध सम्पूर्ण जगत के मंगल के लिए हुआ है। इसलिए इनका तर्पण हिमवान की ज्येष्ठ पुत्री गंगा जी के जल से करो। उन्हीं के जल के स्पर्श से इनकी भस्म राशि स्वर्ग लोक में जायेगी। अब तुम अपने यज्ञ का घोड़ा लेकर लौट जाओ और पितामह का यज्ञ पूरा करो। श्रीराम ! तब अंशुमान घोड़ा लेकर लौट आये और अपने दादा से गरुड़ की मारी बातें कह सुनायी। इस दुखद समाचार को सुनने के बाद भी राजा सगर ने नियमपूर्वक अपना यज्ञ पूरा किया। किंतु गंगा जी कैसे लायी जायें इसके लिए उन्हें कोई निश्चित उपाय नहीं सूझा। अंत में तीस हजार वर्षों तक राज्य करके वे स्वर्ग

चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में इकतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालीसवाँ सर्ग

अंशुमान और भगीरथ की तपस्या तथा गंगाजी को धारण करने के लिए शंकर जी को राजी करना।

श्रीराम! सगर की मृत्यु के बाद अंशुमान राजा बने। अंशुमान के पुत्र का नाम दिलीप था। अब उसे ही अपना राज्य देकर अंशुमान हिमालय पर तपस्या करने चले गये और बत्तीस हजार वर्षों तक तप करने के बाद स्वर्ग प्राप्त किया। फिर दिलीप भी इसी चिंता में रहने लगे कि स्वर्ग से गंगाजी को कैसे लाया जाये आखिर वे इसी चिंता में रोगी होकर मृत्यु को प्राप्त हुए। दिलीप के पुत्र का नाम भगीरथ था। रघुनंदन! भगीरथ के कोई संतान न थी। यद्यपि उनके मन में पुत्र प्राप्ति की इच्छा थी फिर भी वे राज्य के रक्षा का भार मंत्रियों पर सौंप कर गंगाजी को धरती पर उतारने का प्रयत्न करने लगे। इसके लिए उन्होंने एक हजार वर्षों तक घोर तपस्या की। उनके तप से ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उनसे कहा– नरेश्वर! तुम कोई वर माँगों। तब भगीरथ ने हाथ जोड़कर उनसे कहा– यदि आप इस तपस्या का मुझे कोई अच्छा फल देना चाहते हैं तो सगर पुत्रों को मेरे हाथों से गंगाजी का जल प्राप्त हो। देव! मैं संतान के लिए भी प्रार्थना करता हूं ताकि हमारे कुल की परम्परा कभी नष्ट न हो। मेरे द्वारा मांगा गया उत्तम वर सम्पूर्ण इक्ष्वाकुवंश पर लागू होना चाहिए। राजा भगीरथ के इस तरह कहने पर ब्रह्माजी बोले– राजा भगीरथ तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण होगा, किंतु गंगाजी को अवतरित होने पर उन्हें धारण करने के लिए तुम्हें भगवान शंकर को तैयार करना होगा, क्योंकि उन्हें धारण करने की शक्ति शंकर के सिवा और किसी में नहीं है। राजा से ऐसा कहकर उन्होंने भगवती गंगा से भी भगीरथ पर अनुग्रह करने के लिए कहा और वहां से स्वर्ग लोक चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बयालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैतालीसवाँ सर्ग

भगवान् शंकर का गंगाजी को धारण करना और भगीरथ का उद्धार होना।

श्रीराम! तत्पश्चात् भगीरथ पृथ्वी पर केवल अंगूठे के अग्रभाग को टिकाए हुए एक वर्ष तक भगवान शंकर की उपासना में लगे रहे। एक वर्ष पूरा होने पर शंकर जी ने प्रसन्न होकर कहा– नर श्रेष्ठ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। मैं अपने मस्तक पर गंगा देवी को अवश्य धारण करूँगा। इसी समय गंगाजी बड़े वेग के साथ आकाश से उतर कर भगवान शंकर के मस्तक पर गिरीं। उस समय गंगाजी ने सोचा था कि मैं अपने वेग से उन्हें लेकर पाताल में घुस जाऊँगी। किंतु उनके इस अहंकार से भगवान शंकर कुपित हो उठे और उन्हें अदृश्य कर देने का विचार किया। फिर क्या था? गंगाजी उनकी जटा में उलझ गयीं और उन्हें बाहर निकलने का मार्ग ही न मिला। भगीरथ ने पुनः अपने तप से शंकरजी को प्रसन्न किया, अब शंकरजी ने गंगाजी को ले जाकर विन्दु सरोवर में छोड़ दिया। वहाँ छूटते ही उनकी सात धाराएँ हो गयीं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी ये कल्याणमयी तीन धाराएँ पूर्व दिशा की ओर चली गयीं। सुचक्षु, सीता और सिन्धु इन नामों से वे पश्चिम की ओर प्रभावित हुईं तत्पश्चात् सातवीं धारा महाराज भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चलने लगी। गंगावतरण के इस अनुपम दृश्य को देखने के लिए अमित तेजस्वी देवताओं का समूह भी वहां आ जुटा। गंगा की वह धारा कहीं तेज और कहीं टेढ़ी और कहीं चौड़ी होकर बहती थी। वह जल बार-बार ऊँचे मार्ग पर उठता और पुनः नीचे-नीची भूमि पर आ गिरता। उस समय भूतल निवासी ऋषि और गंधर्व यह सोचकर कि भगवान शंकर के मस्तक से गिरा हुआ यह जल बहुत पवित्र है, आचमन करने लगे। जो शाप भ्रष्ट होकर आकाश से पृथ्वी पर आ गयेथे। वे भी इसमें स्नान कर निष्पाप हो गये। श्रीराम उस समय समस्त देवता, दैत्य, दानव, राक्षस, गंधर्व किन्नर नाग सर्प तथा अप्सरा भी प्रसन्नता के साथ उस समय भगीरथ के रथ के पीछे-पीछे चल रहे थे। जिस ओर राजा भगीरथ जाते उसी ओर यशस्विनी गंगाजी जाती थीं। उस समय मार्ग में राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगाजी अपने जल प्रवाह से

उनके यज्ञ मंडप को बहा ले गयीं। राजा जह्नु गंगाजी के इस गर्व से कुपित हो गंगाजी के उस समस्त जल को ही पी लिया। तब देवता गंधर्व आदि उन्हें पाने के लिए महात्मा जह्नु की स्तुति करने लगे। उन्होंने जह्नु को उनका पिता बना दिया। इससे प्रसन्न होकर महातेजस्वी जह्नु अपने कानों के छिद्र से गंगाजी को पुनः प्रकट कर दिया। इसी से वह जाह्नवी कहलायीं। वहाँ से गंगाजी फिर भगीरथ के रथ का अनुशरण करती हुई आगे बढ़ीं। फिर भगीरथ के साथ वहां पहुँचीं जहां सगर के साठ हजार पुत्रों का भस्म पड़ा था। गंगा जल का स्पर्श होते ही उन साठ हजार पुत्रों को स्वर्ग की प्राप्ति हो गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तिरालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालिसवाँ सर्ग

गंगावतरण के उपाख्यान की महिमा

श्रीराम! इस प्रकार गंगाजी को साथ लिये राजा भगीरथ ने समुद्र तक जाकर रसातल में, जहाँ उनके पूर्वज भस्म हुए थे, प्रवेश किया। वह भस्मराशि जब गंगाजी के जल से आप्लावित हो गई, तब सम्पूर्ण लोकों के स्वामी भगवान् ब्रह्मा ने वहाँ पधार कर राजा से इस प्रकार कहा-

नरश्रेष्ठ! महात्मा राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का तुमने उद्धार कर दिया। अब वे देवताओं की भाँति स्वर्गलोक में जा पहुँचे। ये गंगा तुम्हारी भी ज्येष्ठ पुत्री होकर रहेंगी और तुम्हारे नाम पर रखे हुए भागीरथी नाम से इस जगत् में विख्यात होंगी। नरेश्वर! महाराज! अब तुम गंगाजी के जल से यहाँ अपने सभी पितामहों का तर्पण करो और इस प्रकार अपनी तथा अपने पूर्वजों द्वारा की हुई प्रतिज्ञा को पूरी कर लो। हे महाभाग! तुम्हारे पूर्वज राजर्षि अंशुमान् तथा तुम्हारे तेजस्वी पिता दिलीप भी गंगा को यहाँ लाने की इच्छा करके भी इस कार्य में सफल न हो सके। तुमने जो गंगाजी को पृथ्वी पर उतारने का कार्य पूरा किया है, इससे

उस महान् ब्रह्मलोक पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। गंगा जी का जल सदा ही स्नान के योग्य है। तुम स्वयं भी इसमें स्नान करो और पवित्र होकर पुण्य का फल प्राप्त करो। अब मैं अपने लोक को जाऊँगा। तुम भी अपनी राजधानी को लौट जाओ। तब महाराजा भगीरथ ने विधिवत् तर्पण करके अपने नगर को लौट गये और राज्य का शासन करने लगे। श्रीराम! यह गंगाजी की कथा मैंने तुम्हें कह सुनाई। तुम्हारा कल्याण हो। अब जाओ, मंगलमय सन्ध्यावन्दन आदि का कार्य करो। जो इस कथा को सुनता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौवालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैतालीसवाँ सर्ग

क्षीर सागर मंथन, रुद्र का विषपान, अमृत आदि की उत्पत्ति, दैत्यों का संहार

विश्वामित्र की बातें सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण को बड़ा विस्मय हुआ और वे मुनि से बोले-मुने ! आपके इस अद्‌भुत कथा से हम दोनों भाइयों की यह रात एक क्षण के समान बीत गयी। तत्पश्चात् प्रातः काल होने पर जब विश्वामित्र जी नित्यकर्म से निवृत्त हो चुके तो श्रीरामचन्द्र उनके पास जाकर बोले मुने ! अब हम लोग गंगाजी के पार चलें। ऋषियों की नाव हमें ले जाने के लिए तीव्रगति से यहाँ आयी है। विश्वामित्र जी फिर राम तथा लक्ष्मण सहित पार उतरे। वहाँ पहुँचने पर वे लोग विशालापुरी की शोभा देखने लगे। इस सुन्दर पुरी को देखकर श्रीराम ने विश्वामित्र जी से पूछा-कृपा करके बतायें यहाँ कौन सा राज्यवंश राज्य करता है। श्रीविश्वामित्र जी बोले-श्रीराम सत्युग में दिति के पुत्र दैत्य और अदिति के पुत्र देवता दोनों ही बड़े शक्तिशाली थे। उस समय दोनों के ही मन में यह विचार आया कि अजर-अमर तथा निरोग कैसे बना जाये? इस प्रकार चिंतन करने से दोनों के ही बुद्धि में यह बात आयी कि यदि सागर का मंथन हो तो निश्चय हीअमृतमय

Mookerji Sharma ... Jammu Collection

रस प्राप्त किया जा सकता है। अब यह विचार मन में आते ही उन्होंने वासुकि नाग की रस्सी तथा मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर सागर मथना आरम्भ किया। तदंतर एक हजार वर्ष बीतने पर रस्सी बने हुए वासुकि के मुख से विष निकलने लगा जिससे सम्पूर्ण जगत् दग्ध हो उठा। यह देखकर समस्त देवता गण त्राहि-त्राहि करते हुए शंकरजी के पास जाकर उनकी स्तुति करने लगे। देवताओं को दुखी देखकर शंकरजी ने उस विष को कंठ में धारण कर लियाऔर देवताओं को संतुष्ट किया। तत्पश्चात् समुद्र मंथन का कार्य फिर आरंभ हुआ। किंतु इस बार उनका मथानी बना पर्वत पाताल चला गया। तब देवगण विष्णु की स्तुति करने लगे। यह देखकर विष्णु तुरंत कछुए का रूप धारण कर उस मथानी को अपनी पीठ पर रख लिया फिर पुरुषोत्तम भगवान केशव ने उस पर्वत शिखर के ऊपर अपना हाथ रख दिया ताकि वह उठ न सके। तदनंतर एक हजार वर्ष बीतने पर उस क्षीर सागर से भगवान् धन्वन्तरि कुछ अप्सराओं के साथ अवतरित हुए। उन अप्सराओं के साथ उनकी दासियाँ जिनकी गणना ही नहीं की जा सकती थी, बाहर आयीं। तत्पश्चात् वरुण की कन्या वारुणी (सुरा) भी प्रकट होकर अपने योग्य पुरुष की खोज करने लगी। दैत्यों ने इस वरुण कन्या (सुरा) को ग्रहण नहीं किया इसलिए असुर कहलाये। इधर अदिति के पुत्रों ने इस सुरा को ग्रहण कर लिया इसलिए सुर कहलाये। नर श्रेष्ठ! तदनंतर घोड़ों में उत्तम उच्चैःश्रवा,मणि रत्न, कौस्तुभ तथा अमृत का प्राकट्य हुआ। अब उस अमृत को पाने के लिए समस्या दैत्य देवताओं के साथ युद्ध करने लगे। किंतु उसी समय श्री विष्णु ने अपने माया बल से उस अमृत का हरण कर लिया और जो दैत्य उसे छीनने के लिए गये उन लोगों को उन्होंने युद्ध में पीस डाला। इस तरह इस युद्ध में दैत्यों का काफी संख्या में संहार हुआ और इन्द्र को त्रिलोकी का राज्य प्राप्त हुआ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पैंतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

पुत्र वध से दुखी दिति का कुशप्लव में तप करना

दिति को अपने पुत्रों के संहार होने से बड़ा दुःख हुआ और वे इसके लिए कश्यपजी के पास जाकर बोलीं-भगवन्। मेरे पुत्रों को देवताओं ने मार डाला है अतः मैं घोर तपस्या करके ऐसा पुत्र पाना चाहती हूँ जो इन्द्र का बध कर सके। दिति की यह बातसुनकरकश्यप जी बोले-तपोधने! ऐसा ही होगा। यदि तुम पूरे एक सहस्र वर्ष तक पवित्रतापूर्वक रह सकोगी तो तुम मुझसे ऐसा पुत्र प्राप्त कर सकोगी। दिति यह सुनकर उत्साहपूर्वक कुशप्लव नामक तपोवन में आकर कठोर तप करने लगीं। उस समय इन्द्र विनयपूर्वक उनकी सेवा टहल करने लगे। श्रीराम! जब सहस्र वर्ष पूरे होने में केवल दसवर्ष रह गये तो एक दिन दिति ने इन्द्र से कहा-वीर! अब मेरे तप के केवल दस वर्ष शेष रह गये हैं। दस वर्ष पूर्ण होते ही तुम अपने होनेवाले भाई को देख सकोगे। बेटा! मैंने उसे तुम्हारे विनाश के लिए उत्पन्न करना चाहा था किंतु अब जिस समय वह तुम्हें जीतने के लिए उत्सुक होगा मैं उसे शांत कर मातृ स्नेह से पूर्ण कर दूंगी। इतना कहकर दिति निद्रा से अचेत हो गयीं और बिलकुल अपवित्र अवस्था में आ गयीं। यह देखकर इन्द्र तुरंत माता दिति के उदर में प्रवेश कर गये और उसमें स्थिति गर्भ के सात टुकड़े कर डाले। अब इस तरह टुकड़े किये जाने से वह बालक जोर से रो पड़ा। लेकिन उस रोते हुए बच्चे का भी उन्होंने सात टुकड़े कर ही दिया फिर उदर से निकलकर दिति से बोले-देवि? तुम्हारे सिर के बाल पैरों से लगे थे। इस प्रकार तुम अपवित्र अवस्था में सोयी थी। यही छिद्र पाकर मैंने उस बालक के सात टुकड़े कर डाले। अब तुम मेरे इस अपराध को क्षमा कर दो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छियालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४६)

सैंतालीसवाँ सर्ग

दिति का अपने पुत्रों को मरुद्गण बनाकर देवलोक में रखने का अनुरोध

अपने गर्भ के सात टुकड़े हुए देखकर दिति को बड़ा दुःख हुआ। फिर भी वे इन्द्र से बोलीं-देवेश! तुमने जो क्रूरता पूर्वक कर्म किया इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं। फिर भी मेरी इच्छा है कि मेरे गर्भ के वे सातों खण्ड सात व्यक्ति होकर सात मारूत के नाम से विख्यात होकर जो आकाश में सुविख्यात सात बात स्कन्ध हैं उनमें विचरे। दिति का यह वचन सुनकर इन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा-माँ! तुमने जैसा कहा है वैसा ही होगा। तुम्हारे ये पुत्र अब देव रूप होकर विचरण किया करेंगे। श्रीराम! इतना कहने के बाद वे दोनों माता-पुत्र (दिति और इन्द्र) कृतकृत्य हो स्वर्ग लोक को चले गये और यह वही स्थान है जहां देवराज इन्द्र ने तप में लीन दिति की सेवा टहल की थी। फिर इक्ष्वाकु के परम धर्मात्मा पुत्र जो विशाल नाम से प्रसिद्ध हुए इसी स्थान पर विशाला नाम की पुरी बसायी थी। श्रीराम! विशाल के पुत्र हेमचंद्र, हेमचंद्र के सुचन्द्र और सुचन्द्र के पुत्र धूम्राश्व हुए। धूम्राश्व के सृजंय, सृजंय के सहदेव, सहदेव के कुशाश्व पैदा हुए। कुशाश्व के सोमदत्त हुए और सोमदत्त के पुत्र काकुत्स्थ नाम से विख्यात हुए। काकुत्स्थ के पुत्र सुमति हुए और वे ही सुमति वर्तमान समय में इस पुरी में निवास करते हैं। यहाँ के सभी राजा धार्मिक और पराक्रमी हुआ करते हैं। नरश्रेष्ठ! आज हम लोग यहाँ सुखपूर्वक शयन करेंगे तत्पश्चात् यहां से चलकर मिथिला के राजा जनक का दर्शन करेंगे। उस समय राजा सुमति विश्वामित्र को अपनी नगरी में आया हुआ देखकर उनकी अगवानी के लिए स्वयं आये और बोले-मुने! आप मेरे राज्य में आये इसके लिए मैं अनुगृहीत हूँ। मुझसे बढ़कर सौभाग्यशाली और कौन है?

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सैंतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४७)

अड़तालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का मुनियों सहित मिथिलापुरी में पहुँचना, अहल्या का शाप प्राप्त की कथा सुनाना

तदनंतर सुमति ने श्रीराम और लक्ष्मण की ओर देखकर कहा- ब्रह्मन् ! ये दोनों राजकुमार, जिनकी चाल-ढाल हाथी और सिंह के समान है तथा जिन्हें देखकर लगता है कि देवकुमार किसी शापवश पृथ्वी पर आ गये हैं, ये वास्तव में कौन हैं। ये किनके पुत्र हैं और कैसे, किसलिए यहाँ पैदल आये हैं ? सुमति का यह वचन सुनकर विश्वामित्र ने उन्हें सब वृतान्त विस्तारपूर्वक सुना दिया। राजा सुमति को विश्वामित्र की बात सुनकर बड़ा विस्मय हुआ। तत्पश्चात् वहाँ एक रात बिताने के बाद उन सब लोगों ने मिथिला की ओर प्रस्थान किया। फिर मिथिला में पहुँचकर जनकपुरी की शोभा देखकर सभी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। वहीं श्रीराम को एक पुराना आश्रम दिखायी दिया जो रमणीक होते हुए भी बहुत सूना-सूना दिखायी पड़ रहा था। श्रीराम के पूछने पर विश्वामित्र ने बताया रघुनंदन ! पूर्व काल में यहाँ महात्मा गौतम का आश्रम था। यहाँ उन्होंने बहुत वर्षों तक तपस्या की थी। एक दिन जब महर्षि गौतम आश्रम पर नहीं थे उस समय इन्द्र गौतम का वेश बनाकर वहाँ पहुँचा और मुनि पत्नी के साथ समागम किया। यद्यपि मुनि पत्नी ने उसे पहचान लिया था फिर भी दुर्बुद्धि के कारण वह इंकार न कर सकी। अब इन्द्र जैसे ही समागम के पश्चात् कुटी से बाहर निकले वैसे ही महर्षि गौतम भी वहाँ आ पहुँचे। इन्द्र उन्हें देखते ही भयभीत होकर भागने लगा। लेकिन महर्षि ने अपने तपोबल से सब कुछ जान लिया था। इसलिये उन्होंने रोष में भरकर इन्द्र को शाप दे दिया कि वह इस कुकृत्य के लिए अण्डकोष रहित हो जायेगा। महात्मा गौतम के ऐसा कहने पर इन्द्र के दोनों अण्डकोष पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर उन्होंने अपनी पत्नी को शाप दिया- दुराचारिणी। तू भी यहाँ कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीती हुई राख में पड़ी रहेगी। जब दशरथ कुमार राम इस घोर वन में पदार्पण करेंगे केवल उस समय ही तू पवित्र होगी। उनका आतिथ्य सत्कार करके तू मेरे पास पहुँचकर

अपना पूर्ण शरीर धारण कर लेगी। इतना कहकर महर्षि गौतम वहाँ से चले गये और हिमालय के शिखर पर तपस्या करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में अड़तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४८)

उन्चासवाँ सर्ग

पितृ देवताओं द्वारा इन्द्र को भेड़ के अण्डकोष से युक्त करना तथा अहल्या का उद्धार

श्रीराम? उस समय इन्द्र अण्डकोष रहित होकर बहुत भयभीत हो गये। तब वे अग्नि आदि देवताओं के पास जाकर बोले-देवताओं मैं गौतम की तपस्यामें विघ्न डालकर देवताओं का ही कार्य सिद्ध किया है क्योंकि अगर मैं उन्हें क्रोधित न करता तो वे अपने तप के बल से देवताओं का राज्य ही छीन लेते। इसलिए श्रेष्ठ देवताओं! तुम अब मुझे अण्डकोष से युक्त करो। यह सुनकर अग्नि आदि सभी देवता पितृ देवताओं से जाकर बोले-आपका भेड़ा अण्डकोष से युक्त है और इन्द्र अण्डकोष रहित है। अत: इस भेड़ के दोनों अण्डकोषों को आप शीघ्र मुझे दे दीजिये। अग्नि की इस बात को सुनकर पितृ देवताओं ने एकत्र हो भेड़ के अण्डकोषों को उखाड़कर इन्द्र के शरीर में यथा स्थान जोड़ दिया। महातेजस्वी राम! अब तुम उस पुण्यकर्मा महर्षि गौतम के आश्रम पर चलकर अहल्या का उद्धार करो। तब महर्षि को आगे करके उन दोनों ने आश्रम में प्रवेश किया और देखा कि अपनी तपस्या में अहल्या देदीप्यमान थी। जिसे इस लोक के मनुष्य तथा देवता भी नहीं देख सकते थे, क्योंकि वे महर्षि के शाप के कारण किसी को भी नहीं दिखायी पड़ती थी तथा उसका सारा अंग प्रत्यंग धूल से ढका था। अब श्रीराम के दर्शन मिल जाने से वे सबको दिखलायी पड़ने लगीं। इस समय श्रीराम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ अहल्या के चरण स्पर्श किये और अहल्या ने मुनि के वचनों को याद कर उनका बड़ा आदर सत्कार किया। इस तरह अहल्या अपनी तप शक्ति से विशुद्ध होकर महर्षि गौतम के पास चली गयीं और श्रीराम भी

मुनिवर के साथ मिथिलापुरी को गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में उन्चासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

पचासवाँ सर्ग

श्रीराम आदि का मिथिला गमन तथा जनक द्वारा विश्वामित्र का सत्कार

तदनंतर श्रीराम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र के साथ मिथिला नरेश के यज्ञ मण्डप में जा पहुँचे। वहाँ श्रीराम अनेक ऋषि मुनि तथा राजाओं के दर्शन किये जो यज्ञ देखने के लिए पधारे थे। यह सब देखने के बाद श्रीराम ने विश्वामित्र से कहा मुनि ! अब कोई ऐसा स्थान निश्चित कीजिये जहां हम लोग भी डेरा डाल सकें। श्रीराम के वचन सुनकर मुनि ने अपना निवास स्थान एकांत में बनाया जहाँ पानी आदि की अच्छी सुविधा थी। इधर जब जनक को मालूम हुआ कि विश्वामित्र जी आये हैं तो वे अपने पुरोहित शतानंद को आगे करके उनके स्वागत के लिये चल पड़े। उनका स्वागत सत्कार प्राप्त करने केबाद मुनि ने उनसे कुशल समाचार पूछा और यज्ञ की स्थिति के बारे में जिज्ञासा की और तत्पश्चात् वहां आये हुए सभी मंत्रियों से यथायोग्य भेंट की। इसके बाद राजा जनक उनसे बोले-भगवन्! आप ऋषियों सहित अपने-अपने आसनों पर विराजमान होइये। विश्वामित्र के आसन पर बैठ जाने के पश्चात् मंत्रियों सहित राजा भी अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। फिर राजा ने विश्वामित्र से कहा-भगवन्! आज देवताओं ने मेरे यज्ञ की आयोजना सफल कर दी है। हे मुनिराज ! अब यह भी बतायें ये दोनों वीर राजकुमार जो प्रफुल्ल कमल दल के समान सुशोभित हैं ये कौन हैं और यहाँ किस उद्देश्य से पैदल ही पधारे हैं। जैसे सूर्य और चन्द्रमा आकाश की शोभा बढ़ाते हैं वैसे ही ये मेरे देश की शोभा बढ़ा रहे हैं। ये दोनों लम्बाई चौड़ाई तथा अन्य चेष्टाओं में एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं। विश्वामित्र महाराजा जनक के इस प्रश्न को सुनकर विश्वामिल जी बोले-राजन्। ये दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं। ये आपके यहाँ रक्खें हुए महान धनुष के सम्बंध में कुछ जानने की इच्छा से यहाँ तक आये हैं। इतना कहकर महामुनि

विश्वामित्र जी चुप हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

शतानंद के पूछने पर अहल्या द्वारा उद्धार का वर्णन

परम विद्वान् विश्वामित्र जी की बात सुनकर महातेजस्वी शतानंद ने मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र से पूछा– हे मुनिराज! क्या मेरी माता अहल्या मेरे पिता जी से मिल गयीं। क्या मेरी माता ने पिता के कथनानुसार राम की विधिवत् पूजा की थी। क्या आपने इन्द्र के दुराचार की कथा श्रीराम को सुनाई थी। शतानंद की बातें सुनकर विश्वामित्र बोले– हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने जो कुछ किया वह मर्यादा सहित हुआ। महर्षि गौतम से उनकी पत्नी उसी प्रकार जा मिली हैं जैसे ऋषि जमदग्नि से रेणुका जा मिली हैं। विश्वामित्र की यह बात सुनकर महातेजस्वी शतानन्द ने श्रीराम से कहा- आप विश्वामित्र के साथ यहाँ पधारे यह मेरा अहोभाग्य है। आप सौभाग्य शाली भी हैं क्योंकि कुशिनन्दन विश्वामित्र आपके रक्षक हैं। उनके बल और स्वरूप का वर्णन आप ध्यान देकर सुनें। ये धर्मात्मा राजा गाधि के पुत्र हैं। इन्होंने कई हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर शासन किया। तत्पश्चात् एक समय ये एक अक्षौहिणी सेना लेकर पृथ्वी पर विचरण करने लगे और इस तरह घूमते हुए महर्षि वशिष्ठ के आश्रम पर जा पहुँचे। उनके आश्रम में तप से सिद्ध हुए अनेक महात्मा भरे हुए थे। उनमें से कोई जल पीकर रहते थे तो कोई-कोई सूखा पत्ता खाकर। बालखिल्य मुनिगण तथा अन्यान्य महात्मागण आश्रम की शोभा बढ़ाते थे। वह आश्रम ब्रह्म लोक-सा दिखायी पड़ता था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५१)

बावनवाँ सर्ग

महर्षि वशिष्ठ द्वारा विश्वामित्र का सत्कार

वहां तप करनेवाले श्रेष्ठ वशिष्ठ का दर्शन कर विश्वामित्र ने उनके

चरणों में प्रणाम किया। तब वशिष्ठ ने विश्वामित्र को आसन पर बैठाते हुए फल-मूल आदि का उपहार अर्पित किया। फिर अपना कुशल क्षेम बतलाने के बाद उन्होंने विश्वामित्र जी से कहा, राजन्! क्या आप अपने प्रजा का पालन राजोचित रीति-नीति से करते हैं। क्या वे आपकी आज्ञा के अधीन रहते हैं? क्या तुमने सभी शत्रुओं पर विजय पा ली है? तब विश्वामित्र जी ने महर्षि वशिष्ठ से कहा हाँ भगवन्! मेरे राज्य में सर्वत्र कुशल है। श्रीराम! इस तरह बातचीत करते हुए भगवान् वशिष्ठ ने विश्वामित्र से हँसते हुए पूछा- महाबली नरेश! मैं तुम्हारी और तुम्हारे इस सेना का यथायोग्य सत्कार करना चाहता हूँ। तुम मेरे इस अनुरोध को स्वीकार करो। यह सुनकर विश्वामित्र जी बोले- मुने! आपके आश्रम में जो विद्यमान है उसी फल-मूल से मेरा पूर्ण सत्कार हो गया है। सबसे बढ़कर आपका दर्शन हुआ यही मेरे लिए यथेष्ट है। अब मैं यहाँ से प्रस्थान करना चाहता हूँ। लेकिन फिर भी महर्षि वशिष्ठ के बार-बार आग्रह करने पर वे आतिथ्य सेवा ग्रहण करने के लिए तैयार हो गये। विश्वामित्र जी के द्वारा निमंत्रण स्वीकार कर लेने पर मुनि वशिष्ठ ने अपनी चितकबरी कामधेनु को बुलाकर कहा- 'शबले!' मैंने सेना सहित इन राजर्षि का भोजन आदि के द्वारा आतिथ्य सत्कार करने का निश्चय किया है। तुम मेरी इस इच्छा को पूरी करो और खाने की जितनी भी आवश्यक वस्तुएँ हों उनकी ढेरी लगा दो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५२)

तिरपनवाँ सर्ग

विश्वामित्र द्वारा वशिष्ठ से कामधेनु की माँग करना वशिष्ठ का इन्कार करना

श्रीराम! तदनन्तर महर्षि वशिष्ठ की आज्ञा पाकर चितकबरी कामधेनु ने जिसकी जैसी इच्छा थी उसके लिए वैसी ही सामग्री जुटा दी। इस तरह महर्षि वशिष्ठ ने विश्वामित्र जी की सारी सेना के लोगों को तृप्त किया। तब मंत्री और शिष्यों सहित पूजित हो के बहुत प्रसन्न हुए और ऋषि वशिष्ठ से इस प्रकार बोले- भगवन्! आप मुझसे एक लाख गौयें लेकर इस चितकबरी

गाय को मुझे दे दीजिये। क्योंकि राजा होने के नाते धर्मतः यह मेरी ही वस्तु है। विश्वामित्र जी की यह बात सुनकर ऋषि वशिष्ठ ने क़हा- नरेश्वर! मैं किसी मूल्य पर इसे नहीं दे सकता क्योंकि यह मेरे पास से अलग होने योग्य नहीं है। मेरा हव्य-कव्य और जीवन सभी कुछ इसी पर निर्भर है। राजन्! इसके अलावा और भी बहुत से कारण हैं जिससे मैं यह शबला गौ आपको नहीं दे सकता।

ऋषि वशिष्ठ की यह बात सुनकर विश्वामित्र जी क्रोधित होकर बोले- मुने! इसके बदले मैं आपको सोने से सजे हुए चौदह हजार हाथी तथा इसके अलावा सौ सुवर्ण मय रथ प्रदान करूँगा- जिसकी शोभा बढ़ाने के लिए सोने के घुघरूँ लगे होंगे। इतना ही नहीं नाना प्रकार के रंगवाली नयी अवस्था के एक करोड़ गौयें भी दूंगा। पर, आप इस शबला गौ को मुझे दे दीजिये। यह सुनकर ऋषि वशिष्ठ ने कहा नरेश्वर! मेरे सारे शुभ कर्मों का मूल यही है। अतएव बहुत व्यर्थ बात करने से लाभ ही क्या। मैं इस कामधेनु को कदापि नहीं दे सकता।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

विश्वामित्र का कामधेनु को बलपूर्वक ले जाना तथा विश्वामित्र की सेना का संहार

श्रीराम! जब वशिष्ठ उस गाय को देने के लिए किसी प्रकार तैयार न हुए तब विश्वामित्र उस चितकबरे रंग की धेनु को बलपूर्वक घसीट ले चले। यह देखकर वह गौ मन ही मन रो उठी और सोचने लगी- अहो क्या महात्मा वशिष्ठ ने मुझे त्याग दिया है जो राजा के सिपाही मुझे इस प्रकार लिये जा रहे हैं। मुझे अपना भक्त जानकर भी उन्होंने मुझे ऐसा त्याग दिया। श्रीराम! यह सोचते ही वह राजा के सैकड़ों सेवकों को झटक कर महामुनि वशिष्ठ के पास जा पहुँची और बोली मुने! क्या आपने मुझे त्याग दिया जो मेरी यह हालत हुई? मुनि वशिष्ठ यह सुनकर अत्यंत व्यथित होकर बोले- तुमसे कोई

अपराध नहीं हुआ। बल्कि यह महाबली राजा अपने बल से मतवाला हो तुम्हें मुझसे छीनकर लिये जा रहा है। अपनी सेना के कारण यह मुझसे अधिक प्रबल हो रहे हैं। ऋषि वशिष्ठ की यह बात सुनकर वह कामधेनु बोली- ब्रह्मन्! वास्तव में ब्राह्मण का बल क्षत्रिय बल से अधिक प्रबल है। महर्षे! आप आज्ञा भर दें मैं इस दुरात्मा राजा के बल और अभिमान को अभी चूर्ण किये देती हूँ। कामधेनु के ऐसा कहने पर ऋषि वशिष्ठ ने उसे ऐसा करने की आज्ञा प्रदान कर दी। फिर क्या था? उनकी आज्ञा पाते ही गौ ने एक हुंकार की जिससे एक पल के अंदर सैकड़ों पल्लव जाति के वीर पैदा हो गये। वे सब विश्वामित्र के सामने ही उनकी सेना का विनाश करने लगे। किंतु विश्वामित्र ने कई तरह के अस्त्रों का प्रयोग करके उनका संहार कर डाला। उस समय उस शबला गौ ने यवन मिश्रित एक जाति के भयंकर वीरों को उत्पन्न किया। ये सुनहरे वस्त्रों से अपने शरीरों को ढके थे। वे जलती हुई अग्नि के समान लग रहे थे। अब देखते ही देखते उन्होंने विश्वामित्र की सारी सेनाओं को भस्म करना प्रारंभ किया। विश्वामित्र ने उन्हें भी बहुत से अस्त्रों को छोड़कर व्याकुल कर डाला।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५४)

पचपनवाँ सर्ग

अपनी सारी सेना नष्ट हो जाने पर विश्वामित्र का तप से शिवजी से दिव्यास्त्र पाना।

उन वीरों को विश्वामित्र के अस्त्रों से व्याकुल होते देख वशिष्ठ ने फिर आज्ञा दी- कामधेनु! अब योग बल से दूसरे सैनिकों की सृष्टि करो। तब गौ ने फिर हुंकार किया। इस बार उसके हुंकार से सूर्य के समान तेजस्वी कम्बोज उत्पन्न हुए तथा थन से शस्त्र धारी बर्बर पैदा हुए। योनि देश से यवन और गोबर से शक हुए। रोमकूपों से म्लेच्छ हारीत और किरात उत्पन्न हुए और उन लोगों ने देखते ही देखते विश्वामित्र की सारी सेना का तत्काल संहार कर डाला। वशिष्ठ के द्वारा अपनी सेना का संहार होते देख विश्वामित्र के सौ पुत्र क्रोध से भर कर वशिष्ठ मुनि पर टूट पड़े किंतु वशिष्ठ ने एक हुंकार मात्र से सबको भस्म कर डाला। अपनी सेना का इस तरह का विनाश होते देख

Mookerji Sharma Jammu Collection

विश्वामित्र पंख कटे पक्षी की भांति निस्तेज हो उठे! उस समय विश्वामित्र ने अपने एक मात्र बचे हुए पुत्र को राजगद्दी सौंप कर वन में शिव की तपस्या के लिये चले गये। कुछ काल पश्चात् शिव ने दर्शन देकर कहा- राजन्! तुम मुझसे जो वर चाहते हो उसे कहो। विश्वामित्र ने उन्हें प्रणाम करके कहा- निष्पाप महादेव यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे अंग उपांग उपनिषद् और रहस्यों सहित धनुर्वेद प्रदान कीजिए। इसके सिवा देवता, दानव, महर्षि गंधर्वों के पास भी जो-जो अस्त्र हो मुझे प्राप्त होना चाहिए। श्रीराम! महादेवजी से उन अस्त्रों को पाकर विश्वामित्र अभिमान से भर उठे। फिर तो वह वशिष्ठ के आश्रम में जाकर भाँति-भाँति के अस्त्रों का प्रयोग करने लगे। उनके अस्त्र तेज से सारा तपोवन जलने लगा और सैकड़ों मुनि भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। उस समय वशिष्ठ जी का वह आश्रम ऊसर भूमि-सा दिखलाई पड़ने लगा। यह देखकर वशिष्ठजी बोले- तुम लोग डरो मत मैं अभी इस गाधि पुत्र को नष्ट किये देता हूँ। लोगों को ऐसा समझाने के बाद उन्होंने विश्वामित्र से रोषपूर्ण वाणी में कहा- अरे, तूने चिरकाल से पाले-पोषे आश्रम को इस तरह नष्ट कर डाला है इसलिये तू विवेक शून्य है और इस पाप के कारण कभी कुशल से नहीं रह सकता। इतना कहने के बाद वे यमदण्ड के समान एक भयंकर डंडा हाथ में लेकर उनका सामना करने के लिये तत्पर हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

विश्वामित्र के दिव्यास्त्रों का वशिष्ठ द्वारा ब्रह्मदण्ड से शमन, विश्वामित्र का तप करना।

वशिष्ठ के ऐसा करने पर विश्वामित्र आग्नेय अस्त्र लेकर बोले- अरे, खड़ा रह, खड़ा रह। उस समय वशिष्ठ भी क्रोध में भर कर बोले- अधम क्षत्रिय! मैं खड़ा हूँ अब तेरे पास जितनी शक्ति हो उसे दिखला। आज मैं तेरे शस्त्र बल को अपने ब्रह्म बल से नीचा दिखलाऊँगा। उस समय विश्वामित्र का चलाया हुआ आग्नेयास्त्र वशिष्ठजी के ब्रह्म दण्ड से उसी प्रकार शांत हो

गया जैसे पानी पड़ने से आग का वेग। तब गाधि पुत्र ने कुपित हो वारुणास्त्र त्रिशूलास्त्र आदि सभी अस्त्रों का प्रयोग किया, किंतु वशिष्ठ ने इन अस्त्रों को केवल अपने डंडे से ही नष्ट कर दिया। अब उन विविध अस्त्रों के शान्त हो जाने पर विश्वामित्र ने उन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। इस ब्रह्मास्त्र को चलते देख देवता, गन्धर्व तथा बड़े-बड़े नाग भी दहल उठे किंतु वशिष्ठ ने उसे भी अपने ब्रह्मदण्ड से शान्त कर दिया। उस ब्रह्मास्त्र को शान्त करते समय महात्मा वशिष्ठ का रूप अत्यंत रौद्र हो गया और वह ब्रह्मदण्ड कालाग्नि के समान प्रज्वलित हो रहा था। उनके रोम कूपों से किरणों की भाँति धूमयुक्त आग की लपटें निकलने लगीं। यह देखकर समस्त मुनिगण मुनि वशिष्ठ की स्तुति करते हुए बोले- ब्रह्मन्! आप का बल अपूर्व है। आप अपने इस तेज को अपनी ही शक्ति से समेट लीजिये। महाबली विश्वामित्र पराजित हो गये हैं। महर्षि वशिष्ठ शान्त हो गये और तब विश्वामित्र बोले- ब्रह्म तेज से प्राप्त होनेवाला बल वास्तविक बल है। अब इसे प्रत्यक्ष देखकर मैं भी उस तप का अनुष्ठान करूँगा जिससे मुझे ब्राह्मणत्व की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५६)

सत्तावनवाँ सर्ग

विश्वामित्र का तप, राजा त्रिशंकु का यज्ञ

श्रीराम! तत्पश्चात् विश्वामित्र अपनी पराजय से संतप्त होकर अपनी रानी के साथ दक्षिण दिशा में अत्यंत भयंकर तप करने चले गये। वहीं उनके हविष्पन्द, मधुष्पन्द दृढ़ नेत्र और महारथ चार पुत्र हुए। उनके तप के एक हजार वर्ष पूरा हो जाने पर ब्रह्माजी ने उन्हें दर्शन देते हुए कहा- इस तपस्या के प्रभाव से हम तुम्हें सच्चा राजर्षि समझते हैं। किन्तु उनकी इस बात से दुखी होकर विश्वामित्र मन ही मन बोले- अहो! मैंने इतना बड़ा तप किया है तब भी सम्पूर्ण देवता मुझे राजर्षि ही समझते हैं। लगता है इस तपस्या का कोई फल न हुआ। यह सोचकर विश्वामित्र अपने मन को वश में करते हुए फिर भारी तपस्या में लग गये। उसी समय त्रिशंकु नामक राजा के मन में विचार हुआ कि मैं ऐसा कोई यज्ञ करूँ जिससे मैं सशरीर स्वर्ग में पहुँच सकूँ। जब

उन्होंने अपना यह विचार महात्मा वशिष्ठ को बताया तो उन्होंने बताया कि ऐसा होना असम्भव है। उनके इस उत्तर से राजा को संतोष न हुआ और वे कार्य सिद्धि के लिए दक्षिण दिशा में उन्हीं के पुत्रों के पास चले गये। उस समय उन्होंने देखा कि वे सौ परमतेजस्वी वशिष्ठ कुमार तपस्या में संलग्न हैं। यह देखकर त्रिशंकु ने उन्हें प्रणाम करते हुए अपने मन की सारी बातें कह सुनायी और कहा- महात्मा वशिष्ठ के अस्वीकार कर देने पर अब आप लोगों के शरण में आने के सिवा कोई रास्ता नहीं बचा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

वशिष्ठ के पुत्रों का उन्हें डांट कर लौटा देना, त्रिशंकु का विश्वामित्र के शरण में जाना।

रघुनंदन! त्रिशंकु के ये वचन सुनकर वे सौ पुत्र कुपित हो उठे और बोले- जिस यज्ञ को वशिष्ठ मुनि ने असम्भव बताया है उसे हम लोग भी नहीं कर सकते। गुरू पुत्रों की ऐसी बात सुनकर राजा त्रिशंकु बोले- तपोधनों यदि आप मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं कर रहे हैं तो मैं किसी दूसरे की शरण में जाऊँगा। राजा त्रिशंकु की ऐसी अपमान जनक बात सुनकर पुत्रों ने उन्हें शाप दिया- अरे जा तू चाण्डाल हो जायेगा। ऐसा कहकर वे महात्मा अपने-अपने आश्रमों में प्रविष्ट हो गये। अब रात होते-होते त्रिशंकु चांडाल हो गये। उनके शरीर का रंग नीला हो गया और सिर के बाल छोटे-छोटे हो गये। सारे शरीर में राख सी लिपट गयी और समस्त अंगों में लोहे के गहने पड़ गये। श्रीराम! अपने राजा को चाण्डाल के रूप में होते देख जो मंत्री आदि उनके साथ आये थे- उनका साथ छोड़कर भाग निकले। अब धीर स्वभाव नरेश दिन रात चिंताकी आग में जलते हुए तपोधन विश्वामित्र की शरण में जा पहुँचे और अपनी सारी व्यथा सुनाते हुए बोले- मैं चाहता था कि मैं सशरीर स्वर्ग जाऊँ, लेकिन मेरी यह इच्छा पूर्ण न हो सकी। मैंने प्रजाजनों की रक्षा हेतु नाना प्रकार के यज्ञ किये हैं और गुरूजनों को संतुष्ट रखने की चेष्टा की है। मेरा यह प्रयत्न धर्म के लिये ही था। आप इसके लिये मुझपर कृपा करें। अब

मैं आपकी शरण छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५८)

उनसठवाँ सर्ग

विश्वामित्र का त्रिशंकु को आश्वासन देना तथा ऋषि पुत्रों को शाप देकर नष्ट करना

शतानंदजी बोले- हे राम! त्रिशंकु के वचन सुनकर विश्वामित्रजी द्रवित हो उठे और बोले- नृपवर! डरो मत मैं तुम्हें शरण दूँगा। मैं इसके लिए सभी पुण्यकर्मा ऋषियों को बुलाता हूँ फिर तुम आनन्द पूर्वक यज्ञ करना। तुम मेरी शरण में आये हो इसलिए तुम अपने इस नवीन रूप के साथ सदेह स्वर्ग जाओगे। इतना कहकर उन्होंने पुत्रों को यज्ञ की सामग्री जुटाने की आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् उन्होंने अपने शिष्यों को आदेश दिया कि तुम लोग जाकर सारे ऋषि मुनि जिसमें वशिष्ठ के पुत्र भी सम्मिलित हैं- बुला लाओ। यदि उनमें से कोई मुझे अवहेलना पूर्ण बात कहे तो वह भी आकर मुझसे पूरी-पूरी कह देना। गुरू की आज्ञा से सभी शिष्य चारों दिशाओं में चले गये और लौट कर गुरू से बोले- गुरू देव इस यज्ञ में महोदय नामक ऋषि तथा वशिष्ठ पुत्रों को छोड़ कर सभी पधार रहे हैं। लेकिन महोदय तथा वशिष्ठ के पुत्रों ने कहा है कि जो विशेषतः चाण्डाल है और जिसका यज्ञ करानेवाला आचार्य क्षत्रिय हो उसमें देवता या ब्राह्मण हविष्य का भोजन कैसे कर सकते हैं। यह सुनकर विश्वामित्र क्रोधित होकर बोले- मैं उग्र तपस्वी हूँ। मुझ पर दोषारोपण करने वाले आज ही मृत्यु के मुंह में जायें और सात सौ जन्मों तक कुत्ते का मांस खानेवाले चाण्डाल जाति में जन्म ग्रहणकरें। दुर्बुद्धि महोदय भी जिसने मुझे दोषी ठहराया है ध्यान शून्य हो निषाद योनि को प्राप्त करे। ऋषियों के सामने ऐसा कहकर विश्वामित्र जी चुप हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५९)

Mookesh sharma (I.F.S) Jammu Collection

साठवाँ सर्ग

विश्वामित्र का ऋषियों से त्रिशंकु का यज्ञ कराने का अनुरोध

शतानंद बोले- श्रीराम ! महोदय सहित वशिष्ठ पुत्रों का तपोबल नष्ट हुआ जान विश्वामित्र जी अन्य ऋषियों से बोले- मुनियों ! इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न राजा त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाने की इच्छा रखते हैं। अतः आप लोग मेरे साथ रहकर ऐसे यज्ञ का अनुष्ठान करें जिससे इन्हें इस शरीर के साथ ही देवलोक की प्राप्ति हो सके। इस पर ऋषियों ने यह विचारा कि विश्वामित्र बड़े क्रोधी हैं उन लोगों ने यज्ञ करने का निश्चय कर लिया और उसमें अपना-अपना कार्य आरम्भ कर दिया। तदनन्तर बहुत समय तक मन्त्रपाठ करने के पश्चात् मुनि विश्वामित्र ने अपना-अपना भाग ग्रहण करने हेतु सम्पूर्ण देवताओं का आवाहन किया। लेकिन उस समय वहाँ भाग लेने के लिए कोई देवता नहीं आये। इससे विश्वामित्र को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने त्रिशंकु से कहा- राजन् ! देखो, अब मैं तुम्हें अपने तपस्या के बल से सशरीर स्वर्ग पहुँचाता हूँ। अगर मेरे तप में कुछ भी शक्ति है तो तुम सशरीर स्वर्ग जाओ। श्रीराम ! विश्वामित्र के इतना कहते ही त्रिशंकु सशरीर स्वर्ग जा पहुंचे। किंतु उनकेस्वर्गपहुंचते ही इन्द्र ने कहा- मूर्ख त्रिशंकु तेरे लिए स्वर्ग में जगह नहीं क्योंकि तू गुरू शाप से नष्ट हो चुका है। अतएव नीचा मुख किये हुए पृथ्वी पर फिर से लौट जा। त्रिशंकु त्राहि-त्राहि की रट लगाते पुनः नीचे गिरे। यह देखकर विश्वामित्र को बड़ा क्रोध आया और वे बोले- राजन् ! वहीं ठहर जा। उनके ऐसा कहने पर त्रिशंकु बीच में ही लटके रहे इसी बीच उन्होंने क्रोध में भर कर नवें सप्तऋिषियों की सृष्टि की और ऋषि मण्डली के बीच नये नक्षत्र मालाओं तथा देवताओं की सृष्टि करने के पश्चात् सोचने लगे अब मैं दूसरा इन्द्र बनाऊँगा अथवा मेरे द्वारा निर्मित स्वर्ग लोक बिना इन्द्र के रहेगा। किंतु यह देखकर सारे देवगण तथा ऋषि समुदाय विश्वामित्र के पास आकर बोले- हे मुने ! यह राजा गुरू के शाप से दूषित है अतः स्वर्ग में नहीं रह सकता। यह सुनकर विश्वामित्र ने कहा- मैं इसे सशरीर स्वर्ग में भेजने का वचन दे चुका हूँ। मैं अपने उस वचन को असत्य नहीं करना चाहता। महाराज त्रिशंकु सदा स्वर्ग का सुख पाते रहें तथा मैंने जिस सृष्टि का निर्माण किया हैवहजब तक संसार है तब तक स्थाई रहे। इस तरह आप सब

मेरी प्रतिज्ञा को पूरी करें। इसके बाद देवताओं ने उन्हें आश्वासन दिया- महर्षि ऐसा ही होगा। इनकी स्थिति देवताओं के समान होगी और ये सभी नक्षत्र इन नृपश्रेष्ठ का स्वर्गीय पुरुष की तरह अनुसरण करते रहेंगे। श्रीराम ! तत्पश्चात् यज्ञ समाप्त होने पर सब महर्षि और देवता जैसे आये थे वैसे लौट गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में साठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६०)

एकसठवाँ सर्ग

विश्वामित्र की पुष्कर तीर्थ में तपस्या राजा अम्बरीष की कथा।

श्रीराम ! यज्ञ के समाप्त होने पर सब ऋषियों को वहाँ से विदा होते देख विश्वामित्र ने उनसे कहा- महर्षियों ! पश्चिम दिशा में जो ब्रह्माजी के तीन पुष्कर हैं अब हम वहीं रहकर सुखपूर्वक तपस्या करेंगे। ऐसा कहकर वे पुष्कर में जाकर दुर्जय तपस्या करने लगे। उन्हीं दिनों अयोध्या के महाराज अम्बरीष यज्ञ की तैयारी करने लगे। किंतु इसी बीच इन्द्र ने उनके यज्ञ पशु की चोरी कर ली। इस पर पुरोहितों ने राजा से कहा- महाराज ! जो राजा यज्ञ-पशु की रक्षा नहीं कर सकता वह पाप का भागी होता है। इसलिये पहले आप इस खोये हुए यज्ञ पशु की खोज करा कर ले आओ अथवा किसी पुरुष पशु को ही खरीद लाओ। यही उसका प्रायश्चित है।

राजा यह सुनकर एक हजार गौओं के मूल्य पर एक पुरुष पाने की खोज में निकल पड़े। श्रीराम ! उस समय विभिन्न देश जनपद नगर आदि में खोज करते हुए वे भृगुतुँग पर्वत पर पहुँचे और वहाँ ऋचीक मुनि के दर्शन किये। तदनन्तर कुशल क्षेम के पश्चात् राजा बोले- महाभाग भृगुनन्दन ! यदि आप अपना एक पुत्र एक लाख गौयें लेकर बेच दें तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा। उनके ऐसा कहने पर ऋचीक बोले- मैं अपने पुत्रों में ज्येष्ठ को कदापि नहीं बेच सकता। मुनि की यह बात सुनकर उनकी पत्नी बोल उठी- लेकिन मैं अपने छोटे पुत्र शुनक को भी नहीं बेच सकती क्योंकि वह मुझे बहुत प्रिय है। श्रीराम ! उस समय मझला पुत्र शुनःशेय ने स्वयं कहा राजन् ! ज्येष्ठ और छोटे पुत्र को बेचने के लिए अयोग्य समझ आप मुझे ही ले चलें। राजा

अम्बरीष यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और एक करोड़ स्वर्ण मुद्रा रत्नों के ढेर और एक लाख गौओं के बदले शुनः शेप को लेकर अपने घर लौटे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६१)

बासठवाँ सर्ग

विश्वामित्र द्वारा शुनः शेप की रक्षा का प्रयत्न

शतानंद बोले– श्रीराम! राजा अम्बरीष लौटते समय पुष्कर तीर्थ आये और वहाँ विश्राम करने लगे। नरश्रेष्ठ! उस समय शुनः शेप वहाँ तपस्या करते हुए अपने मामा विश्वामित्र से मिला और उनकी गोद में गिर कर बोला– मुनिराज! मैं अनाथ हूँ और आप सबके रक्षक हैं। अतएव आप ऐसा कुछ करें जिससे राजा का भी काम हो जाये और दीर्घायु होकर सर्वोत्तम तपस्या द्वारा स्वर्ग प्राप्त करूँ। उसकी बात सुनकर महातपस्वी विश्वामित्र अपने बेटों से बोले– पुत्रों यह मुनि कुमार मुझसे अपनी रक्षा चाहता है। इसलिए अब तुम सब के सब राजा के यज्ञ में पशु बनकर अग्नि देव को तृप्ति प्रदान करो। किन्तु उनकी बात सुनकर मधुच्छंद आदि पुत्र अभिमान पूर्वक बोले– आप अपने पुत्रों को त्याग कर दूसरे के एक पुत्र की रक्षा करते हैं इसे हम लोग आपका अकर्तव्य समझते हैं। यह सुनते ही विश्वामित्र के नेत्र क्रोध से लाल हो उठे। उन्होंने इसके लिये तुरंत अपने पुत्रों को शाप दिया– तुम सब भी वशिष्ठ के पुत्रों की भाँति कुत्तों का मांस खानेवाली जातियों में जन्म लेकर पूरे एक हजार वर्षों तक इस पृथ्वी पर रहोगे। तत्पश्चात् विश्वामित्र शुनःशेप से बोले– जिस समय अम्बरीष अपने यज्ञ में तुम्हें पाशों से बांधे उस समय तुम इन्द्र और विष्णु की स्तुति करना और इन दो दिव्य गाथाओं का गान करना। इससे तुम्हें मनोवांछित सिद्धि प्राप्त होगी। शुनःशेप उन दोनों गाथाओं को ग्रहण कर राजा अम्बरीष के पास आया और बोला– राजसिंह! अब हम दोनों शीघ्र चलकर यज्ञ की दीक्षा लें। यह सुनकर अम्बरीष तुरंत यज्ञ शाला में गये और शुनःशेप को पवित्र पास में बांधकर लाल वस्त्र पहनाया और उसे खम्भे में बांध दिया। उस समय मुनि कुमार इन्द्र और विष्णु की स्तुति करने लगा। तब देवराज इन्द्र ने प्रसन्न हो उसे दीर्घायु होने का वर प्रदान किया।

तदन्तर विश्वामित्र पुष्कर तीर्थ में पुनः एक हजार वर्षों तक घोर तपस्या करते रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

विश्वामित्र को महर्षि पद की प्राप्ति तथा मेनका द्वारा तपस्या भंग

शतानंद बोले- हे राम! विश्वामित्र को तप करते जब एक हजार वर्ष पूरे हो गये तब सभी देवता फल देने की इच्छा से उनके पास आये। उस समय ब्रह्माजी ने कहा– मुने! अब तुम अपने शुभ कर्मों से ऋषि हो गये। इतना कह कर ब्रह्माजी चले गये और विश्वामित्र पुनः तप करने में लग गये। इस तरह तप करते हुए उन्हें बहुत समय हो गया। इसी समय अप्सरा मेनका पुष्कर में स्नान करने आयी। अब उसके रूप और लावण्य पर मुग्ध होकर विश्वामित्र ने उसे दस वर्ष तक अपने साथ रक्खा। लेकिन इस तरह उनकी तपस्या में विघ्न आ जाने से महामुनि को चिंता हो आयी और वे समझने लगे कि वह उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिए देवताओं की ही करतूत है। यह सोचकर मुनि ने मेनका को विदा कर दिया और स्वयं हिमालय पर जाकर कामदेव को जीतने के लिए दुर्जय तप करने लगे। ये देखकर देवताओं को बड़ा भय हुआ और उन्होंने आपस में सलाह कि ये विश्वामित्र को महर्षि की पदवी दे दी जाय। तब उन देवताओं की यह इच्छा देखकर ब्रह्माजी विश्वामित्र के पास आये और बोले– महर्षे! मैं तुम्हारी उग्र तपस्या देखकर तुम्हें ऋषियों में श्रेष्ठता प्रदान करता हूँ। विश्वामित्र जी यह सुनकर बोले– भगवन्! आपने मुझे ब्रह्मर्षि का पद दिया इससे मैं अभी अपने को जितेन्द्रिय नहीं समझता, इतना कहकर महामुनि ने फिर केवल वायु पीकर घोर तप में लग गये। उनकी इस तपस्या को देखकर इन्द्र को बड़ी चिंता हुई। तब उन्होंने रम्भा को बुलाकर ऐसी बात कही जो उनके हित में एवं विश्वामित्र के अहित में थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६३)

Mookerji shastri (RSS) Jammu Collection

चौसठवाँ सर्ग

विश्वामित्र का रम्भा को शाप देना

इन्द्र ने रम्भा से कहा– तू जाकर विश्वामित्र को इस तरह मोहित कर कि वे काम के वशीभूत हो जायें। इस पर रम्भा मुनि के क्रोध का ध्यान कर भयभीत हो गयी। तब इन्द्र ने समझाया– रम्भे! तू भय न कर। तू मेरी आज्ञा मान ले। तेरा भला होगा। इन्द्र की बात सुनकर रम्भा उत्तम रूप बनाकर विश्वामित्र को लुभाना आरम्भ किया। किन्तु विश्वामित्र को इसमें देवताओं का ही कुचक्र दिखाई दिया। फिर क्या था? विश्वामित्र ने उसे शाप दे दिया कि उस अपराध के लिए तू दस हजार वर्ष तक पत्थर की प्रतिमा बनकर खड़ी रहेगी। लेकिन अपने इस क्रोध को न रोक सकने के कारण विश्वामित्र भी मन ही मन दुःखी हो गये क्योंकि इससे उनकी तपस्या का क्षय हो गया था। यह देखकर उन्होंने निश्चिय किया कि अब से मैं न तो क्रोध करूँगा न तो किसी भी अवस्था में किसी से कुछ कहूँगा। इसके लिए मैं सौ वर्षों तक श्वास भी न लेकर इस शरीर को सुखा डालूँगा। श्रीराम! ऐसा कहकर विश्वामित्र ने एक हजार वर्ष तक ऐसी घोर तपस्या की जिसकी कोई तुलना नहीं थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६४)

पैसठवाँ सर्ग

विश्वामित्र की घोर तपस्या के कारण बाह्मणत्व की प्राप्ति

शतानंद बोले– श्रीराम! उक्त प्रतिज्ञा करके विश्वामित्र पूर्व दिशा में जाकर घोर तपस्या करने लगे। इस बीच उनके ऊपर बहुत से विघ्नों का आक्रमण हुआ, लेकिन क्रोध उनके अंदर नहीं घुसने पाया। इसी समय एक दिन इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारण कर उनसे तैयार अन्न की याचना की। विश्वामित्र ने अपना सारा भोजन उस ब्राह्मण को देकर स्वयं भूखे रहे। तत्पश्चात् उन्होंने मौन व्रत का अनुष्ठान किया और उस समय उन्होंने सांस तक नहीं ली और इस तरह सांस न लेने के कारण उनके मस्तक से धुंआ उठने

लगा। फिर क्या था। मुनि की इस तपस्या से देवता गंधर्व नाग आदि सबकी कांति फीकी पड़ गयी और वे अब घबरा कर ब्रह्माजी के पास गये और कहने लगे कि उन्हें इनकी मनचाही वस्तु न दे दी गयी तो ये अपने तप से तीनों (लोकों)का नाश कर डालेंगे। यदि ये देवताओं का राज्य भी प्राप्त करना चाहें तो इन्हें दे दिया जाये। तदन्तर देवताओं की बात सुनकर ब्रह्माजी सब देवताओं के साथ विश्वामित्र के पास जाकर बोले– कुशि नंदन ! हम तुम्हारे तप से बहुत संतुष्ट हैं। तुमने अपनी तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया है। अब तुम सुख पूर्वक जहाँ चाहो वहाँ जाओ। इस पर विश्वामित्र ने सब को प्रणाम करते हुए कहा– देवगण ! अगर मुझे ब्राह्मणत्व की प्राप्ति हो गयी है तो ऊँकार, वषट्कार, और चारों वेद स्वयं आकर मेरा वरण करें। साथ ही ब्राह्मणपुत्र वशिष्ठ भी यहाँ आकर कहें कि तुम ब्राह्मण हो गयेतब मैं समझूंगा कि मेरी मनोकामना पूरी हो गयी और उसी हालत में आप देवतागण यहाँ से जा सकते हैं। उस समय वशिष्ठ ने भी 'एवमस्तु' कहकर उनका ब्रह्मर्षि होना स्वीकार कर लिया। श्रीराम ! इस प्रकार कठोर तप करके इन महात्मा ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। इतना कह कर शतानंद जी चुप हो गये। तब राजा जनक बोले– मुनि प्रवर कौशिक ! यहाँ आकर मैंने राम तथा आपके महान तेज का वर्णन सुना। आपकी इन कथाओं के श्रवण से मेरी तृप्ति ही नहीं हो रही किन्तु प्रभो ! इस समय सूर्य ढलने लगा है अतः अब मुझे जाने की आज्ञा दें और कल प्रातः काल मुझे फिर दर्शन दें उनकी इस विषय युक्त वाणी सुनकर विश्वामित्र ने उन्हें शीघ्र विदा कर दिया। फिर वे महात्माओं से पूजित हो श्रीराम और लक्ष्मण के साथ अपने विश्राम स्थान पर लौट आये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६५)

छाछठवाँ सर्ग

राजा जनक का अपने यहाँ रखे धनुष का परिचय देना

तदन्नंतर प्रभात होते ही राजा जनक ने महात्मा विश्वामित्र और श्रीराम

लक्ष्मण को बुलाया। फिर शास्त्रीय विधि के अनुसार उनका पूजन कर बोले महर्षे! आप मुझे आज्ञा दें मैं आपकी क्या सेवा करूँ। यह सुनकर विश्वामित्र जी बोले– महाराज! दशरथ के ये दोनों पुत्र आपके यहाँ जो श्रेष्ठ धनुष है उसको देखने की इच्छा रखते हैं। उसके दर्शन के पश्चात् ये अपनी राजधानी को लौटकर चले जायेंगे। मुनि के ऐसा कहने पर राजा जनक बोले भगवन्! निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात के हाथ में यह धनुष धरोहर के रूप में रखा गया था। सुना जाता है कि पूर्व काल में दक्ष यज्ञ विध्वंस के पश्चात् भगवान शंकर ने इस धनुष को लेकर रोष पूर्वक देवताओं से कहा कि तुम लोगों ने मुझे यज्ञ का भाग नहीं दिया अतः इसी से मैं तुम सब का सर काट डालूँगा। किंतु बाद में देवताओं ने उन्हें प्रसन्न कर उस धनुष को उनसे प्राप्त कर लिया जो बाद में मेरे पूर्वज महाराज देवरात के पास धरोहर के रूप में रख दिया गया था। तदन्तर एक दिन जब मैं अपने खेत को जोत रहा था उस समय जोती गयी भूमि से एक कन्या उत्पन्न हुई। उसका नाम मैंने सीता रखा। वही क्रमशः बढ़ कर सयानी हो गयी है। उस समय बहुत से राजाओं ने आकर मेरी पुत्री को मांगा। किंतु उसी क्षण मैंने निश्चय किया है कि पराक्रमी पुरुष ही इसके साथ विवाह करने का अधिकारी हो सकता है। राजाओं के यह पूछने पर कि सीता को पाने के लिए कौन-सा पराक्रम निश्चित किया गया है। मुनि श्रेष्ठ! तब मैंने उन लोगों के सम्मुख शिवजी का धनुष उठाने के लिए रख दिया। लेकिन उनमें से कोई भी इसे उठाने में समर्थ न हो सका। तब मैंने उन्हें सीता को देने से इंकार किया। अब उन लोगों ने इसे अपना तिरस्कार समझ कर मिथिला को चारों ओर से घेर कर इसे पीड़ा पहुँचाना शुरू किया। इस बीच उनसे युद्ध करते हुए मेरे सारे साधन भी क्षीण हो गये तब मुझे बड़ा दुःख हुआ। तब मैंने तपस्या द्वारा देवताओं कोप्रसन्नकर उनसे चतुरंगिणी सेना प्राप्त की और उन पापाचारी राजाओं को भगाने में समर्थ हो सका। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं उस धनुष को श्रीराम और लक्ष्मण को भी दिखलाऊँगा और अगर श्रीराम इसकी प्रत्यंचा को चढ़ा दें तो मैं सीता को इन्हीं के हाथों में दे दूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

सड़सठवाँ सर्ग

श्रीराम का धनुर्भंग, श्री दशरथ को बुलाने के लिए मंत्रियों को भेजना।

तदनंतर जनक की यह बात सुनकर विश्वामित्र जी बोले- राजन्! आप श्रीराम को वह धनुष दिखलायें। राजा ने मंत्रियों को शीघ्र उस धनुष को वहाँ ले आने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् मंत्रीगण अपने साथ पाँच हजार आदमियों को लेकर उस धनुष को आठ पहिएवाली गाड़ी पर लदवाकर ले आये और राजा जनक से बोले राजेन्द्र! यह देवताओं द्वारा सम्मानित धनुष है। यदि आप इसे इन दोनों राजकुमारों को दिखलाना चाहें तो दिखला दें। तब राजा जनक ने विश्वामित्र से हाथ जोड़कर कहा-मुने! यह धनुष यहाँ लाया गया है। अब आप इसे इन दोनों राजकुमारों को दिखलाइये। जनक का कथन सुनकर विश्वामित्र जी बोले-वत्स राम इस धनुष को देखो तो सही। श्रीराम उस धनुष को देखकर बोले-अच्छा, अब मैं इसे हाथ से उठाकर इसे चढ़ाने का भी प्रयत्न करता हूँ। इतना कहकर श्रीराम ने उस धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी। उस समय कई हजार मनुष्यों की दृष्टि उन पर लगी थी। किन्तु श्रीराम ने जैसे ही उस धनुष को कान तक खींचा वैसे ही टूट गया। अब उसके टूटते ही ऐसी आवाज हुई जैसे पर्वत फट पड़ा हो। उस समय श्री राम लक्ष्मण और विश्वामित्र को छोड़कर शेष जितने लोग थे मूर्छित होकर गिर पड़े। तदनंतर चेत आने पर राजा जनक ने कहा-मुने! मैंने राम का पराक्रम आज अपनी आंखों से देख लिया है। मेरी प्रतिज्ञा आज सफल हो गयी इसलिये मैं अपनी पुत्री सीता को श्रीराम को समर्पित करना चाहूँगा। भगवन्! यदि आप आदेश दें तो मेरे मंत्री जाकर राजा दशरथ को यह शुभ समाचार देकर उनको यहाँ लिवा ले आएँ। उस समय विश्वामित्र ने 'तथास्तु' कहकर राजा जनक की बातों का समर्थन किया। तब राजा जनक ने अपने मंत्रियों को राजा दशरथ को शुभ समाचार देने के लिये तथा उनहें मिथिलापुरी लिवा लाने के लिये भेज दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकांण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६७)

Mookerji Sharma (1-ESI) Jammu Collection

अड़सठवाँ सर्ग

राजा दशरथ का मिथिला जाने को तैयार होना

उस समय राजा जनक की आज्ञा पाकर उनके दूत अयोध्या के लिए चल पड़े। चौथे दिन वे अयोध्या जा पहुँचे और वहाँ देवतुल्य महाराज दशरथ का दर्शन किया। फिर बोले-राजन्! हम लोग मिथिलापति विदेह राज का संदेश लेकर आपके पास आये हैं। उन्होंने कहलाया है कि आपको मेरी पहले की गयी प्रतिज्ञा का हाल मालूम होगा। जिसके द्वारा मैंने सीता का विवाह किसी पराक्रमी राजा के साथ करने का निश्चय किया था। किन्तु इस कार्य हेतु आये हुये सभी राजा पराक्रमहीन सिद्ध हुए। अब अकस्मात मेरी इस कन्या को श्री विश्वामित्र के साथ आये हुए आपके पुत्र श्रीराम ने अपने पराक्रम से जीत लिया है। अब मैं सीता को राम के हाथों सौंपना चाहता हूँ। आप कृपा करके इसके लिए अपनी आज्ञा प्रदान करें। आप अब मिथिला पधार कर मेरी प्रतिज्ञा पूरी करें। इससे हम दोनों को ही आनंद की प्राप्ति होगी। इसमें मुनि विश्वामित्र और शतानंद जी की भी सहमति है। मंत्रियों के इस संदेश से राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए तथा गुरु वशिष्ठ तथा अन्य मंत्रियों से कहा-विश्वामित्र जी से सुरक्षित श्राराम और लक्ष्मण इस समय मिथिलापुरी में हैं। वहाँ श्रीराम के पराक्रम को देखकर राजा जनक अपनी पुत्री का विवाह रघुकुल रत्न राम से करना चाहते हैं। अतः आप लोगों की यदि सहमति हो तो हम लोग मिथिलापुरी चलने के लिए कल सुबह ही अपनी यात्रा आरम्भ कर दें। यह सुनकर उन लोगों ने बहुत अच्छा कहकर एक स्वर से इसकी सम्मति दी। इससे आनन्दित होकर राजा दशरथ ने वह रात बड़े सुखपूर्वक व्यतीत की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६८)

उनहत्तरवाँ सर्ग

राजा दशरथ की दल बल सहित मिथिला यात्रा तथा राजा जनक द्वारा स्वागत-सत्कार

तदनंतर प्रातः काल होते ही राजा दशरथ ने सुमंत्र से कहा आज हमारे सभी कोषाध्यक्ष (खजांची) बहुत-सा धन लेकर आगे चलें। मार्ग में उनकी रक्षा के लिए तरह-तरह की सुव्यवस्था होनी चाहिये। उनके साथ ही चतुरंगिणी सेना भी शीघ्र कूच करे। राजा की इस आज्ञा के अनुसार चतुरंगिणे सेना तैयार हो गयी और ऋषियों के साथ-साथ महाराज दशरथ के पीछे-पीछे चली। तत्पश्चात् मिथिला देश में पहुंचने पर महाराजा जनक ने उनका खूब आदर सत्कार किया और फिर राजा दशरथ से कहा-मेरा बड़ा भाग्य है जो आप यहाँ पधारे। आप यहाँ अपने दोनों पुत्रों की प्रीति प्राप्त करेंगे। रघुकुल बल और पराक्रम में श्रेष्ठ होते हैं। आपके कुल के साथ सम्बंध होने से मेरें कुल का सम्मान बढ़ गया है। अब आप यज्ञ के पश्चात् श्रीराम के विवाह का कार्य सम्पन्न करें। यह सुनकर महाराज दशरथ ने राजा जनक से कहा कि यह कार्य दानदाता के अधीन है। आपकी जैसी आज्ञा होगी वैसा ही होगा। इधर श्रीराम और लक्ष्मण ने विश्वामित्र के साथ आगे बढ़कर अपने पिता का चरण स्पर्श किया। तब दशरथ अपने पुत्रों को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। फिर राजा जनक ने वह रात अपने दोनों कन्याओं के विवाह के प्रबंध में व्यतीत की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६९)

सत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का सीता और उर्मिला का वरण करना

दूसरे दिन राजा जनक अपने पुरोहित शतानंदजी से बोले- ब्रह्मन् ! मेरे भाई कुशध्वज, जो इक्षुमती नदी का जल पीते हुए उसके किनारे बसी सांकाश्या नगरी में निवास करते हैं, उन्हें भी मैं इस शुभ अवसर पर यहाँ

उपस्थित देखना चाहता हूँ। राजा की इस आज्ञा को सुनकर कुछ दूत तेज चलनेवाले घोड़े पर सवार होकर कुशध्वज को बुलाने के लिए चल पड़े। अब सांकाश्य में पहुँचकर उन लोगों ने कुशध्वज से भेंट की और उनसे राजा जनक की इच्छा कह सुनायी। उन दूतों के मुख से मिथिला का सारा समाचार सुनकर कुशध्वज मिथिला आये और जनक को प्रणाम कर दिव्य सिहांसन पर विराजमान हुए। फिर उन दोनों बंधुओं ने मंत्रिप्रवर सुदामन से कहा कि आप शीघ्र जाकर दशरथ और उनके पुत्रों को यहाँ बुला लाइये। मंत्री सुदामन तत्काल राजा दशरथ के खेमे में पहुँचकर उनसे बोले-वीर अयोध्या नरेश! विदेह राजा जनक आपका दर्शन करना चाहते हैं। मंत्री की यह बात सुनकर राजा दशरथ, अपने बंधु बांधवों के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ राजा जनक विद्यमान थे। वहाँ पहुँचकर राजा दशरथ जनक जी से बोले कि यदि विश्वामित्र जी की आज्ञा हो तो वशिष्ठ जी पहले मेरे कुल परम्परा का परिचय दें। यह सुनकर वशिष्ठ जी बोले-सर्वप्रथम अविनाशी ब्रह्माजी से मरिची की उत्पत्ति हुई। मरीचि से कश्यप। कश्यप से विवस्वान तथा उनसे वैवस्वत मनु का जन्म हुआ। वैवस्वत मनु के इक्ष्वाकु नामक पुत्र हुआ। उन इक्ष्वाकु को ही आप अयोध्या का प्रथम राजा समझें। उसी इक्ष्वाकु वंश में राजा अज उत्पन्न हुए और उन्हीं अज से महाराज दशरथ का जन्म हुआ। फिर राजा दशरथ से श्रीराम और लक्ष्मण का जन्म हुआ। राजा जनक! इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न हुए राजाओं का वंशअनादि काल से ही शुद्ध रहा है। ये सारे के सारे राजा धर्मात्मा वीर और सत्यवादी होते आये हैं। नरश्रेष्ठ! इसी इक्ष्वाकु वंश मे उत्पन्न श्रीराम और लक्ष्मण के लिए मैं आपकी दोनों कन्याओं का वरण करता हूँ। अतएव आप शीघ्र कन्यादान करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७०)

इकहत्तरवाँ सर्ग

राजा जनक का अपने कुल का परिचय देना

महर्षि वशिष्ठ जब इक्ष्वाकु वंश का परिचय दे चुके तब राजा जनक हाथ

जोड़कर बोले-मुनि श्रेष्ठ अब हम भी अपना परिचय दे रहे हैं, उसे भी सुनें। क्योंकि कन्या दान के समय दोनों कुलका परिचय देना आवश्यक है। प्राचीन काल में निमि नामक एक धर्मात्मा राजा हुए हैं। उनके मिथि नामक एक पुत्र हुआ और उनके पुत्र का नाम जनक है। इन्हीं के नाम पर हमारे वंश का प्रत्येक राजा 'जनक' कहलाता है। उन जनक से उदावसु हुए। इसी वंश में धर्मात्मा रोमा का जन्म हुआ। स्वर्ण रोमा से ह्रस्वरोमा हुए। उन ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हुए। जिनमें मैं ज्येष्ठ हूँ और कुशध्वज मेरा कनिष्ठ है। ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते मेरे पिता मेरे ऊपर राज्य का भार सौंपकर वन में चले गये। तत्पश्चात् मैं इस राज्य का भार उठा ही रहा था कि एक दिन सांकाश्य नगर से सुधन्वा ने आकर मिथिला को चारों ओर से घेर लिया और कहलाया कि सीता को मेरे हवाले कर दो। मैंने उसकी बात न मानकर उसके साथ युद्ध किया। उस युद्ध में सुधन्वा मारा गया। तत्पश्चात् मैंने सांकाश्य नगर का राजा कुशध्वज को बना दिया। महामुने! ये ही मेरे छोटे भाई कुशध्वज हैं। अब मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ अपनी प्रथम पुत्री को श्रीराम के लिए तथा दूसरी पुत्री ऊर्मिला को लक्ष्मण के लिए दे रहा हूँ। वशिष्ठ जी से ऐसी बातें कहने के बाद उन्होंने राजा दशरथ से कहा-राजन्! आप श्रीराम और लक्ष्मण के मंगल के लिए उनसे गोदान करवाइये। तत्पश्चात् नन्दीमुख श्राद्ध का कार्य भी सम्पन्न कराकर विवाह का कार्य आरंभ कीजियेगा। महाबाहो! आज के तीसरे दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में वैवाहिक कार्य सम्पन्न होना चाहिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७१)

बहत्तरवाँ सर्ग

विश्वामित्र द्वारा भरत और शत्रुघ्न के लिए कुशध्वज की कन्याओं का वरण करना

जनक की बात समाप्त होते ही विश्वामित्र जी बोले-इक्ष्वाकु और जनक राजवंश के समान कोई दूसरा राजवंश नहीं है। दोनों एक दूसरे के सर्वथा अनुरूप हैं। इसलिए राजन्! मुझे कहना है कि राजा कुशध्वज की दोनों

कन्याओं का विवाह भरत और शत्रुघ्न के साथ कर दिया जये। इससम्बन्धमें आप लोगों को किसी तरह की चिंता न करनी चाहिये। इस विवाह के लिए वशिष्ठ जी की भी सम्मति होने के कारण जनक जी हाथ जोड़कर बोले- मुनिपुंगवा ! इसके लिए मैं अपने को धन्य समझता हूँ कि आप लोग स्वयं ऐसा सम्बंध बनाने की आज्ञा दे रहे हैं। अब ये राजकुमार एक ही दिन में चारों राजकुमारियों का पाणिग्रहण करें। फिर राजा जनक हाथ जोड़कर खड़े हो गये और कहने लगे- आपके लिए जैसे राजा दशरथ की अयोध्यापुरी वैसी मेरी मिथिलापुरी भी है इसके लिए आप केवल आदेश भर देते रहें। राजा की बात सुनकर राजा दशरथ प्रसन्न होकर बोले-विदेह राज ! आप दोनों भाई असीम गुणवाले हैं। आपने हम लोगों का भली-भांति आदर सत्कार किया है। अब आप लोग हमें अपने विश्राम स्थान को जाने दें। वहाँ पहुँचकर मैं विधिपूर्वक वैवाहिक कार्य सम्पन्न करुँगा। इतना कहकर राजा दशरथ मुनियों को आगे करके अपने निवास स्थान पर गये। तत्पश्चात् वहाँ पहुंचकर राजा दशरथ ने आभ्युदयिक श्राद्ध इत्यादि करवाये और एक-एक पुत्र के मंगल के लिये एक-एक लाख गौएं ब्राह्मणों को दान दी। उन गौओं के सींग सोने के मढ़े थे और उनके साथ बछड़े और कांसे के दुग्ध पात्र भी थे। उस समय राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों से घिरे हुए ऐसे लगते थे मानों लोकपालों से घिर कर ब्रह्माजी बैठे हों।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७२)

तिहत्तरवाँ सर्ग

चारों भाइयों का विवाह

जिस समय राजा दशरथ गो दान इत्यादि का काम कर रहे थे उसी समय वहाँ भरतजी के मामा वीर युधाजित् आ पहुँचे और दशरथ को प्रणाम कर बोले-राजन् ! कैकय नरेश! मेरे भांजे भरत को देखना चाहते हैं। अतएव मैं उन्हें लेने के लिए अयोध्या आया, किंतु रघुनंदन ! मुझे वहाँ ज्ञात हुआ कि आपके सभी पुत्र विवाह के लिए आपके साथ मिथिला आये हैं तो मैं भी यहाँ

चला आया। महाराज ने उस समय अपने अतिथि की बड़ी आवभगत की। फिर प्रातःकाल होने पर ऋषियों समेत जनक की यज्ञशाला में जा पहुँचे। उस समय दूल्हे के अनुरूप वेश भूषा में अलंकृत वे चारों भाई भी वहाँ आये। तब वशिष्ठ जी ने जनक जी के पास जाकर कहा-विदेह राज! महाराजा दशरथ अपने पुत्रों सहित यहाँ पधारे हैं और भीतर आने के लिए आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। महात्मा वशिष्ठ के इतना कहने पर विदेह राजा जनक ने कहा-मुनिश्रेष्ठ महाराज अपने ही घर में आने के लिए किसके आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरी कन्याएँ यज्ञ वेदी के पास आकर बैठी हैं। आप निर्विघ्नता पूर्वक सब काम सम्पन्न करें। तत्पश्चात् वशिष्ठ मुनि के कहने से राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों सहित जनक के महल में पधारे। फिर वशिष्ठ जी से राजा जनक ने उस विवाह की क्रिया पूर्ण करने का अनुरोध किया। मुनि वशिष्ठ ने विदेहराज जनक के इस अनुरोध पर मुनि विश्वामित्र और शतानंद को आगे करके विवाह मण्डप का निर्माण किया और वहाँ पूजन सामग्रियों को यथा स्थान रख दिया। तत्पश्चात् मुनि वशिष्ठ मंत्रोच्चारण करते हुए विधिपूर्वक अग्नि स्थापन किया और फिर प्रज्ज्वलित अग्नि में हवन किया। तदनंतर राजा जनक ने आभूषणों से सजी हुई सीता को रामचंद्र के सामने बैठा दिया और बोले-श्रीराम। यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी अर्द्धांगिनी के रूप में उपस्थित है इसे स्वीकार करो। यह तुम्हारे पीछे सदैव छाया की भांति चलनेवाली होगी। उस समय सारे देवता और ऋषिगण उन्हें साधुवाद देने लगे। तत्पश्चात् राजा जनक ने लक्ष्मण से कहा-लक्ष्मण! अब मैं अपनी पुत्री ऊर्मिला को तुम्हारी सेवा में दे रहा हूँ। उसका हाथ अपने हाथ में लो। फिर उन्होंने भरत को माण्डवी और श्रुतिकीर्ति को शत्रुघ्न को सौंप दिया और कहा तुम चारों भाई पत्नी से संयुक्त हो जाओं। राजा जनक के इस वचन को सुनकर चारों राजकुमारों ने चारों राजकुमारियों के हाथ अपने हाथ में ले लिए। फिर वशिष्ठ जी की आज्ञा से उन लोगों ने अग्नि वेदी और राजा दशरथ तथा ऋषि मुनियों की परिक्रमा कर वेदोक्त विधि से वैवाहिक कार्य पूरा किया। उस समय आकाश से फूलों की वर्षा हुई और देवताओं ने दुन्दुभी बजाये। फिर वे चारों भाई अपनी-अपनी पत्नियों के साथ जनवासे में गये।

उस समय राजा दशरथ भी ऋषि मुनियों के साथ उनके पीछे-पीछे गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७३)

चौहत्तरवाँ सर्ग

विश्वामित्र का अपने आश्रम को प्रस्थान राजा जनक का भारी दहेज देकर कन्याओं को विदा करना

तदनंतर दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही महामुनि विश्वामित्र कौशिकी तट पर निर्मित अपने आश्रम में चले गये। इधर राजा दशरथ भी अयोध्या को जाने को तैयार हुए। उस समय मिथिला नरेश ने उन्हें हाथी घोड़े रथ समेत भारी दहेज दिया और अपनी पुत्रियों को सहेली रूप में सौ-सौ कन्याएँ तथा उत्तम दासियाँ प्रदान की। इस प्रकार उत्तमोत्तम दहेज देकर राजा जनक अपने महल लौटे तथा राजा दशरथ ऋषि मुनियों समेत अयोध्या की ओर लौटे। इसी समय महाराज दशरथ के चारों ओर भयंकर बोलो बौलनेवाले पक्षी चहचहाने लगे। साथ ही भूमि पर विचरनेवाले समस्तमृग उन्हें दाहिने रखकर जाने लगे। यह देखकर राजा दशरथ ने वशिष्ठ से पूछा- मुनिवर ! यह दो प्रकार का शकुन कैसा ? यह मेरे हृदय को बुरी तरह कँपा रहा है। यह सुनकर महर्षि वशिष्ठ जी बोले- राजन् ! इस समय आकाश के पक्षियों के मुख से जो बात निकल रही है वह किसी भयानक भय के आने की सूचना दे रही है किंतु दाहिनी ओर जानेवाले मृग उस भय के शांत हो जाने की सूचना दे रहे हैं। वे इस तरह बात कर ही रहे थे कि अचानक सूर्य अंधकार से ढक गया और चारों ओर धूल हो धूल भर गया। इससे वहाँ ऋषि मुनि और राजा दशरथ आदि को छोड़कर शेष सभी उपस्थित लोग अचेत हो गये। उसी समय राजा दशरथ ने देखा कि सामने जमदग्नि कुमार परशुराम आ रहे हैं। उनके मुख पर इतना तेज था कि उनकी ओर देखना भी कठिन था। जलती हुई आग के समान भयानक दिखलाई पड़नेवाले परशुराम को सामने आतें देखकर ऋषियों ने उन्हें अर्घ्य लेकर दिया और मधुर वचनों में उनसे बातचीत करने लगे। अब उनकी पूजा स्वीकार कर परशुराम जोश्रीराम से इस प्रकार

कहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७४)

पचहत्तरवाँ सर्ग

परशुराम का श्रीराम को वैष्णव धनुष चढ़ाने को ललकारना

श्रीराम ! तुम्हारे द्वारा शिव धनुष तोड़े जाने का समाचार मुझे मिल चुका है। उसका टूटना अद्‌भुत बात है इसीलिए मैं एक दूसरा उत्तम धनुष लेकर आया हूँ। यह परशुराम का भयंकर धनुष है। इसे खींचकर चढ़ाने पर मैं तुम्हारे बल का अंदाज कर लूँगा और ऐसा न करने पर तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा। परशुराम की यह बात सुनकर राजा दशरथ हाथ जोड़कर बोले- ब्रह्मन् ! आप दया करके मेरे पुत्रों को जीवन दान दीजिए क्योंकि आपने क्षत्रियों का संहार करना छोड़ दिया है और कश्यप को पृथ्वी का दान देकर महेन्द्र पर्वत पर निवास करने लगे हैं। महामुने ! यदि आपका क्रोध राम पर है तो समझ लें कि बिना राम के हम सब ही अपना जीवन त्याग देंगे। किंतु इधर परशुराम दशरथ की बातों पर कोई ध्यान दिये बिना राम से बोले- नरश्रेष्ठ ! इन दोनों धनुषों को साक्षात् विश्वकर्मा ने बनाया था। इनमें से एक को देवताओं ने भगवान् शंकर को त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिये दिया था। इसी को तुमने तोड़ डाला है और उसी में से यह दूसरा धनुष मेरे हाथ में है। इसे देवताओं ने विष्णु भगवान को दिया था और यह वही वैष्णव धनुष है।

एक बार देवताओं ने दोनों की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्माजी से पूछा- इन दोनों में कौन बलशाली है। यह सुनकर ब्रह्माजी ने उन दोनों में विरोध पैदा कर दिया। फिर क्या एक दूसरे को जीतने की इच्छा से विष्णु और शिव में जो युद्ध हुआ वह रोंगटे खड़े करनेवाला था। उस समय विष्णु ने हुंकार मात्र से शिव के धनुष को शिथिल कर दिया। तब देवताओं और ऋषियों के याचना करने पर वे दोनों शांत हुए और उसमें भगवान् विष्णु को श्रेष्ठ मान लिया गया। इससे महादेवजी ने कुपित होकर उस धनुष को विदेह के राजा देवरात के हाथों में दे दिया। श्रीराम! तब विष्णु ने अपने धनुष को भृगुवंशी ऋचीक मुनि को दिया। फिर उन्होंने उसे मेरे पिता जमदग्नि को दे दिया। तदनन्तर जब मेरे पिता शस्त्रों का त्याग कर तपस्या में लगे थे उस

समय कृतवीर्य कुमार अर्जुन ने उन्हें मार डाला। इसी से क्रोध में आकर मैंने अनेक बार क्षत्रियों का विनाश किया और फिर सारी पृथ्वी पर अधिकार कर उसे महात्मा कश्यप को दान स्वरूप दे दिया। इस समय मैं शिवजी के धनुष के तोड़े जाने का समाचार सुनकर यहाँ आया हूँ। श्रीराम! अब तुम इस धनुष को लेकर ऐसा बाण चढ़ाओ जो शत्रुओं पर विजय पाने के समर्थ हो सके। यदि ऐसा नहीं कर सके तो मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७५)

छिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम का वैष्णव धनुष चढ़ाना परशुराम का महेन्द्र पर्वत लौटना

श्रीरामचन्द्रजी पहले तो पिता के गौरव को ध्यान में रखकर कुछ न बोले, लेकिन बाद में चुप न रह सके और कहने लगे- ब्रह्मन! आपने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये जो-जो कार्य किये हैं उन सबको मैंने भली-भाँति सुन लिया है इसके लिये मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ। भार्गव! किंतु आप मुझे क्षत्रिय धर्म से दुर्बल समझकर आप मेरा अपमान कर रहे हैं इसलिए अब आप मेरा तेज और पराक्रम देखिए। इतना कहकर रामचन्द्र ने उस धनुष को हाथ में लेकर उसकी वैष्णवी शक्ति को वापस ले लिया और फिर बोले- भृगुनंदन! आप मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्रजी के साथ भी आपके सम्बंध है। इसलिए मैं इस प्राण संहारक बाण को आपके शरीर पर नहीं छोड़ सकता.लेकिन मेरे विचार से आपको जो सर्वत्र शीघ्रता से आने जाने की शक्ति प्राप्त हुई है अथवा आपने तपोबल से जिस पुण्य लोक की प्राप्ति की है उन्हीं का विनाश कर दूँ क्योंकि यह बाण अहंकार को नाश करने वाला है और कभी निष्फल नहीं जानेवाला है। इस समय बाण धारण किये हुए श्रीरामचन्द्र को देखने के लिए सारे देवता और ऋषि मुनि भी ब्रह्माजी को लेकर वहां एकत्र हो गये। इधर श्रीराम को वैष्णव धनुष हाथ में लेते ही परशुराम का तेज निकल कर राम में मिल गया। इसलिए वे जड़वत बने हुए

श्रीराम से बोले- हे राम! जिस समय मैंने यह पृथ्वी कश्यप को दान में दी थी उसी समय मैंने उन्हें यह वचन दिया था कि मैं तुम्हारे राज्य में नहीं रहूँगा। अतएव मैं अपने उसी वचन का पालन करने हेतु रात में भूमि पर निवास नहीं करता। इसलिए श्रीराम आप मेरे गमन शक्ति को नष्ट न करें। बल्कि मैंने अपनी तपस्या से जिन अनुपम लोकों पर विजय पायी है आप उन्हीं को नष्ट कर दें। रघुनन्दन! यह मेरे लिए कदापि लज्जाजनक नहीं हो सकती कि त्रिलोकी नाथ श्री हरि ने मुझे पराजित किया है। अब आप अपना बाण छोड़िए इसके छूटने के बाद ही मैं महेन्द्र पर्वत पर पहुँच जाऊँगा। तब श्रीराम के द्वारा उस बाण को छोड़ते ही उनके उन पुण्य लोकों का विनाश हो गया जो परशुराम ने अपनी तपस्या द्वारा उपार्जित किये थे। यह देखकर परशुराम जी शीघ्र ही महेन्द्र पर्वत पर चले गये और देवताओं ने पुष्प वर्षा करते हुए श्रीरामचन्द्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७६)

सतहत्तरवाँ सर्ग

राजा दशरथ का पुत्रों और बधुओं सहित अयोध्या में प्रवेश तथा सीता और श्रीराम का पारस्परिक प्रेम

श्री परशुराम जी के चले जाने पर श्रीराम ने उस धनुष को वरुण के हाथों में दे दिया। फिर पिता को विकल होते देख उन्होंने कहा- पिताजी! परशुरामजी चले गये हैं अब आप सेना सहित अयोध्या को प्रस्थान करें। इसे राजा दशरथ अपने पुत्र का पुनर्जन्म हुआ मानकर उन्हें छाती से लगा लिया। तदनन्तर उन्होंने सेना को नगर की ओर कूच करने की आज्ञा दी। इधर जब अयोध्या निवासियों को यह खबर मिली कि राजा दशरथ वापस आ रहे हैं तो उन्होंने नगर को खूब सजाया और हाथों में मांगलिक वस्तुएँ लेकर राजा के प्रवेश मार्ग पर उनके स्वागत हेतु खड़े हो गये। तत्पश्चात् राजा दशरथ चारों राजकुमारों और उनकी वधुओं के समेत नगर में प्रवेश किया और रथ से उतरकर प्रसन्नतापूर्वक महलों में गये। वहाँ उनकी तीनों रानियों ने आनन्दपूर्वक अपने वधुओं को उतारा और होम आदि में उनका

Mookerji Jharma (IT S) Jammu Collection

सत्कार किया। तब उन राजकन्याओं ने भी अपनी पूजनीयों को प्रणाम किया और अपने-अपने पतियों के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगीं। तदनन्तर कुछ दिन इस तरह सुखपूर्वक बीत जाने पर दशरथ ने अपने पुत्र भरत से कहा-बेटा! ये तुम्हारे मामा युधाजित् तुम्हें लेने आये हैं और कई दिनों से यहाँ ठहरे हैं। अतः पिता की आज्ञा मानकर भरत ने शत्रुघ्न को साथ लेकर अपने मामा के यहाँ जाने को तैयार हो गए। फिर युधाजित् बड़े हर्ष से उन्हें साथ लेकर अपने नगर पहुँचे। इससे उनके पिता को बड़ा संतोष हुआ। इधर भरत और शत्रुघ्न के चले जाने पर श्रीराम और लक्ष्मण अपने देवोमय पिता की सेवा करने लगे। फिर पिता की आज्ञा से वे नगरवासियों का काम भी देखने लगे। वे गुरुजनों के भारी से भारी कार्यों को सिद्ध करने का ध्यान रखते। उनके इस सद्व्यवहार से राज्य के सभी लोग उनसे बहुत संतुष्ट रहते। राजा दशरथ के उन चारों पुत्रों में श्रीराम ही अत्यंत यशस्वी हुए। सीता श्रीराम को बहुत ही प्रिय थीं। सीता के पातिव्रत गुणों के कारण श्रीराम का उनके प्रति अत्यधिक प्रेम बढ़ता गया। सीता भी श्रीराम के हृदय के भावनाओं को समझ लेतीं और स्पष्ट रूप से उन्हें बता देतीं। वे मन में सदैव श्रीराम की ही कामना रखती थीं। जैसे लक्ष्मी के साथ विष्णु शोभायमान होते हैं उसी प्रकार सीता के साथ श्रीराम शोभा प्राप्त करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के बालकाण्ड में सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७७)

बालकाण्ड समाप्त

◆

अयोध्या काण्ड

पहला सर्ग

दशरथ का राम को युवराज बनाने का विचार, मंत्रणा के लिये जनपद के लोगों का बुलाना।

भरत जी मामा के यहाँ जाते समय शत्रुघ्न को भी लेते गये थे। वहाँ उनका बड़ा आदर सत्कार हुआ। उनकी हर इच्छाएं पूरी की जाती। तथापि इतने सुख से रहते हुए भी उन्हें अपने बूढ़े पिता महाराज दशरथ की याद कभी न भूलती थी। इधर दशरथ को उनके चारों पुत्र ही बहुत प्रिय थे लेकिन श्रीराम सबकी अपेक्षा अधिक गुणवान होने से उनके लिये विशेष प्रीतिवर्धक थे। इसका एक कारण यह था कि वे सनातन विष्णु थे और रावण वध हेतु मनुष्य लोक में अवतरित हुए थे। वे माता कौशल्या की शोभा भी उसी तरह बढ़ा रहे थे जिस प्रकार माता अदिति इन्द्र से सुशोभित होती हैं। वे गुणों में अपने पिता की तरह थे तथा सबसे मधुर वचन बोलने वाले थे। झूठी बात कभी उनके मुख से नहीं निकलती थी तथा वे सदैव वृद्ध पुरुषों का सम्मान किया करते थे। वे दयालु, क्रोध को जीतने वाले तथा ब्राह्मणों के पुजारी थे। वे इन्द्रियों को वश में रखनेवाले तथा शरणागतों के रक्षक थे। अमंगलकारी कार्यों के करने में उनकी थोड़ी भी रुचि न होती। यद्यपि वे सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता थे फिर बाण विद्या में अपने पिता से भी बढ़कर थे। शत्रु सेना पर आक्रमण तथा प्रहार करने में विशेष कुशल थे। दर्प और ईर्ष्या तो उन्हें छू भी नहीं गया था। इस तरह उत्तम गुणों से युक्त होने के कारण वे समस्त प्रजाओं तथा तीनों लोकों के प्राणियों के लिए आदरणीय थे। उनके इन गुणों को देखकर महाराज दशरथ के मन में यह चिंता हुई कि किस प्रकार श्रीरामचन्द्र मेरे जीते जी राजा हो जायें क्योंकि वे बल और पराक्रम में यम और इन्द्र के समान, बुद्धि में वृहस्पति के समान और गुणों में मुझसे भी बढ़-चढ़कर हैं। इस प्रकार सोच विचार कर उन्होंने मंत्रियों के साथ सलाह करके श्रीराम को युवराज बनानें का निश्चय किया। तदनन्तर राजा दशरथ ने भिन्न-भिन्न

Mookerji sharma (M.S) Jammu Collection

नगरों में निवास करनेवाले प्रधान पुरुषों तथा अन्य जनपदों के सामन्त राजाओं को भी परामर्श के लिये अयोध्या में बुलवा लिया। उनके आगमन पर राजा दशरथ ने उनका यथायोग्य आदर सत्कार किया। लेकिन जल्दीबाजी के कारण वे केकय नरेश एवं मिथिलापति राजा जनक को नहीं बुलवा सके। उन्होंने सोचा दोनों सम्बंधी इस समाचार को बाद में सुन लेंगे। अब दरबार में राजा दशरथ सभी राजाओं से घिरे हुए उसी प्रकार बैठे दिखायी पड़ रहे थे जैसे देवताओं के बीच में इन्द्र।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

द्वितीय सर्ग

राजा दशरथ का श्रीराम के राज्याभिषेक का प्रस्ताव, सभासदों का समर्थन

उस समय राजा दशरथ ने गूंजते हुए उच्च स्वरों में कहा— सज्जनों मेरे पूर्वजों ने अपनी प्रजाओं का जिस प्रकार पुत्रवत् पालन किया। उसी मार्ग पर चलकर मैंने भी प्रजाजनों की रक्षा की है। परन्तु अब मेरे लिये इस राज्य के भार को ढोना कठिन हो रहा है क्योंकि मैं इसे ढोते-ढोते शिथिल हो गया हूँ। अतः इस कार्य में मैं अपने पुत्र को लगाकर राज्य के काम से विश्राम लेना चाहता हूँ। मेरे पुत्र राम सभी गुणों में श्रेष्ठ हैं तथा बल विक्रम में देवराज इन्द्र के समान हैं। अतः कल प्रातःकाल ही मैं उन्हें युवराज के पद पर नियुक्त करूँगा। उनका इस तरह अभिषेक कर मैं इस सारे भूमण्डल को कल्याण का भागी बनाऊँगा। साथ ही मैं भी दुश्चिंता रहित निश्चिंत हो जाऊँगा। यदि मेरा यह प्रस्ताव उचित जान पड़े तो आप लोग इसके लिये सहर्ष अनुमति दें अथवा यह बतायें कि मैं किस प्रकार से कार्य करूँ। राजा दशरथ के इस बात को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी नरेशों ने हर्षध्वनि की। फिर सब आपस में सलाह करके बोले— राजन्! आप अत्यंत बूढ़े हो गये हैं इसलिये श्रीराम का युवराज पद पर अवश्य अभिषेक कीजिये। उनकी यह बातें राजा दशरथ को बड़ी प्रिय लगने वाली थीं। फिर भी वे सबके मनोभावों को अच्छी तरह जानने के लिए बोले— लेकिन आप लोगों की बात सुनकर मुझे संदेह हो रहा है कि

मेरे धर्मपूर्वक राज्य करने के बाद भी आप लोग राम को युवराज पद पर क्यों देखना चाहते हैं। उनकी बात सुनकर सभी राजा और जनपद के लोगों ने कहा– देव! वास्तव में राम देवराज इन्द्र के समान दिव्य गुणों से पूर्ण हैं। इन्होंने अर्थ के साथ ही धर्म को भी प्रतिष्ठित किया है। ये विद्वान बड़े बूढ़े और ब्राह्मणों के उपासक हैं। उनका स्वभाव साधु पुरुषों के समान है। हृदय उदार और बुद्धि विशाल है। श्रीराम संग्राम भूमि में जाकर विजय प्राप्त किये बिना नहीं लौटते। वे प्रजा का पालन शूरता वीरता और पराक्रम आदि से किया करते हैं। उनकी इन्द्रियाँ राग आदि दोषों से रहित हैं। वे पृथ्वी ही नहीं समस्त त्रिलोक की भी रक्षा कर सकते हैं। इसीलिये ऐसे सर्वगुण सम्पन्न श्रीराम को हम अपना स्वामी बनाना चाहते हैं। देवता,मनुष्य,असुर,गंधर्व के अलावा इस नगर की बूढ़ी और नवयुतियाँ भी श्रीराम के युवराज बनने की कामना देवताओं से किया करती हैं। उनकी यह कामना अब आपकी दया से पूरी होनी चाहिए। इसी में हम लोगों का हित भी छिपा हुआ है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में दूसरा सर्ग पूरा हुआ। (२)

तीसरा सर्ग

श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी

राजा दशरथ का उन्हें राजनीति की बात बताना

राजा दशरथ प्रजा की इच्छा देखकर बोले– आप लोग श्रीराम को युवराज पद पर देखना चाहते हैं इससे मुझे बड़ी खुशी हुई। फिर उन्होंने वामदेव और वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों से कहा भगवन्‌ आप लोग श्रीराम का युवराज पद पर अभिषेक करने के लिए सामग्री जुटाइये। इसके लिये जो-जो कर्म आवश्यक हों उसे भी सांगोपांग बताइये। यह सुनकर मुनि वशिष्ठ ने राजा की आज्ञा पालन करने हेतु सभी सेवकों से कहा– तुम लोग मेरे कहे अनुसार सारी सामग्रियों को इकट्ठा करने का शीघ्र प्रबंध करो और उन्हें प्रातः काल तक महाराज की अग्निशाला में पहुँचा दो। सर्वप्रथम देव पूजा करके ब्राह्मणों को अन्न और मिठाइयाँ दी जाये। फिर उन्हें यथोचित दक्षिणा देकर संतुष्ट किया जाये। इतना आदेश देकर ऋषि वामदेव और मुनि वशिष्ठ ने

Mookerji Sharma ... Jammu Collection

अपना-अपना कार्य पूरा किया। तत्पश्चात् वे दोनों राजा के पास जाकर बोले– राजन्_ अभिषेक की सारी सामग्रियाँ तैयार हैं इसलिये आप शीघ्र श्रीराम को बुलवायें। इसके बाद राजा दशरथ ने सुमन्त्र से कहा– सखे! पवित्रात्मा श्रीराम को तुम शीघ्र यहां बुलाकर ले आओ। तब राजा की आज्ञा से सुमन्त्र श्रीराम को रथ पर बिठाकर ले आये। उस समय अट्टालिका के भीतर बैठे हुए राजा दशरथ ने वहीं से अपने पुत्र श्रीराम को अपने पास आते देखा उस क्षण आते हुए श्रीरामचन्द्र की ओर एकटक देखते हुए भी राजा दशरथ की तृप्ति नहीं हो रही थी। वहाँ पहुँचने पर सुमन्त्र ने श्रीराम को रथ से उतारा और फिर जब वे पिता के समीप जाने लगे तब सुमन्त्र भी उनके पीछे-पीछे हाथ जोड़े हुए गये। इस समय राम के पास आने पर राजा दशरथ ने उन्हें खींचकर छाती से लगा लिया और वहां एक रक्खे हुए मणिजटित सिंहासन पर बैठने की आज्ञा दी। तदनन्तर श्रीराम को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा- बेटा! तुम सब गुणों में मुझसे बढ़कर हो इसीलिए मुझे सबसे अधिक प्रिय हो। अतएव कल पुष्य नक्षत्र के योग में युवराज का पद ग्रहण करो। इसके लिये सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी तुम्हें कुछ हित की बातें बताता हूँ। तुम काम और क्रोध उत्पन्न होनेवाले दुर्व्यसनों का सर्वथा त्याग कर दो। प्रजा का न्याय सदैव पूर्ण प्रमाणों सहित करो। सेना और प्रजा को अपने प्रति अनुरक्त रखते हुए पृथ्वी का पालन करो। साथ ही तुम चित्त को वश में रखकर उत्तम आचरणों का पालन करते रहो। फिर श्रीरामचन्द्र के सुहृदों और मित्रों ने कौशल्या के पास जाकर उनसे यह समाचार कह सुनाया। अब कौशल्या इससे प्रसन्न होकर उन्हें तरह-तरह के पुरस्कार दिये। इधर श्रीराम राजा दशरथ को प्रणाम कर अपने भवन को लौटे। उस समय नगरवासियों ने यह अनुभव करने लगे कि उन्हें शीघ्र ही अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ। (३)

चौथा सर्ग

राजा दशरथ का पुनः श्रीराम को बुलवाकर उन्हें आवश्यक बातें बताना

राज सभा से समस्त पुरवासियों के चले जाने पर राजा ने सोचा कि मुझे कल ही अपने पुत्र का अभिषेक कर देना चाहिए। इसलिए उन्होंने सुमंत्र को बुलाकर कहा जाओ राम को एक बार फिर यहाँ बुला लाओ। सुमन्त्र श्रीराम को बुलाने के लिये पुनः महल में गये। पुनः बुलाये जाने पर श्रीराम के मन में कुछ संदेह उत्पन्न हो गया फिर भी वह राजा का दर्शन करने के लिए पुनः उनके पास गये। उनके आने पर राजा ने उनसे कहा- बेटा! मेरी आयु बहुत अधिक हो गयी और मैंने सारे अभीष्ट सुखों का अनुभव भी कर लिया है। साथ ही मैं देवता,ब्राह्मण, पितर आदि सभी ऋणों से उऋण हो गया हूँ। अब तुम्हें युवराज पद पर अभिषिक्त करना चाहता हूँ। किन्तु श्रीराम! आजकल मुझे बड़े बुरे-बुरे सपने दिखलायी पड़ते हैं जिसमें वज्रपात के साथ भयंकर उल्कायें गिरती दिखायी पड़ती हैं। ऐसे अशुभ लक्षण दिखलायी पड़ने से प्रायः राजा या तो घोर विपत्ति में पड़ता है अथवा उसकी मृत्यु होती है। इसलिये मैं कल ही पुष्य नक्षत्र में तुम्हारा युवराज के पद पर अभिषेक कर ही देना चाहता हूँ। इसके साथ ही भरत जब तक ननिहाल में हैं तब तक तुम्हारा अभिषेक हो जाना चाहिए। यद्यपि भरत तुम्हारा ही अनुसरण करनेवाला है फिर भी मनुष्यों का चित्त प्रायः स्थिर रहनेवाला नहीं होता। अच्छे-अच्छे पुरुषों का मन भी ऐसे समय में राग-द्वेष से भर जाता है। अब पिता के ये वचन सुनकर उन्हें प्रणाम कर अपने महल में लौटे। किंतु महल लौटने पर सीता को वहाँ न देखकर वे माता के अन्तःपुर में चले गये। वहाँ उन्होंने कौशल्या को देव मंदिर में बैठकर देवता की आराधना में लगी हुई देखा। सुमित्रा और लक्ष्मण वहाँ पहले से मौजूद थे। बाद में सीता भी वहीं बुला ली गयी थीं। तब श्रीराम ने उनको प्रणाम करते हुए कहा- माँ! पिताजी ने मुझे प्रजापालन के कार्य में नियुक्त किया है। अतः उनका आदेश है कि आज रात को सीता को भी मेरे साथ उपवास रखना होगा। यह सुनकर कौशल्या आँखों में आनन्द के आँसू भरकर बोलीं- बेटा श्रीराम! चिंरजीवी होओ। मैंने

भगवान् विष्णु की प्रसन्नता के लिये जो व्रत उपवास आदि किया था वह आज सफल हुआ। इसी के फलस्वरूप ही यह राजलक्ष्मी तुम्हें प्राप्त होनेवाली है। इतना सुनकर श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखकर बोले- लक्ष्मण! तुम भी मेरे साथ ही इस राज्य का शासन करो क्योंकि तुम मेरे द्वितीय अन्तरात्मा हो। मैं इस राज्य और जीवन की अभिलाषा तुम्हारे लिये ही करता हूँ। लक्ष्मण से ऐसा कहकर उन्होंने दोनों माताओं को प्रणाम किया और फिर अपने महलों में चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ। (४)

पाँचवाँ सर्ग

राजा दशरथ के अनुरोध से वशिष्ठजी का श्रीराम और सीता को उपवास व्रत की दीक्षा देना।

तदनन्तर दशरथ ने गुरू वशिष्ठ को बुलाकर कहा- तपोधन! आप जाइये और कल्याण सिद्धि के लिये बहू समेत श्रीराम को उपवास कराइये। तब राजा से "तथास्तु" कहकर भगवान् वशिष्ठ रथ पर सवार हो श्रीराम के महल की ओर चल पड़े। जब रामचन्द्र ने गुरू वशिष्ठ को आते देखा तो वे उनके सम्मान में खड़े हो गये और स्वयं हाथ पकड़कर उन्हें रथ से उतारा। तत्पश्चात् वशिष्ठ बोले कि वत्स! तुम्हें आज की रात वधू सीता के साथ उपवास करना है क्योंकि कल तुम्हारा युवराज पद पर अभिषेक होगा और फिर उन्हें उपवास व्रत की दीक्षा दी। तदनन्तर श्रीराम ने भी गुरू वशिष्ठ का पूजन किया और इसके बाद गुरू वशिष्ठ महल के बाहर निकले। इधर रामचन्द्र भी अपने मित्रों को विदा कर राज महल के भीतर चले गये। जिस समय मुनि वशिष्ठ श्रीराम के महल के बाहर निकलकर राज भवन की ओर जाने लगे उस समय उन्होंने देखा कि नगर के सारे मार्ग दर्शकों से भरे हैं। उस दिन अयोध्यापुरी के घर-घर में ऊँची-ऊँची ध्वजायें फहरा रही थीं और सड़कों पर झाड़ बुहाड़ कर वहाँ छिड़काव किया गया था। वहाँ का प्रत्येक मनुष्य रामचन्द्र का अभिषेक देखने के लिये उत्सुक हो रहा था। आज गुरू वशिष्ठ उस जन समूह को एक ओर करते हुए राज महल की ओर गये। वहाँ वशिष्ठ

मुनि को आया देखकर राजा दशरथ उठकर खड़े हो गये और फिर उनसे सारा समाचार लेकर अपने भवन में चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठा सर्ग

सीता सहित श्रीराम का नियम परायण होना अयोध्यापुरी में जनपदवासियों का एकत्र होना।

पुरोहित के चले जाने पर श्रीराम ने पत्नी के साथ श्रीनारायण की उपासना आरम्भ की। फिर हविष्य पात्र को सिर झुकाकर नमस्कार किया और अग्नि में विधिपूर्वक हविष्य की आहुति दी। फिर उस यज्ञशेष हविष्य को ग्रहण कर सीता सहित कुश की चटाई पर शयन किया। तत्पश्चात् एक प्रहर रात बाकी रह जाने पर वे उठ बैठे और सेवकों को सभा मण्डप सजाने की आज्ञा दी। तदनन्तर उन्होंने सन्ध्योपासना की और एकाग्रचित्त होकर जप करने लगे। उस समय अयोध्यावासियों को यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि श्रीराम ने सीता के साथ उपवास व्रत आरम्भ कर दिया है। फिर प्रातःकाल होते ही समस्त पुरवासी अयोध्यापुरी सजाने लगे। तथा सभी बड़े-बड़े भवन और ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर बड़ी-बड़ी ध्वजाएँ लगायी गयीं। उस समय वहाँ प्रायः सब लोग आपस में श्रीराम के राज्याभिषेक की चर्चा कर रहे थे। घरों और दरवाजों पर झुंड के झुंड खेलते हुए बालक भी श्रीराम के राजतिलक की ही बातें कर रहे थे। राज्याभिषेक में देर होने की सम्भावना से पुरवासियों ने वहाँ की सड़कों के दोनों ओर दीप स्तम्भ खड़े कर दिए। फिर नगर को सब तरह से सुसज्जित कर वहाँ के पुरवासी आपस में बातें करने लगे कि भगवान् की हम पर बड़ी कृपा है जो श्रीराम का अभिषेक होने जा रहा है। वे बार-बार श्रीराम की बड़ाई करते कि वे विद्वान धर्मात्मा और अपने भाइयों पर स्नेह रखनेवाले हैं। उस समय राज्याभिषेक देखने के लिए वहाँ चारों दिशाओं के लोग आये हुए थे। इस तरह सारी अयोध्यानगरी दर्शकों से भरी हुई और चारों ओर कोलाहल ही कोलाहल सुनायी पड़ रहा

था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

अभिषेक के समाचार से मन्थरा का खिन्न होना और उसका कैकेयी को उभाड़ना

रानी कैकेयी की मन्थरा नामक एक दासी थी। अभिषेक के एक दिन पहले वह स्वेच्छा से कैकेयी के महल की छत पर जा चढ़ी। वहाँ से उसने देखा कि अयोध्या की सड़कों पर छिड़काव किया गया है और सारी पुरी में यहाँ वहाँ कमल और उत्पल बिखेरे गये हैं। सारे राज मार्गों पर चंदन जल का छिड़काव किया गया है। देवमंदिर चूने और चन्दन आदि से लीप कर सुन्दर बनाये गये हैं। सारा नगर ही हर्ष से भरा हुआ दिखलायी पड़ रहा है। ! इस तरह की शोभा देखकर मन्थरा को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके साथ ही उसने पास के कोठे पर राम के धाय को भी पीले रंग की रेशमी साड़ी पहने हुई खड़ी देखा। यह देखकर मन्थरा ने उससे पूछा- आज यहाँ के मनुष्यों में इतनी प्रसन्नता क्यों दिखलायी पड़ रही है। महाराज दशरथ प्रसन्न होकर कौन सा कर्म कराने जा रहे हैं। धाय यह सुनकर प्रसन्नता से भरकर बोली- कुबजे! कल महाराज दशरथ श्रीराम को युवराज बनायेंगे। धाय के इस वचन को सुनकर मन्थरा मन हीमनकुढ़ गयी और इसमें कैकेयी का अनिष्ट देखते हुई वह नीचे उतरी और कैकेयी के पास जाकर बोली- अरी मूर्खे! तेरे ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूटने जा रहा है और तुझे इसका ज्ञान भी नहीं। तेरे पति ही तेरा अनिष्ट करने जा रहे हैं- और तू चुप है। मन्थरा के ऐसे वचन सुनकर कैकेयी दुखित होकर बोली- मन्थरे! ऐसी कौन सी अमंगल की बात हुई है। मन्थरा ने समझाया- देवि! तुम्हारा सौभाग्य मिटने जा रहा है। क्योंकि कल महाराज दशरथ श्रीराम को युवराज पद पर अभिषिक्त करेंगे। इसी दुख से व्याकुल हो मुझे यहाँ तक आना पड़ा। महाराज दशरथ जो तुझसे धर्म की चिकनी चुपड़ी बात करते हैं पर आज उन्हीं के द्वारा तू ठग ली गयी है।उनका मन बेहद कलुषित है क्योंकि भरत को ननिहाल भेजकर वे कल श्रीराम को

युवराज बनाने जा रहे हैं। कैकय कुमारी! मेरी इस दुःखजनक बात सुनकर भी तुम प्रसन्न हुई दिखलायी पड़ती हो। लेकिन आज इस प्रसन्नता को छोड़ो और अपने लिये कोई हितकर कार्य करो, जिससे तुम्हारे पुत्र के साथ-साथ मेरी भी रक्षा हो सके। मन्थरा की यह बात सुनकर कैकेयी का मन हर्ष से भर उठा और उसने मन्थरा को पुरस्कार रूप एक दिव्य आभूषण देती हुए कहा- मन्थरे! यह तो तूने मुझसे बड़ी अच्छी बात कही है। मेरे लिये भरत और राम में कोई भेद नहीं है, इसलिये श्रीराम के अभिषेक की बात सुनकर मुझे भी बड़ी प्रसन्नता हो रही। अब इस शुभ संवाद को सुनाने के लिए तू मुझसे कोई भी अच्छा सा वर माँग सकती है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

मन्थरा का पुनः श्रीराम के राज्याभिषेक को कैकेयी के लिये अनिष्टकारी बताना।

कैकेयी की बात सुनकर मन्थरा उसकी निंदा करती हुई उस आभूषण को उठाकर फेंक दिया और बोली- अरी तुम्हें अपने विपत्ति का भी ज्ञान नहीं हो रहा है- यह कैसी बात है? क्या तुम यह भी नहीं समझती कि सौत का बेटा शत्रु होता है। वह सौतेली माँ के लिये साक्षात् मृत्यु के समान होता है। श्रीराम सभी शास्त्रों के ज्ञाता हैं। युवराज बन जाने पर तुम्हारे पुत्र के प्रति जो उनका क्रूर व्यवहार होगा उसे सोचकर मैं भय से कांप उठती हूँ। राम का राजतिलक हो जाने पर कौशल्या महाराज की विश्वास पात्री बनेंगी और तुम दासी बनकर हाथ जोड़े उनके सामने खड़ी रहोगी। उस समय सीता की सखियाँ प्रसन्न होंगी किन्तु भरत का प्रभुत्व खत्म हो जाने से तुम्हारी बहुएँ दुखी होंगी। अब मन्थरा को बहकी-बहकी बातें करती देख कैकेयी ने कहा- कुब्जे! श्रीराम महाराज के ज्येष्ठ पुत्र हैं इसलिये युवराज पद के योग्य वे ही हैं। उनके अभिषेक की बात सुनकर तू क्यों इतनी दुखी हो रही है। मेरे लिये जैसे भरत हैं वैसे राम। यदि श्रीराम को राज्य मिल रहा है तो वह भरत को मिला हुआ समझ। यह बात सुनकर मन्थरा लम्बी सांस लेकर बोली- रानी!

तुम मूर्खता के कारण अहित को हित की बात समझ रही हो। यह क्यों नहीं समझती कि रामचन्द्र के राजा बनने पर फिर उन्हीं के पुत्रों को राजगद्दी मिलेगी। भरत फिर उस राज परम्परा से कट जायेंगे। इसलिये महारानी मैं तुम्हारे हित की बात ही कहने यहाँ आयी हूँ। किन्तु तुम मेरा अभिप्राय समझती नहीं। यह तुम अच्छी तरह जान लो कि यदि श्रीराम को निष्कंटक राज्य मिल गया तो वह भरत को देश के बाहर निकाल देंगे। तुमने छोटी अवस्था में ही भरत को ननिहाल भेज दिया। यदि वे पास होते तो कुछ भाई चारा पैदा भी होता। पर अब उसकी भी आशा नहीं। शत्रुघ्न भरत के अनुगामी हैं यदि वे भी होते तो उनका काम बिगड़ने नहीं पाता। सच यह है कि श्रीराम लक्ष्मण से अधिक प्रेम करते हैं इसलिये वे उनका कुछ नहीं बिगड़ने देंगे किन्तु राज्य पाने के बाद वे भरत का अनिष्ट किये बिना नहीं रह सकते। अतः अगर श्रीरामचन्द्र को महाराज के महल से ही वन में भेज दिया जाये तो इसी में तुम्हारी भलाई छिपी है। तदनन्तर भरत के राज्य प्राप्त कर लेने पर निश्चय ही तुम्हारे कल्याण की सम्भावना है। जैसे वन में शेर हाथी का तिरस्कार करता है। उसी प्रकार रामचन्द्र भरत का तिरस्कार करेंगे, अतः देवि ऐसे तिरस्कार से तुम भरत की रक्षा करो। तुमने पहले पति का प्रेम प्राप्त होने के कारण जिस कौशल्या का अपमान किया था वे ही अब उसका बदला तुमसे क्यों नहीं लेंगी। तुम अपने को भरत के पराभव का कारण न बनाओ। अब तुम्हें ऐसा कोई उपाय सोचना है जिससे श्रीराम को वनवास हो जाय।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

मन्थरा के कुचक्र से कैकेयी का कोप भवन में जाना।

मन्थरा की बात सुनकर कैकेयी को बड़ा क्रोध आ गया और वह बोली- कुब्जे! अब मैं श्रीराम को वन भेजकर रहूँगी। पर, यह तो सोचो यह काम बने कैसे? यह सुनकर मन्थरा बोल उठी- कैकेयनन्दनि! सुनो तुम्हें याद होगा कि पूर्वकाल में देवासुर संग्राम के समय तुम्हारे पति तुम्हें साथ लेकर देवताओं की सहायता करने गये थे। उन दिनों राजा दशरथ ने असुरों के साथ बड़ा

विकट युद्ध किया था। जिसमें अस्त्र-शस्त्रों द्वारा उनका शरीर जर्जर हो उठा था। देवि ! उस समय जब राजा की चेतना लुप्त सी हो गयी तब तुमने उन्हें रण भूमि से दूर हटाकर उनकी रक्षा की। परन्तु राक्षसों के शस्त्रों से जब वे वहाँ भी घायल हो गये तब तुमने उन्हें वहाँ से अन्यत्र ले जाकर पुनः उनकी रक्षा की। देवि ! इससे संतुष्ट होकर महाराज ने तुम्हें दो वर देने को कहा था। किन्तु उस समय तुमने महाराज से कहा था कि प्राणनाथ ! जब मेरी इच्छा होगी मैं इन वरों को मांग लूंगी। अब तुम इन्हीं वरों के प्रभाव से स्वामी को वश में करो और श्रीराम के युवराज बनने का आयोजन विफल कर दो।तुम अपने दोनों वरों को आज ही महाराज से माँगो। उनमें से एक के द्वारा भरत का राज्याभिषेक और दूसरे के द्वारा श्रीराम के चौदह वर्षों का वनवास माँग लो। इस तरह से भरत को चौदह वर्ष तक राज्य करने का अवसर मिल जायेगा और उस बीच उन्हें अपने प्रजा का स्नेह प्राप्त करने का अच्छा अवसर मिलेगा। महारानी ! तुम इस समय मैले वस्त्र पहनकर कोप भवन में प्रवेश करो और शोकातुर हो धरती पर लोटने लगो ऐसे समय में महाराज दशरथ तुम्हें कुपित होते न देख सकेंगे और तुम्हारा प्रिय कार्य करने के लिए अपने प्राणों को भी त्यागने को तैयार हों जायेंगे। फिर वे तुम्हें मनाने के लिए तरह तरह के प्रलोभन भी देंगे किंतु तुम किसी भुलावे में न आकर उनको अपने दो वरों की याद दिलाना और कहना कि आज श्रीराम को चौदह वर्षों के लिए दूर वन में भेज दीजिए और भरत को भूमण्डल का राजा बनाइये। पुत्र की भलाई चाहनेवाली कैकेयी इससे तुम्हारे मनोरथ सिद्ध हो जायेंगे। राम के वन चले जाने पर तुम्हारे पुत्र को निष्कंटक राज्य मिलेगा और राम के वापस लौटने तक वे सब ओर से दृढ़मूल हो जायेंगे। कैकेयी उसकी बातों पर पूरी तरह से विश्वास करती हुई उस अनुचित काम करने को तैयार हो गयी। उसे मंथरा की बुद्धि पर आश्चर्य होने लगा और वह उससे बोली मंथरा इस पृथ्वी पर केवल तू ही मेरी हितैषिणी है और सावधान रहकर मेरा कार्य सिद्ध करने में लगी रहती है। सुन्दरी कुब्जे सुन अगर श्रीराम वन को चले गये और भरत का राज्याभिषेक हुआ तो मैं तुझे बहुत से सुन्दर वस्त्र और आभूषण दूँगी जिसे पहनकर तू देव ललनाओं की तरह घूमेगी।तदनन्तर कुब्जा कैकेयी से बोली महारानी। अब समय न गंवाओ। जल्दी उठो और कोप भवन में

जाकर महाराज को अपनी अवस्था का परिचय दो। मन्थरा की यह बात सुनते ही कैकेयी कोप भवन में जाकर सारे आभूषणों को शरीर से उतारकर इधर उधर फेंकने लगी और फिर धरती पर लेटकर मंथरा से बोली--कुब्जे। अब या तो भरत का राज्याभिषेक होगा या तू महाराज को मेरी मृत्यु का समाचार सुनायेगी। ऐसे कठोर वचन कहकर कैकेयी खाली जमीन पर लौटने लगी। उस समय वह स्वर्ग से गिरी हुई किसी किन्नरी के समान दिखलायी पड़ती थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का कैकेयी को कोप भवन में देखकर दुःखी होना

तत्पश्चात् धरती पर लोटती हुई कैकेयी नागकन्या की भाँति गरम और लम्बी सांसें लेने लगी। उस समय वहाँ उसके द्वारा फेके हुए आभूषण उसी प्रकार शोभायमान हो रहे थे जैसे छिटके हुए तारे आकाश में शोभायमान होते हैं। इधर महाराज दशरथ राम के राज्याभिषेक की पूरी तैयारी की आज्ञा देकर कैकेयी के भवन में प्रवेश किया। लेकिन उस सुसज्जित अंतःपुर में जाने पर उन्होंने महारानी कैकेयी को अपनी शय्या पर नहीं देखा। वहाँ अपनी प्रिय पत्नी को न पाकर उनके मन में घोर दुःख होने लगा। वे अब इसके बारे में उनकी दासियों से पूछताछ करने लगे। उन्हें क्या मालूम कि वह मूर्ख अपने किसी स्वार्थ सिद्धि में लगी है। अंत में एक दासी के द्वारा उन्हें मालूम हुआ कि देवी कैकेयी भागती हुई कोप भवन में गयी हैं। राजा यह सुनकर और भी दुखित हो गये और शीघ्रता से कोष भवन में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने कैकेयी को पृथ्वी पर कटे हुए वृक्ष की तरह पड़ी हुई देखा। अब वे भयभीत होकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले– देवि ! तुम मुझ पर कुपित होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं होता। क्या किसी के द्वारा तुम्हारा तिरस्कार हुआ है या किसी ने तुम्हारी निंदा की है। भामिनि ! अगर तुम्हारे ऊपर किसी पिशाच ने अधिकार कर लिया हो तो मैं किसी चिकित्सक कुशल वैद्य को बुलाकर तुम्हारा उपचार करवा के तुम्हें सुखी कर सकता हूँ।

यदि किसी ने तुम्हारा अपकार किया हो तो उसे भी कठोर दंड दे सकता हूँ। देवि ! मैं और मेरे सभी सेवक तुम्हारी आज्ञा के अधीन हैं अतएव तुम्हारे मन में जो कुछ हो उसे साफ-साफ कह दो। अब तुम्हें इतना दुःख उठाने की आवश्यकता नहीं। राजा की इस बात से कैकेयी को बड़ी सान्त्वना मिली– और वह राजा से अप्रिय बात करने को तैयार हो गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

कैकेयी का राजा को दो वरों का स्मरण दिलाना और श्रीराम के लिए वनवास तथा भरत के लिए राज्याभिषेक माँगना।

तदनन्तर कैकेयी राजा दशरथ से बोली– राजन् ! न तो किसी ने मेरा अपकार किया है और न मैं किसी से निंदित हुई हूँ। लेकिन अगर आप प्रतिज्ञा करें कि आप मेरा मनोरथ पूरा करेंगे तभी मैं आपसे वास्तविक बात बताऊँगी। यह सुनकर राजा दशरथ ने मुस्कराते हुए कैकेयी के सिर को अपनी गोद में लेकर कहा-कैकेयी ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि रामके अलावा मेरा और कोई प्रिय नहीं। अतएव मैं उसी राम की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम जो कुछ कहोगी उसे मैं पूरा करूँगा। अब जैसे ही कैकेयी ने देखा कि राजा दशरथ पूर्ण रूप से उसके वश में हैं तो वह बोली-राजन् ! आप जिस तरह क्रमशः शपथ खाकर मुझे वर देने को उद्यत हुए हैं उसे इन्द्र आदि तैंतीस देवता सुन लें। इसके अलावा जितने भी प्राणी हैं वे भी इसके साक्षी बनें। सब देवता सुनें कि सत्यवादी महाराज दशरथ मुझे वर देने को तैयार हैं। इस तरह महाराज दशरथको पूर्ण रूपेण अपनी मुट्ठी में करके कैकेयी ने उनकी प्रशंसा की फिर कहा– देव ! आपको वह पुरानी बात याद होगी जब देवासुर संग्राम चल रहा था और उस समय शत्रु ने आपकी सब दुर्गति कर दी थी केवल प्राण ही नहीं लिये थे। राजन् उस समय मैंने अथक परिश्रम से आपके जीवन की रक्षा की थी। उससे संतुष्ट होकर आपने मुझे दो वर दिये थे जिन्हें धरोहर के रूप में मैंने आपके पास ही रख छोड़ा है। आज उन्हीं को मैं वापस चाहती हूँ। यदि वे दोनों वर मुझे नहीं मिले तो मैं अपने को अपमानित समझ कर अपना प्राण

त्याग दूंगी। अब एक वर के द्वारा मैं चाहती हूँ कि राम के अभिषेक सामग्री से भरत का राज्याभिषेक किया जाय तथा दूसरे वर के द्वारा श्रीराम को तपस्वी के वेष में चौदह वर्षों तक के लिये दण्डकारण्य भेजा जाये ताकि भरत को निष्कंटक युवराज पद प्राप्त हो जाये। मेरी यही सर्वश्रेष्ठ इच्छा है। इसलिए आप ऐसी व्यवस्था करें कि मैं आज ही श्रीराम को वन जाते हुए देखूँ। आप राजाओं के राजा हैं इसलिए सत्य प्रतिज्ञ बनिये क्योंकि मनुष्य के लिये यही कल्याणकारी मार्ग है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११)

बारहवाँ सर्ग

महाराज दशरथ की चिंता तथा वर न माँगने के लिए अनुरोध करना।

कैकेयी की इस बात को सुनकर महाराज दशरथ को बड़ा संताप हुआ। वे सोचने लगे कि क्या मुझे दिन में ही स्वप्न दिखलायी पड़ने लगा है। अथवा यह कोई मन का ही उपद्रव है। जैसे किसी बाघ को देखकर मृग व्यथित हो जाता है उसी तरह कैकेयी को देखकर राजा दशरथ भी व्यथित हो उठे। इस शोक बढ़ानेवाली बात को सुनकर उनकी चेतना ही लुप्त सी हो गयी। अब चेतना आने पर उन्होंने कैकेयी से क्रोधित होकर कहा- दुराचारिणी! पहले यह बता कि राम ने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू उसका इस तरह अनिष्ट करने पर उतारू हो गयी। मैं नहीं जानता था कि तू राजकन्या के रूप में एक विषवाली नागिन है। मैं कौशल्या, सुमित्रा या अपनी राजलक्ष्मी को तो त्याग सकता हूँ लेकिन मैं श्रीराम को नहीं छोड़ सकता। क्योंकि श्रीराम को न देखने से मेरी चेतना ही लुप्त होने लगती है। अतएव मैं तुझसे विनती करता हूँ कि तू अपने इस दुराग्रह को छोड़ दे। हाँ, मैं तेरे पहले वर के अनुसार भरत का राज्याभिषेक करने को तैयार हूँ। पहले तू स्वयं राम को धर्माचरणवाला मानती थी अब आज उसके राज्याभिषेक की बात सुनकर लगता है कि तुझ पर भूत पिशाच आदि का आवेश हो गया है। देवि! तुझे यशस्वी राम का चौदह वर्षों का वनवास कैसे अच्छा लग सकता है? वे राम

जो सदा तेरी सेवा सुश्रुवा में लगे रहते हैं उन्हें देश निकाला देने की इच्छा तुम्हारे मन में कैसे आयी। मेरे यहाँ जितनी स्त्रियाँ हैं और जितने भी भृत्य हैं उनसे भी श्रीराम के लिए कोई शिकायत नहीं सुनी गयी। इसलिए हे देवि! उस देवता तुल्य राम का अमंगल तू क्यों चाहती हैं। तू ही सोच ले ऐसे त्यागी, दयालु, धर्मज्ञ और सत्यवादी राम के बिना मेरी क्या गति होगी। मैं मौत के किनारे स्वयं बैठा हूँ, ऐसी दशा में यह दुराग्रह तुझे शोभा देनेवाली नहीं। लेकिन राजा के इस अनुनय विनय पर भी कैकेयी का मन जरा भी न पिघला और वह कठोर होकर बोली-राजन्! दो वरदान देने के बाद आप उसके लिए पश्चाताप करें यह किसी तरह उचित नहीं। आप इसके लिए अन्य लोगों को क्या उत्तर देंगे कि मैंने कैकेयी को वर देने के लिए की गयी प्रतिज्ञा झूठी कर दी। क्या इससे आपके कुल के राजाओं के माथे कलंक का टीका नहीं लगेगा। राजा शैब्य ने बाज और कबूतर के झगड़े में अपना प्रण पूरा करने के लिए अपने प्राण तक दे दिये थे। समुद्र ने नियत सीमा न लांघने की प्रतिज्ञा देवताओं के सामने की थी उसे वह आज तक निभाता आ रहा है। इसी तरह दुर्बुद्धि नरेश जिस बात के लिए आपने मुझसे प्रतिज्ञा कर ली है वह बदल नहीं सकता। यदि आज राम का राज्याभिषेक हुआ तो मैं विष पीकर मर जाऊँगी। मैं भरत की शपथ खाकर कहती हूँ कि राम को इस देश से निकाल देने पर ही मुझे सच्चा संतोष मिलेगा। कैकेयी के मुख से अप्रिय लगनेवाले वचन को सुनकर राजा एक मुहुर्त तक के लिए कुछ न बोले फिर 'हे राम!' कहकर कटे वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़े। तदनंतर उन्होंने दीनवाणी में कहा-पिशाच ग्रसन नारी! तुझे इसका उपदेश किसने दिया है। तेरी मांग बहुत ओछी है। अब तू इससे विरत हो जा। तू समझती क्यों नहीं कि श्रीराम के बिना भरत किसी प्रकार इस राज्य को स्वीकार ही नहीं करेंगे। फिर मैं जब श्रीराम से वन जाने को कहूँगा तब उनके उदास मुख की ओर मैं कैसे देख सकूँगा। जब बहुत से पुरुष मुझसे पूछेंगे कि श्रीराम कहाँ हैं। तब मैं कैसे कहूँगा कि कैकेयी के दबाव देने पर मैंने अपने घर से अपने ही बेटे को निकाल दिया है। यदि राम वन को गये तो कौशल्या मुझे क्या कहेगी। इस महान उपकार का मैं उसे क्या उत्तर दूँगा। मैंने अब तक तेरे कारण ही उस सत्कार पाने योग्य देवी को ठीक से सत्कार नहीं किया। श्रीराम के अभिषेक की बात टलने पर सुमित्रा

Mookerji Sharma (IAS) Jammu Collection

भी मेरे ऊपर से सारा विश्वास खो देगी। हाय! बेचारी सीता को श्रीराम का वनवास और मेरी मृत्यु दो-दो शोक समाचार एक साथ सुनने को मिलेगा। तेरी बात सहन करते हुए मुझे लगता है कि मेरे पूर्वजन्म में किये हुए पाप का ही अशुभ फल है। पापिनी! अब तक तुझे गले लगाने का यही फल मिला है कि आज तू मेरे गले में पड़ी हुई फाँसी का फंदा बन गयी है। लोग मुझे धिक्कारते हुए कहेंगे कि राजा दशरथ बड़ा ही मूर्ख और कामी है जो अपनी स्त्री को संतुष्ट करने के लिए अपने प्यारे पुत्र को वन में भेज रहा है। श्रीराम अब तक गुरुजनों की सेवा में संलग्न रहने के कारण दुर्बल होते आये हैं। अब सुख भोगने का समय आने पर उन्हें फिर वनवास देकर कष्ट में डाला जाये यह अनुचित होगा। यदि वनवास जाने की मेरी आज्ञा को वह टाल दें तो मेरे लिए यह बड़ा प्रिय होगा लेकिन वे ऐसा नहीं कर सकते। राम अगर वन चले गये तो यह अवश्य मेरी मृत्यु का कारण बनेगा। फिर मेरी मृत्यु के पश्चात् तू कौशल्या आदि पर कौन-सा अत्याचार करेगी। लक्ष्मण और शत्रुघ्न से श्रीराम का विछोह होते देख कौशल्या और सुमित्रा और तीनों पुत्रों को महान शोक में डालकर तू स्वयं सुखी हो जाना। श्रीराम के वन गमन और मेरी मृत्यु के पश्चात तू भरत के साथ अयोध्या का राज्य करना। रथ और हाथियों पर चलने वाले राम अब वनों में पैदल कैसे चल सकेंगे? जिनके लिए रसोंइये उत्तम से उत्तम भोजन तैयार करते थे वे अब वन में कसैले और तिक्त फलों का आहार कैसे कर सकेंगे? बहुमूल्य वस्त्र पहननेवाले श्रीराम अब वन में गेरुएं वस्त्र पहनकर कैसे रहेंगे? सुंदर रूपवाले श्रीराम को आभूषणों से सज्जित होकर आते-देख मैं स्वयं जवान बन जाता था। जैसे कोई मृत्यु को अपने घर में बसाले वैसे मैंने तुझे बसा लिया है। कैकेयी जब तू अपने मुख से कठोर बातें निकालती है उस समय तेरे दाँत मुंह के नीचे क्यों नहीं गिर जाते। कुलकलंकिनी! अब तू चाहे जलकर खाक हो जा या पृथ्वी में हजारों दरारे बनाकर उसमें समा जा मैं तेरी एक बात माननेवाला नहीं। मैं अब तेरा जीवित रहना देख भी नहीं सकता। देवि! मेरे बेटे के बिना मेरा जीवन बना रहना संभव नहीं। इसलिए मैं तेरे पैर छूता हूँ कि तू मुझ पर प्रसन्न हो जा

और अपना हठ छोड़ दें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२)

तेरहवाँ सर्ग

राजा का विलाप और अनुनय विनय

महाराज दशरथ की बात सुनकर कैकेयी बोली– महाराज! आप तो डींग मारा करते थे कि मैं बड़ा सत्यवादी और दृढ़प्रतिज्ञ हूँ। दशरथ कुछ क्षण मौन रहने के बाद बोले– हाय, मेरी मृत्यु होने पर जब देवतागण मुझसे श्रीराम का कुशल समाचार पूछेंगे उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा। यदि मैं कहता हूँ कि मैंने श्रीराम को वन भेज दिया तो मेरी वह प्रतिज्ञा झूठी होगी जिसके द्वारा मैंने उन्हें राम को राज्य देने का वचन दिया था। परिश्रम करके मिले हुए पुत्र श्रीराम को मैं वन कैसे भेज सकता हूँ? मैं कितना सुखी होता यदि उन्हें वनवास का संताप देने के पहले ही इस संसार से विदा हो जाता। कैकेयी तू उसे वन क्यों भेज रही है इससे तेरा अपयश फैलेगा। राजा के इस प्रकार विलाप करते-करते सूर्य अस्त हो गया और फिर चन्द्रमा उदित होकर चारों ओर अपनी चाँदनी बिखेरने लगा लेकिन राजा दशरथ को यह जरा भी उल्लास न दे सका। उन्होंने पुनः हाथ जोड़कर कैकेयी को मनाना आरम्भ किया। वे बोले– देवि! मैंने श्रीराम को जो राज्य देने की बात कही है उसे झूठी करा के मेरा उपहास न कराओ। लेकिन कैकेयी पर राजा के इस अनुनय विनय का कोई असर नहीं पड़ा। वह बराबर उल्टी बात ही बोलती गयी। इससे राजा दुःख से अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अब प्रातःकाल होते ही जैसे ही मंगल गान होने लगा राजा ने उसे बन्द करवाने की आज्ञा दे दी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१३)

चौदहवाँ सर्ग

कैकेयी का राजा को सत्य पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देना, राजा का श्रीराम को बुलवाना।

राजा दशरथ को पृथ्वी पर पड़े हुए छटपटाते देखकर कैकेयी ने कहा– राजन् सत्य का पालन ही पृथ्वी पर सबसे बड़ा धर्म है। प्रण पालन हेतु राजा शैब्य ने अपना शरीर बाजपक्षी को दे दिया। राजा अलर्क ने ब्राह्मण की याचना पर अपनी दोनों आँखें निकाल कर दे दी। सत्य का पालन ही सबसे बड़ा धर्म है। उसी सत्य पालन हेतु मेरा माँगा हुआ वर मुझे देते हुए श्रीराम को घर से निकाल दीजिये। अन्यथा मैं अपने को उपेक्षित समझकर आपके सामने ही अपने प्राणों को त्याग दूँगी। कैकेयी की इस दृढ़ता को देखकर राजा दशरथ बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण करते हुए बोले– पापिन ! आज से मैं तुम्हें और तुम्हारे पुत्र दोनों का त्याग करता हूँ। और यदि तुमने रामचन्द्र के युवराज बनने में विघ्न डाला तो श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए जुटायी गयी सामग्रियों से उन्हीं के द्वारा मुझे जलान्जलि दिलवा देना। लेकिन तू अपने पुत्र सहित मेरे लिये जलान्जलि मत देना। मैं श्रीराम के राज्याभिषेक के समाचार से जो जन-समुदायों का हर्षोल्लासजनित चेहरा देख चुका हूँ अब उन्हीं लोगों का आनन्द से शून्य चेहरा नहीं देख सकूँगा। तदनन्तर प्रभात काल आने पर कैकेयी राजा दशरथ से पुनः कठोर वाणी में बोली– महाराज ! समय नष्ट न करके श्रीराम को यहाँ बुलाकर वन जाने की आज्ञा दें और मेरे पुत्रको राजगद्दी पर बैठायें। राजा दशरथ यह सुनकर बोले– मैं धर्म के बंधन से बंधा हूँ इसलिये असमर्थ हूँ। अब मेरी चेतना लुप्तहो रही है अतएव मैं श्रीराम को देखना चाहता हूँ। इधर राजा दशरथ कैकेयी से ऐसी बातें कर रहे थे कि उधर प्रातः काल होते देख गुरु वशिष्ठ सारे शिष्यों सहित अभिषेक की सारी सामग्रियों को एकत्र कर अयोध्या आये। उन्होंने देखा कि नगर की सड़कों पर छिड़काव हो रहा है और चारों ओर ध्वजा पताकाएँ फहरायी जा रही हैं। बाजार और दुकानें इस तरह सजी हुई थी कि उनकी शोभा देखते ही बनी थी। इस समय सारी नगरी ही श्रीराम का राज्याभिषेक देखने को उत्सुक हो रही थी। तत्पश्चात् अन्तःपुर में पहुँचकर उन्होंने सुमन्त्र से कहा– सूत ! तुम

शीघ्र ही महाराज को मेरे आने की सूचना दो। साथ ही उन्हें बता दो कि श्रीराम के राज्याभिषेक के लिए सारी सामग्री एकत्र कर ली गयी है। तुम अब महाराज से राज्याभिषेक के कार्य में शीघ्रता करने के लिये कहो। जिससे सूर्योदय के पश्चात् पुष्य नक्षत्र के योग में श्रीराम राज्य प्राप्त कर लें। वशिष्ठ जी की यह बात सुनकर सुमन्त्र राजा दशरथ की स्तुति करते हुए उनके भवन में प्रवेश किया। राजा के कोई भी द्वारपाल इन्हें अन्दर जाने से रोक न सके क्योंकि राजा की ऐसी ही आज्ञा थी। अब सुमन्त्र राजा की अवस्था को जाने बिना बोले– महाराज। जिस प्रकार मातलि ने देवराज इन्द्र को स्तुति कर उन्हें जगाया था और चारों वेद जिस प्रकार ब्रह्माजी की स्तुति कर उन्हें जगाती हैं उसी प्रकार मैं आपको जगा रहा हूँ। महाराज रात्रि बीत चुकी है और सुबह हो गयी है अब उठकर अभिषेक के अधूरे कार्य को पूरा करें। राजन्! इसके लिये मुनि वशिष्ठ ब्राह्मणों के साथ द्वार पर खड़े हैं। अतः श्रीराम के अभिषेक का कार्य आरम्भ करने की आज्ञा दें। किन्तु सुमन्त्र के इस वचन को सुनकर राजा दशरथ पुनः शोक से ग्रस्त हो गये और बोले– सखे! तुम ऐसी बात सुनाकर मर्मस्थानों पर और अधिक चोट नकरो। फिर राजा दीनता के कारण न बोल सके। तब कैकेयी सुमन्त्र से बोली-सुमन्त्र! रात भर जागने के कारण इन्हें नींद आ गयी है। तुमअब और कुछ सोचे बिना तुरन्त श्रीराम को यहाँ बुला लाओ। सुमन्त्र ने यह सुनकर कहा– लेकिन मैं महाराज की आज्ञा लिये बिना कैसे जा सकता हूँ। इस पर राजा दशरथ बोले– सुमन्त्र तुम जाकर शीघ्र श्रीराम को यहाँ ले आओ। इधर सुमन्त्र ने सोचा कि लगता है कैकेयी भी श्रीराम का अभिषेक करने के लिए ही उन्हें जल्दी बुलवा रही हैं। यह सोचकर वे जैसे ही अन्तः पुर से बाहर निकले वैसे ही उन्होंने अनेकानेक गणमान्य व्यक्तियों को राजद्वार पर आकर खड़े हुए देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१४)

पन्द्रहवाँ सर्ग

सुमन्त्र का श्रीराम को बुलाने के लिए जाना

प्रातःकाल होने पर राजा की आज्ञा से पुरोहित के साथ-साथ बड़े-बड़े

अधिकारी सेठ साहूकार श्रीराम का अभिषेक देखने के लिये राजद्वार पर उपस्थित हो गये। राज्याभिषेक की सारी सामग्रियाँ वहाँ एकत्र कर ली गयी थी। रत्नजटित उत्तम चँवर भी सुसज्जित रूप से वहाँ रक्खा गया था। वहाँ सब प्रकार के वादन स्तुति पाठ करने वाले बंदी और अन्य मागध राजा की आज्ञानुसार एकत्र हो गये थे। लेकिन वहाँ राजा दशरथ को न देखकर वे सब आपस में कहने लगे कि महाराज के पास जाकर कौन हम लोगों के आगमन की सूचना देगा। वे सब ऐसी बातें कह रहे थे कि उसी समय सुमन्त्र ने उनसे कहा– मैं महाराज की आज्ञा से तुरन्त श्रीराम को बुलाने जा रहा हूँ। यदि आप लोगों की आज्ञा हो तो मैं राजा दशरथ से उनके यहाँ न आने का कारण पूछँ आऊँ। उन लोगों से इतना कहकर सुमन्त्र फिर लौटकर राज महल में गये– राजा के शयन गृह के पास जाकर खड़े हो गये फिर उनकी स्तुति करते हुए बोले– महाराज! अब रात्रि बिदा हो गयी है। उठकर जो कार्य प्राप्त हैं उसे कीजिए। बड़े-बड़े गणमान्य व्यक्ति वहाँ उपस्थित हैं वे आप का दर्शन करना चाहते हैं उनकी बात सुनकर राजा ने पूछा– सूत! श्रीराम को यहां तुरन्त बुला लाओ मेरी आज्ञा का पालन अभी तक क्यों नहीं हुआ? यह सुनकर सूत सिर झुका कर राजमहल से बाहर निकले और राजमार्ग पर आ गये। रास्ते में श्रीराम के राज्याभिषेक की आनन्ददायिनी बातें सुनते रहे। तदनन्तर वे श्रीरामके सुसज्जित महल की ओर बढ़े। वहाँ पहुँचकर सुमन्त्र ने देखा कि उनका महल मेरूपर्वत के शिखर की भाँति शोभा पा रहा है तथा श्रीराम की वन्दना करने के लिये उपस्थित हुए असंख्य मनुष्यों से वह भरा हुआ है। वे सब राज्याभिषेक का उत्सव देखने के लिए उत्सुक हो रहे थे। तत्पश्चात् सुमन्त्र श्रीराम के समृद्धशाली अन्तःपुर में बिना किसी रोक टोक के प्रवेश किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१५)

सोलहवाँ सर्ग

सुमन्त्र का श्रीराम को महाराजा का संदेश देना

तदनन्तर सुमन्त्र अन्तःपुर के द्वार को लांघकर महल के एकान्त कक्ष में जा

पहुँचे। जहाँ भीड़ बिल्कुल न थी। वहाँ श्रीराम से अनुराग रखनेवाले युवक धनुष आदि लिये डटे थे। वे सब सुमन्त्र को देखकर अपने आसनों से उठ खड़े हुए। तब सुमन्त्र ने उनसे कहा कि आप लोग शीघ्र श्रीराम से जाकर कहें कि सुमन्त्र दरवाजे पर खड़े हैं। तब वे सब शीघ्र श्रीराम के पास पहुँचकर उनसे सुमन्त्र के आने का संदेश कह सुनाया। श्रीराम ने सुमन्त्र को अन्तःपुर में बुलवा लिया। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हाथ जोड़कर कहा– श्रीराम! इस समय रानी कैकेयी के साथ बैठे आपके पिताजी आपको देखना चाहते हैं। अतः आप जल्दी चलें। यह सुनकर श्रीराम सीताजी से बोले– देवि! लगता है माता कैकेयी मेरे अभिषेक के लिए ही राजा को प्रेरित करती होंगी। अतः तुम सुखपूर्वक यहाँ बैठो मैं शीघ्र यहाँ से जाकर महाराज के दर्शन करूँगा। उस समय सीताजी उन्हें दरवाजे तक पहुँचाने गयीं और बोलीं– आर्य पुत्र। आप राजसूय यज्ञ में दीक्षित हो तदनुकूल व्रत का पालन करें और मैं सदा आपका दर्शन करती हुई आपकी सेवा में संलग्न रहूँ। आपकी पूर्व दिशा में इन्द्र दक्षिण दिशा में यमराज पश्चिम दिशा में वरुण और उत्तर दिशा में कुबेर रक्षा करें। तत्पश्चात् महल से निकलने पर श्रीराम ने लक्ष्मण को विनीत भाव से हाथ जोड़कर खड़े हुए देखा। उन्हें संतुष्ट करने के बाद श्रीराम रथ पर आरूढ़ हो तुरन्त वहाँ से चल दिये। उस समय लक्ष्मण हाथ में चँवर लिये पीछे जा बैठे और अपने भाई की रक्षा करने लगे। फिर चारों ओर मनुष्यों की भीड़ निकलने के कारण भारी कोलाहल मच गया। उनके मार्ग में वाद्यों की ध्वनि और वन्दीजनों के स्तुति पाठ के शब्द लगातार सुनायी देने लगे। उस समय अट्टालिकाओं और भूतल पर खड़ी हुई सुन्दरियाँ श्रेष्ठ वचनों से उनकी स्तुति गाने लगीं। उस क्षण अयोध्या में दूर-दूर से आये हुए लोग श्रीराम के विषय में तरह-तरह के वार्तालाप कर रहे थे। वे लोग कह रहे थे कि यदि सारा राज्य सदैव के लिये श्रीराम के हाथों में आ जाये तो न तो किसी का कभी अप्रिय होगा और न किसी को कोई दुःख देखना पड़ेगा। उस यात्रा के समय श्रीराम ने उस विशाल राजमार्ग कोदेखा जो हाथी रथ और घोड़ों से खचाखच भरा था। जिसके दोनों ओर प्रचुर रत्नों से भरी हुई दुकानें थीं और राजमार्ग बहुत

Mookerji Sharma (1-8) Jammu Collection

साफ सुथरा दिखलाई पड़ रहा था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१६)

सत्रहवाँ सर्ग

राम का पिता के भवन में प्रवेश

इस प्रकार श्रीराम मित्रों को आनन्द देते हुए राजमार्ग से चले जा रहे थे। वह सारा राजमार्ग उस समय अगर की सुगन्ध से भरा हुआ था। उस समय उनके हितैषी उनसे कह रहे थे– रघुनन्दन जिस मार्ग से आज तक तुम्हारे पूर्वज चलते रहे हैं तुम भी युवराज पद प्राप्त करने पर हम लोगों का उसी प्रकार पालन पोषण करना। फिर वे आपस में बोले– भाइयों! श्रीराम के पिता और पितामह के राज्य में हम जितने सुखी थे उससे भी अधिक हम इनके राज्य में सुखी रहेंगे। अपने मित्रों और सुहृदों से इस तरह की आनन्ददायक बातें सुनते हुए श्रीराम रथ पर सवार होकर चले जा रहे थे। उस समय श्रीराम चौराहा देवमार्गों और चैत्यवृक्षों को दाहिने छोड़ते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। तत्पश्चात् राजमहल के पास पहुँचकर श्रीराम ने पिता के महल में प्रवेश किया। महल की सारी ड्योढ़ियों को उन्होंने पैदल ही पार किया फिर अपने साथ आये हुए लोगों को विदाकर वे स्वयं अन्तःपुर में गये। श्रीराम के अन्तःपुर में जाने के बाद सब लोग बाहर खड़े होकर उनके पुनः निकलने की प्रतीक्षा करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

अट्ठारहवाँ सर्ग

श्रीराम का कैकेयी से पिता के चिंतित होने का कारण पूछना, कैकेयी का उन्हें वनवास के लिये प्रेरित करना

महल में पहुँचकर श्रीराम ने पिता को गहरी चिंता में डूबे हुए एक सुन्दर आसन पर बैठे हुए देखा। उन्होंने तत्काल माता पिता के पैर छुए। किन्तु उन्हें देखकर राजा दशरथ केवल 'राम' कहकर चुप हो गये और बार-बार लम्बी

सांसें भरने लगे। उनकी यह दशा देखकर राम ने सोचा– आखिर आज पिता जी को क्या हो गया जो वे बोल नहीं पा रहे हैं और उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गयी है। तब उन्होंने कैकेयी को प्रणाम कर पूछा– माँ! मुझसे कौन-सी भूल हो गयी जो पिताजी मुझसे इस तरह नाराज दिखलायी पड़ते हैं। अथवा ये इस समय किसी रोग से तो नहीं पीड़ित हैं। पिताजी के इस दशा को देखकर मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रहना चाहूँगा। देवि! अब आप ही सच्ची बात बतायें क्योंकि मैंने पिताजी को पहले कभी इस दशा में नहीं देखा है। अब श्रीराम के इस प्रकार पूछने पर कैकेयी ढिठाई से बोली– राम! वास्तव में महाराज कुपित नहीं हैं। इनके मन के अन्दर कोई बात छिपी है जो यह कह नहीं पा रहे हैं। इन्होंने पहले मुझे दो वरदान दिये थे अब आज उन्हीं के पालन हेतु ये गवाँर मनुष्यों की भांति पश्चाताप कर रहे हैं। ये महाराज जिस बात को कहना चाहते हैं यदि तुम उसका पालन करो तो मैं सारी बातें साफ-साफ कह दूँ। कैकेयी की बात सुनकर श्रीराम बोले– देवि! अगर मैं ऐसा न कर सका तो मुझे धिक्कार है। आप जो भी बात उनके मन में हो उसे बतायें मैं उसे पूरी करने की प्रतिज्ञा करता हूँ। श्रीराम के इस प्रकार के कहने पर अनार्या कैकेयी कहने लगी– श्रीराम! बहुत पहले देवासुर संग्राम में तुम्हारे पिता शत्रुओं के बाण से विंध गये थे उस समय मैंने इनकी रक्षा की थी तब इन्होंने मुझे प्रसन्न होकर दो वर दिये थे। राघव! मैंने उन्हीं में से एक वर के द्वारा भरत का राज्याभिषेक करने की याचना की थी और दूसरे वर के द्वारा मैंने राम को आज ही दण्डकारण्य भेजने के लिये कहा था। अतः राम अगर तुम सत्य प्रतिज्ञ हो तो तुम्हें इसी समय चौदह वर्षों के लिये वन में प्रवेश करना चाहिए और तुम्हारे राज्याभिषेक के लिये जो सामान जुटाया गया है उससे भरत का अभिषेक किया जाये। केवल इसी बात को लेकर तुम्हारे पिता करुणा में डूब गये हैं तथा तुम्हें देखने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। अब कैकेयी के इस कठोर वचन को सुनकर भी राम के मन मे कोई शोक न हुआ। लेकिन राजा दशरथ इस प्रकार के वियोग जनित बातों से दुःखी हो उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

श्रीराम का वन में जाना स्वीकार करना और कौसल्या के पास आज्ञा के लिए जाना

कैकेयी की बात सुनकर श्रीरामचन्द्र बोले– माँ ऐसा ही होगा। मैं जटा और चीर पहनकर वन में रहने के लिए अवश्य जाऊँगा। लेकिन एक बात मेरे मन को दुःखी बना रही है वह यह कि महाराज ने मुझसे भरत के अभिषेक की बात क्यों नहीं की? मैं पिता की आज्ञा से तुम्हारा प्रिय कार्य अवश्य करूँगा। अच्छा होगा भरत को बुलाने के लिये दूतों को उनके ननिहाल भेज दिया जाये और मैं चौदह वर्षों तक के लिये दण्डकारण्य चला जाता हूँ। श्रीराम कीबात सुनकर कैकेयी प्रसन्न हो उठी और बोली– भरत को मामा के यहाँ से बुलाने के लिये दूत अवश्य जायेंगे किन्तु तुम वन जाने के लिये स्वयं उत्सुक दिखायी पड़ते हो इसलिये तुम्हारा उसमें विलम्ब करना ठीक नहीं। श्रीराम! जब तक तुम शीघ्रता के साथ वन को नहीं चले जाते, तब तक तुम्हारे पिता स्नान अथवा भोजन नहीं करेंगे। कैकेयी की इस बात को सुन कर राजा दशरथ मूर्छित होकर गिर पड़े। लेकिन श्रीराम के मन में इससे कोई दुःख न पहुँचा। वे कैकेयी से कहने लगे- देवि! पिताजी के प्रिय कार्य को मेरे द्वारा किया हुआ ही समझो क्योंकि पिता की आज्ञा पालन से बढ़कर संसार में और कोई दूसरा धर्म नहीं है। लेकिन इस बात को पिताजी ने मुझसे स्वयं क्यों नहीं कहा। यद्यपि मैं तुम्हारे ही कहने से वन में निवास करने को तैयार हूँ फिर तुमने इन्हें व्यर्थ कष्ट दिया। अब मैं इसके लिये माता कौसल्या की आज्ञा ले लूँ और सीता को समझा बुझा लूँ फिर आज ही विशाल दण्डक वन की यात्रा आरम्भ करूँगा। तुम केवल इतना ही प्रयत्न करना कि भरत राज्य का पालन और पिता की सेवा उचित ढंग से करते रहें। श्रीराम के मुख से ऐसी बात सुनकर राजा दशरथ कुछ बोल न सके केंवल फूट-फूटकर रोने लगे। अब राम पिता और कैकेयी को प्रणाम कर उस भवन से बाहर चले गये। उस समय लक्ष्मण भी इस अन्याय को देखकर कुपित हो उठे और चुपचाप आँसू बहाते हुए राम के पीछे-पीछे चले गये। श्रीराम अब वन जाने को उत्सुक हो उठे। इसलिये उन्होंने तत्काल अपने ऊपर चँवर का डुलाया जाना रोक दिया। फिर

इस अप्रिय समाचार को माता कौसल्या को सुनाने के लिये उनके महल की ओर चल पड़े। उस समय उन्होंने अपने मन को पूर्णतः वश में कर रक्खा था। वे सब का मधुरवाणी से स्वागत करते हुए अपने माता के समीप गये। फिर उनके साथ ही महापराक्रमी भ्राता लक्ष्मण भी मन के दुःख को मन में धारण कर श्रीराम के पीछे-पीछे गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

राम का कौसल्या के भवन में जाना और उनको वनवास की बात बताना

जिस समय श्रीराम कैकेयी के महल से बाहर निकलने लगे उस समय उन्हें अन्तःपुर में रहनेवाली राजमहिलाओं का विलाप सुनायी पड़ा। वे कह रही थीं कि रामचन्द्र पिता की आज्ञा के अनुसार ही अन्तःपुर के आवश्यक कार्यों में संलग्न रहते थे वे ही आज वन को जा रहे हैं। लगता है हमारे महाराज की बुद्धि खराब हो गयी है। अब इस भयंकर आर्तनाद को महाराज दशरथ सह न सके और लज्जा से अपना मुख बिछौने में छिपा लिया।

इधर रामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण के साथ माता के अन्तःपुर में गये। वहाँ उन्होंने दरवाजे पर एक पूजित बूढ़े मनुष्य को बैठे हुए देखकर उसके साथ दूसरे और भी मनुष्य बैठे हुए दिखलायी दिये। तत्पश्चात् कई सीढ़ियों को पार कर वे महल के भीतर गये। उस समय कौसल्या पुत्र की मंगल कामना के लिए भगवान विष्णु की पूजा कर रही थीं। श्रीराम ने जब अन्तःपुर में पहुँचे, तो माता को हवन कराते देखा। उन्होंने सफेद साड़ी पहन रखी थी और व्रत के कारण अत्यंत दुर्बल हो गयी थीं। अब पुत्र को उपस्थित देख कौसल्या बड़े हर्ष से उनके पास आयीं और बोलीं- आज महाराज, तुम्हारा युवराज के पद पर अभिषेक करेंगे। इस पर श्रीराम अत्यंत विनय युक्त वाणी में बोले- देवि ! इस समय मैं जो बातं कहने जा रहा हूँ उससे सीता और तुम्हें दोनों को दुःख होगा। किन्तु कहना ही पड़ेगा। अब मुझे दण्डक वन जाना है

और वहाँ चौदह वर्षों तक निवास करना है। मेरी जगह युवराज का पद भरत को प्राप्त हो रहा है। इस अप्रिय बात को सुनकर कौसल्या शोक करती हुई पृथ्वी पर गिर गयीं। अब श्रीराम ने सहारा देकर उन्हें उठाया और उनके अंगों की धूलि पोछी। राम का स्पर्श पाकर वे दुःख से कातर होती हुई बोलीं- बेटा राम ! यदि तुमने जन्म न लिया होता तो मुझे केवल एक ही दुःख रहता। लेकिन अब तो मेरे शोक और विलाप का अंत ही नहीं होने वाला। बेटा ! जब तुम्हारे रहते ही मैं तुम्हारे पिता द्वारा बराबर तिरस्कृत होती रही तो तुम्हारे वन चले जाने पर मेरी क्या दशा होगी। सदा कटुवचन कहनेवाली कैकेयी के मुख को मैं कैसे देख सकूँगी। राम ! सौतों के तिरस्कार से होने वाले महान् दुःख को अब मैं अधिक नहीं सह सकूँगी। अगर तुम्हें देश से निकल ही जाना था तो मैंने अब तक व्यर्थ उपवास और देवताओं का ध्यान करती रही। लगता है मेरा हृदय पत्थर का है जो इस समाचार से अब तक फट नहीं जाता। मैं सबसे ज्यादा इस बात से दुःखी हूँ कि मेरे द्वारा किए गये व्रत, दान, संयम और उपवास सब व्यर्थ चले गये। हे चन्द्रमा के समान कान्तिवाले राम जैसे गाय दुर्बल होने पर भी अपने बछड़े के लोभ में उसके पीछे पीछे चली जाती है उसी तरह मैं भी तुम्हारे साथ वन को चलूँगी। इस तरह कहती हुई वे पुत्र को देख-देखकर बिलखने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का रोष, श्रीराम को बलपूर्वक राज्य पाने के लिए प्रेरित करना

इस प्रकार कौसल्या को दीन हीन देखकर लक्ष्मण बोले- बड़ी माँ महाराज तो इस समय स्त्री के वशीभूत हो गये हैं। वे कैकेयी जैसी स्त्री के कहने से क्या नहीं कर सकते। श्रीराम का ऐसा दोष भी क्या है जो इन्हें देश से निकाला जाये। ऐसा कौन धार्मिक राजा होगा जो देवता के समान सरल शुद्ध हृदय वाले पुत्र को अकारण त्याग दे। ऐसे विवेक शून्य पिता के वचन को

कौन पुत्र अपने हृदय में स्थान दे सकता है। रघुनन्दन! जब तक आपके वनवास का समाचार कोई नहीं जानता तब तक आप मेरी सहायता से शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लीजिए। इस समय जो भी आपके विरोध में आयेगा मैं अपने तीखे बाणों से उसके प्राण ले लूँगा। जिस कैकेयी के जाल में फँसकर पिताजी हमारे शत्रु बने हैं उन्हें भी कैद कर लेना चाहिए, क्योंकि कुमार्ग पर चलने वाले को दण्ड देना आवश्यक है। बड़ी माँ! मुझे अपने पूज्य भ्राता श्रीराम से इतना अनुराग है कि मैं इनके लिये कुछ भी कर सकता हूँ। मैं उस पिता का भी बध कर दूँगा जो कैकेयी के वश होकर अपना विवेक खो बैठे हैं। अब लक्ष्मण के इन बातों को सुनकर कौसल्या राम से रोती हुई बोली- बेटा! यदि तुम लक्ष्मण की बातों को उचित समझो तो उसे अवश्य करो। तुम्हें इस समय यहीं रहकर मेरी सेवा करनी चाहिए। मैं तुम्हें वन कदापि जाने नहीं दूँगी। क्योंकि तुमसे अलग हो जाने पर मेरे लिये जिंदगी का कोई सुख ही नहीं रह जायेगा और ऐसी दशा में मैं उपवास रहकर प्राण त्याग दूँगी। बेटा! ऐसी हालत में तुम ब्रह्महत्या के समान कष्ट पाओगे। तदनन्तर अपनी माँ को इस तरह बिलाप करते देख श्रीराम ने कहा- माँ! मुझमें पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने की शक्ति नहीं है। इसलिए मैं वन को जाना ही चाहता हूँ। प्राचीन काल में कन्डु मुनि ने पिता की आज्ञा पालन करने हेतु गाय का बध कर डाला था। सगर के पुत्र भी ऐसे ही थे जिन्होंने पिता की आज्ञा पालन हेतु सारी पृथ्वी ही खोद डाला था। जिसके कारण उन्हें अपनी जानदेनी पड़ी। जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने अपने पिता की आज्ञा पालन हेतु अपनी माता रेणुका का गला ही काट डाला था। इस तरह बहुत से देवतुल्य मनुष्यों ने जब पिता के आदेश का पालन किया है तब मैं भी ऐसा ही करूँगा। तत्पश्चात् वे लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण! तुम्हारे मन में जो मेरे प्रति अनुराग है उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। लेकिन यह भी जान लों कि पिताजी का वचनधर्म के आश्रित होने के कारण अति उत्तम है। लक्ष्मण से इतना कहकर वे फिर कौसल्या से बोले- देवि! मुझे वन जाना ही है। इसके लिए तुम बिल्कुल शोक न करो। पिता की आज्ञा पालन कर मैं पुनः वनवास से वापस लौट आऊँगा। अब श्रीराम की इन बातों को सुनकर कौसल्या मूर्छा त्यागकर होश में आ गयीं और श्रीराम से बोलीं- बेटा! मैं तुम्हारे लिये उतनी ही आदरणीय हूँ जितने तुम्हारे

अन्य गुरुजन। इसलिये मैं तुम्हें वन जाने की आज्ञा कदापि नहीं दे सकती। मुझे छोड़कर तुम्हें कहीं नहीं जाना है। अपनी माता को इस तरह विलाप करते देख उन्होंने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! तुम मुझमें महान भक्ति रखते हो परन्तु मेरे अभिप्राय को न समझकर माताजी के साथ मुझे अधिक पीड़ित न करो। जिस कार्य से धर्म की सिद्धि हो उसे अवश्य करना चाहिए। धर्म विरुद्ध कार्य में आसक्त होना निंदा की बात है। महाराज यद्यपि बूढ़े हैं फिर भी पिता होने के साथ गुरु और आदरणीय व्यक्ति भी हैं। इसलिये धर्माचरण में विश्वास रखनेवाले को उनकी आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। ये धर्म के प्रवर्तक महाराज जब तक जीवित हैं तब तक ही मेरी माताओं के पति गति तथा धर्म हैं। इनके जीवित रहते मेरी माँ मेरे साथ वन में कैसे चल सकती हैं अतएव माँ! तुम मुझे वन जाने की आज्ञा दो और मेरे लिये जप तप करो ताकि मैं वनवास से कुशलता पूर्वक वापस लौट सकूँ। इस प्रकार श्रीराम अपनी माता को प्रसन्न कर उनसे वन जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाइसवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण को समझाना

तत्पश्चात् श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण के रोष को देखकर बोले- इस समय तुम धैर्य का आश्रय लेकर अपने मन के शोक को दूर करो। अभिषेक की सामग्रियां हटाकर मेरे वन जाने की तैयारी करवाओ। मेरे सत्यवादी पिताजी परलोक के भय से सदा डरते हैं। अतः मुझे वही काम करना है जिससे उनका पारलौकिक भय दूर हो जाये और यदि ऐसा न हुआ तो इसका दुःख मेरे मन में बराबर बना रहेगा। आज भरत का राज्याभिषेक होने पर और मेरे वन प्रस्थान करने पर कैकेयी को सुख प्राप्त होगा। लक्ष्मण! मेरे हाथ से इस राज्य के निकलजाने का कारण दैव को ही समझना चाहिए। यदि वह बात न होती तो उत्तम स्वभाववाली स्त्री अपने पति के समीप मुझे पीड़ा देनेवाली बात क्यों कहती। प्राणियों में ही नहीं बल्कि अधिष्ठाता देवताओं में भी ऐसा कोई नहीं जो दैव के विधान को मेट सके। लाभ हानि विकाश और उत्पत्ति

जितने भी परिणाम प्राप्त होते हैं उसमें दैव का हाथ है। इस तात्विक बुद्धि के द्वारा ही इस समय मुझे कोई दुःख या संताप नहीं हो रहा है। लक्ष्मण ! लक्ष्मी के इस उलट फेर के विषय में तुम कोई चिंता न करो। मेरे लिये राज्य की प्रगति अथवा वनवास को जाना दोनों ही समान है। अतएव तुम इसके लिये कभी मत सोचना कि राज्याभिषेक में जो विघ्न आया है वह छोटी माता के कारण है, बल्कि यह समझ लो कि वह भी दैव के अधीन थीं। इसमें मेरे पिताजी भी कारण नहीं हैं। क्योंकि तुम दैव और उसके प्रभाव को जानते ही हो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेइसवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा दैव का खण्डन और पुरुषार्थ पर जोर देना

श्रीराम के कथन को लक्ष्मण पहले तो सिर झुकाये सुनते रहे फिर भौहों को चढ़ाकर लम्बी सांस लेते हुए बोले- भैया ! क्या आप समझते हैं कि अगर आप वन न गये तो धर्म के विरोध का प्रसंग आ जायेगा। इसके सिवा प्रजा के मन में यह भारी आशंका उत्पन्न होगी कि पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने वाला यदि राजा हो जाये तो वह हमारा धर्म पूर्वक पालन पोषण कैसे कर सकता है ? साथ ही आप यह भी सोचते होंगे कि अगर मैं पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता तो दूसरे लोग भी नहीं करेंगे और इससे धर्म की हानि होगी। लगता है इन्हीं सब बातों को सोचकर आपके मन में वन जाने के लिये उतावलापन आ गया है। लेकिन ऐसा सोचना भ्रममूलक है। वास्तव में "दैव" तो पौरुष के सामने कुछ भी कर सकने में असमर्थ है। फिर आप एक साधारण मनुष्य के समान उसकी स्तुति या प्रशंसा क्यों कर रहे हैं। ज्येष्ठ पुत्र के रहते छोटे का अभिषेक करना लोक विरुद्ध है और यह मुझसे सहन होनेवाला नहीं। आप अपने पराक्रम से सब कुछ करने के लिये समर्थ हैं फिर पिता के अधर्मपूर्ण वचन का पालन कैसे करेंगे ? वरदान की झूठी कल्पना करके इस अभिषेक में रोड़ा अटकाया गया है यह बहुत ही निन्दित कार्य है। माता पिता के इस विचार को कि - आपका राज्याभिषेक न हो, यदि इसे दैव की प्रेरणा के

वशीभूत बनते हैं तो यह आप का अपना स्वयं का मत है। कायर और पराक्रम हीन व्यक्ति ही "दैव" की उपासना करते हैं। लेकिन पुरुषार्थी व्यक्ति "दैव" को दबाने में सर्वथा समर्थवान होते हैं। जिन लोगों ने दैव के बल से आपके राज्य को नष्ट होते देखा है अब वे ही मेरे पुरुषार्थ से दैव" का विनाश होते देखेंगे। आज पिताजी ही नहीं समस्त लोकपाल इस श्रीराम के राज्याभिषेक को नहीं रोक सकते। फिर जिन्होंने आपके वनवास का समर्थन किया है वे चौदह वर्षों तक वन में जाकर छिपे रहेंगे। मैं कैकेयी की आशाओं पर पानी फेर कर दैवबल को नीचा दिखलाऊँगा। प्राचीन राजर्षियों ने केवल वद्ध राजाओं को वन में रहना उचित बताया है। इसलिये आप अभिषेक सामग्री से केवल अपना अभिषेक होने दीजिए। मैं समस्त विरोधियों को रोक रखने में समर्थ हूँ। मेरी ये भुजायें, ये धनुष, ये बाण केवल शोभा बढ़ाने के लिये नहीं हैं बल्कि ये शत्रुओं के दमन करने के लिये हैं। आज मैं अपने तलवार के प्रहार से शत्रुओं को इस तरह पीस डालूँगा कि यह पृथ्वी ऐसीं गहन हो उठेगी कि इस पर चलना मुश्किल हो जायेगा। प्रभो ! आज राजा दशरथ अपनी प्रभुता का अंत होता हुआ देखेंगे। बस केवल आप यह बतायें कि मुझे किस शत्रु का विनाश करना है। लक्ष्मण की इन बातों को सुनकर श्रीराम की आंखों में आंसू आ गये और वे बोले कि सौम्य ! मैं माता पिता की आज्ञा पालन में दृढ़ रहूँगा, क्योंकि सत्पुरुषों का यही मार्ग है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

कौसल्या का भी श्रीराम से अपने को साथ ले चलने का आग्रह करना, श्रीराम का रोकना

तत्पश्चात् राम की दृढ़ता को देखकर कौसल्या आँसुओं से गद्गद होकर बोलीं- महाराज दशरथ के घर जन्म लेने वाला खेतों में गिरे हुए अनाज के दानों को बीनबीनकर कैसे खा सकेगा। स्वादिष्ट अन्न खानेवाला कंद मूल खाकर कैसे जीवन निर्वाह कर सकेगा। श्रीराम ! वास्तव में दैव ही

सबसे बलवान् है। लेकिन सच्चाई यह है कि मैं इस शोक को सह न सकूँगी। मेरे मन में जो आग जल रही है तुम्हारे बिना यह मुझे सुखाकर जला डालेगी। इसलिए तुम मुझे भी अपने साथ ले चलो। यह सुनकर शोक में डूबी हुई माता को श्रीराम ने समझाया- माँ! कैकेयी ने राजा के साथ धोखा किया है। यदि ऐसे समय में तुम भी उनका साथ छोड़ दोगी तो निश्चित रूप से जीवित नहीं रह पायेंगे। अतएव तुम उनके साथ ही रहकर उनकी सेवा करो। पतिकी सेवा ही स्त्रियों का परमधर्म है। फिर पिताजी की आज्ञा मानना हमारा और तुम्हारा दोनों का धर्म है। श्रीराम की बात सुनकर कौसल्या की आँखों में आँसू बहने लगा और वे बोलीं- बेटा! अब मुझसे इन सौतों के बीच नहीं रहा जाता। इसलिये वनवासिनी हरिणी की भाँति तुम मुझे अपने साथ ले ही चलो। यह सुनकर श्रीराम ने पुनः समझाया। बुद्धिमान् महाराज जब तक जीवित हैं तब तक तुम्हें अपने को अनाथ नहीं समझना चाहिए। महाराज को पुत्रशोक न हो इसलिये तुम सावधानी से उनकी सेवा में लगी रहना। जो नारी पति की सेवा नहीं करती हैं उन्हें नरक की प्राप्ति होती है। अतएव नारी को पति के हित साधन में ही लगी रहना चाहिए। इस तरह पति की सेवा में लगी रहकर तुम मेरे आने की प्रतीक्षा करो। उस समय यदि महाराज जीवित रहे तो तुम्हारी सारी कामनायें पूरी होंगी। श्रीराम के ऐसा कहने पर कौसल्या बोलीं- मैं वन में जाने का तुम्हारे निश्चित विचार को पलट नहीं सकती। अतएव अब तुम वन जाओ और फिर वहाँ से तुम्हारे वापस आने पर ही मैं सुख की नींद सो सकूँगी। वत्स! मैं सोचती हूँ कि क्या मैं तुम्हें वन से लौटकर आये हुए देख सकूंगी। तत्पश्चात् वे श्रीराम को शुभ आशीर्वाद दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पच्चीसवाँ सर्ग

कौसल्या का श्रीराम की वन यात्रा के लिये स्वस्तिवाचन करना

इसके बाद शोक को अपने मन से निकालकर कौसल्या जल से आचमन करती हुई श्रीराम से बोलीं- श्रीराम! अब मैं तुम्हें वन जाने से नहीं रोक

सकती। तुम मन्दिरों में जिन देवताओं को प्रणाम करते हो वे ही वन में तुम्हारी रक्षा करेंगे। गुरु देव विश्वामित्र ने जो जो अस्त्र तुम्हें दिए हैं वे ही सब ओर से तुम्हारी रक्षा करें। महाबाहु पुत्र! कुशा मन्दिर, वेदियां, पक्षी, सर्प और सिंह इत्यादि वन में तुम्हारी रक्षा करें। छः ऋतुएँ, सभी महीने, सोम, वृहस्पति, सप्तर्षिगण सभी चारों ओर से तुम्हारी रक्षा करें। बेटा! वन में विचरने वाले, पिशाच, राक्षस, माँस भक्षी जन्तु आदि से तुम्हें कभी भय न हो। बेटा राम! वन के सभी मार्ग तुम्हारे लिये मंगलमय हों। तुम्हारे पराक्रम सफल हों तथा तुम्हें सब प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त होती रहें। तुम्हारे जितने शत्रु हों वे भी सदा तुम्हारा कल्याण करते रहें। सूर्य, कुबेर, यम तथा शुक्र दण्डकारण्य में निवास करते समय तुम्हारी रक्षा करें। इतना कहकर कौसल्या ने पुष्प माला और गंध आदि उपचारों से देवताओं का पूजन किया और अग्नि को लाकर एक महात्मा ब्राह्मण से विधिपूर्वक होम करवाया। इसके पश्चात् स्वस्तिवाचन के उद्देश्य से ब्राह्मणों को मधु दही अक्षत और घृत आदि अर्पित कर राम के मंगल कामना हेतु मंत्रों का पाठ करवाया। फिर पुरोहितों को इच्छानुसार दक्षिणा देकर श्रीराम से बोलीं- जिस प्रकार वृत्रासुर का नाश करने के निमित्त इन्द्र को आशीर्वाद प्राप्त हुआ था वही मंगल तुम्हारे लिये भी हो। पूर्वकाल में विनता देवी ने अमृत लाने की इच्छावाले अपने पुत्र गरुड़ के लिये जो मंगल कृत्य किये थे, वही मंगल तुम्हें प्राप्त हो। श्रीराम! ऋषि समुद्र, द्वीप वेद, समस्त लोक और दिशायें तुम्हें मंगल प्रदान करें। इस प्रकार श्रीराम को आशीर्वाद देकर कौसल्या ने पुत्र के मस्तक पर अक्षत रोली लगायी फिर सब मनोरथ सिद्ध करनेवाली विशल्यकरणी नामक शुभ औषधि लेकर श्रीराम के हाथ में बांध दिया। इसके बाद उन्होंने मस्तक को कुछ झुकाकर राम को सूँघा और हृदय से लगाकर कहा- जाओ अब तुम सुखपूर्वक वन को जाओ। फिर जब तुम सकुशल अयोध्या वापस लौटोगे उस समय मैं तुम्हें देखकर सुखी होऊँगी। तुम राजसिंहासन पर बैठकर सदा मेरी बहू सीता की कामनाएं पूर्ण करते रहना। फिर राम की परिक्रमा कर उन्हें बार-बार छाती से लगाया। तदनन्तर श्रीराम

बार-बार माँ के चरणों को दबाकर सीताजी के महल की ओर चल दिये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता को वन जाने का समाचार देना और उन्हें घर रहने के लिए समझाना

श्रीराम जब्र कौसल्या के भवन से वन जाने के लिये निकले उस समय राजमार्ग पर मनुष्यों की भीड़ लगी थी। वे आपस में कह रहे थे कि ऐसे सद्गुणी श्रीराम को वनवास दिया जा रहा है। लेकिन अभी तक यह हाल सीताजी को मालूम नहीं हो सका था वे यही समझती थीं कि श्रीराम का अभिषेक हो रहा है। वे प्रसन्न चित्त से राम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थीं। इसी समय श्रीरामने उदास मुख से उस अन्तःपुर में प्रवेश किया। सीता ने उन्हें देखते ही खड़ी हो गयीं। पर श्रीराम सीता को देखकर अपने को सम्हाल न सके। उनका चेहरा मुर्झा गया और सारे अंगों से पसीना निकलने लगा। सीता यह देखते ही घबरा उठीं और बोलीं- प्रभो! यह आपकी कैसी दशा हो रही है। यह तो आपके अभिषेक होने का समय बताया गया है। ऐसे समय में आप इतने उदास क्यों हैं। नरश्रेष्ठ! मुझे इस समय वंदी चारण, सूत आपकी स्तुति करते नहीं दिखलायी पड़ रहे हैं। सुनहरे साज बाज से सजे हुए रथ आपके आगे पीछे चलते हुये क्यों नहीं दिखलायी पड़ रहे हैं। जब अभिषेक की सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी हैं तब आपकी यह क्या दशा हो रही है। अब सीता की बात सुनकर श्रीराम बोले- सीते! आज पिताजी राज्याभिषेक के बदले मुझे वन भेज रहे हैं। बहुत पहले मेरे पिता महाराज दशरथ ने माता कैकेयी को दो महान् वर दिए थे। इधर जब मेरे राज्याभिषेक की तैयारी होने लगी तब कैकेयी ने पिताजी को उस वरदान की याद दिलाकर एक वर के द्वारा भरत के लिये राजगद्दी और दूसरे वर के द्वारा मुझे वनवास दिए जाने की याचना की। अतः पिताजी को अपने वचन को निभाने हेतु उनकी माँग कोस्वीकार कर लेनी पड़ी। मैं उसी के अनुसार दण्डकाण्य में निवास करने हेतु निकल पड़ा हूँ और तुमसे मिलने के लिए यहाँ आया हूँ। अब तुम भूलकर भी भरत के

Mookerji Sharma (I.A.S.) Jammu. Collection

सामने मेरी प्रशंसा मत करना। तुम्हें उन्हें सदैव ही प्रसन्न रखने की कोशिश करनी चाहिए। कल्याणी! मेरे वन जाने पर तुम्हें प्रायः व्रत और उपवास में लगी रहना चाहिए। साथ ही देवताओं की पूजा कर महाराज दशरथ की वंदना करनी चाहिए। मेरी माताओं के चरणों में तुम्हें प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए। भरत और शत्रुघ्न मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं अतः उन्हें अपने भाई और पुत्र के समान मानना और जानना चाहिए, क्योंकि इससे वे कुपित हो सकते हैं। इस तरह तुम सत्यव्रत में लगी हुई यहाँ निवास करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२६)

सत्ताइसावाँ सर्ग

सीता की श्रीराम से अपने को साथ ले चलने के लिए प्रार्थना करना

यह सुनकर सीता श्रीराम से कुपित होकर बोलीं- नरश्रेष्ठ! आपकी बात सुनकर मुझे बड़ी हँसी आती है। पिता, माता, भाई, बहन यह सब अपने कर्मों के द्वारा भोग भोगते हैं लेकिन केवल पत्नी अपने पति के सुख दुख में साथ रहती है। इसलिए यदि आप वन जा रहे हैं तो मैं भी आपके साथ वन में चलूँगी। स्त्री के लिये सभी अवस्थाओं में पति के चरणों की छाया में रहना विशेष महत्व रखता है। अतः आपके साथ मुझे अपने आप ही वन में रहने की आज्ञा मिल गयी है। मैं तो जैसे अपने पिता के घर रहती थी वैसे ही वन में भी सुखपूर्वक निवास करूँगी। वहीं पतिव्रता धर्म का पालन करती हुई आपकी सेवा में लगी रहूँगी। अतः मैं आपके साथ वन में चलूँगी ही मुझे किसी भी तरह रोका नहीं जा सकता। वहाँ चलने पर मैं आपको कोई कष्ट नहीं दूँगी और जो कुछ कंद मूल मिलेगा उसी से निर्वाह करूँगी। प्रभो! मेरी इच्छा है कि मैं वन में सर्वत्र घूमकर पर्वत, तालाब और सरोवरों को देखूँ। जिस समय मैं आपके चरणों में प्रीति रखते हुए उन सरोवरों में स्नान करूँगी उस समय मुझे परम सुख का अनुभव होगा और वहाँ मैं उसी तरह सुख से रहूँगी जैसे पिता के घर में रहती थी। यदि इस समय आपसे वियोग हुआ तो

मैं निश्चित जीवित नहीं रह सकती। इसलिये यही अच्छा होगा आप मुझे अपने साथ ले चलें। मैं उस समय आपके ऊपर कोई भार नहीं बनूँगी। लेकिन सीता की इस प्रार्थना पर भी राम की इच्छा उन्हें अपने साथ ले जाने की न हुई और वे विस्तार से सीता को वहाँ के कष्टों को बताने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२७)

अट्ठाइसवाँ सर्ग

सीताजी से वन के कष्टों का वर्णन करना

सीता के अनुनय विनय करने पर भी राम की इच्छा उन्हें वन ले जाने की नहीं हुई और वे बोले-सीते! तुम उत्तम कुल में पैदा हुई हो इसलिये यहीं रहकर धर्म का पालन करो और मन को संतोष दो। वन में रहनेवालों को कितने कष्ट होते हैं, उन्हें मैं बता रहा हूँ, ध्यान से सुनो। हे सीता! पर्वत की गुफाओं में रहनेवाले सिंह तथा बाघ जब जोरों से गर्जन करते हैं तब गर्जना सुनने में बड़ी दुःखदायिनी प्रतीत होती है। वहाँ मनुष्यों को देखकर जब चारों ओर से जंगली पशु टूट पड़ते हैं तब वह कितनी ही पीड़ा देनेवाली होती है। इसे तुम नहीं समझ सकती। वहाँ सूखे पत्रों को ही अपना आसन बनाकर सोना पड़ता है और कटीले मार्गों से चलना पड़ता है तथा अपने से ही गिरे हुए फलों को ही आहार बनाना पड़ता है। इसलिये समझ लो कि वन का जीवन दुःख ही देनेवाला है। सीते! वहाँ शक्ति के अनुसार उपवास भी करना पड़ता है और देवता पितरों की विधि पूर्वक पूजा भी करनी पड़ती है। वनवासी को तीनों समय स्नान करना होता है इसलिए वन बहुत ही कष्ट देनेवाला है। जानकी! वन में प्रचण्ड आँधी, घोर अंधकार और अन्य बड़े-बड़े भय प्राप्त होते हैं। पतंगे, बिच्छू, कीड़े डाँस और मच्छर वहाँ सदा ही कष्ट पहुँचाते रहते हैं। वहाँ क्रोध और लोभ को त्याग देना होता है। तपस्या में मन लगाना पड़ता है इसलिए समझ लो वन में दुख ही दुख है। भामिनी! ऐसी हालत में तुम्हारा वन में जाना किसी तरह उचित नहीं है। क्योंकि यह अनेक दोषों को पैदा करनेवाला और बहुत ही कष्टदायक है। इस तरह जब महात्मा राम

Mookerji sharma (I.E.S.) Jammu Collection

ने उन्हें वन में ले जाने का विचार नहीं किया तब सीताजी उनसे दुःखी होकर बोलीं

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम के साथ वन जाने के विचार को उचित बताना

श्रीराम की बात सुनकर सीता ने कहा-प्राणनाथ! वन के वे सारे दोष जो आपने मुझे बताये हैं वे सब आपके स्नेह पाकर मेरेलिए गुणस्वरूप हो जायेंगे-श्रीराम! वन के सभी हिंसक जीवन आपके प्रभावशाली स्वरूप को देख कर ही दूर भाग जायेंगे। मुझे गुरुजनों की आज्ञा से निश्चय ही आपके साथ चलना है क्योंकि आपके वियोग में मैं जीवित नहीं रह सकती। आपके साथ रहने से मेरा तिरस्कार इन्द्र जैसे राजा भी नहीं कर सकते। वन यद्यपि तमाम दोषों से भरा है फिर भी पिता के घर में रहते हुए ब्राह्मणों के मुख से मैं यह कई बार सुन चुकी हूँ कि मुझे वन में अवश्य रहना पड़ेगा। इसलिये मैं वनवास के लिये सदा उत्साहित रहती हूँ और निश्चय ही मुझे आपके साथ चलना है। प्रभो! मैं जनती हूँ वन में अनेक कष्ट हैं। किंतु कष्ट उन्हीं को होता है जिनकी इन्द्रियां वश में नहीं रहती। भगवन्! मैं इसीलिये पहले भी आपसे वन में चलने का अनुरोध कर चुकी हूँ। वहाँ चलकर अपने शूरवीर वनवासी पति की सेवा करना मेरे लिये अधिक रुचिकर होगा। स्वामी ही स्त्री का सबसे बड़ा **देवता है और मरने के बाद परलोक में भी उसी की स्त्री होती है। मैं** आपकी धर्म पत्नी हूँ और पतिव्रता हूँ फिर किस कारण से आप मुझे वहाँ नहीं ले चलना चाहते। मैं आपके सुख दुःख में समान रूप से हाथ बंटाने वाली हूँ। अतएव, आप मुझे अपने साथ अवश्य ले चलने की कृपा करें। यदि आप दुःख में पड़ी अपनी इस सेविका को साथ नहीं ले चलेंगे तो मैं विष खाकर प्राण त्याग दूँगी। लेकिन सीताजी के इस तरह प्रार्थना करने पर भी राम ने उन्हें वन में जाने की आज्ञा नहीं दी। अब अपनी माँग को पूरी होते न देखकर सीताजी चिंतित होकर आंसू बहाने लगीं। तब सीता के दुःख को दूर करने के

लिये श्रीराम उन्हें भांति-भांति की बातें कहकर समझाने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

सीता का वन चलने हेतु पुनः आग्रह

श्रीराम के इस प्रकार समझाने पर सीता फिर से बोली- नाथ! लगता है आप केवल शरीर से पुरुष हैं कार्य कलाप से तो स्त्री हैं। मुझे अकेली यहाँछोड़ कर चले जाने पर मैं विष खाकर प्राण त्याग दूँगी। आप का वियोग मैं दो घड़ी के लिए भी नहीं सह सकती फिर चौदह वर्षों तक कैसे सह सकूँगी। इस तरह विलाप करती हुई सीता राम का आलिंगन कर फूट-फूट कर रोने लगीं। उनकी आँखों से अश्रुजल इस प्रकार झर रहा था जैसे दो कमलों से जल की धारा बह रही हो। वे इस समय दुःख के कारण अचेत सी हो रही थीं। श्रीराम ने अब उन्हें हृदय से लगाते हुए सान्त्वना दी। देवि! तुम्हें दुःख देकर यदि मुझे स्वर्ग का भी सुख मिलता है तो मैं उसे लेने को तैयार नहीं। सीते! यद्यपि वन में तुम्हारी रक्षा करने के लिये मैं पूरी तरह समर्थवान हूँ फिर भी तुम्हारे मन के भावों को अच्छी तरह जाने बिना मैं तुम्हें वनवासिनी बनाना उचित नहीं समझता। यदि तुम मेरे साथ वन में रहने के लिए ही पैदा हुई हो तो मैं तुम्हारा साथ छोड़ नहीं सकता। अब जैसे सुवर्चला (संज्ञा) अपने पति सूर्य का अनुगमन करती है उसी प्रकार तुम भी वन में मेरा अनुसरण करना। हे जनकनन्दिनी! यह किसी प्रकार सम्भव नहीं है कि मैं वन में न जाऊँ क्योंकि माता पिता की आज्ञा के अधीन होना पुत्र का धर्म है। इसलिये उनकी आज्ञा का उल्लंघन करके मैं जीवित नहीं रह सकता। हे सीते! जिनकी माता पिता और गुरु की आराधना करने पर धर्म अर्थ और काम तीनों प्राप्त होते हैं तथा तीनों लोकों की आराधना सम्पन्न हो जाती है। उन माता पिता और गुरु के समान दूसरा कोई पवित्र देवता इस भूतल पर नहीं। इसलिये पृथ्वी के निवासी इन तीनों देवताओं की आराधना करते हैं। क्योंकि उन्हीं की सेवा कल्याण पाने के लिये सबसे बड़ा साधन है और स्वर्ग,धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख देनेवाला है। ऐसे लोग देवता लोक,गंधर्वलोक, ब्रह्मलोक सभी कुछ

पा लेते हैं। सीते! जब तुमने वन में चलने का दृढ़ निश्चय कर ही लिया है तो मेरा भी पहले वाला विचार बदल गया है। मैं तुम्हें वन में चलने की सहर्ष आज्ञा देता हूँ। अब तुम जल्दी ही वनवास के योग्य दान आदि कर्म प्रारम्भ करो। तुम्हारे इस तरह दृढ़ निश्चय कर लेने पर अब मुझे स्वर्ग भी अच्छा नहीं लगता। ब्राह्मणों को उत्तम वस्तुएं दान करो और अब तुम्हारे पास जो-जो रमणीय वस्तुएं हों उन्हें अपने सेवकों में बाँट दो। सीता देवी स्वामी का आदेश पाकर अपने धन और आभूषणों को दान करने के लिये तैयार हो गयीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३०)

इक्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का संवाद, लक्ष्मण का वन गमन के लिए तैयार होना

जिस समय श्रीराम और सीता की बातचीत चल रही थी उस समय लक्ष्मण भी वहाँ आ गये। भाई का वियोग उनके लिये असह्य हो रहा था। अब उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्रता श्रीराम के पाँव पकड़कर कहा- आर्य! जब आपने हिंसक पशुओं से भरे हुए वन में जाने का निश्चय कर ही लिया है तो मैं भी आपके साथ चलूँगा। क्योंकि मैं आपके सिवा स्वर्ग प्राप्त करने की भी इच्छा नहीं रखता। अब श्रीराम उन्हें बहुत तरह से समझा-बुझाकर वन जाने के लिये मना करने लगे। तब लक्ष्मण बोले- भैया! आपने मुझे पहले से ही अपने साथ रहने की आज्ञा दे दी है फिर इस समय क्यों रोकते हैं? ऐसा कहते हुए लक्ष्मण धीरे-धीरे वन जाने के लिये तैयार होकर श्रीराम के सामने आकर खड़े हो गये। यह देखकर श्रीराम बोले- लक्ष्मण! तुम तो मुझे प्राणों से भी ज्यादा प्रिय हो किन्तु यदि तुम भी वन को चले जाओगे तो माता कौसल्या और सुमित्रा की सेवा कौन करेगा? उस समय भरत भी कैकेयी के अधीन रहने के कारण दुखिया कौसल्या और सुमित्रा का भरण पोषण नहीं करेंगे। अतः तुम यहीं रहकर उनकी सेवा करो। श्रीराम के इस तरह समझाने पर लक्ष्मण ने

कहा- वीर! आपके तेज से भरत भैया माता कौसल्या और सुमित्रा का भक्ति भाव से अवश्य पूजन करेंगे। लेकिन यदि भरत ऐसा नहीं करते तो भी बड़ी माता कौसल्या स्वयं ही मेरे जैसे हजारों मनुष्यों का भरण पोषण कर सकती हैं क्योंकि उन्हें अपने आश्रितों को पालने के लिए एक सहस्र गांव मिले हैं अतएव आप मुझे अपना अनुगामी बना लीजिये। वहाँ मैं आपके साथ रहकर आपके सभी आवश्यक कार्य पूरे करूँगा। श्रीराम लक्ष्मण की बात से प्रसन्न होकर बोले- तात! यदि ऐसी बात है तो जाकर अपनी माता और मित्रों से भी इसके लिये आज्ञा ले लो। इसके साथ ही राजा जनक ने मुझे दहेज में जो दो दिव्य धनुष, दो दिव्य अमोघ कवच अक्षय बाणों से भरे दो तरकस तथा दो स्वर्ण भूषित खड्ग प्रदान किये थे तुम उन अस्त्रों को भी लेकर शीघ्र लौट आओ। श्रीराम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने अपने सुहृदजनों से अनुमति प्राप्त कर लिया। उस समय लक्ष्मण को देखकर श्रीराम बोले- "सौम्य! तुम उचित समय पर आ गये। अब मेरा जो यह धन है इसे मैं तुम्हारे साथ मिलकर तपस्वी ब्राह्मणों को बाँटना चाहता हूँ। इसके लिये तुम वशिष्ठ जी के पुत्र सुयज्ञ एवं और जो अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मण हों उन्हें भी बुला लो। मैं उन सब का सत्कार कर वन को चला जाऊँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम का ब्राह्मणों एवं सुहृदजनों को धन का वितरण

उस समय लक्ष्मण अपने भाई श्रीराम की आज्ञा पाकर वशिष्ठ पुत्र सुयज्ञ को श्रीराम के पास बुला लाये। अब सुयज्ञ के आने पर श्रीराम उनकी अगवानी की एवं सुवर्ण और रत्नों से उनका पूजन किया। फिर उन्हें सीता के गहने देते हुए बोले- ब्राह्मण श्रेष्ठ इन गहनों को आप अपनी स्त्रियों के लिये लेते जाइये क्योंकि सीता वन जा रही है और यह आपको प्रसन्नता पूर्वक दे रही है। श्रीराम के ऐसा कहने पर सुयज्ञ ने उन वस्तुओं को ग्रहण कर श्रीराम लक्ष्मण और सीता को आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण से फिर कहा- लक्ष्मण अब अगस्त्य एवं विश्वामित्र को भी बुलाकर रत्नों द्वारा

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection.

उनका पूजन करो। इसके अलावा वेदों के विद्वान ब्राह्मणों को भी खजाने से उतना धन दिलवाओ जितने से वे संतुष्ट हो सकें। स्वाध्याय में लगे हुए दण्डधारी ब्रह्मचारियों को रत्न, चावल और धान्य विशेष का भार लिये हुए सौ बैल दिलवाओ। माता कौसल्या के पास मेखलाधीर ब्रह्मचारियों का बहुत बड़ा समुदाय आया है उन्हें भी एक-एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दिलवा दो। श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण ने कुबेर की भाँति उस धन को श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दे डाला। फिर राम ने अपने आश्रित सेवकों को चौदह वर्षों तक चलनेवाले बहुत से द्रव्य देकर कहा कि जब तक मैं वन से न लौटूँ तब तक तुम लोग लक्ष्मण के और मेरे घर को सूना न करना। इस तरह लक्ष्मण सहित श्रीराम ने अपने सारे धन को दीन दुखियों में बँटवा दिया। उन्हीं दिनों अयोध्या में त्रिजट नामक एक गार्ग गोत्रीय ब्राह्मण रहते थे। जीविका का कोई साधन न होने से उन्हें कई उपवास अधिक करने पड़ते थे। इससे उनके शरीर का रंग पीला पड़ गया था। वे सदा फल कुदाल लिये वन में कंदमूल की तलाश में घूमा करते। एक दिन उन्हें वन में कुदाल लेकर जाते हुए देखकर उनकी स्त्री बोली- प्राणनाथ! अब तुम इसे यहीं फेंक कर रामचन्द्र के महलों को जाओ यदि वहाँ तुम्हें कुछ मिल सके तो अच्छा हो। पत्नी की बात सुनकर त्रिजट एक फटी धोती पहने श्रीराम के पास बेरोक टोक जा पहुँचे। और उनसे बोले- बीर राजकुमार! मैं निर्धन हूँ और मेरे कई पुत्र भी हैं। जीविका नष्ट हो जाने से मैं वन में रहता हूँ। अतः आप मुझ पर कृपा कीजिये। यह सुनकर रामचन्द्र ने हँसी-हँसी में कहा- ब्राह्मण! मेरे पास असंख्य गौएं हैं। आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकेंगे वहां तक की सारी गौएं आपकी हो जायेंगी। यह सनुकर ब्राह्मण ने अपनी पूरी शक्ति से उस डंडे को घुमाकर फेंक दिया। ब्राह्मण का फेंका हुआ वह डंडा सरयू के पार जा गिरा तब रामचन्द्र ने वहाँ तक की सारी गौओंको मंगवाकर त्रिजट के आश्रम पर भेज दिया और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा- मैंने यह बात हँसी में कही थी आप इसके लिये बुरा न मानियेगा। गौओं के ऐसे समूह को पाकर महामुनि त्रिजट को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे पत्नी सहित श्रीराम को आशीर्वाद देने लगे। इस तरह श्रीराम धर्म बल से उपार्जित धन को बहुत देर तक अपने सुहृदों में

बाँटते रहे और किसी को निराश नहीं होने दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

श्रीराम का पिता के दर्शन के लिये कैकेयी के महल में जाना

तदनन्तर राम लक्ष्मण और सीता वनजाने को उद्यत हो पिता के दर्शन को गये। उस समय अयोध्या के धनी लोग अपने भवनों की ऊपरी मंजिल पर खड़े होकर इन तीनों को उदासीन भाव से देखने लगे। साधारण लोग सड़कों पर से ही उन्हें दुःखी मन से देखने लगे। राम लक्ष्मण सीता को पैदल चलते हुए देखकर वे सब शोक विह्वल होकर कहने लगे- हाय, जिसके पीछे चतुरंगिणी सेना चलती थी वे ही आज पैदल चल रहे हैं। कल तक जिन्हें आकाश में उड़नेवाले पक्षी भी नहीं देख पाते थे उन्हीं सीता को आज लोग सड़कों पर खड़े हुए देख रहे हैं। राजा दशरथ निश्चय ही किसी पिशाच के वंश होकर अपने प्यारे पुत्र को घर से निकाल रहे हैं। लोग गुणहीन पुत्र को भी घर से निकालने का साहस नहीं करते। फिर चरित्रवान् की बात ही नहीं की जा सकती। राम के राज्याभिषेक में विघ्न पड़ने से हम लोग उसी तरह तड़पने लगे हैं जैसे पानी सूख जाने से मछली। अतएव हम लोग क्यों न लक्ष्मण की भाँति पत्नी सहित श्रीराम के पीछे पीछे चल दें। इसके साथ ही हम अपने घरों की गड़ी हुई निधि को भी निकाल लें और सारे फर्श को खोदकर उन्हें खण्डहर बनाकर छोड़ दें फिर ऐसी दशा में इन घरों पर कैकेयी को अधिकार कर लेने दिया जाये। अच्छा हो जहाँ रामचन्द्र जा रहे हैं वह वन नगर हो जाये और उनके द्वारा यह नगर छोड़ देने पर यह जंगल हो जाये। इस प्रकार श्रीराम ने उन मनुष्यों के मुख से निकली हुई तरह-तरह की बातें सुनीं लेकिन यह सब सुनकर भी उनके मन में कोई विकार नहीं आया। अब इस तरह की बातें सुनते हुए वे कैकेयी के भवन में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर श्रीराम ने सुमन्त्र को दुःखी होकर खड़ा हुआ देखा तथा वहाँ और भी मनुष्यों को शोक से आतुर खड़े हुए देखा। लेकिन उन सबको देखकर भी श्रीराम के मन में कोई पीड़ा न हुई। वे पिता का दर्शन करने की इच्छा से हँसते हुए आगे बढ़े।

किन्तु वहाँ पहुँचने के पहले उन्होंने अपने आने की सूचना सुमन्त्र के द्वारा अपने पिता के पास भिजवाने के लिये वहीं ठहर गये। पिता की आज्ञा से वन जाने का निर्णय लेकर आये हुए श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा- आप महाराज को मेरे आगमन की सूचना दे दें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३३)

चौंतीसवाँ सर्ग

श्रीराम का राजा दशरथ से वनवास के लिये विदा माँगना

श्रीराम की बात सुनकर सुमन्त्र ने भीतर जाकर राजा का दर्शन किया और देखा कि वे जलशून्य तालाब की भाँति श्रीहीन होकर अत्यंत व्याकुल हो रहे थे। तब सुमन्त्र ने महाराज को हाथ जोड़कर कहा- पृथ्वीनाथ! आपके पुत्र ब्राह्मणों और सेवकों को अपना सारा धन देकर द्वार पर खड़े हैं। वे सब सुहृदों से विदा लेकर आये हैं और आपके दर्शन करना चाहते हैं। राजन्! अच्छा हो अब आप भी श्रीराम को जी भरकर देख लीजिये। यह सुनकर राजा दशरथ ने कहा- सुमन्त्र! यहाँ जो कोई भी मेरी स्त्रियाँ हैं उन सबको बुलाओ मैं उनके साथ ही श्रीराम को देखना चाहता हूँ। सुमन्त्र ने आज्ञा पाकर सब रानियों को महाराज के पास बुला लिया। तत्पश्चात् राजा दशरथ ने सुमन्त्र से कहा- सुमन्त्र अब मेरे पुत्र को ले आओ। यह सुनकर वे श्रीराम, लक्ष्मण तथा सीता को लेकर महाराज के पास लौट आये। श्रीराम को हाथ जोड़े अपनी ओर आते देखकर महाराज बड़ी वेग से उनकी ओर दौड़े। लेकिन उनके पास पहुँचने के पहले ही वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देखकर श्रीराम लक्ष्मण तेजी से महाराज के पास जा पहुँचे। इतने में ही राजभवन के भीतर सहसा आभूषणों की ध्वनि के साथ हजारों स्त्रियों की हा राम, हा राम यह ध्वनि सुनाई दी। तदनन्तर महाराज को चेत आने पर श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा- महाराज! आपकी आज्ञानुसार मैं दण्डक वन जा रहा हूँ। आप अपनी कृपा दृष्टि से मेरी ओर देखिये। मेरे साथ सीता और लक्ष्मण को भी वन जाने की आज्ञा दीजिये। अब राजा दशरथ उनकी ओर देखकर बोले- राम! कैकेयी को दिये हुए वर के कारण मैं बन्धन में फंस गया। अच्छा

हो तुम मुझे बन्दी बनाकर अयोध्या के राजा बन जाओ। महाराज की बात सुनकर श्रीराम उनसे बोले- महाराज! आप इस पृथ्वी पर हजार वर्षों तक राज्य करें। मुझे राज्य की कोई इच्छा नहीं, मैं तो अब वन में ही रहूँगा। फिर वहाँ से लौटकर आपके युगल चरणों में मस्तक झुका दूँगा। राजा दशरथ यह सुनकर बोले- तात! तुम कल्याण वृद्धि के लिये और फिर लौट आने के लिए वन को अवश्य जाओ। परन्तु आज रात भर और रह जाओ। यद्यपि तुम मुझे प्रसन्न करने के लिये ही यह दुष्कर कार्य कर रहे हो। लेकिन मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारा वन जाना मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता। यह मेरी स्त्री राख में छिपी हुई आग के समान है इसने मुझे वरदान के लिए प्रेरित कर मेरे साथ बहुत बड़ा धोखा किया है। पिता की शोक से भरी हुई इन बातों को सुनकर श्रीराम ने कहा- महाराज! आज मैं यात्रा करके जिन गुणों को प्राप्त करूँगा उसको मुझे कौन दे सकेगा। यह सारी पृथ्वी आप भरत को दे दीजिये और देवासुर संग्राम में जो वरदान कैकेयी को दिए हैं उन्हें पूर्ण हो जाने दीजिये। मैंने इस राज्य को लेने की इच्छा अपने सुख के लिये नहीं की थी बल्कि आपकी आज्ञा पालन करने हेतु इसे लेने की अभिलाषा की थी। मैं राज्य की, न सुख की, न पृथ्वी की और न स्वर्ग की ही इच्छा रखता हूँ। मेरी केवल एक इच्छा है कि आप सत्यवादी बनें। अतः अपने शोक को मन में दबाते हुए मुझे वन को जाने दें। यहाँ आये हुए सारे लोगों को धैर्य बँधाना आपका कर्तव्य है फिर आप स्वयं इतने विकल क्यों हो रहे हैं। अब मैं आपके आदेश का पालन करता हुआ चौदह वर्षों तक के लिये वन को जा रहा हूँ। मेरा मन आपकी आज्ञा पालन में जिस तरह लगता है उतना दूसरे किसी प्रिय पदार्थ में नहीं। क्योंकि आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो यही मेरी एक मात्र इच्छा है। मैं अब वन के कन्दमूल खाकर ही सुखी होऊँगा। इसलिये आप अपने मन को शान्त कीजिये। श्रीराम के ऐसा कहने पर दशरथ का दुःख और भी बढ़ गया और वे श्रीराम को छाती से लगाकर अचेत हो गये और यह देखकर वहाँ कैकेयी को छोड़कर अन्य रानियाँ भी रो पड़ीं। सुमन्त्र भी रोते-रोते अचेत हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

Mookerji shastri S Jammu Collection

पैंतीसवाँ सर्ग

सुमन्त्र के समझाने पर भी कैकेयी का बिल्कुल न मानना

तदनन्तर सुमन्त्र के होश आने पर वे उठ खड़े हुए और दाँत पीसते हुए कैकेयी से कहा। तुमने अपने पति को त्याग कर यह दिखला दिया है कि दुनिया में ऐसा कोई कुकर्म नहीं जिसे तुम न कर सको। तुम पति की हत्या करने जा रही हो इसलिए कुल घातिनी हुई। सुनो, नारियों के लिये पति की इच्छा का महत्व करोड़ों पुत्रों से भी अधिक है। इस कुल में राजा के परलोक वास होने पर ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य के अधिकारी होते हैं। तुम उस परम्परा को महाराज दशरथ के जीते जी ही मिटाना चाहती हो। तुम्हारे पुत्र के राजा बन जाने पर हम लोग तो वहीं जायेंगे जहाँ श्रीराम जायेंगे। फिर सारे बन्धु बान्धव एवं सदाचारी ब्राह्मण भी तुम्हारे राज्य को छोड़ देंगे फिर ऐसे राज्य को पाकर तुम्हें कौन सा सुख मिलेगा ? तुम्हारा यह कार्य मर्यादा रहित है और मुझे तो आश्चर्य होता है कि तुम्हारे इस अत्याचार को देखकर पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती। अथवा बड़े-बड़े ऋषि मुनि तुम्हारे जैसे पाषाणहृदया को शाप देकर भस्म क्यों नहीं कर देते। कैकेयी मैं समझता हूँ तुम भी अपनी माँ के समान ही दुराग्रही हो। इसके बारे में सुना जाता है कि एक साधु ने तुम्हारे पिता को एक ऐसा वर दिया था जिसके प्रभाव से वे समस्त प्राणियों की बोली समझने लगे थे। एक रात को जब वे अपने पलंग पर लेटे थे जृम्भनामक पक्षी की आवाज उनकी कानों में पड़ी। उसकी बोली का अभिप्राय समझकर उन्हें कई बार हँसी आ गयी। अब रानी ने यह समझा कि राजा मेरी हँसी उड़ा रहे हैं इसलिए वह कुपित हो उठी और बोली- नरेश्वर! तुम्हारे हँसने का क्या कारण है ? मुझे जल्दी बताओ नहीं तो मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँगी। राजा ने यह सुनकर कहा- देवि ! यदि मैं अपने हँसने का कारण तुम्हें बता दूँ तो मेरी मृत्यु हो जायेगी। यह सुनकर तुम्हारी माता ने कहा- तुम जियो या मरो, पर मुझे हँसने का कारण बता दो। अब राजा ने उस वर देने वाले साधु की सलाह लेकर तुम्हारी माता को तुरन्त घर से निकाल दिया और फिर आनन्द पूर्वक रहने लगे। तुम भी इसी तरह मोहवश अनुचित आग्रह कर रही हो। क्योंकि यह सच है कि पिता पुत्र के समान और पुत्रियाँ माता के समान होती हैं।

इसलिए श्रीराम का राज्याभिषेक कराकर पति की इच्छा को पूरी होने दो और उन्हें अनुचित कर्म में न लगाओ। इससे तुम्हारी निंदा सारे संसार में होगी। श्रीराम के अभिषेक के पश्चात् राजा दशरथ स्वयं अपनी आयु को देखते हुए वन में प्रवेश करेंगे। लेकिन सुमन्त्र के इस पकार समझाने पर भी कैकेयी जरा सा भी टस से मस न हुई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का राम के साथ खजाना भेजने के आदेश पर कैकेयी का विरोध

तब राजा दशरथ आँसू बहाते हुए सुमन्त्र से बोले- सूत! तुम रत्नों से भरी पूरी चतुरंगिणी सेना राम के पीछे भेजो साथ ही सरस बोलनेवाली स्त्रियाँ, द्रव्यों का प्रसारण करनेवाले वैश्य, मुख्य-मुख्यं आयुध, नगर के निवासी भी श्रीरामचन्द्र के पीछे पीछे जायें क्योंकि इन सबको देखते हुए वे अपने राज्य का स्मरण नहीं करेंगे। इन्हें प्रसन्न रखने के लिये मेरा खजाना और अन्न भण्डार दोनों इनके साथ जाये। अब महाराज को ऐसा कहते हुए देखकर कैकेयी को बड़ा भय हुआ और वह बोली- महाराज! जब तुम धन और जन दोनों को रामचन्द्र के साथ भेज रहे हो तो क्या भरत सूनी अयोध्या पर राज्य करेगा। इसलिये भरत को ऐसे राज्य की कोई आवश्यकता नहीं। अब कैकेयी की इस बात को सुनकर राजा दशरथ बोले- अनार्ये! मैंने तेरे कहने से ही श्रीराम को वनवास और भरत को राजगद्दी दे रहा हूँ। अब तू रामचन्द्र के साथ धन भेजने को क्यों मना करती है? क्या यह तेरा अन्याय नहीं? क्या तूने वर में यह बात मांगी थी कि रामचन्द्र को कुछ न देकर खाली हाथों वन में भेजा जाये? राजा दशरथ के इस क्रोध को देखकर कैकेयी उससे भी ज्यादा क्रोधित होकर बोली- महाराज! आपके पूर्वज राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र असमंज को निकालकर उसके लिये राज्य का दरवाजा सदा के लिये बंद कर दिया था। इसी तरह रामचन्द्र को भी यहाँ से निकल जाना चाहिए। राजा दशरथ यह सुनकर उसे धिक्कारने लगे और अन्य लोग भी लज्जित होने लगे

किन्तु दुष्टात्मा कैकेयी की समझ में कोई बात न आ सकी। इसी समय राजा के वयोवृद्ध मंत्री सिद्धार्थ ने कहा- देवि! असमंज तो बहुत दुष्ट बुद्धि का था। वह मार्ग में खेलते हुए बालकों को पकड़कर सरयू के जल में फेंक कर अपना मनोरंजन किया करता था और अंत में प्रजा के शिकायत करने पर राजा सगर ने उस अहितकारक दुष्ट पुत्र का त्याग कर दिया। किन्तु देवि! राम चन्द्र ने तो ऐसा कोई अपराध नहीं किया है जिससे उन्हें राज्य पाने से रोका जा सके। उनमें तो कोई दोष ढूँढ़ने से भी नहीं मिल सकता। लेकिन यदि तुम्हें उनमें कोई दोष दिखलायी पड़ा हो तो उसे आज ठीक ठीक बतलाओ। उस दशा में श्रीराम को देश निकाला दिया जा सकता है। अतः कैकेयी! श्रीराम के राज्याभिषेक में विघ्न डालने से तुम्हें कोई लाभ नहीं। तुम्हें व्यर्थ लोक निंदा से बचने की कोशिश करनी चाहिए। सिद्धार्थ की बात सुनकर राजा दशरथ अत्यंत दीन वाणी से बोले- पापिन! लगता है तुझे हित अनहित का बिल्कुल ज्ञान नहीं। अतः अब मैं भी इस राज्य और धन दौलत को छोड़कर श्रीराम के ही पीछे चला जाऊँगा। ये सारे उपस्थित लोग भी उन्हीं के साथ चले जायेंगे। फिर तू भरत को लेकर चिरकाल तक यहाँ राज्य करना।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

श्रीराम का वल्कल वस्त्र धारण करना एवं वशिष्ठजी का कैकेयी को फटकारना

तदनन्तर श्रीराम ने उन बातों को सुनकर राजा दशरथ से विनीत भाव से कहा- राजन्! मैंने अब वन में रहकर कंद मूल खाकर जीवन यापन करने का निश्चय कर लिया है। फिर मुझे सेना की क्या आवश्यकता। मैं उस सेना को भरत को ही अर्पित कर देना चाहता हूँ। मेरे लिए तो अब केवल वल्कल वस्त्र ही मँगवा दें। कैकेयी उस समय सारा लाज संकोच छोड़ चुकी थी। इसलिये वह स्वयं ही जाकर बहुत सा चीर ले आयी और श्रीरामचन्द्र को देती हुई बोली- लो पहन लो। श्रीराम ने तुरन्त उस वल्कल वस्त्र को पहन लिया। लेकिन सीता अपने पहनने के लिये आया हुआ वल्कल वस्त्र देखकर सहम

गयी और आंखों में आँसू आ गये। चीर पहनने में कुशल न होने के कारण सीता लज्जित हो एक वल्कल गले में डाल दूसरा हाथ में ले चुपचाप खड़ी हो गयीं। सीता को चीर पहनते देख रनवास की सारी स्त्रियाँ रो पड़ीं और राम से बोली- बेटा! सीता को तो इस प्रकार वनवास की आज्ञा नहीं दी गयी है। तुम इनको यहीं रहने दो। किन्तु माताओं की इन बातों को सुनते हुए भी श्रीराम ने सीता को वल्कल वस्त्र पहना ही दिए। सीता के वल्कल पहनने पर राजा के गुरु वशिष्ठ की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने सीता को रोककर कैकेयी से कहा- दुष्टे! अब सीता वन में न जायेंगी। बल्कि राम के लिये तैयार हुए उस राज्य सिंहासन पर ये ही बैठेंगी। अगर सीता श्रीराम के साथ वन में जाती हैं तो हम सब भी इनके साथ वन में चले जायेंगे। फिर तो सारे नगर के साथ अन्तःपुर के समस्त रक्षक भी चले जायेंगे। इनके साथ राज्य के सभी लोग अपना धन दौलत लेकर चले जायेंगे। फिर तू अकेली रहकर इस पृथ्वी का राज्य करना। कैकेयी! याद रख जहाँ श्रीराम राजा न होंगे वहाँ राज्य ही नहीं रहेगा। भरत भी इस राज्य को लेना नहीं पसन्द करेंगे और न यहाँ रहना चाहेंगे। कैकेयी आज तू देखेगी कि वन को जाते हुए श्रीराम के साथ पशु, सर्प, मृग और पक्षी भी चले जा रहे हैं। औरों की बात जाने दो ये समस्त वृक्ष भी उनके साथ जाने को उत्सुक हैं। कैकेयी! सीता तेरी बहू है। अतः इनके शरीर से वल्कल वस्त्र उतारकर इन्हें उत्तम वस्त्र पहनने को दे। क्योंकि तूने केवल राम के लिए वनवास माँगा है सीता के लिए नहीं। ऐसा कहकर गुरु वशिष्ठ ने सीता को वल्कल वस्त्र पहनने के लिए मना कर दिया। किन्तु सीता उस समय अपने पति के समान ही वल्कल पहनने के लिए आतुर हो रही थीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

अड़तीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का कैकेयी को फटकारना, श्रीराम का उनसे कौसल्या पर कृपा दृष्टि रखने का अनुरोध करना

जब सीता श्रीराम की तरह ही वल्कल वस्त्र पहनने लगीं तब सब लोग एक साथ चिल्ला उठे- राजा दशरथ! तुम्हें धिक्कार है। यह सब देखकर राजा

दशरथ ने गरम सांस खींचकर कैकेयी से कहा- कैकेयी! गुरुजी ठीक कहते हैं। सीता को तुम इस दशा में वन में भेज रही हो आखिर इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है। हे सीते! तुम इन वस्त्रों को उतारकर राजसी वस्त्र पहनो क्योंकि मैंने तुम्हारे बारे में कोई प्रतिज्ञा नहीं की है। हाय, आज मेरे दिए हुए वरदान मुझे ही भस्म कर रहे हैं। पापिनि! तूने श्रीराम को वनवास देकर ही पूरा पाप कमा लिया है। अब तू सीता को वल्कल वस्त्र पहनाने आदि का दुःखद कार्य करके पाप क्यों बटोर रही है? जब राजा दशरथ अपना सिर नीचा किये हुए कैकेयी से इस प्रकार कह रहे थे तब श्रीराम पिता से बोले- पिताजी! अब मेरी माता कौसल्या बूढ़ी हो चली हैं। इन्हें पहले कभी ऐसा दुःख देखने को नहीं मिला है। अतः आप इनका सदैव अधिक सम्मान करते रहेंगे। आप को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि ये अधिक पुत्र शोक न करने पायें। ये सदा ही बेटे को देखने के लिये उत्सुक रहेंगी। ऐसी दशा में ये अपना प्राण भी त्याग सकती हैं। अतः, आप इन्हें ऐसी परिस्थिति में रक्खें जिससे इन्हें अधिक चिंता न हो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३८)

उन्तालीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का विलाप, कौसल्या का सीता को पतिसेवा का उपदेश, श्रीराम का माताओं से विदा माँगना

अब श्रीराम को मुनिवेष में देखकर राजा दशरथ अचेत हो उठे। फिर होश आने पर बोले- लगता है पूर्व जन्म में मैंने बहुत से गौओं और बछड़ों का विछोह करवाया है। इसी से मुझ पर यह संकट आ पड़ा है। ओह अपने पुत्र को इस वल्कल वस्त्र में भी देखकर मेरे प्राण क्यों नहीं निकलते। एक मात्र कैकेयी के कारण ये सब महान् कष्ट में पड़ गये हैं। इतना कहकर वे फिर मूर्छित हो गये और पुनः होश आने पर सुमन्त्र से बोले- तुम उत्तम घोड़े से जुता हुआ रथ यहाँ ले आओ और महाभाग श्रीराम को उस पर बैठाकर जनपद के बाहर तक पहुँचा आओ। राजा की आज्ञा पाकर सुमन्त्र शीघ्र सुसज्जित रथ ले आये। तब रथ के आने पर राजा दशरथ ने अपने कोषाध्यक्ष

को बुलाकर कहा तुम सीता के पहनने योग्य चौदह वर्षों तक के लिये पर्याप्त आभूषण ले आओ। कोषाध्यक्ष ने ऐसा ही किया। तदनन्तर सीता ने सुन्दर लक्षणों से युक्त अपने सारे अंगों को आभूषणों से सजा लिया। तब कौसल्या ने सीता को गले लगाते हुए कहा- बेटी! जो कष्ट पड़ने पर अपने पतियों का साथ नहीं देतीं वे 'असती' (दुष्टा) कहलाती हैं। ऐसी स्त्रियाँ पति के ऊपर मुसीबत आने पर आसानी से उनका साथ छोड़ देती हैं। पति का स्नेह पूर्वक अपनाया जाना भी उन्हें रुचिकर नहीं लगता क्योंकि उनका चित्त अव्यवस्थित रहता है। इसके विपरीत सदाचारी स्त्रियों के लिए पति ही एक मात्र परमेश्वर होता है। इसलिये हे सीता! मेरे पुत्र श्रीराम जिन्हें वनवास मिला है, वे धनवान हों या निर्धन उनका अनादर कभी न करना। सास की बात सुनकर सीता हाथ जोड़कर बोलीं, -आर्ये आप मुझे जो कुछ भी उपदेश दे रही हैं उनका मैं भलीभांति पालन करूँगी। क्योंकि मैंने इसके बारे में पहले से भी सुन रखा है। आपको मुझे असती स्त्रियों के समान नहीं समझना चाहिए। जैसे बिना तार की वीणा नहीं बजती और बिना पहिए के रथ नहीं चलता वैसे ही स्त्रियों के बिना पति को कहीं सुख नहीं मिल सकता। माता जी, मैंने अपनी माँ आदि के मुख से भी पतिव्रत का महत्व जाना है उसे मैं कैसे भूल सकती हूँ। यह सुनकर कौसल्या की आंखों में आँसू आ गये। तब श्रीरामचन्द्र कौसल्या से हाथ जोड़कर बोले- तुम मेरे वनवास के लिए पिता को अपराधी समझकर उन्हें दुख मत देना। ये वनवास की अवधिं तो तुम्हारे सोते सोते निकल जायेगी। इतना कहकर श्रीराम ने अपने अन्य साढ़े तीन सौ माताओं की ओर देखा। उनको भी श्रीराम ने कौसल्या की तरह शोक ग्रस्त पाया। अब राम ने उनसे भी कहा- माताओं! यदि मुझसे कभी अनजाने में भी कोई अपराध हुआ हो उसके लिए क्षमा कीजिएगा। श्रीराम की यह बात सुनकर सभी स्त्रियाँ कुररियों की तरह विलाप करने लगीं जो कि उस समय बहुत ही दुःखमय प्रतीत हो रहा था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में उन्तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३९)

चालीसवाँ सर्ग

श्रीराम लक्ष्मण का दशरथ की परिक्रमा तथा रथ में बैठकर वन को प्रस्थान

तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण ने राजा दशरथ का चरण छूकर उनकी परिक्रमा की। फिर उन लोगों ने कौसल्या और सुमित्रा के चरण छुए। तदनन्तर सुमित्रा ने लक्ष्मण का मस्तक सूँधकर कहा- बेटा! तुम वनवास के समय अपने भाई श्रीराम की सेवा से कभी नहीं चूकना। सत्पुरुषों का यही धर्म भी है कि वे अपने बड़े भाई की सदैव आज्ञा पालन करते रहें। इसके बाद उन्होंने सर्व प्रिय राम से कहा- बेटा! जाओ। तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। इसके बाद उन्होंने लक्ष्मण से फिर कहा। बेटा! अब तुम श्रीराम को दशरथ, सीता को सुमित्रा और वन को ही अयोध्या समझो। इसके बाद सुमन्त्र ने श्रीरामसे कहा- राजकुमार श्रीराम! अब आप रथ पर बैठिए और जहाँ तक कहें मैं आपको पहुँचा दूँ। किन्तु चौदह वर्षों की गिनती आज से ही आरम्भ होनी चाहिए। यह सुनकर सीता, राम और लक्ष्मण अपने अस्त्र शस्त्रों सहित रथ पर सवार हो गये। उनके सवार होने पर सुमन्त्र ने उत्तम घोड़ों से जुते हुए उस रथ को तेजी से हाँका। अब श्रीराम को अनेक दिनों तक के लिये वन जाते देखकर समस्त नागरिक मूर्छित हो गये। इसके अलावा जो लोग बाहर से श्रीराम चन्द्र का तिलक देखने आये थे वे भी मूर्छित हो गये। उस समय सारे अयोध्या में कोलाहल सा मच उठा और अबला वृद्ध सभी दुःखी होकर श्रीराम के पीछे दौड़ते हुए चिल्लाने लगे- सूत! रथ को धीरे-धीरे ले चलो। हम श्रीराम का मुख देखना चाहते हैं। लगता है इनकी माताओं का हृदय पत्थर का बना है जो अपने पुत्र के वन जाते समय फट भी नहीं जाता। सीता अपने पति के पीछे छाया की भांति लगी रहने के कारण कृतार्थ हो गयी हैं। श्रीराम का अनुसरण कर लक्ष्मण भी कृतार्थ हो गये। ऐसा कहते हुए सभी पुरवासी श्रीराम के पीछे पीछे चले जा रहे थे। बेहोशी की दशा में राजा दशरथ भी भवन से भागने लगे और कहने लगे कि मैं भी अपने प्यारे पुत्र राम को देखूँगा। इसके साथ उनकी रानियों का आर्त्तनाद इस प्रकार लग रहा था जैसे हाथी के पकड़े जाने पर हथिनियों का चीत्कार। अब अपने पिता

और नगर वासियों की ऐसी दशा देखकर श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा- आप रथ को तेजी से चलाइये। अब ऐसी दशा में सुमन्त्र रथ को न तो आगे ही बढ़ा सके और न तो सर्वथा रोक ही सके। उस समय पुरवासियों के आँसू से धरती की उड़ती हुई सारी धूल शान्त हो गयी। तब राजा दशरथ भी समस्त पुरवासियों के दुःख को देखकर कटे वृक्ष की भाँति धरती पर गिर पड़े। उस समय श्रीराम जैसे ही पीछे मुड़े उन्होंने राजा दशरथ और माता कौसल्या दोनों को ही अपने पीछे आते हुए देखा। यह देखकर श्रीराम सारथि को फिर रथ जल्दी से ले चलने के लिये कहा। उनके लिये माता पिता को इस अवस्था में देखना असह्य हो गया था। यह सब देखते हुए श्रीराम ने सुमन्त्र से कहा- यहाँ मेरा अधिक ठहरना मेरे माता पिता एवं पुरवासियों के लिए कष्ट का कारण बनेगा, इसलिये जैसे ही हो आप तेजी से रथ बढ़ाइये। उस समय श्रीराम का आदेश पालन करने के लिये सारथि सुमन्त्र ने रथ को तेज गति से हाँकना शुरू किया। सभी मंत्रियों ने राजा दशरथ को समझाया- महाराज! जिसके लिये यह इच्छा की जाये कि वह पुनः शीघ्र लौट आये उसके पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिए। अंत में अपने मंत्रियों के द्वारा इस तरह समझाने पर राजा दशरथ वहीं खड़े हो गये और दीन भाव से अपने पुत्र की ओर देखने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४०)

इक्तालीसवाँ सर्ग

रनिवास की स्त्रियों का विलाप नगरवासियों की शोकाकुल अवस्था

जिस समय श्रीरामचन्द्र रथ द्वारा नगर से बाहर निकलने लगे उस समय रनिवास की रानियों में बड़ा हाहाकार मच गया। वे विलाप करती हुई बोलीं- हाय सब का मनोरथ पूर्ण बढ़ाने वाले राम कहाँ जा रहे हैं? रूठों को प्रसन्न करने वाले राम कहाँ जा रहे हैं? जगत की रक्षा करनेवाले रघुवीर कहाँ जा रहे हैं? लगता है ये राजा बड़े बुद्धिहीन हैं जो सत्यव्रती श्रीराम को देश निकाला दे रहे हैं। अन्तःपुर की रानियों का विलाप सुनकर महाराज दशरथ बहुत दुःखी हो गये। उस दिन प्रजाओं ने कोई काम ही नहीं किया। गृहस्थों के यहाँ कोई भोजन ही नहीं

बना। यहाँ तक कि गौओं ने बछड़े को दूध नहीं पिलाया और पुत्र को जन्म देकर भी कोई माता प्रसन्न नहीं हुई। उस समय नक्षत्रों की कान्ति फीकी पड़ गयी और ग्रह निस्तेज हो गये। समस्त दिशायें व्याकुल हो उठीं और सारे नागरिक दीन दशा को प्राप्त हो गये। उस समय सभी का मुख आसुओं से भींगा हुआ था। सूर्य भी जगत को उचित ताप नहीं दे पा रहा था और बालक माँ बाप को भूल गये। सारे लोग सब कुछ छोड़कर केवल श्रीराम के बारे में ही सोचने लगे थे। श्रीराम के मित्र अपनी सुध बुध खोकर रात भर सोये तक नहीं। इस प्रकार श्रीराम के चले जाने से सारी अयोध्या नगरी ही भय और शोक से जलने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इकतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालीसवाँ सर्ग

राजा दशरथ का पृथ्वी पर गिरना कैकेयी को अपने पास आने हेतु मना करना

वन की ओर जाते हुये श्रीराम के रथ की धूल राजा दशरथ बहुत देर तक देखते रहे। फिर उसके ओझल होते ही वे दुखी होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अब उन्हें सहारा देने के लिये कौसल्या उनके दाहिने भाग में आयी और कैकेयी वाम भाग में जा पहुँची। लेकिन कैकेयी को देखते ही राजा दशरथ का रोम-रोम पीड़ा से भर उठा और वे बोल उठे- पापिनि कैकेयी! तू मेरे अंगों को मत छू। तू अब मेरी भार्या नहीं रह गयी। तूने धन के लोभ में पड़कर अधर्म को अपनाया है। इसलिये मैं तुझसे सारा सम्बन्ध तोड़ रहा हूँ। तेरा पुत्र भरत भी यदि मुझे पिण्ड दान या जल दान दे तो वह भी मुझे प्राप्त न हो सके। तदनन्तर कौसल्या महाराज को सहारा देती हुई राजभवन तक लौटी। उस समय वे अपने ही द्वारा दिये गये वरों से वे स्वयं ही शोक ग्रस्त हो रहे थे और अपने पुत्र का बारम्बार स्मरण करते हुए कह रहे थे कि जो रामचन्द्र तकियों का सहारा लेकर उत्तम शय्याओं पर सुख से सोते थे और जिनके ऊपर सुन्दर स्त्रियाँ पंखे डुलाया करती थीं उन श्रीराम को अब पत्थर की तकिया बनाकर भूमि

पर ही सोना पड़ेगा। उस समय वन के लोग श्रीराम को अनाथ की भाँति उठकर इधर-उधर जाते हुए देखेंगे। सुख भोगने योग्य जनकनन्दिनी सीता अब कांटों पर चलकर दुःख का अनुभव करती हुई वन को जायेंगी और वहाँ हिंसक पशुओं का गर्जन सुनकर वह निश्चय ही भयभीत हो उठेंगी। अरी कैकेयी! अब मैं बिना राम के जीवित नहीं रह सकता अतएव अब तू विधवा होकर राज्य सुख भोग। इस प्रकार विलाप करते हुए उन्होंने अपने उत्तम भवन में प्रवेश किया। उस समय बाजार हाट बन्द थे और नगर के सारे लोग बहुत ही क्लान्त और दुर्बल हो रहे थे। जिस समय राजा ने महलों में प्रवेश किया। उस समय उन्हें श्रीराम,सीता और लक्ष्मण के बिना वह महल सूना-सूना दिखलायी पड़ा। अब राजा रो रो कहने लगे- मुझे रानी कौसल्या के महल में ले चलो क्योंकि मुझे इस स्थान में शान्ति मिलनेवाली नहीं। आज्ञा पाकर द्वारपालों ने राजा दशरथ को कौसल्या के महल में पहुँचा दिया। वहाँ पलंग पर लेट जाने पर भी राजा का मन मलिन ही रहा। अब उस सूने भवन को देखकर राजा ने एक बाँह ऊपर उठाकर विलाप करते हुए कहा- हा राम! अब चौदह वर्ष बाद भी जो नर जीवित रहकर तुम्हारा दर्शन कर सकेंगे वही वास्तव में सुखी होंगे। तदन्तर रात आने पर राजा दशरथ ने कौसल्या से कहा- कौसल्या मेरी दृष्टि तो राम के साथ ही चली गयी है अतएव मैं तुम्हें देख नहीं सकता। इसलिए एक बार अब अपने हाथों से मेरा शरीर तो स्पर्श करो। कौसल्या यह सुनकर और भी अधिक दुःखी होकर विलाप करने लगीं।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के
अयोध्या कान्ड में बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैंतालीसवाँ सर्ग

महारानी कौसल्या का विलाप

उस समय शय्या में महाराज को व्याकुल पड़े हुए देखकर कौसल्या बोलीं- महाराज! टेढ़ी चाल चलनेवाली कैकेयी अब सर्पिणी की भाँति नया शरीर धारण कर स्वच्छन्द विचरेगी। यदि श्रीराम को कैकेयी का दास बनाकर भी यहाँ रहने दिया गया होता तो भी बुरा न होता। क्योंकि इससे

Mookerji sharma ... Jammu Collection

प्रतिदिन राम के दर्शन हो जाया करते। जीवन में कभी दुःख न उठाने वाले श्रीराम को आपने कैकेयी के कहने से वन भेज दिया अब उनके सामने कष्ट उठाने के सिवा कोई चारा नहीं है। अब उन्हें उत्तम व्यंजनों को छोड़ कंद मूल खाकर ही जीवित रहना होगा। क्या मेरे लिये फिर वह दिन आयेगा, जब मैं श्रीराम को देख सकूँगी। अयोध्या वासियों के लिए फिर कब वह अवसर आयेगा जब वे श्रीराम को देखकर हर्ष से उल्लसित हो उठेंगे। कब यहाँ के सहस्रों मनुष्य पुरी में प्रवेश करते हुए मेरे दोनों पुत्रों पर लावा और खील की वर्षा करेंगे। कब ब्राह्मण कन्याएं फूल और फल अर्पण करती हुई अयोध्यापुरी की परिक्रमा करेंगी। हे वीर! ऐसा लगता है कि पूर्व जन्म में मैंने दूध पीने के लिए तैयार हुए बछड़ों को देखकर उनकी माताओं का थन अवश्य काट दिया होगा। अब मैं अपने बेटे राम और लक्ष्मण के बिना किसी तरह जीवित नहीं रह सकती। जैसे सूर्यदेव ग्रीष्म ऋतु में पृथ्वी को अधिक ताप देकर सबको कष्टपहुँचाते हैं उसी तरह पुत्र शोक की जलती हुई आग मुझे भस्म किए डालती है।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालीसवाँ सर्ग

सुमित्रा का कौसल्या को समझाना

कौसल्या को विलाप करती देख सुमित्रा ने कहा- आर्ये! तुम्हारे पुत्र श्रीराम उत्तम गुणों से युक्त हैं इसलिए उनके लिये रोना-धोना व्यर्थ है। निष्पाप लक्ष्मण जो समस्त प्राणियों के प्रति दयालु है उनका राम के साथ जाना लाभप्रद ही है। सीता भी वनवास के दुःखों को अच्छी तरह समझकर ही उनके पीछे गयी हैं। श्रीराम की महत्ता को देखकर सूर्य भी अपनी किरणों से उन्हें संतप्त नहीं कर सकता। वन की सर्द और गर्म हवायें भी श्रीराम की सेवा ही करेंगी। रात्रि में चन्द्रमा की शीतल किरणें उन्हें आह्लादित करेंगी। श्रीराम महान शूरवीर होने के नाते जैसे महल में रहते हैं उसी प्रकार वन में रहेंगे। श्रीराम में जो कल्याणकारी शक्ति है उससे लगता है वे वन से शीघ्र ही लौटकर अपना राज्य प्राप्त कर लेंगे। देवि! श्रीराम प्रभु के भी प्रभु हैं। अतः वे

वन में रहें या नगर में उनके लिये कोई अंतर नहीं पड़ता। जिन्हें नगर से निकलते देख अयोध्या का सारा जन समुदाय दुःखी हो उठा और जिनके पीछे सीता के रूप में साक्षात् लक्ष्मी गयी हैं, उनके लिये दुर्लभ ही क्या है? जिनके साथ धनुर्धारियों में श्रेष्ठ लक्ष्मण हैं उन्हें चिंता ही कैसी? अतएव वनवास की अवधि पूरी कर अयोध्या में लौटे हुए श्रीराम का मुख तुम अवश्य देखोगी। देवि! तुम्हें तो इस समय अन्य लोगों को धैर्य बंधाना चाहिए इसके विपरीत तुम स्वयं दुःखी हो रही हो। तुम्हारे पुत्र अयोध्या पुनः लौट कर अपने मोटे मोटे कोमल हाथों द्वारा तुम्हारे दोनों पैरों को दबायेंगे। इस प्रकार तरह तरह की बातों से कौसल्या को समझाती हुई सुमित्रा चुप हो गयीं। उनकी बातों से महाराज दशरथ और माता कौसल्या दोनों का दुःख तत्काल मिट गया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैंतालीसवाँ सर्ग

श्रीराम के साथ आये हुए पुरवासियों को समझा बुझाकर लौटाना और तमसा तट पर पहुँचना

जब महात्मा श्रीराम वन की ओर जाने लगे उस समय बहुत से अयोध्यावासी वन में निवास करने के लिये उनके पीछे-पीछे चलने लगे। दशरथ को बलपूर्वक लौटा देने के बाद भी वे लोग घर की ओर नहीं लौटे। यद्यपि श्रीराम ने उन्हें बहुत समझाया पर उनके पैर आगे बढ़ते ही गये। तब राम ने उन्हें स्नेह पूर्वक समझाया, अयोध्यावासियों भरत मुझसे भी राजोचित गुणों से युक्त हैं इसीलिये महाराज ने उन्हें युवराज बनाने का निश्चय किया है इसलिये आप लोग भरत की आज्ञा का पालन करते हुए महाराज दशरथ को भी दुःखी न होने दें। उनकी इन बातों से सभी पुरवासियों की आंखों में आंसू आ गये। किन्तु रामचन्द्र ने प्रजा को जितना ही उपदेश दिया प्रजा का विचार उन्हें राजा बनाने के लिए उतना ही दृढ़ होता गया। उनमें से बहुत से ऐसे ब्राह्मण भी थे जो ज्ञान अवस्था और तपोबल में बहुत श्रेष्ठ

Mookerji Sharma [illegible] Jammu Collection

थे। उन्होंने रथ के घोड़ों से कहा- हे रथ के घोड़ों! तुम रामचन्द्र सहित अयोध्या लौट चलो और वन की ओर पैर न बढ़ाओ। इन्हें वन की ओर ले जाना तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं है। वृद्ध ब्राह्मणों को इस तरह विलाप करते देखकर श्रीराम रथ से उतर पड़े और सीता तथा लक्ष्मण के साथ पैदल ही चलने लगे। श्रीराम को अब भी वन जाते हुए देखकर वे ब्राह्मण मन ही मन घबरा उठे और कहने लगे- श्रीराम तुम ब्राह्मणों के हितैषी हो इसलिए हम तुम्हारे पीछे पीछे चल रहे हैं। हमारी जो बुद्धि वेद मंत्रों के साथ चलती थी वही अब तुम्हारे लिये वनवास का अनुसरण करनेवाली हो गयी है। हमने तुम्हारे साथ जाने का निश्चय कर लिया है। इसलिए अब हमें कुछ नहीं सोचना है? सदाचारी श्रीराम हमारे सिर के बाल सफेद हो गए हैं और इनमें धूल भर गयी है। हम ऐसे मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हुए निवेदन करते हैं कि तुम घर को लौट चलो। लेकिन ब्राह्मणों की इन बातों को सुनकर भी राम नहीं रुके। तब ब्राह्मणों ने कहा- वत्स! हममें से बहुत से ब्राह्मणों ने यज्ञ आरम्भ किया है। इन यज्ञों को समाप्ति तुम्हारे लौटने पर ही निर्भर है। संसार के सभी चल और अचल प्राणी तुमसे लौट चलने की प्रार्थना कर रहे हैं। तुम उन पर अपना स्नेह दिखलाओ। ये वृक्ष हवा की सनसनाहट के द्वारा तुमसे लौटने की प्रार्थना करते हैं क्योंकि तुम सभी प्राणियों पर कृपा करनेवाले हो। इसी समय उन लोगों को रास्ते में तमसा नदी दिखलायी दी जो अपनी टेढ़ी-मेढ़ी धारा से श्रीराम को रोकती हुई दिखलायी पड़ी। यहाँ पहुँचकर सुमन्त्र ने थके हुए घोड़ों को रथ से खोलकर उन्हें पानी पिलाया और निकट ही चरने को छोड़ दिया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के
अयोध्या कान्ड में पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का रात्रि में सीता लक्ष्मण सहित तमसा तट पर निवास

उस तमसा नदी के तट पर आराम करते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- हमारी यह वनवास की पहली रात है। अतएव तुम्हें नगर के लिये इच्छुक न होना चाहिए। इस सूने स्थान पर वन के पशु पक्षी अपने अपने स्थान पर

आकर अपनी अपनी बोली बोल रहे हैं लगता है हमारी अवस्था देखकर यह सब ओर से रो रहे हैं। आज हमारे पिताजी भी शोक करते होंगे इसमें संशय नहीं। लेकिन इस समय मुझे माता पिता के लिये अधिक शोक हो रहा है ऐसा न हो निरन्तर रोते रहने के कारण वे अंधे हो जायें। लेकिन भरत धर्मात्मा होने के नाते उन्हें अवश्य सान्त्वना देंगे इसलिये मुझे अधिक चिंता नहीं। भाई लक्ष्मण! वास्तव में तुमने मेरे साथ आकर बड़ा उत्तम कार्य किया। क्योंकि अगर तुम न आते तो मुझे सीता की रक्षा हेतु कोई दूसरा सहायक ढूँढ़ना पड़ता। यद्यपि यहाँ जंगली फल फूल तरह तरह के मिल सकते हैं लेकिन आज की रात मैं केवल जल पीकर ही बिताऊँगा। फिर सुमन्त्र को घोड़ों पर ध्यान देने के लिये कहा। यह सुनकर सुमन्त्र ने सूर्यास्त हो जाने पर घोड़े को लाकर थान में बाँध दिया और उनके सामने घास चारा डालकर श्रीराम के पास आ गये। फिर सन्ध्योपासना के पश्चात् उन लोगों ने श्रीराम के शयन करने योग्य स्थान ठीक किया। तमसा नदी के तट पर पत्तों की उस शय्या पर श्रीराम लक्ष्मण और सीता सहित जा बैठे। तत्पश्चात् श्रीराम और सीता के सो जाने पर लक्ष्मण रात भर जगकर सुमन्त्र से राम के गुणों की चर्चा करते रहे। तदनन्तर सूर्योदय का समय निकट देखकर श्रीरामचन्द्र उठ बैठे और सोते हुए नगरवासियों को देखकर लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! जरा इन पुरवासियों की ओर देखो। ये हमें वापस ले चलने का उद्योग कर रहे हैं अतः जब तक ये सो रहे हैं हम लोग रथ पर सवार होकर शीघ्रता पूर्वक यहाँ से चल दें। क्योंकि राजकुमारों का कर्तव्य है कि वह प्रजा को अपने दुःख से दुःखी न होने दें। इस बात को सुनकर लक्ष्मण ने कहा- प्रभो! आप ठीक कह रहे हैं। अब हम लोग तुरन्त रथ पर सवार होकर आगे बढ़ें। अब श्रीरामचन्द्र ने सुमन्त्र को रथ तैयार करने का आदेश दिया। फिर रथ पर सवार होकर वे तीनों तीव्र गति से बहनेवाली तमसा नदी के उस पार गये। उस समय श्रीराम ने पुरवासियों को भुलावा देने के लिये सुमन्त्र से कहा- सारथे! आप रथ जोत लें और पहले उत्तर दिशा को चलें। दो घड़ी तक तीव्र गति से उत्तर जाकर फिर दूसरे मार्ग से रथ को यहाँ लौटा लाइए जिससे पुरवासियों को मेरा पता न चल सके। श्रीराम का यह वचन सुनकर सारथी ने वैसा ही किया। तत्पश्चात् सीता

Mookerji shelf Collection, Jammu Collection

सहित श्रीराम और लक्ष्मण लौटे हुए उस रथ पर जा चढ़े। तब सुमन्त्र ने रथ को उस मार्ग पर बढ़ा दिया जिससे तपोवन पहुँचा जा सकता था।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४६)

सैंतालिसवाँ सर्ग

प्रातः काल पुरवासियों का निराश होकर लौटना

इधर रात बीतने पर अयोध्यावासियों ने जब श्रीराम को नहीं देखा तो वे अचेत हो गये। श्रीराम किधर गये हैं इसका पता देने वाला कोई चिह्न तक न दिखलायी पड़ा। अब वे विलाप करने लगे- हाय! हमारी उस निद्रा को धिक्कार है जिससे हम श्रीराम के दर्शन से वंचित हो गये। अब लोग क्यों न प्राण दे दें क्योंकि बिना राम के हमारा जीवित रहना कैसे हितकर हो सकता है। अब हमसे कोई श्रीराम के बारे में पूछेगा तो हम उसे क्या उत्तर देंगे। क्या हमको यही कहना पड़ेगा कि जो किसी के दोष नहीं देखते उस महाबाहु श्रीरामको हमने वन पहुँचा दिया है। निश्चय ही श्रीराम के बिना हम लोगों को लौटे हुए देखकर अयोध्या नगरी आनन्द हीन हो जायेगी। इस प्रकार अनेक प्रकार का विलाप करते हुए वे उस रथ की लीक का अनुसरण करते हुए अयोध्या की ओर लौट पड़े। अब उस नगरी को देखकर उनका हृदय दुःख से व्याकुल हो उठा। उस समय अयोध्या नगरी ऐसे लग रही थी जैसे चन्द्रमा के बिना आकाश और जल के बिना समुद्र। अयोध्या के लोगों के हृदय का सारा उल्लास समाप्त होता दिखायी पड़ने लगा और वे अपने पराये की पहचान भी न कर सके।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में सैंतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४७)

अड़तालीसवाँ सर्ग

नगर की स्त्रियों का विलाप करना

श्रीराम के साथ जाकर भी जो उन्हें बिना लिए लौट आये थे उनका चित्त ठिकाने नहीं था और वे अपने घरों में अपनी पत्नी और अपने पुत्रों से घिरे

हुए आँसू बहाने लगे। किसी के शरीर में हर्ष का कोई चिह्न नहीं दिखायी देता था। वैश्यों ने अपनी दुकानें नहीं खोली। गृहस्थों के घर में चूल्हे नहीं जले। जिसने प्रथम बार पुत्र को जन्म दिया ऐसी माता भी आनन्दित नहीं हुई। अपने पतियों को श्रीराम के बिना लौटे हुए देखकर उन्होंने कहा जो लोग श्रीराम को नहीं देखते उन्हें घर द्वार, स्त्री पुरुष, धन दौलत से मतलब ही क्या ? संसार में लक्ष्मण ही वास्तव में सत्पुरुष हैं जो सीता और राम की सेवा करने के लिए उनके पीछे पीछे वन में गए हैं। जिन नदियों और तालाबों में रामचन्द्र जी ने स्नान किया होगा उन्होंने वास्तव में बड़ा पुण्य किया होगा। फूलों के मुकुट पहने अनेक वृक्ष श्रीरामचन्द्र जी को अपनी शोभा दिखायेंगे। वहाँ के पर्वत श्रीराम को असमय में भी उत्तम फल फूल दिखलायेंगे। वहाँ के लहलहाते वृक्ष उनका मनोरंजन करेंगे। अब जब तक वे हमसे दूर नहीं निकल जाते हमें इसके पहले ही उनके पास पहुँचकर पीछे लग जाना चाहिए। हम स्त्रियां सीता जी की सेवा करेंगी और पुरुष श्रीरामचन्द्र की सेवा में लगे रहेंगे। अब यहाँ का रहना प्रेम और प्रतीत से रहित होगा। इसीलिये किसी का यहाँ का रहना अच्छा नहीं लगता। इस राज्य पर कैकेयी का अधिकार हो जाने से यह अनाथ जैसा हो जायेगा। क्योंकि इसमें अब धर्म की मर्यादा ही नहीं रहेगी। हम अपने पुत्रों की शपथ खाकर कहते हैं कि जब तक कैकेयी जीवित रहेगी हम उसके राज्य में नहीं रह सकेंगी। उस दुराचारिणी का राज्य अनाथ एवं यज्ञ रहित होकर उपद्रव का केन्द्र बन जायेगा और इससे एक दिन सब का विनाश हो जायेगा। श्रीराम के वन चले जाने से राजा दशरथ की मृत्यु निश्चित है और उनके मरते ही इस राज्य का लोप हो जायेगा। यह भी निश्चित है। अब या तो हमें श्रीराम का पीछा करना चाहिए या ऐसे देश में चलकर रहना चाहिए जहाँ कैकेयी का नाम न सुनाई दे। श्रीराम लक्ष्मण के साथ सीता को वन भेजकर हमें भरत के साथ बाँध दिया गया है। इससे हमारी दशा कसाई के घर बंधे हुए पशुओं के समान हो गयी है। रामचन्द्र का मुख चन्द्रमा के समान मनोहर है। वे शत्रुओं का दमन करनेवाले महान बलवान हैं। वहाँ भूतल पर विचरते हुए श्रीराम वन उपवन की शोभा बढ़ायेंगे। ऐसा कहती हुई वे स्त्रियाँ इस प्रकार जोर-जोर से रोने लगीं जैसे उन पर मृत्यु का भय आ गया हो। इस प्रकार विलाप करते करते सूर्यदेव अस्ताचल को

चले गये और रात हो गयी। उस समय सारी अयोध्यापुरी अंधकार से पुती मालूम होने लगी और सारी नगरी ही श्रीहीन हो गयी।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४८)

उनचासवाँ सर्ग

ग्रामवासियों की बातें सुनते हुए श्रीराम का आगे जाना

उधर श्रीराम चलते चलते रात में ही बहुत दूर निकल गये। इसी तरह चलते हुए उन्होंने वह रात भी बिता दी। लेकिन उस मार्ग के सुन्दर दृश्यों को देखते हुए वे इतने तन्मय हो रहे थे कि उन्हें रथ की गति बहुत धीमी मालूम पड़ने लगी। रास्ते में पड़नेवाले गाँव के लोग कहते काम के वशीभूत होकर उन्हें वन भेजनेवाले राजा दशरथ को धिक्कार है। हाय, कैकेयी भी कितनी निष्ठुर होगी जिस ने ऐसे धर्मात्मा पुत्रों को घर से निकाल दिया। ओह अब जनक नन्दिनी सीता इस दुःख को कैसे झेल सकेंगी। ऐसी बातें सुनते ही श्रीराम जनपद की सीमा लांघकर आगे बढ़ गये। फिर मार्ग में पड़नेवाली वेद श्रुति नदी को पारकर दक्षिण दिशा की ओर बढ़े। तत्पश्चात् दीर्घकाल तक चलने के बाद उन्होंने गोमती एवं स्यन्दिका नामक नदी को भी पार किया। फिर वहाँ पहुँचकर श्रीराम ने सीता को दक्षिण दिशा की वह भूमि दिखलायी जिसे पूर्वकाल में राजा मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था। तदनन्तर श्रीराम ने सारथी सुमन्त्र से कहा- सूत! मैं वन से लौटकर कब अपने माता पिता के दर्शन करूँगा और कब इस पुष्पित वन में शिकार खेलने आऊँगा क्योंकि मैं सरयू के वन में शिकार खेलने की अधिक अभिलाषा नहीं रखता। इस लोक के अन्दर वन में जाकर शिकार खेलना राजर्षियों की देन थी। यह क्रीड़ा समय समय पर मनु पुत्रों द्वारा भी खेला गया है। श्रीराम इस प्रकार तरह-तरह के विषयों पर बातें करते हुए आगे बढ़ते गये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

पचासवाँ सर्ग

श्रीराम का शृंगवेरपुर में गंगातट पर पहुँचना और गुह द्वारा सत्कार

तदनन्तर कौसल की सीमा को पार करने के बाद श्रीराम ने अयोध्या की ओर अपना मुँह करके कहा- अयोध्ये ! मैं तुमसे और तुम्हारे भीतर जो जो देवता निवास करते हैं उनसे वन में जाने की आज्ञा माँगता हूँ। वनवास से लौटकर फिर तुम्हारा दर्शन कर माता पिता से मिलूँगा। इतना कहकर उन्होंने रोते हुए जनपद के लोगों से कहा- मेरे लिये आप लोगों ने बहुत देर तक कष्ट उठाया है। अब अधिक देर आपका दुःख में पड़े रहना ठीक नहीं। आप सब तुरन्त अपना काम पूरा करने के लिये लौट जाइये। यह सुनकर सभी मनुष्य श्रीराम की परिक्रमा कर जहाँ के, तहाँ खड़े रह गये। इतने में श्रीराम उनकी दृष्टि से ओझल हो गये। इसके बाद श्रीराम रथ पर सवार हुए कौसल जनपद को लाँघ गये। उस जनपद में कहीं से कोई भय नहीं था। वहां का भू भाग रमणीक था और बहुत से उद्यान उसकी शोभा बढ़ाते थे। वह सारा जनपद ही हृष्टपुष्ट मनुष्यों से भरा था और वहाँ सदैव मंत्रों की ध्वनि गूँजती रहती थी। कौसल देश के आगे बढ़ने पर श्रीरामचन्द्र मध्यमार्ग से ऐसे राज्य में होकर निकले जो सभी सुख सुविधा से युक्त था। उस राज्य में श्री रघुनाथजी ने गंगा का दर्शन किया। उसके तट के थोड़ी-थोड़ी दूर पर बहुत से सुन्दर आश्रम बने थे जो उस नदी की शोभा बढ़ाते थे। उसके जल का सेवन देवता दानव गंधर्व, किन्नर सभी किया करते थे। गंगा के दोनों तटों पर पर्वतीय क्रीड़ा स्थल हैं। पत्थरों से टकराने के कारण जो शब्द होता है वही उनका हास है। कहीं उनके जल से मृदंग के समान स्वर निकलता कहीं वे भयंकर नाद करती हुई दिखलायी पड़ती हैं। वहाँ हंसों और सारसों के कलरव उस देवनद की शोभा बढ़ाते हैं। उनका जल इतना स्वच्छ है कि इससे वे मल समूह को नष्ट कर देती हैं। उनके किनारे पर बसे जंगल मंदमत्त हाथियों से भरा रहता है। वे भगवान् विष्णु के चरणों से प्रकटी हैं। इसलिए उनमें पाप लेश मात्र को नहीं है। इसके विपरीत वे सभी के पापों का विनाश करने वाली हैं। रामचन्द्र इसी के किनारे बसने वाले नगर शृंगवेरपुर गये। वहाँ पहुँचकर वे अपने साथी सुमन्त्र से बोले- सूत! आज हम लोग यहीं रहेंगे और अपनी रात नये नये

पल्लवों से सुशोभित इस इंगुदी वृक्ष के नीचे बिताएंगे क्योंकि यहीं से मुझे पवित्र गंगाजी के दर्शन होते रहेंगे। यह सुनकर लक्ष्मण और सुमन्त्र भी बहुत अच्छा कहकर उस वृक्ष के समीप जा पहुँचे। फिर सुमन्त्र ने घोड़ों को चरने के लिए खोल दिया और श्रीराम के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गए। इसी शृंगवेरपुर में गुह नामक निषाद राज्य करता था। जब उसने श्रीराम के आने की खबर सुनी तो वह भी अपने बन्धु बान्धवों से घिरा हुआ वहाँ आ पहुँचा। निषाद राज को वहाँ आया देख श्रीराम ने उससे मिलने के लिये तुरन्त आगे बढ़े। यह देख वह भी श्रीराम को अपने गले से लगाते हुए बोला- महाबले! बताइये मैं आपकी क्या सेवा करूँ। यह सारी भूमि जो मेरे अधिकार में है सब आपकी है। हम आपके सेवक मात्र हैं। आज से आप ही हमारे इस राज्य पर शासन करें और मेरे द्वारा लाये हुए इन भोज्य सामग्रियों को भी ग्रहण करें। गुह के ऐसा निवेदन करने पर श्रीराम बोले- मित्र! तुम्हारे इस स्नेह से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। बोले, तुम्हारे राज्य में सब ओर कुशलता तो है इसके साथ ही जो कुछ सामग्रियाँ तुम अपने साथ लाये हो उसे वापस ले जाओ क्योंकि तापसवेष में मुझे कन्दमूल का ही आहार करना है। इन सामग्रियों में जो घोड़ों के खाने की वस्तु है उसी की मुझे इस समय विशेष आवश्यकता है। ये घोड़े महाराज दशरथ को बहुत प्रिय हैं। इसलिये इनके सुन्दर खाने पीने की व्यवस्था हो जाने से ही मेरा उचित पूजन हो जायेगा। तब गुह की आज्ञा से घोड़ों के खाने पीने के लिए आवश्यक वस्तुएं लाकर दे दी गयीं। उस समय श्रीराम ने सन्ध्योपासना करने के पश्चात् केवल जल मात्र ही पिया। फिर शय्या बिछाकर पत्नी सहित सो गये और लक्ष्मण वहाँ से हटकर एक वृक्ष के नीचे जा बैठे। गुह भी तीर धनुष लेकर श्रीराम की रक्षा हेतु लक्ष्मण और सुमन्त्र के साथ ही रात भर जागता रहा। उधर सुख भोगने वाले श्रीराम को बहुत देर तक नींद हो नहीं आयी।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

निषाद राज के सम्मुख लक्ष्मण का विलाप

अपने भाई के प्रति लक्ष्मण का सहज अनुराग देखकर गुह ने उनसे कहा- राजकुमार! आपके लिये जो शय्या बनायी गयी है उस पर आप आनन्दपूर्वक शयन करिये क्योंकि आपने कभी ऐसी मुसीबत नहीं उठायी है। इसलिये आप निश्चित होकर सोइये और मैं जाग रहा हूँ क्योंकि मुझे इसका अभ्यास है। यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा- निषाद राज! तुम धर्म पर दृष्टि रखते हुए हमारी रक्षा कर रहे हो। इसलिये हम लोगों को कोई भय नहीं। लेकिन जब महाराज दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र भूमि पर शयन कर रहे हैं उस समय उत्तम शैय्या पर सोना मेरे लिये कहाँ तक उचित है। सम्पूर्ण देवता और दानव युद्ध में जिनके सामने ठहर नहीं सकते वे आज तृणों की शैय्या पर सुखपूर्वक सो रहे हैं। अब ऐसे श्रीराम के वन आने से राजा दशरथ अधिक काल तक जीवन धारण नहीं कर सकते। ऐसा लगता है कि अब यह पृथ्वी शीघ्र विधवा होगी। महारानी कौसल्या, राजा दशरथ तथा मेरी माता सुमित्रा आज की रात तक जीवित रहेंगीया नहीं इसे मैं नहीं कह सकता। सम्भवतः शत्रुघ्न की राह देखते हुए मेरी माँ जीवित रह जाये। किन्तु राम की विरह में यदि कौसल्या नष्ट हो गयी तो यह बड़े कष्ट की बात होगी। यही नहीं यदि राजा दशरथ का निधन हो गया तो पूरी अयोध्यापुरी ही नष्ट हो जायेगी। इसके साथ ही कौसल्या भी नष्ट होगी और सुमित्रा भी नष्ट हुए बिना नहीं रह सकतीं। उनकी मृत्यु के समय जो लोग उपस्थित रहेंगे और उनके सभी प्रेत कार्यों में संस्कार करेंगे, वे निश्चय ही भाग्यशाली होंगे और यदि पिताजी जीवित रहे तो अयोध्यापुरी के लोग सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकेंगे और हम लोग भी अपनी अवधि समाप्त कर अपने पिताजी के दर्शन करेंगे। इस प्रकार दुःख से आर्त होकर विलाप करते हुए महामना लक्ष्मण की सारी रात जागते हुए ही बीती। लक्ष्मण की इस सौहार्दपूर्वक वाणी को सुनकर निषाद राज गुह दुःख से पीड़ित होकर ज्वर से पीड़ित हुए हाथी की भाँति आँसू बहाने लगा!

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५१)

बावनवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा से गुह का नाव मँगाना नाव से उतरकर श्रीराम का वत्सदेश पहुँचना

फिर रात बीत जाने पर जब प्रभात हुआ श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- तात! अब सूर्योदय का समय आ पहुँचा है। कोयल कुहु कुहु बोल रही है। मोर का स्वर भी सुनायी पड़ने लगा है अब हमें शीघ्रता से गंगा के उस पार पहुँच जाना चाहिए। उस समय श्रीराम के मन की बात समझकर लक्ष्मण ने सुमन्त्र और गुह से पार उतरने की व्यवस्था करने के लिये कहा। तब निषाद राज ने तुरन्त अपने सचिवों से एक ऐसी नाव लाने के लिये कहा जो सुगमतापूर्वक खेने योग्य हो। अब उसके मंत्री ने एक सुन्दर नाव घाट पर पहुँचाकर इसकी सूचना निषाद राज को दी। तदनन्तर गुह ने श्रीराम के सम्मुख हाथ जोड़कर कहा- भगवन्! पार उतरने के लिये नाव उपस्थित है बताइये मैं आपकी और क्या सेवा करूँ। यह सुनकर श्रीराम बोले- सखे! तुमने मेरी सारी मनोरथ पूरी कर दी है अब सामान नाव पर चढ़ाओ। इतना कहकर श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित गंगाजी के तट पर जा पहुँचे। उस समय सुमन्त्र ने श्रीराम से हाथ जोड़कर पूछा- प्रभो मेरे लिये क्या आज्ञा है? श्रीराम ने कहा- अब आप लौट जाइये। हम इसके बाद पैदल ही वन की यात्रा करेंगे। यह सुनकर सुमन्त्र ने कहा- हे राम तुम्हारा स्त्री और भाई के साथ वन में विचरना किसी को अच्छा नहीं लगेगा फिर वह मेरे लिए कैसे प्रिय हो सकता है। अब आपके इस संकट को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि ब्रह्मचर्य, दयालुता अध्ययन द्वारा कोई फल नहीं मिलता है। श्रीराम! किन्तु आपने पिता के सत्य की रक्षा के लिये जो जानकी और लक्ष्मण सहित वन में निवास किया है उससे तीनों लोकों में अवश्य यश की प्राप्ति होगी। आपके इस निश्चय से हम लोग हर तरह से मारे गये क्योंकि अब हमें आपके दर्शन से वंचित होकर कैकेयी के अधीन होकर दुःख भोगना पड़ेगा। इस तरह सुमन्त्र व्याकुल होकर देर तक रोते रहे। फिर आँसुओं के रुकने पर सारथी सुमन्त्र ने गंगाजी में आचमन किया और तब इस तरह पवित्र होने पर श्रीराम ने उनसे कहा- मेरी समझ से इक्ष्वाकु वंशियों का हित करने वाला सुहृद आप के समान दूसरा कोई नहीं। इसलिए आप यहां से लौट जायें और ऐसा प्रयत्न करें जिसमें महाराज

दशरथ का दुःख कम हो जाये। महाराज दशरथ एक तो बूढ़े हैं फिर उनका मनोरथ भी चूर चूर हो गया है इसी कारण मुझे ऐसा कहना पड़ा है। महाराज कैकेयी की इच्छा से जो भी कार्य करने को कहें उसका पालन अवश्य करना। हे सुमन्त्र! महाराज को कभी खिन्न होने का अवसर न दें और मेरी ओर से महाराज से कहिएगा कि वन जाने का शोक न तो मुझे है और न लक्ष्मण को। इसलिए चौदह वर्ष पूरा करने के बाद जब हम लौटेंगे तो वे हम लोगों को फिर देख सकेंगे। हमारी माताओं से हम लोगों का कुशल समाचार बताते हुए हमारी ओर से चरण वन्दना कह दीजियेगा। फिर महाराज से कहिएगा कि वे भरत को बुलवाकर उनका शीघ्र अभिषेक कर दें। भरत से कहिये कि वे महाराज के प्रति जैसा वर्ताव करते हैं समान रूप से सभी माताओं के प्रति वैसा ही वर्ताव करें। उसमें कोई अन्तर न आने दें। युवराज पद मिल जाने पर राज काज की देखभाल उचित ढंग से करने पर उन्हें लोक परलोक दोनों का सुख मिलेगा। श्रीराम के मुख से यह बातें सुनकर सुमन्त्र ने कहा- तात! मैं यदि आपसे बात करते समय सत्कार पूर्वक वर्ताव न कर सकूँ तो मुझे अपना भक्त समझकर मेरी धृष्टता को क्षमा कर दीजियेगा। जो अयोध्या इस समय आपके दुःख से दुःखी है उसमें मैं बिना आपको लिये कैसे जा सकता हूँ। आते समय जिन लोगों ने आपको मेरे रथ पर विराजमान होते देखा था क्या अब उस रथ को राम रहित देखकर उनका हृदय चूर चूर न हो जायेगा? आप दूर होते हुए भी जिस प्रजा के हृदय में सदैव विराजमान रहते हैं ऐसी प्रजा ने निश्चय ही आपका चिन्तन करते हुए खाना पीना छोड़ दिया होगा। श्रीराम! आपके वन आते समय प्रजा ने जैसा क्षोभ दिखलाया था उससे सौ गुना क्षोभ वे मुझे खाली रथ लिये लौटा देखकर दिखलायेंगे। क्या मैं महारानी से कह पाऊँगा कि मैं आपके पुत्र को वन में पहुँचा आया हूँ। ये उत्तम घोड़े भी राम से विहीन रथ को कैसे खींच सकेंगे। श्रीराम! ऐसी दशा में मैं आपके बिना अयोध्या नहीं लौटूँगा। अब आप अपने साथ मुझे भी वन जाने की अनुमति दें। अन्यथा आपके द्वारा त्यागे जाने पर मैं रथ सहित अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। श्रीराम वन में आपकी तपस्या में विघ्न डालनेवाले जो भी जीवजन्तु होंगे उन्हें मैं दूर भगा दूँगा। हे रामचन्द्र! मैंने आपको रथ में बिठाकर यहाँ तक लाने का जो सुख प्राप्त किया है वही सुख मैं आपके साथ

वन में रहकर पाना चाहता हूँ। इसलिए मेरी इच्छा को देखते हुए आप मुझे सहर्ष वन चलने की अनुमति दे दें। मेरे घोड़े भी वन में आपकी सेवा करते हुए परमगति को प्राप्त करेंगे। प्रभो! वन में रहकर मैं आपकी पूरे तन मन से सेवा किया करूँगा और आपके बिना अयोध्या जाना कदापि पसन्द न करूँगा। वन में आपके साथ चौदह वर्ष चौदह क्षणों के समान बीत जायेगा। अन्यथा आपके बिना ये चौदह सौ वर्षों से अधिक भारी जान पड़ेगा। आप मेरे स्वामी के पुत्र हैं। अतः मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप मेरा किसी तरह परित्याग न करें। सुमन्त्र की बात सुनकर श्रीराम बोले- सुमन्त्र जी! आपकी भक्ति श्रेष्ठ है। लेकिन आपको जिन कारणों से मैं अयोध्यापुरी भेज रहा हूँ उसे सुनिये। जब आप नगर को लौट जायेंगे उस समय मेरी माता कैकेयी को विश्वास हो जायेगा कि राम वन को चले गये जिससे वे राजा दशरथ पर मिथ्यावादी होने का संदेह न करें और वे भरत द्वारा सुरक्षित समृद्धिशाली राज्य को हस्तगत कर लें। अतएव हे सुमन्त्र! महाराज को प्रसन्न करने के लिये आप अयोध्या लौटकर अवश्य जाइये और जिसके लिये जो संदेश कहा गया है उसको जाकर वह संदेश भी अवश्य सुना दीजिये। सुमन्त्र से इतना कहने के बाद उन्होंने गुह से कहा- निषादराज! अब मेरे लिये ऐसे वन में रहना उचित नहीं प्रतीत होता जहाँ जनपद के लोगों का आना जाना बराबर लगा हो। मुझे किसी निर्जन वन में वास करना होगा अब मैं यहाँ से सिर पर तपस्वियों का आभूषण रूप जटा धारण करके जाऊँगा। मेरे केशों को जटा का रूप देने के लिये तुम बड़ का दूध ला दो। गुह ने यह सुनकर तुरन्त बड़ का दूध लाकर श्रीराम को दिया। श्रीराम उसके द्वारा लक्ष्मण तथा अपनी जटाएं बनायी और वल्कल वस्त्र धारण कर ऋषियों की तरह शोभा पाने लगे।। तत्पश्चात् उन्होंने गुह से कहा- निषादराज! तुम मेरा खजाना किला और राज्य की रक्षा के विषय में सदा सावधान रहना। इसके बाद वे तट पर लगी हुई नाव के पास पहुँचे और लक्ष्मण से बोले- तुम सीता को पकड़कर उस पर बिठा दो फिर तुम खुद भी उस पर बैठ जाओ। लक्ष्मण ने वैसा ही किया। तदनन्तर श्रीराम भी उस पर आरूढ़ होकर 'दैवी नाव' इत्यादि वैदिक मंत्रों का जाप करने लगे। फिर लक्ष्मण सहित उन्होंने गंगाजी को प्रणाम किया और सुमन्त्र तथा गुह को वापस जाने का आदेश देकर मल्लाहों को नाव चलाने का

आदेश दिया। उस समय वेग से सुन्दर डाँड़ चलाने के कारण नाव बड़ी तेजी से बढ़ने लगी। तत्पश्चात् नाव के बीच धारा में पहुँचने पर सीताजी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की- देवि गंगे! ये महाराज दशरथ के पुत्र पिता की आज्ञा पालन करने हेतु वन में जा रहे हैं। ऐसी कृपा कीजिए कि आपसे सुरक्षित हो वे पिता की आज्ञा का पालन कर सकें। चौदह वर्ष पूरा होने पर ये पुनः लौटेंगे उस समय सम्पूर्ण मनोरथों से सम्पन्न हुई मैं आपकी पूजा करूँगी। फिर श्रीराम के राज्य प्राप्त कर लेने पर मैं पुनः आपको मस्तक झुका कर आपकी स्तुति करूँगी। इतना ही नहीं उस समय आपको प्रसन्न करने की इच्छा से मैं ब्राह्मणों को एक लाख गौयें और बहुत से उत्तम वस्त्र दूँगी। देवि! इसलिए अब आप मुझ पर प्रसन्न हों। आपके किनारे जो जो मन्दिर और तीर्थ हैं मैं उन सबका पूजन करूँगी। सती साध्वी सीता गंगाजी से इस प्रकार प्रार्थना करती हुई दक्षिण तट पर जा पहुँची।दूसरे किनारेपर पहुँचकर श्रीराम ने उस नाव को छोड़ दी और सीता तथा लक्ष्मण के साथ आगे को प्रस्थान किया। तत्पश्चात् उन्होंने लक्ष्मण से कहा- अब तुम सीता की रक्षा के लिये तैयार हो जाओ। इसके लिये तुम आगे आगे चलो, सीता तुम्हारे पीछे चले और मैं तुम सबकी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे चलूँगा। अभी तक कोई दुष्कर कार्य नहीं हुआ है। इस समय जानकी को वास्तविक कष्टों का सामना करना होगा। अतः ये ऐसे वन में जायेंगी जहाँ किसी मनुष्य का पद चिह्न भी न दिखायी देगा और वहाँ ऐसे ऐसे गड्ढे मिलेंगे जिसमें बराबर गिरने का भय बना रहेगा। श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण आगे बढ़े तथा उनके पीछे सीता चलने लगीं। सीता के पीछे श्रीराम चलने लगे। गंगा के पार पहुँचने पर सुमन्त्र उन्हें तब तक देखते रहे जब तक वे आंखों से ओझल नहीं हो गये। तदनन्तर वहाँ से चलते हुए श्रीराम वत्सदेश (प्रयाग) में जा पहुँचे। यहाँ के लोग बहुत सम्पन्न तथा हृष्ट पुष्ट थे। वहाँ पहुँचकर उन दोनों भाइयों ने मृगया विनोद के लिये चार मृगों पर वाणों का प्रहार भी किया तत्पश्चात् भूख लगने पर कन्दमूल खाकर ठहरने के लिये एक वृक्ष के नीचे चले गये।

इस प्रक़ार श्री वाल्मीक़ि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कान्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५२)

Mookerji Sharma (HPS) Jammu Collection

तिरपनवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण को अयोध्या वापस लौटाने का प्रयत्न करना

वृक्ष के नीचे पहुँचने पर श्रीराम ने सन्ध्योपासना आदि समाप्त कर लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! जनपद के बाहर यह हमारी पहली रात है। इस समय सुमन्त्र भी हमारे साथ नहीं हैं। ऐसे समय में हमें आलस्य छोड़कर रात भर जागना होगा क्योंकि सीता की कुशलता हम दोनों पर ही निर्भर है। यह रात तो हम लोग किसी तरह बितायेंगे ही। किन्तु आज महाराज दशरथ निश्चित रूप से ही बड़े दुःख से सो रहे होंगे। कहीं ऐसा न हो कैकेयी महाराज के प्राण ही ले ले क्योंकि महाराज बूढ़े हैं, और फिर कैकेयी के वश में पड़ गये हैं ऐसी दशा में वे अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे। मुझे तो अब ऐसा लगता है अर्थ और धर्म की अपेक्षा काम ही अधिक महत्वपूर्ण है। हे लक्ष्मण! ऐसा कौन पिता होगा जो एक आज्ञाकारी पुत्र को एक स्त्री के कहने से त्याग दे। इस समय भरत ही अधिक सुखी है क्योंकि पिताजी के बूढ़े होने के कारण वे अकेले ही राज्य के समस्त सुखों का उपभोग करेंगे। जो मनुष्य अर्थ और धर्म को छोड़कर काम के वश में हो जाता है उस पर उसी तरह की विपत्ति आती है जैसे महाराज दशरथ पर आयी है। इस समय हो सकता है राज्य मद में चूर हुयी कैकेयी हमारी माता कौशल्या एवं सुमित्रा को कष्ट पहुँचाये। इसलिये हे लक्ष्मण यह अच्छा होगा कि तुम कल प्रातः काल ही यहाँ से अयोध्या लौट जाओ। क्योंकि कैकेयी के कर्म बहुत खोटे हैं वह तुम्हारी और मेरी माताओं को जहर भी दे सकती है। हे तात! ऐसा लगता है पूर्व जन्म में मेरी माता ने कुछ स्त्रियों का उनके पुत्रों से वियोग करवाया होगा इसी का फलउन्हें आज पुत्र विछोह के रूप में प्राप्त हुआ है। मेरी माँ ने कष्ट उठाकर इतने दिनों तक मेरा पालन पोषण किया किन्तु जब उन्हें मुझसे सुख उठाने का अवसर मिला तब मैं उनसे विलग हो गया। हे लक्ष्मण! जो माँ मेरे लिये सदैव चिंताग्रस्त रहती थी वह आज मंदभागिनी हो रही है और पुत्र का कोई सुख न उठा सकने के कारण निपूती सी हो रही है। यदि देखा जाये तो उसने पुत्र उत्पन्न करके लाभ ही क्या उठाया। इस समय तो मेरी माँ पुत्र के वियोग में दुःख के सागर में गोते लगा रही है। हे तात! यदि में कुपित हो जाऊँ तो अयोध्यापुरी ही क्या समस्त भू मण्डल को अपने अधिकार में कर लूँ लेकिन यह समय

पराक्रम दिखलाने का नहीं है क्योंकि मैं पिता की प्रतिज्ञा को नष्ट नहीं करना चाहता। मैं अधर्म और परलोक से डरता हूँ इसलिये अयोध्या के राज्य पर अपना अभिषेक नहीं कराया। इस तरह श्रीराम बहुत देर तक विलाप करते रहे और उनका मुख आँसुओं से भींग उठा। उस समय लक्ष्मण ने समझाया हे भाई! आपके अयोध्या छोड़ देने से वह निश्चय चन्द्र हीन रात्रि की तरह निस्तेज हो गयी होगी। अब आपका यह शोक मुझे और सीता दोनों को खेद में डाल रही है। रघुवीर! आपके बिना मैं और सीता दोनों जल के बिना मछली की भाँति जीवित नहीं रह सकते। आपके बिना मैं अपने पिता, माता, भाई और स्वर्ग किसी को नहीं देखना चाहता। तत्पश्चात् श्रीराम और सीता वट वृक्ष के नीचे लक्ष्मण द्वारा बनाई गयी शैय्या पर आराम करने के लिये चले गये। और अपने साथ ही लक्ष्मण को भी वन में रहने की अनुमति दे दी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण सीता सहित भरद्वाज आश्रम में जाना, चित्रकूट पर्वत पर ठहरने का आदेश

उस वृक्ष के नीचे रात बिताकर सूर्योदय होते ही वे लोग आगे बढ़े। वे मार्ग में अनेक सुन्दर स्थानों को देखते हुए आगे बढ़ रहे थे। यात्रा करते करते फिर दिन समाप्त होते ही श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! वह देखो प्रयाग के पास भगवान् अग्निदेव की ध्वजा रूप उत्तम धूम उठ रहा है। मालूम होता है मुनिवर भरद्वाज यही हैं और हम लोग गंगा, यमुना के संगम पर आ पहुँचे हैं क्योंकि दोनों नदियों के टकराने से जो शब्द उत्पन्न होता है, वह सुनाई दे रहा है। काष्ठ आदि से जीविका चलानेवाले लोगों ने जो लकड़ियाँ काटी थी वह भी यहाँ दिखलाई पड़ रही है। इस तरह बातचीत करते हुए वे भरद्वाज आश्रम पर जा पहुँचे। फिर मुनि के समीप पहुँचकर वे उनके दर्शन की अभिलाषा रखते हुए कुछ दूर पर ही खड़े हो गये। फिर शिष्यों से अपने आगमन की सूचना दिलाकर उनकी आज्ञा से पर्णशाला में प्रवेश करके भरद्वाज का दर्शन किया। उस समय महात्मा भरद्वाज शिष्यों से घिरे हुए

आसन पर विराजमान थे। महर्षि को देखते ही उन लोगों ने उनके चरणों में प्रणाम किया फिर श्रीराम ने अपना परिचय देते हुए कहा- भगवन्! हम दोनों राजा दशरथ के पुत्र हैं। हमारा नाम राम और लक्ष्मण है। तथा ये मेरी पत्नी राजा जनक की पुत्री सीता है। प्रभो! हम लोग पिता की आज्ञा से चौदह वर्षों तक के लिये वन में निवास करने आये हैं। मुनि भरद्वाज ने श्रीराम की मधुरवाणी सुनकर उन लोगों को कन्द मूल फल इत्यादि खाने को दिए साथ ही उनके ठहरने के लिये स्थान की व्यवस्था भी कर दी। महर्षि के चारों ओर जो पशु पक्षी और ऋषि मुनि बैठे थे उन्होंने भी अतिथि रूप में पधारे श्रीराम का स्वागत किया। तत्पश्चात् श्रीराम के आसन ग्रहण कर लेने पर मुनि भरद्वाज जी बोले- मैं दीर्घकाल से तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। मैंने सुना है कि तुम्हें अकारण वनवास दिया गया है। अतः तुम संगम के समीप इस स्थान पर ही निवास करो। मुनि के ऐसा कहने पर श्रीराम बोले- भगवन्! यह स्थान अयोध्या के समीप है इसलिये यहाँ मुझसे मिलना सुगम समझकर इस आश्रम पर लोग प्रायः आते जाते रहेंगे। इस कारण हम लोगों का यहाँ निवास करना ठीक नहीं जान पड़ता। आप ऐसा स्थान बताइये जहाँ सीता प्रसन्नतापूर्वक रह सके। श्रीराम के इस शुभ वचन सुनकर भरद्वाज मुनि बोले- हे तात्! यहाँ से तीस कोस की दूरी पर चित्रकूट नाम के एक परम पवित्र पर्वत है। वहाँ बहुत लंगूर, बन्दर और रीछ निवास करते हैं। तुम लोगों को भी उसी पर निवास करना है। उसके शिखरों के दर्शन मात्र से कल्याण कारी पुण्य कर्मों का फल मिलता है। वहीं बहुत से ऋषि मुनि तपस्या करते हुए स्वर्ग लोक को चले गये। उसी पर्वत को मैं तुम्हारे रहने के योग्य समझता हूँ अथवा तुम वनवास के उद्देश्य से मेरे साथ भी रह सकते हो। ऐसा कहकर भरद्वाज मुनि ने उनका खूब आदर सत्कार किया। फिर महर्षि से बात चीत करते हुए पुण्यमयी रात आ गयी। अब वह रात श्रीराम ने सीता और लक्ष्मण सहित उसी आश्रम में बितायी। तत्पश्चात् प्रातःकाल होने पर श्रीराम भरद्वाज मुनि के पास जाकर बोले- भगवन्! आपके आश्रम में हम लोगों ने बड़े ही सुख पूर्वक रात बितायी है। अब आप हमें अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचने की अनुमति दें। उनकी यह बात सुनकर भरद्वाज मुनि ने कहा- श्रीराम! तुम मधुर फल फूल से भरे उस चित्रकूट पर्वत पर

जाओ उसी को मैं तुम लोगों के रहने हेतु उपयुक्त स्थान मानता हूँ। वहाँ झुण्ड के झुण्ड हाथी और हिरन वन में विचरा करते हैं। वह रमणीक स्थान तुम्हारे सीता दोनों के मन को आनन्द देनेवाला होगा। हर्ष से भरे हुए टिट्टिम और कोयल के कलरव यात्रियों का भरपूर मनोरंजन करते हैं। तुम उसी पर जाकर अपना डेरा डालकर सुखपूर्वक रहो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५४)

पचपनवाँ सर्ग

भरद्वाज का श्रीराम को चित्रकूट का मार्ग बताना, मार्ग में यमुनाजी को पार करना

भरद्वाज आश्रम में रात बिताने के बाद प्रातः काल होते ही श्रीराम चित्रकूट पर्वत पर जाने के लिये निकल पड़े। उन तीनों को प्रस्थान करते हुए देखकर महर्षि ने उन्हें मंगल सूचक आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा- श्रीराम! तुम दोनों भाई गंगा यमुना के संगम पर पहुँचकर जिसमें पश्चिम मुखी होकर गंगा मिली है उन महानदी यमुना के निकट जाना। वहाँ पहुँचकर एक बेड़ा बनाकर उस सूर्यसुता यमुना के उस पार उतर जाना। वहाँ आगे बढ़ने पर एक बड़ा सा बरगद का वृक्ष मिलेगा। वह बहुत से वृक्षों से घिरा है। श्यामवट नामक उस वृक्ष के नीचे अनेक सिद्ध पुरुष रहते हैं। सीता वहाँ पहुँचकर उस वृक्ष से आशीर्वाद माँगे। वहाँ से एक कोस आगे जाने पर नीलवन का दर्शन होगा। वहाँ चीड़ और बैर के भी अनेक पेड़ लगे हैं। यह वही स्थान है जहाँ से चित्रकूट को रास्ता जाता है। वह मार्ग बहुत ही कोमल और रमणीय है। इस प्रकार महर्षि भरद्वाज से मार्ग की जानकारी लेकर श्रीराम ने उनके चरणों में प्रणाम किया और मार्ग में लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण लगता है हम लोगों ने पहले कभी अवश्य कोई पुण्य कर्म किया होगा जिससे महर्षि ने हम पर इतनी कृपा की है। इसी तरह बातचीत करते हुए वे दोनों यमुना नदी के तट पर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन लोगों ने देखा कि यमुना बहुत तीव्रगति से बह रही हैं। यह देखकर वे इस चिंता में पड़े कि नदी को पार कैसे किया जाये? तब उन दोनों भाइयों ने सूखे काठ बटोरकर एक बेड़ा तैयार किया।

Mookerjisharma (I.E.S) Jammu Collection

तदनन्तर उन लोगों ने बेंत और जामुन की टहनियाँ काटकर सीता के बैठने के लिये सुखद आसन तैयार किया। फिर उन दोनों ने बड़ी सावधानी से सीताजी को उस पर चढ़ा दिया और सब सामान को भी उस पर रखकर बेड़े को पकड़कर खेने लगे। यमुना की बीच धार में पहुँचने पर सीता ने यमुना को प्रणाम करते हुए कहा- देवि! इस बेड़े द्वारा हम लोग पार जा रहे हैं आप ऐसी कृपा करें जिससे हम सकुशल पार हों। फिर वापस आने पर मैं आपके किनारे पहुँचकर एक सहस्र गौओं का दान करूँगी। तत्पश्चात् पार उतरने पर उन लोगों ने उस बेड़े को वहीं तट पर छोड़ दिया और तटवर्ती वन से होकर वे श्यामवट के पास जा पहुँचे अब वट के पास पहुँचकर सीताजी सिर झुकाकर बोली- महावट! आपको प्रणाम है। आप ऐसी कृपा करें जिससे हमारे पतिदेव का वन विषयक व्रत पूरा हो सके। सीता को वट की पूजा करते हुए देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! तुम सीता को लेकर आगे आगे चलो और मैं तुम लोगों की रक्षा करता हुआ पीछे चलूँगा। इस समय सीता जो-जो फल फूल मांगे उन्हें प्रदान करो। तत्पश्चात् सीता उस वन की शोभा निहारती हुई आगे बढ़ने लगीं। अब वे दोनों मार्ग में मिले हिंसक पशुओं का वध करते हुए वहीं यमुना तटवर्ती वन में विचरने लगे। फिर शीघ्र ही यमुना नदी के समतल तट पर आकर रात में वहीं निवास किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

वन की शोभा देखते हुए श्रीराम आदि का चित्रकूट पहुँचना

अब रात बीतने पर श्रीराम ने लक्ष्मण को धीरे से जगाया और कहा- सुमित्रा कुमार! उठकर इन पक्षियों का कलरव सुनो। यह समय अब हमारे प्रस्थान का है। भाई के द्वारा जगाने से लक्ष्मण उठ बैठे फिर यमुना में स्नान कर वे चित्रकूट पर्वत की राह पर आगे बढ़े। उस समय श्रीराम ने सीता से कहा- हे सीते! इस वसन्त के समय सब ओर से खिले हुए पलाश को तो देखो जो अरुण प्रभा के समान जलते हुए दिखलाई पड़ रहे हैं। वे भिलावे और बेल के पेड़ों को भी देखो हम लोग निश्चय रूप से इन फलों से अपना निर्वाह कर

सकेंगे। फिर लक्ष्मण से बोले- हे लक्ष्मण! यह देखो वहाँ एक वृक्ष पर मधुमक्खी के छत्ते लटक रहे हैं। इसमें लगभग सोलह सेर मधु भरा हुआ है। वन का यह भाग सचमुच बड़ा रमणीय है जहाँ चातक पी कहाँ, पी कहाँ की रट लगाये है और वह सामने चित्रकूट पर्वत का शिखर दिखलायी पड़ रहा है। जिसमें झुण्ड के झुण्ड हाथी विचर रहे हैं। यहीं कहीं समतल भूमि पर हम लोग आनन्द से विचरण करेंगे। इस तरह पैदल यात्रा करते हुए वे तीनों चित्रकूट पर जा पहुँचे। यहाँ फल फूलों की बहुतायत थी और जल भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध था। अब वहाँ पहुँचकर श्रीराम बोले- हे लक्ष्मण! वृक्षों और लताओं से भरा हुआ यह पर्वत सचमुच बड़ा रमणीय मालूम होता है। लगता है हम लोगों का निर्वाह यहाँ सुखपूर्वक हो सकेगा। यहाँ बहुत से महात्मा और मुनि निवास करते हैं अतः हम लोग यहीं निवास करेंगे, इतना कहकर श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित महर्षि वाल्मीकि आश्रम में जा पहुँचे। महर्षि ने उन्हें बैठाते हुए उनका खूब आदर सत्कार किया। तत्पश्चात् श्रीराम ने उन्हें अपना परिचय देते हुए लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! तुम वन से अच्छी-अच्छी लकड़ियँ ले आओ और रहने के लिये एक कुटी तैयार करो। लक्ष्मण ने तुरन्त वृक्षों की डालियाँ काट काटकर एक पर्णकुटी तैयार कर दी। वह देखने में बड़ी सुन्दर थी। यह देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से फिर कहा- हे लक्ष्मण! अब तुम गजकन्द नामक कंद का गूदा ले आओ जिससे इस कुटी के अधिष्ठाता देवताओं की पूजा की जा सके।भाई की यह बात समझकर लक्ष्मण ने वैसा ही किया। लक्ष्मण के इतना करने पर श्रीराम ने फिर कहा- लक्ष्मण! अब तुम गजकन्द को पकाओ जिससे हम देवताओं का भी पूजन कर सकें। लक्ष्मण ने तुरन्त उस पवित्र काले छिलके वाले गजकन्द को लेकर जलती हुई आग में डाल दिया। फिर उसके पक जाने पर लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा- श्री रघुनाथ जी! यह गजकन्द मेरे द्वारा अच्छी तरह पका दिया है। अब इससे देवताओं का यजन कीजिये। यह सुनकर श्रीराम ने स्नान आदि करके उन सभी मंत्रों का जप और पाठ किया जो आवश्यक था। सारे देवताओं का पूजन कर श्रीराम के मन में बड़ा आह्लाद हुआ। फिर कुटी में प्रवेश कर उसके सब दोषों को दूर करने के लिये श्रीरामचन्द्र ने रुद्र तथा विष्णु को बलि दी। वह कुटी मनोहर स्थान पर बनी थी। उस पर पत्तों की छाया की गयी थी और

प्रचण्ड वायु से बचने का पूरा प्रबन्ध था। चित्रकूट पर्वत बड़ा रमणीय था। वहाँ माल्यवती (मन्दाकिनी) नदी बह रही थी। उस पर्वत और नदी का सानिध्य पाकर श्रीरामचन्द्र को बड़ा हर्ष हुआ और वे वन के सारे कष्टों को भूल गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५६)

सत्तावनवाँ सर्ग

सुमन्त्र का अयोध्या लौटना, अन्तः पुर में रानियों का आर्तनाद

श्रीराम के गंगा के उस पार पहुँच जाने पर गुह दुःखी मन से बहुत देर तक सुमन्त्र से बात चीत करता रहा। इसके बाद सुमन्त्र को लेकर अपने घर चला गया। फिर प्रयाग में श्रीराम के भरद्वाज आश्रम में जाना और वहाँ से चित्रकूट पर्वत तक पहुँचने का सारा समाचार जिसे शृंगवेरपुर के गुप्तचरों ने देखा था लौटकर गुह को विस्तार पूर्वक बता दिया। इन बातों की जानकारी लेकर सुमन्त्र रथ पर सवार होकर अयोध्या लौटे। वहाँ से चलकर दूसरे दिन सायंकाल वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि सारी नगरी ही आनन्द शून्य हो गयी है। इधर सुमन्त्र को वापस आया देखकर सभी पुरवासी उनके रथ के पीछे दौड़ते हुए श्रीराम के बारे में पूछने लगे। सुमन्त्र ने अब उन लोगों से कहा- सज्जनों! मैं श्रीराम के साथ-साथ गंगा किनारे तक गया फिर उन्हीं की आज्ञा से वापस लौटा। वे तीनों ही वहाँ से गंगापार चले गये। सुमन्त्र की बात सुनकर सबके मुख पर आसुओं की धाराएं बह चलीं और वे सब ही 'हा राम' कहते हुए करुण क्रन्दन करने लगे। तत्पश्चात् वे सब आपस में कहने लगे- हाय हम लोग निश्चय ही मारे गये क्योंकि अब हम श्रीराम को नहीं देख पायेंगे। हमारे इस नगर का पालन वे अपने पिता की भांति ही किया करते थे। इसी समय बाजार के बीच से निकलते हुए सुमन्त्र को महलों की खिड़कियों से आती हुई स्त्रियों की करुण क्रन्दन सुनायी दी। तत्पश्चात् कपड़े से अपना मुँह ढँककर सुमन्त्र रथ लेकर उसी महल की ओर गये जहाँ राजा दशरथ मौजूद थे। राजमहल के पास पहुँचकर वे शीघ्र रथ से उतरकर महल के भीतर जा पहुँचे। तदनन्तर राज महलों में जहाँ तहाँ श्रीराम के शोक में

सन्तप्त हुई दशरथ की रानियाँ सुमन्त्र से पूछने लगीं- हे सुमन्त्र ! तुम तो श्रीराम को लेकर यहाँ से गये थे। किन्तु लौटे हो खाली हाथ। ऐसी दशा में रोती महारानी कौसल्या को क्या उत्तर दोगे ? श्रीरामचन्द्र जैसे पुत्र के वन चले जाने पर कौसल्या उनके लौटने तक किस प्रकार जीवित रहेंगी ? यदि वे जीवित भी रहीं तो उनका सारा जीवन ही कष्टमय रहेगा। रानियों की यह सच्ची बात सुनकर शोक से दग्ध सुमन्त्र ने सहसा राज भवन में प्रवेश किया। तब आठवीं ड्योढ़ी में पहुँचकर उन्होंने देखा कि राजा दशरथ पुत्र के शोक में बैठे हुए अत्यंत दीन एवं आतुर हो रहे हैं। तब सुमन्त्र ने राजा दशरथ से रामचन्द्र की कहीं हुई बातें ज्यों की त्यों सुना दी। उस बात को सुनकर राजा एकदम अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। राजा को पृथ्वी पर गिरते ही सब लोग दोनों बाहें उठाकर जोर-जोर से चीत्कार करने लगे। उस समय कौसल्या और सुमित्रा ने उन्हें उठाकर कहा- सुमन्त्र जी इस समय श्रीराम का संदेश लेकर लौटे हैं। आप इनसे बात क्यों नहीं करते। पुत्र को वनवास देकर आपने जो अन्याय किया है उससे आप लज्जित क्यों हो रहे क्योंकि वह अन्याय तो आपने सत्य के पालन हेतु किया था। अब आपके इस शोक से आपके सहायकों का समुदाय भी आपके साथ नष्ट हो जायेगा। देव! इस समय कैकेयी नहीं है इसलिये आप निर्भय होकर जो चाहें पूछ लें। इतना कहकर कौसल्या का गला भर आया और वे भी शोक से पोड़ित हो पृथ्वी पर गिर पड़ीं। फिर तो अन्तःपुर की सभी रानियाँ शोक मग्न होकर आर्तनाद कर उठीं। उन स्त्रियों के रोने से पुनः सारा नगर शोक मग्न हो उठा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

सुमन्त्र का राम और लक्ष्मण का संदेश सुनाना

तदनन्तर जब राजा को चेत हुआ तो उन्होंने सुमन्त्र को अपने पास बुलाया। उस समय राजा दशरथ ने देखा कि सुमन्त्र का सारा शरीर धूल से भर उठा है और उसके मुख पर आसुओं की धारा बह रही है। उसकी इस अवस्था को देखकर राजा दशरथ एकदम आर्त होकर बोले- सूत! श्रीराम

वृक्षों का सहारा लेकर कहाँ कहाँ निवास करेंगे। वे तो अत्यंत सुख में पले थे। जो अब तक राजोचित शय्या पर सोते थे अब वे निर्जन वन में किस तरह अपनी रात बितायेंगे। जिनके पीछे सेना और हाथी घोड़े चलते थे वे हो हिंसक पशुओं से भरे हुए वन में लक्ष्मण और सीता के साथ कैसे रह सकेंगे? सारथे! तुम सचमुच कृत कृत्यहो गये क्योंकि तुमने श्रीराम, लक्ष्मण को उसी प्रकार वन में जाते हुए देखा है जैसे दोनों अश्विनी कुमार मन्दराचल वन में जाते हैं। सुमन्त्र बताओ वन में पहुँचकर श्रीराम लक्ष्मण सीता ने तुम्हें क्या संदेश दिया। मैं श्रीराम के बारे में सारा वृत्तान्त विस्तार से जानना चाहता हूँ। महाराज के इतना पूछने पर सारथी सुमन्त्र ने गद्‌गद् वाणी द्वारा उनसे कहा- महाराज! श्रीराम ने कहा है कि मेरे पिताजी से मेरा प्रणाम कहिएगा तथा मेरी माताओं से मेरा कुशल क्षेम कह दीजियेगा। विशेष रूप से कौसल्या के चरणों में प्रणाम करके बताना कि वे सदा धर्म में तत्पर रहें और महाराज को देवता मानकर उनके चरणों की सेवा करें। इसके साथ ही सभी माताओं के साथ वे हिल मिल कर रहें और कैकेयी और भरत के साथ आदरपूर्वक बर्ताव करें। भरत से कहियेगा कि युवराज पद प्राप्त हो जाने के बाद वे पिताजी की सेवा और रक्षा में सदैव संलग्न रहें। फिर आँख में आँसू बहाते हुए उन्होंने भरत के लिये एक और संदेश दिया कि भरत मेरी पुत्र वत्सला माता को अपनी माता के समान ही समझें। लेकिन लक्ष्मण क्रोध में आकर कह रहे थे कि महाराज ने किस अपराध के कारण राजकुमार श्रीराम को वनवास भेजने के लिये तैयार हुए। उनका यह काम उचित हो या अनुचित लेकिन उसके कारण हमें तो कष्ट भोगना ही पड़ा। चाहे यह वनवास कैकेयी के लोभ के कारण हुआ हो अथवा राजा के दिये हुए वरदान के कारण लेकिन दोनों ही दशा में यह पाप ही किया गया है। यह कार्य यदि ईश्वर की प्रेरणा से हुआ तो भी इस वनवास का मुझे कोई समुचित कारण नहीं दिखलायी पड़ता। यह कार्य शास्त्रों के विपरीत किया गया है और यही दुःख का कारण बनेगा। इस समय मुझे महाराज में पिता का भाव नहीं दिखलायी पड़ता बल्कि इस समय श्रीराम ही मेरे भाई स्वामी बन्धु बान्धव तथा पिता हैं। श्रीराम का परित्याग करने से अब राजा में राजोचित गुण का अभाव हो गया है। महाराज! किन्तु उस समय तपस्विनी सीता भूली सी जान पड़ती थीं। ऐसा लगता था कि वे पति के दुःख

से दुःखी हैं। इसी से वे कुछ बोल भी नहीं सकीं। लेकिन उनकी आंखों से लगातार आंसू बह रहे थे। वे रोती हुई कभी आपके रथ की ओर देखती कभी मेरी ओर।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५८)

उनसठवाँ सर्ग

सुमन्त्र की बात सुनकर राजा दशरथ का विलाप

सुमन्त्र बोले- जब रामचन्द्र ने वन की ओर प्रस्थान किया व मैंने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और फिर उनके वियोग से दुखी होकर वापस लौट पड़ा। लौटते समय मेरे रथ के घोड़े भी रो रहे थे। रास्ता चलने में उनका मन बिल्कुल नहीं लगता था। मैं उनके जाने के बाद निषादराज गुह के साथ कई दिनों तक ठहरा रहा कि सम्भव है श्रीराम मुझे फिर वापस बुला लें। महाराज! इस समय आपके राज्य में आये हुए संकट से आपके राज्य के सारे वृक्ष मुरझा गये हैं। सभी तालाब और नदियाँ और वृक्षों के पत्ते भी सूख गये। वन के जीव जन्तु यहाँ तक सर्प और अजगर भी जहाँ के तहाँ पड़े हुए दिखलाई पड़ते हैं। श्रीराम के दुःख में सारा वन ही दुःखी हो गया है। सरोवरों के कमल सूख गये। फूलों की सुगंध थोड़ी रह गयी है। राजन्! अयोध्या के उद्यान सूख गये हैं, वे पहले की भांति मनोहर नहीं दिखलायी पड़ रहे हैं। अयोध्या में प्रवेश करते ही मुझसे किसी ने प्रसन्न होकर बात नहीं की। उस समय लोग इस सूने रथ को देखकर दूर से आँसू बहाने लगे। अट्टालिकाओं में बैठी हुई महिलायें हाहाकार करने लगीं। शत्रु मित्र सभी समान रूप से दुःखी दिखायी दिये। इस समय मुझे यह सारी की सारी अयोध्या आनन्द से शून्य दिखलायी पड़ने लगी। तत्पश्चात् सुमन्त्र की बातों को सुनकर राजा दशरथ ने आँसू बहाते हुए दीन वाणी में कहा- सूत! पापात्मा कैकेयी के कहने से मैंने यह दुष्कर्म कर डाला। इस विषय में मैंने बड़े बूढ़ों से भी सलाह नहीं ली। केवल एक स्त्री के कहने से मैंने राम को वन भेजना स्वीकार कर लिया। ओह, इसके बारे में मैंने अपने मंत्रियों तक से नहीं पूछा। लगता है यह संकट हमारे परिवार का नाश करने के लिये ही आया है। हे सुमन्त्र! यदि तुम्हारा

Mooker[illegible] Jammu Collection

मेरे प्रति थोड़ा भी प्रेम है तो मुझे रामचन्द्र के पास पहुँचा दो और यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन करने को तैयार हो तो तुम श्रीराम को आज ही वन से वापस ले आओ, क्योंकि तुम जानते ही हो कि मैं बिना राम के एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता हूँ। मैं जानता हूँ श्रीराम बहुत दूर निकल गये होंगे इसलिये तुम मुझे रथ पर बैठाकर उनके पास तक ले चलो। हे सूत! मेरा वह पराक्रमी पुत्र श्रीराम कहाँ गया। यदि मैं जीवित रहा तो मैं उसे सीता सहित अवश्य वापस लौटते हुए देखूँगा। मुझको इससे अधिक दुःख पहुँचानेवाली बात और क्या हो सकती है कि आज मेरे अंतिम समय में भी मेरा पुत्र श्रीराम मेरे पास नहीं है। "हा राम! हा लक्ष्मण ! हा सीते! तुम्हें मालूम नहीं कि मैं किस प्रकार दुःख से अनाथ की भाँति मर रहा हूँ।" राजा इतना कहकर फिर दुःख में डूबे हुए बोले- देवि कौसल्ये! श्रीराम के बिना मैं जिस शोक समुद्र में डूबा हूँ उसे जीते जी पार करना मेरे लिये बड़ा कठिन है। श्रीराम का शोक उस समुद्र का महान वेग है और सीता का विछोह इस सागर का दूसरा छोर है। मेरी लम्बी लम्बी सांसें उसकी लहरें और बड़ी बड़ी भँवरे हैं। उस सागर की जल धारा मेरे आँसू हैं। मेरा हाथ पैरों का पटकना उसमें उछलती हुई मछलियों का विलाप है। मेरा करुण क्रन्दन उसकी गर्जना और मेरे बाल उसके सेवार हैं। कैकेयी बड़वानल है और मन्थरा के कुटिलतापूर्ण वचन उस समुद्र के बड़े-बड़े ग्राह हैं। कैकेयी के माँगे हुए दो वर उसके दो तट हैं और श्रीराम का वनवास उस शोक सागर का महान विस्तार है। मैं लक्ष्मण सहित श्रीराम को देखना चाहता हूँ किन्तु उन्हें न देख पाना मेरे किसी महान पाप का फल है। इतना कहकर राजा दशरथ मूर्छित होकर शैय्या पर गिर पड़े। अब राजा दशरथ की यह अवस्था देखकर देवी कौसल्या के मन में दुगुना भय समा गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में उन्सठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५९)

साठवाँ सर्ग

कौसल्या का विलाप, सुमन्त्र का समझाना

तदनन्तर कौसल्या उसी प्रकार काँपने लगीं जैसे उन पर भूत का आवेश

हो गया हो। फिर उसी समय अचेत होकर गिर पड़ीं और उसी अवस्था में सुमन्त्र से बोलीं- सुमन्त्र जहाँ राम हैं जहाँ सीता और लक्ष्मण हैं उसी जगह मुझको भी पहुँचा दो। मैं उन लोगों के बिना एक क्षण भी नहीं जीवित रह सकती। यदि मैं उनके पास तक न पहुँच सकी तो मैं यम लोक की यात्रा करूँगी। देवि कौसल्या की यह बात सुनकर सुमन्त्र ने समझाया- महारानी! आप अपनी इस व्याकुलता को छोड़िये क्योंकि इस समय श्रीरामचन्द्र जी सारा संताप भूलकर वन में निवास कर रहे हैं। उनकी सेवा करते हुए लक्ष्मण भी अपना परलोक बना रहे हैं। सीता का मन भगवान् श्रीराम में लगा है और उनके साथ रहकर वे उस वन को ही अपना घर समझ रही हैं। वन में रहने के कारण उनके मन में कुछ थोड़ा सा भी दुःख नहीं दिखायी पड़ता। ऐसा लगता है जैसे उन्हें परदेश में रहने का बहुत पहले से अभ्यास रहा हो। यहाँ के उद्यानों की तरह वहाँ के निर्जन वन में भी वे आनन्दपूर्वक विचरण किया करती हैं और श्रीराम के समीप बालिका के समान खेलती हुई प्रसन्न रहती हैं। उनका मन राम में ही लिप्त है। अतः वे वन में भी अयोध्या के समान ही सुख का अनुभव करती हैं। इस समय उन्हें ऐसा लगता है जैसे कि वे अयोध्या से एक कोस की दूरी पर घूमने और टहलने के लिए आयी हों। सीता के सम्बन्ध में मुझे इतना ही याद है जो उन्होंने कैकेयी को लक्ष्य करके सहसा कोई बात कह दी थी, वह इस समय मुझे याद नहीं आ रही है। इस तरह भूल से निकली हुई कैकेयी विषयक उस बात को पलटकर कौसल्या को प्रसन्न करने के अभिप्राय से बोले- हे कौसल्ये! तेज वायु धूप आदि से सीता घबराती नहीं न उनका मन कभी मलिन होता है। उनकी प्रभा चन्द्रमा के समान ही बनी रहती है। श्रीराम के अथाह प्रेम के कारण सीता ने आभूषणों का त्याग नहीं किया है। सीता के पाजेबों की झंकार से हंस की चाल का भी तिरस्कार होता है। वे वन के हिंसक पशुओं से किंचित् भयभीत नहीं होतीं। अतः राम लक्ष्मण सीता आप किसी के लिये शोक न करें। वे तीनों ही प्रसन्नतापूर्वक महर्षियों के मार्ग पर दृढ़ता से चलते हुए पिता के उत्तम प्रतिज्ञा का पालन कर रहे हैं। लेकिन सुमन्त्र के इस तरह समझाने बुझाने पर भी कौसल्या का शोक जरा भी कम न हुआ। वे बराबर 'हा पुत्र, हा राम, हा रघुनन्दन' का रट लगाती हुई करुण क्रन्दन करती

रहीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में साठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६०)

एकसठवाँ सर्ग

कौसल्या का राजा को उपालम्भ देना

श्रीराम के वन चले जाने पर कौसल्या अपने पति से रोती हुई बोलीं- महाराज! यद्यपि आपका यश तीनों लोकों में फैला हुआ है तथापि आपने इस बात पर जरा भी विचार नहीं किया कि आपके दोनों पुंत्र सीता के साथ वनवास का कष्ट कैसे सहन करेंगे? मिथिलेश कुमारी जानकी वन में सर्दी गर्मी का दुःख कैसे सहन करेगी? सुन्दर भोजन करनेवाली सीता वन में तिन्नी के चावल का भात कैसे खायेगी। जो सदा वाद्य का मंधुर ध्वनि सुना करती थी वह जंगल में सिंह का गर्जन कैसे सुन सकेगी? महाबली श्रीराम अपनी बाहों की तकिया लगाकर कहाँ सोते होंगे? कमल की कान्ति वाले श्रीराम के उस मनोहर मुख को मैं कब देखूँगी। निस्संदेह मेरा हृदय लोहे का बना है। क्योंकि श्रीराम के न देखने पर भी इसके सहस्रों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते आपने कैकेयी के कहने से मेरे पुत्रों को निकाल दिया है। सुख भोगने योग्य होने पर भी वे वन में अनाथ की भाँति दौड़ रहे हैं। श्रीराम के पुनः लौटने पर भरत राज्य और खजाना छोड़ देंगे ऐसी सम्भावना कम है। कहा जाता है कि श्राद्ध में मनुष्य पहले अपने वंश वालों को ही भोजन कराते हैं। इसके बाद दूसरे ब्राह्मणों को भोजन देते हैं लेकिन जो उत्तम और बुद्धिमान ब्राह्मण होते हैं वे बाद में अमृत तुल्य भोजन भी नहीं स्वीकार करते। इसे वे अपना अपमान मानते हैं। जिस प्रकार बाज दूसरों के मारे हुए शिकार का भोजन नहीं करते उसी प्रकार नरश्रेष्ठ रामचन्द्र भरत के द्वारा उपभोग किये हुए राज्य को कैसे स्वीकार करेंगे। जैसे बलवान शेर किसी के द्वारा अपनी पूँछ का पकड़ा जाना नहीं सह सकता उसी प्रकार श्रीराम ऐसे अपमान को नहीं सह सकेंगे। यदि सारे लोक एक साथ मिलकर महायुद्ध आरम्भ कर दें तो भी श्रीराम के मन में भय उत्पन्न नहीं कर सकते। फिर भी इस तरह राज्य लेने में उन्होंने अधर्म मानकर इस पर अधिकार नहीं किया। जैसे प्रलय काल में

अग्निदेव सम्पूर्ण प्राणियों को नष्ट करते हैं वैसे वे अपने वाणों से समुद्र को भी दग्ध कर सकते हैं। लेकिन श्रीराम अपने पिता के हाथों उसी प्रकार मारे गये जैसे मछली का बच्चा अपने पिता मछली के द्वारा ही खा लिया जाता है। राजन् ! नारी के लिये पहला सहारा उसका पति है दूसरा उसका पुत्र तीसरा उसके पिता भाई आदि इसके अलावा चौथा सहारा उसके लिए कोई नहीं है। अब इन संहारों में आप तो मेरे हैं ही नहीं क्योंकि आप सौत के वश में हैं। दूसरा सहारा श्रीराम को आपने वन में भेज दिया है। तीसरा सहारा बन्धु बान्धव भी दूर हैं। फिर आपकी सेवा छोड़कर वन जाना नहीं चाहती। इसलिये मैं आपके द्वारा मारी ही गयी। श्रीराम को वन भेजकर आपने यह राज्य तथा आस पास के अन्य राज्यों को भी नष्ट कर डाला। आपके द्वारा पुत्र सहित मैं तो मारी ही गयी साथ ही इस नगर के निवासी भी नष्टप्राय हो गये। प्रसन्न हुए हैं तो केवल भरत और आपकी पत्नी कैकेयी ! कौसल्या के यह कठोर वचन सुनकर राजा दशरथ "हा राम" कहते हुए मूर्छित हो गये और उन्हें एक पुराने दुष्कर्म का स्मरण हो आया जिसके कारण उन्हें यह दुःख मिला था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६१)

बासठवाँ सर्ग

दशरथ का कौसल्या को मनाना

शोकमग्न कौसल्या के कठोर वचन सुनकर राजा बड़े दुःखी हो गये। तदनन्तर दीर्घ काल के पश्चात् जैसे ही उन्हें चेत हुआ वैसे ही उन्हें अपने एक दुष्कर्म का स्मरण हो आया जो उनसे शब्द भेदी बाण चलाने के कारण अनजान में बन गया था। अब उस शोक से और श्रीराम के शोक से उनके मन में बड़ी वेदना होने लगी और फिर वे थर-थर काँपते हुए कौसल्या को मनाने के लिये हाथ जोड़कर बोले- मैं तुमसे हाथ जोड़कर विनती करता हूँ कि प्रसन्न हो जाओ। सदा सब पर वात्सल्य भाव दिखलानेवाली मेरे प्रति कठोर क्यों हो गयी। पति गुणवान् हो या गुणहीन वह नारियों के लिये देवता ही है। इस समय तुम भी दुःखित हो और मैं भी दुःख में पड़ा हूँ इसलिए मुझसे ऐसे

कठोर वचन नहीं कहना चाहिए। राजा के इस वचन को सुनकर कौसल्या की आंखों में आँसू आ गये और शीघ्र ही अधर्म के भय से रोती हुई बोली- देव! मैं आपके सामने पृथ्वी पर पड़ी हूँ। आप प्रसन्न हों। मेरी मति मारी गयी थी जो मैंने ऐसा कहा। अब मैं आपसे क्षमा नहीं बल्कि प्रहार पाने योग्य हूँ। जो स्त्री अपने बुद्धिमान पति के द्वारा मनायी जाती है, वह कुल स्त्री कहलाने योग्य नहीं। इस समय मैंने जो कुछ कहा वह पुत्र शोक से पीड़ित होने के कारण मेरे मुख से निकल गया है। वास्तव में शोक धैर्य को नष्ट कर देता है अतः शोक के समान दूसरा शत्रु नहीं। शत्रु के द्वारा किया गया शस्त्रों का प्रहार तो सहा जा सकता है किन्तु दैव के कारण मिला हुआ थोड़ा सा शोक सहन नहीं किया जा सकता है। श्रीराम को वन गये हुए आज पाँच रातें बीत गयी। लेकिन शोक के कारण मेरी यह पाँच रातें पाँच वर्षों के समान प्रतीत हुई हैं। कौसल्या इस तरह की बातें कर ही रही थी कि सूर्य की किरणें मन्द हो गयी और रात्रि काल आ पहुँचा। राजा को कौसल्या की बातों से बड़ी प्रसन्नता हो रही थी तथा उनके लिये राम के लिये शोक भी था। अब इस हर्ष और शोक की अवस्था में उन्हें नींद आ गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

राजा दशरथ का कौसल्या से मुनिकुमार के मारे जाने का प्रसंग बतलाना

राजा दशरथ शोक से विह्वल होकर दो घड़ी बाद फिर जाग उठे और फिर अपने पुराने पापों का स्मरण कर उसे कौसल्या को सुनाने का विचार किया और फिर शोक से पीड़ित कौसल्या से कहना आरम्भ किया-देवि! मनुष्य शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है उसका फल कर्ता को अवश्य मिलता है। जो कर्मों को करते समय उनके लाभ रूपी गुण अथवा हानि रूपी दोषों को नहीं समझता वह मनुष्य मूर्ख कहा जाता है। जैसे कोई पलाश का सुन्दर फूल देखकर मन ही मन यह सोचे कि इसका फल अवश्य सुस्वादु होगा और यह सोचकर वह आम के पेड़ों को काटकर पलाश के पौधे लगाकर सींचे तो फल

लगने के समय उसे पश्चाताप् करना पड़ता है। इसी तरह फल का ज्ञान या विचार न करके जो केवल कर्म की ओर ही दौड़ता है, उसे उसका फल मिलने के समय उसी तरह का शोक होता है जैसा कि आम काट कर पलाश सींचनेवालों का हुआ करता है। मैंने भी आम का वन काटकर पलाशों को ही सींचा है। अब मैं श्रीराम को खोकर उसी तरह का पश्चाताप कर रहा हूँ। कौसल्ये अपने यौवन काल में एक कुशल धनुर्धर के रूप में मेरी अच्छी ख्याति थी। सब लोग मेरे शब्द भेदी बाण चलाने की प्रशंसा किया करते थे। किन्तु उसी समय अनजाने में मैंने एक पाप कर डाला। देवि! उस समय मुझसे तुम्हारा विवाह भी नहीं हुआ था। उन्हीं दिनों की बात है कि मेरी काम वासना बढ़ाने वाली वर्षाऋतु आयी। आकाश में सब ओर मेघ ही मेघ दिखलायी पड़ने लगे, इससे सभी मयूर, चातकों और मेढकों में हर्ष छा गया। वर्षा ऋतु के उस अत्यंत सुहाने समय में मैं धनुष बाण लेकर शिकार खेलने के लिये सरयू नदी के तट पर गया। उस समय मैं सोचने लगा किं पानी पीने के घाटपर जब कोई उपद्रवी जन्तु आयेगा तो मैं उसे मारूँगा। उस समय चारों ओर घना अंधकार छाया था। अकस्मात् मुझे पानी में घड़ा भरने की आवाज सुनायी दी। वह आवाज मुझे हाथी के पानी पीते समय होनेवाले शब्द के समान जान पड़ी। तब मैंने उसे हाथी समझकर तरकश से एक तीर निकाला और उसे आवाज की ओर लक्ष्य करके चला दिया। वह बाण सर्प के सदृश भयंकर था। फिर क्या था ? उस बाण के छूटते ही मुझे किसी वनवासी- का हाहाकार स्पष्ट रूप से सुनायी दिया। फिर मुझे मनुष्य की बोली सुनायी दी- आह, मेरे जैसे तपस्वी पर शस्त्र का प्रहार किसने किया। मैं तो इस एकान्त में नदी का पानी भरने आया था। मेरी समझ में नहीं आता मैंने किसका क्या बिगाड़ा था ? मेरे बध से किसको क्या लाभ मिलेगा ? इससे तो मारनेवाले के हाथ केवल अनर्थ ही लगेगा। ऐसे हत्यारे को कोई उसी तरह अच्छा नहीं समझेगा जैसे किसी गुरु पत्नी के पास जानेवाले को। मुझे अपने जीवन की कोई चिंता नहीं। मुझे तो केवल चिंता है अपने वृद्ध माता पिता की। मेरे शरीर के न रहने पर वे अपने जीवन का निर्वाह कैसे कर सकेंगे ? मुझ पर बाण छोड़नेवाले ने एक ही बाण में मुझे और मेरे माता-पिता दोनों को एक ही साथ मौत के मुँह में डाल दिया। उसकी करुणापूर्ण बातें सुनते ही मेरे मन में बड़ी पीड़ा हुई। मेरे हाथ से

धनुष बाण छूटकर उसी क्षण पृथ्वी पर गिर पड़े। मेरी चेतना विलुप्त होने लगी। तब तट के निकट पहुँचते ही मैंने देखा कि सरयू के किनारे उस स्थान पर एक तपस्वी घायल होकर पड़े हैं। उनकी जटायें बिखरी हैं और सारा शरीर धूल से सना है। उनकी यह अवस्था देखकर मैं डर गया। अब पास पहुँचने पर उन्होंने दोनों नेत्रों से मुझे इस प्रकार देखा जैसे वे मुझे भस्म कर देना चाहते हैं। फिर वे कठोर वाणी में बोले- राजन्! वन में रहते हुए मैंने तुम्हारा कौन सा अपराध किया है जो तुमने मुझे अपने बाणों से मारकर मेरे अंधे माता पिता को भी मार डाला। वे दोनों ही अंधे हैं। मैं यहाँ उनके लिये पानी लेने आया था। अब वे निश्चय ही प्यास से व्याकुल होकर मेरी प्रतीक्षा में बैठे होंगे और उन्हें मेरी बाट जोहते हुए इस बात का पता भी न चल सकेगा कि मैं पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु शैय्या पर पड़ा हुआ हूँ। यदि वे इसे जान भी जायें तो वे कर ही क्या सकते हैं। अतः रघुकुल नरेश तुम शीघ्र ही जाकर मेरे पिता को यह समाचार सुना दो। राजन्! यह पगडंडी उधर ही गयी है जहाँ पिता का आश्रम है। तुम जाकर उन्हें प्रसन्न करो। जिससे वे कुपित होकर तुम्हें शाप न दे दें। इसके साथ ही तुम मेरे शरीर से इस बाण को भी निकाल दो क्योंकि यह मुझे बहुत पीड़ा पहुँचा रहा है। देवि! उस समय मैं बहुत उलझन में पड़ गया क्योंकि यदि में बाण नहीं निकालता तो इन्हें क्लेश होता है और यदि निकालता हूँ तो ये अभी अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। मैं इसी चिंता में था कि मुनि कुमारं ने सारी बातें समझ ली और उन्होंने बड़े कष्ट के साथ कहा राजन्! मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मुझसे कोई चेष्टा नहीं बन पा रही है। अब मैं मृत्यु केनिकटपहुँच रहा हूँ इसलिये मेरी बात ध्यान देकर सुनो। तुम इस चिंता को अपने हृदय से निकाल दो कि तुमसे ब्रह्म हत्या हुई है क्योंकि मैं वैश्य पिता द्वारा शूद्र जातीय माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ हूँ। इतना कहकर वे पीड़ा से छटपटाने लगे। उनकी यह अवस्था देखकर मैंने झट उनके शरीर से बाण को निकाल दिया फिर उन्होंने मेरी ओर देखते हुए अपने प्राण त्याग दिए। अब उस अवस्था में सरयू के तट पर मरे पड़े मुनि पुत्र को देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६३)

चौसठवाँ सर्ग

मुनि पुत्र के बध से दुःखी हुए उनके माता पिता का विलाप

अब उन महर्षि का अनुचित बध का स्मरण कर राजा दशरथ ने विलाप करते हुए कहा - देवि ! उस महान पाप करने के बाद मैं सोचने लगा कि अब मेरा कल्याण कैसे हो। तदनन्तर मैंने सरयू के जल से उसके घड़े को भरा और उसे लेकर मैं उनके बताये हुए मार्ग से चलकर उनके आश्रम पर ज़ा पहुँचा। वहाँ मैंने उनके अंधे माता पिता को देखा। जो अपने पुत्र के आने की आशा में बैठे थे। उस समय तो मेरा हृदय पहले से ही शोक के कारण घबराया था अब उन्हें देखकर मेरा शोक और दूना हो गया। उस समय मेरे पैरों को आहट सुनकर मुनि बोले- बेटा ! देर क्यों लगा रहे हो। शीघ्र पानी ले आओ। तात ! तुम्हारी माता तुम्हारे लिये कितना बेचैन है। यदि हमसे कोई भूल भी हो गयी हो तो मन से निकाल दो क्योंकि तुम्हीं हम अंधे के दोनों नेत्र हो। बताओ इस समय तुम कुछ बोल क्यों नहीं रहे हो। देवि ! अब मुनि को देखते ही मेरे मन में भय सा समा गया। मैंने बोलने का प्रयास किया किन्तु मेरी जबान लड़खड़ाने लगी। आखिर भय को किसी प्रकार दबाकर मैंने कहा- महात्मन् ! मैं आपका पुत्र नहीं बल्कि दशरथ नामक एक क्षत्रिय हूँ। भगवन् ! मैं धनुष बाण लेकर सरयू तट पर आया था। मेरा उद्देश्य था कि कोई जंगली हिंसक पशु या हाथी घाट पर पानी पीने आये तो मैं उसका शिकार करूँ। थोड़ी देर बादजल में घड़ा भरने का शब्द सुनायी पड़ा। मैंने समझा कोई हाथी पानी पी रहा है इसलिये मैंने उस पर बाण चला दिया। किन्तु सरयू तट पर पहुँचकर मैंने देखा कि मेरा बाण एक तपस्वी को जा लगा है और फिर उनके शरीर से बाण निकालते ही उनका प्राणान्त हो गया। इस प्रकार अनजाने में मुझसे आपके पुत्र का बध हो गया। ऐसी अवस्था में आप जो शाप मुझको देना चाहें दे सकते हैं। मेरी बात सुनकर उनकी आंखों से आँसू की धारा बह चली। फिर वे दीर्घ निःश्वास लेते हुए बोले- राजन् ! यह अपना पापकर्म तुम स्वयं आकर न बताते तो तुम्हारे मस्तक के सैकड़ों टुकड़े हो जाते। तुमने अनजान में यह पाप किया है इसलिये अभी तक जीवित हो। यदि यह पाप जानकर किया होता तो तुम्हारी बात क्या पूरे रघुवंशियों का विनाश हो जाता। फिर उन्होंने मुझसे यह भी कहा- "नरेश्वर ! अब तुम हम दोनों को उस सथान पर ले चलो जहाँ हमारा पुत्र पड़ा

है। हमें उसका अंतिम दर्शन करना है। तब मैं उन दोनों को उस स्थान पर ले गया जहाँ उनका पुत्र अचेत पड़ा था। वे अपने पुत्र का स्पर्श करते ही अचेत होकर उस पर गिर पड़े। फिर पिता ने पुत्र को सम्बोधित करते हुए कहा- बेटा! आज न तो तुम मुझसे प्रणाम करते हो न मुझसे बोलते हो क्या मुझसे रूठे हो। यदि मैं तुमको प्रिय नहीं तो अपनी माता की ओर देखो। तुम इसके हृदय से क्यों नहीं लग जाते। अब कौन मेरी सेवा करता हुआ मुझसे शास्त्र चर्चा करेगा। बेटा! तुम्हारी इस अंधी माँ का भरण पोषण कैसे करूँगा? पुत्र! ठहरो अभी यमराज के घर न जाओ। कल मेरे और अपनी माता के साथ चलना क्योंकि तुम्हारे न रहने से हम लोग भी शीघ्र यमलोक की राह लेंगे। फिर यमराज़ के दर्शन कर उनसे निवेदन करूँगा कि वे मेरे पुत्र को छोड़ दें जिससे वह अपने माता पिता का भरण पोषण कर सके। बेटा! तुम निष्पाप हो इसलिये मेरे सत्य के प्रभाव से उस लोक में जाओ जो युद्ध में पीठ न दिखाने वाले शूरवीरों को प्राप्त होता है। स्वाध्याय और तपस्या से समस्त प्राणियों को जिस परब्रह्म की प्राप्ति होती है वही तुम्हें भी प्राप्त हो। वत्स! गुरु की सेवा करनेवाले पुरुषों को जो गति मिली हो वही तुम्हें प्राप्त हो। हम जैसे तपस्वियों के कुल में पैदा हुआ कोई पुरुष बुरी गति को नहीं प्राप्त हो सकता। बुरी गति तो उसकी होगी जिसने तुम्हें अकारण मारा है। इस प्रकार विलाप करते हुए वे पुत्र को जलान्जलि देने को तत्पर हुए। इसी समय मुनिकुमार अपने कर्मों के प्रभाव से दिव्य रूप धरण करके शीघ्र ही इन्द्र के साथ स्वर्ग को जाने लगा। उस समय वह पिता से बातचीत करते हुए बोला मैं आप दोनों की सेवा करके इस महान् स्थान को प्राप्त हुआ हूँ। अब आप लोग भी शीघ्र मेरे पास आइयेगा। तदनन्तर उन महा तेजस्वी मुनि ने मुझसे कहा- राजन्! अब तुम मुझे भी शीघ्र मार डालो। क्योंकि अब मुझे मरने में कोई कष्ट नहीं होगा। लेकिन तुमने मुझे जो पुत्रहीन किया उसके लिये मैं भी तुम्हें एक भयंकर शाप दूँगा। राजन्! इस समय पुत्र के वियोग में मुझे जैसा कष्ट हो रहा है ऐसा तुम्हें भी होगा और तुम भी पुत्र के शोक में उसी तरह काल के गाल में जाओगे। यद्यपि तुम्हें वैश्य जातीय मुनि का बध करने के कारण ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगेगा। फिर भी तुम्हें ऐसी ही भयानक अवस्था प्राप्त होगी। इस तरह मुझे शाप देकर वे बहुत देर तक विलाप करते रहे फिर अपने शरीर को जलती हुई

चिता में डालकर स्वर्ग चले गये। देवि! आज पुत्र वियोग की चिन्ता में पड़े हुए मुझे स्वयं ही उस घटना का स्मरण हो आया। इतना कहकर राजा दशरथ ने कहा- कौसल्ये! अब मैं भी पुत्र शोक में अपना प्राण त्याग करूँगा। इस समय तुम्हें भलीभाँति नहीं देख पा रहा हूँ इसलिए तुम मेरा स्पर्श करो। अगर श्रीराम एक बार आकर मेरा स्पर्श करें तो मेरा विश्वास है मैं अभी और जी सकता हूँ। श्रीराम तो मेरे ऐसे धर्मात्मा पुत्र हैं जिन्होंने वनवास पाकर भी मेरे विरुद्ध एक शब्द भी नहीं कहा। कौसल्ये! अब मेरी स्मरण शक्ति भी क्षीण होती जा रही है। उधर देखो यमराज के दूत मुझे यहाँ से ले जाने के लिए उतावले हो रहे हैं। इस समय मेरे धर्मज्ञ पुत्र श्रीराम के न देख सकने का दुःख मेरे प्राणों को उसी तरह सुखाये डालता है जैसे थोड़े से जल को धूप। जो वनवास से लौटने के बाद श्रीराम के चन्द्रोपम मुख देखेंगे वे कितने धन्य होंगे। कौसल्ये! इस समय मेरे चित्त पर मोह छा रहा है, हृदय फटा जा रहा है, स्पर्श या रस आदि किसी विषय का अनुभव नहीं हो पा रहा है। पुत्र शोक मुझे शीघ्रता से अचेत किये दे रहा है। हा राम! मेरे कष्टों को दूर करनेवाले प्रिय पुत्र तुम कहाँ चले गये। कौसल्ये! अब मुझे कुछ नहीं दिखायी पड़ रहा है। अब मैं इस लोक से जा रहा हूँ। कुलांगार कैकेयी की कुटिल इच्छा पूरी हुई। इस प्रकार श्रीराम के लिये शोक विलाप करते हुए सुमित्रा और कौसल्या के निकट राजा दशरथ के जीवन का अन्त हो गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६४)

पैंसठवाँ सर्ग

राजा के निधन पर रानियों का विलाप

तदनन्तर रात बीतने पर सबेरे ही बंदीजन राजमहल में आकर उपस्थित हो गये। उस समय उच्च स्वर से आशीर्वाद देते हुए राजा की स्तुति करनेवाले सूत मागध आदि का शब्द राजमहल के भीतरी भाग में गूँजने लगा। उन शब्दों से वृक्ष की शाखाओं पर बैठे हुए तथा पिंजड़े में बंदी शुक आदि पक्षी जागकर चहचहाने लगे। तत्पश्चात् परिचर्या कुशल सेवक जिनमें स्त्रियों और खोजों की संख्या अधिक थी वे सब पहले की भाँति उस राजमहल

में आ उपस्थित हुए। पवित्र आचार विचारवाली स्त्रियाँ मंगल के स्पर्श करने योग्य और पीने योग्य गंगाजल तथा दर्पण आभूषण वस्त्रादि लेकर आयीं। सूर्योदय होने तक राजा की सेवा के लिये उत्सुक हुआ सारा परिजन वर्ग वहाँ आकर खड़ा हो गया। किन्तु महाराज उस समय भी बाहर नहीं निकले थे इसलिये उनके मन में यह शंका होने लगी कि महाराज के न आने का क्या कारण हो सकता है। तदनन्तर दशरथ के समीप रहनेवाली जो स्त्रियाँ थीं वे उनकी शय्या के निकट जाकर उन्हें जगाने लगीं। किन्तु उनका स्पर्श करने के पश्चात् उन लोगों को उनके अन्दर जीवन का कोई चिह्न न दिखायी पड़ा। अब उनके मन में राजा के प्राणों के निकल जाने की आशंका होने लगी। राजा की मृत्यु होने की शंका से वे सभी स्त्रियाँ काँपने लगीं। उधर कौसल्या और सुमित्रा भी पुत्र शोक के कारण निर्जीव सी हो गयी थीं और उनके हाथ पाँव शिथिल हुए पड़े थे। उस समय उन दोनों रानियों की ऐसी दशा देखकर उन स्त्रियों ने यही समझा कि सोते अवस्था में ही महाराज के प्राण निकल गये हैं। अब वे सुन्दरी रानियाँ अत्यंत दुःखी हो उच्च स्वर से आर्तनाद करने लगीं। उनके रोने की आवाज से कौसल्या और सुमित्रा भी सहसा जाग उठीं और राजा के शरीर का सपर्श कर "हा नाथ" कहती हुए गिर पड़ीं। उस समय उनके धूल धूसरित शरीर को देखकर लगता था जैसे आकाश का कोई तारा टूट कर पृथ्वी के धूल में लोट रहा हो। उस समय भूमि पर अचेत पड़ी हुई कौसल्या को देखकर सारी रानी शोक संतप्त होकर रोने लगीं और उस आर्तनाद से सारा महल बड़े जोर से गूँज उठा। राजा दशरथ की मृत्यु का समाचार फैलते ही राजा दशरथ का वह महल उत्सुक हुए मनुष्यों से भर गया और वे सभी आनन्द शून्य हो दीन दुःखी से व्याकुल दिखलायी पड़ने लगे। तत्पश्चात् राजा को दिवंगत हुआ जानकर उनकी सारी पत्नियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर करुण विलाप करने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६५)

छाछठवाँ सर्ग

राजा के लिये कौसल्या का विलाप और पुरवासियों का शोक

तदनन्तर राजा के मस्तक को गोद में लेकर कौसल्या ने कैकेयी से कहा- दुराचारिणी क्रूर कैकेयी! ले तेरी इच्छा पूरी हुई अब तू राजा को त्यागकर अकंटक राज्य का भोग कर। इस समय राम भी वन में हैं और मेरे स्वामी स्वर्ग सिधार गये ऐसी दशा में मैं अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती। अब कैकेयी के सिवा दूसरी कौन ऐसी स्त्री होगी जो पति को त्याग कर जीना चाहेगी। कैकेयी ने महाराज को अनुचित कार्य में लगाकर पत्नी सहित श्रीराम को वन भेजवा दिया। इस समाचार से राजा जनक भी हमारी तरह दुःखी होंगे। मेरे पुत्र को अब यह भी नहीं मालूम है कि मैं अनाथ और विधवा हो गयी हूँ। सीता वन के कष्टों को देखकर उद्विग्न हो उठेगी यह जानकर राजा जनक भी अपने प्राणों को अवश्य त्याग देंगे। मैं भी आज ही महाराज के साथ चिता में प्रवेश करके अपने प्राणों को त्याग दूँगी। यह देखकर वहाँ उपस्थित मंत्रियों ने कौसल्या को वहाँ से हटवा दिया और राजा के मृतक शरीर को तेल से भरे हुए कड़ाह में रख दिया। तथा गुरु वसिष्ठ की आज्ञा से अन्य कर्म को कराया। उन लोगों ने वहाँ पुत्रों के उपस्थित न होने के कारण राजा का प्रेत संस्कार करना उचित नहीं समझा और उनके शव की रक्षा करने का उपाय करने लगे। तत्पश्चात् जब मंत्रियों ने राजा को तेल की कड़ाह में सुलाया तब सारी रानियाँ विलाप करने लगीं कि हाय ये महाराज तो स्वर्गवासी हो गये हैं अब हम दुष्ट विचारवाली कैकेयी के समीप कैसे रह सकेंगी। इस समय श्रीराम के न रहने से हमारे ऊपर भारी संकट आ गया है, क्योंकि जिस कैकेयी ने अपने स्वामी का सील सहित श्रीराम का महाबली लक्ष्मण का त्याग किया है वह दूसरे किसका त्याग नहीं कर सकतीं। राजा दशरथ की ये रानियाँ शोक ग्रस्त हो तरह तरह का विलाप करने लगीं और उस समय सारी अयोध्या नगरी ही पति विहीना रानी की भाँति श्रीहीन हो गयी थी। राजा दशरथ के स्वर्ग सिधारने पर उनकी रानियों को भूतल पर लोटती देख सूर्य ने भी अपने किरणों का प्रचार करना बन्द कर दिया और वे शीघ्र ही अस्त हो गये। उनके अस्त होते ही अंधकार का प्रचार करती हुई रात्रि आ पहुँची। तदनन्तर वहाँ

पधारे हुए सुहृदों और मित्रों ने पुत्र के बिना राजा का दाह संस्कार करवाना पसन्द नहीं किया और फिर वहाँ देखते ही देखते झुंड के झुंड स्त्री पुरुष एक साथ उपस्थित होकर महारानी कैकेयी की निंदा करने लगीं। उस समय किसी के मन में शान्ति नहीं थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

सरसठवाँ सर्ग

मारकन्डेय आदि मुनियों का किसी को राजा बनाने के लिए अनुरोध

अयोध्यावासियों की वह रात रोते कलपते ही बीती। उस समय सबकी आँखें आँसुओं से भरी थीं। फिर रात बीतने पर सुबह हुई उस समय राज्य का प्रबन्ध करनेवाले ब्राह्मण लोग एकत्र हो दरबार में आ पहुँचे। उनमें मारकन्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन ; गौतम और जाबालि आदि प्रमुख थे। वे कहने लगे- महाराज के स्वर्गवासी होने के कारण यह रात बहुत दुःख से बीती है। अब महाराज दशरथ स्वर्ग सिधार गये। श्रीराम और लक्ष्मण वन चले गये इसके अलावा भरत और शत्रुघ्न ननिहाल चले गये हैं। ऐसी दशा में किसी को आज यहाँ का राजा बना दिया जाये। क्योंकि राजा के बिना इस राज्य के नष्ट हो जाने की सम्भावना है। जहाँ राजा नहीं होता वहाँ न तो मेघ जल की वर्षा करता है और न खेतों में बीज ही बिखेरे जाते। पुत्र पिता और स्त्री पति के वश में नहीं रहती। बिना राजा के देश में कोई पंचायत भवन नहीं बनवाते तथा धर्मशाला और मंदिर आदि भी नहीं बनवाते। जहाँ कोई राजा नहीं वहाँ ब्राह्मण भी यज्ञों का अनुष्ठान नहीं करते। यदि वहाँ महायज्ञों का अनुष्ठान भी हो तो धन सम्पन्न ब्राह्मण भी ऋत्विजों को पर्याप्त दक्षिणा नहीं देते। राजा विहीन देश में न तो वादी प्रतिवादी के विवाद का संतोषजनक निपटारा ही हो पाता है और न व्यापारियों को व्यापार में लाभ हो पाता है। लोग पौराणिक कथाओं से प्रसन्न नहीं हो पाते। बिना राजा के राज्य में कोई भी सुरक्षित होकर सो नहीं पाते और व्यापारी बेचने की बहुत सी वस्तुएं साथ लेकर कुशलतापूर्वक मार्ग नहीं तय कर पाते। राजा विहीन

जनपद में जितेन्द्रिय मुनि सन्ध्या होने पर अकेले इधर-उधर नहीं विचर सकते। उस समय युद्ध में सेना भी शत्रुओं का ठीक से सामना नहीं कर सकती। ऐसे राज्यों में विद्वान मनुष्य शास्त्रों की व्याख्या करते हुए वनों और उपवनों में नहीं ठहर पाते। जहाँ राजा नहीं होते वहाँ राजकुमार वसन्त ऋतु में खिले हुए वृक्षों की भाँति शोभा नहीं पाते। जैसे जल के बिना नदियाँ घास के बिना वन, और ग्वालों के बिना गौओं की शोभा नहीं होती वैसे ही राजा के बिना राज्य की शोभा नहीं रह जाती। जैसे ध्वज से रथ का और धूम्र से अग्नि का बोध होता है वैसे हमारे अधिकारों का बोध करानेवाले महाराज भी स्वर्गलोक चले गये। जैसे मत्स्य एक दूसरे को खा जाते हैं वैसे देश के लोग एक दूसरों को खाते लूटते रहेंगे। नास्तिक पुरुष जो राज्य भय से दबे रहते थे। वे अब निःशंक होकर अपना प्रभुत्व प्रकट करेंगे। राजा ही सत्य और धर्म है। राजा ही कुलवानों का कुल है। वही सब का माता पिता और मनुष्यों का हित करनेवाला है। राजा अपने महान चरित्र द्वारा यम, कुबेर, इन्द्र और वरुण से भी बढ़ जाते हैं। यदि संसार में भले बुरे का विभाग करनेवाला राजा न हो तो संसार अंधकारमय हो जाये। अतएव मुनि वसिष्ठ कृपा करके किसी योग्य पुरुष को राजा के पद पर अभिषेक करायें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६७)

अड़सठवाँ सर्ग

वसिष्ठ की आज्ञा से दूतों का कैकय देश के राजगृह नगर में जाना

मारकन्डेय आदि ऋषियों की बात सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने उन समस्त ब्राह्मणों को उत्तर दिया, "राजा दशरथ ने जिस भरत को राज्य दिया है वे इस समय शत्रुघ्न के साथ अपने मामा के यहाँ रह रहे हैं। उन्हें दूत भेजकर तुरन्त वहाँ से बुला लिया जाये। तत्पश्चात् वशिष्ठ जी ने पांच दूतों को बुलाकर कहा- सिद्धार्थ, विजय, जयन्त, अशोक और नन्दन तुम लोग तेज घोड़ों पर सवार होकर राजगृह जाओ और शोक का भाव न दिखलाते हुए भरत से तुरन्त अयोध्यापुरी आने के लिये कहो। यहाँ की परिस्थितियों की चर्चा उनसे जरा भी न करना। केकय राज और भरत को भेंट देने के लिये उत्तम आभूषण और

रेशमी वस्त्र भी ले लो। यह सुनकर वे सब राह खर्च लेकर वहाँ से राजगृह नगर के लिये चल पड़े। रास्ते में हस्तिनापुर में गंगापार करके कुरुजांगल प्रदेश के बीच से होते हुए आगे बढ़ गये। तदनन्तर वे दिव्य नदी शरदण्डा के तट पर पहुँचकर उसे बेगपूर्वक लाँघ गये। रास्ते में सभी मनोरथ सिद्ध करनेवाला सत्योपयाचन वृक्ष की परिक्रमा करते हुए वे लोग कुलिंगा नामक पुरी में प्रवेश किया। वहाँ से फिर आगे बढ़ते हुए वे पुण्यसलिला इक्षुमती नदी को पार किया। वहाँ से पारगामी ब्राह्मणों का दर्शन करते हुए वे सुदामा नामक पर्वत के पास जा पहुँचे। उस पर्वत के शिखर पर विष्णु के चरण चिह्न का दर्शन कर वे विपाशा (व्यास नदी) के निकट गये। फिर वहाँ से शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ते हुए वे श्रेष्ठ नगर गिरिब्रज में जा पहुँचे। फिर भरतजी को राज्य भार स्वीकार कराने के लिये वे उसी रात को राजगृह नगर में पहुँच गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६८)

उनहत्तरवाँ सर्ग

भरत का दुःस्वप्न देखना और मित्रों से उसका वर्णन करना

जिस रात दूतों ने नगर में प्रवेश किया उससे पहली रात में भरत ने भी एक अप्रिय स्वप्न देखा था। उस स्वप्न को देखकर भरत मन ही मन बहुत संतप्त हुए। फिर उन्होंने इस क्लेश को दूर करने के लिये मित्रों की एक सभा की और उसमें तरह तरह की बातें करने लगे। किन्तु महात्मा भरत को इससे कोई शान्ति न मिल सकी। इसलिये उनमें से एक मित्र ने पूछा- सखे! आज तुम प्रसन्न क्यों नहीं दिखलायी पड़ते। यह सुनकर भरत ने कहा- मित्र! जिस कारण मैं दुःखी हो रहा हूँ वह बताता हूँ, सुनो। मैंने आज स्वप्न में पिता जी को पर्वत की चोटी से एक ऐसे गंदे गड्ढे में गिरते हुए देखा जिसमें गोबर भरा हुआ था। मैंने उस गोबर के कुन्ड में तैरते हुए उन्हें देखा था। वे अंजलि में तेल लेकर पी रहे थे और बारम्बार हँसते हुए से दिखलायी पड़ते थे। उस समय फिर उन्होंने तिल और भात खाया और सिर नीचा किये हुए तेल में ही गोते लगाने लगे। स्वप्न में मैंने यह भी देखा कि समुद्र सूख गया है चन्द्रमा पृथ्वी पर गिर पड़ा और सारी पृथ्वी उपद्रव से ग्रस्त हो गयी। महाराज के

हाथी के दांत के टुकड़े टुकड़े हो गये हैं और सारी पृथ्वी ही फट गयी है। महाराज दशरथ लोहे की काली चौकी पर बैठे हैं और उन्होंने काला ही वस्त्र पहन रक्खा है। यही नहीं काले और पिंगल वर्ण की स्त्रियां उन पर प्रहार कर रही हैं। फिर राजा दशरथ लाल रंग के फूलों की माला पहने और लाल चंदन लगाये एक गधे से जुते हुए रथ पर सवार होकर तेजी से दक्षिण दिशा की ओर चले गये। उस समय लाल वस्त्र धारण करनेवाली एक स्त्री महाराजा को खींचती हुई लिये जा रही है। इससे मुझे लगता है कि श्रीराम महाराज दशरथ अथवा लक्ष्मण इनमें से किसी एक की मृत्यु अवश्य होगी। जो मनुष्य स्वप्न में गधे जुते हुए रथ से यात्रा करता है उसकी चिता की धुवाँ शीघ्र ही देखने में आता है। इसी कारण मैं दुःखी हो रहा हूँ। और आप लोगों का कोई आदर नहीं कर पा रहा हूँ। इस समय मैं अपने आप से भी घृणा करने लगा हूँ। इसका कारण मुझे समझ में नहीं आता और मेरे मन का भय भी दूर नहीं हो पा रहा है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६९)

सत्तरवाँ सर्ग

दूतों का भरत को उनके नाना और मामा के लिये उपहार की वस्तुएँ देना

जिस समय भरत अपने मित्रों को स्वप्न का हाल सुना रहे थे उसी समय दूत उस राजगृहपुर में प्रवेश किया। केकय देश के राजा और राजकुमारों ने उनका आदर सत्कार किया। तदनन्तर दूतों ने भरत के चरणों का स्पर्श कर कहा- आप अयोध्या शीघ्र चलिये वहाँ आपसे अत्यंत आवश्यक कार्य है। फिर आभूषण आदि देकर कहा- राजकुमार! ये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण आप स्वयं भी ग्रहण कीजिए और अपने मामा को भी दीजिये। फिर उसे सारी वस्तुओं को लेकर भरत ने अपने मामा तथा अन्य सुहृदों में बाँट दिया। तत्पश्चात् दूतों से कहा- मेरे पिता महाराज दशरथ सकुशल तो हैं? महात्मा श्रीरामऔर लक्ष्मण तो स्वस्थ हैं न? सब मातायें तो स्वस्थ और सुखी हैं न? भरत के इस प्रकार पूछने पर दूतों ने कहा- राजकुमार! आपको जिनका

कुशल मंगल चाहिए वे सब सकुशल हैं। अयोध्या में हाथ में कमल लिये हुए लक्ष्मी आपका वरण कर रही हैं। दूतों के कहने से भरत अपने नाना की आज्ञा लेकर वहाँ से चलने के लिये तैयार हो गये। उस समय नाना ने उनका मस्तक सूँघकर कहा- तात ! जाओ ! कैकेयी तुम्हें पाकर संतान वाली हो गयी हैं । अब अपने माता पिता एवं अन्य लोगों से यहाँ का समाचार कहना। इतना कहकर उन्होंने भरत को बहुत सी कीमती वस्तुएं, दो हाजार सोने की मोहरें, और सोलह सौ उत्तम घोड़े दिए। लेकिन उस समय जाने की जल्दी के कारण भरत उन उपहारों को पाकर प्रसन्न नहीं हो सके। इसके दो कारण थे, एक तो दूत वहाँ से चलने की जल्दी मचा रहे थे, दूसरे उन्हें बुरे स्वप्न भी दिखलाई पड़े थे। अब वहाँ से बिदा लेकर भरत एक विशाल मार्ग को पार कर रनिवास में आये। और मामा आदि की आज्ञा लेकर रथ पर सवार हो गये। उस समय गोलाकार पहिएवाले सौ से भी अधिक रथों में ऊँट, बैल, घोड़े और खच्चर जोत कर सेवकगण विदा होते हुए भरत के पीछे पीछे चलने लगे। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे कोई सिद्ध पुरुष इन्द्रलोक से किसी दूसरे स्थान को जा रहा है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७०)

इकहत्तरवाँ सर्ग

रथ और सेना सहित भरत का अयोध्या के निकट पहुँचना और वहाँ की दुरावस्था देखते हुए राजभवन में प्रवेश करना

राजगृह से निकलकर भरत पूर्व दिशा की ओर चले। फिर सुदामा नदी को पार कर ह्लादिनी नदी पर आये। वहाँ से ऐलधान नामक गाँव में जाकर वहाँ बहनेवाली नदी पार किया।वहाँ से चलकर वे अपरपर्वत नामक जनपद में बहनेवाली शिला नामक नदी के किनारे पहुँचे। उसे पारकर वे शल्यकर्षण नामक देश में गये। तदनन्तर उन्होंने शिलावहा नामक नदी का दर्शन किया और चैत्ररथ नामक वन में जा पहुँचे। फिर सरस्वती तथा गंगा की धारा विशेष के संगम से होते हुए उन्होंने वीरमत्स्य देश में पदार्पण किया। और वहाँ से बढ़कर भारूण्डवन के भीतर गये। फिर कुलिंगा नदी को पारकर

यमुना के तट पर जा पहुँचे और वहीं उन्होंने अपनी सेना को विश्राम कराया। तत्पश्चात् वहाँ से चलते हुए उन्होंने एक विशाल वन को पार किया और तुरन्त ही प्राग्वट नाम से विख्यात नगर में आ गये। वहाँ से कुटिकोष्टिका नगर को पारकर धर्मवर्धन नामक नगर में जा पहुँचे। वहाँ से तोरण ग्राम के दक्षिणार्ध भाग में होते हुए जम्बूप्रस्थ गये। फिर वरुथ नामक विख्यात ग्राम से होते हुए वे पूर्व दिशा की ओर गये और उज्जिहाना नगरी के उद्यान में जा पहुँचे। वहाँ अपने रथ में शीघ्रगामी घोड़ों को जोतकर सेना को धीरे-धीरे आने की आज्ञा देकर भरत तीव्रगति से चल दिये। फिर सर्वतीर्थ नगर में एक रात रहकर भरतजी हस्तिपृष्ठक नामक नगर में पहुँचे। तदनन्तर वहाँ से आगे बढ़कर व गोमती आदि नदियों को पार करते हुए वे कलिंगनगर के पास सालवन में जा पहुँचे और वहाँ थोड़ा विश्राम करने के बाद वे आठवें दिन अयोध्यापुरी जा पहुँचे। अयोध्यापुरी को सामने देखकर उन्होंने अपने सारथी से कहा- सूत! आज मुझे यह अयोध्यापुरी प्रसन्न क्यों नहीं दिखलायी पड़ रही है। राजा दशरथ द्वारा पोषित यह अयोध्यानगरी दूर से सफेद मिट्टी का ढूह दिखलायी पड़ रहा है। यहाँ के उद्यान जिसकी पहले की शोभा अपूर्व थी अब रोते हुए से प्रतीत होते हैं। सारथे! यह पुरी अब जंगल जैसा दिखलायी पड़ रहा है। यह मार्ग में जो वृक्षों के पत्ते गिर रहे हैं उनके द्वारा मानों वृक्ष करुण क्रन्दन कर रहे हैं। मतवाले मृगों और पक्षियों का तुमुल शब्द अभी तक नहीं सुनायी पड़ रहा है। चन्दन और अगुरूकी सुगंध अब पहले की भाँति क्यों नहीं प्रवाहित हो रहे हैं। भेरी मृदंग और वीणा के शब्द न जाने क्यों अवरुद्ध हो गये हैं। मुझे अनेक अनिष्टकारी और क्रूर और अशुभ सूचक अपशकुन दिखलायी दे रहे हैं। जिससे मेरा मन खिन्न हो रहा है। ये सब देखकर लगता है मेरे बान्धवों की कुशलता दुर्लभ है। और इतना कहकर वे इस पुरी के पश्चिमी भाग में जहाँ वैजयन्ती पताका फहराया करता था, और इसलिये उस द्वार का नाम वैजयन्ती द्वार पड़ गया था, जा पहुँचे और फिर उसी द्वार से अन्दर घुसे। लेकिन इस समय उनका मन एकाग्र नहीं था। वहाँ द्वारपालों ने उठकर उनकी जय-जयकार की। भरत उन सबको सत्कार पूर्वक लौटाते हुए सुमन्त्र से बोले- सूत! पहले मैंने राजाओं के विनाश के जो लक्षण सुन रखे थे। मैं आज उन्हीं लक्षणों को देख रहा हूँ। न तो गृहस्थों के घर झाड़ू

लगे हैं ना इन घरों में बलि-वैश्व देव कर्म हो रहे हैं ये सारे के सारे घर ही प्रभाहीन दिखलायी पड़ते हैं इनमें लक्ष्मी का निवास ही नहीं लगता। देव प्रतिमाओं की पूजा भी लगता है बन्द हो गयी और यज्ञशाला में यज्ञ होता हुआ भी नहीं दिखलायी पड़ता। फूल और फलों की विक्री भी होती नहीं दिखलायी पड़ती। यहाँ के सारे पशु पक्षी भी दीन हीन दिखलायी पड़ रहे हैं। इसके साथ ही सभी स्त्रियों और पुरुषों की आँखों में आँसू की धाराएं बह रही हैं, सारथी से इतना कहकर वे दुःखी मन से राजमहल में गये। उस नगर में जो पहले कभी नहीं हुआ उन्हें होता देख भरत ने दुःख से अपना मस्तक झुका लिया और उसी दीन हृदय से पिता के भवन में प्रवेश किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७१)

बहत्तरवाँ सर्ग

भरत का कैकेयी के भवन में जाकर उन्हें प्रणाम करना और राम वनगमन से अवगत होना

तत्पश्चात् पिता के घर में पिता को न देखकर वे अपनी माता के महल में गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने माता के चरणों में प्रणाम किया। कैकेयी ने पुत्र को देखते ही उसका मस्तक सूँघा और पूछने लगीं- बेटा! तुम्हें नाना के घर से चले कितने दिन हुए। रास्ते में तुम्हें अधिक थकावट तो नहीं आयी। तुम्हारे मामा और नाना तो सकुशल हैं न? माता की सारी बातों का उत्तर देने के बाद उन्होंने कहा- अच्छा माँ, अब मैं जो कुछ पूछता हूँ- उसे तुम बताओ। आज यहाँ महाराज क्यों नहीं दिखलायी पड़ते हैं और परिजन भी क्यों नहीं प्रसन्न मालूम होते। क्या इस समय पिता जी माता कौसल्या के घर में तो नहीं हैं। कैकेयी उस समय राज्य लोभ से मोहित हो रही थी इसलिये वह बोली- बेटा! तुम्हारे पिता तो बड़े धर्मात्मा थे। लेकिन अब उनकी वही गति हुई है जो समस्त पुरुषों की होती है। कैकेयी की बात सुनकर भरत पितृ शोक से पीड़ित हो उठे और पृथ्वी पर गिरकर कहने लगे- हा, मैं मारा गया। हाय मेरे पिताज़ी की शय्या जो निर्मल आकाश की तरह शोभा पाती थी आज सूखे हुए समुद्र की तरह दिखलायी पड़ती है। इसी तरह वे अपने सुन्दर मुख को वस्त्र

से ढँककर बड़ी देर तक विलाप करते रहे। अब उन्हें ऐसा करते देख कैकेयी उन्हें उठाकर बोली- राजन्! उठो। तुम इस तरह धरती पर न पड़े रहो। तुम्हारे जैसे लोगों को इस तरह का शोक करना शोभा नहीं देता। किन्तु कैकेयी के इस तरह समझाने के बाद भी भरत पृथ्वी पर लोटते पोटते बहुत देर तक रोते रहे। फिर अत्यंत शोक से आकुल हो बोले- मैंने तो यह सोचा था कि पिताजी श्रीराम का राज्याभिषेक करेंगे और स्वयं यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे यही सोचकर मैं बड़े हर्ष के साथ वहाँ से चला था लेकिन मैं देख रहा हूँ यहाँ सारी बातें आशा के विपरीत हो गयी हैं। माँ! अब ये बताओ कि महाराज को कौन सा रोग हो गया था। मैं समझता हूँ कि श्रीराम आदि धन्य हैं जिन्होंने यहाँ रहकर पिताजी की अंत्येष्टि संस्कार किया होगा। हाँ अब मुझे पिता का वह हाथ कहाँ मिल सकेगा जिसका स्पर्श मेरे लिये बहुत सुखदायक था। अब श्रीराम को शीघ्र मेरे आने की सूचना दो क्योंकि मेरे वही आश्रय हैं। पिता का मेरे लिये क्या संदेश था मैं उसे भी सुनना चाहता हूँ। भरत के इस तरह पूछने पर कैकेयी ने उनसे सारी बातें ठीक-ठीक बता दी। फिर कहने लगीं- बेटा! बुद्धिमानों में श्रेष्ठ तुम्हारे पिता ने "हा राम हा सीते हा लक्ष्मण!" इस प्रकार विलाप करते हुए परलोक की यात्रा की थी। उन्होंने अंत में कहा था कि जो लोग सीता के साथ पुनः लौटकर आये श्रीराम और लक्ष्मण को देखेंगे उनका जीवन सार्थक होगा। माता की इस बात को सुनकर भरत का क्लेश बहुत बढ़ गया। अब उन्होंने फिर पूछा- माँ! श्रीराम, सीता और लक्ष्मण कहाँ गये? कैकेयी ने कहा- बेटा! श्रीराम वल्कल वस्त्र पहनकर सीता और लक्ष्मण समेत वन चले गये हैं। यह सुनते ही भरत ने भयभीत होकर पूछा- माँ! भैया श्रीराम ने ऐसा कौन सा अपराध किया था जिसके लिये उन्हें वन में भेजा गया। यह सुनते ही कैकेयी प्रसन्न होकर बोली- बेटा! श्रीराम ने ऐसा कोई अपराध नहीं किया था। बल्कि मैंने जब सुना कि अयोध्या में श्रीराम का राज्याभिषेक होने जा रहा है तब मैंने तुम्हारे पिता से तुम्हारे लिये राज्य और श्रीराम के लिये वनवास की प्रार्थना की थी। यह सुनकर सत्यप्रतिज्ञ राजा ने मेरी माँग पूरी कर दी। उन्होंने श्रीराम को सीता और लक्ष्मण समेत वन भेज दिया और फिर पुत्र शोक से पीड़ित हो परलोक वासी हो गये। बेटा! अब तुम

Mookerji sharma (LFC) Jammu Collection

उस राज पद को ग्रहण करो क्योंकि तुम्हारे लिये ही मैंने यह सब कुछ किया है। अयोध्या का राज्य अब तुम्हारे अधीन है। इस समय तुम महाराज का अंत्येष्टि संस्कार कर गुरु वसिष्ठ से अपना अभिषेक कराओ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७२)

तिहत्तरवाँ सर्ग

भरत का कैकेयी को धिक्कारना

पिता के स्वर्गवास और भाइयों के वनवास का समाचार सुनकर भरत अत्यंत दुःखी हो उठे और फिर इस प्रकार बोले- हाय, तूने मुझे मार डाला। पिता और भाई से विलग हो अब मैं "शोक में डूबा जा रहा हूँ।" ऐसी दशा में मुझे यहाँ राज्य ही क्या करना है? तूने ये दुष्कर्म करके जैसे मेरे घाव पर नमक छिड़क दिया है। लगता है तू मेरे कुल के विनाश के लिए यहाँ आयी है। मेरे पिता ने तुझे पत्नी क्या बनाया कि उन्होंने दहकते हुए अंगार को अपने हृदय से लगा लिया। कुलकलंकिनी! तूने मेरे पिता को काल के गाल में डाल दिया और इस कुल का सुख सदा के लिये छीन लिया। बता, तूने मेरे धर्मवत्सल पिता का विनाश क्यों किया? मेरे बड़े भाई श्रीराम को घर से क्यों निकालकर कौसल्या और सुमित्रा को पुत्र शोक से पीड़ित किया। मेरे बड़े भैया श्रीराम धर्मात्मा हैं। वे तो अपनी माता की तरह ही तुमसे भी व्यवहार करते थे। उन महात्मा राम को वल्कल वस्त्र पहनाकर वन क्यों भेजा। क्या इसके लिये तुझे कोई शोक नहीं हो रहा है? मेरे बल तो मेरे बड़े भाई हैं मैं उन्हें न देखकर अपने राज्य की रक्षा कैसे कर सकता हूँ? केवल अपने बेटे के लिये राज्य चाहने वाली कैकेयी मैं तेरी मनोकामना पूरी नहीं होने दूँगा। पापिनि! मेरे पूर्वजों ने जिसकी सदा निंदा की है वह कुबुद्धि तेरे अन्दर पैदा कैसे हुई? इस कुल में जो सब से बड़ा होता है उसी का राज्याभिषेक होता है और अन्य लोग उसी की आज्ञा के अधीन होकर कार्य करते हैं। क्रूर स्वभाववाली कैकेयी क्या तुझे इसका भी ज्ञान नहीं। कैकय कुल में उत्पन्न होने पर भी तेरे मन में यह अनुचित मोह कैसे पैदा हुआ। मैं तेरी इच्छा कदापि पूरी नहीं होने दूँगा और निष्पाप भाई श्रीराम को वन से लौटा लाऊँगा। ऐसा कहकर भरत शोक

पीड़ित हो कैकेयी को व्यथित करते हुए जोर जोर फटकारने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७३)

चौहत्तरवाँ सर्ग

भरत का कैकेयी को कड़ी फटकार

इस प्रकार माता की निंदा करते हुए भरत महान रोष से भर गये और फिर कठोरता से बोले - क्रूर हृदया कैकेयी! अब तू पत्नी धर्म से गिर गयी। इसलिये महाराज के लिये तेरा रोना व्यर्थ है। अब तू मुझे ही मरा हुआ समझ कर मेरे लिये रोया कर। श्रीराम ने आखिर तेरा क्या बिगाड़ा था जो उन्हें वनवास और पिता की मृत्यु का कष्ट एक साथ भोगना पड़ा। यह तो तूने इतना बड़ा पाप किया कि उसने मेरे लिये भी भय उत्पन्न कर दिया है। राज्य के लोभ में पड़नेवाली कैकेयी तू माता के रूप में मेरी शत्रु है। तेरे ही कारण मेरी अन्य माताएं भी दुःख में पड़ गयी हैं। तूने जो जघन्य पाप किया उसका फल मुझे मिल रहा है इसीलिये मैं पितृहीन होकर भाइयों से बिछुड़ गया हूँ। माता कौसल्या को पति और पुत्र से वंचित कर तू किस लोक में जायेगी। दुष्ट कैकेयी! तू राम चन्द्र के रूप में समझ नहीं सकी और साधारण मनुष्यों की तरह ही उन्हें मानती रही। वे जितेन्द्रिय और आश्रयदाता हैं क्या तू उन्हें इस रूप में नहीं जानती। पुत्र माता के अंग प्रत्यंग और हृदय से उत्पन्न होता है। इसलिये वह माता को अधिक प्रिय होता है। एक समय की बात है कि कामधेनु ने देखा कि उसे दो पुत्र हल जोतते-जोतते मूर्छित हो गये हैं। यह दशा देखकर कामधेनु पुत्र शोक से पीड़ित होकर रोने लगी। सहसा उस समय देवराज इन्द्र उधर से गुजरे, उसी समय कामधेनु के नेत्रों से दो बूँद आँसू निकलकर इन्द्र के शरीर पर आ गिरा। इन्द्र ने जब ऊपर नजर उठा कर देखा तब उन्होंने कामधेनु को विलाप करती हुई देखा। यह दशा देखकर इन्द्र ने हाथ जोड़कर कामधेनु से पूछा- हे माता! तुम किस कारण से विलाप कर रही हो? क्या हमारे ऊपर ऐसी कोई मुसीबत आनेवाली है? यह सुनकर कामधेनु इन्द्र से कहने लगी- हे देवराज! ऐसी कोई बात नहीं जैसा आप समझ रहे हैं। मेरे दो पुत्र कष्ट पाकर मूर्छित हो गये। मैं उन्हीं की दशा देखकर दुःखी हो रही

हूँ। क्योंकि किसान मेरे पुत्र (बैलों) को मार रहे हैं। और वे सूर्य के ताप से तपते हुये दुर्बल हो रहे हैं। उनकी सोचनीय अवस्था देखकर ही मुझे कष्ट हो रहा है क्योंकि देवराज ! पुत्र शोक से बढ़कर और कोई शोक नहीं। जिस कामधेनु के गर्भ से हजारों पुत्र उत्पन्न होकर इस धरती पर आये हैं और सारा संसार ही जिसके पुत्रों से भरा है वह कामधेनु भी पुत्रशोक के कारण दुःखित हो रही हैं। तब इन्द्र को यह ज्ञान हुआ कि पुत्र शोक से बढ़कर धरती पर कोई दूसरा दुःख नहीं। कामधेनु सबके साथ एक समान व्यवहार करनेवाली गाय है और मनुष्यों की मनोकामना पूरी करती हुई अपने को लोक हित में लगाये रहती है और जो अनेक पुत्रों के होते हुए भी जो अपने दो पुत्रों के दुःख से दुःखी है तो फिर जिस कौसल्या के केवल एक ही पुत्र है वह किस प्रकार जीवित रहेगी। तुमने एक पुत्रवाली कौसल्या को पुत्र रहित किया इसलिये तुम लोक परलोक दोनों जगह कष्ट उठाओगी। मैं तो यह राज्य लौटाकर भाई की पूजा करूँगा और पिताजी की अंत्येष्टि संस्कार आदि करके पिता का भी पूर्णरूप से पूजन करूँगा। अब मैं निःसंदेह वही कर्म करूँगा जो मेरे कलंक को दूर कर यश बढ़ानेवाला होगा। मैं श्रीराम को वन से लौटाकर मैं स्वयं वन में प्रवेश करूँगा। पापिनि ! मैं तेरे किए हुए पाप का बोझ ढोता रहूँ अब मुझसे यह नहीं हो सकता। अब तू भी जलती अग्नि में प्रवेश कर जा या गले में रस्सी बांधकर अपना प्राण दे दे इसके सिवा तेरे लिये कोई दूसरी गति नहीं। मेरा कलंक तभी दूर होगा जब श्रीराम अयोध्या की भूमि पर पैर रक्खेंगे। इतना कहकर भरत मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और सांप की भाँति लम्बी लम्बी साँस खींचने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७४)

पचहत्तरवाँ सर्ग

कौसल्या के सम्मुख भरत का शपथ खाना

बहुत देर बाद होश में आने पर जब पराक्रमी भरत उठे तब मंत्रियों के बीच माँ की निन्दा करते हुए बोले- मन्त्रिवरों ! मैं राज्य नहीं चाहता। मुझे न तो महाराज ने जिस अभिषेक का निश्चय किया था उस का ज्ञान था और न

श्रीरामऔर लक्ष्मण के निर्वासन का। भरत जब माता को कोस रहे थे उस समय उनकी आवाज पहचानकर कौसल्या ने सुमित्रा से कहा- लगता है कैकेयी के पुत्र भरत आ गये हैं अब मैं उन्हें देखना चाहती हूँ। ऐसा कहकर वे कांपती हुई उस स्थान की ओर चलीं जहाँ भरत थे। उसी समय भरत भी कौसल्या से मिलने के लिये शत्रुघ्न के साथ उसी मार्ग से आने लगे। तदनन्तर भरत ने दूर से ही देखा कि कौसल्या अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी हैं। भरत इससे अत्यंत दुःखी होकर कौसल्या से लिपटकर रोने लगे। अब कौसल्या भरत से बोलीं- बेटा! तुम राज्य चाहते थे न? सो तुमहें मिल गया। लेकिन कैकेयी ने इसे बड़े क्रूर कर्मों से पाया है। उन्होंने मेरे बेटे को वल्कल वस्त्र पहनाकर वन भेज दिया। अब कैकेयी को चाहिए कि मुझे भी उसी वन में भेज दे। अथवा मैं सुमित्रा को साथ लेकर उसी स्थान को चली जाऊँगी जहाँ श्रीरामनिवास करते हैं। तुम अब इस राज्य का भोग करो जो कैकेयी ने श्रीराम से छीन कर तुम्हें दिया है। माता कौसल्या के इस कठोर वचन को सुनकर भरत को बड़ी पीड़ा हुई। वे इसे सुनकर तत्काल मूर्छित होकर गिर पड़े। फिर चेत होने पर कौसल्या से हाथ जोड़कर बोले- माँ, यहाँ जो कुछ भी हुआ है उसका मुझे जरा भी ज्ञान नहीं। मैं सर्वथा निरपराध हूँ। आप मुझे व्यर्थ दोषी ठहरा रही हैं। आप नहीं जानती कि श्रीराम से मुझे कितना प्रेम है। जिसकी सलाह से राम वन गये हों उसका सर्वथा विनाश हो। जिसकी सम्मति से भैया वन गये हों उसे वही पाप लगे जो सेवकों को समुचित वेतन न देनेवाले स्वामी को लगता है। अथवा किसी राजद्रोही को लगता है। जिसकी सलाह से आर्य श्रीराम को वन में प्रस्थान करना पड़ा है वह श्रीराम के वन से लौटने पर उनके दर्शन से वंचित रह जाये। जिसकी सम्मति से श्रीराम चन्द्र को वन जाना पड़ा है वह पापी गुरुजनों की निंदा तथा मित्र के प्रति अत्यंत द्रोह करे। साथ ही उसे विश्वासघात करने का पाप लगे। जिसकी अनुमति से श्रीराम वन गये हों वह मनुष्य कृतघ्न, सत्पुरुषों द्वारा परित्यक्त और सबके द्वेष का पात्र हो। यही नहीं वह धार्मिक कर्मों का अनुष्ठान किये बिना संतानहीन अवस्था में ही मर जाये। जिसकी सलाह से श्रीराम वन गये हैं वह निषिद्ध वस्तुओं को बेचकर अपने कुटुम्बीजनों का पालन करे। वह फटे पुराने मैले कुचैले वस्त्रों से अपने तन को ढके हुए खप्पर लेकर भीख माँगता हुआ पृथ्वी पर विचरण

करे। वह काम, क्रोध के वशीभूत हो मद्यपान करता हुआ द्यूत क्रीड़ा में असक्त रहे और अधर्म का सेवन करता रहे तथा उसके धन वैभव को लुटेरे लूट ले जायें। उसे गुरुपत्नीगामी होने का पाप लगे और साथ ही माता पिता की सेवा से वंचित रह जाये। वह सत्पुरुषों द्वारा सेवित कर्म से भ्रष्ट हो जाये और सदैव अनर्थ के पथ पर स्थित रहे। जिसकी सलाह से श्रीराम का वन गमन हुआ हो वह दरिद्र हो और उसके भरण पोषण पाने के योग्य पुत्र आदि की संख्या अधिक हो, वह पापी पुरुष चुगला, अपवित्र तथा राजा से भयभीत रहकर सदा छल कपट में ही रचा बसा रहे। वह मूढ़ अपनी धर्म पत्नी को छोड़कर पर स्त्री का सेवन करे तथा धर्म विषयक अनुराग को त्याग दे। दूसरों को जहर देने का जो पाप लगता है वह सारा पाप वही अकेला प्राप्त करे। यही नहीं वह उस पाप का भागी हो जो परस्पर झगड़ते हुए मनुष्यों में किसी एक के प्रति पक्षपात रखकर मार्ग में खड़ा हो। फिर कौसल्या से इस प्रकार की बातें करते हुए भरत दुःख से व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब अचेत पड़े हुए भरत से कौसल्या बोली- बेटा! जो तुम अनेकानेक शपथ खा रहे हो इससे मेरे मन की पीड़ा और बढ़ती जा रही है। तात! यह प्रसन्नता की बात है कि शुभ लक्षणों से सम्पन्न तुम्हारा चित्त धर्म से विचलित नहीं हुआ। तुम सत्पुरुष हो। तुम्हें सत्पुरुषों के लोक प्राप्त होंगे। ऐसा कहकर कौसल्या ने भरत को गोद में खींच लिया और फूट-फूटकर रोने लगीं। इस तरह शोक में वह पूरी रात बीत गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७५)

छिहत्तरवाँ सर्ग

राजा का अंत्येष्टि संस्कार

फिर शोक से भरे हुए भरत से मुनि वशिष्ठ ने कहा- यशस्वी राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। अब सारा शोक छोड़कर राजा दशरथ के दाह संस्कार का प्रबन्ध करो। तब वशिष्ठ मुनि के वचन सुनकर भरत ने उनके प्रेत कर्म का प्रबन्ध कर दिया। राजा दशरथ का शव तेल के कड़ाह से निकालकर उसे नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित कर उत्तम शय्या पर सुलाया गया। फिर भरत अत्यंत दुःख से भरकर विलाप करते हुए बोले- राजन्! मैं आपके पास

पहुँचने भी नहीं पाया और आपने धर्मज्ञ श्रीराम और लक्ष्मण को वन भेजकर इस तरह स्वर्ग जाने का फैसला कैसे कर लिया। पिताजी! आपके स्वर्ग जाने से यह पृथ्वी विधवा के समान हो गयी है। अब श्रीराम के भी वन चले जाने से प्रजा के योग क्षेम की व्यवस्था कौन करेगा ? भरत को इस प्रकार विलाप करते हुए देखकर वशिष्ठजी ने फिर कहा- महाराज के लिये जो कुछ भी प्रेतकर्म करने हैं उसे शान्ति पूर्वक करिए। तब भरत ने 'बहुत अच्छा' कहकर ऋत्विक पुरोहित, और आचार्य सब को इस कार्य के लिये जल्दी करने को कहा। अब राजा की अग्निशाला से जो अग्नियाँ बाहर निकाली गयी थीं उनमें ऋत्विजों और याजकों द्वारा विधिपूर्वक हवन किया गया। तत्पश्चात् महाराज दशरथ के प्राणहीन शरीर को पालकी में बिठाकर परिपारकगण उसे श्मशान भूमि ले चले। मार्ग में राजकीय पुरुष राजा के शव के आगे आगे सोने चाँदी तथा भांति भांति के वस्त्र लुटाते चलते थे। श्मशान भूमि पर पहुँचकर चिता तैयार की जाने लगी और फिर राजा के शव को चिता पर रक्खा गया। उस समय अग्नि में आहुति देकर ऋत्विजों ने वेदोक्त मंत्रों का जाप किया और ज्ञान श्रुतियों के गायन के पश्चात् चिता में आग लगायी गयी। तत्पश्चात् राजा दशरथ की रानियाँ श्मशान में पहुँचकर राजा दशरथ के शव की परिक्रमा करने लगीं। उस समय उनका करुण क्रन्दन कुररियों के चीत्कार के समान सुनाई देता था। दाहकर्म के पश्चात् वे रानियाँ बारम्बार विलाप करती हुई सरयू के तट पर उतरीं। फिर भरत के साथ रानियों मंत्रियों और पुरोहितों ने भी राजा के लिये जलान्जलि दी। फिर सबके सब नगर में वापस आकर दस दिनों तक भूमि पर शयन करते हुए बड़े दुःख के साथ अपना समय व्यतीत किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७६)

सतहत्तरवाँ सर्ग

भरत का पिता के श्राद्ध में धन-रत्न आदि का दान देना, शत्रुघ्न का विलाप करना और वशिष्ठ का समझाना

तदनन्तर दशाह व्यतीत होने पर भरत ने शुद्धि के लिये श्राद्ध का

Mookerji sharma (Edu) family Collection

अनुष्ठान किया और बारहवाँ दिन आने पर अन्य श्राद्ध कर्म आदि करने के पश्चात् उन्होंने ब्राह्मणों को धन रत्न तथा अन्न आदि दान में दिए। फिर राजा के पारलौकिक हित के लिये बहुत से दास दासियाँ एवं सवारियाँ ब्राह्मणों को दिये तत्पश्चात् वे शोक से पीड़ित हो विलाप करने लगे। उस समय रोते-रोते उनका गला भर आया था। फिर वे चिता स्थान पर अस्थि संचय के लिये आये और दुःखी होकर कहने लगे- तात! आपने मुझे जिन ज्येष्ठ भ्राता रघुनाथ जी के हाथ में सौंपा था उन श्रीराम के वन भेज देने से आपने मुझे सूने में छोड़ दिया। जिसके एक मात्र पुत्र को आपने वन में भेज दिया उन माता कौसल्या को छोड़कर आप कहाँ चले गये। पिता की चिता का वह स्थानमण्डल जली हुईहड्डियोंसेबिखरा पड़ा था। उस सथान को देखते ही भरत दीनभाव से रोते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय भरत को शोक में डूबा हुआ देखकर शत्रुघ्न भी अपने पिता का बार-बार स्मरण करते हुए अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। और पिता के गुणों का स्मरण करते हुए विलाप करने लगे- हा, मन्थरा द्वारा प्रकट होने वाले और कैकेयी रूपी ग्राह से भरे हुए उस वरदान मय शोकरूपी उग्र समुद्र ने हम सबको अपने भीतर डुबा लिया है। तात! आप जिन भरत को इतना प्यार करते थे उन्हें रोता बिलखता छोड़कर आप कहाँ चले गये हैं। अब कौन हमें रुचि की वस्तुएं ग्रहण करने को कहेगा। ऐसे धार्मिक राजा के न रहने से यह पृथ्वी फट क्यों नहीं जाती? पिता स्वर्गवासी हुए और श्रीराम वन चले गये अब मुझमें भी जीवितरहने की शक्ति नहीं। मैं अब तो अग्नि में प्रवेश करूँगा। भरत और शत्रुघ्न के इस विलाप को सुनकर सभी अनुचर वर्ग पुनः शोक से व्याकुल हो उठे। उस समय भरत और शत्रुघ्न दोनों भाइयों को शोक से व्याकुल होते देख सर्वज्ञ वशिष्ठ जी भरत से बोले-प्रभो! आपके पिता के दाह संस्कार का यह तेरहवाँ दिन है। अब अस्थि संचय के कार्य में विलम्ब लगाना ठीक नहीं। भूख-प्यास, शोक-मोह, जन्म मृत्यु सभी प्राणियों में उपलब्ध होते हैं। अतः उसके लिये शोकाकुल होना उचित नहीं। इधर सुमन्त्र ने शत्रुघ्न को भी इसी प्रकार समझाया। उस समय रोते-रोते उनकी आंखें लाल हो उठी थीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७७)

१३

अठहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न का कुब्जा पर अपना रोष उतारना

तेरहवें दिन सब काम समाप्त कर भरत से शत्रुघ्न ने कहा- भैया! यह कितने खेद की बात है कि ऐसे अवसर पर श्रीराम को एक स्त्री द्वारा वन भेज दिया गया है। मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसे समय में महा पराक्रमी भाई लक्ष्मण क्यों चुप बैठे रहे। उन्होंने पिता को कैदकर श्रीराम को इस संकट से क्यों नहीं छुड़ाया। शत्रुघ्न जब ऐसा कह रहे थे उसी समय कुब्जा (मन्थरा) समस्त आभूषणों से विभूषित हो राजभवन के पूर्व द्वार पर आकर खड़ी हो गयी। किन्तु बहुसंख्यक आभूषणों होने के बावजूद वह उस समय एक बानरी के समान जान पड़ती थी। वही सभी बुराइयों की जड़ थी। इसलिये द्वारपाल ने उसे पकड़ लिया और शत्रुघ्न के हाथों में देते हुए कहा- जिसके कारण राम को वन जाना पड़ा और राजा को अपना शरीर त्यागना पड़ा वह क्रूर कर्म करनेवाली पापिनी यही है। द्वारपाल की बात सुनकर शत्रुघ्न का दुःख और बढ़ गया। अब वे अन्तःपुर में रहनेवाले लोगों को सुनाते हुए कहा- इसने जैसा किया है अब उसे वैसा फल भी भोगना होगा। इतना कहकर उन्होंने सखियों से घिरी कुब्जा को पकड़ लिया और रोष में भरकर उसे जमीन पर घसीटने लगे। उस समय कुब्जा (मन्थरा) जोर-जोर से चीत्कार करने लगी। जब मन्थरा घसीटी जा रही थी उस समय उसके आभूषण टूट टूटकर पृथ्वी पर गिरते जा रहे थे। अब मन्थरा को इस तरह घसीटते हुए देखकर कैकेयी से न रहा गया वह उसे छुड़ाने के लिये जैसे ही उनके समीप आयीं वैसे ही शत्रुघ्न ने उसे भी धिक्कारते हुए उसके प्रति बहुत ही कठोर बातें कहीं। शत्रुघ्न के वचन इतने कठोर थे कि कैकेयी अत्यंत भयभीत होकर अपने पुत्र की शरण में आयी। शत्रुघ्न को इस तरह क्रोध में भरा हुआ देखकर भरत ने समझाया- सुमित्रा कुमार! उसे क्षमा कर दो। कारण, स्त्रियाँ कभी बध के योग्य नहीं हुआ करतीं। मैं पापिनी कैकेयी को भी मार डालता यदि मुझे इस बात का भय होता कि भैया मुझे मातृघातीन समझकर मुझसे घृणा न करने लगेंगे। यदि वे इस कुब्जा के मारे जाने का समाचार जान लेंगे तो निश्चय ही वे हम दोनों से बोलना छोड़ देंगे। यह

Mookerji sharma (I R S) Jammu Collection

सुनकर शत्रुघ्न ने मन्थरा को उसी मूर्छित अवस्था में ही छोड़ दिया। अब कैकयी आगे बढ़कर उसे होश में लाने की कोशिश करने लगी। उस समय मन्थरा कैकेयी के पिंजड़े में कैद हुए पक्षी की भांति कातर दृष्टि से देख रही थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७८)

उनासीवाँ सर्ग

भरत का श्रीराम को वन से लौटा लाने के लिये सबको आज्ञा देना

तत्पश्चात् चौदहवें दिन राज्य कर्मचारियों ने भरत से कहा-राजकुमार! अब महाराज दशरथ श्रीराम को वन भेजकर स्वयं परलोक गामी हो गये हैं, इस कारण राज्य का कोई स्वामी नहीं रह गया है। अतः ऐसे समय में आपका ही राजा होना न्याय संगत है। इस राज्य को आप अपने अधिकार में लेकर किसी के प्रति कोई अन्याय नहीं कर रहे हैं। अब उन लोगों की बात सुनकर भरत ने तत्कालउत्तर दिया-सज्जनों! आप लोग तो विद्वान हैं इसलिए मुझसे ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। हमारे कुल की यही रीति है कि, ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी बने। अतः उसके अनुसार श्रीरामचन्द्रजी यहाँ के राजा बनेंगे और उनके बदले मैं चौदह वर्षों तक वन में निवास करूँगा। अब आप लोग इसके लिये तुरन्त चतुरंगिणी सेना तैयार कीजिये। मैं अपने भ्राता श्रीराम को वन से लौटा लाने के लिये शीघ्र प्रस्थान करूँगा। मैं अपने अभिषेक के लिये इकट्ठी की गयी सामग्री को लेकर वहाँ जाऊँगा और श्रीराम का वहीं अभिषेककर उन्हें अयोध्या वापस लाऊँगा। मैं कैकेयी का मनोरथ किसी तरह सफल नहीं होने दूँगा। श्रीराम निश्चित रूप से यहाँ के राजा होंगे और मैं वन में निवास करूँगा। इसके लिये कारीगर आगे चलकर मार्ग तैयार करें और दुर्गम स्थान की जानकारी रखनेवाले रक्षक भी मेरे साथ चलें। भरत की यह बात सुनकर वहाँ पर आये हुए लोगों ने कहा- भरतजी! आपने जो इतने सुन्दर वचन कहे हैं इसके लिये कमलवन में निवास करनेवालीलक्ष्मी आपके पास अवस्थित हों। उन लोगों की बातें सुनकर भरत की आंखों से हर्ष जनित

आँसू बहने लगे। इधर भरत के मुख से श्रीराम को वापस ले आने की बात सुनकर मंत्रियों सहित सभी राज्य कर्मचारियों का हृदय हर्ष से खिल उठा। उनका सारा शोक दूर हो गया। फिर भरत की आज्ञानुसार उन्होंने कुशल कारीगरों और रक्षकों को मार्ग ठीक करने के लिये भेज दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में उन्नासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७९)

अस्सीवाँ सर्ग

अयोध्या से गंगातट तक सुखद राजमार्ग का निर्माण

तत्पश्चात् मार्ग निर्माण आदि के लिये कुशल कारीगरों ने अयोध्या से प्रस्थान किया। मार्ग ठीक करने के लिये एक विशाल जनसमुदाय इस भांति आगे बढ़ रहा था जैसे समुद्र का महान वेग। जो मार्ग निर्माण में कुशल कारीगर थे वे नाना प्रकार की झाड़ियां और वृक्षों को काटकर मार्ग तैयार करने लगे। उनमें जो शक्तिशाली थे उन्होंने कुश, क़ास आदि के झुरमुटों को हाथों से ही उखाड़ फेंका। यहाँ तक दुर्गम स्थानों को भी खोद खोदकर बराबर कर देते। दूसरे लोग मार्ग के गड्ढों को धूलों से ही पाट देते। उन्होंने जहाँ पुल बाँधने योग्य पानी देखा वहाँ पुल बांध दिये। जहाँ कँकरीली जमीनः दिखायी दी वहाँ उसे ठोंक पीटकर मुलायम कर दिया। उन्होंने जिस जगह जैसी जमीन देखी उस जगह वैसा ही काम किया। छोट-छोटे बहनेवाले सोतों को बाँधकर बड़ा सा जलाशय बना दिया। जहाँ निर्जन स्थान था वहाँ जमीन खोदकर कुँए बनवा दिये गये। इस तरह सेना के लिये बना हुआ वह मार्ग देव मार्ग से अधिक शोभा पाने लगा। सारे मार्गों को पताकाओं से सजा दिया गया था और उस पर चन्दन मिश्रित जल का छिड़काव कर दिया गया था। स्वादिष्ट फलों वाले सुन्दर प्रदेशों में छावनियाँ बनवा दी गयीं और उन्हें अच्छी प्रकार सजा दिया गया। नाना प्रकार के वृक्षों और वनों से सुशोभित शीतल निर्मल जल से भरी हुई और मछलियों से भरे गंगा किनारे तक बना वह मार्ग उस समय बड़ी शोभा पा रहा था।

' इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८०)

इक्यासीवाँ सर्ग

प्रातः काल के मंगल वाद्य घोष को सुनकर भरत का दुःखी होना

इधर रात का थोड़ा सा भाग शेष देखकर स्तुति कला के विशेषज्ञ सूत और मागधों ने स्तुतियों द्वारा भरत का स्तवन शुरू कर दिया। उस समय बाजा बजाने वालों ने शंख तथा दूसरे दूसरे प्रकार के सैकड़ों बाजे बजाये। उस तुमुल घोष को सुनकर शोक संतप्त भरत पुनः शोकाग्नि में जलने लगे और नींद से उठकर बोले- शत्रुघ्न! देखो, कैकेयी ने जगत् का कितना बड़ा अपकार किया है। महाराज दशरथ मुझ पर बहुत से दुःखों का बोझ डालकर स्वर्ग लोक चले गये। श्रीराम को, जो हमारे स्वामी और संरक्षक हैं मेरी माता ने धर्म को तिलान्जलि देकर वन भेज दिया है। उस समय भरत को रोता हुआ देखकर रनिवास की सारी रानियाँ भी फूट फूटकर रोने लगीं। वे सब जब इसी प्रकार विलाप कर ही रहे थे कि उसी समय मुनि वशिष्ठ राजा दशरथ के सभाभवन में आ पहुँचे उन्होंने वहाँ एक सुवर्णमय पीठ पर बैठकर दूतों को आज्ञा दी- तुम लोग जाकर ब्राह्मणों क्षत्रियों योद्धाओं, आमात्यों और सेनापतियों को शीघ्र बुला लाओ। साथ ही यशस्वी भरत और शत्रुघ्न, मंत्री युधाजित् और सुमन्त्र तथा अन्य जो भी हितैषी पुरुष हों उन्हें भी शीघ्र बुला लाओ। हमें उनसे आवश्यक कार्य है। तत्पश्चात् आनेवालों की भीड़ से महान् कोलाहल मच गया। उस समय उन सबने भरत का राजा दशरथ की भाँति अभिनन्दन किया। फिर वह सभा उसी प्रकार शोभा पाने लगी जैसे पूर्वकाल में राजा दशरथ की उपस्थिति से शोभा पाती थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८१)

बयासीवाँ सर्ग

वशिष्ठ जी का भरत को राज्याभिषेक का आदेश देना किन्तु भरत का अस्वीकार करना

इस सभा में धर्म के ज्ञाता पुरोहित वशिष्ठ ने सब मंत्री प्रजा आदि को उपस्थित देखकर भरत से बोले- तात! राजा दशरथ यह राज्य तुम्हें देकर

स्वर्गवासी हुए। श्रीराम पिता की आज्ञा मानकर वन चले गये। इस प्रकार पिता और ज्येष्ठ भ्राता दोनों ही ने यह अकण्टक राज्य तुम्हें प्रदान किया है। आज तुम शीघ्र ही इस पद हेतु अपना अभिषेक करा लो जिससे उत्तर, पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और देशों के राजा तुम्हें असंख्य रत्न प्रदान करें। यह सुनते ही भरत शोक में डूब गये और आँसू बहाते हुए वशिष्ठ जी को उलाहना देते हुए बोले- गुरुदेव! सदैव धर्म में लगे हुए श्रीरामचन्द्र के राज्य को मेरे जैसा कौन मनुष्य अपहरण कर सकता है। यह राज्य और मैं दोनों ही श्रीराम के हैं। यह समझकर आपको ऐसी अन्याय युक्त बात नहीं करनी चाहिए। श्रीराम अवस्था और गुण दोनों में मुझसे बड़े हैं। इसलिए उनके सिवा इस राज्य को पाने का कोई अधिकारी नहीं हो सकता। श्रीराम जी के इस राज्य को लेकर मैं अपयश का भागी बनूँ और इक्ष्वाकु कुल का कलंक समझा जाऊँ ऐसा मुझसे नहीं हो सकता। माता ने जो पाप किया उसे मैं पसन्द नहीं करता और यहीं से श्रीरामचन्द्रजी को हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। क्योंकि वे ही राज्य के राजा होने योग्य हैं। भरत की इस बात को सुनकर सभी सभासद की आँखों से आँसू बहने लगे। भरत ने भी आँसू बहाते हुए फिर कहा- मैं यदि श्रीराम को वन से नहीं लौटा सका तो नर श्रेष्ठ लक्ष्मण की तरह वहीं निवास करूँगा। वैसे मैं श्रीरामचन्द्रजी को वन से लौटा लाने के लिये सारी चेष्टाएं करूँगा। मेरे सारे कुशल कार्यकर्ताओं को मार्ग शोधन के लिये पहले से ही भेज दिया गया है। अतः मुझे भी श्रीराम चन्द्रजी के पास चलना ही अच्छा जान पड़ता है। फिर भरत सुमन्त्र से कहने लगे- आप उठकर जल्दी जाइये और मेरी ओर से सब को वन में चलने का आदेश दीजिये। सेना को भी शीघ्र ही बुला लीजिये। भरत जी के इतना कहने पर सुमन्त्र ने सब को वह प्रिय संदेश सुना दिया। यह सुनकर सभी प्रजागण और सेना के लोग बहुत प्रसन्न हो उठे। उनकी स्त्रियाँ भी प्रसन्न होकर उन्हें जल्दी तैयार होकर वन में जाने के लिये प्रेरित करने लगीं। फिर सब के तैयार हो जाने पर भरत ने सुमन्त्र से कहा- आप मेरे रथ को शीघ्र तैयार करके ले आइये। सुमन्त्र भरत की आज्ञा पाकर वैसा ही करने को तत्पर हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८२)

Mookerji sharma (HFC) Jammu collection

तिरासीवाँ सर्ग

भरत की वन यात्रा

तदनन्तर प्रातः काल उठकर भरत रथ पर सवार होकर श्रीरामचन्द्र के दर्शन की इच्छा से शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चल पड़े। उनके आगे आगे सभी मंत्री और पुरोहित घोड़े जुते हुए रथों पर यात्रा कर रहे थे। भरत के पीछे पीछे सजाये हुए नौ हजार हाथी चल रहे थे। उनके साथ साठ हजार रथ और आयुध धारण करनेवाले धनुर्धर भी थे। उसी प्रकार उनके पीछे पीछे एक लाख घुड़सवार भी थे। कैकेयी, सुमित्रा और कौसल्या भी रथ पर सवार होकर उसमें सम्मिलित हुईं। उस समय सभी लोग श्रीराम और लक्ष्मण के सम्बन्ध में तरह-तरह की बातें करते हुए आगे बढ़ने लगे। वे कहते थे संसार का दुःख दूर करने वाले श्रीराम का दर्शन हम लोग कब करेंगे? श्री रघुनाथजी हमारी आँखों के सामने पड़ते ही हम लोगों का सारा शोक संताप दूर कर देंगे। इसी प्रकार बातें करते हुए वे लोग हर्ष से आगे बढ़ रहे थे। उस समय मणिकार, अच्छे कुम्भकार गन्धी सोनार, दंतकार सुधाकर , वैद्य, शौण्डिक, धोबी दर्जी, महतो, नट, केवट तथा वेदवेत्ता सैकड़ों ब्राह्मण वन की यात्रा के लिये भरत के पीछे-पीछे चल रहे थे। उन सबने भी बड़ा सुन्दरवेश धारण कर रक्खा था और नाना प्रकार के वाहनों पर सवार थे। हर्ष और आनन्द में भरी वह सेना भाई को बुलाने के लियेप्रस्थित भरत के पीछे धीरे धीरे चलने लगी। इस प्रकार चलते हुए वे शृंगवेरपुर में गंगाजी के तट पर जा पहुँचे। वहाँ श्रीरामचन्द्र का सखा निषादराज गुह उस देश की रक्षा करता हुआ अपने भाई बन्धुओं के साथ निवास करता था। अब भरत का अनुसरण करनेवाले लोग वहीं ठहर गये। उस समय भरत ने अपने सचिवों से कहा- आप लोग मेरे सैनिकों को उनकी इच्छानुसार यहाँ सब ओर ठहरा दीजिये। यहाँ मैं गंगाजी में उतरकर स्वर्गीय महाराज के पारलौकिक कल्याण हेतु जलान्जलि देना चाहता हूँ। उनके आदेशानुसार सैनिकों के ठहरने की व्यवस्था उनकी इच्छानुसार कर दी गयी। भरत भी अब महात्मा राम के विषय में विचार करते हुए वहीं निवास किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या कॉण्ड में तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८३)

चौरासीवाँ सर्ग

निषादराज गुह का भेंट की सामग्री लेकर भरत के पास जाना

उधर निषाद राज ने गंगा के तट पर ठहरी भरत की सेना को देखकर अपने भाई बन्धुओं से कहा- भाइयों जो समुद्र की तरह विशाल सेना यहाँ ठहरी हुई है उसका मैं अंत नहीं पा रहा हूँ। निश्चय ही मुझे ऐसा लगता है कि यहाँ दुर्बुद्धि भरत जो अपनी सेना के सहित आया है वह हमारा बध करके श्रीराम को भी मार डालेगा। लेकिन दशरथ कुमार श्रीराम मेरे स्वामी और सखा हैं। अतः उनकी सुरक्षा के लिये तुम लोग भी अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो गंगा तट पर उपस्थित हो जाओ। यदि उस समय भरत का भाव श्रीराम के प्रति संतोषजनक होगा तभी उनकी यह सेना गंगा के पार जा सकेगी। इतना कहकर निषाद राज फल और मधु आदि भेंट की सामग्री लेकर भरत के पास गया।उसे आता देख सुमंत्र भरत से बोले- राजन्! यह बूढ़ा निषादराज गुह अपने सहस्त्रों भाई बन्धुओं सहित यहाँ रहता है और श्रीराम का सखा है। इसे दण्डकारण्य मार्ग की विशेष जानकारी है और इसे अवश्य ही पता होगा कि श्रीराम और लक्ष्मण कहाँ हैं? अतः तुम अवश्य उसकी सहायता लो। अब यह सुनते ही भरत ने शीघ्र उसे अपने पास मिलने के लिए बुला लिया। उस समय भरत से मिलकर निषाद राज गुह ने बड़ा ही विनम्रता से कहा- राजकुमार! आपने अपने आगमन की सूचना न देकर हमें धोखे में रख दिया क्योंकि इससे हम आपके स्वागत की कोई तैयारी न कर सके। अतः इस समय हमारे पास जो कुछ है वह सब आपकी सेवा में अर्पित है। यह घर भी आपका है आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। अब हम अपने साथ जो फल फूल लाये हैं उसे ग्रहण करें। मुझे आशा है आज की रात आपकी सेना यहीं ठहरेगी और हमारा दिया हुआ भोजन स्वीकार करेगी। फिर कल आपको जहाँ जाना होगा चले जाइयेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८४)

Mookerji Sharma Collection

पचासीवाँ सर्ग

गुह और भरत की बातचीत

निषाद राज गुह की बात सुनकर भरत बोले- भैया! तुम मेरे बड़े भाई श्रीराम के सखा हो। तुम मेरा सत्कार करना चाहते हो इस श्रद्धा से ही अब हमारा सत्कार हो गया। इतना कह भरत फिर बोले- निषादराज! सामने जो दो मार्ग दिखलायी पड़ रहे हैं उनमें से किसके द्वारा मुझे भरद्वाज मुनि के आश्रम पर जाना होगा। भरत की यह वाणी सुनकर गुह ने हाथ जोड़कर कहा- राजकुमार! आपके साथ बहुत से मल्लाह जायेंगे जो मार्गों से भलीभाँति परिचित हैं। इसके सिवा मैं भी आपके साथ चलूँगा। लेकिन एक बात आप यह अवश्य बताइये कि क्या आप श्रीराम के प्रति कोई दुर्भावना रखकर तो उनसे मिलना नहीं चाहते। क्योंकि आपकी यह विशाल सेना देखकर मेरे मन में कुछ शंका हो रही है। यह सुनते ही भरत ने बड़ी ही मीठी वाणी में गुह को समझाया- निषादराज तुमने जो कहा है ऐसा समय कभी न आये। तुम्हारी बातों से मुझे बड़ा कष्ट हुआ। तुम्हें मुझ पर संदेह न करना चाहिए क्योंकि श्री रघुनाथ जी मेरे बड़े ही नहीं पिता के समान हैं। मैं उन्हें वन से लौटा ले आने के लिए जा रहा हूँ। तुम्हें इसके सिवा दूसरा कुछ सोचना ही नहीं चाहिए। यह सुनते ही निषादराज प्रसन्नता से बोला- कंटकमय वन में रहनेवाले श्रीराम को जो आप लौटा ले आना चाहते हैं इसके समान पुण्य का और कोई दूसरा काम नहीं। इससे आपकी अक्षय कीर्ति का प्रसार होगा। गुह से भरत की इस प्रकार की बातें हो ही रही थीं कि रात आ गयी। अब सेना को विश्राम करने की आज्ञा देकर भरत भी शत्रुघ्न के साथ शयन करने लगे। लेकिन उस समय श्रीराम की याद आते ही भरत शोकाग्नि से संतप्त हो उठे और इससे उनके सम्पूर्ण अंगों में पसीना आ गया। उस समय उनका मन दुःख से इतना भर उठा कि वे लम्बी-लम्बी सांस लेते हुए अशान्ति से पीड़ित हो उठे। भरत की यह दशा देखकर गुह ने उन्हें पुनः आश्वासन दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८५)

छियासीवाँ सर्ग

निषादराज के द्वारा लक्ष्मण के सद्भाव का वर्णन

तदनन्तर वनचारी गुह ने भरत से लक्ष्मण के सद्भाव का वर्णन करते हुए कहा- अपने भाई की रक्षा के लिए लक्ष्मण बहुत देर तक जागते रहे। उस समय मैंने लक्ष्मण से कहा- तात! मैंने तुम्हारे लिए सुखदायिनी शय्या तैयार कर दी है। तुम सुखपूर्वक इस पर सो जाओ। तुम सुख में पले हो और उसी के योग्य हो। श्रीराम की रक्षा के लिये हम लोग रात भर जागते रहेंगे। मेरे लिए इस संसार में राम से बढ़कर प्रिय कोई दूसरा नहीं है। अतः मैं समस्त बान्धवों सहित हाथ में धनुष लेकर सीता के साथ सोये प्रिय सखा श्रीराम की सब प्रकार से रक्षा करूंगा। इस वन में सदा विचरते रहने के कारण मुझसे यहाँ की कोई बात छिपी नहीं है। यह सुनकर धर्मज्ञ लक्ष्मण जी हम लोगों से विनयपूर्वक बोले- निषादराज! जब रघुकुल भूषण श्रीराम सीता के साथ भूमि पर सो रहे हैं उस समय मेरा उत्तम शय्या पर सोना अथवा दूसरे सुखों को भोगना कैसे सम्भव हो सकता है? देखो, सारे देवता और असुर युद्ध में जिनको हरा नहीं सकते वे ही इस समय तिनकों की शय्या पर लेटे हैं। भीषण तप करने के पश्चात् राजा दशरथ को जो ज्येष्ठ पुत्र के रूप में प्राप्त हुए, उन श्रीराम के वन चले आने से वे भी अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकेंगे। महारानी कौसल्या, राजा दशरथ और मेरी माता सुमित्रा आज की रात तक जीवित रहेंगी या नहीं, इसे भी मैं नहीं कह सकता। शत्रुघ्न की बाट जोहने के कारण शायद मेरी माता सुमित्रा जीवित रह जाये किंतु विरह में डूबी कौसल्या अवश्य नष्ट हो जायेंगी। महाराज की इच्छा श्रीराम को राज्य पर अभिषिक्त करने की थी वे अपनी इच्छा की पूर्ति होते हुए न देखकर हाय, मैं लुट गया, कहकर प्राण छोड़ देंगे। उनके मरने पर जो उनके दाह संस्कार में सम्मिलित होंगे वे अवश्य भाग्यशाली होंगे। जिनमें अनेक चौराहे तथा सुन्दर-सुन्दर मार्ग बने हैं और जो महल अटारियों से अत्यंत शोभायमान हो रहा है तथा जिसमें अनेक सुन्दर बाग बगीचे हैं। साथ ही जिसमें प्रतिदिन सुन्दर बाजे बजते हैं और हर दिन सभायें होती हैं क्या उस अयोध्या में हम लोग कभी अपनी वनवास की अवधि पूरी करने के उपरान्त प्रवेश कर सकेंगे? हे भरत!

इस तरह विलाप करते हुए लक्ष्मण की सारी रात जागती ही बीती। तत्पश्चात् प्रातः काल होते ही मैंने वट के दूध से उनके केशों को जटा का रूप दिलवाया और तब वे वल्कल वस्त्र पहन कर यहाँ से शीघ्र ही चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८६)

सत्तासीवाँ सर्ग

गुह की बात से भरत का मूर्च्छित होना और माताओं का दुःखी होना

गुह से श्रीराम के जटा धारण आदि से सम्बन्ध रखनेवाली बात सुनकर भरत चिंतामग्न हो गये। यद्यपि वे महान बलशाली थे फिर भी वे गुह की बात सुनकर अपने धैर्य को न रख सके और शिथिल होकर पृथ्वी पर गिर कर मूर्च्छित हो गये। भरत की यह अवस्था देखकर गुह अत्यंत व्यथित हो उठा और पास बैठे हुए शत्रुघ्न भी जोर-जोर से रोने लगे। तदनन्तर भरत की सभी माताएं भी उन्हें परे कर व्याकुल होकर रोने लगीं। कौशल्या ने तो अत्यंत कातर होकर भरत को अपनी गोद में चिपका लिया और फिर पूछने लगीं- बेटा! तुम्हारे शरीर में कोई रोग तो नहीं हो गया क्योंकि महाराज दशरथ के स्वर्गवासी होने के कारण तुम्हीं हम लोगों के एक मात्र रक्षक हो। सच-सच बताओ क्या तुमने वन में गये हुए श्रीराम के विषय में कोई अप्रिय बात तो नहीं सुनी। तत्पश्चात् दो घड़ी बाद जैसे ही भरत को चेत हुआ वैसे ही वे बोले- माँ! घबराओ नहीं मैं श्रीराम के बारे में कोई अप्रिय बात नहीं सुनी है। फिर निषाद राज गुह से पूछा- गुह! उस दिन श्रीराम यहाँ ठहरे थे। सीता कहाँ थी? और लक्ष्मण कहाँ रहे? ये सब बातें मुझे विस्तार से बताओ। गुह भरत के प्रश्न से बड़ा हर्षित हो उठा और उनसे सारी बातें बताते हुए कहा- मैंने भांति-भांति के अन्न खाद्य पदार्थ श्रीराम के लिये प्रचुर मात्रा में पहुंचाए। किंतु उन्होंने कुछ भी ग्रहण न करके उन्हें लौटाते हुए कहा- सखे! हम क्षत्रियों को किसी से कुछ लेना नहीं चाहिए अपितु देना ही चाहिए। श्रीराम ने उस रात उपवास रक्खा और केवल लक्ष्मण द्वारा लाये हुए जल को ही पीया।

फिर बचे हुए जल को लक्ष्मण ने ग्रहण करके स्वयं श्रीराम के लिये सुन्दर बिछौना तैयार किया और फिर उन दोनों का चरण पखार कर वहाँ से दूर हट आये। भरत! यह वही इंगुदी वृक्ष की जड़ और वही यह तृण है जहां श्रीराम और सीता दोनों ने शयन किया था। उस समय लक्ष्मण अपनी पीठ पर तरकस बांधे हुए चारों ओर घूम-घूम कर पहरा देते रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सत्तासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८७)

अट्ठासीवाँ सर्ग

श्रीराम की शय्या देखकर भरत का शोकपूर्ण उद्गार

निषाद राज की बात सुनकर भरत इङ्गुमती नदी के किनारे श्रीरामचन्द्र की शय्या का निरीक्षण किया और माताओं से कहा- यहीं महात्मा श्रीराम ने भूमि पर लेटे हुए रात बितायी थी। जो पुरुष सिंह श्रीराम मुलायम मृगचर्म की चादर से ढके हुए बिछौने पर सोते थे वे इस समय भूमि पर कैसे सोते होंगे? जो श्रेष्ठ अट्टालिकाओं में सोने चांदी के बने फर्शों पर सोते थे वे श्रीराम वन में पृथ्वी पर कैसे सोते होंगे? जो गीतों और वाद्यों की मधुर ध्वनियों से सदा जगाये जाते थे वे राम अब भूमि पर कैसे शयन करते होंगे। इससे लगता है कि काल के समान कोई प्रबल देवता नहीं क्योंकि उसी के प्रभाव से श्रीराम को भी इस प्रकार भूमि पर सोना पड़ा और उसी के प्रभाव से सीता को भी पृथ्वी पर सोने के लिये मजबूर होना पड़ा।

मेरी समझ से पति की शय्या कोमल हो या कठोर स्त्रियों के लिये वही सुखदायिनी होती है तभी तो सती साध्वी सीता को भी यहाँ किसी दुःख का अनुभव नहीं हुआ। हाय, श्रीराम को ऐसी शय्या पर सोना पड़ा। इसलिये मेरा जीवन व्यर्थ हो गया। वास्तव में विदेह नन्दिनी सीता ही कृतार्थ हुई, जिन्होंने पति के साथ वन का अनुसरण किया है। अब हमें तो यह संदेह होने लगा है कि श्रीराम हमारी सेवा स्वीकार भी करेंगे या नहीं। उनके वन चले जाने से यह सारी पृथ्वी बिना नाविक के नौका के समान सूनी-सूनी सी प्रतीत होती है और इसे कोई शत्रु मन से भी ग्रहण नहीं करना चाहता। आज से मैं भी पृथ्वी पर अथवा तिनकों पर ही सोऊंगा। फल मूल का ही भोजन करूँगा

Mookerji Jammu Collection

और सदा बल्कल वस्त्र तथा जटा धारण करूँगा। वनवास के जितने दिन बाकी हैं इतने दिनों तक मैं भी वहांसुखपूर्वक निवास करूंगा। इससे आर्य श्रीराम की प्रतिज्ञा झूठी नहीं होगी। इस समय शत्रुघ्न मेरे साथ होंगे और मेरे बड़े भाई श्रीराम लक्ष्मण को साथ लेकर अयोध्या का पालन करेंगे। अयोध्या के ब्राह्मण इनका राजतिलक करेंगे। इसके लिये मैं चरणों पर मस्तक रखकर उन्हें मनाने की चेष्टा करूंगा। यदि वे लौटने के लिये तैयार न हुए तो भी उन्हीं के साथ मैं निवास करूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८८)

नवासीवाँ सर्ग

भरत का भरद्वाज आश्रम पर जाना

श्रृंगवेरपुर में रात बिताकर भरत प्रातः काल उठकर शत्रुघ्न से बोले- उठो और निषादराज गुह को बुला लाओ क्योंकि वही हमें गंगा पार उतारेगा। भरत यह कह ही रहे थे कि उसी समय गुह भी वहाँ आ पहुँचा और हाथ जोड़ कर बोला- भरतजी! आपकी रात तो सुखपूर्वक बीती है न? उसकी बात सुनकर भरत जी ने कहा- हमारी रात तो बड़े सुखपूर्वकबीती है। लेकिन अब ऐसी व्यवस्था करो जिससे हम सब गंगा के पार उतर जायें। भरत का यह आदेश सुनकर गुह तुरंत नगर में गया और अपने बन्धु बान्धवों से बोला, "उठो और नौकाओं को बीच घाट पर ले आओ।"भरत जी की सेना को गंगाजी के पार उतारना है। अपने राजा की इस आज्ञा को सुनकर सभी मल्लाह उठ खड़े हुए और पांच सौ नौकाएं एकत्र कर लाये। इनके अतिरिक्त कुछ स्वस्तिक नाम से प्रसिद्ध नौकाएं भी आयीं। उनमें स्वस्तिक के चिह्न बने थे और ऐसी पताकाएं फहरा रही थीं जिनमें बड़ी-बड़ी घन्टियां लटक रही थी। उन्हीं में से एक नाव जिस पर मांगलिक शब्द हो रहा था उस पर सबसे पहले पुरोहित गुरू और ब्राह्मण तत्पश्चात् भरत, शत्रुघ्न, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी तथा राजा दशरथ की जो अन्य रानियां थीं, वे सब सवार हुईं। तदनन्तर राजपरिवार की दूसरी स्त्रियां बैठीं। उस समय्ट जो महान कोलाहल मचा वह आकश में गूंज उठा। उस समय कितनी ही नौकाएं

स्त्रियों से भरी थीं और कुछ घोड़े खच्चर बैल आदि वाहनों को ढो रहे थे। कितने ही मनुष्य नावों पर बैठे थे और कितने ही बाँस और तिनकों से बने हुए बेड़ों पर सवार थे। कुछ लोग बड़े-बड़े कलशों, कुछ छोटे घड़ों और कुछ अपनी बाहुओं से ही तैर कर पार हो रहे थे। इस प्रकार मल्लाहों की सहायता से वह सारी सेना गंगा के पार उतारी गयी। फिर वह स्वयं प्रयाग वन की ओर प्रस्थान करने लगीं। वहां पहुंचकर सेना को विश्राम करने की आज्ञा देकर भरत ऋषियों के साथ मुनि भरद्वाज के दर्शन करने के लियेगये।वहां जाकर भरत ने देखा कि उनका आश्रम मनोहर पर्णशालाओं और वृक्षावलियों से सुशोभित था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८९)

नब्बेवाँ सर्ग

भरद्वाज मुनि का भरत को अपने ही आश्रम पर ठहरने का आदेश देना

उस समय भरत केवल दो रेशमी वस्त्र पहने हुए पुरोहितों को आगे कर तथा मंत्रियों को अपने साथ ले वहाँ पैंदल ही गये। आश्रम में प्रवेश करके भरत ने राजोचित वस्त्र उतार कर वहां रख दिए फिर पुरोहित वशिष्ठ जी को आगे कर वे पोछे पोछे ऋषि के पास गये। अब वशिष्ठ को देखकर भरद्वाज मुनि आसन से उठ खड़े हुए और शिष्यों से शीघ्रतापूर्वक अर्घ्य ले आने को कहा। फिर वे वशिष्ठ से मिले। तत्पश्चात् भरत ने उनके चरणों को प्रणाम किया। महात्मा भरद्वाज उन्हें देखते ही समझ गये कि वे राजा दशरथ के पुत्र हैं। उस समय भरद्वाज ने उन लोगों से अयोध्या का कुशल समाचार पूछा। महाराज़ दशरथ के मृत्यु का वृत्तान्त वे जानते थे इसलिये उसके बारे में कुछ नहीं पूछा। तदनन्तर वशिष्ठ और भरत ने भी महर्षि से उनके शरीर, शिष्य वर्ग, पेड़-पत्ते तथा मृग-पक्षी आदि का कुशल समाचार पूछा। मुनि भरद्वाज ने 'सब ठीक है' ऐसा कहकर भरत से बोले- तुम तो राज्य कर रहे हो न ? फिर तुम्हें यहाँ आने की क्या आवश्यकता पड़ी। जाने क्यों तुम पर मेरा विश्वास नहीं जमता। तुम इस समय अकण्टक राज्य भोगने के लिये श्रीराम का कोई

अनिष्ट तो नहीं करना चाहते? भरद्वाज जी की बात सुनकर भरत की आँखें डबडबा आयीं। वे लड़खड़ाती वाणी में बोले- भगवन्! यदि आप जैसे महर्षि भी मुझे ऐसा समझते हैं तब तो मैं हर तरह से मारा गया। राम के वनवास देने में मेरी ओर से कोई अपराध नहीं हुआ। मेरी आड़ लेकर मेरी माता ने जो कुछ किया उसे मैं स्वीकार ही नहीं करता हूँ। मैं तो श्रीराम को प्रसन्न करके उन्हें अयोध्या लौटा लाने के उद्देश्य से यहाँ आया हूँ। भगवन्! मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि इस समय श्रीराम कहाँ हैं? तत्पश्चात् वशिष्ठ आदि मुनियों ने भी भरत को निरपराध बताया। तब यह जानकर मुनि भरद्वाज ने कहा- तुम रघुकुल में हुए हो इससे तुम्हारे अन्दर ऐसा भाव आना उचित ही है। मैं तुम्हारे मन के भावों को पहले से ही समझता था केवल उसे दृढ़ करने के लिये मैंने ऐसा प्रश्न पूछा था। मैं सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का ठिकाना जानता हूँ। वे लोग इस समय चित्रकूट पर्वत पर निवास कर रहे हैं। भरत! अब तुम मेरी एक अभिलाषा यह भी पूरी करो कि आज रात तुम मंत्रियों सहित यहीं निवास कर कल यहीं से प्रस्थान करना। भरत यह सुनकर वह रात मुनि के आश्रम में ही बिताने का विचार किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९०)

इक्यानबेवाँ सर्ग

भरद्वाज मुनि के द्वारा सेना सहित भरत का दिव्य सत्कार

महर्षि भरद्वाज का दिया हुआ आतिथ्य सत्कार स्वीकार करते हुए भरत ने कहा- मुने! वन में जैसा आतिथ्य सत्कार सम्भव है वह तो आप कर ही चुके हैं। भरत के ऐसा कहने से मुनि ने कहा- भरत! मैं जानता हूँ कि तुम्हें जो कुछ दूंगा तुम उसी से संतुष्ट हो जाओगे। किंतु इस समय मैं तुम्हारीसेनाको भोजन कराना चाहता हूँ। पुरुष प्रवर! तुम अपनी सेना को किसलिये इतनी दूर छोड़कर यहाँ आये हो। उनकी बात सुनकर भरत बोले- मुनि! मैं आपके भय से ही सेना के साथ यहाँ नहीं आया। प्रभो! मेरे साथ बहुत से अच्छे-अच्छे घोड़े, मनुष्य और मतवाले हाथी हैं। जो बड़े-बड़े भूभाग को ढंक कर चलते हैं। वे पर्णशालाओं को हानि पहुँचा सकते हैं। इसलिये उन्हें छोड़कर मैं

अकेला आया हूँ। तब महर्षि ने सेना को वहीं बुलवाने की आज्ञा दी। भरत ने उनकी आज्ञा से समस्त सेना को वहीं बुलवा लिया। तत्पश्चात् मुनि ने अग्निशाला में प्रवेश किया और विश्वकर्मा देवता का आवाहन करते हुए कहा- मेरे मन में सेना सहित भरत का आतिथ्य सत्कार करने की इच्छा हुई है। इसलिये उसका वे आवश्यक प्रबंध कर दें। मैं इन्द्र सहित यम, वरुण, कुबेर नामक देवताओं का भी आवाहन करता हूँ। मैं इस भूमि और अंतरिक्ष में बहनेवाली नदियों को भी याद करता हूँ ताकि उनसे सुरा धारा बहने लगे तथा कुछ नदियाँ ईख के रस के समान सुन्दर और मीठा रस बहायें। मैं देव गन्धर्व तथा अप्सराओं का भी आवाहन करता हूँ। जोअप्सरायें इन्द्र की सभा में उपस्थित होती हैं तथा जो देवांगनायें ब्रह्मा जी की सेवा में जाया करती हैं। उन सबका भी मैं आवाहन करता हूँ ये नृत्यगीत से आवश्यक साज सामान के साथ यहाँ आ जायें। कुबेर का चित्र रथ वन मेरे आश्रम के समीप आ जाये जिनके वृक्ष के पत्ते वस्त्र तथा आभूषण हैं और उन वृक्ष के फल स्त्री रूप हैं। यहाँ चन्द्र भगवान उत्तम वस्त्र, नाना प्रकार के भक्ष्य भौज्य, लेप्य की भी प्रचुर मात्रा में व्यवस्था करें। वे ही नाना प्रकार के फलों के गूदे तथा पेय पदार्थ प्रस्तुत करें। इस प्रकार भरद्वाज मुनि ने एकाग्रचित्त होकर उन सबका आवाहन किया। अब उनके स्मरण करते ही वे सभी देवता एक-एक करके वहां आ पहुँचे। उनके आते ही मलय और दर्दुर नामक पर्वतों से आयी हुई सुगंधित हवा बहने लगी, और अप्सरायें नृत्य करने लगीं तथा देवताओं गंधर्वों में गान प्रारम्भ हो गये। चारों ओर पांच योजन तक की भूमि समतल हो गयी। उस पर वैदूर्यमणि के समान हर तरह की घास छा गयी थी। स्थान-स्थान पर बेल, कैथ, कटहल और आम के वृक्ष लग गये थे जो फलों से सुशोभित हो रहे थे। साथ ही वहाँ चैत्ररथ नामक वन और अनके तटवर्ती वृक्षों से घिरी नदियाँ आ पहुंची। हाथी और घोड़ों के रहने के लिये शालायें बन गयीं। अट्टालिकाओं से युक्त सुन्दर नगर द्वार निर्मित हो गये। राज-परिवार के लिये बना सुन्दर द्वार से युक्त दिव्य भवन बादलों के समान शोभा पा रहा था। उसमें सोने, बैठने तथा सवारियों के रहने के लिये अलग-अलग स्थान थे तथा सब प्रकार के दिव्य रस, दिव्य भोजन और दिव्यवस्त्रप्रस्तुत थे। तदनन्तर महर्षि भरद्वाज की आज्ञा से भरत ने उसमें प्रवेश किया। उनके साथ

पुरोहित और मंत्री भी उसमें आ गये। उस भवन का निर्माण कौशल देखकर उन सब लोगों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उस राज भवन में उन्होंने राजसिंहासन भी देखा। उस सिंहासन पर श्रीरामचन्द्र बैठे हैं ऐसी धारणा बनाकर भरत ने उस सिंहासन की पूजा की और अपने हाथ में चंवर ले वे मंत्री के आसन पर जा बैठे। तत्पश्चात् मंत्री और पुरोहित भी अपने-अपने सिंहासन पर बैठे। तदनन्तर वहां खीर से भरी नदियां उपस्थित हुई। एसी मुहूर्त में ब्रह्मा जी की भेजी हुई बीस हजार दिव्यांगनाएं भी आ पहुंची जिनके स्पर्श मात्र से ही पुरुषगण उन्माद ग्रस्त हो जाते थे। इनके सिवा नन्दन वन से बीस हजार अप्सराएं भी आयीं। नारद तुम्बुरू और गोप नामक गंधर्वराज भी आकर भरत के सामने गीत गाने लगे तथा अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका और वामना ये चार अप्सरायें मुनि की आज्ञा से भरत के समीप नृत्य करने लगीं। देवताओं के उद्यानों में उगनेवाले फूल महर्षि के प्रताप से प्रयाग में ही दिखलाई देने लगे। देव दारू, तिलक ताल और तमाल नामक वृक्ष कुबड़े और बौने का रूप धारण कर भरत की सेवा में आ पहुँचे। इसके अतिरिक्त मालती मल्लिका आदि लताएं नारी का रूप धरकर भरद्वाज मुनि के आश्रम में आ बसीं। वे भरत के सैनिकों को पुकार-पुकार कहती थीं कि मधु का पान करनेवाले लोगों! लो यह मधु का पान कर लो। तुममें से जिन्हें भूख लगी हो वे सब यह खीर खाओ साथ ही उनके लिये फलों के गूदे आदि भी प्रस्तुत हैं। सात-आठ तरुणी स्त्रियाँ एक-एक पुरुष को नदी के मनोहर तटों पर उबटन लगाकर नहलाती और उनके भींगे हुए वस्त्रों को पोछकर उन्हें स्वादिष्ट पेय पिलाती। तत्पश्चात् वहाँ के प्रबन्धकर्ताओं ने पशुओं को भोजन कराया। योद्धाओं की सवारी में काम आनेवाले वाहनों को वाहन रस व प्रेरणा दे देकर गन्ने के टुकड़े और मधुमिश्रित लावे खिलाते थे। घोड़े बांधनेवाले सइसों को अपने घोड़े का और हाथी वान को अपने हाथी का कुछ पता न था। सारी सेना वहां मत्त-प्रमत्त और आनन्द मग्न प्रतीत होती थी। इसलिए मनोवांछित पदार्थों से तृप्त हुए सैनिकों अपसराओं का संयोग पाकर कहने लगे- अब हम अयोध्या न जाकर दण्डकारण्य ही जायेंगे। इस प्रकार उस सत्कार को पाकर सैनिक गण स्वच्छन्द होकर उपर्युक्त बात कहने लगे। फिर यह स्थान ही स्वर्ग है कहते हुए सहस्रों सैनिक फूलों का हार पहनकर नाचते

और गाते हुए सब ओर दौड़ते-फिरते थे। उन लोगों को उस अमृत के समान स्वादिष्ट भोजन कर चुकने पर भी उनके खाने की फिर इच्छा होती थी। इस तरह भरत के सैनिक और दास दासियां सब प्रकार से प्रसन्न थे। उस समय कोई ऐसा न था जिसके शरीर पर सफेद कपड़े न हों और जो मलिन दिखलायी पड़ता हो। उस स्थान पर हजारों स्वर्ण पात्र अन्न से भरे हुए रक्खे थे और कितने पात्र सब्जी से भरे थे। उस करोड़ पात्र भोजन करने वालों के लिए थे और बहुत से छोटे-बड़े घड़े दही से भरे थे। यही नहीं वहाँ दूध के कई कुण्ड पृथक पृथक भरे हुए रक्खे थे और शक्करों के कई ढेर लगे थे। स्नान करनेवालों के लिये घाटों पर सुगंधित चूर्ण तथा स्नानोपयोगी पदार्थ और ढेर के ढेर दातौन रक्खे थे। इस तरह भरद्वाज के द्वारा सेना सहित भरत का किया हुआ वह अवर्णनीय आदर सत्कार अद्भुत था। नन्दनवन में विहार करनेवाले देवताओं की तरह उन सबकी रात भी वहाँ सुख पूर्वक बीती। तत्पश्चात् वे नारियाँ गन्धर्व और समस्त सुन्दरियाँ जैसे आयी थीं, वैसेही लौट गयीं। अब सबेरा होने पर भी भरत के साथ आये हुए लोग उसी प्रकार मधुपान से उन्मत्त दिखलायी देते थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९१)

बानबेवाँ सर्ग

भरत का भरद्वाज से श्रीराम के आश्रम पर जाने का मार्ग जानना

भरत इच्छानुसार मुनि का आतिथ्य ग्रहण करते हुए रात भर उन्हीं के आश्रम में रहे तत्पश्चात् सबेरा होने पर वे हाथ जोड़े हुए भरद्वाज जी के पास आये। उन्हें इस तरह आया देख मुनि बोले- निष्पाप भरत! क्या तुम सब लोग इस आतिथ्य सत्कार से संतुष्ट हुए। भरत यह सुनकर बोले- भगवन् मैं सम्पूर्ण सेना के साथ यहाँ सुखपूर्वक रहा। अब मैं अपने भाइयों के पास जानेके लिये आपसे आज्ञा लेने आया हूँ। मुनि कृपा करके बताइये कि महात्मा श्रीराम का आश्रम कहाँ है और वहाँ पहुँचने के लिये कौन सा मार्ग है? यह सुनकर मुनि भरद्वाज बोले- भरत यहाँ से ढाई योजन की दूरी पर एक चित्रकूट नामक पर्वत है जहाँ के झरने और वन बड़े रमणीय हैं उसके उत्तरी

किनारे मन्दाकिनी नदी बहती है जो सदैव सघन वन से आच्छादित रहती है। उसके आसपास का वन बड़ा ही रमणीय है। वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण निश्चय ही उसी में निवास करते हैं। इसलिये हे भरत! तुम अपनी सेना सहित दक्षिण दिशा में जाओ। इसके बाद नैऋत्य कोण में होते हुए चित्रकूट पर्वत पर पहुंचोगे। अब राजा दशरथ की रानियों ने जब यह सुना कि भरत जी वहां से जा रहे हैं तो वे भरद्वाज मुनि के पास कांपती हुई पहुंचीं, क्योंकि वे उपवास से बड़ी दुर्बल हो रही थीं और उनके चरणों पर गिर पड़ीं। कैकेयी ने भी मुनि के चरण छुए और भरत के समीप खड़ी हो गयी। तब भरद्वाज मुनि ने कहा- मैं तुम्हारी माताओं का परिचय जानना चाहता हूँ। यह सुनकर भरत बोले- हे भगवन्! सिंह के समान पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करनेवाली तथा राजा दशरथ की पटरानी यह देवी कौसल्या हैं। उनके समीप सुमित्रा हैं जिसने अपने गर्भ से पराक्रमी लक्ष्मण और शत्रुघ्न को उत्पन्न किया है। इसके अतिरिक्त जिसके कारण राम लक्ष्मण वन गये तथा कौसल्या पुत्र हीन हुई और राजा दशरथ को अपना प्राण त्यागना पड़ा वह अभिमानी दुष्टहृदया इस कैकेयी को आप मेरी माता समझिये। मैं अपने ऊपर जो महान् संकट आया हुआ देख रहा हूँ इसका मूल कारण यही है। इतना कहकर भरत रोष से भरकर सर्प की भाँति लम्बी सांस खींचने लगे। उनकी बातें सुनकर मुनि भरद्वाज ने कहा- श्रीराम का यहवनवास भविष्य में बड़ा सुखद होगा। इससे संसार का हित ही होनेवाला है। तदनन्तर राम का पता जानकर भरत ने मुनि को मस्तक झुकाकर प्रदक्षिणा की तथा तैयारी होने का और सेना को कूच के लिए आदेश दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९२)

तिरानबेवाँ सर्ग

सेना सहित भरत की चित्रकूट यात्रा का वर्णन

तत्पश्चात् उस विशाल चतुरंगिणी सेना से घिरे हुए धर्मात्मा भरत ने बड़ी प्रसन्नता के साथ यात्रा आरम्भ की। जैसे वर्षा ऋतु में मेघों की घटा आकाश को ढंक लेती है उसी प्रकार भरत की उस विशाल सेना ने दूर तक के

भूभागों को ढँक लिया था। तदनन्तर दूर तक का रास्ता तय कर लेने पर जब भरत की सवारियाँ बहुत थक गयीं तब भरत जी मुनि वशिष्ठ से कहने लगे- ब्रह्मन् ! जैसा मैंने सुन रक्खा था वैसा ही इस देश का स्वरूप दिखलायी पड़ता है। इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि भरद्वाज जी ने जहाँ पहुँचने का आदेश दिया था उस देश में हम लोग आ पहुँचे हैं। लगता है यही चित्रकूट पर्वत है जहाँ मन्दाकिनी नदी बह रही है। उस पर्वत की शिखरों पर जो वृक्षों द्वारा फलों की वर्षा हो रही है उसे देखकर लगता है कि जैसे जलधर मेघ उन पर जल की वर्षा कर रहे हों। ये वन जो पहले जनरव शून्य होने के कारण अत्यंत भयंकर दिखलायी पड़ रहे थे वही इस समय हमारे साथ आये हुए लोगों से व्याप्त होने के कारण मुझे अयोध्यापुरी के समान प्रतीत होता है। शत्रुघ्न ! देखो, इस वन में सारथियों द्वारा संचालित रथ कितनी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। ये देखने में कितने अच्छे लगते हैं। साथ ही इन मोरों और अन्य पक्षियों को भी देखो जो सैनिकों के भय से कितने डरे हुए से लगते हैं। शत्रुघ्न ! यह देखो जो तपस्वी जनों का निवास स्थान है, मुझे बड़ा ही मनोहर दिखलायी पड़ता है। इस वन में विचरण करनेवाले मृग मनोहर दिखलायी पड़ते हैं मानों इन्हें फूलों से चित्रित किया गया है। अब मेरे सैनिक आगे बढ़करमेरे भाई श्रीराम और लक्ष्मण की चारों ओर जाकर खोज करें। यह सुनते ही बहुत से शूर वीर हाथों में हथियार लेकर उस वन में जा घुसे। तदनन्तर आगे जाने पर उन्हें कुछ दूर पर ऊपर को धुँआ उठता दिखायी दिया। यह देखकर सब लौटकर भरत से बोले-प्रभो ! जहां आग होती है वहाँ मनुष्य अवश्य होते हैं। अतः वहाँ श्रीराम और लक्ष्मण अवश्य होंगे। यह सुनकर भरत ने उनसे कहा- तुम सब सावधानी से यहीं ठहरो। अब उनका ठीक-ठीक पता लगाने हेतु मैं सुमन्त्र और धृति के साथ वहाँ जाऊँगा। भरत की ऐसी आज्ञा पाकर सारे सैनिक वहीं ठहर गये और भरत उस ओर जाने लगे जिधर से धुँआ उठ रहा था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९३)

चौरानबेवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता को चित्रकूट की शोभा दिखलाना

चित्रकूट पर्वत श्रीराम को बड़ा अच्छा लगता था। वे उस पर बहुत दिनों से रह रहे थे। एक दिन वे सीता का मन बहलाने के लिये उन्हें चित्रकूट की शोभा दिखलाते हुए बोले- भद्रे! यद्यपि इस समय अपने हितैषियों से अलग रहना पड़ता है फिर भी जब मैं इस रमणीय पर्वत की ओर देखता हूँ तो मेरा सारा कष्ट दूर हो जाता है। सीते! देखो इस पर कितने प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे हैं। इसकी गगनचुम्बी शिखरें। धातुओं से मण्डित होकर कितनी शोभायमान हो रही हैं। इसमें कोई तो चांदी की तरह चमक रहे हैं कोई लोहू की लाल आभा लिए हुए है। कोई श्रेष्ठ मणियों जैसे चमक रहे हैं तो कोई पुखराज की कान्ति लिये हुए है। यह पर्वत नाना प्रकार के पक्षी और हिंसक पशुओं से भरा हुआ है। किंतु वे सब अपने दुष्ट स्वभाव को छोड़कर एक साथ मिलकर रहते हैं इससे इसकी शोभा और बढ़ जाती है। आम, जामुन, लोंध, कटहल, बेल आदि से भरा हुआ यह पर्वत बहुत रमणीय प्रतीत होता है। वहाँ किन्नरों के जोड़े एक साथ टहल रहे और उनकेखड्गपेड़ों की डालियों पर लटकते दिखलायी पड़ रहे हैं। इसके ऊपर कहीं ऊँचे झरने गिर रहे हैं तो कहीं जमीन के भीतर छोटे-छोटेस्त्रोत प्रवाहित हो रहे हैं। सीते! यदि तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ मैं यहाँ अनेक वर्षों तक रहूं तो भी मुझे नगर छोड़ने का दुःख लेश मात्र भी पीड़ित नहीं कर सकता। वास्तव में मुझे इस वनवास से दो लाभ हुए हैं। एक तो पिता की आज्ञा का पालन हुआ दूसरा भरत का प्रिय कार्य हुआ। प्रिये! क्या इन प्रिय लगनेवाले पदार्थों को देखकर तुम्हें आनन्द प्राप्त होता है? रात में वे इस पर्वत पर उगी हुई सहस्त्रों औषधियाँ अपनी प्रभा सम्पत्ति से अग्नि शिखा के समान प्रतीत होते हैं। इसमें कितने ही स्थान ऐसे हैं जहाँ दूर-दूर तक एक ही शिला फैली हुई है। इसकी शोभा देखते ही बनती है और ऐसा लगता है कि यह पर्वत पृथ्वी को फाड़ कर ऊपर आया है। उत्पल पुन्नाग, भोज पत्र के पत्ते विलासियों के लिये बिस्तर का काम दे रहे हैं साथ ही कमलों की मालायें दिखायी देती हैं। जो विलासियों द्वारा मसल कर फेंक दी गयी हैं। हे सीते! यदि मैं उत्तम नियमों का पालन

करता हुआ तुम्हारे और लक्ष्मण के साथ यह चौदह वर्षों का समय आनन्दपूर्वक व्यतीत कर लूंगा तो मुझे कुल धर्म बढ़ाने वाला सुख प्राप्त होगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९४)

पंचानबेवाँ सर्ग

श्रीराम का मंदाकिनी नदी की शोभा का वर्णन

तदनन्तर उस पर्वत से निकलकर श्रीराम मन्दाकिनी नदी के तट पर आ खड़े हुए और सीता से बोले- सीते! अब मन्दाकिनी नदी की शोभा देखो। हंस और सारसों का कलरव तथा नाना प्रकार के पुष्प इसकी कितनी शोभा बढ़ा रहे हैं। फल फूलों से लदे और वृक्षों से घिरी यह मंदाकिनी कितनी सुशोभित हो रही है। प्रिये देखो तो जटा और मृग चर्म धारण किये हुए कितने ही महर्षि उसमें स्नान कर रहे हैं और कुछ भुजायें उठाकर सूर्य देव की उपासना कर रहे हैं। हवा से झूमते हुए वृक्ष उसके दोनों तटों पर पत्ते बिखेर रहे हैं। देखो, यह मीठी बोली बोलनेवाले चक्रवाक पक्षी उसके दोनों तटों पर विराजमान हैं। यहाँ जो चित्रकूट, मंदाकिनी और निरन्तर तुम्हारा दर्शन होता है वह मुझे अयोध्या निवास की अपेक्षा अधिक सुखकर प्रतीत होता है। सिद्ध महात्माओं से सेवित होने के कारण इसका जल शुद्ध होता रहता है। अतएव अब आओ तुम भी मेरे साथ चलकर इसमें स्नान करो। सीते! अब तुम यहाँ के निवासियों को पुरवासियों के समान उस पर्वत को अयोध्या के समान और मंदाकिनी को सरयू के सदृश जानो। इस समय लक्ष्मण मेरी आज्ञा के अधीन है और तुम भी मेरे अनुकूल चलती हो यह मेरी प्रसन्नता को बढ़ाने वाला है। तुम्हारे साथ तीनों काल स्नान करके मधुर फलों का अहार करता हुआ मुझे अयोध्या के राज्य की इच्छा ही नहीं होती। कौन ऐसा है जो इस नदी में स्नान करके ग्लानि रहित और सुखी न हो जाये। इस प्रकार श्रीराम मन्दाकिनी नदी की प्रशंसा करते हुए सीता के साथ वहाँ विचरण करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में पंचानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९५)

छियानबेवाँ सर्ग

लक्ष्मण का शाल वृक्ष पर चढ़कर भरत की सेना को देखना और रोष प्रकट करना

इस प्रकार सीता को मन्दाकिनी नदी का दर्शन कराकर श्रीराम वहीं समतल भूमि पर जा बैठे और फल मूल का गुदा निकाल कर सीता की मानसिक प्रसन्नता बढ़ाने लगे। वे इसी प्रकार बैठे ही थे कि उनके पास आनेवाली भरत की सेना की धूल और कोलाहल एक साथ आकाश में फैलने लगी। इस कोलाहल को सुनकर श्रीराम लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण देखो, तो सही यह भयंकर गर्जना के साथ कैसा गंभीर तुमुल नाद सुनायी देता है। जरा पता तो लगाओ इसका क्या कारण है? कहीं हथनियों या मृगों के झुंड को सिंहों ने तो नहीं डरा दिया अथवा कोई राजकुमार वन में शिकार खेलने तो नहीं आ पहुँचा। तुम इस बात का ठीक ठीक पता लगाओ। भगवान् श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण तुरन्त ही फूलों से भरे हुए एक साल वृक्ष पर चढ़ गये। वहाँ उत्तर की ओर मुँह करके देखनेपर उन्हें एक विशाल सेना दिखायी दी। जो हाथी, घोड़े और रथों से परिपूर्ण थी इसके साथ ही उसमें पैदल सैनिक भी थे। यह देखकर लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा तात! अब आप इस आग को बुझा दें अन्यथा धुआं देखकर सारी सेना यहीं आ सकती है। इस समय देवी सीता को गुफा में बैठा दें और आप भी धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर कवच पहन लें। लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम बोले- प्रिय लक्ष्मण देखो तो सही यह सेना किसकी हो सकती है? यह सुनकर लक्ष्मण ने कहा- भैया! यह निश्चय ही कैकेयी पुत्र भरत की सेना है। वह इस समय अपने राज्य को अकंटक बनाने की इच्छा से हम दोनों को मारने के लिये यहाँ आ रहा होगा। सामने की ओर जो यह शोभा सम्पन्न वृक्ष दिखलायी देता है उसके समीप जो रथ है उस पर कोविदार वृक्ष से चिह्नित ध्वज शोभा पा रहा है। ये घुड़सवार सैनिक इच्छानुसार शीघ्रगामी घोड़ों पर आरूढ़ हो इधर ही आ रहे हैं और हाथी सवार भी बड़े हर्ष से हथनियों पर सवार होकर आते हुए दिखलायी पड़ रहे हैं। भैया! अब हम सबको धनुष लेकर पर्वत शिखर पर चलना चाहिए और वहीं डटे रहना चाहिए। आज उसके रथ को अपने अधिकारमें करके मैं उस

भरत को भी देख लूंगा जिसके कारण आप सनातन राज्याधिकार से वंचित कर दिये गये। यह भरत हमारा शत्रु दिखलायी पड़ता है। अतः असके बध में कोई दोष नहीं। फिर उस भरत के मरते ही आप समस्त वसुधा का शासन करें। मैं भरत को ही नहीं बल्कि कैकेयी को भी उसके बन्धु बान्धवों सहित मार डालूंगा। फिर अपने तीखे बाणों से शत्रुओं के शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके इस वन को रक्त से सींचूंगा। मैं इस महान् वन में सेना सहित भरत का बध करके धनुष और बाण के ऋण से उऋण हो जाऊंगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में छियानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९६)

सत्तानबेवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण से भरत के सद्भाव का वर्णन करना

लक्ष्मण को इस तरह क्रोधावेश में आते देखकर श्रीराम ने उन्हें समझाया लक्ष्मण! पिता के सत्य की रक्षा के लिये प्रतिज्ञा करके यदि युद्ध में भरत को मारकर उनका राज्य छीन लूं तो इसके लिये मैं कितना कलंकित बनूंगा। मित्रों या सुहृदों को मारकर जिस धन की प्राप्ति होती है वह विष मिश्रित भोजन के समान है। भैया लक्ष्मण! राज्य की कामना अपने भाइयों के सुख के लिये ही करता हूँ। समुद्र से घिरी हुई यह पृथ्वी पाना मेरे लिये दुर्लभ नहीं है किंतु अधर्म से इन्द्र का पद लेने में भी मुझे संकोच होगा। शायद तुम्हें नहीं मालूम कि भरत बड़े भ्रातृभक्त हैं। वे मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। मुझे तो ऐसा लगता है हमारे वन आने की बात सुनकर उनकी इन्द्रियां शोक से व्याकुल हो उठी होंगी इसलिये वे निश्चित ही हमसे स्नेह युक्त हृदय से मिलने आये होंगे। वे माता कैकेयी को कठोर वचन सुनाकर मुझे राज्य वापस देने के लिये आये होंगे। वे हमारा अहित करने का विचार अपने मन में ला ही नहीं सकते। आखिर उन्होंने पहले ऐसा कौन सा अप्रिय बर्ताव किया है जिससे तुम्हें ऐसी आशंका लग रही है। लक्ष्मण! बड़ी से बड़ी आपत्ति आने पर भाई अपने भाई की हत्या कैसे कर सकता है? यदि तुम राज्य की बात करते हो तो मैं वह राज्य भरत से कहकर तुमको दिलवा दूंगा। अबश्रीराम की ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मण एकदम लाज से गड़ गये और कहा- भैया! मैं समझता

हूँ कि हमारे पिता महाराज दशरथ स्वयं ही आपसे मिलने आये हैं। लक्ष्मण को लज्जित होते देख श्रीराम ने उत्तर दिया- तुम ठीक कहते हो शायद पिताजी वनवास के कष्ट का विचार करके हम लोगों को वन से लौटा ले चलने के लिये यहाँ आये होंगे। वे सीता को भी अपने ही साथ लेकर लौटेंगे। वह देखो सुन्दर गति से चलने वाले दो घोड़े तथा पिताजी का बूढ़ा हाथी धीरे-धीरे आ रहे हैं लेकिन श्वेत छत्र दिखायी नहीं दे रहा है। लक्ष्मण अब तुम मेरी आज्ञा मानकर पेड़ के नीचे आ जाओ। लक्ष्मण राम की आज्ञानुसार वृक्ष के नीचे आकर श्रीराम के बगल में खड़े हो गये। इधर भरत ने सैनिकों को आज्ञा दी कि किसी को किसी प्रकार की बाधा न पहुँचाओ। उनका यह आदेश पाकर समस्त सैनिक पर्वत के चारों ओर नीचे ही ठहर गये। इस तरह डेढ़ योजन भूमि घेर कर भरत की सेना बड़ी शोभा पाने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९७)

अट्ठानबेवाँ सर्ग

भरत द्वारा श्रीराम के आश्रम की खोज

इस प्रकार सेना को ठहराकर भरत ने श्रीरामचन्द्र के पास जाने का विचार किया और शत्रुघ्न से कहा- "सौम्य! अब तुम्हें बहुत से मनुष्यों को साथ लेकर श्रीरामचन्द्र की खोज करनी चाहिए। निषाद राज भी सहस्त्र बन्धु बान्धवों को लेकर श्रीराम लक्ष्मण की खोज करें और मैं भी पैदल सारे वन में विचरण करूँगा। जब तक मैं श्रीराम के दर्शन नहीं कर लूंगा तब तक मुझे शान्ति नहीं मिलेगी। जब तक उनके चरणों पर मैं सिर नहीं रख लेता मुझे किसी तरह की शान्ति मिलनेवाली नहीं। जब तक वे राज्य के पद पर प्रतिष्ठित नहीं होंगे तब तक मुझे शांति प्राप्त होनेवाली नहीं। इस समय महाभागा सीता अपने इस सत्कर्म से कृतार्थ हो गयी है। श्रीराम चन्द्र के यहाँ निवास करने से यह दुर्गम वन भी कृतार्थ हो गया है। ऐसा कहते हुए भरत उस विशाल वन में पैदल ही चलने लगे। तत्पश्चात् आगे बढ़ते हुए चित्रकूट पर्वत के एक शाल वृक्ष पर चढ़ गये। वहाँ से उनहोंने श्रीराम के आश्रम पर सुलगती हुई आग का धुंआ देखा। यह धुंआ देखकर भरत को बड़ी

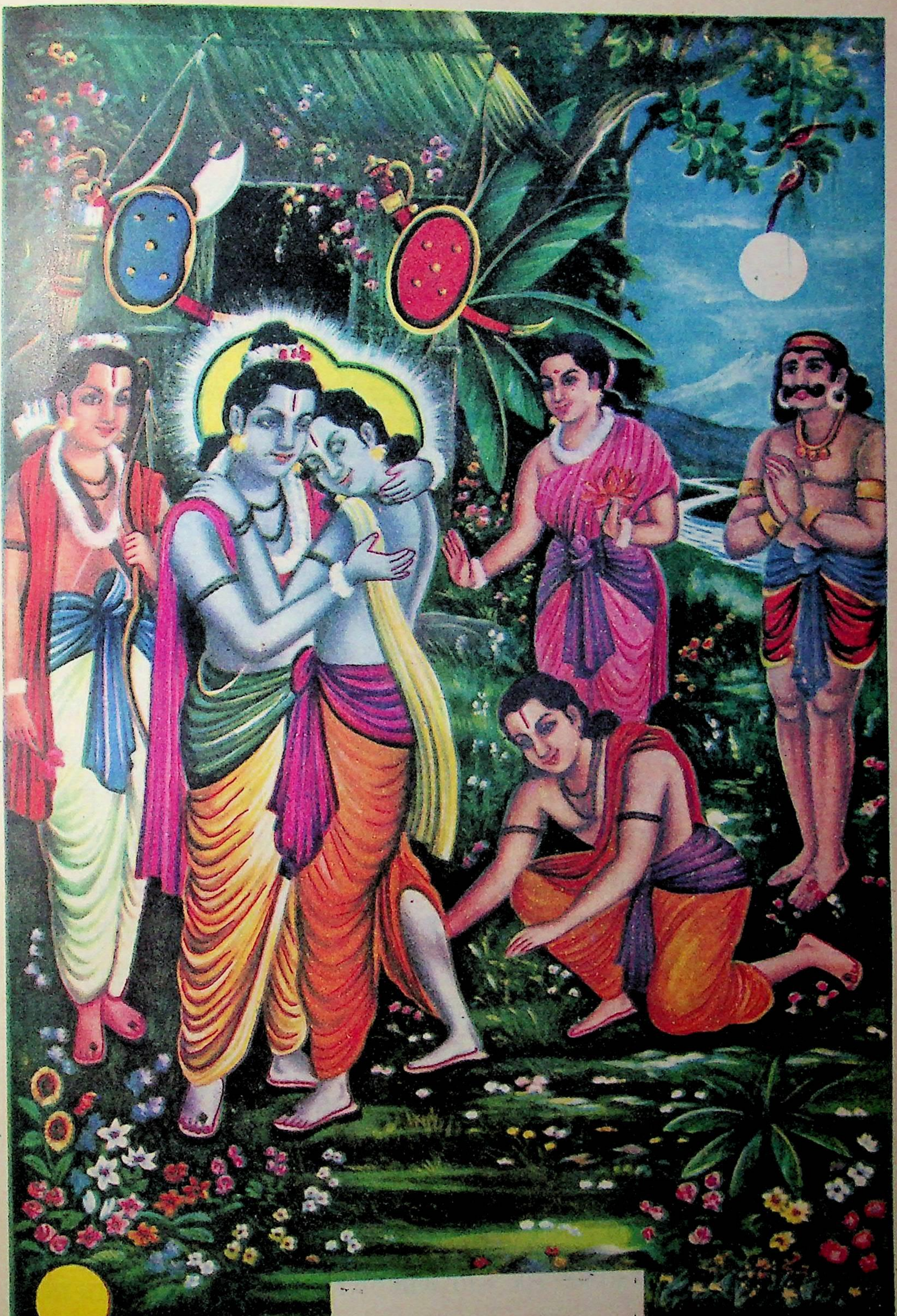

भरत मिलन

प्रसन्नता हुई और वे शत्रुघ्न से बोले- "वहाँ श्रीराम हैं" और इतना कहकर वे प्रसन्नता से भरे हुए गुह के साथ शीघ्रतापूर्वक उस आश्रम की ओर चल दिये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९८)

निन्यानबेवाँ सर्ग

भरत का शत्रुघ्न आदि के साथ श्रीराम के आश्रम पर जाना

श्रीराम के दर्शन के लिये उत्कंठित होकर भरत अपने छोटे भाई शत्रुघ्न को आश्रम के चिह्न दिखाते हुए उसके साथ चल पड़े। फिर गुरू वशिष्ठ को यह संदेश देकर कि आप मेरी माता के साथ शीघ्र ही आइये तुरंत आगे बढ़ गये। सुमन्त्र भी शत्रुघ्न के ही पीछे-पीछे चल रहे थे। उन्हें भी श्रीरामचन्द्र के दर्शन की तीब्र अभिलाषा थी। चलते-चलते भरत ने भाई की पर्णकुटी और झोपड़ी देखी। उस पर्णशाला के सामने भरत ने काठ के बहुत से कटे हुए टुकड़े जो होम के लिये संगृहीत थे, देखे। उनकी दृष्टि पूजा के लिये इकट्ठी की गयीं फूलों पर भी पड़ी। इसके साथ ही वृक्षों पर मार्ग बोधक चिह्न भी लगे दिखायी दिये। उस समय चलते-चलते भरत ने शत्रुघ्न एवं अन्य मंत्रियों से कहा- महर्षि भरद्वाज ने जिस स्थान का पता बताया था, वहां हम लोग आ गये हैं। लगता है मंदाकिनी नदी यहाँ से दूर नहीं। लक्ष्मण ने जिसकी पहचान के लिये यह चिह्न बनाया है वह आश्रम में जाने का मार्ग यही हो सकता है। अग्निदेव का वह सघन धूम्र भी यहाँ से दिखलायी पड़ता है। यहाँ मैं महर्षि की भाँति रहनेवाले श्रीराम के दर्शन करूँगा। तदनन्तर वे चित्रकूट के पास जा पहुँचे और अपने साथ वालों से कहा- अहो, मेरे ही कारण, श्रीरामचंद्र को इस खुली पृथ्वी पर बैठना पड़ता है अतएव मेरे जीवन को धिक्कार है। मेरे ही कारण रघुनाथ समस्त इच्छाओं को त्याग कर वन में निवास करते हैं। इसलिये मैं सबके निंदा का पात्र हूँ और इस मेरे जीवन को धिक्कार है। मैं श्रीराम को प्रसन्न करने के लिये उनके चरणों पर गिरूँगा और लक्ष्मण के पाँव भी पकडूंगा। इसी तरह विलाप करते हुए भरत ने वहाँ एक पर्णशाला देखी जो बड़ी मनोरम लग रही थी। वह शाल, ताल और अश्वकर्ण नामक पत्तों से

छायी हुई थी। वहाँ इन्द्र धनुष के समान बहुत से धनुष रक्खे थे जो बड़े से बड़ा काम करने में समर्थवान थे। वहाँ तरकसों में बहुत से बाण भरे थे इसके साथ ही सोने की म्यान में रखी हुई दो तलवारें और विचित्र ढालें भी उस आश्रम की शोभा बढ़ा रही थीं। वहाँ गोह के चमड़े के बने बहुत से स्वर्णजटित दस्ताने भी टंगे थे। यह पर्णशाला सब तरह से शत्रु समूहों के लिए अगम्य और अजेय थी। श्रीराम के उस निवास स्थान में भरत को एक पवित्र और विशाल वेदी भी दिखलायी पड़ी। उसमें अग्नि जल रही थी। अब उस पर्णशाला की ओर थोड़ी देर तक देखते रहने के बाद भरत ने कुटिया में बैठे हुए अपने भाई श्रीराम को सिर पर जटामण्डल धारण किये हुए देखा। विदेहनन्दिनी सीता और लक्ष्मण भी उन्हीं के साथ विराजमान थे। श्रीराम को इस अवस्था में देखकर भरत शोक में डूब गये तथा बड़ी तेजी से उनकी ओर दौड़े और फिर शोक के वशीभूत हो गद्‌गद्‌ वाणी में बोले- हाय, जो राजसभा में बैठकर मंत्रिवर्ग से सम्मान पाने योग्य हैं वे ही मेरे बड़े भाई यहाँ हिंसक पशुओं से घिरे हुए बैठे हैं। जो पहले कई सहस्त्र वस्त्रों का उपयोग करते थे वे अब केवल मृगचर्म पहना करते हैं। जो सदा फूलों को धारण करते थे वे अब जटा को कैसे धारण करते होंगे। जिनके अंगों की सेवा चन्दन से होती थी उन्हीं का शरीर कैसे मल से सेवित हो रहा है। सुख भोगने वाले श्रीराम मेरे ही कारण दुःख में पड़ गये हैं। ओह मैं किता क्रूर निकला। मेरे जीवन को धिक्कार है। इस प्रकार विलाप करते हुए वे श्रीराम के चरणों में पहुंचने के पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़े और केवल "आर्य" कहकर वे कुछ अधिक न बोल पाये। फिर शत्रुघ्न भी रोते-रोते श्रीराम के चरणों में प्रणाम किया। यह देखकर श्रीराम ने उन्हें उठाकर अपनी छाती से लगा लिया और फिर उनकी आँखों से भी आँसुओं की धारा बह निकली। तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण निषादराज गुह और सुमन्त्र से ऐसे मिले जैसे आकाश में सूर्य और चन्द्रमा, शुक्र और वृहस्पति से मिल रहे हैं। अब उन चारों राजकुमारों को वन में आया देख समस्त वनवासी हर्ष और शोक के आँसू बहाने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९९)

सौवाँ सर्ग

श्रीराम का भरत को उपदेश देना

जटा चीर पहने हुए भरत उस समय पृथ्वी पर ऐसे पड़े थे जैसे प्रलय काल में सूर्य धरती पर गिर पड़े हों। उस समय उन्हें पहचानना कठिन हो रहा था। उनका मुख उदास था और वे बहुत दुर्बल हो गये थे। अब भाई भरत को उठाकर श्रीराम ने उन्हें अपनी गोद में बैठाया और उनसे बड़े आदर से पूछा-तात! पिताजी कहाँ हैं जो तुम इस वन में आये? क्योंकि उनके जीते जी तुम इस वन में नहीं आ सकते थे। भाई! महाराज जीवित तो हैं न! ऐसा तो नहीं है कि वे अत्यंत दुखी होकर परलोकवासी हो गये हों। भरत! तुम उनकी सेवा सुश्रुषा तो करते हो न? क्या तुम विद्वान आचार्य वशिष्ठ जी की यथावत् पूजा करते हो? माता कौसल्या तो सुख से हैं? तुम पुरोहितों और ब्राह्मणों का उचित सत्कार तो कर रहे हो? तात! क्या तुम देवताओं, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, आदरणीय वृद्धों, वैद्यों और ब्राह्मणों का सम्मान करते हो? क्या तुम शस्त्र प्रयोग के ज्ञान से सम्पन्न और अर्थशास्त्र के अच्छे पंडित आचार्य सुधन्वा का समादर तो करते हो न? क्या तुमने कुलीन और बाहरी चेष्टाओं से हीन मन की बात समझ लेने वाले सुयोग्य व्यक्तियों को ही मंत्री बनाया है? भरत! क्या तुम असमय ही निद्रा के वशीभूत तो नहीं होते? समय से जागकर अर्थ सिद्धि के उपाय पर विचार करते हो न? तुम किसी गूढ़ विषय पर अकेले ही तो नहीं सोचते? अथवा बहुत से लोगों के साथ बैठकर तो मंत्रणा नहीं करते? कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी निश्चित की हुई गुप्त मंत्रणा फूटकर शत्रु के राज्य तक फैल जाये। जिसका साधन छोटा हो और फल बहुत बड़ा मिलने वाला हो। ऐसे कामों के करने में तुम विलम्ब तो नहीं करते। तात! तुम्हारे निश्चित किये हुए विचारों को दूसरे लोग तर्क और युक्तियों से जान तो नहीं लेते? क्या तुम सहस्त्र मूर्खों के बदले एक पंडित को ही अपने पास रखने की इच्छा रखते हो? यदि एक मंत्री मेधावी, शूरवीर, चतुर एवं नीतिज्ञ हो तो वह राजा को बहुत बड़ी सम्पत्ति की प्राप्ति करा सकता है। जो घूस न लेते हों, बाप दादों के समय से ही कार्य करते आ रहे हों तथा बाहर भीतर से श्रेष्ठ तथा पवित्र हों, ऐसे अमात्यों को ही तुम उत्तम कार्यों में नियुक्त

Mookerji shamsi Fund, Jammu Collection

करते हो न। जैसे पवित्र याजक पतित यजमान का, एवं स्त्रियाँ कर्मचारी पुरुष का तिरस्कार कर देते हैं वैसे ही कठोरतापूर्वक अधिक कर लेने से प्रजा तुम्हारा अनादर तो नहीं करती। क्या तुमने सदा संतुष्ट रहनेवाले शूरवीर धैर्यवान और पराक्रमी पुरुषों को ही सेनापति बनाया है? क्या तुम सैनिकों को समय से वेतन और भत्ता देते हो। क्योंकि यदि सैनिकों को समय से वेतन और भत्ता नहीं मिलता तो वे कुपित हो सकते हैं और इससे अनर्थ घट सकता है। क्या मंत्री आदि समस्त अधिकारी तुमसे प्रेम रखते हैं? तुमने जिसे राजदूत बनाया है क्या वह जैसा कहा जाय वैसे ही बात दूसरों के सामने कहनेवाला है? राज्य का गुप्त भेद गुप्तचरों से लेते हो या नहीं। भरत! क्या तुम अज्ञानी और नास्तिक पंडितों का साथ तो नहीं करते। हे तात! अयोध्या हमारे पूर्वजों की निवास भूमि है। वह हाथी, घोड़े और रथों से परिपूर्ण है। अपने-अपने कर्मों में लगे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सहस्त्रों की संख्या में वहां सदा निवास करते हैं। ऐसे समृद्धशालिनी नगरी अयोध्या की तुम भली भाँति रक्षा करते हो न? हे भरत! जिसमें विद्वान पुरुष अधिक संख्या में निवास करते हैं अनेकानेक मंदिर, तालाब और पौंसले जिसकी शोभा बढ़ाते हैं, जहाँ स्त्री, पुरुष सदा प्रसन्न दिखलायी पड़ते हैं और जहाँ किसी भी तरह की हिंसा नहीं होती तथा जहाँ खेती के लिए वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। (क्योंकि उसकी सिंचाई नदियों के जल से हो जाती है।) और जिसकी शोभा नाना प्रकार की खाने बढ़ाया करती हैं, तथा जहां पापी मनुष्यों का सर्वदा अभाव है, वह अपना कोसल देश धन धान्य से सम्पन्न और सुखपूर्वक तो बसा हुआ है न? कृषि और गोरक्षा से आजीविका चलानेवाले वैश्य तुम्हारे प्रीतिपात्र तो हैं न? उन वैश्यों को इष्ट की प्राप्ति कराकर उनसे अनिष्ट का निवारण करके तुम उन सबका भरण पोषण तो करते हो न? क्या स्त्रियों को तुम संतुष्ट रखते हो और क्या वे तुमसे भली भाँति सुरक्षित रहती हैं। जहाँ हाथी उत्पन्न होते हैं वह जंगल तो सुरक्षित है। तुम्हारे राज्य में दूध देनेवाले गौवों की संख्या तो अधिक है न? क्या तुम प्रतिदिन वस्त्राभूषणों से विभूषित हो प्रधान सड़कों पर जाकर नगरवासियों को दर्शन तो देते हो? क्या तुम्हारे सभी दुर्ग, धन, धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल यंत्र शिल्पी तथा धनुर्धर सैनिकों से भरे पूरे रहते हैं? देवता, पितर, ब्राह्मण, अतिथि तथा योद्धाओं के

लिये तुम्हारा धन खर्च होता है न? क्या किसी को बिना विचार किए ही आर्थिक दण्ड तो नहीं दे दिया जाता? जिनकी चोरी प्रमाणित हो चुकी है ऐसे चोरों को धन की लालच में छोड़ तो नहीं दिया जाता। क्या गरीब और धनिकों के विवाद में न्यायालय द्वारा बिना लोभ के निष्पक्ष विचार किया जाता है न? भरत! जो निरपराध हैं और जिन्हें मिथ्यादोष लगाकर दण्ड दिया जाता है उन मनुष्यों की आँखों से आँसू गिरते हैं वह राजा के पशुओं और पुत्रों का नाश कर देते हैं। तात! तुम गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, देवताओं और समस्त पूर्ण काम ब्राह्मणों को नमस्कार करते हो न? तुम किसी धर्म के काम में बाधा तो नहीं आने देते? क्या तुम समय को बांट कर धर्म, अर्थ और काम का योग्य समय समय में सेवन करते हो? पुरवासी और जनपदवासी तुम्हारे कल्याण की कामना करते हैं न? राजाओं के चौदह दोष, जैसे नास्तिकता, असत्य भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घसूत्रता, ज्ञानी पुरुषों का संग न करना आदि से तुम सदा बचकर रहते हो न? हे भरत! तुम सम्पूर्ण कार्य में अपने मंत्रियों से परामर्श करते हो या नहीं? वेदों के अनुसार तुम्हारा राज्य चल रहा है या नहीं? हे तात! मैंने जो कुछ कहा उसके अनुसार तुम्हारा निश्चय तो अटल है क्योंकि यही मार्ग तुम्हें उन्नति के शिखर पर पहुँचानेवाला है और यही धर्म, अर्थ और काम के अनुकूल है। तुम अपने पिता और पितामह की मर्यादा पर ही चलते हो न क्योंकि वह मार्ग सत्य और कल्याणकारी है। हे भरत! तुम स्वादिष्ट अन्न अकेले ही तो नहीं खा जाते। असकी आशा करनेवाले मित्रों को भी देते हो न? हे रघुनंदन इस प्रकार जो विद्वान राजा राज्य का संचालन करता है वह समस्त पृथ्वी को अपने अधिकार में कर लेता है और मृत्यु के पश्चात् सीधे स्वर्ग लोक को जाता है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में सौवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१००)

एक सौ एकवाँ सर्ग

भरत का राम से राज्य ग्रहण करने को कहना, श्रीराम का अस्वीकार करना

तदनन्तर भरत को इस तरह समझाकर श्रीराम ने उनसे इस प्रकार

पूछना शुरू किया - भाई! इस समय जो राज्य छोड़कर वल्कल वस्त्र धारण कर यहाँ आये हो उसका क्या प्रयोजन है? मैं यह सब तुम्हारे मुख से साफ-साफ सुनना चाहता हूँ। श्रीराम के इस तरह पूछने पर भरत हाथ जोड़कर बोले - आर्य! पिता अत्यंत दुष्कर काम करके पुत्र के शोक से पीड़ित हो स्वर्गवासी हो गये हैं। भाई! उन्होंने अपनी स्त्री और मेरी माता की प्रेरणा से विवश हो ऐसा दुष्कर कार्य किया था। इसी से मेरी माँ राज्य रूपी फल न पाकर विधवा हो गयी। भगवन्! अब आप मुझ दास पर कृपा करके अयोध्या का राज्य ग्रहण करने हेतु अपना राज तिलक कराइये। इसके लिये सारी प्रजा और सभी विधवा माताएं आपके पास आयी हैं। रघुवर! आप ही राज्य प्राप्त करने के वास्तविक अधिकारी हैं। अतः आप धर्मानुसार राज्य ग्रहण करें। मैं अपने सारे सचिवों सहित आपके चरणों पर मस्तक रखकर यह याचना करने आया हूँ। दास होने के नाते आप मुझ पर कृपा करें। यह सारा मंत्रिमंडल जिनका सम्मान हम सदैव से करते आये हैं इनकी प्रार्थना आप न ठुकरायें। इतना कहकर भरत ने आँखों में आँसू भरकर श्रीराम चन्द्र के चरणों में अपना माथा टेक दिया। उस समय श्रीराम ने भरत को उठाकर हृदय से लगाते हुए कहा भाई! तुम्हीं बताओ, उत्तम कुल में उत्पन्न मेरे जैसा मनुष्य राज्य के लिये पिता की आज्ञा का उल्लंघन कैसे कर सकता है? मैं तुम्हारे अन्दर थोड़ा-सा भी दोष नहीं देखता इसलिये अज्ञानवश तुम्हें अपने माता की भी निंदा नहीं करनी चाहिए। भरत! गुरुजनों का अपने प्रिय पुत्रों पर सम्पूर्ण अधिकार होता है। वे उन्हें जैसी आज्ञा चाहें दे सकते हैं। महाराज मुझे वल्कल वस्त्र और मृगचर्म धारण कराकर वन में ठहरावें अथवा राज्य पर बैठायें इन दोनों बातों के लिये वे सर्वथा समर्थ थे। रघुनंदन! जब धर्मशील माता और पिता दोनों ने मुझे वन जाने की आज्ञा दे दी है तब उनकी आज्ञा के विरुद्ध कोई दूसरा वर्ताव कैसे कर सकता हूँ। अतएव तुम्हें अयोध्या का राज्य ग्रहण करना चाहिए और मुझे वल्कल वस्त्र धारण कर दण्डकवन में रहना चाहिए। क्योंकि महाराज बहुत से लोगों के सामने ऐसी आज्ञा देकर स्वर्ग सिधारे हैं। इसीलिये तुम्हें भी उनकी आज्ञा माननी ही चाहिए। सौम्य! अब मैं चौदह वर्ष वन में रहने के बाद ही उस राज्य भाग का उपभोग करूँगा। क्योंकि मैं उनकी वनवास की आज्ञा को अपने लिये परम हितकारी समझ

रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०१)

एक सौ दोवाँ सर्ग

भरत का पुनः राज्य ग्रहण का अनुरोध

श्रीरामचन्द्र की बात सुनकर भरत बोले- भैया मैं राज्य का अधिकारी न होने के कारण उस राजधर्म के अधिकार से रहित हूँ। अतः यह उपदेश मेरे लिये व्यर्थ है। हमारे कुल में तो ज्येष्ठ पुत्र के रहते छोटा पुत्र राजा हो ही नहीं सकता। अतएव रघुनंदन! आप मेरे साथ अयोध्यापुरी लौट चलें और कुल की उन्नति के लिये राजा के पद पर अपना अभिषेक कराइये। मेरी राय में राजा मनुष्य नहीं देवता होता है। अतः वह पद साधारण मनुष्य के लिये उचित नहीं। जब मैं केकयदेश में था तब आप वन चले आये और पुत्रशोक में पीड़ित हो महाराज स्वर्गवासी हुए। उन पिता को मैं और यह शत्रुघ्न दोनों पहले ही जलान्जलि दे चुके हैं। भैया! प्रिय पुत्र का दिया हुआ जल ही पितृलोक में अक्षय होता है। और आप उनके परम प्रिय पुत्र हैं। इसीलिये वे आपको ही देखने की इच्छा रखकर और आपका ही स्मरण करते हुए स्वर्ग को चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०२)

एक सौ तीनवाँ सर्ग

श्रीराम आदि का विलाप और पिता के लिये जलान्जलि दान

पिता की मृत्यु से सम्बंध रखने वाली करुणाजनक बात सुनकर श्रीराम दुःख से अचेत हो गये। तदनन्तर शोक के कारण दुर्बल हुए उन श्रीराम को सब ओर से घेर कर सीता सहित रोते हुए वे तीनों भाई आँसुओं के जल से उन्हें भिगोने लगे। फिर थोड़ी देर बाद होश आने पर श्रीराम दीन वाणी से बोले - भैया! जब पिताजी परलोकवासी हो गये तो मेरा अयोध्या वापस लौटने का प्रयोजन ही क्या होगा? पिताजी से हीन उस अयोध्या का अब

पालन ही कौन करेगा? हाय, जो पिता जी मेरे ही शोक में मृत्यु को प्राप्त हुए उनका मैं दाह संस्कार भी न कर सका। निष्पाप भरत! वास्तव में तुम्हीं कृतार्थ हो जो सभी प्रेत कार्यों में संस्कार कर्म के द्वारा महाराज का पूजन किया। अब महाराज दशरथ से हीन हुई उस अयोध्या में लौटने के लिये मेरे मन में कोई उत्साह नहीं रह गया। वनवास की अवधि पूरी समाप्त होने पर जब मैं अयोध्या लौटूँगा तो मुझे कर्तव्य का उपदेश कौन देगा? तत्पश्चात् वे पत्नी के पास आकर बोले- सीते! तुम्हारे ससुर चल बसे। लक्ष्मण! तुम भी अब पितृहीन हो गये हो। श्रीराम के ऐसा कहने पर सभी भाइयों ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा- भैया! अब पिताजी के लिये जलान्जलि दान कीजिए। ससुर के मृत्यु के समाचार से सीता की आँखों में आँसू आ गये और वे श्रीरामचन्द्र की ओर देख न सकीं। जब श्रीराम सीता को सान्त्वना देने के बाद लक्ष्मण से बोले-भाई! तुमइंद्गुदीका पिसा हुआ फल और चीड़ एवं उत्तरीय ले आओ। मैं महात्मा पिता को जलदान देने के लिये चलूँगा। तत्पश्चात् उनके कुल के परम्परागत सेवक श्रीराम को धैर्य बंधाकर उन्हें हांथ का सहारा दे मन्दाकिनी के तट पर ले गये। वहां यशस्वी राजकुमारों ने जल लेकर उसे राजा के लिये देते हुए कहा-पिताजी! यह जल आपकी सेवा में पहुंचे। फिर श्रीराम ने जल से भरी हुई अन्जलि ले दक्षिण दिशा की ओर मुंह करके रोते हुए कहा- मेरे पिता जी! आज मेरा दिया हुआ यह निर्मल जल पितृलोक में गये हुए आपको प्राप्त हो। तदनन्तर जल से निकल कर उन्होंने इंद्गुदी के गूदे में बेर मिलाकर भाइयों के साथ पिता का पिण्डदान देते हुए कहा- महाराज प्रसन्नतापूर्वक यह भोजन ग्रहण कीजिये क्योंकि यही हम लोगों का आहार है। मनुष्य स्वयं जो अन्न खाता है वही उसके देवता भी स्वीकार करते हैं। फिर मन्दाकिनी तट के ऊपर आकर भरत और लक्ष्मण दोनों भाइयों को दोनों हाथ से पकड़ कर रोने लगे। सीता सहित रोते हुए उन चारों भाइयों का रुदन शब्द पर्वत पर सिंह दहाड़ के समान प्रतिध्वनि होने लगी। अब उस रोदन के तुमुल नाद को सुनकर भरत के सैनिक कहने लगे "निश्चय ही भरत श्रीराम से मिल गये हैं और अपने परलोकवासी पिता के लिये शोक करनेवाले उन चारों भाइयों के रोने का ही यह महान_शब्द है।" इतना कहकर अपनी सवारियों को छोड़कर वे सभी उस ओर दौड़ पड़े जिस ओर से

आवाज आ रही थी। उनमें से कुछ हाथियों पर सवार थे और कुछ पैदल थे। यद्यपि श्रीराम को परदेश में आये थोड़े ही दिन हुए थे फिर भी ऐसा लग रहा था मानों वे दीर्घ काल से वहाँ रह रहे हों। अतएव सब उनके दर्शन की इच्छा से शीघ्रता से उनके आश्रम की ओर चल दिये। अब उस समय ऐसी आवाज होने लगी जैसे आकाश में मेघों की गड़गड़ाहट से होती है। उस तुमुल नाद से भयभीत हो उस वन के सभी जन्तु दूसरे वन में भाग गये और पक्षी आकाश में छा गये। इधर आश्रम में पहुँचकर लोगों ने देखा कि पुरुष सिंह श्रीराम वेदी पर बैठे हैं। श्रीराम के पास पहुँचने पर सभी के मुख आँसुओं से भींग गये और वे मन्थरा सहित कैकेयी की निन्दा करने लगे। उस समय धर्मज्ञ राम ने सबको माता-पिता की भाँति हृदय से लगाया। तब वहाँ रोते हुए लोगों का रोदन शब्द प्रतिध्वनित होता हुआ मृदंग के समान सुनायी पड़ने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०३)

एक सौ चारवाँ सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता के द्वारा माताओं की चरण वन्दना

तदन्तर महर्षि वशिष्ठ महाराज दशरथ की रानियों को आगे कर श्रीरामचंद्र को देखने की अभिलाषा से उस स्थान को चले, जहाँ उनका आश्रम था। मंद गति से चलती हुई रानियों ने मंदाकिनी के तट पर श्रीराम और लक्ष्मण के स्नान करने का घाट देखा। उस समय कौसल्या ने रो-रोकर अन्य रानियों से कहा- सुमित्रे !वनवासी राम और लक्ष्मण जहाँ स्नान करते हैं उस घाट को देखो। लक्ष्मण निश्चय ही वहाँ से प्रतिदिन श्रीराम के लिये जल ले जाते होंगे। धन्य है लक्ष्मण को जो इस तुच्छ कार्य के लिए भी लज्जित नहीं होते। लक्ष्मण को अब ये छोटे मोटे काम छोड़ देने चाहिए क्योंकि वह इन कष्टों के सहने योग्य नहीं। फिर उन स्थानों पर इंगुदी फल देखकर कहने लगीं कि यह फल महात्मा राम ने अपने पिता को पिण्डदान में दिये हैं। लेकिन यह भोजन में देवतुल्य पिता के लिये उत्तम नहीं मानती। हाय, सारी पृथ्वी का कर्णधार आज इन फलों का भोजन करेगा। इससे अधिक दुःख की बात मेरे लिये और क्या हो सकती है। यह देखकर मेरा हृदय फट क्यों नहीं

जाता। लेकिन यह भी सच है कि मनुष्य जैसा भोजन करता है वैसा ही अपने देवताओं को समर्पित करता है। इतना कहकर कौसल्या आगे बढ़ीं तो उन्होंने अपने पुत्र रामचन्द्र को देखा। उस समय उनकी दशा देखकर वे दुखी होकर जोरों से विलाप करने लगीं। तब महात्मा श्रीराम ने उठकर अपनी माताओं के चरण छुए। तदनन्तर माताओं ने उन्हें उठाकर उनकी पीठ की धूल झाड़ी। फिर लक्ष्मण ने भी उठकर अपनी माताओं को प्रणाम किया और माताओं ने जैसे श्रीराम के प्रति व्यवहार किया था वैसे ही लक्ष्मण के प्रति भी किया। उस समय आँखों में आँसू भरकर सीता ने भी अपनी सासुओं के चरणों में प्रणाम किया और उनके आगे खड़ी हो गयी। तब कौसल्या ने उन्हें हृदय से लगाती हुई कहा- बेटी! तुम्हारा मुख बादलों से ढके हुए चन्द्रमा की भाँति श्रीहीन हो रहा है। अब तुम्हारे इस मुख को देखकर मैं शोकानल में जली जा रही हूँ। कौसल्या इसी तरह विलाप कर ही रही थी कि उसी समय श्रीराम वशिष्ठ के चरणों को पकड़कर पृथ्वी पर बैठ गये। तदनन्तर भरत अपने साथ आये हुए लोगों के साथ अपने बड़े भाई के समीप उनके पीछे जा बैठे। उस समय भरत श्रीराम को इस प्रकार हाथ जोड़ने लगे कि वहाँ बैठे हुए सभी श्रेष्ठ पुरुषों के मन में यह कौतूहल सा जाग उठा कि भरतजी आज श्रीराम से क्या कहना चाहते हैं?

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०४)

एक सौ पांचवाँ सर्ग

भरत का श्रीराम से अयोध्या में राज्य ग्रहण के लिये कहना

अपने सुहृदों से घिरे श्रीराम ने वह रात शोक करते हुए बितायी। प्रातःकाल तीनों भाई सुहृदों के साथ मन्दाकिनी में स्नान कर पुनः श्रीराम के पास लौट आये। तब भरत ने श्रीराम से इस प्रकार कहा- "भैया! पिताजी ने वर देकर मेरी माता को संतुष्ट कर दिया और माता ने वह राज्य मुझे दे दिया। अब मैं अपनी ओर से यह राज्य आपको समर्पित करता हूँ। क्योंकि इस विशाल राज्यखण्ड को आपके सिवा दूसरा कोई नहीं सम्हाल सकता। पिताजी ने आप जैसे सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को लोक रक्षा के निमित्त ही उत्पन्न

किया था। अब आपने राज्यपालन का भार अपने हाथों में नहीं लिया तो उनका उद्देश्य व्यर्थ हो जायेगा। महाराज! विभिन्न जातियों के संघ और प्रधान-प्रधान पुरुष आपको सब ओर से तपते हुए सूर्य की भांति राज सिंहासन पर विराजमान देखें। इस प्रकार राज्य ग्रहण करने के लिये भरत की इस प्रार्थना को भिन्न-भिन्न मनुष्यों ने भली भाँति अनुमोदन किया। तब श्रीरामने भरत को इस तरह विलाप करते हुए देखकर कहा- भाई! यह जीव ईश्वर के समान स्वतंत्र नहीं है अतः अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता। काल इस पुरुष को इधर-उधर खींचता रहता है। समस्त संग्रहों का अंत विनाश है। लौकिक उन्नतियों का अंत पतन है। संयोग का अंत वियोग है और जीवन का अंत मरण है। जैसे पके हुए फलों को पतन के सिवा और किसी का भय नहीं उसी प्रकार उत्पन्न हुए मनुष्य को मृत्यु के सिवा और किसी का भय नहीं। जैसे सुदृढ़ खम्भेवाला मकान भी पुराना होने पर गिर पड़ता है उसी प्रकार मनुष्य भी जरा और मृत्यु के वश में पड़कर नष्ट हो जाते हैं। लगातार बीतते हुए दिन और रात संसार के सभी प्राणियों की आयु का तीव्रगति से नाश कर देते हैं। मृत्यु साथ ही चलती है, साथ ही बैठती है और बहुत बड़े मार्ग की यात्रा में भी साथ ही जाकर यह मनुष्य के साथ ही लौटती है। लोग सूर्योदय होने से खुश होते हैं और सूर्यास्त होने पर भी खुश होते हैं किंतु वे यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवन का नाश हो रहा है। इस संसार में कोई भी प्राणी यथा समय प्राप्त होनेवाले जन्म मरण का उल्लंघन नहीं कर सकता। अतः जो किसी मरे हुए व्यक्ति के लिये बार-बार शोक करता है, उसमें भी यह सामर्थ्य नहीं कि वह अपनी मृत्यु को टाल सके। जैसे नदियों का प्रवाह पीछे नहीं लौटता उसी तरह दिन-दिन ढलती हुई अवस्था फिर नहीं लौटती। यह सोचकर आत्मा को धर्म के काम में ही लगाना चाहिये। हे भरत! हमारे पिता धर्मात्मा थे। उन्होंने कितने शुभ कारक यज्ञों का अनुष्ठान किया। इससे उनके सारे पाप धुल गये और उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। अन्य राजाओं की अपेक्षा उत्तम आयु और श्रेष्ठ भोगों को पाकर वे सदा सत्पुरुषों द्वारा सम्मानित हुए। इसलिये स्वर्गवासी होने पर भी उनके लिये शोक करना उचित नहीं। धीर एवं प्रज्ञावान पुरुषों को सभी अवस्थाओं में ये नाना प्रकार के शोक विलाप तथा रोदन त्याग देने चाहिए। इसलिये तुम शोक

को त्याग कर अयोध्या में जाकर निवास करो। क्योंकि पिता जी ने तुम्हारे लिये यही आदेश दिया है। और महाराज ने मुझे जहाँ रहने की आज्ञा दी है मैं वहीं रहकर उनके आदेशों का पालन करूँगा। परलोक पर विजय पाने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को धार्मिक, क्रूरता से रहित और गुरुजनों का आज्ञा पालक होना चाहिए। अतः पिता के धार्मिक स्वभाव को देखते हुए अपने धार्मिक स्वभाव के द्वारा आत्मा की उन्नति केलिये प्रयत्न करो। इतना कह कर श्रीराम चुप हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०५)

एक सौ छठा सर्ग

भरत की श्रीराम से अयोध्या लौटने की पुनः प्रार्थना

श्रीराम के चुप हो जाने के बाद भरत ने कहा- रघुवर! इस नगर में जैसे आप हैं वैसा दूसरा कौन हो सकता है? इस जगत् का कोई भी दुःख आपको व्यथित नहीं कर सकता। प्रिय से प्रिय बात भी आपको हर्ष देनेवाली नहीं हो सकती। जिसे आप जैसे आत्मा और अनात्मा का ज्ञान है, वही संकट पड़ने पर भी दुख नहीं कर सकता। आप देवताओं की भाँति ही सर्वज्ञ और सर्वगुण सम्पन्न हैं। ऐसे उत्तम गुणों से युक्त और जन्म मरण के रहस्य को जाननेवाले को कभी असह्य दुःख आ ही नहीं सकता। जब मैं परदेश में था उस समय जो मेरी माता ने भूल कर डाली है वह मुझे अभीष्ट नहीं। अतः आप उसे क्षमा कर मुझ पर प्रसन्न हों। कर्म बन्धन में बंधे रहने के कारण मैंने कठोर दण्ड देकर माता को मार नहीं डाला। महाराज दशरथ के कुल में जन्म लेकर मैं मातृवध रूपी निन्दित कर्म करूँ ऐसा सम्भव भी नहीं था। राजा इस समय परलोकवासी हो चुके हैं इसलिये मैं उनकी निंदा नहीं करता। अन्यथा धर्म को जानते हुए भी कौन धर्म से हीन ऐसा कुत्सित कर्म कर सकता है? एक कहावत है कि अंत काल में सभी प्राणी मोह ग्रस्त हो जाते हैं। राजा दशरथ ने ऐसा कठोर कर्म करके इसे सत्य कर दिखलाया। इस तरह पिता जी ने जो धर्म का उल्लंघन किया है उसे आप पलट दें। आप पिताजी की योग्य संतान बनकर उनके अनुचित कर्म का समर्थन न करें। कैकेयी, मैं, पिताजी,

सुहृदयगण बन्धुबान्धव, पुरवासी इन सबकी रक्षा के लिये आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। कहाँ क्षात्र धर्म और कहाँ जटा धारण कर प्रजा का पालन, ऐसे परस्पर विरोधी कर्म आपको नहीं करना चाहिए। क्षत्रियों के लिये पहला धर्म यही है- कि वह प्रजा का भली भांति पालन करे। भला ऐसा कौन क्षत्रिय होगा जो प्रजापालन के धर्म को छोड़कर अनिश्चित धर्म का आचरण करे। फिर यदि आपको कष्ट साध्य धर्म का ही आचरण करना है तो आप धर्मानुसार चारों वर्णों का पालन करते हुए ही कष्ट उठाइये। हे रघुनन्दन! जब धर्म को जाननेवाले गार्हस्थ को ही उत्तम कहते हैं तो आप उसे छोड़ना क्यों चाहते हैं? आपके रहते मैं वसुधा का पालन कैसे कर सकूँगा। राज्य का पालन तो दूर कीबात रही। मैं आपके बिना जीवन ही धारण नहीं कर सकता। अतः मंत्रों के ज्ञाता वशिष्ठ तथा सभी पुरोहित, मंत्री और सेनापति आदि लोगों से मैं अनुरोध करता हूँ कि वे आप का राज्याभिषेक करें। फिर इस तरह अभिषिक्त हो आप प्रजापालन हेतु अयोध्या चलें। धर्मज्ञ श्रीराम! आज आप मेरी माता के कलंक को धो-पोंछकर पूज्य पिता जी को निंदा से बचाइये। जैसे महादेव जी सब प्राणियों पर दया दिखलातेहैं वैसे आप भी बन्धु-बान्धवों पर कृपा दिखलाइये। यदि आप मेरी प्रार्थना नहीं मानेंगे तो मैं भी आपके साथ वन में जाऊँगा।"

तत्पश्चात् भरत ने श्रीराम के चरणों में अपना माथा टेका किंतु इस पर भी श्रीराम पिता की आज्ञा में स्थित रहकर अयोध्या में जाने का विचार नहीं किया। श्रीराम की यह दृढ़ता देखकर सब लोगों को दुःखऔर हर्ष एक साथ प्राप्त हुआ। उनकी प्रतिज्ञा पालन में दृढ़ता देखकर उन्हें प्रसन्नता हुई और श्रीराम अयोध्या नहीं जा रहे हैं यह सोचकर वे दुःखी हुए। उस समय सभी पुरवासी, पुरोहित और माताएं रो-रोकर श्रीराम से वापस अयोध्या लौट चलने की प्रार्थना करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ छठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०६)

एकसौ सातवाँ सर्ग

श्रीराम का भरत को समझाना

जब भरत श्रीराम से लौटने के लिये बार-बार प्रार्थना करने लगे तब श्रीरामचन्द्र ने उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया- भाई! दशरथ कुल में उत्पन्न होने के कारण तुमने जो कुछ वचन कहे हैं वे सर्वथा तुम्हारे योग्य हैं। तुम नहीं जानते जब तुम्हारी माता के साथ पिताजी का विवाह हुआ था तभी तुम्हारे नाना ने कैकेयी के पुत्र को राज्य देने की शर्त रख दी थी। इसके बाद देवासुर संग्राम में तुम्हारी माता ने राजा की बड़ी सेवा की इससे संतुष्ट होकर राजा ने उन्हें दो वरदान देने को कहा था उसी के फलस्वरूप तुम्हारी माँ ने एक वर के द्वारा तुम्हारे लिये राज्य मांगा और दूसरे वर के द्वारा मेरे लिये वनवास। पिताजी ने उन दोनों वरों को उन्हें दे दिये। अब मैं पिताजी के सत्य की रक्षा में स्थित होकर यहीं रहूँगा। भरत! अब तुम्हारे लिये भी यही उचित होगा कि तुम भी अपना अभिषेक करा लो और पिताजी को सत्यवादी बनाओ। पूज्य पिता को कैकेयी के ऋण से मुक्त करो। उन्हें नरक में गिरने से बचाओ और माता की आनन्द बढ़ाओ। बेटा, पुत नामक नरक से पिता का उद्धार करता है इसीलिये पुत्र कहलाता है। पुत्र वही है जो पितरों की सब ओर से रक्षा करे। हे भरत! इसलिये तुम भी पिता को, नरक से उद्धार करो। तुम शत्रुघ्न तथासभी ब्राह्मणों के साथ अयोध्या को लौट जाओ और सभी प्रजा को सुख दो। अब मैं लक्ष्मण और सीता के साथ शीघ्र ही दण्डकारण्य में प्रवेश करूँगा। इस समय शत्रुघ्न तुम्हारी सहायता में रहे और लक्ष्मण मेरे ही साथ रहकर मेरी सहायता करेंगे और इस तरह हम चारों पुत्र अपने पिता राजा दशरथ के सत्य की रक्षा करें। तुम अब किसी तरह की चिंता न करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०७)

एक सौ आठवाँ सर्ग

जाबालि का नास्तिकों के मत का अवलंबन करके श्रीराम को समझाना

जब श्रीराम भरत को इस तरह समझा बुझा रहे थे उस समय ब्राह्मण शिरोमणि जाबालि उनसे धर्म विरुद्ध ये वचन कहे- हे श्रीराम! आप तपस्वी हैं इसलिये गंवार मनुष्यों की भांति आपको कभी नहीं सोचना चाहिए। संसार में कौन किसका बन्धु है और किसको किससे क्या पाना ही है? अतः जो किसी को माता-पिता समझकर उससे आसक्त होता है उसे पागल की भांति समझना चाहिए। जैसे कोई मनुष्य रास्ते में किसी धर्मशाला में ठहर जाता है और दूसरे दिन उस स्थान को छोड़कर आगे के लिये बढ़ता है, इसी प्रकार ये माता पिता घर और धन मनुष्यों के आवास मात्र हैं। इसमें समझदार मनुष्यों को किसी पर आसक्त होना ही नहीं चाहिए। अतः आपको पिता का राज्य छोड़कर इस कांटों से भरे वन में नहीं रहना चाहिए। इसलिये आप शीघ्र अयोध्या के राजा के पद पर अपना अभिषेककरके बहुमूल्य राजभोगों का उपभोग करें। राजा दशरथ आपके कोई नहीं थे और न आप ही उनके कुछ हैं। इसलिये वही कीजिये जो मैं कहता हूँ। वास्तव में ऋतुमती माता के द्वारा गर्भ धारण किये हुए वीर्य और रज का परस्पर संयोग होने पर ही पुरुष का यहाँ जन्म होता है। राजा को जहाँ जाना था चले गये अब उनके लिये कष्ट उठाना व्यर्थ है। धर्म पारायण केवल धर्म के नाम पर दुख भोगते हुए नष्ट हो जाते हैं। अतः उन्हीं के लिये मुझे दुःखहोता है। पितर उनके देवता हैं यह सोचकर लोग श्राद्ध करते हैं लेकिन सोचिए दूसरे का खाया हुआ अन्न दूसरे के शरीर में कैसे जा सकता है? इसलिए इससे अन्न का नाश ही होता है। अतएव हे महामते! यह निश्चय कीज़िये कि इस लोक के सिवा दूसरा कोई लोक नहीं। और इसके लिये किसी भी धर्म आदि पालन करने की आवश्यकता नहीं। अब आप भरत के अनुरोध पर अयोध्या चलकर वहाँ का राज्य ग्रहण कीजिये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०८)

एक सौ नवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा जाबालि के मत का खण्डन

जाबालि के वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र ने कहा, विप्रवर! आपने मुझे लाभ पहुँचाने के लिये जो बातें कही हैं वह वास्तव में करने योग्य नहीं हैं। जो मनुष्य धर्म की मर्यादा को त्याग देता है वह पाप कर्म में प्रवृत्त हो जाता है और उसकी गणना कभी सत्पुरुषों में नहीं होती। आचार ही यह बताता है कि कौन पुरुष उत्तम कुल में उत्पन्न हुआ है और कौन अधम कुल में, कौन वीर है और कौन कायर तथा कौन पवित्र है और कौन अपवित्र? आपके विचार को अपनानेवाला वास्तव में अनार्य होगा। उसके पालन से वर्ण संकरता का प्रचार होगा। यदि मैं ही विधि विहीन कर्मों में लग जाऊँ तो दुराचारी और कलंकित समझा जाऊँगा। अपनी की हुई प्रतिज्ञा को तोड़ देने से मैं किस साधन से स्वर्ग लोक प्राप्त करूंगा? आपके बताये हुए मार्ग से चलने पर मैं भी स्वेच्छाचारी रहूँगा और फिर तो राजाओं के जैसे आचरण होते हैं प्रजा भी वैसे ही करने लगती है। सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। मिथ्यावादियों से लोग उसी तरह डरते हैं जैसे सांप से। जगत् में सत्य ही ईश्वर है और सत्य से बढ़कर दूसरा कोई परम पद नहीं। दान, यज्ञ होम वेद और तप सब का आधार सत्य ही है। मैं सत्य प्रतिज्ञ हूँ और सत्य की शपथ खाकर पिता के सत्य का पालन स्वीकार कर चुका हूँ। ऐसी दशा में पिता के आदेश का किसलिए पालन न करूं। मैं विवेकशून्य होकर किसी तरह, पिता के सत्य की मर्यादा भंग नहीं करूंगा। हमने सुना है कि धर्म से भ्रष्ट होनेवाले पुरुष का हव्य कव्य कोई देवता और पितर भी स्वीकार नहीं करते। अतः मैं इसी सत्यरूपी धर्म को समस्त प्राणियों के लिये हितकर और श्रेष्ठ समझता हूँ। सत्पुरुषों ने जटा आदि धारण कर तापस धर्म का पालन किया है इसलिये मैं भी ऐसा ही करूंगा। पिता की आज्ञा भंग करके राज्य ग्रहण वास्तव में अधर्म है। आपने जिस तर्क पूर्ण वचनों के द्वारा मुझसे यह कहा है कि राज्य ग्रहण करने में कल्याण है, अतः स्वीकार करो, आपका यह आदेश श्रेष्ठ प्रतीत होने पर भी सज्जन पुरुषों द्वारा आचरण में लाने योग्य नहीं है, क्योंकि इससे सत्य और न्याय का उल्लंघन होता है। मैंने जब पिता जी के सामने इस तरह वन में रहने

की प्रतिज्ञा की है तब उसका उल्लंघन कर भरत की बात कैसे मान लूं? मेरी वन में रहने की प्रतिज्ञा अटल है। मुझे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए इसका निश्चय मैं पहले से ही कर चुका हूँ। इस कर्म भूमि को पाकर जो शुभ कर्म हो उसका अनुष्ठान करना चाहिए क्योंकि अग्नि, वायु और सोम भी कर्मों के फलस्वरूप ही अपने पदों पर प्रतिष्ठित हुए हैं। सत्य, धर्म, पराक्रम, समस्त प्राणियों पर दया, सब से प्रिय वचन बोलना तथा देवता अतिथियों ब्राह्मणों की पूजा इन सबको साधु पुरुषों ने स्वर्ग का मार्ग बताया है। अतएव सावधान ब्राह्मण भली भांति धर्माचरण करते हुए उन उत्तम लोकों को प्राप्त करना चाहते हैं। आपकी बुद्धि विषम मार्ग में स्थित है। आपने वेद विरुद्ध मार्ग का आश्रय ले रक्खा है। आप घोर नास्तिक और धर्म के रास्ते से कोसों दूर हैं। ऐसी पाखण्ड मयी बुद्धि वाले को मेरे पिताजी ने याजक बनाया है अतः उनके इस कार्य की मैं निंदा करता हूँ। जैसे चोर दण्डनीय होता है, उसी प्रकार (वेद विरोधी) बुद्ध तथागत, तथा न्यायिक को भी इसी श्रेणी में समझना चाहिए। आपके सिवा पहले के श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने सदा वेदोक्त धर्म के अनुसार ही शुभ कर्मों का अनुष्ठान किया है। जो धर्म में तत्पर रहते हैं, सत्पुरुषों का साथ करते हैं, ऐसे ही श्रेष्ठ मुनि संसार में पूजनीय होते हैं। तदनन्तर श्रीराम के ऐसे दोषपूर्ण वचन सुनकर ब्राह्मण जाबालि ने कहा रघुनन्दन! न तो मैं नास्तिक हूँ और न नास्तिकों जैसाबात करता हूँ। परलोक आदि कुछ भी नहीं है ऐसा मेरा मत नहीं है। मैं अवसर देखकर फिर आस्तिक हो गया और लौकिक व्यवहार के समय आवश्यकता होने पर पुनः नास्तिक हो सकता हूँ। इस समय अवसर देखकर ही मैंने नास्तिकों जैसी बात कही थी क्योंकि मेरा उद्देश्य आपको अयोध्या वापस ले चलने का है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०९)

एक सौ दसवाँ सर्ग

वशिष्ठ का राम को राज्य ग्रहण करने का औचित्य बतलाना

श्रीराम को रुष्ट होते हुए देखकर वशिष्ठ जी बोले रघुनन्दन! महर्षि जाबालि भी यह जानते हैं कि इस लोक के प्राणियों का परलोक में आना जाना

लगा रहता है अतः यह नास्तिक नहीं हैं। तुम्हें लौटाने की इच्छा से ही इन्होंने ऐसी बात कही थी। अब मुझसे इस लोक की उत्पत्ति का वृतान्त सुनो। सृष्टि के प्रारम्भ में सब कुछ जलमय था। तत्पश्चात् जल से पृथ्वी का निर्माण हुआ और उसके बाद ही देवताओं के साथ स्वयंभू ब्रह्मा प्रकट हुए। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु ने वाराह रूप धारण कर जल से पृथ्वी को निकाल कर अपने कृतात्मा पुत्रों के साथ इस जगत् की रचना की। उसके बाद ब्रह्मा जी से मरीचि एवं मरीचि से कश्यप हुए। कश्यप से विवस्वान का जन्म हुआ। विवस्वान के पुत्र साक्षात वैवस्वत मनु हुए। फिर उन्हीं के पुत्र इक्ष्वाकु हुए। तुम उन इक्ष्वाकु को ही अयोध्या का पहला राजा समझो। उन इक्ष्वाकु के पुत्र कुक्षि के नाम से विख्यात हुए और कुक्षि के वीर पुत्र विकुक्षि हुए। विकुक्षि के महातेजस्वी पुत्र वाण हुए। वाण के पुत्र अनरण्य हुए अनरण्य के पृथु और पृथु से महातेजस्वी त्रिशंकु की उत्पत्ति हुई। ये त्रिशंकु, विश्वामित्र के सत्य वचन के प्रभाव से सशरीर स्वर्ग गये। फिर त्रिशंकु के महातेजस्वी धुन्धुमार हुए और धुन्धुमार के पुत्र युवनाश्व हुए। युवनाश्व के पुत्र मान्धाता हुए। मान्धाता के महातेजस्वी सुसंधि हुए। इन्हीं सुसंधि के दो पुत्र हुए ध्रुव संधि और प्रसेनजित। ध्रुवसंधि के द्वारा भरत का जन्म हुआ, भरत के द्वारा असित ने जन्म धारण किया। इनके शत्रु के रूप में हैहय, तालजंध, और शुर शशबिन्दु, हुए। यद्यपि व्यूह बनाकर उनकी सेना ने शत्रुओं का मुकाबला किया। किंतु शत्रुओं की संख्या अधिक होने के कारण राजा असित को हारकर परदेश की शरण लेनी पड़ी। वहाँ एक शैल शिखर पर प्रसन्नतापूर्वक रहकर वे परमात्मा का चिंतन करने लगे। असित की दो पत्नियां थीं। उनमें से एक ने पुत्र पाने की कामना से च्यवन मुनि के चरणों की वंदना की और दूसरे ने सौत के गर्भ का विनाश करने के लिए उसे विष दे दिया। तत्पश्चात् पुत्र की इच्छा रखने वाली रानी के एक अत्यंत सुन्दर बालक को जन्म दिया। किंतु सौत के द्वारा उसे जो गर (विष) दिया गया था वह बालक उस गर के साथ ही पैदा हुआ। इससे उसका नाम सगर रक्खा गया। सगर के पुत्र का नाम असमंज था जो पाप कर्म करने के कारण जीते जी राज्य से निकाल दिया गया। असमंज के पुत्र अंशुमान और अंशुमान के दिलीप हुए। दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए और भगीरथ से ककुत्स्थ का जन्म हुआ। ककुत्स्थ के पुत्र रघु हुए और इसीलिए

उनके वंशज राघव कहलाये। रघु के पुत्र कल्माषपाद हुए जो बड़े होने पर शाप वश सौदास नामक नरभक्षी राक्षस हो गये। कल्माषपाद के शंखण हुए उनके शूरवीर पुत्र सुदर्शन हुए। सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण और अग्निवर्ण के शीघ्रग हुए। शीघ्रग के मरू, मरू के प्रशुश्रुव तथा प्रशुश्रुव के अम्बरीष हुए। अम्बरीष के नहुष, नहुष के नाभाग और नाभाग के अज और सुव्रत हुए। इन्हीं अज के धर्मात्मा पुत्र दशरथ हुए। दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम तुम हो। अतः यह अयोध्या का राज्य तुम्हारा है। अतएव उसे ग्रहण कर इसकी देखभाल करते रहो। समस्त इक्ष्वाकुवंशियों के यहाँ बड़ा लड़का ही राजा होता आया है यही अपना सनातन कुल धर्म है। अतः तुम इसे नष्ट न होने दो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११०)

एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग

वशिष्ठ जी के समझाने पर भी श्रीराम का पिता की आज्ञा पालन से विरत न होना

मुनि वशिष्ठ इतनी बात कह कर श्रीराम से पुनः बोले- रघुनंदन! इस संसार में उत्पन्न हुए पुरुष के तीन गुरू होते हैं। आचार्य, पिता और माता। माता-पिता जन्म देते हैं इसलिए गुरू हुए और आचार्य उसे ज्ञान देता है इसलिये गुरू कहलाता है। अतएव श्रीराम मैं तुम्हारा और तुम्हारे पिता दोनों का गुरू हूँ। इस नाते यदि तुम मेरी आज्ञा का पालन करोगे तो सत्पुरुषों के पथ का त्याग करनेवाले नहीं समझे जाओगे। इसके अलावा अपनी धर्म परायणा बूढ़ी माता की बात तुम्हें कभी टालनी नहीं चाहिए। श्रीराम! इस समय भरत तुमसे राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना कर रहे हैं उनकी बात मान लेने पर भी तुम धर्म का उल्लंघन करनेवाले नहीं कहलाओगे। वशिष्ठ जी की यह बात सुनकर श्रीराम ने कहा- माता-पिता जो पुत्र के प्रति सर्वदा सहज बर्ताव करते हैं उसका बदला सहज ही नहीं चुकाया जा सकता। अतः मेरे जन्मदाता पिता जी ने मुझे जो आज्ञा दी है उसे मैं मिथ्या नहीं कर सकता। तब श्रीराम के इस वचन को सुनकर भरत जी का मन बड़ा उदास होगयाऔर वे सुमन्त्र से बोले-

सारथे! आप इस बेदी पर बहुत से कुश बिछा दीजिये। क्योंकि आर्य जब तक मुझ पर प्रसन्न न होंगे मैं यहीं इनके पास धरना दूंगा और जब तक ये अयोध्या को नहीं लौटेंगे, तब तक मैं इसी तरह पड़ा रहूँगा। भरत की बात सुनकर सुमन्त्र श्रीराम का मुख देखने लगे। भरत उन्हें ऐसा करते हुए देखकर स्वयं ही कुश की चटाई बिछाकर जमीन पर बैठ गये। यह देखकर श्रीराम बोले- तात! मैं तुम्हारी क्या बुराई करता हूँ जो तुम मेरे आगे धरना दोगे? क्योंकि राजतिलक ग्रहण करनेवाले क्षत्रियों के लिये इस प्रकार धरना देने का विधान नहीं है। अतः रघुनंदन उठो और यहाँ से शीघ्र ही अयोध्यापुरी जाओ। इस बात को सुनकर भरत जनपदवासियों की ओर देखकर बोले- आप लोग ही भैया को क्यों नहीं समझाते! तब जनपद वासियों ने कहा भरत जी आप ठीक बात ही कर रहे हैं लेकिन श्रीरामचन्द्र जी पिता की आज्ञा पालन करने में लगे हैं। ऐसी अवस्था में हम उस ओर से उन्हें लौटाने में असमर्थ हैं। उनका उत्तर सुनकर श्रीराम बोले- भरत! मित्रों की इस धर्मयुक्त बात पर ध्यान दो और आप शीघ्र उठकर मेरा और जल का स्पर्श करो। यह सुनकर भरत उठ खड़े हुए और श्रीराम और जल का स्पर्श करते हुए बोले- हे सभासदों और मंत्रीगण! मैंने पिताजी से राज्य लेने की इच्छा कभी नहीं प्रकट की और न माता कैकेयी को ऐसा करने के लिये बाध्य किया था। श्रीराम को भी वनवास भेजने में मेरी कोई सम्मति नहीं थी। फिर भी यदि इनके लिये पिता की आज्ञा पालन करते हुए वनवास में रहना आवश्यक है तो इसके बदले मैं ही चौदह वर्षों तक वन में निवास करूँगा। भरत की इस बात से धर्मात्मा राम को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने अब पुरवासियों की ओर देखकर कहा- पिताजी ने जो वस्तु जिस को दे दी है उस वस्तु में कोई उलटफेर नहीं कर सकता। इसलिये मैं वनवास के लिये भरत को आज्ञा नहीं देता। क्योंकि माता कैकेयी ने मेरे ही लिये वनवास मांगा था और पिता द्वारा यह स्वीकार किया गया। इसलिये यह मेरे लिये निन्दित होगा। मुझे भली भांति ज्ञात है कि भरत क्षमाशील हैं और बड़ों का आदर सत्कार करनेवाले हैं। वन की अवधि समाप्त होने पर मैं अपने भाई भरत के साथ पृथ्वी पर शासन करते हुए उसका पालन करूंगा। कैकेयी ने राजा से वर मांगा और मैंने स्वीकार कर लिया है। अतः भरत! तुम मेरा कहना मानकर उस वर के

पालन द्वारा अपने पिता महाराज दशरथ को असत्य के बन्धन से छुटकारा दिलाओ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१११)

एक सौ बारहवाँ सर्ग

ऋषियों का भरत को लौटने की सलाह देना

उन तेजस्वी भाइयों का मिलन देखकर वहाँ आये हुए महर्षियों को बड़ा विस्मय हुआ। वे उन भाइयों की प्रशंसा करते हुए बोले- ये दोनों भाई श्रेष्ठ धर्म के ज्ञाता और धर्म मार्ग पर चलने वाले हैं। तत्पश्चात् रावण बध की अभिलाषा रखनेवाले ऋषियों ने मिलकर भरत से कहा- महाप्राज्ञ! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो तुम्हारा आचरण उत्तम और महान् है। यदि तुम वास्तव में अपने पिता को सुख पहुंचाना चाहते हो तो तुम्हें श्रीरामचन्द्र की बात मान लेनी चाहिए। श्रीराम अपने पिता को सदा ऋण से उऋण देखना चाहते हैं। कैकेयी का ऋण चुकाने के कारण ही राजा दशरथ स्वर्ग गये। इतना कहकर वें सब अपने-अपने स्थान चले गये। किंतु उनकी बातें सुनकर जहाँ राम को प्रसन्नता हुई वहीं भरत थर्रा उठे। वे लड़खड़ाती वाणी से बोले- ज्येष्ठ पुत्र का राज्य ग्रहण और प्रजापालन रूप धर्म है उसकी ओर देखते हुए आप मेरी माता की याचना पूरी कीजिये। मैं इस विशाल राज्य की रक्षा अकेले नहीं कर सकता। महाराज! आप इसे स्वीकार कर दूसरे किसी को इसके पालन का भार सौंप दीजिये। इतना कह कर भरत अपने भाई के चरणों पर गिर पड़े। तब श्रीराम ने उनहें अपनी गोद में उठा लिया और कहा तुम्हें जो यह विनय शील स्वाभाविक बुद्धि प्राप्त हुई है उस बुद्धि के द्वारा तुम समस्त भू-मण्डल की रक्षा करने में भी समर्थ हो सकते हो। इसके सिवा सारा कार्य अमात्यों, मित्रों और बुद्धिमान मंत्रियों की सलाह लेकर उसे करा लिया करो। चन्द्रमा से उसकी प्रभा अलग हो जाय हिमालय हिम का परित्याग कर दे अथवा समुद्र सीमा को लांघ कर आगे बढ़ जाये किंतु मैं पिता की प्रतिज्ञा नहीं तोड़ सकता। अब श्रीराम के इस प्रकार कहने पर भरत उनसे बोले- आर्य! ये दोनों स्वर्ण भूषित पादुकाएं आपके चरणों में अर्पित है। आप इन पर अपने

चरण रक्खें। यह ही सम्पूर्ण जगत के योग क्षेम का निर्वाह करेगी। तब श्रीराम ने उन्हें पहनकर फिर उन पादुकाओं को भरत को सौंप दिया। उन पादुकाओं को प्रणाम करके भरत ने श्रीराम से कहा- वीर रघुनंदन! मैं चौदहवर्षों तक जटा और चीर धारण करके फूल मूल का भोजन करता हुआ आपके आगमन की प्रतीक्षा करते हुए नगर के बाहर रहूँगा। भैया! इतने दिनों तक राज्य का सारा भार आपकी इन चरण पादुकाओं पर ही रखकर आपकी बाट जोहता रहूँगा। रघुनंदन! यदि चौदहवाँ वर्ष पूर्ण होने पर नये वर्ष के प्रथम दिन ही मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई आग में प्रवेश कर जाऊँगा। उस समय श्रीराम ने बहुत अच्छा कहकर अपनी स्वीकृति दे दी और फिर भरत और शत्रुघ्न को छाती से लगाते हुए बोले- तुम लोग भूल कर भी माता कैकेयी के प्रति क्रोध मत करना और सदा उनकी रक्षा करना। तत्पश्चात् धर्मात्मा भरत ने उन पादुकाओं को लेकर श्रीरामचन्द्र की परिक्रमा की तथा उन पादुकाओं को राज्य की सवारी में आनेवाले सर्वश्रेष्ठ गजराज के मस्तक पर स्थापित किया। तदनन्तर श्रीराम ने वहाँ आये हुए सभी लोगों का यथा योग्य सत्कार कर उन्हें विदा कर दिया। उस समय सभी माताओं का गला दुःख से भर आया और वे श्रीराम से बात भी न कर सकीं। तत्पश्चात् श्रीराम सब माताओं को प्रणाम करके अपनी कुटिया में चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११२)

एक सौ तेरहवाँ सर्ग

भरत का भरद्वाज से मिलते हुए अयोध्या लौटना

तदनन्तर श्रीराम चन्द्र की दोनों पादुकाओं को अपने मस्तक पर रखकर भरत शत्रुघ्न के साथ प्रसन्नतापूर्वक रथ पर जा बैठे। उस समय सभी सम्मानित व्यक्ति चित्रकूट पर्वत की परिक्रमा करते हुए मन्दाकिनी नदी को पार किया फिर पूर्व दिशा की ओर चल पड़े। भरत सेना के साथ रमणीय धातुओं को देखते हुए चित्रकूट के किनारे से निकले। चित्रकूट से थोड़ी दूर जाने पर भरद्वाज मुनि के आश्रम में जा पहुंचे। वहाँ रथ से उतरकर उन्होंने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। भरद्वाज मुनि ने भरत को देखकर पूछा तात!

क्या तुम्हें सफलता मिली ? क्या श्रीराम से तुम्हारी भेंट हुई ? यह सुनकर भरत ने कहा- मुने ! मेरी प्रार्थना और मेरे गुरू देव के अनुरोध पर श्रीराम ने कहा- मैं चौदह वर्षों तक वन में रहूँगा यह मैं पिता से प्रतिज्ञा करके आया हूँ इसलिये जब तक वह अवधि समाप्त न हो जायेगी उस समय तक मैं अयोध्या कदापि वापस नहीं जाऊँगा। इस पर वशिष्ठ जी ने कहा- श्रीराम ! आप प्रतिनिधि के रूप में अपनी स्वर्ण भूषित पादुकाएं भरत को दे दें। गुरू वशिष्ठ के ऐसा कहने पर श्रीराम ने अयोध्या के राज्य संचालन हेतु दोनों स्वर्ण भूषित पादुकाएं मुझे दे दीं। तत्पश्चात् उन्हीं की आज्ञा से उनके चरण पादुकाओं को लेकर अयोध्या जा रहा हूँ। यह सुनकर भरद्वाज मुनि ने कहा भरत ! शील और सदाचार के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ हो। महाबाहु राजा दशरथ तुम जैसा धर्मात्मा पुत्र पाकर सब प्रकार के ऋण से उऋण हो गये। भरद्वाज के ऐसा कहने पर भरत ने चरणों का स्पर्श किया और उनसे जाने की आज्ञा मांगी। तदनन्तर मुनि के चार-बार परिक्रमा कर वे मंत्रियों सहित अयोध्या चल पड़े। तब मार्ग में दिव्य नदी यमुना को पारकर गंगाजी का दर्शन किया। फिर गंगा पार कर वे शृंगवेरपुर में जा पहुँचे। वहाँ से चलकर फिर वे अयोध्यापुरी आये जो उस समय पिता और भाई दोनों से विहीन हो चुकी थी। यह देखकर उन्होंने सुमन्त्र से कहा- सूत! देखिये इस समय अयोध्या की सारी शोभा नष्ट हो गयी है इस समय अत्यंत दीन और नीरव लग रही है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११३)

एक सौ चौदहवाँ सर्ग

भरत का अन्तः पुरी में प्रवेश कर दुखी होना

तत्पश्चात् अयोध्यापुरी में प्रवेश करते ही भरत ने देखा कि वहाँ बिलाव और उल्लू विचर रहे थे। घरों के किवाड़े बंद थे और कहीं प्रकाश न जलने के कारण वह पुरी कृष्ण पक्ष की काली रात के समान जान पड़ती थी। वह पुरी उस पर्वतीय नदी के समान दुर्बल काय दिखलाई पड़ रही थी जिसका जल सूर्य के किरणों से तपकर कुछ गरम और गंदला हो गया है। उस समय

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

अयोध्या महासागर में संकटग्रस्त उस सेना की भांति लग रही थी जिसके कवच कट कर गिर गये हों, हाथी घोड़े ध्वज छिन्न-भिन्न हो गये हों और मुख्य-मुख्य वीर मार डाले गये हों। पहले वाली कोलाहल पूर्ण अयोध्या अब शब्द शून्य सी दिखलायी पड़ती थी। यज्ञकाल समाप्त होने पर जैसे यज्ञ सम्बन्धी वेदी मंत्रोच्चारण की ध्वनि से रहित हो जाता है उसी प्रकार अयोध्या सुनसान दिखायी देती थी। जैसे कोई गाय साँड़ के समागम के लिये उत्सुक हो और उसे साँड़ से अलग कर दिया गया हो और वह नूतन घास चरना छोड़ कर आर्त भाव से गोष्ठ में बंधी खड़ी हो, उसी प्रकार अयोध्या आन्तरिक वेदना से पीड़ित थी। श्रीराम के हटने से अयोध्या उस माला के समान श्रीहीन हो गयी थी जिसकी मणियां उससे निकालकर अलग कर दी गयी हों। उस समय अयोध्या उसी तरह शोभाहीन हो गयी थी जैसे पुष्प नष्ट होने के कारण कोई तारिका पृथ्वी पर गिरकर शोभा हीन हो गयी हो। जो पहले फूलों से लदी होने के कारण भ्रमरों से सुशोभित थी वहीं जैसे अब दावानल के चपेट में आकर मुरझा गयी हो। वहाँ के व्यापारी वणिक् आदि किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे और इसीलिये बाजार हाट की दुकान कम खुली थीं। सड़कें बुहारी नहीं गयी थीं, इसलिये यहाँ वहाँ कूड़े का ढेर लगे थे। यह सब देखकर भरत दुखित हो कहने लगे- इस नगर की शोभा मेरे भ्राता के साथ वन चली गयी है। वे कब इस नगर में प्रवेश करेंगे और कब फिर सारे उत्सव मनाये जायेंगे। इस तरह विलाप करते हुए भरत जी उस महल में गये जो राजा दशरथ से हीन हो चुका था। उस समय वह अंतःपुर उसी प्रकार शोभा हीन लग रहा था जैसे सूर्य के छिप जाने से दिन की शोभा नष्ट हो जाती है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११४)

एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग

श्रीराम की चरणपादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त कर भरत का राज्य का सब कार्य करना

तत्पश्चात् माताओं को अयोध्या में रखकर भरत गुरुओं से बोले- अब मैं नन्दिग्राम को जाऊँगा। वहीं रहकर श्रीराम के बिना प्राप्त होनेवाले सारे

दुःखों को सहन करूँगा और श्रीराम की प्रतीक्षा करता रहूँगा क्योंकि महायशस्वी श्रीराम ही हमारे राजा हैं। अब भरत की बात़सुनकर सभी मंत्री और पुरोहित तथा वशिष्ठ जी बोले- भरत! वास्तव में भ्रातृ भक्ति से प्रेरित होकर तुमने जो बात कही है वह तुम्हारे ही योग्य है। तुम श्रेष्ठ मार्ग पर स्थित हो इसलिये कौन तुम्हारे इन विचारों का समर्थन नहीं करेगा। अपने रुचि के अनुसार मंत्रियों के वचन सुनकर भरत ने सारथि से कहा- मेरा रथ जोत कर तैयार किया जाये। फिर प्रसन्न मुख से सब माताओं से जाने की आज्ञा ली और तत्पश्चात् शत्रुघ्न सहित भरत रथ पर सवार हुए और शीघ्रतापूर्वक वशिष्ठ आदि गुरूजनों के साथ पूर्वाभिमुख होकर नन्दिग्राम की ओर चल पड़े। भरत के चलते ही समस्त पुरवासी भी उनके साथ हो लिये। भरत उस समय श्रीराम की चरण पादुका अपने मस्तक पर लिये थे। फिर इस प्रकार चलते हुए वे शीघ्र ही नन्दिग्राम में जा पहुंचे और वहाँ रथ से उतर कर वे गुरुजनों से बोले- मेरे भाई ने यह उत्तम राज्य धरोहर के रूप में दिया है, उनकी ये सुवर्ण विभूषित चरणपादुकाएं ही सबके योगक्षेम का निर्वाह करनेवाली हैं। तत्पश्चात् उन्होंने अपने मंत्री, सेनापति, प्रजा आदि से कहा - आप सब लोग इन चरण पादुकाओं पर क्षत्र धारण करें। मैं उनको ही श्रीराम के साक्षात चरण मानता हूँ और उनके द्वारा ही इस राज्य में धर्म की स्थापना होगी। फिर श्रीराम से मिलते ही मैं अपने उन गुरुदेव को यह राज्य समर्पित कर उनकी आज्ञा के अधीन हो उन्हीं की सेवा में लग जाऊँगा। जब श्रीराम के अयोध्या वापस आने पर उनका राज्य पद पर अभिषेक हो जायेगा उस समय मुझे चौगुनी प्रसन्नता और चौगुने यश की प्राप्ति होगी। अब इस प्रकार दीन भाव से भरकर भरत नन्दिग्राम में रहकर राज्य का शासन करने लगे। वे उस समय वल्कल और जटा धारण कर मुनिवेश में वहाँ निवास कर रहे थे। भरत राज्य शासन का समस्त, कार्य श्रीराम की चरण पादुकाओं को निवेदन करते थे तथा स्वयं ही उस पर चवंर डुलाते थे और राज्य का सब कार्य मंत्री आदि से करवाते थे। उस प्रकार जो भी बहुमूल्य भेंट आती वह पहले उन पादुकाओं को निवेदन करके पीछे से भरत जी उसका उचित प्रबंध करते।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११५)

एक सौ सोलहवाँ सर्ग

वृद्ध कुलपति सहित बहुत से ऋषियों का चित्रकूट छोड़कर दूसरे आश्रम में जाना

भरत के वापस चले जाने पर श्रीराम ने उस वन के तपस्वियों को कुछ भयभीत सा होते देख और उन्हें वहाँ से अन्यत्र चले जाने के लिये उत्सुक पाया। वे उनकी ओर नाक भौं आदि टेढ़ी करके संकेत से ही आपस में कुछ बात किया करते। अब उनकी यह उत्कंठा देखकर श्रीराम के मन में यह शंका हुई कि कहीं मुझसे कोई अपराध तो नहीं हो गया है। यह सोचकर वह हाथ जोड़कर वहाँ के कुलपति महर्षि से इस प्रकार बोले- क्या आप लोगों को मेरे अन्दर कोई विकृति भाव दिखलायी पड़ रहा है। क्या मेरे छोटे भाई लक्ष्मण ने कोई ऐसा आचरण तो नहीं किया है जो उनके करने योग्य न रहा हो। अथवा आपके क्या चरणों की अनुगामी सीता आप लोगों की समुचित सेवा नहीं कर पाती ? श्रीराम की ऐसी बातें सुनकर तपस्या के द्वारा वृद्ध हुए एक महर्षि ने श्रीरामसे कांपते हुए कहा- तात ! सबका कल्याण चाहनेवाली सीता हम लोगों से वर्ताव करते समय अपने स्वभाव से विचलित हो जाये ऐसा सम्भव नहीं। बात केवल यह है कि आपके कारण ही हम तपस्वियों पर राक्षसों की ओर से भय उत्पन्न होनेवाला है। यही जानकर हम लोग आपस में कानाफूसी कर रहे हैं। आप जब से यहां निवास करने आये हैं तब से राक्षस विशेष रूप से हमें सताने लगे हैं और रावण का छोटा भाई खर नामक राक्षस ने यहाँ के सभी तापसों को उखाड़ फेंका है। वे तपस्वियों के आश्रम में छिप-छिप कर असावधान तापसों का विनाश करते हुए उन्हें विशेष रूप से सताने लगे हैं। ये राक्षस अपवित्र पदार्थों से तपस्वियों का स्पर्श कर अपने सामने खड़े अन्य ऋषियों को भी पीड़ा पहुंचाते हैं। होम कर्म आरम्भ होते ही वे यज्ञ सामग्रियों को इधर-उधर फेंक देते हैं और जलती हुई आग में पानी छोड़ देते हैं। अतः उनके द्वारा दिये जाने वाले कष्टों को देखकर यहाँ के ऋषि लोग मुझे यहाँ से अन्य स्थान पर चलने के लिये प्रेरित कर रहे हैं। श्रीराम ! वे कोई हिंसा का प्रदर्शन करें इसके पहले हम इस आश्रम को त्याग देंगे। यहाँ से थोड़ी दूर पर एक विचित्र वन है जिसमें अश्वमुनि का आश्रम है। अब हम लोग

चलकर उसी आश्रम का आश्रय लेंगे। श्रीराम! खर हमारे ऊपर कोई अत्याचार करे इसके पहले आप भी यदि चाहें हमारे साथ यहाँ से चल दीजिये। यद्यपि आप राक्षसों का दमन करने में सक्षम हैं फिर भी आपका सीता के साथ यहाँ रहना किसी प्रकार उचित नहीं। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्र के सांत्वना देने के बाद भी वे कुलपति महर्षि उस आश्रम को छोड़कर अपने दल के ऋषियों के साथ अन्यत्र चले गये। तब उन ऋषियों को विदा कर श्रीरामचन्द्र अपने आश्रम पर चले आये और वहाँ लक्ष्मण सीता सहित विश्राम करने लगे। उन्होंने उस आश्रम को एक क्षण के लिये भी नहीं छोड़ा और बहुत से ऋषि श्रीराम पर विश्वास करके वहीं रहे। अर्थात् वे अन्य स्थानों पर नहीं गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११६)

एक सौ सत्रहवाँ सर्ग

श्रीराम आदि का अत्रिमुनि के आश्रम पर जाना

अब उन सब ऋषियों के चले जाने पर श्रीराम ने बारम्बार विचार करके देखा कि उनका स्वयं भी वहाँ रहना उचित नहीं है। उन्होंने सोचा, इस आश्रम पर मैं भरत से, माताओं से तथा पुरवासियों से मिल चुका हूँ। अतः प्रतिदिन उनकी स्मृति से मैं शोक मग्न हो जाता हूँ। साथ ही भरत की सेना का पड़ाव पड़ने के कारण उनके हाथी और घोड़ों की लीदों से यहाँ की भूमि अपवित्र हो गयी है। अतः हम लोगों को भी यह स्थान छोड़ देना चाहिए, ऐसा सोचकर वे सीता और लक्ष्मण के साथ वहाँ से चल दिये। वहाँ से चलते हुए वे अत्रि के आश्रम पर पहुँचे। मुनि ने तब उनका आतिथ्य सत्कार करते हुए अपनी पत्नी अनसूया से कहा- देवि! इन सीता को सत्कारपूर्वक अपने हृदय से लगाओ। तत्पश्चात् उन्होंने अनसूया का परिचय देते हुए कहा- एक समय यहाँ दस वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई और उस समय जब सारा जगत_दग्ध होने लगा। तब जिन्होंने अपने उग्र तपस्या से फल फूल उत्पन्न किये और मन्दाकिनी की धारा बहायी और जिन्होंने दस हजार वर्षों तक बड़ी तपस्या करके सारे ऋषियों का विघ्न निवारण किया था वे ही यह अनसूया देवी हैं।

श्रीराम! इन्होंने देवताओं के कार्य सिद्धि के लिये दस रात के बराबर एक रात बनायी थी। वे ही यह अनसूया देवी तुम्हारी माता की तरह पूजनीया हैं। इन बातों को सुनकर श्रीराम ने सीता से कहा- राजकुमारी तुमने मुनि की बात तो सुनी ही होगी। अब तुम तपस्विनी देवी के पास जाओ। श्रीराम की आज्ञा पाकर सीता अनसूया के पास गयीं और वृद्धावस्था के कारण जिनके बाल सफेद हो गये थे तथा केले के पत्ते की तरह जिनके अंग निरन्तर कांप रहे थे, उन्हें प्रणाम करते हुए उनका कुशल समाचार पूछा। इस पर अनसूया बोली- सीते! तुम वन में भेजे हुए श्रीराम का अनुसरण कर रही हो यह तुम्हारे लिये बड़े सौभाग्य की बात है। अपने स्वामी नगर में रहें या वन में, जिन स्त्रियों को वे सदैव प्रिय होते हैं, उन्हें महान् लोकों की प्राप्ति होती है। पति कितना ही बुरा क्यों न हो उत्तम स्वभाववाली नारियों के लिये वह श्रेष्ठ देवता के समान है। पति से बढ़कर मुझे कोई हितकारी बन्धु नहीं दिखलायी पड़ता। जो स्त्रियां अपने पति पर भी शासन करती हैं ऐसी असाध्वी स्त्रियों को गुण दोषों का ज्ञान नहीं होता और वे इच्छानुसार इधर उधर विचरती रहती हैं और वे अनुचित कर्म में फंस कर भ्रष्ट हो जाती हैं तथा अपयश की भागी होती हैं। किन्तु साध्वी स्त्रियाँ उत्तम गुणों से युक्त हो पुण्यात्माओं की भाँति स्वर्ग लोक में विचरण किया करती हैं। अतएव तुम पति को प्रधान देवता समझकर उनका अनुसरण करती हुई उनकी सहधर्मिणी बनो। इससे तुम्हें सुयश और धर्म दोनों की प्राप्ति होगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११७)

एक सौ अट्ठारहवाँ सर्ग

सीता अनसूया संवाद

तपस्विनी अनसूया के इस प्रकार उपदेश देने पर सीता उनकी प्रशंसा करती हुई बोली- देवि! आप संसार की सभी स्त्रियों में श्रेष्ठ हैं। नारी का गुरू उसका पति ही है। यह बात मुझे पहले से ही ज्ञात है। मेरे पतिदेव यदि अनार्य और निर्धन होते तो भी मैं बिना किसी संकोच के उनकी सेवा में लगी रहती। फिर जब ये अपने गुणों के कारण ही सब के प्रशंसा के पात्र हैं तब इनकी सेवा

के लिए कहना ही क्या? ये अपनी माता के साथ जैसा वर्ताव करते हैं वैसा महाराज दशरथ की दूसरी रानियों के साथ भी करते हैं। वन में आते समय मेरी सास कौसल्या ने मुझे जो कर्तव्य का उपदेश दिया था वह मेरे हृदय में ज्यों का त्यों अंकित है। विवाह के समय अग्नि के समीप मेरी माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी वह भी मुझे अच्छी तरह याद है। मेरे अन्य स्वजनों ने भी मुझे जो उपदेश दिये हैं उसके अनुसार भी स्त्री के लिये पति की सेवा के अतिरिक्त और कोई विधान नहीं। सत्यवान की पत्नी सावित्री पति की सेवा करके ही स्वर्ग लोक में पूजित हो रही है। उसी तरह आपने भी पति सेवा के प्रभाव से स्वर्ग लोक में स्थान प्राप्त कर लिया है। स्त्रियों में श्रेष्ठ रोहिणी भी पति सेवा के प्रभाव से ही एकपल के लिये भी चन्द्रमा से विलग होती हुई नहीं दिखलायी पड़ती। इस तरह बहुत-सी साध्वी स्त्रियाँ अपने पुण्यकर्म के बल से देवलोक में आदर पा रही हैं। सीता के वचनों से अनसूया को बड़ा हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने सीता का भी हर्ष बढ़ाते हुए कहा- सीते! तुम्हारी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। सीता बोली- आपने अपने वचनों द्वारा ही मेरा सब प्रिय कर दिया है। सीता की बात सुनकर अनसूया प्रसन्न होकर कहने लगी- हे सीते! यह सुन्दर दिव्य हार ये अंगराग और ये अनुलेपन (उबटन) मैं तुम्हें देती हूँ। इससे तुम्हारे अंगों की शोभा बढ़ेगी और इसका प्रयोग करके तुम सदा अपने पति को प्रसन्न रख सकोगी तथा उनकी शोभा उसी तरह बढ़ाओगी जैसे लक्ष्मी अपने पति विष्णु की शोभा बढ़ाती हैं। सीता ने उसे अनसूया का अमूल्य भेंट समझकर उसे ग्रहण कर लिया और हाथ जोड़कर उनकी सेवा में बैठी रहीं। तदनन्तर अनुसूया बोलीं! मैंने सुना है यशस्वी श्रीराम ने तुम्हें स्वयम्बर में प्राप्त किया है। मैं अब उस वृतान्त को विस्तार से सुनना चाहती हूँ। उनकी आज्ञा पाकर सीता बोलीं- हे माता! सुनिये। मिथिला के राजा जनक क्षत्रियोचित कार्य में लगे रहकर न्यायपूर्वक पृथ्वी का पालन करते हैं। एक समय की बात है, वे खेत को हल लेकर जोत रहे थे। इसी समय पृथ्वी फाड़कर मैं उत्पन्न हुई और इस तरह मैं राजा जनक की पुत्री हुई क्योंकि उस समय उनके दूसरी कोई संतान न थी। इसी समय राजा जनक को एक आकाशवाणी सुनायी दी कि नरेश्वर! यह कन्या धर्मतः तुम्हारी ही पुत्री है। यह सुनकर मेरे धर्मात्मा पिता ने मुझे पालन-पोषण हेतु

अपनी बड़ी रानी को दे दिया। फिर धीरे-धीरे मेरी अवस्था विवाह के योग्य हो जाने पर राजा जनक बड़ी चिंता में पड़ गये। अब मुझे अयोनिजा कन्या समझकर वे मेरे लिये परम सुन्दर पति को प्राप्त करने का विचार करने लगे। अचानक एक दिन उनके मन में यह विचार हुआ कि मैं धर्मतः अपनी पुत्री का स्वयम्बर करूंगा। उन्हीं दिनों उनके महान् यज्ञ से प्रसन्न होकर महात्मा वरुण ने उन्हें एक श्रेष्ठ दिव्य धनुष तथा अक्षय बाणों से भरे हुए दो तरकस दिये। वह धनुष इतना भारी था कि मनुष्य पूरी कोशिश करने पर भी उसे नहीं हिला पाते थे। तब उस धनुष को पाकर मेरे पिता ने राजाओं को आमंत्रित कर उनके समूह से यह बात कही कि "जोमनुष्य इस धनुष को उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा, मेरी पुत्री सीता उसी की पत्नी होगी।" किंतु वहाँ आये हुए राजा जब उसे उठाने में समर्थ न हो सके तब उसे प्रणाम कर चले गये। उन्हीं दिनों रघुकुल नंदन श्रीराम लक्ष्मण सहित विश्वामित्र के साथ पिता का यज्ञ देखने केलिये मिथिलापुरी पधारे। उस समय मेरे पिता ने धर्मात्मा विश्वामित्र का बड़ा आदर सत्कार किया। तब विश्वामित्र ने कहा राजन्! ये दोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं और आपके उस दिव्य धनुष का दर्शन करना चाहते हैं। तब जनक ने उस धनुष को मंगवाया और श्रीराम को दिखलाया। महाबली श्रीराम ने पलक मारते-मारते उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा दी। किन्तु उनके वेग पूर्वक उसे खींचते ही एक भयंकर शब्द के साथ धनुष के दो टुकड़े हो गये। तब मेरे पिता ने मुझे श्रीराम के हाथों में देना चाहा। किन्तु राम ने मुझे ग्रहण नहीं किया। तदनन्तर मेरे पिता ने राजा दशरथ की अनुमति लेकर श्रीराम को मेरा दान कर दिया। साथ ही मेरी छोटी बहन उर्मिला को लक्ष्मण के हाथों में उनकी पत्नी के रूप में दिया। इस प्रकार श्रीराम के हाथों मुझे स्वयं मेरे पिताजी ने सौंपा था। तब से मैं धर्मानुसार श्रीराम में ही सदा अनुरक्त रहती हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११८)

एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग

रात्रि में आश्रम में रहकर प्रातःकाल अन्यत्र जाने के लिये ऋषियों से विदा लेना

तदनन्तर उस लम्बी कथा को सुनकर अनसूया ने सीता को अपनी दोनों भुजाओं से भरकर उनका मस्तक सूंघा और कहा- बेटी ! तुमने स्वयम्बर की जो कथा सुनायी है उसमें मेरा मन बहुत लग रहा है। किन्तु अब सूर्यास्ताचल में गये हुए प्रतीत होते हैं और उन पक्षियों के शब्द भी सुनायी दे रहे हैं जो अपना-अपना चुगा लेकर विश्राम हेतु अपने घोंसलों में लौट आये हैं- स्नान के पश्चात् भीगे वस्त्रों को पहनकर मुनि भी लौट रहे हैं। रात में भ्रमण करनेवाले निशाचर भी इधर उधर चक्कर लगा रहे हैं। मृग भी वेदियों पर आकर सो गये हैं। सीते ! अब रात हो गयी है। अब जाओ मैं तुम्हें जाने की आज्ञा देती हूँ। तुम जाओ और श्रीराम की सेवा में लग जाओ। बेटी ! अब पहले मेरी आँखों के सामने अपने को अलंकृत करो। मेरे दिये आभूषणों को धारण कर मुझे प्रसन्न करो। सीता ने यह सुनकर उस समय वस्त्राभूषणों से अपना श्रृंगार किया। तत्पश्चात् वे श्रीराम के सम्मुख गयीं। सीता के वस्त्र और आभूषणों को देखकर श्रीराम को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब सीता ने अनुसूया से प्राप्त हुए उन वस्त्राभूषणों की सारी कथा कह सुनायी। तत्पश्चात् श्रीराम ने प्रसन्नतापूर्वक सीता सहित रात्रि भर वहीं निवास किया। फिर रात्रि बीतने पर जब सभी वनवासी तपस्वी मुनि स्नान कर चुके- तब श्रीराम और लक्ष्मण ने उनसे जाने की आज्ञा मांगी। तदनन्तर उन तपस्वी मुनियों ने कहा- रघुनंदन ! यह विशाल वन नाना प्रकार के नरभक्षी राक्षसों से भरा पड़ा है। उन्हें यहाँ जो भी तपस्वी अपवित्र अथवा असावधान अवस्था में मिल जाता है उन्हें वे खा जाते हैं। अतः उन्हें रोकिये और यहाँ से मार भगाइये। श्रीराम ! यही वह मार्ग है जिससे महर्षि लोग वन में फल फूल लेने के लिये जाते हैं। आपको भी इसी दुर्गम मार्ग से प्रवेश करना चाहिए। तत्पश्चात् उन लोगों ने उनकी मंगल यात्रा के लिये स्वस्तिवाचन किया तब शत्रुओं को संताप देनेवाले श्रीराम अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ उस वन

में इस तरह प्रवेश किया जैसे मेघों की छटा के भीतर सूर्यदेव घुस गये हों।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के अयोध्या काण्ड में एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११९)

अयोध्याकाण्ड समाप्त

अरण्य काण्ड

पहला सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता का तापसों के आश्रम मण्डल में सत्कार

तदनन्तर दण्डकारण्य नामक वन में प्रवेश करके श्रीराम ने तपस्वी मुनियों के बहुत से आश्रम देखे। उनके आश्रम मण्डल ब्रह्म विद्या से प्रकट हुए विलक्षण तेज से व्याप्त था। वह आश्रम समुदाय रूपी प्राणियों को शरण देनेवाला था। वहाँ का प्रदेश इतना मनोरम था कि वहाँ अप्सरायें प्रतिदिन आकर नृत्य करती। वहाँ बड़ी बड़ी अग्निशालायें, यज्ञ पात्र, मृग चर्म, कुश समिधा, जलपूर्ण कलश उनकी शोभा बढ़ाते थे। स्वादिष्ट फल देनेवाले वृक्षों से वह आश्रम मण्डल घिरा हुआ था। कमल पुष्पों से सुशोभित अनेक तालाब उसकी शोभा बढ़ाते थे।वहाँ और भी बहुत से फूल सब ओर बिखरे थे। उन आश्रमों में चीर और मृगचर्म धारण करनेवाले अनेक मुनि निवास करते थे तथा वह आश्रम समूह वेद ध्वनि से गूंजा करता था। उस आश्रम मण्डल को देखकर श्रीराम धनुष की प्रत्यंचा उतार कर आश्रम के भीतर गये। वे अब वहाँ के मुनि श्रीराम, सीता और लक्ष्मण को आशीर्वाद देते हुए उन्हें एक टक देखने लगे क्योंकि उनका स्वरूप उन्हें आश्चर्यमय प्रतीत होता था। तत्पश्चात् मुनियों ने श्रीराम का विधिवत सत्कार कर उन्हें जल अर्पित किया और उन्हें फल मूल आदि के साथ सारा आश्रम भी समर्पित कर दिया। फिर सब कुछ निवेदन कर वे श्रीराम से हाथ जोड़कर बोले- रघुनंदन! आप सदैव धर्म के पालन करनेवाले हैं और बड़े पराक्रमी हैं। आप हमारे पूजनीय भी हैं क्योंकि राजा ईश्वर का स्वरूप होकर प्रजा की रक्षा करता है और उत्तम एवं रमणीय भोगों का उपभोग करता है। हम आपके राज्य में निवास करते हैं अतएव आपको हमारी रक्षा करनी चाहिए। राजन्! हमने जीव मात्र को दण्ड देना छोड़ दिया है और इन्द्रियों को जीत लिया है। अब तपस्या ही हमारी पूंजी है। आप गर्भस्थ बालक की तरह हमारी रक्षा कीजिये। ऐसा कहकर उन लोगों ने कन्द-मूल आदि से सीता और लक्ष्मण सहित श्रीराम का

आदर सत्कार करते हुए उन्हें यथोचित रूप से तृप्त किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

दूसरा सर्ग

वन के भीतर श्रीराम, लक्ष्मण और सीता पर विराध का आक्रमण

रात्रि में उन महर्षियों का आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् सूर्योदय होते ही श्रीराम मुनियों से विदा ले आगे बढ़े। आगे बढ़ते उन्हें एक ऐसा स्थान दिखलायी दिया जो नाना प्रकार के मृगों से व्याप्त था। वहाँ बहुत से रीछ और भालू रहा करते थे। वहाँ किसी जलाशय का दर्शन कठिन था। उस जंगली पशुओं से भरे वन में सीता के साथ श्रीराम ने एक भयंकर नरभक्षी राक्षस को देखा। वह पर्वत के समान ऊँचा था और उच्च स्वर से गर्जना कर रहा था। उसकी आँखें गहरी और मुँह बड़ा था वह देखने में भयंकर घृणित और बेडौल था। वह खून से भींगा और चरबी से गीला व्याघ्रचर्म पहन रक्खा था। वह राक्षस एक लोहे के शूल में तीन सिंह चार बाघ दो भेड़िये, दस हिरन तथा दाँतों सहित एक हाथी का सर लटकाए बुरी तरह दहाड़ रहा था। अब वह श्रीराम,लक्ष्मण और सीता को देखते ही उनकी ओर दौड़ पड़ा और सीता को गोद में ले कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया और श्रीराम लक्ष्मण से बोला- तुम दोनों जटा और चीर धारण करके स्त्री के साथ वन में रहते हो। तपस्वी होते हुए भी स्त्री के साथ यहाँ रहना तुम्हारा किस तरह सम्भव हुआ। मुनियों को कलंकित करनेवाले तुम दोनों कौन हो? मैं विराध नामक राक्षस हूँ और प्रतिदिन मुनियों का भक्षण कर इस वन में विचरता रहता हूँ। यह स्त्री सुन्दरी है अतः इसे मैं अपनी भार्या बनाकर तुम दोनों का युद्ध में रक्तपान करूंगा। दुष्ट राक्षस विराध की बात सुनकर सीता थर-थर कांपने लगी। अब सीता को विराध के चंगुल में फंसी देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण !देखो दुख में पत्नी यशस्विनी सीता का क्या हाल हो गया है। तात! कैकेयी हमें वन में भेजकर जो कष्ट पहुंचाना चाहती थी, आज उसका वह अभीष्ट पूरा हो गया है। तभी तो वह पुत्र के लिए केवल राज्य मांग कर ही संतुष्ट नहीं हुई। सीता को कोई दूसरा पुरुष छू ले मेरे लिये इससे बढ़कर दुखदायी बात क्या हो

सकती है? पिता की मृत्यु और राज्य अपहरण से भी मुझे इतना दुख नहीं हुआ जितना अब हुआ। यह सुनकर लक्ष्मण सर्प की भाँति फुफकारते हुए बोले- भैया! आप तो स्वयं सभी प्राणियों के संरक्षक हैं फिर आप इस तरह दुःखी क्यों दिखलायी पड़ते हैं। अब मैं कुपित होकर उस राक्षस का बध करता हूँ। राज्य की इच्छा रखनेवाले भरत पर जो मेरा क्रोध प्रकट हुआ था उसे आज मैं विराध पर छोड़ूंगा। अब मेरी भुजाओं से छूटा हुआ यह मेरा बाण विराध की छाती पर गिरे और वह उसके शरीर से उसके प्राणों को अलग कर दें। तत्पश्चात् वह चक्कर खाता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में दूसरा सर्ग पूरा हुआ। (२)

तीसरा सर्ग

लक्ष्मण के द्वारा विराध पर प्रहार

तदनन्तर विराध उस वन को गुंजाते हुए बोला- अरे! तुम दोनों कौन हो और कहां जाओगे? तब श्री राम ने उसे अपना परिचय देते हुए कहा- तू समझ ले कि मैं महाराज इक्ष्वाकु का वंशज हूँ और कुछ कारणों से हम दोनों भाइयों को वन में आना पड़ा है। अब हम तेरा परिचय जानना चाहते हैं कि तू कौन है जो इस वन में स्वेच्छा से विचर रहा है। यह सुनकर विराध बोला, "मैं 'जव' राक्षस का पुत्र हूँ और 'शतह्रदा' मेरी माता है। मेरा नाम विराध है और ब्रह्मा जी से मैंने वरदान प्राप्त कर लिया है कि मेरा बध किसी भी शस्त्र से न हो सके और न कोई मेरे शरीर को छिन्न-भिन्न कर सके। अब तुम इस स्त्री को यहां छोड़कर जैसे आये हो वैसे ही चले जाओ। इससे मैं तुम्हारे प्राण नहीं लूंगा। यह सुनते ही श्रीराम की आँखें क्रोध से लाल हो उठीं और वे बोल उठे- नीच! तुझे धिक्कार है। तू खोटी नियत वाला है और स्वयं अपनी मौत को ढूंढ़ रहा है, ठहर अब तू मेरे हाथ से जीवित नहीं बच सकता। इतना कहकर श्रीराम ने उसे अपने ब्राणों से बींधना शुरू कर दिया।जलती हुई अग्नि के समान वे बाण विराध के शरीर को छेदते हुए पृथ्वी पर आ गिरे। घायल होने पर वह राक्षस सीता को एक ओर रख दिया और कुपित होकर श्रीराम और लक्ष्मण पर टूट पड़ा। तब उन दोनों भाइयों ने उस पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा

शुरू कर दी। यह देखकर वह भयंकर दैत्य अट्टहास करता हुआ जम्हाई लेने लगा इससे उसके शरीर में लगे सारे बाण शरीर से निकल कर पृथ्वीपर गिर पड़े। अब उस राक्षस ने अपने शूल से उन भाइयों पर आक्रमण किया किंतु श्रीराम ने अपने दो बाणों से उस शूल को काट डाला। अब विराध का कटा हुआ शूल शिलाखण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा फिर तो दोनों भाइयों ने सांप की तरह दो तलवारें लेकर उस राक्षस पर टूट पड़े। तब घायल होकर वह राक्षस श्रीराम और लक्ष्मण को पकड़ अन्यत्र ले जाने की इच्छा करने लगा। इस समय श्रीराम ने उस राक्षस के अभिप्राय को समझकर लक्ष्मण से बोले- "बन्धु! यदि यह राक्षस हमें इस मार्ग से ले चले तो बड़ा अच्छा होगा क्योंकि इसी मार्ग द्वारा हम जाना भी चाहते हैं।"तत्पश्चात् वह राक्षस अपने बल के प्रभाव से इन दोनों भाइयों को कंधे पर चढ़ाकर उसी प्रकार से चला जिस प्रकार कोई मनुष्य बालकों को कंधे पर चढ़ाकर ले चलता है। इस वन में अनेक प्रकार के वृक्ष थे और अनेक प्रकार के पक्षी उसमें कलरव कर रहे थे- जिसके कारण वह वन बड़ा अनोखा लग रहा था। इसमें बहुत से गीदड़ और हिंसक पशु सब ओर फैले हुए थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ। (३)

चौथा सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण द्वारा विराध का बध

श्रीराम और लक्ष्मण को विराध लिये जा रहा था। उस समय सीता अपनी बांहें उठाकर जोर-जोर से चिल्लाने लगी- हाय! इन शुद्ध आचारवाले श्रीराम और लक्ष्मण को यह रौद्र रूप धारी राक्षस लिये जा रहा है। हे राक्षस शिरोमणि! तुम इन दोनों वीरों को छोड़ दो और मुझे ही ले चलो क्योंकि मुझे अकेली पाकर यहां के हिंसक पशु मुझे खा जायेंगे। किन्तु इधर उन वीरों ने सीता की यह बात सुनी तो वे उस राक्षस का बध करने में शीघ्रता करने लगे और देखते ही देखते उन्होंने वेग के साथ उसकी बायीं और दाहिनी भुजाओं को तोड़ डाला भुजा टूटने से वह विकराल राक्षस व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब राम और लक्ष्मण ने उसकी भुजाओं पर मुक्का मारना शुरू

कर दिया। फिर उन्होंने उसे बार-बार उठाकर पृथ्वी पर तेजी से पटका। लेकिन वह राक्षस इस पर भी नहीं मरा। तब राम ने लक्ष्मण से कहा- हे लक्ष्मण! यह राक्षस तपस्या से वर पाकर अवध्य हो गया है। अब इसे पराजित करने के लिये एक गड्ढा खोद कर इसे गाड़ देना होगा। फिर लक्ष्मण को गड्ढा खोदने की आज्ञा देकर श्रीराम विराध का गला दबाकर खड़े हो गये। अब वह राक्षस विनय युक्त वाणी में श्रीराम से बोला- मैं पहले आपको पहचान नहीं पाया था। अब मैं अच्छी तरह समझ गया कि आप ही श्री रामचन्द्र हैं। यह महाभागा सीता हैं और ये आपके छोटे भाई श्री लक्ष्मण हैं। मैं वास्तव में गंधर्व था मुझे इस भयंकर योनि में कुबेर के शाप के कारण आना पड़ा। जिन्होंने मेरे बहुत प्रार्थना करने पर कहा था कि गंधर्व जब दशरथ नंदन श्रीराम युद्ध में तुम्हारा बध करेंगे तब तुम अपने पहले वाले स्वरूप को धारण कर स्वर्ग जाओगे। रम्भा नाम अप्सरा में आसक्त होने के कारण मुझे यह दण्ड मिला था। रघुवीर! आपकी कृपा से आज मुझे उस भयंकर शाप से छुटकारा मिल गया। अब मैं अपने लोक को जाऊँगा। तात! यहां से डेढ़ योजन की दूरी पर सूर्य के समान तेजस्वी शरभंग मुनि निवास करते हैं। आप शीघ्रता से उनके पास जाइये वे आपके कल्याण की बात बताएंगे। श्रीराम! अब आप मेरे शरीर को गड्ढे में गाड़कर तुरन्त चले जाइये। गड्ढे में गाड़ना राक्षसों की सनातन प्रथा है। तब राम ने वैसा ही किया। अपने भाई लक्ष्मण द्वारा एक गड्ढा खुदवा कर विराध को उसमें डाल दिया। उस समय वह बहुत जोर-जोर से चिल्ला रहा था। अब उसे गड्ढे में डालकर उन दोनों भाइयों को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर उस गड्ढे को मिट्टी से पाटकर उन्होंने उस राक्षस का बध कर डाला। वास्तव में, उस राक्षस को राम के हाथों ही मरना अभीष्ट था इसीलिये उसने श्रीराम को स्वयं बता दिया था कि शस्त्र द्वारा मेरा बध नहीं हो सकता। अब राक्षस को गड्ढे में गिराकर श्रीराम और लक्ष्मण ने उसे बहुतेरे पत्थर डाल कर पाट दिया। तत्पश्चात् वे सीता को साथ लेकर उस वन में आनन्दमग्न हो विचरण करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ। (४)

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम, लक्ष्मण और सीता का शरभंग मुनि के आश्रम में जाना

अब उस विराध का बध करने के पश्चात् श्रीराम ने सीता को हृदय लगाकर लक्ष्मण से कहा- "लक्ष्मण यह दुर्गम; वन बड़ा कष्ट प्रद है। अच्छा हो अब हम शीघ्र तपस्वी शरभंग जी के पास चलें। इतना कहकर श्रीराम; शरभंग मुनि के आश्रम पर गये। अब मुनि के समीप जाने पर श्रीराम ने एक अद्भुत दृश्य देखा। वहां उन्होंने आकाश में एक श्रेष्ठ रथ पर बैठे हुए देवताओं के राजा इन्द्रदेव का दर्शन किया। वे पृथ्वी को नहीं छू पा रहे थे और उनकी अंगकान्ति सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशित हो रही थी। उनके पीछे और भी बहुत से देवतागण थे। उन्होंने ऐसे वस्त्र पहन रक्खे थे जो कभी मैले नहीं होते थे। उनके समान और भी महात्मा लोग उनकी पूजा में लगे थे। इन्द्र का रथ आकाश में खड़ा था और उसमें हरे रंग के घोड़े जुते हुए थे। श्रीराम को वह रथ उस समय नवोदित सूर्य के समान दिखलायी पड़ रहा था। श्रीराम ने यह भी देखा कि इन्द्र के सिर पर चन्द्रमा के समान उज्ज्वल छत्र लगा हुआ है और वह फूलों की मालाओं से सुशोभित है। इसके साथ ही दो सुन्दरियां देवराज के मस्तक पर चँवर डुला रही थीं। उस समय बहुत से गंधर्व देवता और सिद्ध पुरुष देवराज इन्द्र की स्तुति कर रहे थे और देवराज शरभंग मुनि के साथ वार्तालाप कर रहे थे। अब उस दिव्य रथ की ओर संकेत करते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! आकाश में उस अद्भुत रथ को देखो। इन्द्र के जिन घोड़ों के विषय में हमने सुना है, ये वही घोड़े आकाश में वर्तमान हैं। इस रथ के चारों ओर चौड़ी छाती तथा लम्बी-लम्बी भुजा वाले जो लाल वस्त्र धारण किए हुए नवयुवक सैनिक खड़े हुए हैं वे सब देवगण हैं। लक्ष्मण! जब तक मैं स्पष्ट रूप से यह पता न लगा लूं कि रथ पर बैठे हुए ये तेजस्वी पुरुष कौन हैं? तब तक तुम सीता के साथ यहीं ठहरो। इस प्रकार लक्ष्मण को वहीं ठहरने का आदेश देकर श्रीराम टहलते हुए शरभंग मुनि के आश्रम पर गये। वहां श्रीराम को आते देख इन्द्र देवताओं से बोले- श्रीराम चन्द्र जी यहां आ रहे हैं। अब तुम लोग दूसरे स्थानों में चलो क्योंकि इस समय उनसे मेरी भेंट होना उचित नहीं। इन्हें बहुत से महान् तथा कठिन कार्य करने हैं। जब ये रावण का बध करके लौटेंगे तब मैं शीघ्र आकर इनके दर्शन

करूंगा। इतना कहकर वे शरभंग मुनि का सत्कार करके स्वर्ग लोक चले गये। इधर जब श्रीराम सीता और लक्ष्मण के साथ शरभंग मुनि के आश्रम में पहुंचे। उस समय वे अग्नि होत्र कर रहे थे। अब उन्होंने मुनि के चरणों में प्रणाम किया और इन्द्र के वहां आने का कारण पूछा। तब शरभंग मुनि बोले श्रीराम ये इन्द्र मुझे ब्रह्मलोक ले जाना चाहते हैं। मैंने उग्र तपस्या द्वारा उस लोक पर विजय पायी है। किंतु मुझे यह मालूम हो गया कि आप इस आश्रम के निकट आ गये हैं तब मैंने निश्चय किया कि आप जैसे प्रिय अतिथि का दर्शन किये बिना मैं ब्रह्मलोक को नहीं जाऊँगा। मैंने जिस अक्षय लोकों पर विजय पाई है उन सबको आप ग्रहण करें। शरभंग मुनि की यह बात सुनकर श्रीरघुनाथ जी बोले- मुने! मैं ही आपको सब लोकों की प्राप्ति कराऊँगा। किन्तु इस समय तो मैं इस वन में आपके बताये हुए स्थान पर निवास मात्र करना चाहता हूँ। यह सुनकर शरभंग मुनि बोले- श्रीराम! इस वन से थोड़ी दूर पर सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम है। वे ही आपके लिये स्थान आदि का प्रबंध करेंगे। श्रीराम! आप डोंगियों से पार होने योग्य मन्दाकिनी नदी के स्रोत के विपरीत दिशा में इसी के किनारे किनारे चले जाइये। इससे वहां पहुंच जाइयेगा। परन्तु तात! अब आप दो घड़ी ठहरिये और जब तक मैं पुराने कंचुल त्याग करनेवाले सर्प की भांति अपने इस जरा जीर्ण अंगों का त्याग न कर दूं तब तक मेरी ओर ही देखिए। इतना कहकर शरभंग मुनि ने आग जलाई और मंत्रोच्चारण के साथ उसमें प्रवेश हो गये। उस समय आग ने उनके सम्पूर्ण शरीर को जलाकर भस्म कर दिया। तत्पश्चात् वे शरभंग मुनि तेजस्वी कुमार के रूप में प्रकट हुए और मुनियों तथा देवताओं के भी लोक को लांघते हुए ब्रह्म लोक में जा पहुंचे। वहां पितामह ब्रह्मा उन महर्षि को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले- महामुने! तुम्हारा स्वागत है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठा सर्ग

मुनियों का श्रीराम से राक्षसों से अपनी रक्षा हेतु प्रार्थना करना

शरभंग मुनि के ब्रह्म लोक चले जाने पर श्रीराम के पास बहुत से मुनियों

के समुदाय पधारे। वे सभी तपस्वी ब्रह्म तेज से सम्पन्न थे और श्रीराम के पास आते ही बोले- रघुनंदन! आप इक्ष्वाकु वंश के साथ ही समस्त भू-मण्डल के संरक्षक और महारथी वीर भी हैं। जैसे इन्द्र देवताओं के रक्षक हैं उसी प्रकार आप मनुष्य लोक की रक्षा करनेवाले हैं आप में पिता के आज्ञा पालन का व्रत, सत्य भाषण तथा सम्पूर्ण धर्म विद्यमान है। आप महात्मा, धर्मज्ञ और धर्मवत्सल हैं इसलिये हम आपके पास कुछ स्वार्थ की बात निवेदन करने के लिये आये हैं। आपको इसके लिये हमें क्षमा कर देना चाहिए। नाथ! जो राजा आय का छठा भाग कर के रूप में ले और प्रजा की रक्षा न करे वह महान् अधर्म का भागी होता है। श्रीराम! जो राजा प्रजा की रक्षा के कार्य में संलग्न होता है वह अक्षय कीर्ति प्राप्त कर ब्रह्म लोक को जाता है। राजा के राज्य में मुनि फल फूल का आहार करके जिस धर्म का अनुष्ठान करता है उसका चौथा भाग धर्म के अनुसार प्रजा की रक्षा करनेवाले उस राजा को प्राप्त हो जाता है। श्रीराम! इस वन में रहनेवाला वानप्रस्थ महात्माओं का यह महान् समुदाय राक्षसों के द्वारा अनाथ की तरह मारा जा रहा है। आइये देखिये, ये भयंकर राक्षसों द्वारा बारम्बार अनेक प्रकार से मारे गये बहुसंख्यक पवित्रात्मा मुनियों के शरीर के कंकाल दिखायी देते हैं। पम्पा सरोवर और तुंगभद्रा नदी के तट पर निवास करने वाले सभी मुनियों का संहार राक्षसों द्वारा किया जा रहा है। इन वन में रहनेवाले राक्षसों ने भयंकर विनाश काण्ड मचा रक्खा है। अतः इनसे बचने के लिये हम आपकी शरण में आये हैं। अतः इन निशाचरों से मारे जाते हुए हम मुनियों की रक्षा कीजिये। वीर राजकुमार हमें आपसे बढ़कर इस भू-मंडल में दूसरा और कोई दिखलायी नहीं देता। अतः आप इन राक्षसों से हमें बचाइये। यह सुनकर श्रीराम ने उनसे कहा- मुनिवरों! मैं तो तपस्वी महात्माओं का आज्ञा पालक हूँ और आपके कष्टों को दूर करने के लिये ही पिता के आदेश का पालन करता हुआ इस वन में आया हूँ। मैं तपस्वी मुनियों से शत्रुता रखने वाले राक्षसों का इस युद्ध में संहार करना चाहता हूँ। आप सब मेरे भाई सहित मेरा पराक्रम शीघ्र देखेंगे। इतना कहकर श्रीराम सभी महात्माओं के साथ सुतीक्ष्ण मुनि के पास गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

भ्राता सहित श्रीराम का सुतीक्ष्ण के आश्रम में जाकर उनसे बातचीत करना।

तदनन्तर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम की ओर चले। दूर तक मार्ग तय करने के पश्चात् उन्हें मेरू गिरि के समान एक अत्यंत ऊँचा पर्वत दिखायी दिया। वहां से आगे बढ़ने पर वे तीनों एक घने वन में जा पहुंचे। उस घोर वन में उन्हें एकान्त स्थान में सुतीक्ष्ण मुनि का आश्रम दिखायी दिया। अब श्रीराम मुनि के सम्मुख पहुंचकर बोले- महर्षे! मैं राम हूँ और आपके दर्शन करने यहां आया हूँ। अतः आप मुझसे बात कीजिये। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ भगवान् श्रीराम का दर्शन कर सुतीक्ष्ण मुनि ने उनका आलिंगन करते हुए कहा- श्रीराम! आपका स्वागत है। आपके आने से यह आश्रम सनाथ हो गया। आपकी प्रतीक्षा में ही अभी तक मैं देवलोक नहीं गया। मैंने सुना था कि आप राज्य से भ्रष्ट हो चित्रकूट पर्वत पर आकर रहते हैं। श्रीराम! यहां इन्द्र देव मेरे पास आकर कह रहे थे कि तुमने अपने पुण्य कर्म द्वारा समस्त शुभ लोकों पर विजय पायी है। उनके कथनानुसार मैंने जिन लोकों पर अधिकार प्राप्त किया है, उन लोकों में आप,सीता और लक्ष्मण सहित विहार करें। वे सारे लोक मैं आपकी सेवा में समर्पित कर रहा हूँ। यह सुनकर श्रीराम ने महर्षि को उत्तर दिया- महामुने! उन्हें तो मैं स्वयं आपको प्राप्त कराऊँगा। इस समय आप यह बताएं कि मैं अपने ठहरने के लिये कुटिया कहां बनाऊँ। क्योंकि आप समस्त प्राणियों के हित में तत्पर हैं तथा इह लोक तथा परलोक की सभी बातों में निपुण हैं, यह बात मुझे शरभंग मुनि ने बतायी थी। श्रीराम की बात सुनकर महर्षि सुतीक्ष्ण ने कहा- श्रीराम! यह आश्रम आपके रहने के लिये सुंदर एवं सब प्रकार से सुविधाजनक है। यहां प्रायः मुनि समुदाय का आगमन भी होता रहता है और हर तरह के फल-मूल भी सर्वथा सुलभ है। यहां मृगों के बड़े-बड़े झुंड आते हैं और किसी को कष्ट दिये बिना यहां से लौट जाते हैं। कभी-कभी उन मृगों के उपद्रव के सिवा यहां और कोई दोष नहीं। अब महर्षि की बात सुनकर श्रीराम ने हाथ में धनुष बाण लेकर कहा यदि मैं उन उपद्रवकारी मृगों को तीखी धारवाले बाण से

१६

मारूँ इसमें आपका ही अपमान होगा और क्या वह मेरे लिये कष्ट पहुंचाने वाला न होगा ? इसलिये मैं इस आश्रम में अधिक दिनों तक निवास नहीं कर सकता। इतना कहकर श्रीरामचन्द्र सन्ध्योपासना करने चले गये। तत्पश्चात् सन्ध्या बीतने पर उन लोगों ने सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में निवास किया। फिर रात होने पर सुतीक्ष्ण मुनि ने सेवन योग्य शुभ अन्न लाकर उन्हें अर्पित किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

प्रातःकाल श्रीराम लक्ष्मण सीता का प्रस्थान

तदनन्तर सुतीक्ष्ण मुनि आश्रम में रात बिताकर श्रीराम प्रातःकाल जाग उठे। फिर स्नानादि करके उन तीनों ने ही मिलकर अग्नि और देवताओं की पूजा की और इसके बाद सुतीक्ष्ण मुनि के पास जाकर मधुर वचनों में बोले- भगवन् ! आपने स्वयं पूजनीय होकर भी हमारी पूजा की है। अब हम यहां से जायेंगे क्योंकि हमारी अभिलाषा है कि हम साथ आये हुए महात्माओं के साथ ऋषियों के सम्पूर्ण आश्रम मण्डल का दर्शन करूँ। आप हमें इसके लिए आज्ञा दें। इतना कहकर लक्ष्मण और सीता सहित श्रीराम ने मुनि के चरणों की वंदना की। तत्पश्चात् सुतीक्ष्ण ने श्रीराम को हृदय से लगाते हुए कहा- श्रीराम ! आप अब सीता और लक्ष्मण के साथ यात्रा कीजिये। आपका पथ विघ्न बाधाओं से रहित परम मंगलमय हो। इस यात्रा में आप प्रचुर फल मूलों से भरा हुआ अनेक वन देखेंगे। आपको वहां ऐसे बहुत से तालाब और सरोवर दिखायी देंगे जिसमें प्रफुल्ल कमलों के समूह शोभा दे रहे होंगे। उसमें स्वच्छ जल भरे होंगे तथा कारण्डव आदि जलपक्षी सब ओर फैल रहे होंगें। उनमें अनेक सुरम्य करने तथा सुरम्य वनस्थलियों को भी आप देखेंगे श्रीराम और लक्ष्मण आप लोग जाइये और दण्डकारण्य में मुनियों का दर्शन करके आप लोग फिर इसी आश्रम में आ जाइयेगा। उनके ऐसा कहने पर लक्ष्मण सहित श्रीराम ने बहुत अच्छा कहकर मुनि की परिक्रमा की और वहां से चलने की तैयारी की। तत्पश्चात् सीता ने उन्हें तूणीर धनुष औरखड्गदिए।

अब उन्हें हाथ में लेकर वे तीनों आश्रम के बाहर निकले और महर्षि की आज्ञा लेकर वहाँ से प्रस्थान किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम से निरपराध प्राणियों को न मारने का अनुरोध

सुतीक्ष्ण की आज्ञा लेकर वन की ओर जाते हुए श्रीराम से सीता ने मधुर वाणी में कहा- आर्य पुत्र! आप महात्मा हैं किन्तु यदि विचार किया जाये तो आप अधर्म को प्राप्त हो रहे हैं। इस जगत् में काम से उत्पन्न होनेवाले तीन ही व्यसन होते हैं। मिथ्याभाषण, पर स्त्री गमन और पर स्त्री विषयक अभिलाषा तो आप में न तो कभी हुआ है न कभी होगा। परन्तु दूसरों के प्राणों की हिंसा रूप; जो यह तीसरा भयंकर दोष है उसे लोग मोहवश बिना किसी वैर विरोध के भी किया करते हैं और वही दोष आपमें भी उपस्थित है। वीर! आपने ऋषियों की रक्षा के लिये युद्ध में राक्षसों का बध करने की प्रतिज्ञा की है और इसके लिये हाथ में धनुष बाण भी ले रक्खा है। आप भाई के साथ वन के लिये इसी कारण प्रस्थित भी हुए हैं। यही देखकर मैं चिंतित हो रही हूँ और सोचती रहती हूँ आपका सदैव कल्याण हो। मुझे इस समय दण्डकारण्य में जाना अच्छा नहीं लग रहा है। ऐसा क्यों? उसे भी सुनें। आप धनुष बाण ले अपने भाई के साथ यहाँ आये हैं और सम्भवतः वनचारी राक्षसों को देखकर आप उनके प्रति अपने बाणों का प्रयोग कर बैठे। स्वामी! पूर्व काल में एक पवित्र वन में, जहाँ अनेक पशु पक्षी रहते थे, एक तपस्वी मुनि भी निवास करते थे। उनके तपस्या में विघ्न डालने हेतु एक दिन हाथ में तलवार लिये हुए इन्द्र देव वहाँ आये और मुनि के पास उन्होंनेअपना खड्गधरोहर के रूप में रख दिया। अब मुनि अपना सारा समय उस धरोहर की रक्षा में ही लगाने लगे और बाहर निकलते समय भी उसखड्गको लेना न भूलते। धीरे-धीरेखड्गढोते-ढोते उनहोंने अपनी बुद्धि को भी क्रूरतापूर्वक बना लिया और फिर वे बराबर हिंसा के कर्म में तत्पर होने लगे। फलस्वरूप उन्हें शस्त्र के सहवास से नर्क जाना पड़ा। मेरे मन को आपके प्रति विशेष आदर है इसी कारण मैं आपको

प्राचीन घटना की याद दिलाती हूँ और यह शिक्षा देती हूँ कि बिना बैर के किसी राक्षस के बध का विचार नहीं करना चाहिए। आपका धनुष धारण करने का प्रयोजन केवल इतना ही है कि आप संकट में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा करें। इस समय हम यहां तपस्वी के रूप में निवास करते हैं। इसलिये अहिंसा मय धर्म का पालन करना ही हमारा कर्तव्य है। राज्य त्याग कर वन में आ जाने से यदि आप मुनिवृत्ति से ही रहें तो इससे मेरी सास और ससुर को भी अक्षय प्रसन्नता होगी। सौम्य! प्रतिदिन शुद्ध चित्त होकर तपोवन में धर्म का अनुष्ठान कीजिये क्योंकि इस संसार में धर्म ही सार है। मैंने जो कुछ कहा है स्त्री जाति की स्वाभाविक चपलता के कारण ही कहा है वैसे आपको धर्म का उपदेश देने का सामर्थ किसमें है? आप इस विषय में अपने छोटे भाई के साथ बुद्धिपूर्वक विचार कर लें फिर जो ठीक लगे वही करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

श्रीराम का ऋषियों की रक्षा हेतु राक्षसों के बध के निमित्त की हुई प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना

सीता की कही हुई बातों को सुनकर श्रीराम ने कहा- देवि! तुमने मेरे हित की ही बात कही है। लेकिन क्षत्रिय लोग इसलिये धनुष धारण करते हैं कि किसी को दुखी होकर हा-हाकार न करना पड़े। सीते! दण्डकारण्य में कठोर व्रत का पालन करने वाले ये मुनि बहुत दुःखी हैं और अपनी रक्षा हेतु मेरी शरण आये हैं। मनुष्यों के मांस से जीवन निर्वाह करनेवाले ये अचानक राक्षस उन्हें मार कर खा जाते हैं। अपने शरण में आये हुए मुनियों के रक्षा का भार लेते हुए मैंने उनसे कहा था कि 'महर्षियों! आपकी सेवा में मुझे स्वयं उपस्थित होना चाहिए था किन्तु आपको मेरे पास आना पड़ा यह मेरे लिये बड़ी लज्जा की बात हुई।' तब उन ऋषियों ने फिर कहा- श्रीराम! अग्नि होम के समय आने पर ये राक्षस हमें धर दबाते हैं। वैसे इन राक्षसों का बध करने के लिए हम स्वयं सक्षम हैं। किन्तु उनका बध करके हम चिरकाल से उपार्जित किये हुए तप का खण्डन नहीं करना चाहते हैं। इसी कारण हम राक्षसों के

द्वारा सताये जाने पर भी उन्हें शाप नहीं देते। अतएव अब हम तपस्वियों की आप दोनों भाई रक्षा करें। सीते! मैंने यह सुनकर उनकी रक्षा करने की प्रतिज्ञा कर ली है। अब मैं लक्ष्मण और तुमको भले त्याग दूं पर उस प्रण को नहीं छोड़ सकता। सीते! तुमने स्नेहवश मुझसे जो बातें कही हैं उनका मैं बुरा नहीं मानता क्योंकि जो अपना प्रिय नहीं होता है उसे कोई हितकर उपदेश भी नहीं देता। श्रीराम सीता से ऐसा कहकर हाथ में धनुष बाण ले उस रमणीय तपोवन में विचरण करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

पंचाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि की कथा

तत्पश्चात् आगे-आगे श्रीराम बीच में सीता और हाथ में धनुष लिये हुए लक्ष्मण उनके पीछे चलने लगे। वे भांति-भांति के पर्वतीय शिखरों, वनों और नदियों को देखते हुए आगे बढ़ने लगे। उन्होंने देखा कि नदियों के तट पर कहीं सारस और चक्रवाक विचर रहे हैं कहीं कमलों की पंक्ति शोभा पा रही है। कहीं चितकबरे मृग दौड़ रहे हैं तो कहीं मदमत्त भैंसे विचर रहे हैं। कहीं बढ़े हुए दांत वाले जंगली सुअर थे तो कहीं दन्तार हाथी दिखलायी पड़ते थे। तदनन्तर दूर तक यात्रा करने के पश्चात् उन तीनों को एक सुन्दर तालाब दिखायी दिया। जिसकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक योजन की दिखलाई पड़ती थी। वह सरोवर लाल कमलों से भरा था और झुण्ड के झुण्ड पशु और पक्षी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह जल में उत्पन्न होनेवाले मत्स्य आदि जन्तुओं से भरा था। आश्चर्य की बात यह थी कि उस सरोवर में गाने बजाने का शब्द तो सुनायी देता था किंतु वहाँ कोई दृष्टिगत नहीं हो रहा था। तब श्रीराम और लक्ष्मण ने कौतूहल वश अपने साथ आये हुए धर्मभृत नामक ऋषि से पूछा- महामुने! इस संगीत की ध्वनि को सुनकर हमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। यह क्या है? हम जानना चाहते हैं। तब धर्मात्मा मुनि ने सरोवर के प्रभाव का वर्णन करते हुए कहा- श्रीराम !यह पंचाप्सर नामक सरोवर है। यह सदैव अगाध जल से भरा रहता है। माण्डकर्णि नामक मुनि ने

अपने तपोबल से इसका निर्माण किया था। माण्डकर्णि मुनि ने एक जलाशय में रहकर केवल वायु का आहार करते हुए दस वर्षों तक घोर तपस्या की। उस समय अग्नि आदि देवता इससे व्यथित हो आपस में कहने लगे- जान पड़ता है ये महामुनि अपने उग्र तपस्या द्वारा हम लोगों में से किसी एक का स्थान लेना चाहते हैं। इसलिये उसमें विघ्न डालने हेतु उन पांच प्रधान अप्सराओं को नियुक्त किया। तत्पश्चात् इन अप्सराओं ने मिलकर देवताओं के कार्य सिद्धि हेतु मुनि को काम के अधीन कर दिया। अब मुनि की पत्नी बनी हुई ये ही पांच अप्सराएं उसमें रहती हैं। उनके रहने के लिए तालाब के भीतर घर बना हुआ है। उसी घर में सुखपूर्वक रहती हुई वे अप्सराएं युवावस्था प्राप्त हुए उन मुनि की सेवा करती हुई उन्हें संतुष्ट रखती हैं। यह ध्वनि उन्हीं के वाद्यों की है जो उनके भूषणों की झन्कार के साथ मिली हुई है। यह सुनकर श्रीराम इस पर आश्चर्य प्रकट करते हुए आगे बढ़े। तदनन्तर आगे बढ़ने पर श्रीराम को एक आश्रम मण्डल दिखायी दिया जहां सब ओर कुश और वल्कल वस्त्र फैले हुए थे। वह आश्रम ब्रह्म तेज से प्रकाशित था। अब सीता और लक्ष्मण के साथ श्रीराम ने उसमें प्रवेश करके उसमें निवास किया। फिर वहां महर्षियों का आदर सत्कार पाकर बारी-बारी से उन सभी तपस्वी मुनियों के आश्रमों पर गये जिनके यहाँ वे पहले रह चुके थे। इस तरह मुनियों के आश्रमों में रहते हुए उनके दस वर्ष व्यतीत हो गये फिर इस प्रकार सब ओर घूम फिर कर वे फिर सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर लौट आये। फिर एक दिन वहाँ रहते हुए उन्होंने मुनि से विनीत भाव से पूछा, "मैंने कई लोगों से सुन रखा है कि इस वन में कहीं मुनि श्रेष्ठ अगस्त्य जी निवास करते हैं। इस वन की सघनता के कारण मैं उस स्थान को नहीं जानता हूँ। मेरे मन में बार-बार उन्हें प्रणाम करने की इच्छा हो रही है।"श्रीराम की यह बात सुनकर सुतीक्ष्ण मुनि बोले- श्रीराम! मैं भी यही कहना चाहता था कि आप लक्ष्मण और सीता सहित जाकर महर्षि अगस्त्य का दर्शन करें। आज मैं उस आश्रम का पता आपको अभी बताये देता हूँ। तात! आप इस आश्रम से चार योजन दक्षिण की ओर चले जाइये। वहाँ आपको अगस्त्य मुनि के भाई का एक सुन्दर सा आश्रम मिलेगा। वहाँ की भूमि प्रायः समतल है। वहाँ फूलों और फलों की बहुतायत है और नाना प्रकार के पक्षी वहाँ कलरव करते रहते हैं।

फिर आप एक रात उस आश्रम में ठहर कर उस वन खण्ड के किनारे दक्षिण दिशा की ओर जायें। इस प्रकार एक योजन आगे जाने पर अनेकानेक वृक्षों से सुशोभित अगस्त्य मुनि का आश्रम मिलेगा। यहाँ सीता और लक्ष्मण आपके साथ आनन्दपूर्वक विचरण करेंगे। क्योंकि स्वादिष्ट फलों से भरा हुआ यह स्थान बड़ा ही रमणीय है। महामुने! आप आज ही वहाँ के लिए यात्रा करें। इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र ने उन्हें प्रणाम किया तथा लक्ष्मण और सीता के साथ अगस्त्य जी के आश्रम की ओर चल पड़े। फिर सुतीक्ष्ण मुनि के बताये हुए मार्ग से चलते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा– निश्चय ही हम अगस्त्य मुनि के भाई के आश्रम के निकट पहुँच गये हैं। क्योंकि सुतीक्ष्ण जी ने जैसा बताया है उसके अनुसार सहस्त्रों परिचित वृक्ष रास्ते में हमें दिखलायी पड़ रहे हैं। इसके साथ ही वह देखो जंगल के बीच में आश्रम की अग्नि का धुंवा उठता दिखायी दे रहा है। जिसका आगे का भाग काले मेघों के ऊपरी भाग सा प्रतीत होता है। सौम्य! जैसा मैंने सुन रक्खा है उसके अनुसार यह निश्चय ही अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम होगा। इन्हीं के भाई अगस्त्य जी ने वातापि और इल्वल का दमन इस दक्षिण दिशा को शरण लेने योग्य बना दिया है? एक समय की बात है यहाँ क्रूर स्वभाव वाले वातापि और इल्वल- ये दोनों भाई एक साथ रहते थे। ये दोनों ब्राह्मणों की हत्या करनेवाले थे। निर्दयी इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण करके संस्कृत बोलता हुआ जाता और श्राद्ध के लिये अनेक ब्राह्मणों को निमन्त्रण दे आता। फिर वातापि भेड़ का रूप बना लेता और इल्वल उसी का मांस बनाकर सब ब्राह्मणों को खिला देता। जब ब्राह्मण मांस खा लेते तब इल्वल चिल्ला कर कहता- वाताये! निकलो। अपने भाई की आवाज सुनकर वातापि ब्राह्मणों के पेट को फाड़कर बाहर निकल आता। इस तरह वे मांस भक्षी असुर प्रतिदिन सहस्त्रों ब्राह्मणों का विनाश कर डालते। उसी समय एक दिन देवताओं के प्रार्थना करने पर अगस्त्य मुनि ने श्राद्ध में जान बूझकर उस महान असुर का भक्षण किया। तत्पश्चात् श्राद्ध कर्म समाप्त होने पर जब इल्वल ने अपने भाई को सम्बोधित करके कहा, "निकलो!" तब अगस्त्य मुनि ने हंसते हुए कहा- तेरे भाई को तो मैंने पचा लिया है। अब तो वह यमलोक जा पहुँचा है उसमें निकलने की शक्ति कहाँ? तब मुनि के इस वचन को सुनते ही इल्वल क्रोधित

हो उन्हें मारने के विचार से उन पर टूट पड़ा। किन्तु उसी समय मुनि ने अपनी अग्नि तुल्य दृष्टि से उसे जलाकर मार डाला। यह उन्हीं अगस्त्य मुनि के भाई का आश्रम है। श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण से इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि सन्ध्या का समय हो गया। अब सन्ध्योपासना करने के पश्चात् श्रीराम उस आश्रम में जा पहुँचे और उन महर्षि केचरणों में अपना मस्तक झुकाया। मुनि ने उनका यथावत आदर सत्कार किया। फिर रात्रि व्यतीत होते ही राम ने अगस्त्य के भाई से विदा मांगते हुए कहा- भगवन् अब मैं आपके बड़े भाई मुनिवर अगस्त्य के दर्शन हेतु जाना चाहता हूँ। इसके लिये आपसे आज्ञा चाहता हूँ। तब महर्षि की आज्ञा पाकर भगवान् श्रीराम सुतीक्ष्ण मुनि के बताये मार्ग से आगे बढ़े। इस समय श्रीराम पीछे आते हुए लक्ष्मण से बोले- यहाँ के वृक्ष के पत्ते जैसे सुने गये थे वैसे ही चिकने दिखायी देते हैं तथा यहाँ के पशु और पक्षी भी क्षमाशील दिखलायी पड़ते हैं लगता है अब मुनि अगस्त्य का आश्रम यहाँ से दूर नहीं। यह अग अर्थात् पर्वत को स्तम्भित करने के कारण ही अगस्त्य कहलाते हैं। इस आश्रम के वन यज्ञ भाग सम्बंधी धूमों से व्याप्त हैं तथा यह आश्रम नाना प्रकार के पक्षियों के स्वरों से गूंजते रहते हैं। वे ही पुण्य कर्मा महर्षि अगस्तय जब से यहाँ आये हैं तब से यहाँ के निशाचर बैर रहित और शान्त हो गये हैं। उन्हीं अगस्त्य की महिमा से यह दिशा दक्षिणा के नाम से विख्यात हुई तथा इसे अगस्त्य की दिशा भी कहते हैं। एक बार पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्य सूर्य का मार्ग रोकने के लिये बढ़ा था, किन्तु महर्षि अगस्त्य के कहने से वह नम्र हो गया और तब से आज तक वह उनके आदेश का पालन करता हुआ कभी नहीं बढ़ता। ये महात्मा अगस्त्य जी सभी लोकों द्वारा पूजित हैं और सज्जनों के हित में लगे रहने वाले हैं। हे लक्ष्मण! यहाँ रहकर मैं उन महामुनि की आराधना करूँगा और वनवास का शेष जीवन यहीं बिताऊँगा। देवता, गंधर्व, सिद्धि और महर्षि यहाँ नियमित आहार करते हुए सदा अगस्त्य मुनि की उपासना करते हैं। इनके प्रभाव से कोई झूठा, शठ, पापाचारी मनुष्य यहाँ जीवित ही नहीं रह सकता। यहाँ शरीर त्यागने वाले सीधे स्वर्ग जाते हैं। हे लक्ष्मण! अब हम लोग मुनि के आश्रम पर आ पहुँचे हैं। तुम अब पहले जाकर मेरे और सीता के आगमन की सूचना

महर्षि को दो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकी निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में ग्यारहवाँ सर्ग पुरा हुआ। (११)

बारहवाँ सर्ग

श्रीराम का अगस्त्य आश्रम में प्रवेश

तत्पश्चात् लक्ष्मण ने आश्रम में प्रवेश करके अगस्त्य जी के शिष्य से भेंट करके कहा- मुने! अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र अपनी पत्नी सीता के साथ महर्षि का दर्शन करने के लिये आये हैं। मैं उनका अनुज लक्ष्मण हूँ। सम्भवतः यह नाम कभी आपके कानों में पड़ा हो। हमें पिता के आदेश से इस भयंकर वन में आना पड़ा है। आप यह सूचना महर्षि को दे दें। लक्ष्मण की बात सुनकर उन तपोधन ने बहुत अच्छा कह कर अग्निशाला में प्रवेश किया और वहाँ मुनि से श्रीरामचन्द्र के आगमन का समाचार शीघ्रतापूर्वक कह सुनाया। महामुने! राजा दशरथ के दो पुत्र श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण यहां आये हैं। श्रीराम अपनी पत्नी सीता के साथ हैं। वे आपके दर्शन हेतु यहाँ पधारे हैं। शिष्य की बात सुनकर महर्षि बोले- यह मेरा अहो भाग्य है कि श्रीराम मुझसे स्वयं मिलने आये हैं। तुम उन्हें अपने साथ अन्दर लेकर क्यों नहीं आये? यह सुनकर शिष्य शीघ्रता से लक्ष्मण के पास जाकर बोले- श्रीरामचन्द्र कौन हैं वे स्वयं आश्रम में प्रवेश करें और मुनि का दर्शन करने के लिये चलें। तब लक्ष्मण उस शिष्य को द्वार पर ले जाकर श्रीराम और सीता का दर्शन कराया। तब शिष्य बड़े आदर सत्कार के साथ श्रीराम को आश्रम में ले गया। उधर मुनिवर अगस्त्य भी शिष्यों से घिरे हुए अग्निशाला के बाहर निकले। अब तेजस्वी मुनि अगस्त्य का दर्शन होते ही श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! अगस्त्य मुनि आश्रम के बाहर निकल रहे हैं। उनके मुख पर जो विशेष तेज है उसी को देखकर मुझे ऐसा लगता है कि ये अगस्त्य जी हैं। इतना कह कर श्रीराम ने आगे बढ़कर सीता और लक्ष्मण के साथ उन महर्षि के चरणों को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब महर्षि ने श्रीराम को गले से लगाया और उनसे कुशल समाचार पूछ कर उनसे बैठने को कहा। धर्म के ज्ञाता अगस्त्य जी पहले स्वयं बैठे फिर श्रीराम हाथ जोड़कर

आसन पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् महर्षि ने उनसे कहा आप सम्पूर्ण लोक के राजा, महारथी और धर्म का आचरण करने वाले हैं। इस समय आप मेरे अतिथि के रूप में आये हैं इसलिये आप हमारे माननीय और पूजनीय हैं। ऐसा कहकर उन्होंने फल मूल आदि से उनका पूजन करते हुए कहा-श्रीराम! मेरे पास जो यह हीरा और सुवर्ण से जटित दिव्य धनुष है उसे विश्वकर्मा ने बनाया और यह विष्णु का दिया है। साथ ही सूर्य के समान देदीप्यमान बाण है यह ब्रह्मा जी का है। इसके सिवा इन्द्र ने ये दो तरकस दिये हैं जो सदैव तीखे बाणों से भरे रहते हैं। साथ ही यह तलवार भी है जिसकी मूठ और म्यान सोने की है। श्रीराम पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने इसी धनुष से बड़े-बड़े असुरों का संहार किया था। अब आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, ये बाण और यह तलवार राक्षसों पर विजय पाने के लिये ग्रहण कीजिये। ऐसा कह कर मुनि ने उन सभी अस्त्रों को श्रीरामचन्द्र को दे दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बारह वॉं सर्ग पूरा हुआ। (१२)

तेरहवॉं सर्ग

महर्षि अगस्त्य का श्रीराम को पंचवटी में आश्रम बनाकर रहने का आदेश देना

श्रीराम को उन आयुधों को देकर अगस्त्य मुनि फिंर बोले- श्रीराम! तुम्हारा कल्याण हो! मार्ग चलते हुए आप लोगों को अवश्य थकावट आयी होगी। मिथिलेश कुमारी सीता भी उस थकावट से पीड़ित हैं वह स्पष्ट दिखलायी पड़ता है। इन्हें पहले कभी ऐसे दुखों का सामना नहीं करना पड़ा है इसलिये आप वही काम करें जिससे सीता का मन यहां लगे। स्त्रियों का यह सदा का स्वभाव रहा है कि वे सुख के समय तो अपने के साथ रहती हैं किंतु दुःख के समय उन्हें त्याग देती हैं। इनका स्वभाव ही बड़ा चंचल होता है। किंतु हे राम! यह दोष सीता में नहीं पाये जाते हैं। इसलिये ये पतिव्रताओं में श्रेष्ठ हैं जिस प्रकार देवियों में अरुन्धती मानी जाती हैं। श्रीराम! सीता और लक्ष्मण के साथ आप जो यहां आये हैं उससे यहॉं की शोभा बहुत बढ़ गयी है। मुनि की यह बात सुनकर श्रीराम ने हाथ जोड़कर कहा- मुनिवर! यदि आप पत्नी

और भाई सहित मेरे गुणों से संतुष्ट हैं तो मैं धन्य हो गया हूँ। परन्तु मुने! अब आप मुझे किसी ऐसे स्थान की जानकारी दें जहां मैं आश्रम बनाकर सुखपूर्वक निवास कर सकूं। यह सुनकर मुनि अगस्त्य दो क्षणों तक सोचने के बाद बोले- तात! यहां से दो योजन की दूरी पर पंचवटी नामक एक सुन्दर स्थान है। जहां बहुत से मृग रहते हैं तथा फल-मूल और जल की अधिक सुविधा है। वहां आप लक्ष्मण के साथ आश्रम बनाकर सुखपूर्वक निवास करें। श्रीराम! आपका और राजा दशरथ का सारा वृत्तान्त मुझे तपस्या के बल से पहले से ज्ञात है। आपने वनवास का शेष समय यहाँ बिताने की अभिलाषा प्रकट करके भी अब आप अन्यत्र रहने की बात कर रहे हैं उससे आपका अभिप्राय क्या है? उसे भी मैंने अपने तपोबल से जान लिया है। क्योंकि आपने राक्षसों के बध की प्रतिज्ञा की है और राक्षसों का यहाँ आना जाना अधिक नहीं होता। इसीलिये मैं कहता हूँ कि आप पंचवटी जाइये और वहीं निवास कीजिये। रघुनंदन! वह स्थान रमणीय होने के साथ-साथ यहाँ से अधिक दूर नहीं। वह गोदावरी के तट पर बसा है इसलिये सीता का मन भी वहाँ खूब लगेगा। श्रीराम! आप सदाचारी ऋषियों की रक्षा करने में समर्थ हैं अतएव वहाँ रहकर तपस्वियों का पालन कीजियेगा। देखो, यह महुओं का विशाल वन दिखायी देता है उसी के उत्तर से होकर जाना चाहिए। उस मार्ग में जाते हुए एक बरगद का वृक्ष मिलेगा। फिर कुछ दूर तक ऊँचा मैदान पार करने के बाद वह पर्वत दिखायी देगा। उस पर्वत से थोड़ी ही दूर पर पंचवटी नाम से प्रसिद्ध सुन्दर वन है, जो सदा फूलों से सुशोभित रहता है। उनकी बात सुनकर श्रीराम ने महर्षि का सत्कार कर उनसे पंचवटी जाने की आज्ञा मांगी और फिर उनकी आज्ञा प्राप्त कर वे लक्ष्मण और सीता सहित पंचवटी की ओर चल पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकी निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१३)

चौदहवाँ सर्ग

पंचवटी के मार्ग में जटायु का मिलना और अपना विस्तृत परिचय देना

पंचवटी के रास्ते में श्रीराम को एक विशालकाय गिद्ध मिला जो भयंकर

पराक्रम दिखानेवाला था। अब श्रीराम चन्द्र ने उसे राक्षस समझकर उससे पूछा- "आप कौन हैं?"यह सुनकर उस पक्षी ने बड़े ही मधुर स्वरों में कहा- बेटा ! तुम मुझे अपने पिता का प्रिय मित्र समझो। पिता का मित्र समझकर श्रीरामने बड़े ही शान्त स्वभाव से उसका कुल एवं नाम पूछा। श्रीराम के इस प्रश्न को सुनकर पक्षी ने अपना परिचय देते हुए कहा- श्रीराम! पूर्वकाल में सब प्रजापतियों में सबसे प्रथम कर्दम हुए उसके बाद विकृत शेष, संश्रय स्थाणु, मरीचि, अत्रि क्रतु, पुलस्त्य अंगिरा, प्रचेता और इस तरह तेरहवे प्रजापति पुलह हुए। चौदहवें रक्ष, पन्द्रहवें विवस्वान, सोलहवें अरिष्टनेमि तथा सत्रहवें प्रजापति महातेजस्वी कश्यप जी हुए। इन्हें अंतिम प्रजापति कहा जाता है। श्रीराम! चौदहवें प्रजापति दक्ष के साठ यशस्विनी कन्यायें हुईं। उनमें से आठ सुन्दरी कन्याओं का विवाह कश्यप जी से हुआ। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला है। कुछ काल पश्चात् कश्यप जी ने उनसे कहा- देवियों! तुम लोग ऐसे पुत्रों को जन्म दोगी जो तीनों लोकों के भरण पोषण में समर्थ होंगे। श्रीराम! इनमें से अदिति, दिति, दनु और कालका ने उस बात को मन से ग्रहण किया किन्तु शेष के मन में वैसा मनोरथ नहीं उत्पन्न हुआ। अब अदिति के गर्भ से बारह आदित्य आठ वसु, ग्यारह रुद्र और दो अश्विनी कुमार हुए और वे ही तैंतीस देवता कहलाये। उस समय ये सारी पृथ्वी उन्हीं के अधिकार में थी। दनु ने अश्व ग्रीव और कालका ने नरक एवं कालक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। ताम्रा ने क्रौंची , भासी, श्यनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी इन पांच कन्याओं को जन्म दिया। इनमें से क्रौंची ने उल्लुओं को भासी ने भास नामक पक्षी को श्येनी ने परम तेजस्वी बाज और गीधों को तथा धृतराष्ट्री ने हंस, कलहंस और चक्रवाकों को जन्म दिया। ताम्रा की छोटी पुत्री ने नता नामक कन्या को जन्म दिया। जिससे विनता नामक कन्या हुई। क्रोधवशा ने मृगी, मृगमंदा हरी, भद्रमदा, मातंगी, शार्दूली श्वेता, सुरभी तथा सुरसा और कद्रुका को जन्म दिया। श्रीराम! मृगी की संतान सारे मृग हैं और मृगमंदा के ऋक्ष (रीछ) सृमर और चमर है। भद्रमदा के इरावती नामक पुत्री हुई, जिसका पुत्र ऐरावत नामक गजराज हुआ। हरि की संतानें हरि (सिंह) तथा बन्दर और लंगूर हुए। क्रोधावशा की पुत्री शार्दूली ने व्याघ्र (बाघ) नामक पुत्र पैदा

किया। मातंगी की संतान मातंग (हाथी) है तथा श्वेता ने पुत्र के रूप में एक दिग्गज को जन्म दिया। श्रीराम! क्रोधवशा की पुत्री सुरभी ने दो कन्याएं उत्पन्न की, रोहिणी और यशस्विनी गंधर्वी। रोहिणी ने गौओं को जन्म दिया और गंधर्वी ने घोड़ों को। सुरसा ने नागों को और कद्रु ने पन्नगों को जन्म दिया। मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति वाले मनुष्यों को जन्म दिया। अनला ने पवित्र फूलवाले वृक्षों को जन्म दिया। ताम्रा की पुत्री जो शुकी थी उसकी पौत्री विनता थी तथा कद्रु सुरसा की बहिन कही गयी है। कद्रु ने एक सहस्त्र नागों को उत्पन्न किया और विनता के दो पुत्र हुए गरुण और अरुण। उस विनतानंदन अरुण से मैं और मेरे भाई सम्पाति हुए। मेरा नाम जटायु है। मैं यहां आपके निवास में सहायक होऊँगा। यदि आप लक्ष्मण सहित कभी पर्ण शाला के बाहर चले जायेंगे तो उस समय मैं देवी सीता की रक्षा करूँगा। यह सुनकर श्रीरामचन्द्र ने जटायु का बड़ा सम्मान किया और फिर सीता को उनके संरक्षण में सौंपकर श्रीराम सब लोगों के साथ ही पंचवटी की ओर चल दिये। वे राक्षसों को उसी प्रकार जलाकर मार डालना चाहते थे जैसे आग पतंगों को जलाकर भस्म कर देती है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१४)

पन्द्रहवाँ सर्ग

लक्ष्मण के द्वारा पर्णशला का निर्माण

नाना प्रकार के हिंसक जंतुओं से भरी हुई पंचवटी में पहुँचकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! अगस्त्य मुनि ने हमें जिस स्थान का परिचय दिया था। लगता है हम लोग वहाँ आ गये हैं। अब तुम चारों ओर दृष्टि डालकर बताओ कि हमारा किस स्थान पर आश्रम बनाना उचित होगा। तुम ऐसा स्थान खोजो जहाँ सीता का मन लग सके और उसके साथ ही हमें भी प्रसन्नता हो। इस स्थान के आसपास बगिचा फूल कुश और जल मिलने की सुविधा भी होनी चाहिए। उनके यह वचन सुनकर लक्ष्मण ने कहा- "भैया! मैं तो सदा आपकी आज्ञा के अधीन हूँ।" इसलिये आप स्वयं ही वह स्थान पसन्द करके मुझे आश्रम बनाने की आज्ञा दें। लक्ष्मण की इस बात से प्रसन्न

होकर अब श्रीराम ने स्वयं आश्रम बनाने योग्य एक स्थान को पसन्द किया और लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण! देखो यह स्थान कितना समतल और सुन्दर है तथा फूले हुए वृक्षों से घिरा है। तुम्हें इसी स्थान पर एक आश्रम का निर्माण करना चाहिए। क्योंकि वहाँ से रमणीय प्रतीत होने वाली पुष्करणी भी पास ही है तथा वृक्षावलियों से घिरी गोदावरी नदी भी यहाँ से बहुत दूर नहीं है। तात! यहाँ जो ऊँचे-ऊँचे पर्वत दिखायी दे रहे हैं वह कन्दराओं से युक्त हैं और ये खिले हुए वृक्षों से भरा हुआ है। पुष्पों गुल्मों लता-वल्लरियों आदि से युक्त ये पर्वत बड़ी शोभा पा रहे हैं। लक्ष्मण यह बहुत ही पवित्र स्थान मालूम होता है। यहाँ बहुत से पशु पक्षी रहते हैं। और हम लोग भी यहीं पक्षिराज जटायु के साथ रहेंगे। श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने तुरन्त भाई के लिये आश्रम बनाना शुरू कर दिया। उन्होंने पहले मिट्टी एकत्र करके दीवाल खड़ी की फिर उसमें सुन्दर और सुदृढ़ खम्भे लगाये। खम्भे के ऊपर बड़े-बड़े बाँस तिरछे करके रक्खे। बांसों के रख दिये जाने से वह कुटी बहुत सुन्दर दिखायी देने लगी। फिर उसमें कुश, कास सरकण्डे आदि के पत्ते बिछाकर उस पर्णशाला को भलीभांति छा दिया और इस तरह श्रीराम के रहने के लिये बहुत सुन्दर निवास गृह बना दिया। भगवान् श्रीराम उस सुन्दर आश्रम को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और फिर कुछ देर तक उसके भीतर खड़े रहने के बाद उन्होंने अपनी दोनों भुजाओं से लक्ष्मण को कसकर हृदय से लगाया और बोले- लक्ष्मण! तुम मेरे मनोभावों को शीघ्र समझ लेनेवाले हो। मैं तुम्हारे रूप में अपने पिता को अब भी जीवित देखता हूँ। लक्ष्मण से ऐसा कहकर श्रीराम उस प्रचुर फलों से भरे हुए पंचवटी प्रदेश में सुखपूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१५)

सोलहवाँ सर्ग

श्रीलक्ष्मण द्वारा भरत की प्रशंसा तथा श्रीराम को दोनों के साथ गोदावरी में स्नान

महात्मा श्रीराम को उस आश्रम में रहते हुए शरद ऋतु बीत गयी और हेमन्त का आरम्भ हुआ। एक दिन सबेरा होने पर श्रीराम स्नान करने के

लिये गोदावरी के तट पर गये। साथ में सीता और उनके पीछे लक्ष्मण भी हाथ में घड़ा लिये हुए चले। जाते-जाते वे श्रीरामचन्द्र से बोले- भैया! देखो न हेमंत काल आ पहुंचा है। यह ऋतु आपको अधिक प्रिय है। इस ऋतु में अधिक ठंडक से लोगों का शरीर बड़ा रूखा हो जाता है। खेतों में रबी की खेती लहलहाने लगी है। जल अधिक शीतल होने से पीने योग्य नहीं रहता और आग बहुत प्रिय लगती है। देवताओं की पूजा आग्रयणेष्टि के द्वारा करके मनुष्य पाप रहित हो जाता है। अन्न के विषय में सारी कामनाएं पूरी होजाती हैं। गोरस की भी बहुतायत होती है और राजागण विजय की कामना से युद्ध यात्रा के लिये विचरते रहते हैं। सूर्य देव के दक्षिणायन चले जाने से उत्तर दिशा सुशोभित नहीं हो पा रही है। हिमालय पर बर्फ की बहुतायत हो गयी है। हेमन्त के दिन (मध्याह्न काल में धूप का स्पर्श होने से) इधर-उधर विचरने योग्य अच्छे होते हैं। आजकल सूर्य देव सुसेव्य होने से सौभाग्यशाली लगते हैं और जल तथा छांह सेवन योग्य न होने से अभागे प्रतीत होते हैं। कुहासे अधिक पड़ते हैं, सरदी सबल होती है और ठंडी हवा चलने लगती है। पाला पड़ने से पत्ते झड़ जाते हैं और जंगल सूने दिखायी पड़ते हैं। इस समय रात बड़ी होने लगती है और खुले में कोई नहीं सोता। चन्द्रप्रभा हिमकणों से आछन्न होने से धूमिल जान पड़ता है। पछुआ हवा की हिमकणों से व्याप्त होने के कारण दूनी सर्दी लेकर वेग से बह रही है। गेहूं और जौ के खेत भाप से ढंके हैं जिसमें क्रौंच और सारस कलरव कर रहे हैं। यह समस्त वन सूर्य के उदय होने पर बड़े सुहावने प्रतीत होते हैं। प्रातःकाल के सूर्य का प्रकाश बिल्कुल मालूम नहीं पड़ता परन्तु जब मध्याह्न हो जता है उस समय उसके द्वारा मनुष्यों को सुख प्राप्त होता है। इस समय जल भी ठंडा हो गया है क्योंकि प्यास लगने पर हाथी शीतल जल का स्पर्श तो करता है किन्तु उसकी ठंड असह्य होने से सूंड़ को तुरन्त सिकोड़ लेता है। जलचर पक्षी भी जल में उतरने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। प्रातः काल कुहासे के अंधेरे से ढकी ये वन श्रेणियां सोयीं हुई सी दिखायी देती हैं और नदियों के जल भाप से ढके हैं। कमलों का समूह पाला पड़ने से गल गये हैं और उनमें डंठल मात्र ही बच रहे हैं? भैया! इस समय धर्मात्मा भरत आपके लिये बहुत दुखी हैं और आप में भक्ति रखते हुए नगर में ही तपस्या कर रहे हैं। उन्होंने बहुसंख्यक भोगों का त्याग कर दिया है और नियमित आहार कर पृथ्वी पर शयन करते

हैं। वे निश्चित रूप से प्रजाजनों के साथ प्रतिदिन सरयू में स्नान करने के लिये जाते होंगे। इस जाड़े का कष्ट सहते हुए वे कैसे सरयू जी के जल में डुबकी लगाते होंगे। उन्होंने इस समय नाना प्रकार के सुखों का त्याग कर सर्वथा आपका ही आश्रय ग्रहण किया है। उन्होंने निश्चय रूप से स्वर्ग लोक पर विजय प्राप्त कर ली है। क्योंकि वे भी बराबर आपके वनवासी जीवन का अनुसरण कर रहे हैं। मनुष्य प्रायः पिता के गुणों को न लेकर माता के गुणों को लेते हैं किन्तु भरत ने इसे झूठा कर दिखाया है। जिसके पति महाराज दशरथ हों और भरत जैसा जिसका पुत्र हो वह कैकेयी इतनी क्रूर कैसे हो गयी ? अब लक्ष्मण ने जैसे ही ये बातें कहीं श्रीराम इसे सहन न कर सके और बोले तुम्हें माता कैकेयी की निंदा कभी नहीं करनी चाहिए। यदि कुछ कहना है तो भरत की ही चर्चा करो। यद्यपि मैंने मन से वन में रहने का निश्चय कर लिया है फिर भी भरत की याद से मन दुखी हो उठता है ? मुझे भरत की प्रिय बातें अब भी याद आ रही हैं। लक्ष्मण ! वह दिन कब आयेगा जब मैं तुम्हारे साथ चलकर महात्मा भरत और शत्रुघ्न से मिलूंगा। इतना कहकर श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता के साथ गोदावरी में जाकर स्नान किया। तत्पश्चात् गोदावरी के जल से पितरों का तर्पण किया और फिर सूर्योदय होते ही सूर्य एवं अन्य देवताओं की उपासना की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१६)

सत्रहवाँ सर्ग

श्रीराम के आश्रम में सूर्पणखा का आना

स्नान करने के बाद श्रीराम सीता और लक्ष्मण सहित आश्रम में लौट आये और पर्णशाला में आकर बैठ गये। उस समय जबकि वे लक्ष्मण से तरह-तरह की बातें कर रहे थे। वहाँ अकस्मात एक राक्षसी आ पहुँची। वह रावण की बहन सूर्पणखा थी। वह श्रीरामचन्द्र के मनोहर रूप को देखकर तत्काल काम से मोहित हो गयी थी। श्रीराम का मुख सुन्दर था किन्तु सूर्पणखा का रूप बहुत भद्दा और कुरूप था। वह बेडौल लम्बे पेटवाली थी। उसके सिर के बाल ताम्बे जैसे लाल थे और रूप भी वीभत्स और विकराल था। एक ओर जहाँ

श्रीराम मधुर वचन बोलने वाले और नित्य नूतन तरुण थे वहीं दूसरी ओर वह निशाचरी हजारों वर्ष की बुढ़िया थी। उसकी बातें कुटिलता से भरी रहती थी और वह दुराचारिणी भी थी। उसे देखते ही मन में घृणा के भाव पैदा होते थे। अब वह राक्षसी काम से पीड़ित हो मनोहर रूप धारण कर श्रीराम के पास आयी और बोली- तपस्वी का वेश धारण किये तुम स्त्री के साथ धनुष वाण लिये हुए इस राक्षसों के देश में क्यों आये। यहाँ आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? मुझे यह सब ठीक-ठीक बताओ। यह सुनकर श्रीराम ने बड़े भोले पन से कहा देवि! मैं दशरथ नामक चक्रवर्ती राजा का ज्येष्ठ पुत्र हूँ और राम के नाम से विख्यात हूँ तथा ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण हैं और ये मेरी पत्नी सीता है। मैं अपने माता पिता की आज्ञा के अधीन हो धर्म रक्षा के उद्देश्य से वन में आया हूँ। अब मैं तुम्हारा परिचय जानने को उत्सुक हूँ। तुमकिसकीपुत्री हो और तुम्हारा नाम क्या है? तुम इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली कोई राक्षसी प्रतीत होती हो? तुम यहाँ किस लिए आयी हो? यह सब ठीक-ठीक बताओ। अब वह राक्षसी काम से अधिक पीड़ित होकर बोली- श्रीराम! मैं तुम्हें सब कुछ बताऊँगी ध्यान से सुनो। मैं इच्छानुसार रूप धारण करने वाली राक्षसी सूर्पणखा हूँ। मैं समस्त प्राणियों के मन में भय उत्पन्न करती हुई इस वन में अकेले विचरण करती हूँ। मेरे भाई का नाम रावण है। सम्भवतः यह नाम तुम्हारे कानों तक पहुंचा हो? रावण विश्रवा मुनि का वीर पुत्र है। मेरे दूसरे भाई का नाम कुंभकर्ण है जिसकी निद्रा सदा बढ़ी ही रहती है। मेरे तीसरे भाई का नाम विभीषण है। वह राक्षसों के आचार विचार का कभी पालन नहीं करता। साथ में युद्ध में जिसका पराक्रम विख्यात है वे खर और दूषण भी मेरे भाई हैं। श्रीराम बल और पराक्रम में मैं अपने भाइयों से बढ़कर हूँ। तुम्हारे प्रथम दर्शन से ही मेरा मन तुम पर आसक्त हो गया है। इसीलिये मैं पति के रूप में तुम्हें प्राप्त करने के लिये तुम्हारे पास आयी हूँ। तुम मेरे प्रभाव को देखते हुए सदा के लिये मेरे पति बन जाओ और इस कुरूप तथा ओछी सीता को अपने भाई सहित मुझे खा लेने दो। सूर्पणखा की ऐसी बात सुनकर जोर-जोर से हँसते हुए उस निशाचरी से कहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

Mookerji shastri Trust Jammu Collection

अट्ठारहवाँ सर्ग

सूर्पणखा का लक्ष्मण से प्रणय याचना करना और लक्ष्मण का नाक कान काटना

अब उस कामासक्त सूर्पणखा से श्रीराम मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा देवि! मैं तो अपना विवाह कर चुका हूँ। मेरी पत्नी मेरे साथ उपस्थित है। तुम्हारे जैसे स्त्रियों के लिये सौत का रहना बहुत दुखदायी होगा। तुम मेरे छोटे भाई लक्ष्मण के पास जाओ वे सभी गुणों से सम्पन्न हैं और तरुण होने के नाते तुम्हारे पति होने योग्य हैं। अच्छा हो तुम पति के रूप में इन्हीं का वरण करो। यह सुनकर सूर्पणखा काम मोहित हो लक्ष्मण के पास पहुँची और बोली - तुम्हारे सुन्दर रूप को देखतें हुए मैं तुम्हारी पत्नी होने के सर्वथा योग्य हूँ। अब लक्ष्मण ने भी उससे मुस्कराते हुए कहा- सुन्दरि! मैं तो अपने बड़े भाई का दास हूँ तुम मेरे साथ दासी बनकर क्यों रहना चाहती हो? मेरे बड़े भाई सभी ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं। तुम उन्हीं की छोटी स्त्री हो जाओ। वे तुम्हारी सभी मनोरथ पूर्ण करेंगे। हे विशाल लोचने! ऐसा कौन मन्दबुद्धि होगा जो तुम्हारे जैसे सुन्दरी को छोड़कर मानव कन्याओं से प्रेम करेगा। अब सूर्पणखा उस बात को सही मानकर फिर श्रीराम के पास वापस लौट आयी और कामासक्त होकर बोली- राम! तुम इस ओछी विकृत और धंसे हुए पेटवाली वृद्धा का आश्रय लेकर मेरा आदर नहीं करते। अतः मैं तुम्हारे देखते-देखते इसे खा जाऊँगी और फिर सुखपूर्वक तुम्हारे साथ विचरण करूँगी। ऐसा कह सूर्पणखा अत्यंत क्रोध में भरकर मृगनयनी सीता की ओर झपटी। उस मौत के फंदे को आते देख अब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! क्रूर कर्म करनेवाले अनार्यों से भूलकर भी हंसी नहीं करनी चाहिए। अच्छा हो इस राक्षसी को किसी अंग से हीन कर दिया जाये। श्रीराम का यह आदेश पाकर लक्ष्मण ने देखते ही देखते म्यान से तलवार खींचली और सूर्पणखा के नाक कान-काट लिये। अब सूर्पणखा जोर से चिल्लाती हुई जैसे आयी थी उसी तरह वन में भाग गयी। लक्ष्मण द्वारा कुरूप कर दी जाने पर वह भागती हुई जन स्थान में वास करने वाले भ्राता खर के पास गयी और जैसे आकाश से बिजली गिरती है उसी प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़ी। तत्पश्चात् अचेत होती सूर्पणखा वन में सीतां और लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्र के

आने का और अपने कुरूप किये जाने का सारा वृत्तान्त खर से कह सुनाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

खर का श्रीराम के बध के लिये चौदह राक्षसों का भेजना

तदनन्तर अपनी बहन की अवस्था देखकर राक्षस खर क्रोध से जल उठा और पूछने लगा- बहन! उठो और अपना हाल बताओ। मूर्छा और घबराहट छोड़ो। साफ-साफ बताओ। तुम्हारा यह हाल किसने किया है? आज जिसने तुम्हारे नाक कान काटे हैं समझ लो उसने अपने गले में फांसी का फंदा डाल लिया है। तुम तो स्वयं दूसरे प्राणियों के लिये यमराज के समान हो। फिर तुमको किसने इस दुरावस्था में डाला है। ऋषियों में कौन इतना बलशाली है जिसने तुम्हारा नाक कान काट कर तुम्हें रूप हीन बना दिया है। इन्द्र भी इस तरह का दुस्साहस कर सकते हैं ऐसा मुझे नहीं दिखलायी देता। आज मैं निश्चय तुम्हारे अपराधी का प्राण ले लूंगा। ऐसे किस पुरुष का यह गरमा-गरम लहू यह धरती पीना चाहती है। पक्षी गण किस व्यक्ति के शरीर का मांस चाव से खाना चाहते हैं। खर के क्रोध से भरे हुए इस वचन को सुनकर सूर्पणखा आँखों से आँसू बहाती हुई बोली- भैया! वन में दो तरुण पुरुष आये हैं। वेअत्यंतरूपवान और सुकुमार होने के साथ-साथ बड़े बलवान हैं। वे वल्कल वस्त्र और मृग चर्म पहने हैं। वे राजा दशरथ के पुत्र हैं और उनके नाम राम और लक्ष्मण है। वे दोनों भाई राजोचित लक्षणों से युक्त हैं। किन्तु वे देवता हैं अथवा दानव इसे मैं अनुमान से भी नहीं जान सकती। उन दोनों के बीच एक तरुणावस्था वाली रूपवती स्त्री भी है। जिसका शरीर बडा सुन्दर है और वह आभूषणों से विभूषित है। उस स्त्री के कारण ही उन दोनों ने मेरी यह दुर्गति की है। अब मैं उन सब का फेन सहित लहू पीना चाहती हूँ। मेरी इच्छा पूरी हो सके तुम्हें ऐसा ही काम करना चाहिए। सूर्पणखा के ऐसा कहने पर खर ने चौदह अत्यंत भयंकर राक्षसों को बुलाकर कहा- वीरों! इस दण्डकारण्य में दो मनुष्य चीर और काला मृग चर्म पहने एक युवती के साथ घुस आये हैं। तुम जाकर उस दुराचारिणी स्त्री सहित उन पुरुषों को मार

Mookerji sharma (m-S) Jammu Collection

डालो। मेरी यह बहन उनका रक्त पीयेगी। राक्षसों! तुम सब शीघ्र इसका मनोरथ पूरा करो। खर की ऐसी आज्ञा पाकर वे चौदहों राक्षस तेजी से सूर्पणखा के साथ पंचवटी को गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा खर के चौदहों राक्षसों का बध

तत्पश्चात् सूर्पणखा रामचन्द्र के आश्रम के पास कर राक्षसों को उनका परिचय दिया। अब राक्षसों ने आश्रम में सीता, श्रीराम और लक्ष्मण को उपस्थित देखा। इधर श्रीराम ने भी सूर्पणखा और उसके साथ आये हुए राक्षसों को देखा। यह देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण तुम थोड़ी देर के लिये सीता के पास खड़े हो जाओ मैं सूर्पणखा के साथ आये हुए निशाचारों का अभी बध किये देता हूँ। इतना कह श्रीराम ने धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायी और राक्षसों से कहा- हम दोनों राम लक्ष्मण दशरथ के पुत्र हैं और सीता के साथ इस दण्डकारण्य में आकर तपस्या में संलग्न हैं तुम हमारी हिंसा किसलिये करना चाहते हो? वैसे तुम सबके सब पापात्मा हो और इसीलिये मैं धनुष बाण लेकर तुम्हारा बध करने आया हूँ। यदि तुम लोग चाहो तो मुझसे युद्ध करो अन्यथा तुरन्त यहाँ से भाग जाओ। श्रीराम की यह बात सुनकर वे चौदहों राक्षस कुपित हो उठे और लाल आंखें करके श्रीराम से बोले- अरे! तूने हमारे स्वामी खर को क्रोध दिलाया है अतः हमारे हाथों से युद्ध में अवश्य मारा जायेगा। हम बहुत हैं और तू अकेला है तेरी क्या शक्ति तू हमारे सामने खड़ा भी रह सकेगा। हमारे भुजाओं से छोड़े गये इन बाणों को तू अपने बल पराक्रम और प्राणों को एक साथ छोड़ देगा। ऐसा कह कर वे सभी राक्षस श्रीराम पर एक साथ टूट पड़े। और उन पर चौदह शूल एक साथ चलाये। लेकिन श्रीरामचन्द्र ने उन चौदहों शूलों को अपने बाणों से काट डाला। तत्पश्चात् श्रीरघुनाथ जी ने कुपित होकर सूर्य तुल्य चौदह नाराच हाथ में लिये फिर धनुष लेकर उन पर उन बाणों को रक्खा और कान तक खींचकर राक्षसों को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वे बाण राक्षसों की छाती छेद कर रुधिर में

डूबे हुए बाहर निकले। तब छाती विदीर्ण हो जाने के कारण वे राक्षस कटे हुए वृक्षों की भांति धराशायी हो गये और साथ ही उनके प्राण पखेरू भी उड़ गये। उन सबको मरा हुआ देखकर सूर्पणखा मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर चेत होने पर वह पुनः खर के पास जाकर आर्तनाद करती हुई उन समस्त राक्षसों के बध का समाचार अपने भाई से कह सुनाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

सूर्पणखा का खर के पास पुनः जाना और राक्षसों के बध का समाचार बताना

सूर्पणखा को पुनः पृथ्वी पर गिरी हुई देखकर खर ने फिर पूछा - बहन! मैंने तुम्हारा मनोरथ पूरा करने के लिये बहुत से शूरवीरों को तुम्हारे साथ भेजा था। वे किसी के द्वारा मर नहीं सकते। इसलिये उन्होंने मेरी आज्ञा का पालन न किया हो ऐसा सम्भव नहीं। फिर तुम्हारे रोने का क्या कारण है। मैं उसे सुनना चाहता हूँ। उठो! उठो!! और इस तरह की घबराहट छोड़ दो। अब सूर्पणख़ा खर की बात सुनकर बोली- भैया! मैं इस समय तुम्हारे पास क्यों आयी हूँ सुनो। जब मेरे नाक कान कट गये थे उस समय आपने मुझे बड़ी सान्त्वना दी थी। किन्तु लक्ष्मण सहित राम का बध करने के लिए आपने जो चौदह शूरवीर राक्षस भेजे थे उन्हें राम ने अपने मर्मभेदी बाणों से मार गिराया। अब उन्हें धराशायी होते देख मेरे मन में बड़ा भय समा गया है। निशाचर राज! मुझे सब ओर भय ही भय दिखलायी पड़ रहा है इसलिये मैं फिर तुम्हारी शरण आई हूँ। तुम उस शोक सागर से मेरा उद्धार करो। भाई! यदि तुम्हें मुझ पर और उन मरे हुए राक्षसों पर दया आती हो और यदि राम से लोहा लेने की शक्ति तुममें हो तो तुम उन्हें मार डालो। अन्यथा मैं तुम्हारे सामने ही अपना प्राण त्याग दूंगी क्योंकि मेरी लाज लुट चुकी है। वैसे मेरी समझ में यही बात आती है कि तुम राम के सामने युद्ध में नहीं ठहर सकोगे। अब या तो समरांगण में उन दोनों को मार डालो अथवा भाई बन्धुओं के साथ इस स्थान को छोड़कर भाग जाओ। राम लक्ष्मण मनुष्य हैं यदि तुममें उन्हें

मारने की शक्ति नहीं है, तो तुम्हारा यहाँ रहना कैसे सम्भव हो सकता है? जिन्होंने मेरे नाक-कान काटे हैं वे बहुत तेजस्वी प्रतीत होते हैं। इस तरह विलाप करती हुई वह दोनों हाथों से पेट पीटती हुई फूट-फूट कर रोने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाइसवाँ सर्ग

चौदह हजार राक्षसों के साथ खर दूषण का पंचवटी की ओर प्रस्थान

सूर्पणखा द्वारा इस तरह फटकार सुनकर खर कठोर वाणी में बोला। बहन! तुम्हारा अपमान देखकर मुझे बड़ा क्रोध चढ़ आया है। अब इसे दबाना बहुत कठिन है। मैं पराक्रम की दृष्टि से राम को कुछ भी नहीं समझता। लगता है अब उस मनुष्य का जीवन क्षीण हो चला है। तुम अपने इन आँसुओं को रोक कर घबराना त्याग दो। तुम्हें शीघ्र ही धरती पर गिरे हुए राम का गरमागरम लहू पीने को मिलेगा। यह सुनते ही सूर्पणखा मूर्खतावश भाई खर की भूरि - भूरि प्रशंसा करने लगी। इस समय खर अपने सेनापति दूषण से बोला- सौम्य! तुम मेरे साथ चलने के लिये चौदह सहस्त्र राक्षसों की सेना तैयार करो। साथ ही मेरा रथ मंगवा कर उस पर सब अस्त्र सस्त्रों को भी रख दो। वीर! मैं उस राम का बध करने के लिये सब से आगे रहूंगा। तब उसके इस प्रकार आज्ञा देते ही एक सूर्य के समान प्रकाशमान अच्छे घोड़ों से जुता हुआ रथ वहाँ आ पहुँचा। तत्पश्चात् दूषण ने इसकी सूचना खर को दी। खर वह सूचना पाते ही तुरन्त उस पर सवार हो गया। इस समय अपनी बहन के अपमान का स्मरण कर उसे बहुत दुख हो रहा था। अब उस विशाल सेना की ओर देखकर खर और दूषण ने समस्त राक्षसों से कहा- "निकलो, आगे बढ़ो।" उस समय आगे बढ़ने की आज्ञा मिलते ही विशाल राक्षस सेना जोर-जोर से गर्जना करती हुई जन स्थान से बड़े वेग के साथ निकली। वे सैनिक उस समय बड़े-बड़े भयंकर अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए थे। तब खर के सारथि ने भी सोने के आभूषणों से सजे हुए उसके चितकबरे घोड़ों वाले रथ को हाँका। उस समय खर का क्रोध बढ़ा हुआ था। उसका स्वर भी बहुत कठोर हो गया था। वह फिर उसी उच्च स्वर से सिंहनाद करता हुआ

रथ हांकने के लिये उत्साहित करने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेइसवाँ सर्ग

खर का श्रीराम के आश्रम के समीप पहुँचना

खर के सेना के प्रस्थान होते ही आकाश में गधे के समान धूसर रंग की महाभयंकर घटा धिर आयी साथ ही सैनिकों के ऊपर रक्त मय जल की वर्षा होने लगी। महान् तेजस्वी घोड़े भी अकस्मात चलते चलते गिर पड़े। सूर्य मंडल के चारों ओर काले रंग का घेरा दिखलायी पड़ने लगा। रथ के सुवर्णमयी दण्डवाली ऊँची ध्वजा पर एक भयंकर गिद्ध आकर बैठ गया। भयंकर मेघ मद की धारा बहानेवाली हाथी के समान दिखलायी पड़ने लगी। सब ओर भयंकर अंधकार छा गया। उस समय हाथ को हाथ नहीं दिखलायी पड़ता था। बिना समय के ही खून से भीगे हुए वस्त्र के समान सन्ध्या आ पहुंची और भयंकर पशु पक्षियों की गरजना सुनाई पड़ने लगी। सूर्य के निकट सिर कटा हुआ धड़ दिखलायी पड़ने लगा और असमय ही राहु सूर्य को ग्रसने लगा। इससे सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गयी और बिना रात ही जुगनू के समान चमकने वाले तारे आकाश में उदित हो गये। सरोवरों के कमल सूख गये और वृक्षों के फल फूल झड़ गये। भारी आवाज करती हुई भयानक उल्काएं पृथ्वी पर गिरने लगी। उस समय रथ पर बैठे हुए खर की बायीं भुजा सहसा कांप उठी। उसका स्वर रुक सा गया और आँखों में आंसू आ गयें । लेकिन इन उत्पातों को देखकर भी वह युद्ध से पीछे नहीं हटा और जोर से हँसता हुआ सारे राक्षसों से बोला- मैं इन उत्पातों का कोई परवा नहीं करता। मैं तो अपने तीखे वाणों से आकाश के तारों को भी गिरा सकता हूँ? आज निश्चिय ही राम और उसके भाई लक्ष्मण को तीखे वाणों से मारे बिना पीछे लौट नहीं सकता और मैं अपनी बहन सुर्पणखा को उन दोनों का खून पिलाकर उसका मनोरथ पूरा करूँगा। मैं युद्ध में इन्द्र को भी परास्त कर सकता हूँ फिर इन दोनों मनुष्यों की बात ही क्या ? खर की यह गर्जना सुनकर राक्षसों की विशाल सेना हर्ष से भर उठी। उस समय युद्ध देखने की इच्छा

रखनेवाले ऋषि मुनि एक दूसरे से कहने लगे- जैसे भगवान् विष्णु समस्त असुरों को परास्त कर देते हैं उसी तरह रघुकुल भूषण श्रीराम युद्ध में इन पुलस्त्यवंशी निशाचरों को पराजित करें। उस समय खर रथ के द्वारा बड़े वेग से चलकर सारी सेना के आगे निकल आया तथा बारह पराक्रमी राक्षस खर के दोनों ओर से घेर कर उसके साथ-साथ चलने लगे। महाकमाल, स्थूलाक्ष प्रमाथ,त्रिशिरा ये चार महाबली राक्षस सेनापति दूषण के पीछे-पीछे चल रहे थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीराम का युद्ध के लिये उद्यत होना

जिस समय खर को उत्पात सूचक लक्षण दिखायी दिया उस समय श्रीराम भी उन्हीं उत्पात सूचक लक्षणों को देख रहे थे। उस समय उन उत्पातों को देखकर श्रीराम आश्चर्य में भर गये और लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण! इन उत्पातों को देखो ये राक्षसों के संहार करने के लिये ही उत्पन्न हुए हैं। आकाश में ये धूसर रंग के बादल खून की धाराएं बरसा रही हैं। इस समय ये मेरे बाण युद्ध के लिये मानो आनन्दित हो प्रत्यंचा से जुड़ जाने के लिये स्वयं ही चेष्टाशील जान पड़ते हैं। ये वनचारी पक्षी जिस ढंग से बोल रहे हैं। ये राक्षस के लिए प्राण संकट की सूचना दे रहे हैं और ये बता रहे हैं कि कुछ ही देर में भयंकर युद्ध होगा। अपना कल्याण चाहनेवाले विद्वान पुरुष को चाहिए कि आपत्ति की आशंका होने पर वह पहले ही उससे बचने का उपाय कर ले इस समय तुम धनुष बाण धारण करके विदेह कुमारी सीता को साथ लेकर पर्वत की उस गुफा में चले जाओ जो वृक्षों से आच्छादित है। मैं इन निशाचरों का स्वयं संहार करना चाहता हूँ। श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण धनुषबाण ले सीता के साथ पर्वत की दुर्गम गुफा में चले गये। लक्ष्मण के चले जाने पर श्रीरम ने प्रसन्न होकर कवच धारण किया और उस कवच को धारण कर श्रीराम अंधकार में प्रकट हुए अग्नि देव के समान प्रतीत होने लगे। तदनन्तर श्रीराम और राक्षसों का युद्ध देखने के लिये गंधर्व, सिद्ध, चारण आदि

महात्मा वहाँ एकत्र हो गये और आपस में कहने लगे- जैसे चक्रधारी भगवान् विष्णु असुरों को परास्त कर देते हैं उसी प्रकार श्रीरामचन्द्र जी इन असुरों पर विजय प्राप्त करें। ऐसा कहकर फिर वे एक-दूसरे का मुंह देखते हुए बोले - लेकिन एक ओर तो भयंकर कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षस हैं और दूसरी ओर अकेले श्रीराम हैं, फिर यह युद्ध होगा कैसे? अब जिस समय देवता आदि इस तरह की बातें कर रहे थे उसी समय निशाचरों की वह सेना भयंकर गर्जना करती हुई श्रीरामचन्द्र के पास आ पहुँची। ये राक्षस वीरोचित वार्तालाप करते, मदमत्त होकर जोर-जोर से नगाड़े पीटते हुए गर्जना करते। उस शब्द से डरकर वनचारी हिंसक जीव उस वन को ही छोड़कर भाग गये। इधर खर की सेना उस समय समुद्र के समान गंभीर दिखलायी पड़ रही थी। अब युद्ध कला में विशारद श्रीराम जी ने भी खर की सेना का निरीक्षण किया और युद्ध के लिए उनके सामने बढ़े। फिर उन्होंने तरकस से अनेक बांण निकाले और राक्षसों का बध करने के लिये तीव्र क्रोध दिखलाया। उस समय उनकी ओर देखना भी कठिन हो गया। श्रीराम का वह रूप देखकर सभी देवता व्यथित होने लगे। उधर पिशाचों की चमकीले कवचों से युक्त वह सेना सूर्योदय काल में नीले मेघों की घटा के समान प्रतीत होती थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पचीसवाँ सर्ग

श्रीरामचन्द्र के द्वारा राक्षसों का संहार

खर ने श्रीराम के आश्रम के पास पहुँचकर श्रीराम को देखा और अपने सारथि को आज्ञा दी मेरा रथ श्रीराम के सामने ले चलो। सारथि ने रथ को उस ओर बढ़ाया जहाँ श्रीराम खड़े थे। खर के साथ श्येनगामी आदि निशाचर मंत्री भी जोर से सिंहनाद करते हुए उसे चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये। उन राक्षसों के बीच रथ में बैठा हुआ खर सहस्त्रों बाणों द्वारा श्रीराम को पीड़ित करता हुआ जोरों से गर्जना की। तत्पश्चात् समस्त भयंकर निशाचर श्रीराम पर नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र की वर्षा करने लगे और उन्हें

मारने के लिये चारों ओर से उन पर टूट पड़े। जैसे मेघों के समूह पर्वतों पर जल की धारायें बरसाती हैं उसी प्रकार वे श्रीराम पर बाणों की वर्षा कर रहे थे। किन्तु श्रीराम ने उन अस्त्र शस्त्रों को अपने बाणों से उसी प्रकार ग्रस लिया जैसे सागर नदियों के प्रवाह को आत्मसात कर लेता है। यद्यपि राक्षसों के शस्त्र प्रहार से श्रीराम का शरीर क्षत विक्षत हो गया था फिर भी वे इससे जरा भी व्यथित या विचलित नहीं हुए। जैसे घोर आघात सहकर भी पर्वत अडिग रहता है उसी प्रकार श्रीराम भी अटल बने हुए खड़े रहे किन्तु इस समय श्रीरामचन्द्र को अकेले देखकर सारे देवता विषाद में डूब गये। तत्पश्चात् श्रीराम कुपित हो अपने धनुष को इतना खींचा कि वह गोलाकार दिखलाई पड़ने लगा। फिर तो वे उस धनुष सेऐसे पैने बाण छोड़ने लगे जिन्हें रोकना सर्वथा कठिन था क्योंकि दुःसह होने के साथ ही वे काल पाश के समान भयंकर थे। उन्होंने खेल-खेल में असंख्य बाण छोड़े जो कालपाश के समान राक्षसों के प्राण लेने लगे। उन बाणों के द्वारा श्रीराम ने समरांगण में शत्रुओं के सैकड़ों हजारों धनुष, ध्वजा के अग्रभाग, ढाल, कवच, आभूषणों सहित भुजाएं तथा हाथी की सूंड के समान जांघें काट डाली। यहाँ तक कि समर भूमि में पैदल सैनिकों को भी मारकर उन्हें यमलोक पहुँचा दिया। उस समय उनके नालीक, नाराच और तीखे अग्रभागवाले विकर्णी नामक बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न होते हुए निशाचर भयंकर आर्तनाद करने लगे। इससे कुछ बलशाली शूरवीर निशाचर अत्यंत कुपित होकर श्रीराम पर शूलों और फरसों का प्रहार करने लगे। लेकिन श्रीराम ने अपने प्रचण्ड अस्त्रों से उनके भी प्राण हर लिये। फिर सिर ढाल और धनुष के कट जानेपर ये निशाचर वन के वृक्षों की भांति धराशायी होते गये। तदनन्तर वे सभी बचे हुए निशाचर विषाद में डूबे अपनी रक्षा के लिये खर के पास दौड़े गये। इसी बीच दूषण उन्हें आश्वासन देता हुआ यमराज की भांति कुपित होकर श्रीरामचन्द्र की ओर दौड़ा। दूषण का सहारा पाकर वे राक्षस लौटकर फिर श्रीराम पर टूट पड़े और तरह-तरह के अस्त्रों की वर्षा करने लगे। तब उनके बाणों से घिरे श्रीरामचन्द्र ने भैरव नाद करके उन राक्षसों पर परम तेजस्वी गन्धर्व नामक अस्त्र का प्रयोग किया। फिर तो उस मण्डलाकार धनुष से सहस्त्रों बाण छूटने लगे। उस समय राक्षस यह भी नहीं देख पाते थे कि वे कब बाण हाथ में लेते हैं और

कब उन्हें छोड़ देते हैं। श्रीराम उन बाणों को छोड़ते हुए एक स्थान पर खड़े रहे। अब देखते ही देखते बहुसंख्यक राक्षसों की लाशों से वहाँ की भूमि पट गयी। और उनके बिखरे हुए प्रासों, फरसों, खण्डित खंभों, शिलाओं के टुकड़ों और बाणों से पटी हुई वह भूमि अत्यंत भयंकर दिखलायी पड़ती थी। इतने राक्षसों को एक साथ मरा हुआ देखकर शेष राक्षस श्रीराम के सम्मुख जाने में असमर्थ हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा चौदह सहस्र राक्षसों का वध

दूषण ने जब देखा कि उसकी सेना बुरी तरह से मारी जा रही है तो उसने पांच हजार भयंकर राक्षसों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। वे आगे बढ़कर श्रीराम पर चारों ओर से शूल, पत्थर, बाणों आदि की लगातार वर्षा करने लगे। श्रीराम उन प्रहारों को अपने तीखे सायकों द्वारा रोकते रहे और फिर क्रोधित होकर दूषण सहित सारी राक्षस सेना पर चारों ओर से बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब दूषण के विशाल धनुष को काटते हुए उन्होंने उसके घोड़े को भी मौत के घाट उतार दिया और उस राक्षस की छाती में चोट पहुंचायी। अब निराश होकर दूषण एक रोमांचकारी परिधि हाथ में ले श्रीराम पर टूट पड़ा। उसे अपने ऊपर आक्रमण करते देख श्रीरामचन्द्र जी ने दो बाणों से आभूषण सहित उसकी दोनों भुजायें काट डाली। जैसे दोनों दांतों को उखाड़ लिये जाने पर गजराज उनके साथ ही धराशायी हो जाता है उसी प्रकार अपनी दोनों भुजाओं के कटने के साथ ही दूषण भी पृथ्वी पर गिर पड़ा। अब दूषण को धराशायी हुआ देखकर समस्त प्राणियों ने 'साधु-साधु' कहकर भगवान् श्रीराम की प्रशंसा की। फिर तो महाबली राक्षस स्थूलाक्ष, प्रमाथी और महाकपाल एक साथ ही श्रीरामचन्द्र के ऊपर टूट पड़े। तब श्रीराम ने अपने सायकों द्वारा महाकपाल का सिर एवं कपाल उड़ा दिया। प्रमाथी को असंख्य बाण समूह से मथ डाला एवं स्थूलाक्ष की स्थूल आंखों को सायकों से भर दिया। इससे सैनिकों का वह समूह वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस

तरह श्रीरामचन्द्र जी ने कुपित हो दूषण के अनुयायी पांच हजार राक्षसों को भी क्षण भर में यमलोक पहुंचा दिया। अब अपने भाई दूषण और उसके अनुयायियों के बध का समाचार सुनकर खर को बड़ा क्रोध हुआ। उसने झट बचे हुए अपने सेवकों को आज्ञा दी- वीरों ! यह दूषण अपने सेवकों सहित युद्ध में मारा गया है। अब तुम इस दुष्ट मनुष्य राम के साथ युद्ध करके नाना प्रकार के अस्त्रों से इसका बध कर डालो। ऐसा कहकर खर ने कुपित होकर श्रीराम पर धावा कर दिया और फिर उसके साथ ही उसके अनेक दुर्जय सैनिक भी श्रीराम पर टूट पड़े। तब तेजस्वी श्रीरामचन्द्र ने सोने और हीरों से विभूषित अग्नितुल्य तेजस्वी सायकों द्वारा सेना के बचे खुचे सिपाहियों का भी संहार कर डाला। उस समय युद्ध में लहूलुहान होकर गिरे हुए खुले केशवाले राक्षसों से सारी रण भूमि पट गयी। राक्षसों के मरने से उस समय वहाँ रक्त और मांस की कीचड़ जम गयी। अतः वह भयंकर वन नरक के समान प्रतीत होने लगा। वहाँ उस समूची सेना में महारथी खर और त्रिशिरा ये दो राक्षस ही बच रहे। तदनन्तर महासमर में महाबली श्रीराम के द्वारा अपनी सेना को मारी गयी देखकर खर स्वयं एक विशाल रथ पर सवार हो श्रीराम का सामना करने के लिये आया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२६)

सत्ताइसवाँ सर्ग

त्रिशिरा का वध

खर को भगवान् श्रीराम के सम्मुख जाते हुए देखकर सेनापति त्रिशिरा तुरन्त उनके पास पहुँचा और बोला- महाराज ! इस युद्ध में आप मुझ पराक्रमी को लगाइये और स्वयं इससे दूर रहिये। देखिये मैं अभी महाबाहु राम को कैसा युद्ध में गिराता हूँ। मैं इस समय अपने हथियार छूकर शपथ खाता हूँ कि युद्ध में राम को मार गिराऊँगा। बस आप कुछ क्षण के लिये अपने युद्ध विषयक उत्साह को रोककर एक मुहूर्त के लिये जय-पराजय का निर्णय करने वाले साक्षी बन जाइये। यदि राम मेरे हाथों मारे गये तो अपने जन स्थान को लौट जाइयेगा अन्यथा यदि मैं मर गया तो आप युद्ध के लिये इन पर धावा

बोल दीजियेगा। खर ने यह सुनकर आज्ञा दी- अच्छा जाओ युद्ध करो। यह सुनकर त्रिशिरा रथ पर सवार हो श्रीरामचन्द्र की ओर चला और उन पर बाणों की वर्षा शुरू कर दी। उस समय वह तीन शिरोंवाले पर्वत के समान जान पड़ता था। उस समय श्रीरघुनाथ जी ने अपने पैने बाण छोड़ते हुए उसे आगे बढ़ने से रोक दिया। इस समय उन दोनों का संग्राम सिंह और हाथी के युद्ध की भाँति बहुत भयंकर दिखलायी पड़ रहा था। उस समय त्रिशिरा ने तीन बाणों से श्रीराम चन्द्र के ललाट को बींध डाला। यह देखकर श्रीराम कुपित होकर बोले- तुमने जो मेरे ललाट पर प्रहार किया है अब उसके बदले तुम धनुष की डोरी से छूटे हुए बाणों को ग्रहण करो। ऐसा कहकर उन्होंने त्रिशिरा को चौदह बाण मारे जो विषैले सर्पों के समान भयंकर थे। फिर धीरे-धीरे उन्होंने अपने बाणों से रथ के घोड़े और सारथी सब को मार गिराया। इसके बाद अपने रथ के ध्वजा को भी कटते हुए देखकर वह रथ से कूदने लगा। किन्तु इसी समय श्रीराम ने उस निशाचर की छाती को अपने बाणों से छेद डाली। उन बाणों से वह देखते ही देखते जड़वत हो गया। इसके बाद श्रीराम ने अपने विनाशकारी बाणों से उस राक्षस के तीनों मस्तक काट डाले। अब देखते ही देखते वह धराशायी हो गया और उसके गिरते ही खर की सेवा में लगे हुए राक्षस भी भाग खड़े हुए। फिर उन्हें इस तरह भागते हुए देखकर खर ने क्रोध में आकर उन लोगों को वापस लौटाया और श्रीराम पर उसी प्रकार आक्रमण किया जैसे राहु चन्द्रमा पर आक्रमण करता है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२७)

अट्ठाइसवाँ सर्ग

खर के साथ श्रीराम का घोर युद्ध

त्रिशिरा और दूषणको रणभूमि में मरा हुआ देखकर खर को बड़ा भय होने लगा। अब उसने श्रीराम पर उसी प्रकार आक्रमण किया जैसे नमुचि ने इन्द्र पर आक्रमण किया था। खर ने एक प्रबल धनुष को खींच कर श्रीराम के प्रति बहुत से नाराच चलाये और नाना प्रकार के अस्त्रों का प्रदर्शन करता हुआ रथारूढ़ खर समरभूमि में पैंतरे दिखलाता हुआ इधर से उधर विचरने

लगा। उस समय श्रीराम ने भी अपना विशाल धनुष उठाया और समस्त दिशाओं को बाणों से अच्छादित कर दिया। खर और श्रीराम द्वारा छोड़े गये पैने बाणों से व्याप्त हो सब ओर फैला हुआ आकाश चारों ओर से बाणों द्वारा भर जाने से आकाशरहित हो गया। अब आकाश बाणों से आच्छादित हो जाने के कारण सूर्य देव प्रकाशित नहीं हो पा रहे थे। तदनन्तर खर ने यमराज के समान श्रीराम पर नालीक नाराच और तीखे अग्रभाग वाले विकर्णि नामक बाणों द्वारा प्रहार किया क्योंकि उस समय वह श्रीराम को थका हुआ समझ रहा था। किन्तु श्रीराम उस खर को देखकर उसी प्रकार उद्विग्न नहीं हो रहे थे जैसे छोटे-छोटे मृग को देखकर सिंह भयभीत नहीं होता। फिर जैसे पतंगा आग के पास जाता है उसी तरह खर श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर फुर्ती सेश्रीराम के बाण सहित धनुष को मुट्ठी पकड़ने की जगह से काट डाला और श्रीराम के मर्मस्थल पर चोट पहुँचायी। तत्पश्चात् वह उन्हें हर तरह से पीड़ित करता हुआ जोर-जोर से गर्जना करने लगा। उस समय खर के द्वारा छोड़े गये बाणों से श्रीराम का कवच कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उनके सभी अंगों में खर के बाण धंस गये थे। तब श्रीराम ने शत्रुओं का नाश करने के लिये एक दूसरे विशाल धनुष पर, जिसकी ध्वनि बहुत ही गंभीर थी प्रत्यंचा चढ़ाई। इन्हें महर्षि अगस्त्य ने जो महान और उत्तम धनुष प्रदान किया था उसी को लेकर खर पर धावा कर दिया और अपने गांठ वाले बाणों के द्वारा खर की ध्वजा काट डाली। अब खर ने श्रीराम की छाती में चार बाण मारे। उसके धनुष से छूटे हुए बहुसंख्यक बाणों से घायल होकर श्रीराम का सारा शरीर लहूलुहान हो गया। इससे उनको बड़ा रोष आया। तदनन्तर श्रीराम ने पूर्वोक्त श्रेष्ठ धनुष को लेकर खर को छः बाण मारे। उनके एक बाण से मस्तक, दो से भुजाएं और तीन से उसकी छाती में चोट पहुँचायी। फिर तेरह बाण मार कर उसके रथ का जुआ, चितकबरे घोड़े और सारथि का मस्तक आदि नष्ट कर दिए। फिर अन्य बाणों द्वारा समरांगण में खर को भी घायल कर दिया। रथ के टूटने और घोड़ों के मारे जाने से खर गदा हाथ में लेकर धरती पर कूद पड़ा। इस अवसर पर विमान पर बैठे हुए देवता आदि श्रीराम की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम का खर को फटकारना

खर को रथ से उतरते देख श्रीराम उससे कठोर वाणी में बोले- निशाचर! तेरे द्वारा किये गये क्रूर कर्मों की निंदा समस्त लोकों में हुई है। जो लोग समस्त प्राणियों को कष्ट पहुंचाने वाले हैं उसे सब सामने आये हुए सर्पों की भांति मारते हैं। अधिक से अधिक वस्तु पाने की इच्छा को लोभ कहते हैं और जो इस लोभ के वशीभूत होकर पाप करता है, वह अपना ऐसा ही विनाश रूप परिणाम देखता है। तू इस दण्डकारण्य में निवास करनेवाले मुनियों की हत्या करके न जाने कौन सा फल पायेगा। जैसे समयानुसार वृक्षों में फल लगते हैं वैसे पाप कर्म करनेवाले को अपने पाप कर्म का भयंकर फल अवश्य मिलता है। निशाचर! जैसे विष मिश्रित भोजन का फल अवश्य भोगना पड़ता है वैसे ही पाप कर्मों का फल शीघ्र भोगना पड़ता है। वास्तव में पाप कर्म में लगे हुए राक्षसों को प्राण दण्ड देने के लिये ही मेरे पिता ने मुझे वन में भेजा है। तूने दण्डकारण्य में जिन धर्म परायण ऋषियों का भक्षण किया है आज सेना सहित युद्ध में मारा जाकर तू भी उन्हीं का अनुसरण करेगा। वे महर्षि अब तुझे मेरे बाणों द्वारा मारा गया और नरक तुल्य कष्ट भोगता हुआ देखें। तू चाहे जैसा भी यत्न कर किन्तु मैं तेरे मस्तक को आज ताड़ के फल की भाँति अवश्य काट गिराऊँगा। श्रीराम के ऐसा कहने पर अब खर भी कुपित हो उठा और हंसता हुआ श्रीराम से बोला- दशरथ कुमार! तुम युद्ध में साधारण राक्षसों को मारकर स्वयं ही अपनी इतनी प्रशंसा कर रहे हो। पर तुम प्रशंसा के योग्य कदापि नहीं। जो पराक्रमी होते हैं वे अपनी बड़ाई कभी नहीं करते। जो अपनी बहादुरी की डींग मारते हैं वे क्षत्रिय कुल कलंक होते हैं। जैसे पीतल आग में तपाये जाने पर अपने काले पन का परिचय देते हैं। मैं अकेला ही पाशधारी यमराज की भांति गदा हाथ में लेकर रणभूमि में तुम्हारे और तीनों लोक के भी प्राण लेने की शक्ति रखता हूँ। तुमने चौदह हजार राक्षसों का विनाश किया है आज मैं तुम्हारा विनाश करके उन सब का आँसू पोछूँगा। ऐसा कह कर क्रोध से भरे हुए खर ने अपना वज्र के समान गदा श्रीरामचन्द्र के ऊपर चलाया। खर के हाथों में से छूटी हुई वह गदा वृक्षों और लताओं को भस्म करके श्रीराम के समीप आ पहुँची। अब उस गदा को

श्रीराम ने अनेक बाण मार कर आकाश में ही टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

खर को मार गिराना तथा देवताओं एवं ऋषियों द्वारा श्रीराम की प्रसंशा

तदनन्तर श्रीराम ने खर के उस गदा को चूर-चूर करके मुस्कराते हुए कहा- राक्षसाधम! इस गदा में ही तेरा सारा बल था जो अब विदीर्ण हो चुका है इससे लगता है तू मुझसे शक्ति में कितना हीन है। तुझे इस बात का पूरा भरोसा था कि तू इससे मेरा बध कर डालेगा और इस तरह तू सारे मारे गये राक्षसों का आँसू पोछेगा। लेकिन तेरी यह बात झूठी हो गयी। अब देख मैं अपने बाणों से तेरे शरीर को विदीर्ण कर तेरा गला काट डालूंगा। फिर वह पृथ्वी तेरे गरमागरम रक्त का पान करेगी और तू इस पृथ्वी का आलिंगन कर सदा के लिये सो जायेगा। तेरे जैसे राक्षस कुल कलंक के मर जाने से ये वन मुनियों के शरण पाने योग्य बन जायेंगे। अब तक जो राक्षसियाँ दूसरों को भय देती थी वे स्वयं भय के कारण इस स्थान को छोड़कर भाग जायेंगी। निशाचर! तू ब्राह्मणों के लिये सदा की कण्टक रूप है। तब श्रीराम की ऐसी बातें सुनकर खर भी कठोर होकर बोला- अहो! तुम निश्चय ही बड़े घंमण्डी हो। जान पड़ता है तुम मृत्यु के अधीन हो गये हो। जो पुरुष मृत्यु के निकट होते हैं उनकी छओं इन्द्रियां बेकाम हो जाती हैं इसलिये उन्हें कर्तव्य और अकर्तव्य का ज्ञान ही नहीं रहता। ऐसा कहकर वह श्रीराम पर प्रहार करने के लिये इधर-उधर दृष्टिपात करने लगा। इतने में ही उसे एक विशाल साखू का वृक्ष दिखायी दिया। वह देखकर खर ने उसे तुरंत अपने दातों से उखाड़ लिया और उसे अपने हाथों में लेकर श्रीराम पर दे मारा किन्तु श्रीराम ने अपने ऊपर आते हुए उस वृक्ष को बाण सहित मार गिराया। फिर खर को मारने के लिये उन्होंने अत्यंत क्रोध प्रकट किया और तुरन्त सहस्त्रों बाणों का प्रयोग कर समर भूमि में खर को छत-विक्षत कर दिया। लेकिन खर इससे व्याकुल होकर भी अपने साहस को नहीं छोड़ा और बड़े वेग के साथ श्रीराम की ओर दौड़ पड़ा। अब यह देखकर श्रीराम दो पग पीछे हट गये और खर का बध करने के लिये एक महा तेजस्वी बाण हाथ में लिया। वह बाण इन्द्र का दिया

हुआ था अब श्रीराम ने उसे धनुष पर रक्खा और खर को लक्ष्य करके छोड़ दिया। वह बाण भयानक शब्द करता हुआ खर की छाती पर जा लगा और उस बाण की आग में जलता हुआ वह पृथ्वी पर गिरकर मृत्यु को प्राप्त हो गया। इस समय सारे देवता चारणों के साथ उपस्थित होकर श्रीराम के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे और वह कहने लगे- अहो! भगवान् श्रीराम का यह काम महान् और अद्भुत है। ऐसा कहकर वे सब जैसे आये थे वैसे चले गये। तदनन्तर बहुत से ऋषिगण और अगस्त्य आदि महर्षि वहां आकर बोले- रघुनन्दन! इसीलिये महातेजस्वी इन्द्र शरभंग मुनि के आश्रम पर आये थे और आपको विशेष उपाय करके पंचवटी के इस प्रदेश में भेजा गया था। श्रीराम! अब आपने हम लोगों का बहुत बड़ा कार्य सिद्ध कर दिया। इस समय हम लोग निर्भय होकर धर्म का अनुष्ठान कर सकते हैं। इसी बीच लक्ष्मण भी पर्वत की कन्दरा से निकलकर प्रसन्नता पूर्वक आश्रम में आ गये। अब महर्षियों को सुख देनेवाले पति का आश्रम में दर्शन करके सीता को बड़ा हर्ष हुआ। प्रसन्नता से भरे हुए मुनि जिनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। उस प्राण वल्लभ श्रीराम का बारम्बार आलिंगन कर सीता का मुख प्रसन्नता से खिल उठा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३०)

इकतीसवाँ सर्ग

रावण का सीता का अपहरण करने के लिये जाना और मारीच के कहने से लंका लौटना

तत्पश्चात् जन स्थान से अकम्पन नामक राक्षस लंका पहुंचा और शीघ्र ही पुरी में प्रवेश करके रावण से बोला- राजन्! जन स्थान में खर समेत जितने भी राक्षस रहते थे वे सब मार डाले गये। केवल मैं ही वहां से बचकर किसी तरह यहां आ सका हूँ। अकम्पन के ऐसा कहने पर रावण क्रोध से जलता हुआ बोला- मेरे जनस्थान का विनाशकर कौन मौत के मुँह में जाना चाहता है। मेरा अपराध करके इन्द्र, यम, कुबेर और विष्णु भी चैन से नहीं रह सकेंगे। मैं तो मौत को भी मृत्यु मुख में डाल सकता हूँ। यदि मैं क्रोध से भर

Mookerji sharma (IPS) Jammu Collection

जाऊँ तो वायु की गति को रोक ही सकता हूँ। साथ ही अपने तेज से सूर्य और अग्नि को भी जलाकर भस्म कर सकता हूँ। रावण को इस प्रकार क्रोध में भरा हुआ देखकर अकम्पन अभय की याचना करता हुआ बोला, राक्षसराज! राजा दशरथ के नवयुवक पुत्र श्रीराम पंचवटी में रहते हैं। उनके शरीर का रंग सांवला है किन्तु बे बहुत तेजस्वी दिखलायी देते हैं। उनके बल और पराक्रम की कहीं तुलना नहीं उन्होंने ही जन स्थान में रहनेवाले खर और दूषण आदि का बध किया है। अब उसकी बात सुनकर रावण लम्बी सांस लेता हुआ बोला- अकम्पन! बताओ तो सही क्या राम सम्पूर्ण देवताओं तथा देवराज इन्द्र के साथ जन स्थान में आये हैं? रावण के इस प्रश्न को सुनकर अकम्पन फिर बोला- लंकेश्वर! जिनका नाम राम है वे तो युद्ध की कला में पराकाष्ठा को पहुंचे ही हुए हैं साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण भी उन्हीं की भाँति बलवान हैं और उनका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति मनोहर है। जैसे आग के साथ वायु हो वैसे अपने भाई के साथ मिलकर श्रीराम बहुत प्रबल हैं और उन्होंने ही जन स्थान को उजाड़ डाला है। उनके साथ न कोई देवता है और न मुनि फिर भी उनके द्वारा छोड़े हुए बाण सर्प बनकर राक्षसों को खा जाते हैं। यदि राक्षस भयभीत होकर भागते भी हैं तो भी वे अपने सामने श्रीराम को खड़ा हुआ देखते हैं। अब अकम्पन की बात सुनकर रावण बोला- मैं अभी लक्ष्मण सहित राम का बध करने के लिये जनस्थान को जाऊँगा। अकम्पन ने समझाया राजन्! अब उनके बल और पुरुषार्थ का मुझसे सहीवर्णनसुनिये। महायशस्वी श्रीराम यदि कुपित हो जायें तो उन्हें कोई काबू में नहीं कर सकता। वे चाहें तो अपने बाणों से भरी हुई नदी के वेग को भी पलट सकते हैं तथा नक्षत्रों सहित सारे आकाश मण्डल को भी पीड़ा दे सकते हैं। वे समुद्र के वेग और वायु को भी नष्ट कर सकते हैं वे लोगों को नष्ट कर पुनः नये सृष्टि का संहार कर सकते हैं। दशानन! जैसे पापी पुरुष स्वर्ग पर अधिकार नहीं प्राप्त कर सकता उस प्रकार आप युद्ध में उन्हें नहीं जीत सकते। मेरी समझ में कोई देवता भी उनका बध नहीं कर सकता। हां; उनके बध का केवल एक उपाय हो सकता है। उसे सुनिये। श्रीराम की पत्नी सीता सम्पूर्ण स्त्रियों में एक रत्न है। देवकन्या, नागकन्या अथवा अप्सरा कोई भी उसकी समानता नहीं कर सकती। उस वन में श्रीराम को धोखे में डालकर

आप किसी तरह उसकी पत्नी का अपहरण कर ले। सीता से बिछुड़ जाने पर श्रीराम कदापि जीवित नहीं रहेंगे। दशानन को अकम्पन की यह बात पसन्द आ गयी। अब उसने कुछ देर तक सोचने के बाद कहा- ठीक है, कल मैं सारथि के साथ वहां अकेला ही जाऊँगा और सीता को प्रसन्नतापूर्वक इस महापुरी में ले आऊँगा। ऐसा कह कर रावण गधों से जुते हुए तेजस्वी रथ पर सवार होकर वहां से चला। वहां से कुछ दूर जाने पर वह एक आश्रम पर ताड़का पुत्र मारीच से मिला। मारीच ने उसका खूब आदर सत्कार करते हुए उसके आने का कारण पूछा। उसके पूछने पर रावण बोला- तात! सुना है यहां श्रीराम ने अनायास ही खर दूषण आदि राक्षसों को मार गिराया है। अतः बदला लेने हेतु मैं उसकी स्त्री का अपहरण करना चाहता हूँ? इसमें तुम मेरी सहायता करो। रावण का यह वचन सुनकर मारीच बोला- राक्षसराज! मित्र के रूप में ऐसा कौन सा शत्रु है जिसने तुम्हें सीता के हर लेने की सलाह दी है। वास्तव में वह तुम्हारी बुराई करना चाहता है। वह तुम्हारे हाथों विषधर सर्प के मुख से उसके दांत उखड़वाना चाहता है। राजन्! उसने तुम्हें खोटी सलाह देकर सुखपूर्वक सोते समय तुम्हारे मस्तक पर लात मारी है। वे श्रीराम मनुष्य के रूप में एक सिंह हैं। वह सिंह चतुर राक्षस रूपी मृगों का बध करनेवाला है। युद्ध स्थल में उनकी ओर देखना भी तुम्हारे लिये उचित नहीं है फिर जूझने की बात ही क्या है? उस सोते हुए सिंह को जगाना तुम्हारे लिये उचित नहीं। लंकेश्वर! अब प्रसन्न होकर लौट जाओ और अपनी पुरी में अपनी स्त्री के साथ रमण करो। इधर राम भी अपनी पत्नी के साथ वन में विहार करें। मारीच के ऐसा कहने पर दशमुख रावण लंका को लौट आया और अपने सुन्दर महल में चला गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में इकतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

सूर्पणखा का लंका में रावण के पास जाना

जिस समय सूर्पणखा ने देखा कि श्रीराम ने भयानक कर्म करनेवाले चौदह हजार राक्षसों को अकेले ही मार गिराया है तो वह शोक के वशीभूत हो

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

जोर-जोर से चीत्कार करने लगी और शीघ्र ही रावण द्वारा सुरक्षित लंकापुरी में आ पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने देखा रावण महल के ऊपरी भाग में बैठा हुआ चारों ओर अपने मंत्रियों से घिरा है। उस समय उसका राजोचित तेज उद्दीप्त हो रहा था और देवता गंधर्व, भूत और महात्मा ऋषि भी उसे जीतने में असमर्थ थे। वह समरभूमि में मुँह फैलाये हुए यमराज की भाँति भयानक जान पड़ता था। उसके बीस भुजाएं और दस मस्तक थे। उसके छत्र, चँवर और आभूषण आदि उपकरण देखने योग्य थे। उसका वक्षस्थल विशाल था और वह राजोचित लक्षणों से युक्त था। देवताओं के समस्त शस्त्रों के प्रहारों से भी जो खण्डित न हो सके थे उन्हीं अंगों से वह गंभीर समुद्र में भी हलचल पैदा कर देता था। पर्वत शिखरों को वह तोड़कर फेंक देता, देवताओं को रौंद डालता और धर्म की तो वह जड़ ही काट देता। साथ ही परायी स्त्रियों के सतीत्व का नाश करने वाला था। पाताल के भोगवती पुरी में जाकर वह नागराज वासुकि को परास्त कर और तक्षक को भी हराकर वह उसकी पत्नी हर ले आया था। कुबेर को पराजित कर उसने पुष्पक विमान को अपने अधिकार में कर लिया था। वह चन्द्रमा और सूर्य के उदय काल को भी अपने हाथों से रोक देता? पूर्वकाल में दस हजार वर्षों तक घोर तपस्या करके उसने ब्रह्मा जी को अपने मस्तक की बलि दी थी। संग्राम में मनुष्य को छोड़ कर देवता, दानव, गंधर्व, पिशाच, पक्षी और सर्पों सभी से उसे अभय प्राप्त हो गया था। वह यज्ञों को नष्ट करनेवाला और क्रूर कर्म करने वाला निर्दय था। इस तरह समस्त लोकों को भय देनेवाला अपने भाई को वहाँ बैठे हुए देखकर महात्मा लक्ष्मण द्वारा कुरूप हुई सूर्पणखा उसके पास जाकर बोली।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

सूर्पणखा का रावण को फटकारना

उस समय सूर्पणखा श्रीराम से तिरस्कृत होने पर बड़ी दुःखी थी। वह समस्त लोकों को सतानेवाले रावण को कुपित होकर कहने लगी-राक्षसराज! तुम स्वेच्छाचारी और निरंकुश होकर विषय भोगों में मतवाले हो रहे हो।

किन्तु अब तुम्हारे लिये भय उत्पन्न हो गया उसके विषय में तुम्हें कोई जानकारी नहीं। जो राजा ठीक समय पर अपने कार्यों का सम्पादन नहीं करता। वह अपने राज्य के साथ स्वयं भी नष्ट हो जाता है। जो अपने राज्य की देखभाल के लिये गुप्तचरों की नियुक्ति नहीं करता और प्रजाजनों का जिनका दर्शन दुर्लभ हो जाता है ऐसे राजा को प्रजा दूर से ही त्याग देती है। जो राजा अपने प्रान्त को जो असावधानी से दूसरे के अधिकार में चला गया है, पुनः अपने अधिकार में नहीं लाते वे अपना उत्थान नहीं कर पाते। तुमने अपने राज्य की देखभाल के लिये गुप्तचर नहीं नियुक्त किये हैं ऐसी दशा में तुम जैसा विषय लोलुप चपल पुरुष कैसे राजा बना रह सकेगा? निशाचर राज! जिन नरेशों के गुप्तचर कोष और नीति वे सब अपने अधीन नहीं हैं वे साधारण लोगों के समान हैं। गुप्तचरों की सहायता से राजा लोग दूर-दूर के सारे कार्यों की देखभाल करते रहते हैं इसलिये वे दुरदर्शी कहलाते हैं। लेकिन तुमने ऐसा कुछ नहीं किया। इसलिये तुम्हारे स्वजन मार डाले गये। उनका जनस्थान उजाड़ दिया गया और तुम्हें इसका पता तक न चला। अकेले राम ने चौदह हजार राक्षसों को यमलोक पहुँचा दिया। खर दूषण के प्राण लिये और ऋषियों को अभयदान दिया। लेकिन अपने ही राज्य में उत्पन्न हुए भय का तुम्हें कुछ भी पता नहीं हुआ। राजा अपने कर्तव्य का पालन अथवा करने योग्य कार्य का सम्पादन नहीं करता तथा भय के अवसरों पर सावधान नहीं होता, वह शीघ्र ही राज्य से भ्रष्ट एवं दीन होकर धरती पर तिनकों के समान तिरस्कृत हो जाता है। जैसे पहना हुआ वस्त्र और मसली हुई फूलों की माला दूसरों के उपयोग में आने योग्य नहीं होती उसी तरह राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा समर्थ होने पर भी दूसरे के लिये निरर्थक है। वह राजा जो सदा सावधान रहता है राज्य के समस्त कार्यों की जानकारी रखता है तथा धर्म परायण होता है वह बहुत दिनों तक राज्य करता है। जो स्थूल आँखों से सोता है और नीति की आँखों से जागता है उसी राजा की लोग पूजा करते हैं। लेकिन तुम विषयासक्त हो और देश काल के विभाग को यथार्थ रूप से नहीं जान्नेवाले हो इसलिये तुम्हारा राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा और तुम भारी विपत्ति में फंस जाओगे। सूर्पणखा द्वारा कही हुई बातों पर रावण

Mookerji sharma (Lib) Jammu Collection

बहुत देर तक सोच विचार करता हुआ पड़ा रहा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३३)

चौंतीसवाँ सर्ग

रावण के पूछने पर सूर्पणखा का उससे राम, लक्ष्मण और सीता का परिचय देना

सूर्पणखा की ऐसी बातें सुनकर रावण अत्यंत कुपित होकर पूछने लगा-राम कौन है? उसने दण्डकारण्य में प्रवेश क्यों किया? आखिर उनके पास ऐसा कौनसाअस्त्रहै जिससे खर दूषण आदि राक्षस मार डाले गये। सूर्पणखे! तुम ठीक-ठीक बताओ कि तुम्हें किसने कुरूप बनाया है? किसने तुम्हारे नाक और कान काट डाले हैं। रावण के इस तरह पूछने पर राक्षसी बोली-भैया! श्रीरामचन्द्र राजा दशरथ के पुत्र हैं। उनकी भुजाएं लम्बी और आँखें बड़ी हैं। वे अपने विशाल धनुष से सर्पों के समान नाराचों की वर्षा करते हैं। वे कब धनुष खींचते हैं और बाण कब छोड़ते हैं इसे मैं भी नहीं देख पाती। जैसे ओलों से खेती नष्ट होती है वैसे उनके बाणों से राक्षसों का विनाश होता है। उन्होंने खर दूषण सहित चौदह हजार राक्षसों को मार कर दण्डक वन को राक्षसों से रहित कर दिया है। उन्होंने शायद अपनी स्त्री का बध हो जाने के भय से मुझे किसी तरह अपमानित करके ही छोड़ दिया है। उनका भाई लक्ष्मण भाई के समान ही दुर्जय और विजयी है। श्रीराम का मानो वह दाहिना हाथ है। श्रीराम की पत्नी चन्द्रमा के समान मनोहर है। उसका सुन्दर शरीर तपाये हुए सुवर्ण की भांति कान्ति धारण किये हुए है। वह विदेह राज की कन्या है और उसका नाम सीता है। सीता जिसकी भार्या हो- उसका जीवन इन्द्र से भी अधिक भाग्यशाली है। महाबाहो! जब मैंने उस स्त्री को तुम्हारी भार्या बनाने के लिये वहाँ से ले आने को तैयार हुई तो क्रूर लक्ष्मण ने मुझे इस तरह कुरूप कर दिया। उस सीता को देखते ही तुम निश्चय ही कामदेव के वश में हो जाओगे। यदि तुम्हें उसको अपनी भार्या बनाने की इच्छा हो तो तुम राम को जीतने की तैयारी करो या उसे हर लाओ। अब तुम्हारा क्या कर्तव्य है इसका निश्चय

तुम्हें खुद करना है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

पैंतीसवाँ सर्ग

रावण का पुनः मारीच के पास जाना

सूर्पणखा की बात सुन रावण अपने कर्तव्य का निश्चय कर वहाँ से चल दिया । फिर गुप्त रूप से रथशाला में जाकर उसने अपने सारथि को यह आज्ञा दी कि मेरा रथ जोतकर तैयार करो। सारथि ने आज्ञानुसार तुरन्त रथ जोतकर तैयार कर दिया। वह रथ इच्छानुसार चलने वाला था और उसमें पिशाचों के समान मुखवाले गधे जुते थे। उस रथ पर मेघ गर्जना के समान ध्वनि करता हुआ रावण समुद्र के तट पर गया। तदनन्तर पराक्रमी रावण समुद्र के तट पर पहुँचकर उसकी शोभा देखने लगा। वह सागर का किनारा नाना प्रकार के फल फूल वाले वृक्षों से व्याप्त था। चारों ओर जल से भरी हुई पुष्करिणियां और वेदिकाओं से मण्डित विशाल आश्रम उस सिन्धु तट की शोभा बढ़ा रहे थे। अत्यंत नियमित आहार करनेवाले बड़े-बड़े ऋषि मुनि नाग, गंधर्व तथा सहस्त्रों किन्नर उस स्थान की शोभा बढ़ा रहे थे। दिव्य आभूषण और पुष्प मालाओं को धारण करनेवाली सहस्त्रों अप्सरायें वहाँ सब ओर विचर रही थीं। देवता और दानवों का समूह भी वहाँ विचर रहा था। आकाश मार्ग से यात्रा करते हुए रावण ने रास्ते में सब ओर बहुत से श्वेत वर्ण के विमान गन्धर्व और अप्सराओं को भी देखा। आगे बढ़ने पर चन्दन के ऐसे सहस्त्रों वन दिखाई पड़े, जिसकी सुगंध नासिका को तृप्त करने वाले थे। कहीं श्रेष्ठ अगुरू के वन थे तो कहीं तमाल के फूल खिले थे। कहीं समुद्र तट पर ढेर मोती सूख रहे थे तो कहीं मृगों की राशियाँ थीं। कहीं सोने चांदी के शिखर थे तो कहीं स्वच्छ पानी के झरने दिखाई पड़ रहे थे। इसके साथ ही कहीं स्त्री-रत्नों से भरे हुए तथा हाथी घोड़ों और रथों से व्याप्त नगर दृष्टिगोचर होते थे। रावण इन सबको देखता हुआ आगे बढ़ा। फिर उसने सिंधुराज के तट पर एक ऐसा स्थान देखा जो स्वर्ग के समान मनोहर था। वहां सागर तट पर एक बरगद का वृक्ष दिखायी दिया। उस वृक्ष की शाखाएं चारों

ओर सौ योजन तक फैली थी। उसके नीचे चारों ओर मुनि निवास करते थे। यह वही वृक्ष था जिसकी शाखा पर किसी समय महाबली गरुड़ एक एक विशालकाय हाथी और कछुए को लेकर उन्हें खाने के लिये आ बैठे थे। पक्षियों में श्रेष्ठ महाबली गरुड़ ने बहुसंख्यक पत्तियों से भरी हुई उस शाखा को सहसा अपने भार से तोड़ डाला। उस शाखा के नीचे बहुत से बाल खिल्य, मरीचिप आदि महर्षि रहा करते थे। अब उन पर दया करके उनके जीवन की रक्षा करने के लिये गरुड़ ने उस टूटी हुई सौ योजन लम्बी शाखा को और उन दोनों हाथी और कछुए को भी वेग पूर्वक एक ही पंजे में पकड़ लिया और फिर आकाश में ही उन दोनों जंतुओं के मांस खाकर फेकी हुई उस डाली के द्वारा निषाद देश का संहार कर डाला। इस तरह महामुनियों को मृत्यु के संकट से बचा लेने से गरुड़ को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और उन्होंने अमृत ले आने के लिये पक्का निश्चय कर लिया फिर इन्द्र भवन को नष्ट भ्रष्ट करके वहाँ छिपाकर रखे हुए अमृत को वे महेन्द्र भवन से हर लाये गरुड़ के द्वारा तोड़ी हुई डाली का वह चिह्न उस बरगद में उस समय भी मौजूद था। रावण उस वट वृक्ष को देखने के पश्चात् एक रमणीय वन के भीतर एक पवित्र आश्रम का दर्शन किया। वहाँ वास्तव में काला मृगचर्म पहने हुए नियमित आहार करने वाला मारीच नामक राक्षस निवास करता था। फिर रावण वहाँ उससे आकर मिला तब मारीच ने सब प्रकार के अलौकिक पदार्थों से उसका आतिथ्य सत्कार किया और उसके आने का प्रयोजन पूछा। मारीच के इस प्रकार पूछने पर रावण ने उससे कहा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

रावण का मारीच से सीता अपहरण में सहायता मांगना

तात मारीच! मैं जो कुछ बता रहा हूँ उसे सुनो। मेरे दुख में तुम्हीं सहारा देनेवाले दिखलायी पड़ रहे हो। तुम जन स्थान को जानते हो जहाँ मेरे भाई खर दूषण बहिन सूर्पणखा तथा अनेक मांस भक्षक राक्षस रहा करते थे। वे मेरी ही आज्ञा से वहाँ रहा करते थे और धार्मिक मुनियों को सताया करते थे।

इनमें खर आदि राक्षस नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार करने में कुशल थे। किन्तु राम ने पैदल और मनुष्य होने के बावजूद भी उन भयंकर तेजवाले राक्षसों का विनाश कर दिया। उसके पिता नेकुपितहोकर उसे पत्नी सहित घर से निकाल दिया है। वह शील रहित, क्रूर, तीखे स्वभाव वाला, मूर्ख और लोभी तथा दूसरों के अहित में रहनेवाला बिना किसी बैर विरोध के केवल बल का आश्रय लेकर मेरी बहन का रूप बिगाड़ दिया है। अब उसके बदले में उसकी सुन्दरी पत्नी सीता को जन स्थान से बल पूर्वक हर लाऊँगा। महाबाली राक्षस! इसमें तुम्हें मेरी सहायता करनी है क्योंकि पराक्रम और युद्ध में तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। इसके साथ ही हर तरह का उपाय भी बताने में भी तुम तेज हो। अब तुम्हें क्या करना है उसे भी समझ लो। तुम सोने के बने हुए मृग जैसा रूप धारण करके रजत मय बिन्दुओं से युक्त चितकबरे हो जाओ और राम के आश्रम में सीता के सामने विचरो। तुम्हारे इस विचित्र रूप को देखकर सीता निश्चित रूप से तुम्हें पकड़ने के लिये राम और लक्ष्मण को भेजेगी। जब वे तुम्हें पकड़ने को दूर निकल जायेंगे उस समय मैं सीता का अपहरण कर लूंगा और इससे दुर्बल तथा दुखी हो जाने पर मैं राम को आसानी से मार डालूंगा। रावण की यह बात सुनकर मारीच थर्रा उठा और फिर दुखी होकर रावण से ऐसा वचन बोला जो उन दोनों के लिये हितकर थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को सीता हरण के प्रयास से रोकना

रावण की बात सुनकर मारीच बोला- राजन्! तुम्हारे पास कोई गुप्तचर न होने से तुम श्रीरामचन्द्र के बल और पराक्रम के बारे में बिलकुल नहीं जानते। तात! ऐसा कोई कार्य न करो जिससे श्रीराम कुपित होकर समस्त राक्षसों का विनाश ही कर दें। कहीं ऐसा न हो कि सीता के कारण तुम पर कोई बड़ा संकट आ जाये और इससे तुम्हारे साथ ही लंकापुरी के अन्य राक्षसों का विनाश भी हो जाये। जो राजा दुराचारी एवं पापपूर्ण विचार रखनेवाला होता

Mookerji Sharma Jammu Collection

है वह अपने साथ ही अपने स्वजन और सम्पूर्ण राष्ट्र का भी विनाश कर डालता है। श्रीरामचन्द्र घर से निकाले नहीं गये हैं बल्कि जब उनहोंने देखा कि रानी कैकेयी ने पिता को धोखे में डालकर उनके लिये वनवास का वर मांग लिया है तो वे उनका वचन पूरा करने के लिये स्वयं ही वन को चले आये हैं। तात! श्रीराम क्रूर नहीं हैं। वे मूर्ख या अजितेन्द्रिय भी नहीं हैं। अतः उनके विषय में तुम्हें ऐसी उल्टी बातें कभी नहीं करनी चाहिए। श्रीराम तो वास्तव में धर्म के मूर्तिमान स्वरूप हैं और साधु तथा सत्य पराक्रमी हैं। उनकी पत्नी भी अपने पति के द्वारा अच्छी तरह सुरक्षित है ऐसी दशा में तुम बलपूर्वक उसका अपहरण कैसे कर सकते हो? श्रीराम जलते हुए अग्नि के समान हैं तुम्हें उसे अग्नि में जान बूझ कर प्रवेश नहीं करना चाहिए। साथ ही श्रीराम का धनुष जिनका आश्रय है उस सीता का अपहरण करने की शक्ति तुममें है ही नहीं। श्रीराम की पत्नी सीता प्रज्वलित अग्नि की ज्वाला के समान असह्य है- अतः उनके साथ बलात्कार भी नहीं किया जा सकता। ज़िस दिन युद्ध में तुम्हारे ऊपर श्रीराम की दृष्टि पड़ जाये उस दिन तुम अपने जीवन का अंत समझना चाहिए। इसीलिये यदि तुम अपने राज्य का चिरकाल तक उपभोग करना चाहते हो तो श्रीराम का अपराध न करो। तुम विभीषण आदि मंत्रियों के साथ इस पर विचार करो। फिर क्या करने से तुम्हारा हित होगा इसका निश्चय करके जो उचित जान पड़े सो करो। अब पुनः मैं तुमसे एक बात और कहना चाहता हूँ जों तुम्हारे लिये बहुत उपयुक्त सिद्ध होगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

अड़तीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को श्रीराम की शक्ति के बारे में बताना

मारीच बोला- एक समय की बात है कि मैं अपने बल और पराक्रम म चूर होकर इस पृथ्वी पर चक्कर लगा रहा था। उस समय मुझमें एक हजा हाथियों का बल था। मैं उस समय ऋषियों का मांस खाता हुआ दण्डकारण में विचर रहा था। उन दिनों महात्मा विश्वामित्र को मुझसे बड़ा भय उत्पन्न हो गया। तब वे राजा दशरथ के पास गये और उनसे बोले- राजन्! मुझ

मारीच नामक राक्षस से घोर भय प्राप्त हुआ है। अतः ये श्रीराम मेरे साथ चलें और यज्ञ में मेरी रक्षा करें। उस समय राजा दशरथ ने महामुनि से कहा- मुनिश्रेष्ठ! अभी तो राम की अवस्था बहुत छोटी है और इन्हें अस्त्र-शस्त्र चलाने का पूर्ण अभ्यास भी नहीं है। आप चाहें तो मेरे साथ मेरी सारी सेना को ले चलें। मैं आपकी इच्छानुसार उस शत्रु रूपी निशाचर का बध करूँगा। राजा के ऐसा कहने पर मुनि बोले- उस राक्षस को श्रीराम के सिवा कोई दूसरा नहीं मार सकता। अतएव राम का कल्याण हो। मैं श्रीराम को ही अपने साथ लेकर जाऊँगा। ऐसा कह कर मुनि श्रीराम को लक्ष्मण सहित लेकर अपने आश्रम को गये। वहाँ मुनि ने यज्ञ के लिये दीक्षा ग्रहण करते समय श्रीराम को रक्षा के हेतु अपने पास ही खड़ा कर लिया। उस समय दण्डकारण्य की शोभा बढ़ाते हुए वे बालचन्द्र की तरह दिखलायी पड़ रहे थे। इधर मैं बड़े घमण्ड के साथ उस आश्रम के भीतर घुसा क्योंकि मैं बलवान् तो था ही साथ ही मुझे वरदान भी मिल चुका था कि देवता मुझे मार नहीं सकते। किन्तु भीतर घुसते ही श्रीराम ने सहसा अपना धनुष उठा लिया और बिना किसी भय के उस पर अपनी डोरी चढ़ा दी। उस समय मैं श्रीराम को बालक समझ कर उनकी अवहेलना करता हुआ विश्वामित्र की उस यज्ञ वेदी की ओर दौड़ पड़ा। इतने में श्रीराम ने एक ऐसा तीखा बाण छोड़ा जिससे मैं मरा तो नहीं पर सौ योजन दूर समुद्र में आकर अवश्य गिर पड़ा। तात! अनायास ही महान कर्म करनेवाले श्रीराम उन दिनों बालक ही थे और उन्हें अस्त्र चलाने का पूरा अभ्यास भी नहीं था तो भी उन्होंने मेरे सभी सहायकों को मार गिराया। अतः श्रीराम के साथ विरोध करने पर तुम स्वयं भी आपत्ति में पड़ोगे और अन्य राक्षसों के लिये भी संताप और अनर्थ को बुला लाओगे। मिथिलेश कुमारी सीता के कारण तुम्हें लंकापुरी का विनाश भी अपनी ही आँखों से देखना पड़ेगा। तुम देखोगे कि जिनके अंग दिव्य चन्दन से चर्चित होते थे तथा जो दिव्य आभूषणों से विभूषित रहते थे वे ही तुम्हारे अपराध से मारे जाकर पृथ्वी पर पड़े हैं। तुम निशाचरों की स्त्रियों को असहाय अवस्था में, इधर-उधर भागते हुए भी देखोगे। निश्चय ही तुम लंकापुरी के एक-एक घर को आग की ज्वाला में जलते हुए देखोगे। राजन्! तुम्हारे अंतःपुर में हजारो युवती स्त्रियाँ हैं तुम उन्हीं से अनुराग रक्खो क्योंकि परायी स्त्री के संसर्ग से बढ़कर दूसरा कोई

पाप नहीं। मैं तुम्हारा हितैषी मित्र हूँ यदि तुम मेरे मना करने पर भी सीता का अपहरण करोगे तो तुम्हें निश्चय ही राम के हाथों अपना प्राण गंवाना पड़ेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३८)

उन्तालीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को समझाना

मारीच ने कहा- इस समय तो मैं श्रीराम के हाथों किसी तरह बच गया उसके बाद जो घटना घटी उसे भी सुन लो। एक बार मैं मृग का रूप बनाकर दो अन्य मृग रूपी धारी राक्षसों के साथ दण्डक वन में गया। वहाँ मैं मांस खाता हुआ और तपस्वियों को तिरस्कृत करता हुआ सब ओर विचरण करने लगा। इस प्रकार दण्डकारण्य में विचरता हुआ धर्म को कलंकित करनेवाला मैं मारीच एक दिन महारथी लक्ष्मण के पास जा पहुँचा। उस समय मैं श्रीराम को अपना पुराना बैरी समझकर कुपित हो उनकी ओर दौड़ा और उनके प्रभाव को भूलकर मैं अपने तीखे सींग से उन्हें मार डालना चाहा। अब हम तीनों को अपनी ओर आते हुए देखकर श्रीराम ने हम लोगों पर तीन पैने बाण छोड़े। वे तीनों बाण, जो अत्यंत भयंकर थे, एक साथ हमारी ओर आये। मैं तो राम का पराक्रम पहले से जानता था इसलिये पहले से ही भाग निकला और बच गया किंतु हमारे दोनों साथी मारे गये। उस बार मुझे नया जीवन मिला और तब से मैं समस्त दुष्कर्मों का परित्याग कर योगाभ्यास में तत्पर रहकर तपस्या में लग गया। लेकिन तब से मुझे श्रीराम पाशधारी यमराज के समान दिखायी देते हैं और मैं हजारों राम को सदैव अपने सामने ही खड़ा हुआ देखता हूँ। रावण !उस समय से तो मैं राम से इतना भयभीत हो उठा हूँ कि जितने भी रकारादि नाम, जैसे रत्न और रथ हैं, मेरे मन में भय उत्पन्न कर देते हैं। मैं श्रीराम के प्रभाव को अच्छी तरह जानता हूँ इसलिए तुम चाहो तो उनसे युद्ध करो अथवा क्षमा कर दो किंतु मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने श्रीराम की चर्चा न करो और न तो मैं तुम्हारे इस कार्य में तुम्हारा साथ ही दे सकता हूँ। तुम मेरे बन्धु हो इसलिये मैं तुम्हारे हित को ध्यान में रखकर ऐसी बातें कर रहा हूँ। यदि नहीं मानोगे तो तुम्हें भी बन्धु

बान्धवों सहित प्राणों का परित्याग करना पड़ेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३९)

चालीसवाँ सर्ग

रावण का मारीच को फटकारना

मारीच के ऐसा कहने पर भी रावण ने असकी बात नहीं मानी और मारीच से कठोर वाणी में कहा- नीच मारीच! तुमने जो मुझसे अनाप शनाप बातें कही हैं वे मेरे लिये ऊसर में बोए हुए बीज के समान व्यर्थ है। राम की स्त्री का अपहरण करने से मुझे कोई रोक नहीं सकता। यदि तुमसे इस कार्य में गुण-दोष के बारे में पूछे जाते- तब तुम्हें ऐसी बातें कहनी चाहिए थी। राजा के सामने ऐसी बातें करनी चाहिए जो अनुकूल मधुर और हितकर तथा आदर से युक्त हो। राजा सम्मान का भूखा होता है। उसे आक्षेप पूर्ण भाषा में हितकर वचन भी कहा जाये तो वह उस अपमानपूर्ण वचन को कभी पसंद नहीं कर सकता। निशाचर! तुम्हें मालूम होना चाहिए कि राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण इन पांच देवताओं के स्वरूप धारण किये रहते हैं इसलिये ऐसी अवस्थामें राजा का सदा पूजन ही करना चाहिए। मैं तुम्हारा अतिथि हूँ तो भी तुम दुष्टतावश ऐसी कठोर बातें कर रहे हो। राक्षस! मैं तुझसे यह पूछने नहीं आया कि मेरे लिये क्या उचित है और क्या अनुचित? मैंने तुमसे केवल इस कार्य में सहायता करने के लिये कहा था। तुम मेरे कथनानुसार सुवर्णमय चर्म से युक्त चितकबरे रंग के मृग हो जाओ। उस समय तुम्हारे सारे अंगों में चांदी की सफेद-सफेद बूंदे होनी चाहिए। ऐसा रूप धारण करके तुम राम के आश्रम में सीता के सामने विचरो। तुम्हें देखकर सीता, राम से तुम्हें पकड़ लाने के लिये कहेगी। जब राम तुम्हें पकड़ने के लिये आश्रम से दूर चले जायें तब तुम श्रीराम की बोली के अनुरूप ही, हा सीते! हा लक्ष्मण! कहकर पुकारना। तुम्हारे इस तरह पुकारने से सीता की प्रेरणा से लक्ष्मण अपने भाई के मार्ग का अनुसरण करेंगे। इस प्रकार उन दोनों भाइयों के आश्रम से चले जाने पर मैं सुखपूर्वक सीता को हर ले जाऊँगा। मारीच! इस प्रकार मेरा काम करके तुम्हारी जहाँ इच्छा हो चले जाना। मैं इसके लिये तुम्हें अपना

आधा राज्य भी दे दूंगा। सौम्य! अब इस कार्य की सिद्धि के लिये प्रस्थान करो। मैं रथ पर बैठकर दण्डक वन तक तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगा। फिर राम से युद्ध किये बिना मैं सीता को हरकर तुम्हारे साथ ही लंका को लौट चलूंगा। लेकिन अगर तुम इस काम से इन्कार करोगे तो तुम्हें अभी मार डालूंगा। राम के सामने जाने पर तुम्हारी मृत्यु होगी भी या नहीं इसमें संदेह है किन्तु मेरा विरोध करने पर तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। अब इन बातों को अच्छी तरह समझकर जो उचित जान पड़े वही करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४०)

इकतालीसवाँ सर्ग

मारीच का रावण को पुनः समझाना

रावण की बात सुनकर मारीच पुनः कठोर वाणी में बोला- निशाचर! तुझे किस पापी ने ऐसी सलाह दी है। इससे यह बात साफ हो गयी है कि किसी दुर्बल शत्रु ने तुम्हें किसी बलवान् शत्रु से भिडाकर तुम्हें नष्ट कर देना चाहा है। रावण! ऐसी सलाह देनेवाला निश्चय ही बध के योग्य है। जान पड़ता है कि वह तुम्हें अपने ही कुकर्म से नष्ट होते देखनाचाहता है। अच्छे मंत्रियों को चाहिए कि राजा यदि कुमार्ग पर चले तो वे सब तरह से उसे रोकें। राक्षसराज! धर्म और यश का मूल कारण राजा ही है। अतः सभी अवस्थाओं में राजा की रक्षा होनी चाहिए। जो राजा जनता के प्रतिकूल चलनेवाला और उद्दण्ड होता है ऐसे राजा से राज्य की रक्षा नहीं हो पाती। रावण! प्रतिकूल बर्ताव करनेवाले और तीखे स्वभाव वाले राजा से रक्षित होनेवाली प्रजा उसी तरह वृद्धि को प्राप्त नहीं होती जैसे भेड़ियों या गीदड़ से पालित होनेवाली भेडें। वास्तव में जहाँ तुम जैसे क्रूर, दुबुद्धि और अजितेन्द्रिय राजा होंगे, वहाँ के सब राक्षस अवश्य ही नष्ट हो जायेंगे। अब मुझे भी इस बात का दुख होने लगा है कि शीघ्र ही सेना सहित तुम्हारा भी नाश हो जायेगा। श्रीरामचन्द्र मुझे मारकर तुम्हारा भी शीघ्र ही बध कर डालेंगे। जब दोनों ही तरह से मेरी मृत्यु निश्चित है तब श्रीराम के हाथों मृत्यु पाकर मैं अधिक सुकृत्य हो जाऊँगा। राजन्! यह अच्छी तरह समझ लो कि श्रीराम के

सामने जाकर उनकी दृष्टि पड़ते ही मैं अवश्य मारा जाऊँगा और यदि तुमने सीता का हरण किया तो तुम भी अपने बन्धुओं सहित अपने को मरा ही समझो। इसके साथ ही न तुम्हारी लंकापुरी ही रहने पायेगी न तो वहाँ के निवासी राक्षस ही। रावण! मैं तुम्हारा हितैषी हूँ इसलिये तुम्हें इस बुरे कर्म से रोक रहा हूँ और यह भी समझ लो कि जिनकी आयु समाप्त हो जाती है वे मरणासन्न पुरुष अपने हितैषियों की कही हुई हितकर बातें स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालीसवाँ सर्ग

मारीच का सुवर्णमय मृग का रूप धारण कर श्रीराम के आश्रम पर जाना

रावण से ऐसी बातें कह कर मारीच दुखी मन से बोला- चलो चलें। किन्तु मेरे बध के लिये जिनका हथियार सदा उठा रहता है उन श्रीरामचन्द्र का सामना करने से मेरे जीवन का अंत निश्चित है। श्रीरामचन्द्र जी से पराक्रम दिखाकर कोई जीवित नहीं रह सकता इसलिये तुम्हारा उनसे भिड़ने की बात सोचनी व्यर्थ है। लेकिन जब तुम इस प्रकार की दुष्टता पर उतारू हो ही गये हो तो लो मैं चलता हूँ। मारीच की इस बात को सुनकर रावण अत्यंत प्रसन्न होकर बोला- यह रत्नों से सजा हुआ मेरा आकाशगामी रथ तैयार है इसमें पिशाचों के मुखवाले गधे जुते हैं इस पर तुम जल्दी से मेरे साथ बैठ जाओ। तुम सीता के मन में अपने लिये लोभ उत्पन्न कर देना। उसे लुभाकर तुम जहाँ चाहो चले जाओ। फिर आश्रम सूना हो जाने पर मैं सीता को जबर्दस्ती उठा ले जाऊँगा। तब मारीच इसके लिये तैयार होकर शीघ्र ही उसके साथ दण्डकारण्य में जा पहुंचा। वहाँ श्रीराम के आश्रम के पास पहुँचकर रावण ने मारीच का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा- सखे! यह राम का आश्रम दिखायी दे रहा है अब तुम शीघ्र वह काम करो जिसके लिये हम यहाँ आये हैं। मारीच ने यह सुनते ही तुरन्त मृग का रूप धारण कर श्रीराम के आश्रम के द्वार पर विचरने लगा। उस समय वह देखने में बड़ा अद्भुत लग

Mookerji s[illegible] Jammu Collection

रहा था। उसके सींगों के ऊपरी भाग इन्द्रजीत नामक श्रेष्ठ मणि के बने हुए जान पड़ते थे, मुख मण्डल पर सफेद और काले रंग की बूंदे थी। मुख का रंग कमल के समान था। उसके कान नील कमल की तरह थे। पार्श्व भाग महुए के फूल के श्वेत रंग जैसे थे। शरीर का सुनहरा रंग कमल के केशर की भांति सुशोभित था। उसके खुर वैदूर्यमणि के समान और पूंछ इन्द्र धनुष के रंग की थी। उसके देह की कान्ति मनोहर थी। वह रत्नमयी बिन्दुओं से सुशोभित दिखायी देता था। अब सीता को लुभाने के लिये वह निशाचर श्रीराम के आश्रम को प्रकाशित करता हुआ और उत्तम घासों को चरता हुआ विचरने लगा। वह श्रेष्ठ मृग कुछ दूर जाकर फिर लौट आता था। उस समय मृग रूपधारी राक्षस के मन में केवल यह अभिलाषा थी कि किसी तरह सीता की दृष्टि मुझ पर पड़ जाये। उस वन में विचरने वाले जो दूसरे मृग थे वे सब उसे देखकर पास आते और उसे सूंघ कर भाग जाते थे। अकस्मात उसी समय मदभरे सुन्दर नेत्रोंवाली विदेह नंदिनी सीता जो फूल चुनने में लगी थी वृक्षों को लांघती हुई उधर आ निकली। अब परम सुन्दरी सीता की दृष्टि उस रत्नमय मृग की ओर पड़ी जिसका अंग प्रत्यंग मुक्तामणियों से विचित्र सा जान पड़ रहाथा। उसके दांत और ओठ बड़े सुन्दर थे तथा शरीर के रोंए चांदी एवं ताँबे के धातुओं के जान पड़ते थे। अब उस पर नजर पड़ते ही सीता जी की आँखें आंश्चर्य से खिल उठीं। सीता ने वैसा मृग पहले कभी नहीं देखा था। वह नाना प्रकार के रत्नों का ही बना जान पड़ता था। उसे देखकर सीता जी विस्मय से भर उठीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैंतालीसवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम को उस मृग को लाने के लिये प्रेरित करना तथा श्रीराम का मृग मारने हेतु जाना

तदनन्तर उस मृग को देखकर सीता अत्यंत प्रसन्न हो उठीं और अपने पति और देवर लक्ष्मण को हथियार लेकर आने के लिये पुकारने लगीं। विदेह कुमारी सीता के द्वारा पुकारे जाने पर श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ आये और

उन लोगों ने भी उस मृग को देखा। लेकिन उस मृग को देखते ही लक्ष्मण ने संदेह प्रकट करते हुए श्रीराम से कहा- भैया ! मुझे तो लगता है इस मृग के रूप में वह मारीच नामक राक्षस ही आया है। इसने पहले भी कपट रूप धारण कर वन में शिकार खेलने आये हुए कितने ही नरेशों का बध किया है रघुनंदन ! वह अनेक प्रकार की माया जानता है और वही इस बार भी प्रकाशमान मृग के रूप में परिणित हो गया है। वास्तविकता यह है कि इस भूतल पर कहीं भी ऐसा विचित्र रत्नमय मृग नहीं है। लेकिन लक्ष्मण की बात सुनते ही सीता ने उन्हें रोकते हुए कहा आर्य पुत्र ! यह बड़ा सुन्दर मृग है। इसे आप अवश्य ले आइये यह हमारे मन बहलाव के लिये रहेगा। इसका रूप अद्‌भुत है। इसकी शोभा अवर्णनीय है तथा इसकी बोली भी बड़ी सुन्दर है। यह मृग मेरे मन को बुरी तरह मोह रहा है। अगर यह मृग जीते जी हमारे पकड़ में आ जाये तो अयोध्या वापस लौटने पर यह हमारे अन्तःपुर की शोभा बढ़ायेगा। पुरुष सिंह यदि यह मृग जीते जी पकड़ में न आ सके तो इसका चमड़ा ही बड़ा सुन्दर होगा। घास फूस की बनी चटाई बिछाकर मैं इस पर आपके साथ बैठना चाहती हूँ। यद्यपि स्वार्थ के लिये पति को ऐसे कामों में लगाना उचित नहीं फिर भी इस जन्तु ने मेरे मन में विस्मय उत्पन्न कर दिया है। उस सुन्दर मृग को देखकर श्रीरामचन्द्र का मन भी विस्मित हो उठा। अब उन्होंने भी सीता की बातों से प्रेरित होकर लक्ष्मण से कहा-लक्ष्मण! देखो तो सही यह मृग कितना सुन्दर है। अपने इस रूप के कारण आज वह बच नहीं सकेगा मेरी समझ में इन्द्र के नन्दन वन में भी ऐसा सुन्दर मृग न होगा। इसकी टेढ़ी और सीधी रोमावलियां मृग के शरीर का आश्रय ले सुनहरी बिन्दुओं से विचित्र हो बड़ी शोभा पा रही है। नाना प्रकार के रत्नों से विभूषित इसके सुनहरी प्रभा वाले दिव्य रूप को देखकर किसके मन में विस्मयं न होगा। लक्ष्मण ! राजा लोग बड़े-बड़े वनों में मृगया खेलते समय हाथ में धनुष बाण लेकर मृगों को मारते हैं? मृगया के उद्योग से ही राजा लोग विशाल वन में धन का संग्रह करते हैं और कोश की वृद्धि करने वाला वन्य धन मनुष्यों के लिये उत्कृष्ट होता है। लक्ष्मण ! अर्थ की इच्छा रखने वाला मनुष्य उसके प्रति आकृष्ट हो बिना बिचारे ही चल देता है। इस रत्न स्वरूप श्रेष्ठ मृग के बहुमूल्य सुनहरे चमड़े पर सुन्दरी सीता मेरे साथ बैठेगी। धरती का कोई भी मृग इसके समान

कोमल और सुखद नहीं हो सकते। दिव्य आकाशाचारी मृग और यह स्वर्ण मृग दोनों ही दिव्य है। सौम्य! यदि तुम्हारे कथनानुसार यह राक्षस की मा या है तो भी मुझे इसका बध करना ही चाहिए क्योंकि इस मारीच ने वन में विचरते समय पहले अनेकानेक श्रेष्ठ मुनियों की हत्या की है। अतः इस मृग के रूप में भी इसका बध आवश्यक है। इसी वन में पहले वातापि नामक राक्षस रहता था। जो तपस्वी महात्माओं का तिरस्कार करके कपटपूर्ण उपाय से उनके पेट में पहुंच जाता था और उन्हें नष्ट कर देता था। वह वातापि एक दिन लोभवश तेजस्वी महामुनि अगस्त्य जी के पास पहुंचा और श्राद्धकाल में उनका आहार बन गया। श्राद्ध के अंत में जब वह अपना राक्षस रूप प्रकट करने को इच्छा करने लगा उस समय भगवान् अगस्त्य मुस्कराये और बोले वातापे! तुमने बिना सोचे विचारे इस जीव जगत में बहुत से श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अपने तेज से तिरस्कृत किया है। उसी पाप से अब तुम पच गये। लक्ष्मण! इस मारीच नामक राक्षस को भी वातापि के समान नष्ट हो जाना चाहिए। जैसे वातापि अगस्त्य के द्वारा नष्ट हो गया उसी प्रकार यह मेरे सामने आकर अवश्य मारा जायेगा। तुम अब कवच आदि से सुसज्जित हो जाओ और यहाँ सावधानी के साथ मिथिलेश कुमारी की रक्षा करो। अब मैं इसे मार कर अथवा जीता ही पकड़ लाऊँगा। इस मृग को मारने का प्रधान उद्देश्य है इसके चमड़े को प्राप्त करना। अतः आज यह जीवित रह ही नहीं सकता। लक्ष्मण! तुम आश्रम पर रहकर सीता के साथ सावधान रहना और सावधानी के साथ तब तक इनकी रक्षा करना जब तक मैं इस चितकबरे मृग को मारकर इसका चमड़ा लेकर नहीं लौट आता। बुद्धिमान पक्षी जटायु भी बड़े बलवान और सामर्थ्यशाली हैं उनके साथ ही सदा सावधान रहना।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा मारीच का बध और उसके द्वारा सीता और लक्ष्मण के पुकारने का शब्द

लक्ष्मण को इस तरह आदेश देकर श्रीरामचन्द्रजी सोने की मूठवाली

तलवार कमर में बाँध ली। तत्पश्चात् अपने धनुष को हाथ में ले पीठ पर दो तरकस बाँध कर वहाँ से चल दिये और तब उसी ओर दौड़ पड़े जिस ओर वह मृग था। उस समय श्रीराम ने देखा कि वह अपने रूप से सामने की दिशा को प्रकाशित कर रहा था। उस महान वन में वह पीछे की ओर देखकर आगे को ओर भाग रहा था। कभी छलांगे मारकर बहुत दूर निकल जाता था और कभी इतना निकट आ जाता कि हाथ से पकड़ने का लोभ पैदा कर देता है। कभी वह घबराया और डरा हुआ मालूम होता तो कभी वन के किसी स्थानों में छिपकर अदृश्य हो जाता। इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ वह मृग श्रीराम को आश्रम से बहुत दूर खींच ले गया। उस समय उससे मोहित और विवश होकर श्रीराम कुछ कुपित हो उठे। वह थक कर एक छाया में आश्रय लेकर खड़े हो गये। तब थोड़ी ही देर में वह मृग अन्य मृगों के बीच घिरा हुआ पास ही दिखायी पड़ा। श्रीराम मुझे पकड़ना चाहते हैं यह देखकर वह पुनः भागा और तत्काल भय के मारेअदृश्यहो गया।पुनः वह दूरवर्ती वृक्ष समूह से होकर निकला। इस बार श्रीराम ने उसे मार डालने का निश्चय किया। तब क्रोध में भरे श्रीराम ने एक शत्रु संहारक बाण निकाल कर अपने सुदृढ़ धनुष पर रक्खा और जोर से खीच कर उस मृग को ही लक्ष्य करके छोड़ दिया। तब तो वज्र के समान उस तेजस्वी बाण ने मारीच के शरीर को चींर कर उसके हृदय को छलनी कर दिया। अब उस चोट से आतुर हो वह पृथ्वी पर गिर पड़ा और भयंकर गजर्न करने लगा। तत्पश्चात् उसने श्रीरामचन्द्र जी के ही समान स्वर में, "हा सीते! हा लक्ष्मण! कहकर पुकारा। फिर प्राण त्याग करते समय मारीच ने राक्षस रूप धारण करते हुए अपने शरीर को बहुत बड़ा बना लिया था। अब उस भयंकर राक्षस को भूमि पर पड़ा हुआ देखकर श्रीराम को लक्ष्मण की कही हुई बात याद आ गयी और उन्हें मन ही मन सीता की चिंता होने लगी। वह सोचने लगे- यह राक्षस ऊँचे स्वर से हा लक्ष्मण! हा सीते को पुकार करके मरा है। उसके इस शब्द को सुनकर सीता और लक्ष्मण की क्या दशा हुई होगी? यह सोचते ही श्रीराम के मन में विषाद जनित भय समा गया। अब वे खाने योग्य फल फूल आदि लेकर तत्काल ही पंचवटी में स्थित अपने आश्रम की ओर तीव्र गति से चल पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैंतालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का श्रीराम के पास जाना

उस समय जो आर्तनाद हुआ उसे अपने पति का स्वर ही समझकर श्रीसीता जी लक्ष्मण से बोलीं- भैया! जाओ, श्रीरघुनाथ जी की सुधि लो और उनका समाचार जानो। उन्होंने बड़े आर्त स्वरों से हम लोगों को पुकारा है उसे सुनकर मैं बुरी तरह घबरा उठी हूँ। वे कोई सहारा चाहते हैं तुम जल्दी जाकर उन्हें बचाओ। किन्तु सीता के ऐसा कहने पर भी लक्ष्मण अपने भाई की आज्ञा पर विचार करते हुए नहीं गये। अब लक्ष्मण के इस व्यवहार से सीता अत्यंत क्षुब्ध होकर बोलीं- लक्ष्मण! मैं जानती हूँ कि तुम इस समय मुझ पर अधिकार करने के लिये श्रीराम का विनाश चाहते हो। मैं जानती हूँ कि तुम श्रीरघुनाथ को संकट में ही पड़े रहते हुए देखना चाहते हो। हाय, तुम जिसकी रक्षा के लिये यहाँ आये यदि उन्हीं के प्राण संकट में पड़ गये तो मेरी रक्षा से क्या होगा? अब सीता को भयभीत होते देखकर लक्ष्मण बोले- विदेह नन्दनि! आप विश्वास करें, नाग, असुर, गंधर्व, देवता दानव, तथा राक्षस ये सारे लोग मिलकर भी आपके पति को परास्त नहीं कर सकते। मेरे इस कथन में कोई संशय नहीं है। भगवान् श्रीराम युद्ध में अवध्य हैं अतएव आपको ऐसी बात ही नहीं कहनी चाहिये। श्रीराम की अनुपस्थिति में मैं इस वन के भीतर आपको अकेली नहीं छोड़ सकता। सारे देवता और इन्द्र आदि भी श्रीराम पर एक साथ आक्रमण करें तो वे श्रीराम के बल का वेग नहीं रोक सकते। अतएव आप अपना संताप छोड़कर शान्त हों। वास्तव में आपने जो शब्द सुना था अवश्य ही वह उनका न होकर किसी राक्षस की माया ही थी। आपके रक्षा का भार मुझ पर है इसलिए मैं आपको अकेली छोड़ने में असमर्थ हूँ। देवि! खर दूषण के बध होने से दूसरे निशाचरों ने हमारे साथ बैर बांध लिया है। वे ही मनोरंजन हेतु इस वन में नाना प्रकार की बोलियाँ बोला करते हैं। लेकिन लक्ष्मण की इस बात को सुनकर सीता को बड़ा क्रोध आ गया। वे लक्ष्मण से कहने लगीं- अनार्य! निर्दयी! कुलंगार! मैं तुझे खूब समझती हूँ। तू स्वयं चाहता है कि श्रीराम किसी विपत्ती में फंस जायें। इसलिए ही इस संकट की घड़ी में ऐसी बातें बना रहा है। लक्ष्मण! तेरे मन में ऐसा पाप पूर्ण विचार होना आश्चर्य की बात नहीं। तू वास्तव में दुष्ट है, मुझे प्राप्त करने के लिये ही तू वन में श्रीराम के पीछे-पीछे चला आया है। हो सकता है इसमें भरत का ही कुचक्र हो। लेकिन मैं तेरा या भरत का

मनोरथ पूर्ण होने नहीं दूंगो। मैं श्रीराम को छोड़कर किसो दूसरे पुरुष को कामना ही नहीं कर सकती। लक्ष्मण! अब मैं तुम्हारे सामने ही अपना प्राण त्याग दूंगी। सीता के इस प्रकार रोंगटे खड़े कर देनेवाले वचन को सुनकर लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले- देवि! मैं आपकी बातों का जवाब नहीं दे सकता क्योंकि आप मेरी आराध्या हैं लेकिन ऐसी अनुचित बातें मुँह से निकालना स्त्रियों के लिये आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि संसार में नारियों का स्वभाव बहुधा ऐसा ही देखा गया है। क्योंकि वे प्रायः विषय आदि धर्मों से रहित, चंचल,कठोर और घर में फूट डालनेवाली होती हैं। आपको बातें मेरे कानों में पिघले हुए लोहे के समान लगी है। निश्चय हो आपको बुद्धि मारी गयी है। आप नष्ट होना चाहती हैं। मैं तो इस समय भाई की आज्ञा पालन में ही तत्पर हूँ। मेरे प्रति आशंका करने के कारण अब मैं वहीं जा रहा हूँ जहाँ भैया श्रीराम गये हैं। सुमुखि! इस समय वन के सारे देवता आप को रक्षा करें, क्योंकि मेरे सामने भयंकर अपशकुन प्रकट हो रहे हैं। क्या मैं श्रीराम चन्द्र के साथ लौटकर पुनः आपको सकुशल देख सकूंगा? अब लक्ष्मण को बात सुनकर सोता बोलीं- मैं श्रीराम से बिछुड़ जाने पर गोदावरी नदी में समा जाऊँगो। अथवा गले में फांसी लगा लूँगो। यह भी हो सकता है कि मैं पर्वत शिखर से कूद पड़ूँ या विषपान कर लूँ अथवा जलती अग्नि में प्रवेश कर जाऊँ। लेकिन श्रीरघुनाथ जी के सिवा मैं दूसरे किसी पुरुष को नहीं स्पर्श करूँगो। इतना कहकर सीता शोकमग्न हो अपनी छाती पीटने लगीं। उस समय लक्ष्मण सोता को सान्त्वना देते हुए अपने भाई श्रीराम के पास चल दिये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

रावण का सीता के पास साधु वेष में जाना

लक्ष्मण के वहाँ से चले जाने पर रावण को अच्छा अवसर मिला। अब वह शीघ्र साधु का वेष धारण करके सीता के निकट गया। उस समय वन में भयंकर पापाचारी को आया हुआ देखकर जन स्थान के वृक्षों ने हिलना बंद कर दिया और हवा का वेग रुक गया। तीव्र गति से बहनेवाली गोदावरी नदी भी भय के मारे धीरे-धीरे बहने लगी। अब वैदेही के निकट पहुँचकर रावण वहीं खड़ा हो गया

और रामपत्नी सीता को देखने लगा। वे बहुत सुन्दर थीं। उनके दाँत और ओंठ भी सुन्दर थे। वे पर्णशाला में बैठी हुई शोक के आंसू बहा रही थीं। अब वह पीताम्बर से सुशोभित सीता के सामने गया और बोला- रेशमी पीताम्बर धारण करनेवाली सुन्दरी तुम कौन हो ? तुम्हारे मुख, नेत्र, हाथ और पैर कमल के समान हैं ? शुभानने ! तुम श्री, ह्री कीर्ति, शुभस्वरूपा लक्ष्मी अथवा अप्सरा तो नहीं हो ? अथवा तुम कामदेव की पत्नी रति तो नहीं हो ? तुम्हारे दाँत बराबर हैं। वे सबके सब चिकने और सफेद हैं। तुम्हारी दोनों आँखें बड़ी-बड़ी और निर्मल हैं। कटि का अगला भाग विशाल और मांसल है। सुन्दर मुस्कान, रंचित दंतावलि और मनोहर नेत्रवाली रमणी ! तुम अपने रूप और सौन्दर्य से बरबश मेरे मन को हरे लेती हो। पृथ्वी पर तो ऐसी रूपवती नारी मैंने आज के पहले कभी देखी नहीं थी। कहाँ तुम्हारी यह अवस्था कहाँ यह दुर्गम वन। अतएव मैं सोचता हूँ कि तुम इस वन में रहने योग्य स्त्री नहीं हो और यहाँ से चली जाओ। यहाँ तो भयंकर राक्षसों का निवास है। तुम्हें तो वास्तव में समृद्धिशाली नगरों में रहना चाहिए। तुम्हारे लिये पति भी वही श्रेष्ठ है जिससे तुम्हारा सुखद संयोग हो ।शोभने ! तुम यहाँ आ कैसे गयीं ? यहाँ वानर सिंह चीते, व्याघ्र,मृग, भेड़िये, रीछ तथा गिद्ध आदि पक्षी रहते हैं। तुम इनसे भयभीत नहीं होती ? देवि ! बताओ तुम कौन हो ? किसकी हो और किसलिये इस दण्डकवन में अकेले विचरण करती हो। जब महात्मा बनकर आये हुए रावण ने सीता की इस प्रकार प्रशंसा की तब वैदेही ने अतिथि सत्कार के लिये उपयोगी सभी सामग्रियाँ लेकर उसका पूजन किया। पहले उसे बैठने के लिये आसन दिया तदनन्तर भोजन के लिये निमन्त्रण देते हुए कहा- ब्राह्मण ! भोजन तैयार है ग्रहण कीज़िये। फिर बोली- ब्राह्मण ! यह चटाई है इस पर इच्छानुसार बैठ जाइये। यह पैर धोने का जल है इसे लें और वन में ही उत्पन्न हुआ उत्तम फल-मूल आपके लिये ही तैयार करके रक्खा गया है। आप इसका उपभोग कीजिये। सीता की यह बात सुनकर रावण ने उनकी ओर देखा और उनका हरण करने के लिये मन में दृढ़ निश्चय कर लिया। इधर सीता ने शिकार खेलने के लिये गये हुए अपने पति तथा देवर लक्ष्मण की प्रतीक्षा करने लगीं। लेकिन बहुत देर तक दृष्टि दौड़ाने पर भी उन्हें श्रीराम और लक्ष्मण आते हुए नहीं दिखायी पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४६)

सैंतालीसवाँ सर्ग

रावण का सीता को अपना परिचय देकर उन्हें पटरानी बनाने की इच्छा प्रकट करना

तब रावण के पूछने पर सीता ने अपना परिचय देते हुए स्वयं कहा ब्रह्मन्! मेरा नाम सीता है। मैं महात्मा जनक की पुत्री और अवध नरेश श्रीरामचन्द्र की पत्नी हूँ। मैं विवाह के बाद बारह वर्षों तक महाराज दशरथ के महल में रहकर सभी मनोवांछित फल भोगे हैं। तेरहवें वर्ष जब श्रीराम के राज्याभिषेक का निश्चय किया गया तब मेरी सौतेली सास ने मेरे श्वसुर को वचनवद्ध करके दो वर मांगे। एक के द्वारा मेरे पति के लिये वनवास और दूसरे के द्वारा भरत को राज्याभिषेक। वे हठपूर्वक कहने लगीं- यदि श्रीराम का अभिषेक किया गया तब न तो खाऊँगी, न पीऊँगी और न सोऊँगी और इस तरह अपने जीवन का अंत कर दूँगी। तब मेरे श्वसुर ने याचना की कि तुम सब प्रकार की उत्तम वस्तुएं ले लो लेकिन राम के राज्याभिषेक में विघ्न न डालो। किंतु कैकेयी ने उनकी याचना नहीं मानी। उस समय मेरे पति की अवस्था पच्चीस साल से ऊपर थी। वे संसार में सत्यवादी, सुशील और पवित्र रूप से विख्यात हैं और समस्त प्राणियों के हित में तत्पर रहनेवाले हैं। तब उनके पिता महाराज दशरथ स्वयं काम पीड़ित होकर कैकेयी की इच्छा को पूरी कर दी। फिर जब श्रीराम अभिषेक के लिये पिता के समीप आये, कैकेयी ने तुरन्त उनसे कहा-तुम्हारे पिता ने आज्ञा दी है कि यह निष्कंटक राज्य भरत को दिया जायेगा। तुम्हें तो चौदह वर्षों तक वन में निवास करना होगा। अब तुम वन जाकर पिता को असत्य के बंधन से छुड़ाओ। कैकेयी की बात सुनकर मेरे पति ने तुरन्त बहुत अच्छा कह कर उसे स्वीकार कर लिया और आज तक उस सर्वोत्तम व्रत का पालन कर रहे हैं। श्रीरघुनाथ जी जब मेरे साथ वन में आने लगे उस समय उनके सौतेले भाई लक्ष्मण भी हाथ में धनुष लेकर उनके पीछे हो लिये द्विज श्रेष्ठ इस प्रकार हम तीनों कैकेयी के कारण राज्य से वंचित होकर वन में चले आये और तब से यहाँ अपने बल और विक्रम के भरोसे सर्वत्र विचरण करते रहते हैं। अब आप यहाँ ठहर सकें तो दो घड़ी विश्राम करें तब तक मेरे स्वामी प्रचुर मात्रा में फल-मूल लेकर आते होंगे। ब्राह्मण! कृपा करके

आप भी अपने नाम गोत्र और कुल का ठीक-ठीक परिचय दीजिये। आप अकेले इस दण्डकारण्य में क्यों विचरण करते हैं? तब सीता के इस प्रकार पूछने पर महाबली रावण कठोर शब्दों में बोला- सीते! जिसके नाम से देवता असुर और मनुष्य सहित तीनों लोक थर्रा उठते हैं मैं वही राक्षसों का राजा रावण हूँ। सुन्दरी! तुम्हारे अंगों की शोभा निरखकर अब मेरा मन अपनी स्त्रियों की ओर नहीं जाता। मैं इधर-उधर से बहुत सी स्त्रियों को हर लाया हूँ। मैं चाहता हूँ तुम उन सब की पटरानी बनो। मेरी राजधानी का नाम लंका है। वह पुरी समुद्र के बीच एक पर्वत शिखर पर बसी है। यामिनी! वहाँ रहने पर फिर तुम्हारे मन में इस वनवास की इच्छा नहीं होगी। यदि तुम मेरी भार्या बनोगी तो पांच हजार दासियां सब तुम्हारी सेवा में रहेंगी। अब रावण के ऐसा कहने पर जनकनंदिनी सीता कुपित होकर बोलीं- मेरे पतिदेव इन्द्र के समान पराक्रमी हैं और सागर की तरह गंभीर हैं। मैं तन मन प्राण से उन्हीं का अनुसरण करनेवाली हूँ। उनकी भुजाएं बड़ी-बड़ी और छाती चौड़ी है। वे सिंह के समान पांव बढ़ाते हुए गर्व से चलते हैं। मैं उन्हीं पर अनन्य भक्ति रखनेवाली हूँ। पापी निशाचर! तू सियार है और मैं सिंहनी। तू मुझे पाने की इच्छा रखता है। अरे, जैसे सूर्य की प्रभा पर कोई हाथ नहीं लगा सकता उसी प्रकार तूं भी मुझे नहीं छू सकता। अभागे राक्षस! तू श्रीरघुनाथ जी की प्यारी पत्नी का अपहरण करना चाहता है इससे लगता है तू निश्चय ही मौत के निकट जा पहुंचा है। तू सांप के मुख से उसके दांत तोड़ना चाहता है। तू कालकूट विष पीकर कुशलपूर्वक लौट जाने की इच्छा रखता है तथा आँखों को सूई से पोंछना चाहता है। क्या तू गले में पत्थर बांध कर समुद्र पार करना चाहता है। अथवा सूर्य या चन्द्रमा को अपने दोनों हाथों से हर ले जाने की अभिलाषा करता है। यदि तू मेरे साथ बलात्कार की इच्छा रखता है तो निश्चय ही तेरी इच्छा आग देखकर भी कपड़े से बांधकर ले जाने की हो रही है। ऐसा लगता है मुझे हस्तगत कर तू शूलों की नोक पर चलना चाहता है। जो अन्तर सिंह और सियार में है, जो अन्तर सागर और क्षुद्र नदी में है वही अंतर तुझमें और श्रीराम में है। मोर और जल काक वनवासी हंस और गिद्ध, तथा गरुड़ और कौवे में जो अंतर है वही श्रीराम और तुममें है। जिस समय वे धनुष लेकर खड़े हो जायेंगे उस समय मेरा अपहरण करके भी तू मुझे

पचा नहीं सकेगा ठीक जैसे मक्खी घी खाकर उसे नहीं पचा सकती। इतना कहकर सीता व्यथित होकर कांपने लगीं। अब सीता को प्रभावित करने के लिये रावण अपने बल, नाम तथा कुल का परिचय देने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४७)

अड़तालीसवाँ सर्ग

रावण के द्वारा अपने पराक्रम का वर्णन

सीता के ऐसा कहने पर रावण कठोर वाणी में बोला- सुन्दरी ! मैं कुबेर का सौतेला भाई दशग्रीव रावण हूँ। जैसे प्रजा मौत के भय से डरती है वैसे देवता, पिशाच, गंधर्व, पक्षी आदि सदा मेरा नाम सुनकर भागते हैं। अपने सौतेले भाई कुबेर को द्वन्द्व युद्ध में मैंने परास्त कर उससे उसकी समृद्धि शालिनी पुरी 'लंका' छीन ली है। इसके साथ ही मैंने उसका पुष्पक विमान छीनकर मनमाने ढंग से आकाश में विचरता रहता हूँ। वैदेही ! मेरे क्रोध को देखकर लोग इधर-उधर भाग जाते हैं। मैं जहाँ खड़ा होता हूँ वहाँ की हवा भी उस समय डर कर धीरे- धीरे चलने लगती है। मेरे सामने सूर्य भी चन्द्रमा के समान शीतल हो जाता है। मेरे भ्रमण करने पर न तो वृक्षों के पत्ते हिलते हैं और न नदियों का पानी ही बहता है। मेरी पुरी अमरावती के समान मनोहर है। मेरे महल का दालान फर्श आदि सब सोने के बने हैं। उसके बाहरी दरवाजे वैदूर्यमय हैं। वहाँ मनोवांछित फल देनेवाले वृक्ष सब ओर व्याप्त हैं। वहाँ रहकर तुम मानवी स्त्रियों को भूल जाओगी। वहाँ समस्त भोगों को भोगती हुई तुम राम को भी याद न करोगी। सुन्दरी ! जिसे राजा दशरथ ने वन में भेज दिया है ऐसे राज्य भ्रष्ट और बुद्धिहीन मनुष्य को लेकर तुम क्या करोगी। यह राक्षसों का स्वामी स्वयं तुम्हारे पास आया है। उसे ठुकराना ठीक नहीं। सुन्दरी ! राम तो मेरे एक अंगुलि के बराबर ही नहीं। मुझे स्वीकार करने में तुम्हारा सौभाग्य है। अब यह सुनते ही सीता के नेत्र क्रोध से लाल हो उठे और वे कठोर वाणी में बोलीं- अरे, कुबेर जैसे देवता को अपना भाई बताकर तू पाप कर्म में लिप्त होना चाहता है। इन्द्र की पत्नी का अपहरण करके कोई जीवित भी रह सकता है किन्तु सीता का हरण करके कोई कुशल से नहीं रह

सकता।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४८)

उनचासवाँ सर्ग

रावण द्वारा सीता का अपहरण

सीता के इस वचन को सुनकर रावण ने हाथ में हाथ मारकर अपने शरीर को बहुत बड़ा बना लिया। फिर वह सीता से बोला- लगता है तुम पागल हो गयी हो जो मेरी बातों को अनसुनी कर दी है। मैं अपने पराक्रम से आकाश में खड़ा होकर सारी पृथ्वी को उठा ले जा सकता हूँ समुद्र को पी सकता हूँ और चाहूँ तो अपने बाणों से सूर्य को भी व्यथित कर दूँ। मैं इच्छानुसार रूप भी धारण कर सकता हूँ। इतना कह रावण ने तत्काल अपना सौम्य रूप तजकर काल के समान विकराल रूप धारण कर लिया। उस समय रावण के सभी नेत्र लाल हो रहे थे और सोने के आभूषण नील मेघ के समान काला दिखलायी पड़ने लगा। उसका शरीर दशमुख और बीस भुजाओं से संयुक्त हो गया। फिर अपने सहज रूप को धारण कर वह सीता की ओर देखता हुआ बोला- वरारोहे! यदि तुम तीनों लोक में विख्यात पुरुष को अपना पति बनाना चाहती हो तो मेरा आश्रय लो। मैं तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कभी कोई काम न करूँगा। राम जो मनुष्य है उसकी प्रीति त्याग कर मुझसे स्नेह करो। जो राज्य से भ्रष्ट है जिसकी आयु सीमित है उस राम से तुम कैसे अनुराग रखती हो? ऐसा कहते हुए रावण सीता के केशों सहित मस्तक को पकड़ा तथा दाहिना हाथ उनकी दोनों जांघों के नीचे लगाकर उसके द्वारा उन्हें उठा लिया उस समय उस भयंकर राक्षस को देखकर वन के सभी देवता भयभीत होकर भाग निकले। इतने में ही रावण का गधा से जुता हुआ वह रथ वहाँ दिखायी दिया। अब रावण कठोर वचनों से सीता को डांटता हुआ उन्हें तत्काल रथ में बिठा लिया। रावण द्वारा पकड़ी जाने पर सीता "हे राम" कह कर जोर-जोर से पुकारने लगी उनके मन में रावण के लिये जरा भी कामना न थी इसलिये वे रथ पर जोरों से छटपटाने लगीं। लेकिन रावण इसकी कोई परवाहकिये बिना उन्हें आकाश में लेकर-उड़ चला।

उस समय सीता दुःख से आतुर सी होकर विलाप करने लगीं- "हा महाबाहु लक्ष्मण! देखो, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला राक्षस मुझे हर कर लिये जा रहा है किन्तु तुम्हें इसका कोई पता नहीं। हा रघुनन्दन! आपने धर्म के लिये राज्य वैभव सब कुछ छोड़ दिया है। लेकिन आपकी पत्नी को राक्षस अधर्मपूर्वक हरे लिये जा रहा है लेकिन आप देख नहीं पा रहे हैं। आर्यपुत्र! आप तो उद्दण्डों को राह पर लगाने वाले हैं फिर ऐसे पापी रावण को दण्ड क्यों नहीं देते हैं।"रावण तू समझ ले कि तेरे सर पर काल नाच रहा है। इसीलिये तेरी बुद्धि नष्ट हो गयी है और तू पाप कर्म करने लिये उद्यत हो गया। हाय, इस समय कैकेयी का मनोरथ भी सफल हो गया है क्योंकि मैं श्रीराम की पत्नी होते हुये भी एक राक्षस द्वारा हरी जा रही हूँ। गोदावरी को भी मैं प्रणाम करती हूँ। माँ! मेरे हरण की कथा तुम राम को बता देना। वन के देवता भी मेरे स्वामी को इसकी सूचना दे दें। यहाँ के पशु पक्षी भी श्रीरामचन्द्र से यह बता दें। श्रीराम तो परलोक से भी मुझे लौटा ले आ सकते हैं। सीता इस तरह विलाप कर ही रही थीं कि उन्होंने एक वृक्ष पर बैठे हुए गृध्र राज जटायु को देखा। अब उसे देखते ही वे क्रन्दन करने लगीं। आर्य जटाये! देखिये ये पापी मुझे निर्दयतापूर्वक हरे लिये जा रहा है। इसके मन में दुष्टता भरी है फिरभी आप इसे रोक नहीं सकते क्योंकि यह दुस्साहसी है अब आप यह समाचार श्रीराम को ज्यों का त्यों बता दीजियेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

पचासवाँ सर्ग

जटायु का रावण को समझाना

जटायु उस समय सो रहे थे। उसी अवस्था में उन्होंने वह करुण क्रन्दन सुनी तथा आँखें खोलकर उन्होंने सीता तथा रावण को देखा। वे अब वृक्ष पर बैठे ही बैठे रावण को लक्ष्य करके बोले- रावण! मैं सनातन धर्मप्रेमी गृध्रराज जटायु हूँ। भैया! इस समय मेरे सामने ही तुम्हें ऐसा घृणित कर्म नहीं करना चाहिए। इनके पति राम तो सब लोगों के हित में संलग्न रहनेवाले हैं। ये देवी सीता तो उनकी पत्नी हैं जिन्हें तुम हरकर लिये जा रहे हो। रावण! राजा जैसे पराये पुरुष से अपनी स्त्री

की रक्षा करता है वैसे उसे दूसरों की स्त्रियों की रक्षा भी करनी चाहिए पुलस्त्य नंदन! बहुत से काम ऐसे होते हैं जिनकी शास्त्रों में चर्चा नहीं होती है किन्तु उसे वे राजा की देखा-देखी करने लगते हैं। राक्षसराज! जब तुम्हारा स्वभाव इतना पापपूर्ण है तब तुम्हें यह ऐश्वर्य कैसे प्राप्त हो गया। जब महाबली राम तुम्हारे राज्य अथवा नगर में कोई अपराध नहीं करते तब तुम उनका अपराध कैसे कर रहे हो? यदि सूर्पणखा का बदला लेने के लिए चढ़कर आये खर को उन्होंने बध किया तो बताओ राम का इसमें क्या अपराध है जिससे तुम उनकी पत्नी को हर ले जाना चाहते हो। रावण! अब तुम सीता को छोड़ दो अथवा श्रीरामचंद्र अग्नि के समान भयंकर दृष्टि से तुम्हें जलाकर भस्म कर डालेंगे। तुमने अपने गले में मौत की रस्सी लटका ली है। क्या तुम इतना भी नहीं समझ रहे हो? सौम्य! पुरुष को उतना ही श्रम करना चाहिए जिससे वह शिथिल न हो उतना ही भोजन करना चाहिए जो पेट में जाकर पच जाये। जिससे न धर्म की वृद्धि हो न कीर्ति बढ़े उल्टे खेद हो उस कार्य को कदापित न करना चाहिए। यद्यपि मेरी अवस्था साठ हजार वर्ष की हो गयी-और मेरे पास युद्ध का कोई साधन नहीं फिर भी तुम सीता को लेकर कुशलतापूर्वक नहीं ज़ा सकोगे। रावण अब यदि तुम अपने को शूरवीर समझते हो तो मेरे साथ युद्ध करो। फिर जैसे पहले खर मारा गया है वैसे ही तुम भी मेरे द्वारा मारे जाकर सदा के लिए युद्ध में सो जाओगे। जिन्होंने युद्ध में अनेक दानवों का बध किया है वे ही श्रीराम युद्ध में तुम्हारा भी विनाश करेंगे। इसमें संशय नहीं। लेकिन इस समय शुभ लक्षणा सीता को तुम मेरे जीते जी नहीं ले जा पाओगे। मुझे प्राण देकर भी इस काम को करना होगा। दशमुख थोड़ी देर ठहरो फिर देखो जैसे डंठल से फल गिरता है वैसे ही मैं तुझे रथ से गिराये देता हूं। आज तुम्हें भलीभांति भेंट पूजा दूंगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

जटायु एवं रावण का घोर युद्ध

जटायु के इतना कहने पर रावण क्रोध से आँखें लाल किये हुए पक्षिराज

की ओर दौड़ा। फिर तो उन दोनों का एक दूसरे पर भयंकर प्रहार होने लगा। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे आकाश में वायु से उड़ाये गये दो मेघखण्ड आपस में टकरा गये हों। रावण ने महाबली जटायु पर नालीक नारांच तथा तीखे अग्रभाग वाले विकर्णी नामक महाभयंकर अस्त्रों की वर्षा आरम्भ कर दी। जटायु ने रावण के उन अस्त्रों का आघात सह लिया। साथ ही गृध्रराज जटायु ने अपने तीखे नखवाले पंजों से मार-मार कर रावण के शरीर में बहुत से घाव कर दिये। तब रावण ने क्रोध में आकर शत्रु को मार डालने की इच्छा से दस बाण हाथ में लिये जो काल दण्ड के समान भयंकर थे। उन बाणों ने गृध्र राज के शरीर को क्षत-विक्षत कर दिया। किन्तु जटायु ने भी उसकी परवा न करके राक्षस पर टूट पड़े और रावण के धनुष को अपने दोनों पैरों से मारकर तोड़ दिया तब रावण ने क्रोध में भरकर सैकड़ों हजारों बाणों का जाल सातान दिया। लेकिन महातेजस्वी जटायु ने अपने पंजों से ही उन बाणों को उड़ा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने पिशाचके से मुखवाले उन वेगशाली गधों को भी मार डाला। तदनन्तर इच्छानुसार चलनेवाले रथ को भी उन्होंने तोड़-मोड़ दिया और बड़े वेग से चोंच मार कर रावण के सारथि का विशाल मस्तक भी धड़ से अलग कर दिया। इस प्रकार धनुष, रथ, घोड़ा और सारथि के नष्ट हो जाने पर रावण सीता को गोद में लिये पृथ्वी पर गिरपड़ा। रावण को धरती पर पड़ा देखकर सभी गृध्रराज की प्रशंसा करते हुए "साधु-साधु" कहने लगे। किन्तु पक्षी राज को थका हुआ देखकर रावण मैथिली को लिये हुए फिर आकाश में उड़ चला। उस समय रावण के पास एक तलवार ही शेष रह गयी थी। अब जटायु भी रावण के पास उड़ते हुए पहुँचे और बोले- मूर्ख रावण! लगता है श्रीराम की धर्म पत्नी सीता को तुम अवश्य राक्षसों के बध के लिये ही लिये जा रहे हो। तुम निश्चय ही अनजाने में विषपान कर रहे हो। जैसे जल में उत्पन्न होने वाली मछली-मांस युक्त पक्षी को अपने ही बध के लिये निगल जाता है वैसे ही तुम अपने मौत के लिये ही सीता का अपहरण कर रहे हो। राम तेजस्वी वीर हैं। तुम्हारे द्वारा किये गये इस अपमान को वे कभी क्षमा नहीं करेंगे। तुमने कायरों जैसा कार्य किया है इसलिये तुम्हें भी पृथ्वी पर उसी तरह सोना है जैसे तुम्हारा भाई खर सोया था। इस तरह उसे समझाते हुए पराक्रमी जटायु राक्षस दशग्रीव की पीठ पर बड़े वेग से जा बैठे और उसे

पकड़कर अपने तीखे नखों द्वारा उसे चारों ओर से ऐसे चीरने लगे जैसे कोई महावत किसी दुष्ट हाथी पर सवार होकर उसे अंकुश से छेद रहा हो। नख चोंच और पंख ये ही जटायु के हथियार थे। जब गृध्रराज ने रावण को बार-बार चोट पहुँचाया तब उसके ओंठ क्रोध से फड़कने लगे। अब वह सीता को बायीं गोद में लेकर जटायु पर तमाचे का प्रहार करने लगा। लेकिन उस वार को बचाकर जटायु ने अपनी चोंच मार-मार कर रावण की दसों बायीं भुजा उखाड़ डाली। किन्तु उन बाहों के कट जाने पर सहसा उसकी नयी भुजायें उत्पन्न हो गयीं। तब रावण ने सीता को छोड़कर गृध्रराज को लातों और मुक्कों से मारना शुरू किया। उस समय जटायु और रावण में दो घड़ी तक घोर संग्राम होता रहा। तत्पश्चात् रावण ने तलवार निकाली और जटायु के दोनों पंख, पैर तथा पार्श्व भाग काट डाले। सहसा पंख कट जाने से जटायु पृथ्वी पर गिर पड़े। उन्हें इस तरह खून से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिरते देखकर सीता दुख से व्याकुल हो उनकी ओर दौड़ीं। वे बड़े पराक्रमी थे तो भी उस समय बुझे हुए दावानल के समान दिखलायी पड़ रहे थे। अब उस जटायु को पकड़ कर सीता पुनः उस समय वहाँ रोने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५१)

बावनवाँ सर्ग

रावण द्वारा सीता का अपहरण

रावण द्वारा मारे गये जटायु को देखकर सीता अत्यंत दुखी होकर विलाप करने लगीं-श्रीराम! मेरे अपहरण की सूचना देने के लिये निश्चय ही ये मृग और पक्षी शुभ सूचक मार्ग से दौड़ रहे हैं। लेकिन उनके द्वारा बताये जाने पर भी आप इस संकट को नहीं जान सकेंगे। हा राम! मेरा भी कितना दुर्भाग्य है कि जो पक्षिराज मुझे बचाने आये वे भी निशाचर द्वारा मारे जाकर पृथ्वी पर पड़े हैं। हे राम! हे लक्ष्मण! अब आप ही मेरी रक्षा करें। वे इस तरह अनाथ की भाँति विलाप कर ही रही थीं कि उसी अवस्था में राक्षस राज रावण उन विदेह कुमारी सीता की ओर दौड़ा। अब सीता बारम्बार बड़े-बड़े वृक्षों से लिपट जातीं और कहती मुझे इस संकट से छुड़ाओ। इतने में

निशाचर राज उनके पास पहुँचा और उनके केश पकड़ लिये। सीता का इस प्रकार तिरस्कार होने पर समस्त जगत् में अंधकार छा गया। वायु की गति रुक गयी और सूर्य की प्रभा भी क्षीण हो गयी। उस समय दण्डकारण्य में निवास करनेवाले सभी महर्षि भी मन ही मन व्यथित हो उठे। लेकिन रावण का विनाश निकट आ गया यह सोचकर उन्हें प्रसन्नता भी हुई। इधर रावण सीता को उसी तरह विलाप करती हुई अवस्था में पकड़ कर आकाश मार्ग से चल दिया। उस समय सीता का सारा अंग स्वर्णाभूषणों से विभूषित था साथ ही उनहोंने पीले रंग की रेशमी साड़ी भी पहन रखी थी इसलिये उस समय वे सुदाम पर्वत से निकली हुई विद्युत के समान प्रकाशित हो रही थीं। आकाश में रावण के अंक में स्थित सीता का निर्मल मुख श्रीराम के बिना नाल रहित कमल की भांति शोभित नहीं होता था। उस समय सीता का मुख आकाश में रावण के अंक में ऐसा जान पड़ता था मानो मेघों की काली घटा का भेदन करके चन्द्रमा उदित हुआ है। उनकी सुघड़ नासिका और ताँबे जैसा लाल मनोहर ओंठ आकाश में सुनहरी प्रभा बिखेर रहा था। किन्तु उस समय वह मनोहारी मुख दिन में उगे हुए चन्द्रमा के समान शोभाहीन प्रतीत हो रहा था। मिथिलेश कुमारी सीता का सुवर्ण के समान दीप्तिमान अंग रावण के काले शरीर के साथ ऐसा जान पड़ता था मानो काले हाथी को सोने की करधनी पहना दी गयी हो। स्वर्ण का आभूषण धारण किये हुए सीता रावण की पीठ पर वैसी ही शोभा पा रही थी जैसे मेघमाला का आश्रयलेकर बिजली चमक रही हो। हर कर ले जायी हुई सीता के सिर से उनके केशों के गुँथे हुए फूल बिखर कर सब ओर पृथ्वी पर गिर रहे थे। विदेह नंदिनी का रत्नजटित नूपुर उनके एक चरण से खिसक कर विद्युत मण्डल के समान पृथ्वी पर गिर पड़ा। अरुण वर्ण वाली सीता उस काले कलूटे राक्षसराज को उसी प्रकार सुशोभित कर रही थी जैसे हाथी को कसनेवाला सुनहरा रस्सा उसकी शोभा बढ़ाता है। आकाश मार्ग से जाते समय जानकी के शरीर के सारे आभूषण एक एक करके उसी तरह नीचे गिरने लगे मानो आकाश से तारायें टूट-टूट कर पृथ्वी पर गिर रहे हों। उनका गिरता हुआ उज्ज्वल हार इस तरह लग रहा था जैसे गगन मण्डल से उभरती हुई गंगा। उस समय कोलाहल करते हुए पक्षियों को देखकर ऐसालगरहा था मानों वह सीता से कह रही हों "डरो मत!" उस समय

रावण पर रोष प्रकट करते हुए वन के सारे पशु सीता की परछाईं का अनुसरण करके दौड़ रहे थे। सीता का हरण देखकर सूर्य देव का प्रभा मण्डल पीला पड़ गया। श्रीराम को बार-बार पुकारती हुई भारी दुख में पड़ी हुई सीता को अपनी विलक्षण आँखों से बार-बार देखकर सारे वन देवताओं के अंग थर-थर काँपने लगे। विदेहनंदिनी सीता मधुर स्वर से "हा राम! हा लक्ष्मण!" की पुकार करती हुई बार-बार भूतल की ओर देख रही थीं और उन्हें न देखकर भय से व्यथित हो उठीं और उनके मुख मण्डल की कान्ति फीकी पड़ गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५२)

तिरपनवाँ सर्ग

सीता का रावण को धिक्कारना

रावण को आकाश में उड़ते देख जानकी बहुत भय में पड़ गयी थीं और तब राक्षस राज से बोलीं- ओ नीच रावण! क्या तुझे इस कुकर्म से लज्जा नहीं आती जो तू मुझे असहाय जानकर चुराये लिये जाता है। तू वास्तव में कायर है जो माया द्वारा मृग रूप में उपस्थित हो मेरे स्वामी को आश्रम से दूर हटा दिया था। मेरे श्वसुर के मित्र जटायु को भी तूने मार गिराया है नीच राक्षस! जहाँ कोई रक्षक न हो ऐसे स्थान पर जाकर परायी स्त्री के अपहरण जैसा निन्दित कर्म करके तू लज्जित कैसे नहीं होता। तू अपने को बड़ा शूरवीर मानता है लेकिन संसार तेरे इस कार्य को क्रूरता पूर्ण और पाप रूप ही बतायेंगे। तेरे इस चरित्र को संसार में सदा धिक्कार ही प्राप्त होगा। अरे, तू दो घड़ी भी तो ठहर जा- फिर यहाँ से जीवित नहीं लौट सकेगा। उन दोनों राजकुमारों के देख लेने पर तू सेना के साथ भी हो तो भी जीवित नहीं रह सकता। जैसे आकाश का पक्षी वन के दावानल को नहीं सह सकता। इसी तरह तू मेरे स्वामी और उनके भाई के बाणों को नहीं सह सकेगा। मेरे तिरस्कार से कुपित होकर वे दोनों तेरे विनाश का उपाय सोचेंगे और तेरा सारा अभिप्राय व्यर्थ कर देंगे। ऐसा लगता है तू अपने कल्याण के बारे में नहीं सोचता। निशाचर राज! अब मैं तेरे गले में पड़ी हुई काल की फाँसी हूँ। अब तू निश्चय ही रक्त का स्रोत

बहानेवाली भयंकर वैतरणी नदी का दर्शन कर रहा होगा। तू महात्मा श्रीराम का ऐसा भयंकर अपराध करके विषपान किये हुए मनुष्य की भाँति अधिक काल तक जीवन धारण नहीं कर सकेगा। क्योंकि उन्होंने तो अपने भाई लक्ष्मण की सहायता लिये बिना पलक मारते ही चौदह हजार राक्षसों का विनाश कर डाला है। फिर रघुनाथ जी अपने प्यारी पत्नी का अपहरण करनेवाले तेरे जैसे पापी को काल के गाल में क्यों नहीं भेजेंगे। फिर रावण के चंगुल में फँसी सीता शोक से व्याकुल हो तरह-तरह के कठोर वचन सुनाकर करुण स्वर में विलाप करती हुई अपने को छुटकारा के लिये नाना प्रकार की चेष्टा करने लगीं। फिर भी वह पापी निशाचर सीता की चेष्टाओं को व्यर्थ करता हुआ उन्हें हर ले गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

रावण का सीता को लंका के अन्तःपुर में रखना

रावण द्वारा हरी गयी सीता का उस समय अपना कोई सहायक नहीं दिखलायी पड़ रहा था। सहसा उसी समय उन्होंने एक पर्वत के शिखर पर पांच श्रेष्ठ बन्दरों को बैठे देखा। तब सीता ने यह सोचकर कि शायद वे लोग श्रीराम को कुछ समाचार दे सकें अपनी रेशमी चादर उतारी तथा उसमें वस्त्र और आभूषण रखकर उनके बीच में फेंक दिया। रावण घबराहट के कारण सीता के इस कार्य को देख न सका। उधर श्रेष्ठ वानर विलाप करती हुई सीता को एकटक नेत्रों से देखने लगे। तब रावण पम्पा सरोवर को लांघ कर रोती हुई सीता को साथ लिये लंकापुरी की ओर चल दिया। रावण यह नहीं जानता था कि उसने महाविषैली नागिन को ही अपनी गोद में उठा रक्खा है। तत्पश्चात् अनेक पर्वत और नदियों को पार करता हुआ उसने समुद्र को भी पार किया। पर उस समय समुद्र को बड़ी घबराहट होने लगी थी। उसमें उठती हुई लहरें शान्त हो गयीं और उसमें रहनेवाली मछलियों और सर्पों की गति रुक गयी। उस समय आकाश में विचरनेवाले मारण और सिद्धों ने कहा

अब रावण का अंतकाल निकट आ पहुँचा। तत्पश्चात् रावण सीता को लिये हुए लंकापुरी में जा पहुँचा और वहाँ सीता को ले जाकर अंतःपुर में रख दिया। तदनन्तर उसने भयंकर आकार वाली पिशाचिनों को बुलाकर कहा- कोई भी स्त्री या पुरुष मेरी आज्ञा के बिना सीता को देखने न पाये। वैसे सीता को मणि सुवर्ण, वस्त्र आदि की जब भी इच्छा हो इन्हें दिया जाये। तुममें से जो भी सीता से कोई भी अप्रिय बात कहेगी समझ लो उसे जिंदगी प्यारी नहीं। फिर आगे क्या करना है यह सोचता हुआ रावण अंतःपुर से बाहर निकला और आठ मांसाहारी राक्षसों को बुलाकर कहने लगा- वीरों! तुम लोग अत्यंत पराक्रमी हो। अब तुम लोग अस्त्र-शस्त्र को लेकर शीघ्र जन स्थान को, जहाँ पहले खर रहता था जाओ और उसे आबाद करो।खर तथा दूषण युद्ध में राम के द्वारा मारे गये हैं इसलिये मेरा राम से बड़ा भयंकर बैर ठन गया है। मैं उसे संग्राम में मारे बिना चैन से नहीं सो सकूंगा। वहाँ जाकर तुम लोग रामचन्द्र का समाचार जानो कि वे कब क्या कर रहे हैं? और फिर उसकी सूचना मेरे पास भेज दिया करो। तुम सब वहाँ सावधानी से रहकर राम के बध का प्रयत्न करते रहना। मुझे तुम लोगों के बल और पराक्रम का परिचय कई बार मिल चुका है इसीलिये तुम्हीं लोगों को वहाँ भेजने का निश्चय किया है। रावण की यह बात सुनकर वे राक्षस अदृश्य हो जन स्थान की ओर चल पड़े। उस समय रावण राम से बैर ठानकर मन ही मन बड़ा आनन्दित होने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५४)

पचपनवाँ सर्ग

रावण का सीता को भार्या बन जाने के लिये समझाना

इस प्रकार आठ महाबली राक्षसों को जन स्थान में जाने की आज्ञा देकर रावण ने अपने को कृतकृत्य माना। लेकिन वह सीता का स्मरण कर बार-बार काम बाणों से पीड़ित हो रहा था। अतः उसने बड़ी उतावली के साथ अंतःपुर में प्रवेश कर रोती हुई सीता को देखा। वह उस समय मृगों के समूह से बिछड़कर कुत्तों से घिरी हुई हिरणी के समान दिखलायी पड़ रही थीं। अब रावण उनके निकट पहुँचकर उन्हें जबर्दस्ती अपने देव गृह के समान सुन्दर

भवन का दर्शन कराया। वहसात्त मंजिले मकानों से भरा हुआ था। जिसमें सहस्त्रों स्त्रियाँ थीं। उसमें नाना प्रकार के सुन्दर पक्षी कलरव करते थे। उसमें मनोहर खंभे लगे थे और वह हर तरह रत्नों से जड़ा हुआ था। वहाँ रावण सीता को लेकर सोने की बनी हुई विचित्र सीढ़ी पर चढ़ा। उस महल के जो भूभाग थे वे सुर्खी चूना के पक्के बने हुए थे और उनमें मणियाँ जड़ी थीं। वे सब के सब विचित्र दिखायी देते थे। सीता यह सब देखकर शोक में डूब गयीं। अपना सारा भवन दिखलाकर रावण सीता को लुभाने की इच्छा से इस प्रकार बोला- इन भयंकर कर्म करनेवाले राक्षसों का एक मात्र स्वामी मैं ही हूँ। अब यह सारा राज्य और जीवन सब कुछ तुम्हारे चरणों पर समर्पित है। सीते! मेरा अन्तःपुर बहुत सी सुन्दर भार्याओं से भरा है। तुम मेरी भार्या बनकर सबकी स्वामिनी बनो और इस तरह मुझे पीड़ित व्यक्ति पर कृपा करो। मेरे इस लंका का विस्तार सौ योजन है इसे इन्द्र सहित समस्त देवता भी ध्वस्त नहीं कर सकते। राम तो राज्य से भ्रष्ट,दीन,तपस्वी और पैदल चलने वाले मनुष्य हैं तुम उन्हें लेकर क्या करोगी ? सीते अब तुम मेरे साथ रमण करती हुई राम के दर्शन का विचार छोड़ दो क्योंकि राम यहाँ तक आने का साहस भी नहीं कर सकता। तीनों लोक में इस तरह का कोई पराक्रमी वीर नहीं,इस विशाल राज्य का तुम्हीं पालन करो और हम सबको अपना सेवक बनाकर क्रीड़ा विनोद में मन लगाओ। मिथिलेश कुमारी यह सूर्य के समान चमकने वाला पुष्पक विमान कुबेर का था इसे मैंने बल पूर्वक जीता है तुम इस पर बैठकर मेरे साथ सुखपूर्वक विहार करो। रावण की यह बात सुनकर सीता अपने मुख को आंचल से ढंक कर धीरे-धीरे आंसू बहाने लगीं। इससे उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गयी और वे भगवान राम का ध्यान करने लगीं। अब उन्हें इस अवस्था में देखकर रावण बोला- सीते! पर पुरुष के अंगीकार करने से जो तुम्हें धर्म लोप की आशंका होती है वह व्यर्थ है क्योंकि तुम्हारे साथ जो मेरा स्नेह सम्बंध होगा वह धर्म शास्त्रों द्वारा समर्पित होगा। मैं तुम्हारे चरणों पर मस्तक रखकर तुम्हारा दास बनना चाहता हूँ। इस समय मैं कामाग्नि से पीड़ित हूँ इसलिये मुझ पर कृपा करो। रावण सीता से ऐसी बातें कहकर मानने लगा कि अब वह इसके अधीन हो गयी हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

सीता का राम के प्रति अनुराग दिखलाकर रावण को फटकारना

रावण के इस प्रकार कहने पर तिनके की ओट करके सीता ने कहा- महाराज दशरथ जो धर्म के अचल सेतु के समान थे उनके पुत्र श्रीरामचन्द्र भी अपने धर्मपालन के लिये तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। मेरे आराध्य देवता और पति केवल वे ही हैं। वे शीघ्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ आकर तेरा विनाश कर डालेंगे। यदि तूने उनके सामने मेरा अपहरण किया होता तो तू जनस्थान के युद्ध स्थल में ही मारा जाता। तेरे सारे महाबली राक्षसों का विष राम के सामने पहुँचते ही उतर जायेगा और फिर जैसे गंगा की लहरें अपने कगारों को काट गिराती हैं उसी प्रकार श्रीराम के बाण तेरे शरीर को काट गिरायेंगे। उनसे बैर ठान कर तू किसी प्रकार जीवित नहीं बचेगा। राक्षसराज! यदि श्रीरामचन्द्र अपनी रोष भरी दृष्टि से तुझे देख लें तो तू उसी तरह जल कर खाक हो जायेगा जैसे भगवान शंकर ने कामदेव को भस्म किया था। वे श्रीराम समुद्र को सुखा कर यहाँ तक पहुँचने की शक्ति रखते हैं फिर तुझे मार कर सीता को भी छुड़ा सकते हैं। तू समझ ले कि तेरे प्राण अब चले गये और तेरी लंका विधवा हो गयी। तेरा यह पाप कर्म तुझे भविष्य में सुख नहीं भोगने देगा क्योंकि मेरे स्वामी बाणों की वर्षा कर तेरे शरीर का पराक्रम और उच्छृंखल आचरण को निकाल बाहर करेंगे। जब प्राणियों का विनाशकाल निकट आता है तो वे प्रत्येक कार्य में प्रमाद करने लगते हैं। अधम राक्षस! अब मेरा अपहरण करने के कारण तेरे विनाश की घड़ी निकट आ गयी है। मैं श्रीराम की पत्नी हूँ और दृढ़तापूर्वक पतिव्रत धर्म का पालन करती हूँ इसलिये तू मेरा स्पर्श नहीं कर सकता। मैं इस धरती पर अपने को कलंक देनेवाला कोई कार्य नहीं कर सकती। तदनन्तर रावण से यह कठोर वचन कह कर विदेह नन्दिनी सीता चुप हो गयीं। सीता के कठोर वचन सुनकर रावण भी हतप्रभ हो गया और बोला- मिथिलेश कुमारी। अब मैं तुझे बारह महीने का समय देता हूँ। उस समय तक यदि तुम मेरे पास स्वेच्छा से नहीं आ जाओगी तो मेरे रसोइये सुबह का कलेवा तैयार करने के लिये तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे। फिर सीता से इतना कह कर वह राक्षसियों से बोला- तुम लोग अपना विकराल रूप धारण कर शीघ्र ही सीता का अहंकार दूर करो। फिर

वह दो चार पग चलकर उन राक्षसियों से बोला- तुम लोग सीता को लेकर अशोक बाटिका में जाओ और चारों ओर से घेरकर वहाँ गूढ़ भाव से इसकी रक्षा करो। वहाँ इसे डरा धमका कर या समझा बुझाकर जंगल की हथिनी की भाँति अपने वश में लाने की चेष्टा करो। रावण के इस आदेश को सुनकर सभी राक्षसियाँ सीता को लेकर अशोक बाटिका में चली गयीं। वह बाटिका भाँति-भाँति के फूल फलोंवाले अनेकों वृक्षों से भरी थी तथा हर तरह के मदमत्त पक्षी उसमें कलरव किया करते थे। परन्तु वहाँ पहुँचने पर सीता कीं दशा बाघों के बीच घिरी हुई हरिणी के समान हो रही थी। वे मृगी के समान भयभीत हो क्षण भर के लिये चैन नहीं पाती थीं। वहां वे भय और शोक से पीड़ित हो अपने स्वामी और देवर को याद करती हुई अचेत सी हो गयीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५६)

प्रक्षिप्त सर्ग

ब्रह्मा के आदेश से इन्द्र का लंका में जाकर सीता को दिव्य खीर अर्पित करना

जब सीता का लंका में प्रवेश हो गया तब ब्रह्मा जी इन्द्र से बोले- इन्द्र! राक्षसों के विनाश के लिये रावण ने सीता को लंका में पहुँचा दिया है। इस समय सीता राम के दर्शन से वंचित हो गयी हैं। लंका समुद्र के तट पर बसी है। वहाँ रहने पर श्रीराम को सीता का पता कैसे चलेगा। उधर सीता श्रीराम के न मिलने से निश्चय रूप से अपने प्राणों को त्याग देंगी। ऐसी दशा में हमारे उद्देश्य की पूर्ति को संदेह बना रहेगा। अतः तुम लंकापुरी में जाकर सीता से मिलो और उन्हें उत्तम हविष्य प्रदान करो। ब्रह्मा जी की बात सुनकर इन्द्र तुरन्त लंकापुरी में आये और निद्रा देवी की सहायता से सभी राक्षसों को मोह निद्रा में डाल दिया। इसी बीच इन्द्र अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता के पास गये और बोले- देवि! मैं इन्द्र हूँ और मैं आपके कार्य सिद्धि के लिये श्री रघुनाथ जी की सहायता करूँगा। अतः आप चिंता न करें। श्रीराम! अपनी विशाल सेना के साथ शीघ्र ही समुद्र पार करेंगे। शुभे! मैं इसीलिये तुम्हारे पास हविष्यान्न लेकर आया हूँ इसके खाने से हजारों वर्षों तक तुम्हें भूख और

प्यास न सतायेगी। तब संदेह में पड़ी हुई सीता ने उनसे कहा- मुझे कैसे विश्वास हो कि देवराज इन्द्र यहाँ पधारे हैं। यदि आप साक्षात् देवराज हैं तो अपने लक्षणों को दिखलाइये। तब इन्द्र पृथ्वी का स्पर्श न करके आकाश में निराधार खड़े रहे। उस समय न तो उनकी पलकें गिरती थीं और न तो उनके वस्त्रों पर धूल का स्पर्श होता था। उनके गले का पुष्पहार भी कुम्हलाते नहीं थे। अब उनके देवोचित लक्षण देखकर सीता बहुत प्रसन्न हुई और बोलीं- मेरे लिये जैसे मेरे श्वसुर दशरथ तथा पिता महाराज जनक हैं उसी तरह मैं आपको देखती हूँ। अब मैं आपका दिया हुआ हविष्य अवश्य खाऊँगी यह रघुकुल की वृद्धि करनेवाला हो। फिर सीता ने उस हविष्य खीर को लेकर मन ही मन राम और लक्ष्मण को याद किया और बोलीं- यदि मेरे स्वामी अपने भाई के साथ जीवित हैं तो यह भक्ति भाव से उन्हें समर्पित है। इतना कह कर उन्होंने खीर खाया और भूख प्यास के कष्ट को त्याग दिया। तत्पश्चात् इन्द्र से राम और लक्ष्मण का समाचार पाकर वे अत्यंत प्रसन्न हो उठीं। तब इन्द्र भी सीता से विदा लेकर अपने निवास स्थान को चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में प्रक्षिप्त सर्ग पूरा हुआ।

सत्तावनवाँ सर्ग

श्रीराम का लौटना और मार्ग में अपशकुन देखकर चिंतित होना

इधर मारीच का बध करके श्रीराम तुरन्त आश्रम की ओर लौटे। वे सीता को देखने के लिये जल्दी-जल्दी पैर बढ़ा रहे थे। इसी समय पीछे से आती हुई एक सियारिन जोर से चीत्कार कर उठी। यह सुनकर श्रीराम मन ही मन बोले- यह सियारिन जैसे बोल रही है इससे लगता है कोई अशुभ घटना अवश्य घटनेवाली है। कहीं सीता को कोई राक्षस तो नहीं खा गया। कपटी मृग ने शायद जान बूझकर आर्त स्वर में पुकार की थी ताकि लक्ष्मण उसे सुन सके और सीता को अकेली छोड़कर मुझसे मिलने के लिये चल पड़े। राक्षस सीता का बध कर देना चाहते हैं इसीलिये मारीच कपटी मृग का रूप धारण कर मुझे यहाँ तक हटा ले आया। मरते समय लक्ष्मण को पुकारने में भी उसका यही उद्देश्य छिपा था। क्या हम दोनों भाइयों के आश्रम

से अलग होने पर सीता सकुशल रह सकेगी ? आज और भी बहुत से भयंकर अपशकुन दिखलायी पड़ रहे हैं। इस तरह सोचते हुए वे आश्रम की ओर चल पड़े। उसी समय वन के मृग और पक्षी उन्हें बायें रखते हुए आये और भयंकर बोली बोलने लगे। उन अपशकुनों को देखकर वे तेजी से लौटने लगे। इतने में ही उन्हें सामने से लक्ष्मण आते दिखायी दिये। अब उनसे भेंट होते ही पहले तो श्रीराम ने कठोर स्वर में सीता को अकेली छोड़ने के लिये निंदा की फिर मधुर वाणी में बोले- सौम्य लक्ष्मण ! यह तुमने बहुत बुरा किया जो सीता को अकेली छोड़कर यहाँ तक चले आये क्या वहाँ सीता सकुशल होगी ? वन में विचरने वाले राक्षसों ने उन्हें अवश्य खा लिया होगा। क्योंकि मेरे आसपास बहुत से अपशकुन हो रहे हैं। लक्ष्मण ! देखो न ये मृगों के झुण्ड दाहिनी ओर से आकर कैसा अमंगल सूचित कर रहे हैं। ये गीदड़ तथा पक्षी जिस ढंग से बोल रहे हैं उससे लगता है सीता शायद ही सकुशल हो। वास्तव में वह मृग तो राक्षस ही निकला। लक्ष्मण ! इस समय मेरा मन अत्यंत दीन हो रहा है क्योंकि लगता है कि आश्रम पर सीता नहीं हैं। उसे कोई हर ले गया है अथवा वह मारी गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

मार्ग में अनेक प्रकार की आशंका करते हुए दोनों भाइयों का आश्रम में आना

मार्ग में श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण ! अयोध्या से मेरे पीछे-पीछे आनेवाली सीता इस समय कहाँ है ? सौम्य ! जिसके बिना मैं दो घड़ी भी जीवित नहीं रह सकता तथा जो मेरे प्राणों की सहचरी है वह सीता इस समय कहाँ है ? क्या वह सीता इस समय जीवित होगी। सीता के नष्ट होने पर यदि मैं मर जाऊँगा तो उस समय तुम्हें अयोध्या अकेले ही लौटना पड़ेगा। उस समय क्या माता कैकेयी सफल मनोरथ होगी। क्या मेरी माता कौसल्याकैकेयी की सेवा में विनीत भाव से उपस्थित होगी ? यदि कहीं सीता मर गयी होगी तो मैं भी अपने प्राणों का त्याग कर दूंगा। वह वैदेही भी आज मेरे वियोग से

व्यथित होकर अवश्य ही शोक कर रही होगी। उस राक्षस ने हा लक्ष्मण! कह कर मेरे मन में भय उत्पन्न कर दिया है। तुम भी उस मिलते जुलते स्वर को सुनकर मुझे देखने चले आये। जो भी हो तुमने इस कार्य से राक्षसों को बदला लेने का अवसर दे दिया। मुझे विश्वास है कि उन लोगों ने सीता को मार डाला होगा। मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ? इस प्रकार लक्ष्मण को कोसते हुए श्रीराम आश्रम के निकट पहुँच कर विषाद में डूब गये। उस समय उसे सूना पाकर उन्हें सीता की याद बुरी तरह सताने लगी और उनका मन व्यथा से पीड़ित हो उठा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५८)

उनसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण की बातचीत

उस समय मार्ग में श्रीराम लक्ष्मण से कहने लगे- लक्ष्मण! जब मैंने तुम्हारे विश्वास पर सीता को छोड़ा था तब तुम उसे अकेली छोड़कर क्यों चले आये। अब तुम्हें देखकर मैंने जिस अनिष्ट की आशंका की थी वह सच दिखलायी पड़ने लगी। तुम्हें मार्ग पर आते देखकर ही मेरा हृदय धक्-धक् करने लगा है। श्रीराम के मुख से ऐसी बात सुनकर लक्ष्मण ने दुखी होकर श्रीराम से कहा- भैया! मैं उन्हें स्वयं अपनी इच्छा से छोड़कर नहीं आया हूँ। मुझे तो उनके कठोर वचन से प्रेरित होकर आना पड़ा है। आपके ही समान स्वर में किसी ने जोर से पुकारा लक्ष्मण! मुझे बचाओ। यह वाक्य मिथिलेश कुमारी के कानों में भी पड़ा। इस आर्तनाद को सुनकर मैथिली मुझसे तुरन्त बोली- जाओ, जाओ! उस समय मैंने समझाया, देवि! मैं ऐसे किसी राक्षस को नहीं देखता जो श्रीराम को भय में डाल सके। यह पुकार किसी दूसरे ने की है। शोभने! यह स्वर किसी राक्षस ने ही भय के कारण निकाली है। इससे आपको किंचित व्यथित नहीं होना चाहिए। क्योंकि ऐसी व्यथा को नीच श्रेणी की स्त्रियाँ अपने मन में स्थान देती हैं। संग्राम में तो इन्द्रादि देवता भी श्रीराम को परास्त नहीं कर सकते। किन्तु मेरे ऐसा कहने पर विदेह कुमारी ने मोहवश आँसू बहाते हुए कठोर वाणी में कहा- लक्ष्मण! तेरे मन में मेरे लिये

अत्यंत पापपूर्ण भाव है। तू अपने भाई के मरने पर मुझे पाना चाहता है परन्तु तू ऐसा नहीं कर सकेगा। तभी तो तू श्रीराम के चिल्लाने पर भी उनके पास जाता तक नहीं। विदेह कुमारी के ऐसा कहने पर मैं रोष में भर गया। क्रोध से मेरे ओंठ फड़कने लगे और मैं उसी अवस्था में आश्रम छोड़कर निकल आया। लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम बोले- सौम्य! तुम सीता को अकेली छोड़कर यहाँ चले आये यह बुरा किया। मैं राक्षसों का बध करने में समर्थ हूँ यह जानते हुए भी तुम उत्तेजित होकर आश्रम के बाहर निकल पड़े इससे मैं संतुष्ट नहीं हूँ। तुमने मेरे आदेशों का पालन नहीं किया यह तुम्हारा अन्याय है। जिसने मृग का रूप धारण करके मुझे आश्रम से दूर हटा दिया था। वही राक्षस मेरे बाणों से आहत होने पर मेरे स्वर की नकल करके बहुत दूर तक सुनायी देनेवाले वह दारुण वचन कहा था जिसे सुनकर तुम यहाँ तक चले आये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५९)

साठवाँ सर्ग

श्रीराम का विलाप करते हुए वृक्षों और पशुओं से सीता का पता पूछना

उस समय श्रीराम चलते-चलते लड़खड़ा गये और उनके शरीर में कम्पन होने लगा। वे बार-बार मार्ग के अपशकुनों को देखकर कहने लगे लक्ष्मण! क्या सीता सुकशल होगी? फिर आश्रम के निकट पहुँचकर सूनी कुटिया देख उनका मन व्यथित हो उठा। वे अब बड़े वेग के साथ पर्णशाला का चक्कर लगाने लगे। उस समय वृक्षों की सनसनाहट उन्हें रोता हुआ प्रतीत होता था। सारी कुटी एकदम शोभा हीन दिखलायी पड़ रही थी। कुटिया में सब ओर अस्त व्यस्तता थी। अब उसे सूनी देख श्रीराम विलाप करने लगे- हाय! सीता को किसी ने हर तो नहीं लिया अथवा किसी राक्षस ने उसे खा तो नहीं लिया अथवा फल फूल लाने के लिये वन के भीतर तो नहीं चली गयी। अब श्रीराम ने सीता की खोज के लिये हर तरह के प्रयत्न किये किन्तु कहीं भी उनका पता नहीं चल सका। उस समय वे शोक के समुद्र में डूबे हुए वृक्षों से

पूछने लगे- कदम्ब! मेरी सीता तुम्हारे पुष्प से बहुत प्रेम करती थी क्या तुमने उसे कहीं देखा है। विल्व! मेरी प्रिया के स्तन तुम्हारे ही समान हैं। यदि तुमने उन्हें देखा हो तो बताओ? अर्जुन! तुम्हीं बताओ ना जनक किशोरी जीवित है या नहीं? यह ककुंभ अपने समान अरुवाली सीता को अवश्य जानता होगा। मेरी सीता को तिलक से बहुत प्रेम था इसलिये यह सीता के बारे में अवश्य जानता होगा। अशोक! तुम भी मुझे अपने नाम के अनुसार मुझे शोक हीन कर दो। ताल वृक्ष तुम्हीं मेरे प्रियतमा के बारे में कुछ बताओ। जामुन, कुबेर! तुम्हीं लोग सीता के बारे में कुछ जानते हो तो बताओ। इसी प्रकार आम, कदम्ब, शाल कटहल आदि वृक्षों के पास जाकर श्रीराम ने सीता के बारे में पूछते फिरे। फिर इसी तरह भटकते हुए वे सामने हरिण को देखकर बोले- मृग! अब तुम्हीं बताओ! क्या तुम मृग नयनी सीता के बारे में कुछ जानते हो? श्रेष्ठ गजराज! व्याघ्र! शायद तुम्हीं लोगों ने सीता को कहीं देखा हो। अतः बताओ वह कहाँ है? इसी समय श्रीराम को भ्रम हुआ कि सीता कहीं भाग कर छिप रही है। तब वे बोले- प्रिये, क्यों भाग रही हो। वृक्षों की ओट में छिपकर मुझसे बात क्यों नहीं करती ठहरो, ठहरो। क्या इस तरह करते हुए तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती? यदि मेरे प्रति कुछ भी सौहार्द एवं प्रीति है तो खड़ी हो जाओ। फिर इस भ्रम के दूर होते ही वे बोले- निश्चय ही सीता को राक्षसों ने मार डाला नहीं तो वह मेरी इस तरह उपेक्षा नहीं कर सकती थी। अब स्पष्ट जान पड़ता है कि उसका सुघड़ शरीर राक्षसों का आहार बन गया होगा। उसकी सुन्दर ग्रीवा, कोमल भुजायें, हार, हंसली सब कुछ राक्षसों के पेट में चला गया होगा। वह बहुत से बन्धु बान्धवों के होते हुए भी निशाचरों का ग्रास बन गयी। हा लक्ष्मण क्या तुम मेरी प्रियतमा को देखते हो? हा भद्रे! हा सीता तुम कहाँ चली गयी? इस तरह विलाप करते हुए श्रीराम एक वन से दूसरे वन में दौड़ने लगे। इस तरह अपने प्रियतमा की खोज करते हुए वे पागलों की भाँति क्रियायें करने लगते। यद्यपि वे इस तरह परिश्रम करते हुए बहुत थक गये फिर भी वे निराश नहीं हुए और लगातार ढूँढ़ते रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में साठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६०)

इकसठवाँ सर्ग

श्रीराम की व्याकुलता

श्रीराम ने जब आश्रम के सभी स्थान सूने पाये और चारों ओर ढूंढ़ने पर भी जब सीता का पता नहीं लगा तब वे अपनी भुजाएं उठाकर सीता का नाम ले जोर जोर से पुकारने लगे और लक्ष्मण से बोले- भैया लक्ष्मण! विदेह राजकुमारी कहाँ है? वे किसी देश में चली गयी अथवा कोई राक्षस उन्हें हर लिया है। फिर वह सीता को सम्बोधित करते हुए बोले- सीते! यदि तुम किसी वृक्ष की आड़ में छिपी हुई मुझसे हंसी कर रही हो तो निकल आओ क्योंकि यह उसके लिये उचित समय नहीं है। लक्ष्मण! अब मैं सीता के बिना एक पल भी जीवित नहीं रह सकता। निश्चय ही अब परलोक में महाराज दशरथ मुझे देखेंगे और कहेंगे मैंने तुम्हें वनवास भेजा था लेकिन तुम उस प्रतिज्ञा को पूर्ण किये बिना यहाँ कैसे चले आये? इसलिये तुम्हें धिक्कार है। सीते! जैसे कुटिल मनुष्य को उसकी कीर्ति छोड़कर चली जाती है वैसे तुम मुझे छोड़कर क्यों चली जा रही हो। तुम मुझे ऐसे न छोड़ो नहीं तो मैं तुम्हारे वियोग में प्राण त्याग दूँगा, इतना कहकर श्रीराम अत्यंत व्यथित हो उठे। पर सीता उन्हें कहीं न दिखलायी पड़ी। तब श्रीराम को इस तरह शोक में डूबे हुए देखकर लक्ष्मण ने उनसे कहा- भैया! अब शोक छोड़कर मेरे साथ जानकी को ढूंढ़ने का प्रयत्न करो मिथिलेश कुमारी को वन में घूमना बहुत अच्छा लगता था हो सकता है वे किसी अन्य वन में जा पहुँची हों और हम लोगों को डराने की इच्छा से वहीं कहीं छिप गयी हों। अतः अब जहाँ-जहाँ जानकी के होने की सम्भावना हों उन सभी स्थानों पर चलकर हम उनकी खोज करें। श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण के इस सौहार्दपूर्ण वचनों को सुनकर शान्त हो गये और उनके साथ ही सीता को खोजना आरम्भ किया। अब वे उन दोनों ने सीता की खोज वनों में, पर्वतों पर और सभी दिशाओं में की पर सीता कहीं न मिलीं। तदनन्तर श्रीराम ने कहा- सुमित्रा नन्दन मैं कहीं भी सुन्दरी वैदेही को नहीं देख पाता। तब लक्ष्मण बोले- महामते! जैसे विष्णु ने राजा बलि को बांध कर इस पृथ्वी को प्राप्त कर ली थी उसी प्रकार आप भी मिथिलेश कुमारी सीता को पा जायेंगे। लक्ष्मण की बात सुनकर व्याकुल चित्त श्रीराम ने कहा- लक्ष्मण! मैंने सारा वन खोज डाला है लेकिन मुझे अपने प्राणों से प्रिय वैदेही

कहीं न दिखायी पड़ी। इतना कहकर वे हा प्रिये! कह कर विषाद में डूब गये तब उनके छोटे भाई लक्ष्मण उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वना देने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६१)

बासठवाँ सर्ग

श्रीराम का विलाप

सीता को न देखकर श्रीराम विलाप करते हुए बोले- प्रिये! तुम्हें फूल अधिक पसंद हैं इसलिये लगता है खिली अशोक की शाखाओं में अपने शरीर को छिपाती हो। देवि! मैं केले के तनों के समान कदली दल से ही छिपे तुम्हारे दोनों जांघों को देख रहा हूँ। तुम उन्हें छिपा नहीं सकती। अतः अपने इस परिहास को छोड़ो और शीघ्र आ जाओ क्योंकि तुम्हारी यह पर्णशाला सूनी पड़ी है। फिर भ्रम दूर होने पर लक्ष्मण से बोले- अब यह स्पष्ट हो गया है कि किसी राक्षस ने या तो सीता को हर लिया है या खा लिया है। ये मृग समूह जो आँखों में आँसू भरे हैं इससे भी ऐसा ही लगता है। हा देवि! आज कैकेयी सफल मनोरथ हो जायेगी। यदि में सीता के बिना अयोध्या लौटा तो अन्तःपुर में कैसे प्रवेश करूँगा उस समय संसार मुझे पराक्रम हीन समझेगा। जब मिथिला नरेश जनक मुझसे कुशल पूछने आयेंगे उस समय मैं उनकी ओर कैसे देख सकूंगा। अब मैं भरत द्वारा पालित अयोध्यापुरी में कैसे जाऊँगा क्योंकि जानकी के बिना मुझे स्वर्ग भी सूना दिखलायी पड़ता है। अब तुम अयोध्या जाकर भरत का आलिंगन करके उनसे कह दो कि राम ने तुम्हें सारी पृथ्वी के पालन करने की आज्ञा दे दी है। इसके साथ ही मैं तुम्हें भी आज्ञा देता हूँ कि तुम अयोध्या लौटकर सभी माताओं को प्रणाम करते हुए उनकी आज्ञा के अनुसार चलना और उनके समक्ष सीता के विनाश का सारा समाचार सुना देना। अब सीता के लिये श्रीराम को इस तरह विलाप करते देख लक्ष्मण का मन व्यथित हो उठा और वे बहुत घबरा उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

श्रीराम का विलाप

तत्पश्चात् सीता के विरह में पुनः शोक मग्न होकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! लगता है मेरे जैसा पापी इस संसार में कोई नहीं। निश्चय ही पूर्व जन्म में मैंने अनेक पाप कर्म किये होंगे जिससे मैं बराबर दुःखों में पड़ता जा रहा हूँ। पहले तो मैं राज्य से वंचित हुआ। फिर स्वजनों से वियोग हुआ। तत्पश्चात् पिता जी का स्वर्गवास हुआ, फिर माता से बिछुड़ जाना पड़ा। लक्ष्मण! यह सब बात याद आते ही मेरा दुःख बढ़ जाता है। लेकिन वन में आकर वे सारे क्लेश सीता के समीप रहने से शान्त हो गया था। पर आज सीता के वियोग से वह फिर बढ़ गया है। अवश्य ही मेरी सीता को किसी राक्षस ने आकाश मार्ग से हर लिया होगा। इस समय मेरी प्रिया का वह मुख जो स्निग्ध और मधुर वार्तालप करनेवाला था वैसे ही श्रीहीन हो गया होगा जैसे राहु के मुख में पड़ा चन्द्रमा शोभा हीन हो जाता है। हाय, मेरी उस प्रियतमा का रक्त राक्षसों ने उसके कंठ को फाड़ कर अवश्य पिया होगा और उस समय मेरे न रहने से वह अत्यंत दीन भाव से कुररी की भांति विलाप करती रही होगी। लक्ष्मण! यह गोदावरी नदी सीता को बहुत प्रिय रही है सोचता हूँ शायद वह वहीं गयी हो किन्तु वह अकेली तो कहीं जा ही नहीं सकती। हो सकता है वह पुष्पों से भरे हुए किसी वन में भ्रमण के लिये गयी हो लेकिन यह भी उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि वह अकेली वन में जाने से बहुत डरती थी। हे सूर्य देव! संसार में सभी को सत्य और असत्य कर्मों के तुम्हीं साक्षी हो। अब तुम्हीं बताओ-मेरी प्रिय सीता कहाँ गयी अथवा उसे किसने हर लिया? क्योंकि मैं इसके लिये बहुत व्यथित हूँ। हे वायु देव! संसार की कोई बात तुमसे छिपी नहीं है। बताओ मेरी सीता मर गयी अथवा किसी के द्वारा हर ली गयी। तब इस प्रकार श्रीराम को विलाप करते देख लक्ष्मण ने कहा- आर्य! अब आप शोक छोड़कर धैर्य धारण करें। सीता की खोज के लिये उत्साह बनाये रक्खें क्योंकि उत्साही व्यक्ति संकट पड़ने पर भी कभी दुखी नहीं होते। लेकिन उस समय श्रीराम ने आर्त होकर लक्ष्मण की उचित बातों पर

कोई ध्यान नहीं दिया और पुनः शोक में पड़ गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६३)

चौसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण के द्वारा सीता की खोज

तत्पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! तुम शीघ्र गोदावरी नदी के तट पर जाकर सीता का पता लगाओ। सीता कहीं वहाँ कमल लेने तो नहीं चली गयी। श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर लक्ष्मण भी शीघ्रता से गोदावरी नदी के तट पर गये और पुनः लौट कर श्रीराम से बोले- भैया! मैं गोदावरी के तट पर सीता को नहीं देख पाता। तब श्रीराम स्वयं गोदावरी नदी के किनारे पहुँचकर पूछने लगे- सीता कहाँ है? किन्तु रावण के रूप और कर्म को याद कर गोदावरी को भी शान्त रहते हुए देखकर श्रीराम ने कहा- भ्राता लक्ष्मण! अब मैं राजा जनक के मिलने पर उन्हें क्या उत्तर दूँगा। राज्य से बंचित होने पर भी जो मेरे साथ रहकर सभी दुःखों को दूर किया करती थी वह विदेह कुमारी कहाँ चली गयी? इस समय सीता की चिन्ता में रात भर जागते रहने के कारण मेरी सभी रातें बहुत बड़ी हो जायेगी। अब मैं वन पर्वत सभी स्थानों को बार-बार भ्रमण करूँगा इससे शायद कहीं सीता का पता चल जाये। तदनन्तर वे फिर अपनी ओर ताकते हुए मृगों की ओर देखकर बोले- तुम्हीं लोग बताओ, सीता कहाँ है? तब यह सुनकर वे मृग सहसा उठ खड़े हुए और ऊपर की ओर देखकर आकाश मार्ग की ओर लक्ष्य कराते हुए सब के सब दक्षिण दिशा की ओर मुंह किए दौड़ पड़े और फिर बार-बार श्रीराम की ओर मुड़-मुड़ कर देखते भी रहे। अब लक्ष्मण ने उनकी चेष्टाओं की अच्छी तरह समझते हुए श्रीराम से कहा- भैया! जब आपने पूछा कि सीता कहाँ है? तब ये मृग सहसा उठ खड़े हुए और आकाश तथा दक्षिण की ओर हमारा लक्ष्य कराने लगे। अतः भगवन्! यही अच्छा होगा कि हम लोग उसी दिशा की ओर चलें। सम्भव है इधर जाने से हमें सीता का कोई समाचार मिल जाये अथवा सीता स्वयं कहीं दिखलायी पड़ जाये। तब राम बहुत अच्छा कह कर लक्ष्मण को साथ ले दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े। अब वे बात करते हुए

ऐसे रास्ते पर पहुँचे जहाँ कुछ फूल गिरे हुए दिखलायी देते थे। तभी उन फूलों को देखकर राम ने दुखित होकर कहा- लक्ष्मण! मैं इन फूलों को पहचानता हूँ ये सीता के बालों में गुंथे थे। देखो मेरा कार्य पूरा करने के लिये ही सूर्य वायु और पृथ्वी ने इसे सुरक्षित रक्खा है। फिर लक्ष्मण से ऐसा कहकर श्रीराम ने प्रसवण गिरि से पूछा- पर्वतराज क्या तुमने मेरी बिछुड़ी हुई सीता को देखा है तत्पश्चात् उन्होंने कुपित होकर कहा- पर्वत जब तक मैं तुम्हारे शिखरों को विध्वंस नहीं कर डालता हूँ, इसके पहले तुम मुझे सीता का पता बता दो। तब पर्वत ने सीता के समान दिखता हुआ कुछ चिह्न प्रकट कर दिया लेकिन सीता को साक्षात् उपस्थित न कर सका। यह देख श्रीराम उससे बोले- अरे! अब तू मेरे बाणों से नष्ट ही होना चाहता है। तत्पश्चात् कुछ रुक कर उन्होंने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! यह नदी भी अगर मुझे सीता का पता नहीं बताती तो मैं इसे भी सुखा डालूँगा। इसी समय उन्हें गोदावरी के समीप राक्षस का विशाल पद चिह्न उभरा हुआ दिखायी दिया साथ में भागती हुई सीता का चरण चिह्न वहाँ दिखलायी पड़ा। इसके अलावा वहाँ धनुष और तरकस के अनेक टुकड़े भी इधर-उधर बिखरे हुए दिखलायी पड़े। यह देखकर श्रीराम घबरा उठे और लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण! देखो तो ये सीता के आभूषणों में लगे घुंघरू बिखरे पड़े हैं तथा हार भी टूटे पड़े हैं यहाँ की सारी भूमि ही रक्त बिन्दुओं से रंगी दिखलायी देती है। लगता है यहीं राक्षसों ने सीता के टुकड़े-टुकड़े करके उन्हें मिल बाँट कर खाया होगा। यहाँ सीता के लिये दो राक्षसों का घोर युद्ध भी हुआ है। तभी तो मणियों से जटित यह विशाल धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पड़ा है। साथ ही इधर पिशाचों के समान मुखवाले गधे भी मरे पड़े हैं। ये युद्ध में मारे गये जान पड़ते हैं। पता नहीं ये किसके थे? तथा यह संग्राम में काम आने वाला रथ भी यहाँ टूटा हुआ उलटा पड़ा है। ये भयंकर बाण, जो यहाँ टुकड़े-टुकड़े होकर बिखरे पड़े हैं। किसके हो सकते हैं? लक्ष्मण! इस ओर बाणों से भरे दो तरकस भी नष्ट कर दिये गये हैं। देखो तो यह किसका सारथि मरा पड़ा है। जिसके हाथ में अब भी चाबुक और लगाम मौजूद है। लक्ष्मण! यह अवश्य ही किसी राक्षस का पद चिह्न दिखलायी पड़ता है। अब इन राक्षसों के साथ मेरा बैर सौ गुना बढ़ गया है। यह बैर उनके प्राण लेकर ही शान्त होगा। इस समय सीता की रक्षा धर्म भी नहीं कर रहा है। अब

ऐसा कौन पुरुष होगा जो मेरा कार्य करने में समर्थ हो सकता है। मैं लोक हित में तत्पर हूँ और जीवों पर करुणा करनेवाला हूँ तभी तो देवतागण मुझे निर्बल मानकर सीता की रक्षा नहीं कर सके। वास्तव में यह दयालुता आदि गुण मेरे पास आकर दोष बन गये हैं। अतः इस समय मुझे अपना पुरुषार्थ प्रकट ही करना होगा। लक्ष्मण! अब तुम देखना अब न तो यक्ष, न गंधर्व, न पिशाच, न राक्षस और न कोई मनुष्य ही चैन से रहने पायेगा। लक्ष्मण! तुम देखना इसके थोड़ी देर बाद ही आकाश को मैं अपने द्वारा चलाये हुए बाणों से भर दूँगा और तीन लोक में विचरनेवाले प्राणियों में ही काल की विनाश लीला आरम्भ कर दूँगा। यदि मुझे सीता सकुशल नहीं लौटायी गयी तो देवेश्वरगण भी मेरा पराक्रम देखेंगे। मेरे बाण समूहों से जब आकाश ठसाठस भर जायेगा उस समय कोई प्राणी उड़ नहीं सकेंगे। धनुष से निकले मेरे इन बाणों को रोक पाना किसी के लिये भी सम्भव नहीं हो पायेगा। मैं सीता के लिये उन बाणों के द्वारा जगत् के समस्त पिशाचों और राक्षसों का संहार कर डालूँगा। देवताओं, दानवों, यक्ष और राक्षसों का जो लोक है वे मेरे बाण समूहों से टुकड़े-टुकड़े होकर बारम्बार नीचे गिरेंगे। लक्ष्मण! यदि देवतागण मेरी सीता को लाकर मुझे नहीं देते तो मैं अपने सायकों से इन तीनों लोकों की मर्यादा को नष्ट भ्रष्ट कर दूँगा और सीता के न मिलने तक इस संसार को संतप्त करता रहूँगा। उस समय उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये और वे त्रिपुर का संहार करनेवाले भगवान् शंकर के समान प्रतीत होने लगे। उस समय लक्ष्मण के हाथ से धनुष लेकर श्रीरामचन्द्र ने उसे दृढ़तापूर्वक पकड़ लिया फिर कुपित होकर बोले-लक्ष्मण! जैसे बुढ़ापा या मृत्यु, अथवा काल या विधाता समस्त प्राणियों पर प्रहार करते हैं किन्तु कोई उन्हें रोक नहीं पाता उसी प्रकार मेरे क्रोध से भर जाने पर मेरा कोई भी निवारण नहीं कर सकता। यदि देवता आदि आज मेरी सीता को मुझे नहीं लौटा देते तो मैं देवता, गन्धर्व, नाग और मनुष्यों समेत सारे संसार को उलट दूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६४)

पैंसठवाँ सर्ग

श्रीराम को लक्ष्मण का समझा-बुझा कर शान्त करना

सीता हरण के शोक से पीड़ित जब श्रीराम समस्त लोकों का संहार करने

को उद्यत हुए तब लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर श्रीराम से इस प्रकार कहा- आर्य! अब आप क्रोध के वशीभूत होकर अपने कोमल स्वभाव को न छोड़ें। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी शोभा, सूर्य अपनी प्रभा, वायु अपनी गति और पृथ्वी अपनी क्षमा का त्याग नहीं करते उसी प्रकार आप अपने सर्वोत्तम यश का त्याग न करें। आप किसी एक के अपराध से समस्त लोकों को नष्ट न करें। मैं अब यह जानने की चेष्टा करता हूँ कि यह टूटा हुआ रथ किसका है? अथवा किसने किस उद्देश्य से इस रथ को तोड़ा है, यहाँ के रक्त की बूदों को देखकर लगता है यहाँ कोई भयंकर संग्राम हुआ होगा लेकिन यह संग्राम चिह्न किसी एक ही रथी का है। मैं यहाँ किसी विशाल सेना का पदचिह्न नहीं देख रहा हूँ। अतः एक के अपराध के कारण समस्त लोकों का विनाश न करें। राजन्! वास्तव में जिसने सीता का हरण किया है हमें उसी की खोज करनी चाहिए। आप मेरे साथ धनुष-बाण लेकर बड़े-बड़े ऋषियों की सहायता से उसका पता लगायें और जब तक आपकी पत्नी के अपहरण करनेवाले दुरात्मा का पता नहीं लग जाता तब तक हम अपना प्रयत्न जारी रक्खें। भैया! यदि हमारे शान्तिपूर्ण बर्ताव से देवेश्वर गण आपकी पत्नी का पता नहीं बता देते तब आप अवसर के उपयुक्त जैसा चाहें वैसा कीजियेगा। जब हमारे विनय और न्याय के अनुसार प्रयत्न करने पर भी सीता का पता न मिले तब समस्त लोकों का संहार कर डालें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६५)

छाछठवाँ सर्ग

लक्ष्मण का श्रीराम को समझाना

श्रीराम को फिर अनाथों की तरह विलाप करते देखकर लक्ष्मण ने दो घड़ी तक उन्हें आश्वासन दिया और फिर उनका पैर दबाते हुए बोले-भैया! महाराज दशरथ ने आपको बड़ी तपस्या करने के उपरान्त प्राप्त किया था। यदि अपने ऊपर आये हुए इस कष्ट को आप धैर्य पूर्वक नहीं सहेंगे, तो दूसरा कौन सह सकता है। भैया! आप धीरज रक्खें। आपत्तियाँ तो आग की तरह एक क्षण में स्पर्श करती हुई दूसरे क्षण ही दूर हो जाती हैं। यदि आप ही दुखी

होकर सारे लोकों को जला डालेंगे तो प्रजा फिर किसकी शरण लेगी।सुख-दुख का आना जाना तो लोक स्वभाव है। हमारे कुल गुरू वशिष्ठ जी के एक ही दिन में सौ पुत्र प्राप्त हुए किन्तु वे सबके सब एक ही दिन में विश्वामित्र के हाथों मारे गये। जो धर्म के प्रवर्तक हैं और संसार के नेत्र माने जाते हैं वे सूर्य और चन्द्रमा को भी राहू के द्वारा ग्रहण को प्राप्त होते हैं। भैया! जब बड़े-बड़े देवता अपने प्रारब्ध से नहीं मुक्ति पाते तो मनुष्यों का कहना ही क्या? नर श्रेष्ठ!यदि सीता नष्ट भी हो जती है तो भी आपको गंवार मनुष्यों की तरह उसके लिये शोक नहीं करना चाहिए। आप जैसे पुरुष कभी शोक में पड़कर अपने विवेक शक्ति को नष्ट नहीं होने देते। आप पहले स्थिर बुद्धि से समझिये कि आपको क्या करना है और क्या नहीं करना है। भैया! पहले आप ही हमें इस तरह की बातें कहके समझाया करते थे। अब आपको ये सब कौन सिखला सकता है? इस समय शोक के कारण आपका ज्ञान कुछ खोया-खोया हुआ सा लगता है इसलिये मैं उसे जगा रहा हूँ। महाप्राज्ञ! इस समय समस्त संसार का विनाश करके आपको क्या लाभ होगा? हमें तो उस पापी शत्रु का पता लगाकर उसे उखाड़ फेंकने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

सरसठवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का जटायु से भेंट

तदनन्तर श्रीराम ने अनुज लक्ष्मण के सारगर्भित वचनों को सुनकर उसे मान लिया और अपने रोष को शान्त करते हुए लक्ष्मण से कहा- वत्स! अब हम लोगों को इस बात पर विचार करना चाहिए कि सीता का पता किस ढंग से लगाया जाय? तब लक्ष्मण शोक ग्रस्त श्रीराम से बोले- भैया! हमें इस जन स्थान में सीता की खोज करनी चाहिए। यहाँ का घनघोर वन अनेक प्रकार वृक्ष समूहों से घिरा है। इसके पर्वत में अनेक फटे हुए पत्थर और कन्दराएं हैं। आप मेरे साथ चलकर उन सभी स्थानों की खोज करें। जैसे पहाड़ वायु के वेग से विचलित नहीं होते वैसे ही धीरवान पुरुष आपत्तियों से विचलित नहीं होते। अब लक्ष्मण के ऐसा कहने पर श्रीराम अपने धनुष पर

'क्षुर' नामक भयंकर बाण चढ़ाये वहाँ सभी स्थानों पर विचरण करने लगे। तत्पश्चात् थोड़ी ही दूर आगे जाने पर उन्हें पर्वत शिखर के समान विशाल शरीरवाले पक्षिराज जटायु वहाँ दिखलायी पड़े। वे खून से लथपथ थे। उन्हें देखकर श्रीराम लक्ष्मण से बोले- यह गृध्र के रूप में अवश्य कोई राक्षस जान पड़ता है और इसी ने सीता को खा लिया होगा। अब सीता को खाकर यहाँ आनन्द मना रहा है। लेकिन मैं इसे इस तरह चैन से नहीं बैठने दूंगा और अपने बाणों से इसका बध करूँगा। इतना कहकर श्रीराम क्रोध में भरकर उसे देखने के लिये आगे बढ़े। पर, इसी समय जटायु अपने मुख से रक्त वमन करते हुए अत्यंत दीन वाणी में श्रीराम से बोले, -आयुष्मन्! इस वन में तुम जिसे इतनी व्यग्रता से ढूँढ़ रहे हो उस देवी सीता को तथा मेरे इन प्राणों को भी रावण ने हर लिया है। श्रीराम तुम्हारे और लक्ष्मण के न रहने पर महाबली रावण आया और सीता को हर कर ले जाने लगा उस समय ज्यों ही मेरी दृष्टि उस पर पड़ी मैं सीता की सहायता के लिये दौड़ पड़ा। तब मेरा और रावण का घोर युद्ध हुआ। उसमें मैंने रावण के रथ और छत्र आदि सभी साधन नष्ट कर दिये और वह घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु जब मैं युद्ध करते-करते थक गया तब रावण ने अपनी तलवार से मेरे दोनों पंख काट दिया और विदेह कुमारी सीता को लेकर आकाश में उड़ गया। मैं तो उस राक्षस के हाथों से पहले ही मारा जा चुका हूँ इसलिये अब तुम मुझे न मारो। सीता के सम्बंध में प्रिय वार्ता सुनकर श्रीराम ने अपना महान धनुष फेंक दिया और जटायु को गले लगाकर पृथ्वी पर गिर पड़े और लक्ष्मण के साथ ही रोने लगे। अत्यंत धीर होने पर भी श्रीराम को उस समय दूना कष्ट होने लगा। तत्पश्चात् जटायु को देखकर उन्होंने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! मेरा राज्य छिन गया, और मुझे वनवास मिला। फिर पिताजी की मृत्यु हुई, सीता का अपहरण हुआ और ये मेरे सहायक पक्षिराज भी मर गये ऐसा जो मेरा दुर्भाग्य है यह तो अग्नि को भी जलाकर भस्म कर सकता है। इस जगत् में मुझसे बढ़कर भाग्यहीन और दूसरा कोई नहीं। ये पक्षीराज! मेरे पिता के मित्र हैं किन्तु आज मेरे ही दुर्भाग्य से इस समय पृथ्वी पर पड़े हैं। इस प्रकार बहुत सी बातें कहकर लक्ष्मण सहित श्रीराम ने जटायु के शरीर पर हाथ फेरा और पिता के समान स्नेह दिखलाते हुए पूछा- तात! मेरे प्राणों के समान प्रिय मिथिलेश

कुमारी सीता कहाँ चली गयी? इतनी ही बात कह कर वे पृथ्वी पर गिर पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६७)

अरसठवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा जटायु का दाह संस्कार

तदनन्तर जटायु की ओर दृष्टि डालकर श्रीराम लक्ष्मण से बोले- भाई! यह पक्षी मेरे ही कार्य सिद्धि करने के प्रयत्न में अपने प्राण गवां रहा है। इसके शरीर के भीतर इसके प्राणों को बड़ी वेदना हो रही है इसीलिए तो इसकी आवाज बन्द होती जा रही है। लक्ष्मण से ऐसा कह कर श्रीराम ने जटायु से फिर पूछा- आप यदि पुनः बोल सकते हों तो बतायें सीता की क्या अवस्था है और आपका बध किस प्रकार हुआ? किस अपराध के कारण रावण ने सीता का हरण किया? उस समय सीता का मुख कैसा हो गया था? रावण का बल पराक्रम और रूप कैसा है? यह सब आप मुझे विस्तार से बतायें। यह सुनकर धर्मात्मा जटायु ने कहा- श्रीराम! रावण ने मायावी आंधी पानी की सृष्टि करके सीता का हरण किया था। तात्! जब मैं उससे लड़ते -लड़ते थक गया तब उसने मेरे दोनों पंखों को काट गिराया और सीता को साथ लिये हुए दक्षिण दिशा की ओर चला गया। रघुनन्दन! अब मेरे प्राणों की गति बन्द हो रही है और दृष्टि घूम रही है। रावण ने सीता का हरण विन्द मुहूर्त में किया था। उसमें खोयी हुई वस्तु शीघ्र ही उसके स्वामी को मिलजाती है इसलिये तुम चिंता न करो। संग्राम में उस निशाचर का बध करके तुम पुनः सीता के साथ बिहार करोगे। पक्षिराज यद्यपि मर रहे थे फिर भी उनके होशहवास ठीक थे। अकस्मात् उसी समय उनके मुख से मांस युक्त रुधिर निकलने लगा। उन्होंने समझाया- रावण, विश्रवा का पुत्र और कुबेर का सगा भाई है, इतना कह कर जटायु ने अपने प्राण छोड़ दिये। श्रीराम उस समय उनसे कुछ और कहने का अनुरोध कर ही रहे थे कि उनके प्राण शरीर को त्याग कर आकाश में चले गये। यह देखकर श्रीरामचन्द्र बोले- "लक्ष्मण! राक्षसों के निवास स्थान इस दण्डकारण्य में बहुत वर्षों तक सुखपूर्वक रहकर पक्षिराज ने अपने शरीर का त्याग किया है। किंतु यह जटायु बहुत उपकारी है। सीता की

रक्षा के लिये ही रावण के हाथों इनका बध हुआ। मेरे लिये ही इन्होंने अपने प्राणों की आहुति दी है। लक्ष्मण! शूर, शरणागत रक्षक धर्मपरायण पुरुषों का कहीं अभाव नहीं है। इस समय मुझे सीता के हरण का उतना दुःख नहीं है जितना की मेरे लिये प्राण त्याग करनेवाले जटायु की मृत्यु से हो रहा है। जैसा कि मेरे लिये मेरे पिता दशरथ पूज्य थे उतने ही पूजनीय ये पक्षिराज जटायु भी हैं। अब तुम शीघ्र सूखे काठ ले आओ मैं इन्हें चिता पर चढ़ा कर इनका दाह संस्कार करूँगा। फिर वे गृध्रराज को सम्बोधित कर बोले- मेरी आज्ञा से तुम सर्वोत्तम लोकों को जाओ। मेरे दाह संस्कार किये जाने पर तुम्हारी सद्गति हो। इतना कह कर श्रीराम ने उन्हें चिता पर रखकर दुखित मन से उनका दाह संस्कार किया। तत्पश्चात् उन्होंने रोही के गूदे निकाल कर उनका पिण्ड बनाया और हरित कुशाओं पर जटायु को पिण्डदान दिया। फिर परलोकवासी मनुष्य को स्वर्ग प्राप्ति कराने के लिये जो मंत्र आवश्यक होते हैं उनका भी जाप किया। तदनन्तर दोनों भाइयों ने गोदावरी में नहाकर शास्त्रीय विधि से गृध्रराज के लिये जलान्जलि का दान किया। श्रीराम के द्वारा दाह संस्कार होने के कारण जटायु को परम पवित्र गति प्राप्त हुई। अब पक्षिराज जटायु का तर्पण करने के बाद दोनों भाइयों ने सीता की खोज में मन लगाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में अरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६८)

उनहत्तरवाँ सर्ग

लक्ष्मण का अयोमुखी को दण्ड देना

तदनन्तर जटायु के लिये जलान्जलि दान देकर दोनों भाई वहाँ से आगे बढ़े और पश्चिम दिशा (नैऋत्य कोण) की ओर गये। फिर दक्षिण पश्चिम दिशा की ओर बढ़ते हुए वे एक ऐसे मार्ग पर जा पहुँचे जिस पर लोगों का आना-जाना ही नहीं होता था। वह बहुत दुर्गम और भयंकर था। अब उसे वेगपूर्वक लांघकर उन दोनों राजकुमारों ने दक्षिण दिशा का आश्रय लिया। फिर उस भयानक वन से आगे निकलकर वे दोनों क्रौंचारण्य नामक गहन वन के भीतर जा पहुँचे। वह वन रंग बिरंगे फूलों से सुशोभित था और उसके

भीतर बहुत से पशु पक्षी निवास करते थे। तत्पश्चात् सीता की खोज करते हुए वे आगे बढ़े और मतंग मुनि के आश्रम के पास जा पहुँचे। अब वह वन बहुत भयंकर दिखलायी पड़ता था। साथ ही गहन वृक्षावलियों से घिरा था। वहाँ पहुँचकर उन दोनों ने पर्वत पर एक गुफा देखी जो पाताल के समान गहरी थी और अंधकार से घिरी थी। उसके निकट जाकर उन दोनों ने एक विशालकाय राक्षसी देखी जिसका मुख बड़ा विकराल था। वह छोटे-छोटे जन्तुओं को भय देनेवाली तथा बड़ी भयंकर थी उसकी सूरत देखकर ही घृणा होती थी। वह भयानक पशुओं को भी पकड़कर खा जाती थी। उस समय उसके बाल खुले हुए थे। अब उन दोनों भाइयों को देखकर वह राक्षसी इनके निकट आयी और लक्ष्मण का हाथ पकड़ कर बोली- आओ हम दोनों रमण करें। मेरा नाम अयोमुखी है। मैं यदि पत्नी के रूप में तुम्हें मिल गयी तो समझ लो तुम्हारा बड़ा लाभ हुआ। राक्षसी के ऐसा कहने पर लक्ष्मण क्रोध से जल उठे और अपनी तलवार लेकर राक्षसी के कान, नाक और सतन काट डाले। नाक-कान कट जाने से वह राक्षसी जोर-जोर से चिल्लाने लगी और जिधर से आयी थी उधर ही भाग निकली। फिर वहाँ सें शीघ्रता से चलते हुए वे दोनों भाई एक गहन वन में जा पहुँचे। उस समय लक्ष्मण हाथ जोड़कर श्रीराम से बोले- भैया! मेरी बायीं भुजा जोर-जोर से फड़क रही है और मुझे अपशकुन दिखलायी पड़ते हैं। यह हमें तत्काल प्राप्त होने वाले किसी भय की सूचना दे रहे हैं। इसके साथ ही वजुंल नामक पक्षी के बोलने से शकुन भी हो रहा है जो कि सूचित कर रहे हैं कि युद्ध में हमारी विजय होगी। वे ऐसी बात कर ही रहे थे कि बड़े जोर का शब्द हुआ जो सारे वन को विध्वंस करता हुआ प्रतीत हुआ। वे दोनों इसके बारे में पता लगाना ही चाहते थे कि एक चौड़ी छातीवाले विशालकाय राक्षस पर उनकी दृष्टि पड़ी। यद्यपि वह देखने में बहुत बड़ा था किन्तु उसके न तो मस्तक था न गला। उसका शरीर केवल कबन्ध (धड़ मात्र) से ही निर्मित था और पेट में ही उसका मुँह बना हुआ था। उसके सारे शरीर में पैने और तीखे रोयें थे। उसकी भूरी रंग की आँखें बहुत भयंकर लग रही थीं। उसकी दाढ़ें बहुत बड़ी थी और वह अपनी लपलपाती हुई जीभ से बार-बार अपने विशाल मुख को चाट रहा था। वन के हिंसक पशु ही उसके भोजन थे। अब जैसे ही दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण उसके पास

पहुँचे वैसे ही वह कबन्ध राक्षस उन दोनों को बलपूर्वक पीड़ा देते हुए एक साथ ही पकड़ लिया। यद्यपि उन दोनों के पास ही तलवार और धनुष थे पर राक्षस के द्वारा इस तरह पकड़े जाने पर वे विवशता का अनुभव करने लगे। उस समय तो श्रीराम धीर होने के कारण व्यथित नहीं हुए पर धैर्य का आश्रय न लेने के कारण लक्ष्मण एकदम व्यथित हो उठे और श्रीराम से बोले भैया! देखिये इस समय मैं विवश हो गया हूँ। अतः इस समय आप मुझको ही इस राक्षस को भेंट कर आप स्वयं इसके बन्धन से मुक्त हो जाइये और सुखपूर्वक यहाँ से निकल जाइये। मुझे विश्वास है कि आप सीता को अवश्य पा लीजियेगा। फिर यहां से लौटने पर जब आप राज सिंहासन पर विराजमान होइयेगा उस समय मुझे भी स्मरण करते रहियेगा। लक्ष्मण की यह बात सुनकर श्रीराम बोले- वीर! तुम भयभीत न हो। तुम्हारे जैसे शूरवीर को इस तरह का विषाद नहीं करना चाहिए। इसी बीच राक्षस शिरोमणि कबन्ध ने उन दोनों भाइयों से पूछा - तुम दोनों कौन हो? बताओ। मेरे भाग्य से ही तुम दोनों मेरे सामने पड़ गये क्योंकि इस समय मैं भूख से पीड़ित हो रहा हूँ। अब, तुम लोगों का बचना बहुत कठिन होगा। तत्पश्चात् उसकी बातें सुनकर श्रीराम ने कहा- लक्ष्मण! हम लोग सीता के दुःख से दुखी थे ही कि हमारे सामने यह दूसरा संकट आ पहुंचा जो हमारे जीवन का अंत कर देने वाला है। सौम्य! काल का प्रभाव बड़े-बड़े शूर वीरों पर भी पड़ा करता है और वे भी काल के वश में होकर कष्ट में पड़ जाते हैं। इतना कहकर राम ने लक्ष्मण की ओर देखकर अपनी बुद्धि को सुस्थिर कर लिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६९)

सत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का कबन्ध की भुजाओं को काट डालना

तदन्तर कबन्ध ने उन दोनों भाइयों से कहा- राजकुमारों! मुझे भूखा देखकर भी तुम लोग, मेरे मुँह में क्यों नहीं चले जाते? क्योंकि ऐसा लगता है कि दैव ने मेरे भोजन के लिए तुम दोनों को यहाँ भेजा है। उस समय लक्ष्मण ने समुचित बात करते हुए कहा- यह नीच राक्षस हमें अपने मुँह में ले ले

उसके पहले ही हम अपनी तलवारों से इसकी बाहों को काट डालें। राजन्! यज्ञ में लाये गये पशुओं के समान निष्चेष्ट प्राणियों का बध राजा के लिये इसकी भुजाओं को ही काट डालना चाहिए। अब उन दोनों की बात सुनकर कबन्ध को बड़ा क्रोध हुआ और वह उन दोनों को खाने के लिये उद्यत हो गया। इतने में उन दोनों राजकुमारों ने शीघ्रता से अपनी तलवारों से उसकी दोनों भुजायें काट गिरायी। भुजायें कट जाने पर राक्षस गंभीर गर्जना करता हुआ धरती पर गिर पड़ा और खून से लथपथ हो उसने दीन वाणी में पूछा- वीरों! तुम कौन हो? कबन्ध के पूछने पर लक्ष्मण ने श्रीराम का परिचय देते हुए कहा- ये महाराज दशरथ के पुत्र हैं और श्रीराम के नाम से विख्यात हैं मैं इन्हीं का छोटा भाई लक्ष्मण हूँ। माता कैकेयी द्वारा जब इनका राज्याभिषेक रोक दिया गया तब ये पिताजी की आज्ञा मानकर वन चले आये। इस वन में ही इनकी पत्नी को किसी राक्षस ने हर लिया है। उन्हीं का पता लगाने हमें यहाँ आना पड़ा। लेकिन तुम कौन हो और कबन्ध का रूप धारण कर इस वन में क्यों पड़े हो? लक्ष्मण के ऐसा कहने पर कबन्ध को इन्द्र की कही हुई बातों का स्मरण हो आया। अतः उसने लक्ष्मण को उत्तर दिया- वीरों! आप दोनों का स्वागत है। मेरे भाग्य से ही आप लोगों के दर्शन हुए हैं। ये भुजायें मेरे लिये बन्धन थीं अच्छा हुआ आप लोगों ने इसे काट डाला। श्रीराम! मेरे उद्दण्डता के कारण मुझे ऐसा स्वरूप प्राप्त हुआ था। यह कैसे हुआ मैं, बता रहा हूँ सुनें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७०)

एकहत्तरवाँ सर्ग

कबन्ध की आत्म कथा

श्रीराम! पूर्व काल में मेरा बल और विक्रम तीनों लोकों में विख्यात था। मेरा शरीर भी सूर्य चन्द्रमा के समान तेजस्वी था। यह सब होने पर भी मैं राक्षस का रूप धारण कर वन में घूमता हुआ ऋषियों को डराया करता। एक दिन मैंने अपने बर्ताव से स्थूल शिरा नामक महर्षि को इसी रूप में कुपित कर दिया तब उन्होंने मेरे राक्षसी रूप को देखकर शाप दिया- दुरात्मन! आज

से तुम्हारा यही रूप सदा के लिये रह जाये। उस समय जब मैंने उनसे इस रूप में मुक्ति प्राप्त करने हेतु प्रार्थना की तब उन्होंने कहा- जब श्रीराम और लक्ष्मण तुम्हारी दोनों भुजायें काट कर तुम्हें वन में जलायेंगे तब तुम पुनः अपने उत्तम रूप को प्राप्त कर लोगे। मेरा यह रूप इन्द्र के क्रोध से भी प्राप्त हुआ। पूर्वकाल में राक्षस होने के पश्चात् मैंने घोर तप करके ब्रह्मा जी को प्रसन्न कर लिया और फिर उनसे दीर्घजीवी होने का वरदान प्राप्त कर लिया। इससे मेरे मन में अहंकार पैदा हुआ और मैंने इन्द्र पर आक्रमण कर दिया। तब इन्द्र ने कुपित होकर मुझ पर बज्र से प्रहार किया इससे मेरी जाँघें और मस्तक मेरे ही शरीर में घुस गये। किन्तु अब यम लोक भेजने के बजाय उन्होंने मुझसे कहा- पितामह ब्रह्मा जी ने जो तुम्हें दीर्घ जीवी होने का वरदान दिया है वह सत्य हो। तब मैंने कहा देवराज! आप ने तो अपने बज्र की मार से मेरी जांघ और मस्तक सभी कुछ तोड़ डाले हैं अब मैं आहार कैसे प्राप्त कर सकूँगा? मेरे ऐसा कहने पर उन्होंने मेरी भुजायें एक-एक योजन लम्बी कर दी मेरे पेट में तीखे दाढ़ोंवाला एक मुख बना दिया। इस तरह मैं इन भुजाओं द्वारा वन के हिंसक पशुओं को सब ओर से समेट कर खाया करता था। इन्द्र ने भी मुझसे यही बात बतलायी थी कि राम लक्ष्मण द्वारा जब तुम्हारी भुजायें काट डाली जायेंगी उस समय तुम स्वर्ग जाओगे। रघुनन्दन! अवश्य ही आप श्रीराम हैं अन्यथा मैं दूसरे के द्वारा मारा ही नहीं जा सकता था। अब आप दोनों अग्नि के द्वारा मेरा दाह संस्कार कर दें तब मैं आपकी सहायता के लिये एक अच्छे मित्र का पता बताऊँगा। उसके ऐसा कहने पर श्रीराम बोले- कबन्ध! मेरी पत्नी सीता को रावण हर ले गया है और मैंने केवल उसका नाम ही सुन रक्खा है। उसकी शक्ल सूरत से परिचत नहीं हूँ। अब तुम्हीं इस सम्बंध में मेरा कुछ उपकार करो। वीर! हम लोग काठ लाकर तुम्हारा दाह संस्कार कर देंगे अतः अब तुम हमें सीता का ठीक-ठीक पता बता दो और इस तरह हमारा कल्याण करो। यह सुनकर उस दानव ने कहा- श्रीराम! इस समय मुझे दिव्य ज्ञान नहीं। किन्तु जब मेरा दाह संस्कार हो जायेगा तब मैं अपने पूर्व स्वरूप को प्राप्त कर किसी ऐसे व्यक्ति का पता बताऊँगा जो सीता के विषय में आपको अवश्य कुछ बता सकेगा। इस समय मेरे शरीर में इतनी शक्ति भी नहीं जिससे मैं जान सकूँ वह महापराक्रमी राक्षस कौन है? वास्तव

में शाप ग्रस्त होने के कारण मेरा नाम ज्ञान नष्ट हो चुका है किन्तु शरीर का दाह हो जाने पर मैं ऐसे महापुरुष का परिचय दूँगा जो उस राक्षस को अवश्य जानते होंगे। आप उन महापुरुष के साथ मित्रता अवश्य कर लें। क्योंकि उनके लिये तीनों लोकों में कुछ भी अज्ञात नहीं और वे समस्त लोकों का चक्कर लगा चुके हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में एकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७१)

बहत्तरवाँ सर्ग

कबन्ध का दाह के पश्चात् दिव्य रूप प्राप्त करना और सुग्रीव से मित्रता के लिए कहना

कबन्ध के ऐसा कहने पर श्रीराम और लक्ष्मण ने उसे एक पर्वत के गड्ढे में डालकर उसमें आग लगा दी। चिता में जल जाने के बाद तुरन्त ही वह महाबली कबन्ध दो निर्मल वस्त्र तथा दिव्य पुष्पों का हार धारण किये हुए चिता से ऊपर उठा और एक तेजस्वी विमान पर जा बैठा। विमान पर बैठा हुआ वह अपने तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करने लगा और अन्तरिक्ष में स्थित होकर श्रीराम से बोला- रघुनन्दन! आप जिस प्रकार सीता को पा सकेंगे वह मैं ठीक-ठीक बता रहा हूँ। संसार में छः ऐसी युक्तियाँ है जिनसे राजाओं द्वारा सब कुछ प्राप्त किया जाता है। उन युक्तियों के नाम हैं संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी भाव और समाश्रय। जो मनुष्य दुर्दशा ग्रस्त होता है वह दुर्दशा ग्रस्त मनुष्य से ही सहायता प्राप्त करता है यही नीति है। श्रीराम आप लक्ष्मण सहित बुरी दशा के शिकार हो रहे हैं, इसीलिये आप लोग राज्य से वंचित हुए और आपको भार्या के अपहरण का दुःख झेलना पड़ा। ऐसी दशा में सहायता के लिये आप उसी को अपना मित्र बनाइये जो आपकी ही भांति दुर्दशा में पड़ा हो। सुनिये मैं आपको एक ऐसे पुरुष का परिचय दे रहा हूँ उनका नाम सुग्रीव है और वे जाति के वानर हैं। उन्हें उनके भाई बाली ने घर से निकाल दिया है। वे इस समय चार वानरों के साथ ऋष्यमूक पर निवास करते हैं जो पम्पा सरोवर तक फैला हुआ है। वे सुग्रीव महान् बल, पराक्रम तथा हर तरह के गुणों से युक्त हैं। उनके भाई बाली ने सारे राज्य को हस्तगत

करने के लिये उन्हें राज्य से बाहर निकाल दिया है। अतः वे ही सीता की खोज के लिये आपके सहायक होंगे। श्रीराम होनहार को कोई मेट नहीं सकता। इसलिये आप धैर्य धारण करते हुए उन्हें तुरन्त अपना मित्र बना लीजिये। यह मैत्री अग्नि को साक्षी मानकर बनाकर होनी चाहिये। वे इस समय स्वयं ही अपने लिये एक सहायक ढूंढ़ रहे हैं। उनका अभीष्ट कार्य को पूरा करने के लिये आप दोनों भाई सक्षम हैं। सुग्रीव का कार्य पूर्ण हो या न हो पर वे आपका कार्य अवश्य करेंगे। वे सूर्य के औरस पुत्र हैं। वे संसार के नर मांस भक्षी जितने भी राक्षसों के स्थान हैं उन सबको अच्छी तरह जानते हैं। वे वानरों के साथ रहकर समस्त नदियों, पहाड़ों और दुर्गम कन्दराओं की खोज कराकर आपकी पत्नी का पता लगा लेंगे और फिर वानरों को भेजकर रावण के घर से वैदेही को ढूँढ़ निकालेंगे। आपकी पत्नी मेरू शिखर के अग्रभाग या पाताल में कहीं भी रक्खो गयी होंगो वे समस्त राक्षसों का बध कर उन्हें वापस लायेंगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७२)

तिहत्तरवाँ सर्ग

कबन्ध का श्रीराम लक्ष्मण को ऋष्य मूक का पता बताना

तदनन्तर कबन्ध ने श्रीराम से फिर कहना शुरू किया- श्रीराम! यहाँ से पश्चिम दिशा का आश्रय लेकर जहाँ फूलों से भरा मनोरथ वृक्ष शोभा पा रहे हैं। यही आपके जाने लायक सुखद मार्ग है। तत्पश्चात् उस खिले हुए वृक्षों से सुशोभित उस वन को लाँघकर आप एक दूसरे वन में प्रवेश करेंगे। यह वन नन्दनवन के समान मनोहर होगा। वहाँ के वृक्षों में सभी ऋतुओं के फल लगे रहते हैं। यहाँ के वृक्ष से मेघों और पर्वतों के समान शोभा पाते हैं फिर इस प्रकार यात्रा करते हुए आप लोग एक पहाड़ से होकर दूसरे पहाड़ तथा एक वन से दूसरे वन पहुँचेंगे और उन सबको भी लांघते हुए आप दोनों पम्पा नामक पुष्करिणी के तट पर जा पहुँचेंगे। श्रीराम यहाँ आपको कंकड़ देखने को नहीं मिलेगा और उसके तट पर फिसलने लायक कीचड़ भी देखने को नहीं मिलेगा। इसमें सेवार का सर्वथा अभाव है। उसके तट की भूमि बालुकापूर्ण है। कमल और उत्पल उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ जल में

विचरने वाले पक्षियों के मधुर ध्वनि बराबर गूँजते रहते हैं। यहाँ किसी पक्षी का बध भी हो सकता है ऐसा वे कभी सोचते भी नहीं। वहाँ अनेक प्रकार के फल-मूल भक्ष्य पदार्थ के रूप में मिला करेंगे। आप दोनों भाई उन पदार्थों को लेकर सरोवर के जलचर पक्षी तथा मछलियों को थोड़ा-थोड़ा करके खिलाइयेगा। इससे आपका मनोरंजन होगा। श्रीराम! जिस समय आप इस मनोरंजन में संलग्न रहेंगे उस समय लक्ष्मण स्फटिक मणि के समान स्वच्छ जल कमल के पत्ते में निकाल लायेंगे और आपको पिलायेंगे। आप सायंकाल जब वहाँ विचरण करने के लिये निकलेंगे उस समय लक्ष्मण आपको उन मोटे-मोटे वानरों का दर्शन करायेंगे जो गुफाओं में रहते हैं और वहीं सोते हैं। वहाँ बड़ी-बड़ी शाखाओं वाले पुष्पधारी वृक्ष और पम्पा के शीतल जल को देखकर आप अपना शोक त्याग देंगे। रघुनन्दन! वहाँ जल के भीतर उत्पन्न कमल के फूल दिखलायी देते हैं किन्तु वहाँ तक कोई पहुँच नहीं सकता इसलिये वे फूल न तो कभी मुरझाते हैं न झरते हैं। सुना जाता है कि यहाँ पहले मतंग मुनि के शिष्यगण निवास करते थे। जब वे मतंग मुनि के लिये फल फूल लेने जाते तब उनकी थकान के कारण उनके शरीर से जो पसीने की बूंद पृथ्वी पर गिरती वे ही मुनियों के प्रभाव से तत्काल फूल के रूप में परिवर्तित हो जाते और कभी नष्ट नहीं होते थे। वे सब ऋषि मुनि तो वहाँ से चले गये किन्तु वहाँ रहनेवाली तपस्विनी शबरी आज भी वहाँ दिखायी देती है। शबरी सदा धर्म के अनुष्ठानों में लगी रहती है। श्रीराम शबरी आपके दर्शन करके तुरन्त स्वर्ग लोक को चली जायेगी इसलिये उसे आप अपना दर्शन अवश्य दें। तदनन्तर आप पम्पा के पश्चिम तट पर जाकर एक अनुपम आश्रम देखेंगे जो गुप्त है और मतंग मुनि के प्रभाव से उस वन में हाथी कभी आक्रमण नहीं कर सकते। वह अनेक सुन्दर पक्षियों से भरा है। उसी पम्पा सरोवर के पूर्व भाग में ऋष्यमूक पर्वत है। उसके ऊपर चढ़ने में बड़ी कठिनाई होती है क्योंकि वह छोटे-छोटे सर्पों तथा हाथियों के बच्चों के द्वारा सब ओर से सुरक्षित है। वह अभीष्ट फल देनेवाला है क्योंकि पूर्वकाल में साक्षात् ब्रह्माजी ने इसका निर्माण किया है। श्रीराम! उस पर्वत शिखर पर सोया हुआ पुरुष सपने में जिस सम्पत्ति को प्राप्त करता है उसे वह जागने पर भी प्राप्त कर लेता है। मतंग मुनि के आश्रम के आसपास पम्पा सरोवर से क्रीड़ा करने वाले छोटे-छोटे हाथियों

के चिग्घाड़ने का शब्द उस पर्वत पर भी सुनायी देता है। रघुनन्दन! वहाँ आप रीछ, बाघों और नील कोमल कान्ति वाले मनुष्य को देखकर आप अपना सारा शोक तुरन्त भूल जायेंगे। उस पर्वत पर एक बहुत बड़ी गुफा है उसका द्वार पत्थर से ढंका है और उसमें प्रवेश करने में बड़ी कठिनाई होती है। उस गुफा के पूर्व द्वार पर शीतल जल से भरा एक बहुत बड़ा कुण्ड है। धर्मात्मा सुग्रीव वानरों के साथ उसी गुफा में निवास करते हैं वे कभी-कभी पर्वत शिखर पर भी निवास करते हैं। कबन्ध से सारी जानकारी प्राप्त कर ले ने के बाद श्रीराम बोले- अब तुम परम धाम को जाओ। तब कबन्ध ने भी उन दोनों से कहा- आप लोग भी अपने कार्य सिद्धि के लिये यात्रा आरम्भ करें और फिर दोनों की आज्ञा लेकर उसने तुरन्त परम धाम को प्रस्थान किया। तदनन्तर आकाश में स्थित हो श्रीराम से फिर कहता गया- आप सुग्रीव के साथ मित्रता अवश्य करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७३)

चौहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम का पम्पा सरोवर के तट पर मतंग वन में शबरी के आश्रम पर जाना

तत्पश्चात् श्रीराम कबन्ध के बताये मार्ग से पम्पा सरोवर की ओर चल पड़े। उस समय दोनों भाई पर्वत पर फैले तथा फल फूल से लदे हुए वृक्षों को देखते हुए आगे बढ़ते रहे और फिर धीरे-धीरे पम्पा सरोवर के पश्चिम तट पर जा पहुँचे। वहाँ पम्पा नामक पुष्करिणी के तट पर पहुँचकर दोनों भाइयों ने शबरी का आश्रम देखा। अब उस आश्रम पर पहुँचकर दोनों भाई शबरी से मिले। उन्हें देखकर शबरी हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। तत्पश्चात् उनके चरणों में प्रणाम कर उन्हें पाद्य, अर्घ्य आदि सामग्री अर्पित की। यह देखकर रामचन्द्र उससे बोले- तपोधने! क्या तुमने विघ्नों पर विजय पा ली है। क्या तुम्हारी तपस्या बढ़ रही है और क्या तुमने क्रोध और आहार पर काबू पा लिया ? तुम्हारे मन में सुख और शान्ति तो है ? तुमने जो गुरुजनों की सेवा की है वह तो सफल हो गयी है न ? तब सिद्धों द्वारा सम्मानित शबरी हाथ जोड़

कर बोली- श्रीराम! आज आप का दर्शन मिलते ही सारी सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी हैं। अब मुझे आपके दिव्य धाम की प्राप्ति भी होगी। आपके चित्रकूट पधारने पर मेरे गुरुजन जिनकी मैं सेवा किया करती थी विमान पर बैठकर दिव्यलोक चले गये हैं। उन महर्षियों ने जाते समय मुझसे कहा था कि तेरे इस आश्रम पर श्रीराम लक्ष्मण सहित आयेंगे उस समय तू उनका यथावत आदर सत्कार करना। इससे तुझे श्रेष्ठ और अक्षय लोकों की प्राप्ति होगी। अतः श्रीराम! उन महात्माओं के कहने से मैंने आपके सत्कार हेतु यहाँ उत्पन्न होनेवाले नाना प्रकार के जंगली फल फूलों को इकट्ठा कर रक्खा है। अब शबरी की बात सुनकर श्रीराम बोले- मैंने कबन्ध के मुख से तुम्हारे महात्मा गुरुजनों का यथार्थ प्रभाव सुन रक्खा है। अब मैं इस प्रभाव को प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ। श्रीराम की बात सुनकर शबरी उन्हें उस वन का दर्शन कराती हुई बोली- रघुनन्दन! नाना प्रकार के पशु पक्षियों से भरे इस विशाल वन को देखें। यह मतंग वन के नाम से विख्यात है। यहीं मेरे गुरुजन गायत्री मंत्र के जप से विशुद्ध हुए अपने देह रूपी पंजर को मंत्रोच्चारणपूर्वक अग्नि में होम किया था। यह प्रत्येक स्थली नामवाली वेदी है, जहाँ मेरे द्वारा पूजित महर्षि वृद्धावस्था के कारण कांपते हुए हाथों से देवताओं को फूल चढ़ाते हैं। उनके तप के प्रभाव से यह वेदी आज भी सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित कर रही है। उपवास से दुर्बल हो जाने के कारण जब वे चलने फिरने में असमर्थ हो गये तब उनके चिंतन मात्र से वहाँ सात समुद्रों का जल प्रकट हो गया। जो सप्त सागर तीर्थ के नाम से विख्यात होकर आज भी मौजूद है। उसमें सात समुद्रों के जल मिले हैं आप उसे भी चलकर देखें। देवताओं की पूजा करते समय मेरे गुरुजनों ने जो फूलों की मालाएं बनायी थीं वे आज भी नहीं मुर्झायी हैं। भगवन्! आपने यह सारा वन देख लिया है और इसके बारे में सब कुछ जान लिया है अब मैं आपकी आज्ञा से इस देह का त्याग करना चाहती हूँ। तब श्रीराम ने शबरी से कहा- भद्रे! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया है अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार अभिलाषित लोक की यात्रा करो। श्रीराम की ऐसी आज्ञा पाकर शबरी ने अपने को अग्नि में होम कर अग्नि के समान ही तेजस्वी शरीर प्राप्त किया। फिर दिव्य वस्त्र आभूषण और फूलों की माला धारण कर उस प्रदेश को प्रकाशित करती हुई उसी स्वर्ग लोक को चली गयी

जहाँ उसके गुरुजन बिहार करते थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७४)

पचहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का पम्पा सरोवर के तट पर जाना।

तदनन्तर शबरी के दिव्य लोक में चले जाने पर लक्ष्मण सहित श्रीराम ने उन महर्षियों का चिंतन किया तत्पश्चात् वे लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण! मैंने पुण्यात्मा महात्माओं का यह पवित्र आश्रम देखा। यहाँ बहुत सी आश्चर्यजनक बातें देखने को मिलीं। हरिण और बाघ एक दूसरे पर विश्वास करते हैं और नाना प्रकार के पक्षी इस आश्रम का सेवन करते हैं। सौम्य! हमने जो सप्त सागर तीर्थ में स्नान किया है उससे हमारा सारा अशुभ नष्ट हो गया है। इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस समय मेरे मन में शुभ संकल्प उठ रहा है इसलिये आओ हम दोनों अब पम्पा सरोवर के तट पर चलें। यहीं से थोड़ी दूर ऋष्यमूक पर्वत है जहाँ सूर्य पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास करते हैं। मैं उनसे मिलने के लिये उतावला हो रहा हूँ क्योंकि सीता के खोज का काम उन्हीं पर निर्भर है। तब श्रीराम लक्ष्मण के साथ नाना प्रकार के वृक्षों की शोभा देखते हुए पम्पा सरोवर के तट पर आये। उस समय श्रीराम के मन में सीता जी से मिलने की तीव्र लालसा जाग उठी। अतः भाँति-भाँति के वृक्षों को देखते हुए वे पम्पापुर नाम से प्रसिद्ध सरोवर के पास आये और वहाँ आकर मतंग सरस नामक कुण्ड में स्नान किया। फिर वे सीता के शोक में व्याकुल पुष्करिणी पम्पा में प्रवेश किया उसके तट पर तिलक अशोक नाग केसर वकुल तथा लिसोड़े के वृक्ष शोभा बढ़ा रहे थे। उसका जल स्फटिक मणि के समान स्वच्छ दिखलायी पड़ता था जल के नीचे स्वच्छ बालुका फैली हुई थी। उसमें मछलियाँ और कछुए भरे हुए थे। किन्नर नाग गंधर्व यक्ष और राक्षस उसका सेवन करते थे और भाँति-भाँति के वृक्षलताएँ शीतल जल की सुन्दर विधि मालूम होती थीं। लक्ष्मण सहित श्रीराम ने जब उस मनोहर पम्पा को देखा तब सीता के विरह में उनका मन व्यथित हो उठा और वे वहाँ विलाप करने लगे। उस समय पम्पा भाँति-भाँति के वृक्षों से सुशोभित सजी

हुई युवती की भाँति मालूम पड़ती थीं।उसी के तट पर ऋष्यमूक पर्वत भी सुशोभित था। जहाँ ऋक्षराजा नामक वानर के पुत्र महापराक्रमी सुग्रीव निवास करते थे। उस समय श्रीराम बोले- लक्ष्मण! तुम शीघ्र वानर राज सुग्रीव के पास चलो क्योंकि बिना सीता के मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ? ऐसा कह कर श्रीराम उस मनोरम पुष्करिणी पम्पा में भाई सहित प्रवेश किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के अरण्यकाण्ड में पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७५)

अरण्यकाण्ड समाप्त

किष्किन्धाकाण्ड

पहला सर्ग

पम्पा सरोवर के दर्शन से श्रीराम की व्याकुलता बढ़ना और लक्ष्मण का श्रीराम को समझाना

पम्पा सरोवर के पास पहुँचकर सीता की सुधि आ जाने के कारण श्रीराम व्यथित होकर विलाप करने लगे और वे लक्ष्मण से बोले- सौम्य! यह पम्पा कैसी शोभा पा रही है। इसका जल वैदूर्यमणि के समान स्वच्छ एवं श्याम है। इसमें बहतु से कमल और उत्पल खिले हैं। तट पर उत्पन्न हुए वृक्षों से इसकी शोभा बढ़ गयी है। इसके किनारे का वन कितना सुन्दर दिखलायी देता है। यहाँ के ऊँचे ऊँचे वृक्ष अपनी फैली हुई शाखाओं के कारण शिखरों से युक्त पर्वत के समान दिखलायी पड़ते हैं। किन्तु इस समय सीता हरण के कारण मेरे मन में मानसिक वेदना हो रही है। किन्तु शोक से पीड़ित होने पर भी यह पम्पा मुझे बड़ी सुहानी लगती है। इसके निकटवर्ती वन फूलों से व्याप्त हैं और इसका जल भी बहुत सुखदायिनी प्रतीत होता है। नयी-नयी घासों से ढका यह स्थान अपनी नीली-पीली आभा के कारण बड़ी शोभा पा रहा है। ऐसा लगता है मानों यहाँ बहुत से गलीचे बिछा दिये गये हों। अग्रभाग फूलों के भार से लदे होने के कारण समृद्धि शाली प्रतीत होते हैं। सौम्य इस समय मन्द-मन्द सुखदायिनी हवा चल रही है जिससे मुझमें काम का उद्दीपन हो रहा है। चैत्र मास होने के कारण वृक्षों में फल फूल लग गये हैं और सब ओर मनोहर सुगंध छा रही है। ये वन फूलों की उसी तरह वर्षा कर रहे हैं जैसे मेघ जल की वृष्टि करते हैं। लक्ष्मण इन झरे हुये और डालियों में लगे हुए फूलों के साथ वायु कैसा खेल रही है। पर्वत की कन्दराओं से निकली हुई विशेष ध्वनि उच्च स्वर से गीत गा रही है। मतवाले कोकिल का कलनाद बाजे का काम

देते हैं। मलय चन्दन को छूकर आने वाली हवा थकावट दूर करती हुई बह रही है। और इसकी पवित्र सुगंध सब ओर फैली हुई है। जिन वृक्ष की शाखाओं के अग्रभाग फूलों से ढके हैं और जो वायु के झोंके से हिल रहे हैं तथा भ्रमर जिनके सर पर पगड़ी के समान शोभित हैं वे मानों नाच गा रहे हैं। इस समय पक्षियों के कलरव सीता के वियोग में मेरा शोक बढ़ाने वाला हो गया है। लक्ष्मण इस समय कोयल और जल कुक्कुट की आवाज मुझे ललकारता हुआ शोक मग्न किये देता है। ऐसे समय में सीता आश्रम में रहती थीं तो मुझे अत्यंत आनन्दित कर देती थीं। ये पक्षियों का कलरव, भौरों का गुंजन और चिड़ियों की चहक मेरे काम को बढ़ा रहे हैं। लगता है यह बसन्त मुझे जलाकर भस्म कर देगा। अशोक पुष्प के लाल गुच्छे ही मुझे जलने वाले आग के अंगारे हैं तथा इसके नूतन पल्लव लाल-लाल लपटें हैं। साथ ही ये भौरों का गुंजन उसका चट-चट शब्द हैं। ऐसे समय में यह काम वेदना बसन्त ऋतु के गुणों का ईंधन पाकर और बढ़ गयी है और यह मुझे शीघ्र ही जला देगी। लक्ष्मण इस समय मृगनयनी सीता की याद और मुझे अत्यधिक शोक प्रदान करने वाला हो रहा है। साथ ही यह वन में बहने वाली चैत्र की वायु मुझे और भी पीड़ित कर रही है। ये मोर जिनके पंख झरोखे के समान हवा में हिल रहे हैं वे मयूरियों से घिरे हुए मेरे काम वेदना को और बढ़ा रहे हैं। लक्ष्मण देखो ये मोर अपनी पत्नियों का अनुसरण कर मेरा उपहास करते हुए दिखलायी पड़ते हैं। निश्चय ही इनके प्रिया का अपहरण इस वन में किसी राक्षस ने नहीं किया है अन्यथा ये भी शोक में डूबे रहते। इस समय यह मोरनी भी काम भाव से पीड़ित हो अपने स्वामी के सामने उपस्थित है। देखो, यदि सीता का अपहरण न हुआ होता तो वह भी मेरे सामने इसी भाव से आती। अब बिना सीता के ये वन के सारे फूल मेरे लिए निष्फल हो रहे हैं। इस समय सीता जहाँ होगी वहाँ भी यदि ऐसेही बसन्त छा रहा होगा तो उसकी क्या दशा होगी। अवश्य उस जगह अभी बसन्त ने प्रवेश न किया होगा। फिर भी मेरे बिना सीता कैसे जीवित रह सकेगी? अथवा हो सकता है जहाँ सीता हो वहाँ भी बसंत का आगमन हो गया हो किन्तु उसे तो शत्रुओं की डाँट फटकार सुननी पड़ती होगी इसलिए बेचारी कर ही क्या सकेगी? मेरी प्राण बल्लभा जानकी निश्चय ही इस बसंत ऋतु को पाकर अपना प्राण छोड़ देगी क्योंकि वह मुझसे

अलग होकर अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकती। इस समय यह शीतल सुखद वायु सीता के विरह में मुझे आग की तरह जला रही है। जब सीता मेरे साथ थीं तो यही कौआ आकाश में जाकर काँव-काँव करता था जो वियोग की सूचना देने वाला था किन्तु आज यह जैसी हर्ष की बोली बोल रहा है इससे जान पड़ता है कि मेरा और सीता का संयोग शीघ्र ही होगा। लक्ष्मण! देखो, यम्पा के जल में सब ओर खिले हुए ये सुगन्धित कमल प्रातः काल सूर्य की भाँति प्रकाशित हो रहे हैं। यहाँ किन्नर लोग इधर उधर प्रेम पूर्वक विचर रहे हैं। इस पम्पा का जल भी कितना ह्री स्वच्छ है जिसमें नीले और लाल कमल खिले हैं। उन कमलों के केसरों को भ्रमरों ने चूस लिया है। यहाँ के वनों में विचित्र-विचित्र स्थान हैं तथा इस चम्पा में पानी पीने के लिए आये हुए मृगों और हाथियों के समूह से इस पम्पा की शोभा और बढ़ जाती है। कमल के समान नेत्रवाली सीता को कमल बहुत प्रिय रहे हैं। उसे न देखने के कारण मुझे जीवित रहना अच्छा नहीं लगता। अहो! इस समय कुटिल काम मुझे सीता का बारम्बार स्मरण दिला रहा है। सीता के साथ रहने पर जो जो वस्तुएँ मुझे स्मरणीय प्रतीत होती थीं वे ही मुझे आज असुन्दर दिखलाई पड़ती हैं। लक्ष्मण! देखो पम्पा के दक्षिण भाग में पर्वत शिखरों पर खिली हुई कनेर की डाल कितनी अधिक शोभा पा रही है। इस पर्वत का पिछला भाग पलाश वृक्षों के कारण आग में जलते हुए से जान पड़ते हैं। पम्पा के जल से अभिषिक्त होकर उसके तट पर खिले हुएं सुगन्धित फूल इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इनके नाम हैं:- मालती, मल्लिका, करवीर, अकोल, कुरंट चूर्णक (सेमल) नीम और मदार। उनके वृक्षों से लदे हुए ये पर्वत शिखर कितने रमणीय दिखलाई देते हैं। इसके अलावा केतकी, उद्दलक (लसोढ़ा) शिरीष, शीशम, सेमल,पलाश, स्यन्दन, चन्दन, हिन्ताल, तिलक तथा नागकेशर के पेड़ भी फूलों से लदे हैं। यहाँ एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष, एक पर्वत से दूसरे पर्वत तथा एक वन से दूसरे वन में जाती हुए वायु अनेक रसों का स्वाद लेती हुई आनन्दित होकर बह रही है। देखो, वह भ्रमर फूलों की बात सोचता हुआ उसी में लीन हो रहा है। स्वयं झड़कर गिरे हुए पुष्प समूह मुलायम बिछौने से प्रतीत होते हैं। लक्ष्मण! देखो ये वृक्ष अपनी ऊपरी डालियों पर फलों का मुकुट धारणकर बड़ी शोभा पा रहे हैं और भ्रमरों का कोलाहलपूर्ण गुंजन मानों एक दूसरे को

बुला रहे हैं। सुमित्रानन्दन यदि ऐसे रमणीय प्रदेश में सीता के साथ आनन्दपूर्वक विचरण करने का अवसर मिले तो मुझे किसी तरह की कोई चिंता न रह जायेगी न दूसरे दिव्य भोगों की अभिलाषा ही होगी। उस पर्वत शिखर पर हरिण अपनी हरिणियों के साथ विचर रहे हैं इससे मुझे सीता के प्रति अनुराग अत्पन्न होकर उसका स्मरण हो आता है। यदि उस रमणीय शिखर पर प्राणवल्लभा सीता का दर्शन पा सकूँगा तभी मेरा कल्याण होगा। सौम्य! जो लोग अपनी प्रिया के साथ रहकर यहाँ की सुगंधित शीतल मंद पवन का सेवन करते हैं वे धन्य हैं। लक्ष्मण! जब धर्म के ज्ञाता महाराज जनक सबके साथ बैठकर मुझसे सीता का कुशल समाचार पूछेंगे तो उस समय मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा? जिसने राज्य से वंचित हो जाने पर भी मेरा साथ नहीं छोड़ा और वन में मेरे पीछे-पीछे आई उसके बिना मैं अपना जीवन कैसे रख सकूँगा। उस सुन्दर मनोहर जनक दुलारी के बिना मेरी सुध-बुध खोयी जा रही है। अब वैदेही की वह आनन्ददायक बातें कहाँ सुनने को मिलेंगी। वन में मुझे पीड़ित देखकर वह मुझे बहलाने के लिए कितनी अच्छी अच्छी बातें करने लगती थीं। अयोध्या वापस लौटने पर अपनी माताओं को अथवा भ्रातृवत्सल भरत के पूछने पर मैं सबको क्या उत्तर दूँगा? अब राम को अनाथ की भाँति विलाप करते हुए देखकर लक्ष्मण युक्तियुक्त वाणी में बोले- भैया! आपका कल्याण हो। आप अपने को सम्हालिये और इस तरह शोक न कीजिये। रघुनन्दन! यदि रावण पाताल या उससे भी दूर कहीं चला जाये तो भी अब वह किसी तरह जीवित नहीं रह सकता। वह यदि दिति के गर्भ में भी छिप जाये तो भी मैं उसे मार कर मिथिलेश कुमारी को वापस ले आऊँगा। आप अब धैर्य को अपना कर इसके लिए उत्साहपूर्वक उद्योग करें क्योंकि उसके बिना कोई सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। उत्साही पुरुष कठिन से कठिन काम आ पड़ने पर हिम्मत नहीं हारते और हम लोग भी उसी के बल पर जनकनंदिनी को प्राप्त कर सकते हैं। आप कामी के से व्यवहार का त्याग कीजिये। आप पवित्र अन्तःकरण वाले होकर भी लगता है अपने स्वरूप को भूल गये हैं। लक्ष्मण के इस तरह समझाने पर श्रीराम ने धैर्य धारण किया और पम्पा सरोवर लांघकर आगे बढ़े। फिर सारे वन में सीता की खोज करने लगे। उस समय वानर राज सुग्रीव पम्पा के निकट घूम रहे थे। अब उनकी दृष्टि

तुरन्त श्रीराम और लक्ष्मण पर पड़ी। उन्हें देखकर सुग्रीव ने सोचा निश्चय ही इन्हें मेरे शत्रु बाली ने ही भेजा होगा। इससे वे इतने भयभीत हो गये कि वे खाने पीने की चेष्टा ही न कर सके और महान दुःख में पड़ गये। मतंग मुनि का वह आश्रम परम पवित्र और सुखदायक था। उसमें मुनि के शाप से बाली का प्रवेश होना बहुत कठिन था। इसलिये दूसरे वानरों का वह आश्रय बना था। अब श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर वे भी भयभीत होकर आश्रम के भीतर चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

दूसरा सर्ग

सुग्रीव का हनुमान जी को श्रीराम लक्ष्मण के पास भेद लेने के लिये भेजना

श्रीराम और लक्ष्मण को आयुध लेकर आते हुए देखकर सुग्रीव के मन में बड़ी चिंता हुई। उस समय अपने मन को सुस्थिर न रख सके और श्रीराम और लक्ष्मण को देखते हुए अपने मंत्रियों से बोले- निश्चय ही ये दोनों वीर बाली के भेजे हुए हैं। इन्होंने वल्कल वस्त्र इसलिये धारण कर लिये हैं जिससे हम इन्हें पहचान न सकें। उधर जब सुग्रीव के दूसरे साथियों ने श्रीराम और लक्ष्मण को आते देखा तो वे भागकर दूसरे शिखर पर जा पहुँचे। इधर सुग्रीव के सभी सचिव ऋष्यमूक पर्वत पर एकत्र हो वानर राज के सामने हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। तब सुग्रीव को अत्यधिक भयभीत होते देखकर हनुमान जी बोले- आपलोगबाली के भय के कारण व्यर्थ भयभीत हो रहे हैं। जिसके डर से आप यहाँ भागकर आये हैं। उस निर्दय बाली को मैं यहाँ नहीं देखता। आप को कष्ट देने वाला पापाचारी भाई यहाँ आ ही नहीं सकता। आप मन को स्थिर रखकर दूसरों की सहायता लेकर उनके मनोरथ को समझें और तब उसके अनुसार कार्यवाही करें। हनुमान जी की बात सुनकर सुग्रीव ने कहा, इन बड़ी-बड़ी आँखों वाले, धनुष बाण और तलवार धारण किये राजकुमारों को देखकर कौन भयभीत न होगा। मुझे पूरी तरह संदेह है कि इन्हें बाली ने ही भेजा है। छद्म वेश में विचरने वाले इन शत्रुओं को विशेष

रूप से पहचानने की चेष्टा करनी चाहिये। वे दूसरों पर अपना विश्वास जमा लेते हैं किन्तु दूसरों पर स्वयं विश्वास नहीं करते और अवसर पाकर विश्वासी पुरुषों पर ही प्रहार कर बैठते हैं। राजा लोग बहुदर्शी होते हैं और बदला लेने का अनेक उपाय जानते हैं अतः ऐसे शत्रुभूत राजाओं को गुप्तचरों द्वारा जानना चाहिए। अतः कपि श्रेष्ठ! तुम एक साधारणपुरुष की भाँति यहाँ से जाओ और विभिन्न उपायों से उनका सही परिचय प्राप्त करो। यदि वे प्रसन्न चित्त जान पड़ें तो मेरे प्रति उनका विश्वास जताओ। तुम उनसे मेरी ही ओर मुँह करके खड़े होने का एवं इस वन में प्रवेश करने का कारण अवश्य पूछो। ये जानने की चेष्टा करना वे मेरे प्रति कोई दुर्भावना लेकर तो नहीं आये हैं। तब पवन सुत हनुमान ने 'बहुत अच्छा' कहकर जहाँ राम लक्ष्मण थे उस स्थान की ओर चल दिये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में दूसरा सर्ग पूरा हुआ। (२)

तीसरा सर्ग

हनुमान जी का श्रीराम और लक्ष्मण से वन में आने का कारण पूछना

तदनन्तर हनुमान जी उस स्थान की ओर उछलते हुए चले जहाँ रघुवंशी बन्धु विराजमान थे। उस समय उन्होंने अपने वानर स्वरूप का परित्याग कर तपस्वी का रूप बना लिया था। तब रघुवंशियों के पास पहुँचकर उन्होंने उनसे प्रणाम करके पूछा- वीरों! आप दोनों देवताओं और राजर्षियों के समान प्रभावशाली एवं कठोर व्रत पालन करने वाले जान पड़ते हैं। आपके शरीर की कान्ति बड़ी सुन्दर है। कृपया बतायें आप दोनों इस घोर वन में किस लिये आये हैं। आप दोनों बड़े धैर्यशाली दिखाई देते हैं फिर भी बतायें आप लम्बी लम्बी साँस लेते हुए अंगों पर चीर वस्त्र क्यों धारण कर रक्खा है। आपकी दृष्टि सिंह के समान है। आप विशाल काय सांड की तरह मंदगति से चलते हैं। आपकी भुजायें हाथी के सूँड के समान हैं। आप दोनों राज्य सुख भोगने के योग्य हैं। बतायें आपका इस वन में आना कैसे सम्भव हुआ? क्या आप देव लोक से तो नहीं आये? आपको देखकर ऐसा लगता है मानों सूर्य और चन्द्रमा स्वेच्छा से पृथ्वी पर उतर आये हैं। आपके कंधे सिंह के समान

हैं। आपकी ये विशाल गोल-गोल भुजायें आभूषणों के धारण करने योग्य हैं। फिर भी आपने इन्हें विभूषित क्यों नहीं किया? आपके ये दोनों धनुष अद्भुत अनुलेपन से चित्रित हैं और वज्र के समान प्रकाशित हो रहे हैं। तथा तीरों से भरे आपके तूणीर भी बहुत सुन्दर दिखलायी दे रहे हैं। आप दोनों केखड्ग केचुल छोड़े हुए सर्प के समान शोभायमान हैं। वीरों! इस तरह मैं आपसे बारम्बार परिचय पूछ रहा हूँ आप लोग उत्तर क्यों नहीं देते। यहाँ सुग्रीव नाम के एक बहुत ही श्रेष्ठ वानर रहते हैं जो बड़े धर्मात्मा और पराक्रमी हैं। किन्तु उनके बड़े भाई बाली ने उन्हें घर से निकाल दिया है इसलिये वे अत्यंत दुखी होकर मारे-मारे फिर रहे हैं। मैं उन्हीं के भेजने से यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान है और मैं स्वयं भी वानर जाति का हूँ। सुग्रीव आप दोनों की मैत्री चाहते हैं। मैं उनका मंत्री हूँ और वायु देवता का पुत्र हूँ। मेरी जहाँ इच्छा हो जा सकता हूँ और जैसा रूप चाहूँ धारण कर सकता हूँ। मैं सुग्रीव का दूत बनकर ही ऋष्यमूक पर्वत से यहाँ आया हूँ। इतना कहकर हनुमान चुप हो गये,तब राम चन्द्र का मुख प्रसन्नता से खिल उठा और वे लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण! देखो ये वानर राज सुग्रीव के सचिव हैं और उन्हीं के हित की इच्छा से मेरे पास आये हैं। सुमित्रानन्दन!अब इन हनुमान से तुम्हीं मीठी वाणी में बात-चीत करो। सुनो, जिसको ऋगवेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान नहीं है वह इतनी सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। बहुत बोलने पर भी इनके मुख से कोई अशुद्धि नहीं निकली तथा थोड़े में ही बड़ी कुशलता के साथ अपना सारा अभिप्राय स्पष्ट कर दिया। इन्होंने शब्दों को तोड़ मरोड़कर किसी ऐसे वाक्य का उच्चारण नहीं किया जो सुनने में कर्ण कटु हो। इन्होंने अपनी सारी बातें मध्यम स्वर में ही कही हैं तथा आनन्द देने वाली कल्याणमय वाणी का ही प्रयोग किया है। हृदय कंठ और मूर्धा इन तीनों स्थानों से निकली इनकी वाणी को सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा। ऐसी वाणी तलवार उठाये हुए शत्रु के हृदय को भी बदल सकती है। लक्ष्मण! जिनके पास इनके समान दूत न हो उसके कार्यों की सिद्धि कैसे हो सकती है! श्रीरामचन्द्र की यह बात सुनकर लक्ष्मण ने हनुमान से इस प्रकार कहा- श्री हनुमान! सुग्रीव के सारे गुण हमें पहले से ही मालूम हो चुके हैं। हम दोनों भाई उन्हीं की खोज में यहाँ आये हैं। आप जो

Mookerji sharma (J.E.S) Jammu Collection

मैत्री की बात चला रहे हैं वह हमें स्वीकार है। लक्ष्मण की स्वीकृति सुनकर हनुमान बड़े प्रसन्न हुए और फिर सुग्रीव के विजय सिद्ध हेतु उन दोनों भाईयों के साथ सुग्रीव की मित्रता की इच्छा की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ। (३)

चौथा सर्ग

लक्ष्मण का हनुमान से सारा वृतान्त बताना

श्रीराम का सुग्रीव के प्रति सौम्य भाव जानकर हनुमान के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सोचने लगे अब अवश्य ही सुग्रीव का कार्य पूर्ण होगा और ये महानुभाव जिस प्रयोजन से यहाँ आये हैं वह भी लगता ह् सुग्रीव द्वारा ही सिद्ध होने वाला है। तत्पश्चात् वे हर्ष में भरकर बोले- पम्पा तटवर्ती इस भयंकर वन में आप अपने भाई के साथ यहाँ किस लिये आये हैं? तब राम की आज्ञा से लक्ष्मण ने उन्हें इस प्रकार परिचय दिया- कपि श्रेष्ठ! इस पृथ्वी पर दशरथ नाम के एक परम् तेजस्वी राजा थे। ये उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम हैं। ये सभी को शरण देने वाले हैं और महाराज दशरथ के चारों पुत्रों में अधिक गुणशाली हैं। इनके राज्याभिषेक के समय अचानक कुछ कारणों से इन्हें राज्य से वंचितहोना पड़ा और वन में निवास करने हेतु वन में मेरे साथ यहाँ आना पड़ा। इनके साथ इनकी पत्नी भी थीं। मैं इनका छोटा भाई और दास लक्ष्मण हूँ। किन्तु इस वनवास में तत्पर हुए मेरे भाई की पत्नी को एक राक्षस सूने आश्रम से हर ले गया। हम उसी राक्षस का ठीक ठीक पता लगाने आये हैं। महाभाग! दनु नामक एक दैत्य था। वह शाप के कारण राक्षस बन गया था। उसने सुग्रीव का नाम बताते हुए कहा कि वे ही आपकी पत्नी का अपहरण करने वाले राक्षस का पता बता देंगे। आपकी पूछी हुई सारी बातें मैंने बता दी हैं। अब मैं और श्रीराम सुग्रीव की शरण में आये हैं। महाभाग! जो पूर्वकाल में स्वयं जगत के संरक्षक थे अब वे सुग्रीव को अपना रक्षक बनाना चाहते हैं। मेरे धर्मात्मा बड़े भाई-जो शरणागत वत्सल रहे हैं आज सुग्रीव की शरण में आकर उनकी प्रसन्नता चाहते हैं। जिन राजा दशरथ ने भूमण्डल के समस्त राजाओं का निरन्तर सम्मान किया उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र

श्रीराम आज वानर राज सुग्रीव की शरण आये हैं। अतः सुग्रीव को यूथपतियों सहित इन पर कृपा करनी चाहिए। आँखों में आँसू भरे हुए लक्ष्मण की ऐसी बात सुनकर कुशलवक्ता हनुमानजी बोले- राजकुमारों! वानर राज सुग्रीव को आप जैसे बुद्धिमान एवं जितेन्द्रिय पुरुषों से मिलने की आवश्यकता थी। सौभाग्य की बात है कि आपने स्वयं दर्शन दे दिया। वे राज्य से भ्रष्ट हैं और बाली के साथ उनकी शत्रुता भी है। उनकी स्त्री का बाली ने अपहरण कर लिया है। इसलिए वे भयभीत होकर वन में निवास करते हैं। रघुनंदन! सुग्रीव सीता का पता लगाने के लिए आप दोनों की पूर्ण सहायता करेंगे। तब रघुनाथजी ने स्नेहपूर्ण वचनों में कहा- अच्छा हम लोग सुग्रीव के पास चलें। तत्पश्चात् लक्ष्मण बोले, भैया! ऐसा जान पड़ता है कि सुग्रीव को भी हमसे कुछ कहना है। ऐसी दशा में आप अपना काम सिद्ध हुआ समझें। तब हनुमान जी अपना वानर रूप धारण कर उन वीरों को अपने कंधों पर बिठाया और वहां से ऋष्यमूक पर्वत की ओर चल पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ। (४)

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम-सुग्रीव की मैत्री

तदनन्तर हनुमान जी ने उन दोनों को सुग्रीव के खास स्थान पर बिठाकर वानर राज सुग्रीव के पास पहुँचे और उनसे राम लक्ष्मण का परिचय देते हुए कहा- वानर राज! श्रीरामचन्द्र अपने भाई लक्ष्मण के साथ यहाँ आये हैं। ये महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा पालन करने हेतु इन्हें इस वन में आना पड़ा है। ये श्रीराम पिता द्वारा अपनी पत्नी कैकेयी के लिए दिये हुए वर का पालन करने हेतु वन में आये हैं। जब ये मुनियों की भाँति दण्डकारण्य में निवास करते थे तब एक दिन रावण ने आकर इनकी पत्नी सीता का अपहरण कर लिया है। उन्हीं की खोज के लिए ये आपसे सहायता लेने के लिए आये हैं। ये आपसे मित्रता करना चाहते हैं। इसलिए आप इन्हें अवश्य अपनायें। हनुमानजी की यह बात सुनकर सुग्रीव दर्शनीय रूप धारण कर श्रीराम के पास आये और बड़े प्रेम से बोले- प्रभो पवन सुत हनुमान ने

Mookerji shodhmala (1-6) Jammu Collection

मुझसे आपके यथार्थ गुणों का वर्णन किया है। मैं वानर हूँ और आप नर। आपसे मैत्री करके मेरा ही लाभ होगा। यदि आपको स्वीकार हो तो यह मेरा फैला हुआ हाथ अपने हाथ में लें और परस्पर मैत्री का सम्बन्ध दृढ़ करें। सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम ने हर्ष के साथ सुग्रीव का हाथ पकड़कर उन्हें छाती से लगा लिया। फिर हनुमानजी ने दो लकड़ियों को रगड़कर आग पैदा की और श्रीराम तथा सुग्रीव के बीच साक्षी के रूप में उसे स्थापित किया। तदनन्तर श्रीराम और सुग्रीव ने उस अग्नि की प्रदक्षिणा की और एक दूसरे के मित्र बन गये। तब सुग्रीव श्रीराम से बोले - आज से हम दोनों का सुख दुःख एक है। फिर सुग्रीव ने खूब पत्ते और फूलों वाली शालवृक्ष की एक शाखा तोड़ी और उसे बिछाकर श्रीरामचन्द्र के साथ उस पर बैठे। तत्पश्चात् हनुमान जी ने चन्दन वृक्ष की एक फूलों वाली डाली तोड़कर उसे लक्ष्मण को बैठने के लिए दी। उस समय सुग्रीव श्रीराम से मधुर वाणी में बोले-श्रीराम ! मैं भी घर से निकाल दिया गया हूँ और मेरी पत्नी भी मुझसे छीन ली गयी है। इसीलिए मुझे इस दुर्गम पर्वत पर आश्रय लेना पड़ा है। महाभाग ! अब बाली के भय से पीड़ित हुए मुझ सेवक को अभय दान दीजिए जिससे मेरे लिए किसी प्रकार का भय न रह जाये। तब श्रीराम बोले- वानरराज ! मेरे तूणीर में एकत्र ये बाण अमोघ हैं। इनका वार खाली नहीं जाता। ये मेरे बाण उस दुराचारी बाली पर अवश्य गिरेंगे आज मैं इन बाणों से मार कर बाली को पृथ्वी पर गिरा दूँगा। रघुनाथ जी का यह परम हितकर वचन सुनकर सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बोले, वीर ! मैं अपनी पत्नी तथा अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर सकूँ आप कुछ ऐसा यत्न कीजिए। आप मेरे बैरी भाई की कुछ ऐसी अवस्था कर दें जिससे वह मुझे मार न सके। उस समय श्रीराम और सुग्रीव के इस मैत्रीपूर्ण प्रसंग में, सीता के बांए नेत्र प्रफुल्ल कमल जैसे, सुग्रीव के बांए नेत्र सुवर्ण जैसे और निशाचरों के बाएं नेत्र प्रज्वलित अग्नि की भाँति एक साथ ही फड़क उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पाँचवा सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठा सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को सीता का आभूषण दिखलाना

तत्पश्चात् सुग्रीव ने फिर कहा-श्रीराम ! ये हनुमानजी आपके विषय में मुझे

सारा वृत्तान्त सुना चुके हैं। जब आप लक्ष्मण के साथ वन में निवास करते थे तब रावण ने आपकी पत्नी सीता को हर लिया। उस समय आप कुटिया में नहीं थे और लक्ष्मण भी उन्हें अकेले छोड़कर चले गये थे। वह राक्षस इसी अवसर की प्रतीक्षा में था। ऐसे समय वह गीध जटायु का वध कर रोती हुई सीता को लेकर चला गया। रघुनन्दन! अब आप मेरी बात सत्य मानें कि सीता जहाँ कहीं भी हों मैं उन्हें ढूँढ़ कर आपके सामने ला दूँगा। आपकी पत्नी विष मिले भोजन की तरह दूसरों के लिए अग्राह्य है। इसमें संशय नहीं कि वे सीता ही रही होंगी। वे उस समय हा राम! हा लक्ष्मण! पुकारती हुई नागिन की भाँति छटपटा रही थीं। मुझे देखकर सीता ने अपनी चादर और कई आभूषण ऊपर से गिराये। मैं अभी उन्हें लाये देता हूँ। अब आप उन्हें स्वयं पहचान लें। यह सुनकर श्रीराम बोले- बन्धु! उन्हें शीघ्र ले आओ। उसमें विलम्ब क्यों? तब सुग्रीव शीघ्रता से एक गहन गुफा में गये और चादर तथा आभूषण लेकर निकल आये। उन वस्त्रों और आभूषणों को देखकर श्रीराम की आँखें आँसुओं से भर उठीं। फिर हा प्रिये! कहकर वे रोते-रोते पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय उनके आँसू थमते ही नहीं थे। फिर अपने पास खड़े हुए लक्ष्मण को देखकर वे बोले- लक्ष्मण! देखो, राक्षस के द्वारा हरी जाती हुई सीता ने यह चादर और ये आभूषण पृथ्वी पर डाल दिए थे। लेकिन इस समय भी इनका रूप ज्यों का त्यों दिखलाई पड़ता है। श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण बोले- भैया! मैं इन बाजूबंदों को तो नहीं जानता और न इन कुण्डलों को ही पहचानता हूँ। हाँ, इन दोनों नूपुरों को भाभी के चरणों में प्रणाम करते समय अवश्य देखा करता था। तब श्रीराम सुग्रीव से कहने लगे वह भयंकर राक्षस मेरी प्राण वल्लभा सीता को किस दिशा की ओर ले गया है। मुझे त्रास देने वाला यह राक्षस कहाँ रहता है। मैं केवल उसी के अपराध के कारण सभी राक्षसों को नष्ट कर दूँगा। उसने इस समय मेरा रोष बढ़ा दिया है और अपने लिए मृत्यु का द्वार खोल दिया है। सखे! जिसने मेरी प्रियतमा का हरण किया है, मुझे उसका पता बताओ मैं अभी उसको यमराज के पास पहुँचाता हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को समझाना

श्रीराम ने जब शोक से पीड़ित होकर ऐसी बात कही तब सुग्रीव के आँखों में भी आँसू भर आये और वे बोले- प्रभो! उस नीच राक्षस का निवास स्थान, उसका पराक्रम, उसकी शक्ति के बारे में मुझे कुछ ज्ञात नहीं। किन्तु फिर भी मैं ऐसा यत्न करूँगा जिससे सीता आपको प्राप्त हो जाये। अतः आपको इस तरह सीता के लिए व्याकुल होना व्यर्थ है। क्योंकि आप जैसे महापुरुषों के लिए यह उचित नहीं। यद्यपि मैं जाति का वानर हूँ फिर भी पत्नी के लिए निरन्तर शोक नहीं करता। अब आप धैर्य धारण कर इन आँसुओं को रोकें क्योंकि धैर्य धारण करने वाला कभी कष्ट नहीं उठाता। घबराहट में पड़ा रहने वाला मुनष्य भार से दबी हुई नाव के समान डूब जाता है। अतएव मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि आप अपने ऊपर शोक का प्रभाव न पड़ ने दें। मैं अपने इस मैत्री का आदर करते हुए सलाह देता हूँ कि आप शोक कदापि न करें। तब सुग्रीव से इस प्रकार सान्त्वना पाकर श्रीराम ने अपने मुख को वस्त्र के छोर से पोंछ लिया और सुग्रीव को गले लगाते हुए कहा-सुग्रीव! एक हितैषी मित्र को जैसी सलाह देनी चाहिए तुमने वैसी ही सलाह दी। तुम्हारा कार्य सर्वथा योग्य और उचित है। ऐसे संकट के समय तुम्हारे जैसे बन्धु का मिलना कठिन है। फिर भी तुम्हें सीता का हरण करने वाले उस राक्षस का पता लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। साथ ही तुमको भी मुझसे जो सेवा लेनी हो उसे भी निःसंकोच बताओ। वानरराज! मैंने बाली के बध आदि की जो बात कही है उसे तुम ठीक ही समझो! मैं यह बात सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ। श्रीराम की यह बात सुनकर मंत्रियों सहित सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फिर परस्पर सुख दुख की बातें करते रहे। तब सुग्रीव ने उन बातों को सुनकर अपना कार्य सिद्ध हुआ माना।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम से अपना दुःख कहना

श्रीराम की बातों से सुग्रीव को बड़ा संतोष हुआ। तब वे श्रीराम से हर्षित

होकर बोले- निःसंदेह देवताओं ने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है जो आप जैसे गुणवान् पुरुष मेरे सखा हुए। आप जैसे सहायक के सहयोग से देवताओं का राज्य भी प्राप्त किया जा सकता है फिर खोये राज्य की बात ही क्या? आपने अग्नि को साक्षी बनाकर जो मुझसे मित्रता की- उससे मैं विशेष सम्मानित हुआ। मैं भी आपके योग्य मित्र हूँ इस बात का ज्ञान आपको धीरे-धीरे होगा। मैं स्वयं अपना गुण बताने में असमर्थ हूँ। मित्र वास्तव में धनी हो या दरिद्र, सुखी हो या दुखी, निर्दोष हो या सदोष, वह मित्र के लिए सदा सहायक होता है। निष्पाप! साधु पुरुष तो आवश्यकता पड़ने पर मित्र के लिए धन, सुख और देश को भी त्याग देते हैं। यह सुनकर श्रीराम ने कहा- सखे! तुम्हारी बात बिल्कुल सही है। तत्पश्चात् दूसरे दिन श्रीराम और लक्ष्मण को खड़ा देखकर सुग्रीव ने चारों ओर अपनी चंचल दृष्टि दौड़ाई और एक डाली तोड़ ली और उसे बिछाकर वे श्रीराम के सहित स्वयं उस पर जा बैठे। फिर उन दोनों को आसन पर विराजमान होते देखकर हनुमान जी ने भी साल की एक डाल तोड़ डाली और उस पर लक्ष्मण को बैठाया। उस समय सुग्रीव ने आनन्द से भरकर श्रीराम से कहा- प्रभो! मेरे भाई ने मुझे घर से निकाल कर मेरी स्त्री को भी छीन लिया है। मैं उसी के भय से इस ऋष्यमूक पर्वत पर विचरता हूँ। मैं इस समय भी भ्रान्त चित्त हूँ क्योंकि बाली ने मुझे घर से निकालने के बाद भी मुझसे बैर बांध रखा है। मैं उसी के कारण दुखी और अनाथ हो गया हूँ अतएव आप मुझ पर कृपा करें। तब श्रीराम ने उनसे हँसते हुए कहा- सखे! उपकार ही मित्रता का फल है और अपकार शत्रुता का लक्षण है। इसीलिए आज ही तुम्हारी स्त्री का अपहरण करने वाले उस बाली का बध करूँगा। मेरे ये बाण अभेद्यहोने के साथ इन्द्र के बज्र के समान अमोघ हैं। ये रोष भरे सर्पों की तरह भयंकर हैं। मैं इन बाणों से इस बाली का, जो भाई होते हुए भी तुम्हारा शत्रु है, बध कर डालूँगा। श्रीराम कीबातसुनकर सुग्रीव को अनुपम प्रसन्नता हुई। तब वे श्रीराम को साधुवाद देते हुए बोले-श्रीराम मैं भी शोकाकुल हूँ। इसलिए अपना मित्र समझकर मैं आपसे अपन दुःखनिवेदन करता हूँ। आप मेरे मित्र हैं इसीलिए मैं आप पर पूर्ण विश्वास करके अपना दुःख बता रहा हूँ। इतना कहकर सुग्रीव के आँखों में आँसू आ गये और वे आगे कुछ कहने में समर्थ न हो सके। तब रघुनाथजी के समझाने से उन्होंने

अपने आँसुओं के वेग को रोकते हुए कहा- श्रीराम ! बहुत पहले शक्तिशाली बाली ने मुझे कटु वचन सुनाकर अपने राज्य से नीचे उतार दिया। इतना ही नहीं उसने मेरी स्त्री को छीनकर, मेरे मित्रों को कैद में डाल दिया और उसके बाद भी मेरे विनाश के लिए प्रयत्नशील है। उसके भेजे हुए बहुत से वानरों का मैं बध कर चुका हूँ। अतएव श्रीराम ! आपको देखकर पहले मुझे यही संदेह हुआ था। इस कारण मैं आपके पास नहीं आ सका। और अपने सहायक हनुमान को ही आपके पास भेजा। श्रीराम ! मैंने आपको अपनी हालत संक्षेप में बतायी है। बाली मेरा बड़ा भाई होते हुए भी इस समय मेरा शत्रु है। अतः उसका विनाश होने पर ही मेरा दुःखमिट सकता है। मैंने दुखी होने के कारण आपसे ये सारी बातें बतायीं हैं। क्योंकि एक मित्र अपने मित्र की सहायता हर अवस्था में करने को तैयार रहता है। यह सुनकर श्रीराम ने पूछा- सखे ! तुम दोनों के बीच बैर पड़ने का क्या कारण है ? मैं उसे ठीक-ठीक सुनना चाहता हूँ। तुम लोगों की शत्रुता का कारण ठीक ठीक जान लेने पर ही मैं तुम्हें सुखी बनाने का उपाय कर सकूँगा। जिस प्रकार वर्षा काल में नदियों का वेग बहुत बढ़ जाता है उसी प्रकार तुम्हारे अपमान की बात सुनकर मेरा रोष बढ़ता जा रहा है। अब मेरे धनुष चढ़ाने के पहले तुम मुझसे सारी बातें कह दो क्योंकि मेरे बाण छोड़ते ही तुम्हारा शत्रु तत्काल काल के गाल में समा जायेगा। यह सुनकर सुग्रीव के मुख पर प्रसन्नता छा गयी और उसे तत्काल बैर होने का यथार्थ कारण बताना आरम्भ किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

सुग्रीव का बाली के साथ वैर का कारण बताना

सुग्रीव ने कहा- श्रीराम बाली को मेरे पिता ऋक्षराज बहुत मानते थे। मैं भी उनका बड़ा आदर करता था। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण उन्हें ही किष्किंधा के राज्य पर बैठाया गया था। मैं हर समय उनकी सेवा में रहने लगा। उन दिनों मायावी नामक एक दुष्ट दानव रहा करता था। वह मय दानव का पुत्र और दुन्दुभि का बड़ा भाई था। बाली का स्त्री के कारण उससे

बैर हो गया। वह किष्किंधा पुरी के दरवाजे पर आकर बाली को युद्ध के लिए ललकारने लगा। उस समय मेरे भाई से मायावी राक्षस की ललकार नहीं सुनी गयी और वे वेग के साथ घर के बाहर उस असुर को मारने हेतु निकल पड़े। उस समय मैंने तथा अन्तःपुर की अन्य स्त्रियों ने उनका पैर पकड़कर उन्हें बहुत रोका किन्तु वे किसी की परवाह किये बिना बाहर निकल पड़े। तब भाई पर स्नेह होने के कारण मुझे भी बाली के पीछे-पीछे निकलना पड़ा। उस समय उस असुर ने जब बाली के साथ साथ मुझको भी आते देखा तो वह भयभीत होकर भागने लगा। आगे जाने पर धरती में एक बहुत बड़ा बिल था जो सदैव घास फूस से ढँका रहता। उसमें प्रवेश करना बहुत कठिन था। मायावी अब वेग से उसी बिल में जा घुसा। शत्रु को बिल में घुसते देखकर बाली के क्रोध की सीमा न रही। यह देखकर वे मुझसे कहने लगे- सुग्रीव ! मैं जब तक इस बिल में प्रवेश कर शत्रु को मारता हूँ तब तक तुम इसके दरवाजे पर सावधानी से खड़े रहो। यह सुनकर मैंने भी बाली के साथ-साथ चलने की प्रार्थना की किन्तु मुझे अपने चरणों की सौगंध दिलाकर अकेले बिल के अन्दर चले गये। फिर बिल के भीतर गये उन्हें एक साल से अधिक समय बीत गया लेकिन वे बाहर न निकले। उस समय दरवाजे पर खड़े खड़े उतना ही समय मेरा भी निकल गया। बहुत समय तक उन्हें लौटते हुए न देखकर मेरा हृदय भ्रातृ स्नेह के कारण व्याकुल होने लगा और मेरे मन में उनके मारे जाने की शंका होने लगी। तदनन्तर काफी समय के पश्चात् मैंने उस बिल से फेन सहित खून की धारा बहते हुई देखी। इसे देखकर मैं बहुत दुखी हो गया। इतने में गरजते हुए असुरों की आवाज मेरे कानों में पड़ी। उस समय मेरे भाई भी गर्जना कर रहे थे किन्तु उसे मैं सुन नहीं सका। तब बुद्धि द्वारा विचार करने पर मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि मेरे बड़े भाई मारे गये। फिर तो मैंने उस गुफा के दरवाजे पर एक पत्थर की चट्टान रख दी और भाई को जलान्जलि देकर दुखी मन से किष्किंधा लौट आया। सखे ! वहाँ पहुँचकर मैं इसे छिपा रहा था कि मंत्रियों ने यत्न करके इसे जान लिया। उस समय सबने मिलकर उस राज्य पद पर मुझे अभिषिक्त कर दिया। मैं राज्य का न्यायपूर्वक संचालन कर ही रहा था कि उधर दैत्य को मारकर वानरराज बाली घर लौटे। उस समय मुझे राजगद्दी पर बैठा देखकर उनकी आँखें क्रोध से लाल हो गयीं

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

और कठोर वचन कहते हुए उसने मुझे कैद कर लिया। यद्यपि उसे मैं स्वयं भी बंदी बना सकता था फिर उसके प्रति गुरू भाव होने के कारण मैं ऐसा नहीं कर सका। उस समय यद्यपि मैंने झुककर उनके चरण छुए फिर भी न तो वे प्रसन्न हुए न मुझे आशीर्वाद ही दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

सुग्रीव का बाली द्वारा अपने निष्कासित होने का वृतान्त सुनाना

सुग्रीव ने कहा- मैं बड़े भाई के हित की कामना लेकर उन्हें पुनः प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। श्रीराम! मैंने कहा- भाई यह सौभाग्य की बात है कि आप शत्रु को मारकर सकुशल वापस लौट आये हैं। आपके बिना तो मैं अनाथ हो गया था। अब मैं पूर्णचन्द्रमा के समान छत्र लगाकर चँवर डुलाता हूँ। आप इन्हें स्वीकार करें। वानरराज! मैं आपकी प्रतीक्षा में उस बिल के दरवाजे पर एक वर्ष तक खड़ा रहा। तत्पश्चात् भीतर से खून की धारा निकलते देख मैं व्यथित हो उठा। तब उस बिल के द्वार को एक पर्वत शिखर से ढँक मैं उस स्थान से हट गया और फिर किष्किंधापुरी लौट आया। तत्पश्चात् मंत्रियों ने मुझे अकेला ही लौटा देखकर इस राज्य पर मेरा अभिषेक कर दिया। मैंने इसे स्वेच्छापूर्वक नहीं लिया। अब मंत्रियों, पुरवासियों तथा नगर सहित आपका यह राज्य मेरे पास धरोहर के रूप में रखा है। सौम्य! अब आप मुझपर क्रोध न करें क्योंकि मंत्रियों और पुरवासियों ने मुझे जबर्दस्ती इस राज्य पर बैठाया। क्योंकि राजा से रहित राज्य पर कोई भी आसानी से आक्रमण कर सकता है। तब मेरे द्वारा सारी बातें प्रेम से कहने पर भी उस वानर ने मुझे डांटते हुए कहा- तुझे धिक्कार है। और इतना कहकर उसने सबके सामने मुझे बहुत से निंदित वचन कहे। तत्पश्चात् वह सुहृदों के बीच बोला- आप लोगों को मालूम होगा कि एक दिन मुझसे युद्ध करने मायावी नामक असुर आया था। उसकी ललकार सुनकर मैं तुरन्त राज भवन से निकला। उस समय क्रूर स्वभाव वाला मेरा यह भाई भी मेरे पीछे-पीछे आया। फिर तो वह असुर हम दोनों को देखकर भाग निकला

और एक विशाल गुफा में जा घुसा। तब मैं भी उस गुफा के अंदर घुसता हुआ अपने भाई से बोला-सुग्रीव। अब इस राक्षस को मारे बिना मेरा किष्किंधा लौटना कठिन है। अतएव जब तक मैं उस राक्षस को मारकर वापस नहीं लौटता तब तक तुम इस गुफा के दरवाजे पर खड़े रहकर मेरी प्रतीक्षा करो। उस समय यह सोचकर कि यह तो यहाँ खड़ा ही है। मैं उस गुफा के भीतर जा घुसा। फिर भीतर जाकर उस दानव की खोज में मुझे एक वर्ष लग गया। तत्पश्चात् मुझे वह भयंकर शत्रु दिखलायी पड़ गया। तब मैंने उसे उसके बन्धुबान्धवों सहित काल के गाल में डाल दिया। तब उसके मुख और छाती से भूतल पर इतना रक्त बहा कि उससे सारी गुफा भर गयी। इस प्रकार उसका बध करके जब मैं लौटा तो मुझे बाहर निकलने का कोई मार्ग ही नहीं दिखाई दिया क्योंकि बिल का दरवाजा बंद कर दिया गया था। मैंने उस समय सुग्रीव को पुकारा किंतु मुझे कोई उत्तर न मिला। इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ। फिर बार बार लात मारकर मैंने किसी तरह पत्थर पीछे की ओर ढकेला और यहाँ आ पहुँचा। इस सुग्रीव ने मेरा राज्य हड़पने के लिए ही ऐसा क्रूर कर्म किया था। इतना कह बाली ने मुझे घर से निकाल दिया। श्रीराम! उसने मुझे घर से तो निकाल ही दिया साथ ही मुझसे मेरी स्त्री को भी छीन लिया। तब मैं भागकर ऋष्यमूक पर्वत पर चला आया क्योंकि कुछ विशेष कारण से बाली यहाँ आक्रमण कर ही नहीं सकता था। रघुनाथजी! मेरे और बाली के बीच बैर पड़ने की यही कहानी है। अब उसी बाली का दमन कर आप मुझे भय से मुक्ति करायें। तब श्रीराम हँसते हुए बोले- तुम्हारे भार्या का अपहरण करने वाले उस वानर को अब मैं जीवित देख ही नहीं रहा हूँ। मैं शीघ्र ही तुम्हारा उद्धार करूँगा और तुम्हें तुम्हारे राज्य और पत्नी को वापस दिलाऊँगा। श्रीराम की यह बात सुनकर सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर वे अत्यंत महत्वपूर्ण वचन कहने लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में दसवाँ सर्ग पुरा हुआ (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

सुग्रीव के द्वारा बाली के पराक्रम का वर्णन

तदनन्तर श्रीराम की प्रशंसा करते हुए सुग्रीव ने कहा- प्रभो! आपके

बाण तीक्ष्ण और मर्मभेदी हैं। यदि आप कुपित हो जायें तो सूर्य की भाँति समस्त लोकों को भस्म कर सकते हैं। अब आप बाली के पुरुषार्थ के बारे में थोड़ा जान लें फिर आप जैसा चाहें वैसा कीजियेगा। वह सूर्योदय के पहले ही पश्चिमसागर से पूर्व सागर तक तथा दक्षिण सागर से उत्तर तक घूम आता है फिर भी वह थकता नहीं। वह पर्वतों की चोटियों पर चढ़कर बड़े-बड़े शिखरों को बल पूर्वक उठा लेता है और उसे उछालकर फिर हाथों से थाम लेता है। वन में नाना प्रकार के वृक्षों को उसने वेग पूर्वक तोड़ डाला है। बहुत पहले यहाँ दुन्दुभि नामक एक असुर रहता था। उसके शरीर में एक हज़ार हाथियों का बल था। उसका रूप भैंसे जैसा था और उँचाई कैलाश पर्वत के समान थी। अचानक एक दिन वह इसी दर्प में भरा हुआ समुद्र के पास पहुंचा और बोला- मुझे अपने साथ युद्ध का अवसर दो। हाँ, तुम्हारे साथ युद्ध करने में समर्थ केवल भगवान् शंकर के श्वसुर हिमवान हैं। तुम वहीं जाओ। यह सुनकर असुर शिरोमणि दुन्दुभि समुद्र को भयभीत समझकर हिमालय के वन में जा पहुंचा और उसकी श्वेत शिलाओं को बारम्बार पृथ्वी पर फेंकता हुआ विकट गर्जना करने लगा। तब वहाँ हिमवान् उसके सामने प्रकट होकर बोले दुन्दुभे ! तुम मुझे कष्ट न पहुँचाओ। मैं तुम्हारी तरह युद्ध में कुशल नहीं हूँ। मैं तो केवल तपस्वी जनों का निवास स्थान हूँ। गिरिराज हिमालय की यह बात सुनकर दुन्दुभि क्रोध में भरकर बोला- यदि तुम मुझसे युद्ध करने से डर गये हो तो कोई ऐसे वीर का नाम बताओ जो मेरे साथ युद्ध कर सके। उनकी बांत सुनकर हिमालय ने भी क्रोधपूर्ण वचनों में कहा- दानवराज! देवराज इन्द्र का पुत्र एक परम तेजस्वी और प्रतापी वानर है। वह किष्किंधा नामक पुरी में रहता है और युद्ध की कला में निपुण है। वे ही तुम्हें युद्ध का अवसर प्रदान करेंगे। तुम अब शीघ्र ही वहाँ चले जाओ क्योंकि बाली किसी भी शत्रु की ललकार नहीं सह सकता। वे युद्ध कर्म में सदा तत्पर रहनेवाले हैं। हिमवान् की बात सुनकर दुन्दुभि किष्किंधापुरी में आ पहुँचा। भूमि को कंपाता हुआ भयंकर गर्जना करने लगा। बाली उस समय अन्तःपुर में था। उस राक्षस की गर्जना सुनकर वह स्त्रियों से घिरा हुआ बाहर निकला और युद्ध के लिए डटा हुआ दुन्दुभि से स्पष्ट वाणी में कहा- वीर दुन्दुभे मैं तुम्हारे आने का कारण समझ गया हूं। अब अपने प्राणों की रक्षा करो। यह सुनकर

दुन्दुभि क्रोध से भर उठा और बोला- तुम्हें स्त्रियों के समीप ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिए। पहले युद्ध करो। फिर तुम्हारी बात को समझूँगा। यदि इस समय तुम काम के वशीभूत हो तो मैं तुम्हें सूर्योदय तक का समय दे सकता हूँ। इस बीच तुम अपने हितैषियों से भी सलाह कर लो और साथ ही अपने पुत्र को अपने राज्य पर अभिषिक्त कर दो। फिर तो तुम्हारा घमण्ड मैं चूर करके रहूँगा। मैं युद्ध से डरके असावधान, अस्त्र रहित तथा स्त्रियों से घिरे हुए पुरुषों का बध नहीं करता क्योंकि वह गर्भहत्या के बराबर है। यह सुनकर बाली स्त्रियों से दूर हटकर असुरराज से क्रोधित होकर बोला- यदि तुम निर्भयता से बात कर रहे हो तो यह मत समझो कि मैं दुर्बल हूँ इतना कहकर पिता इन्द्र की दी हुई विजयदायिनी सुवर्णमाला को गले में डालकर बाली कुपित होकर युद्ध में खड़ा हो गया। तत्पश्चात् दुन्दुभि की दोनों सींगें पकड़ कर भीषण गर्जना के साथ उसे बार बार हवा में घुमाया। फिर सिंहनाद करते हुए उसे पृथ्वी पर दे पटका। पृथ्वी पर गिराये जाने पर राक्षस के दोनों कानों से खून की धारा बह निकली। फिर बाली घोर युद्ध करते हुए उस पर मुक्कों, लातों, शिलाओं और पत्थरों का प्रहार करने लगा। फिर अवसर पाकर बाली ने दुन्दुभि को उठाकर पृथ्वी पर दे मारा और अपने शरीर से उसके शरीर को इस तरह दबाया कि दुन्दुभि का शरीर ही पिस गया और उसकी मृत्यु हो गयी। तब बाली ने उसके शरीर को हवा में घुमाते हुए एक योजन दूर फेंक दिया। तब वेग से फेंके गये असुर के मुख से निकली हुई रक्त की बूदें हवा के साथ उड़कर मतंग मुनि के आश्रम में पड़ी। तब वहाँ पड़े हुए रक्त बिन्दुओं को देखकर मुनि कुपित हो सोचने लगे कि कौन यहाँ रक्त की छींटे डाल गया है। वह मूर्ख कौन हो सकता है इतना सोचते हुए मतंग मुनि जैसे ही बाहर निकले वैसे ही उन्हें एक पर्वताकार भैंसा पृथ्वी पर प्राण हीन होकर पड़ा हुआ दिखलायी पड़ा। तब उन्होंने अपने तपोबल से तुरन्त यह जान लिया कि यह एक वानर का काम है। अतएव उन्होंने उस वानर को शाप देते हुए कहा-जिसने खून के छींटों से मेरे इस स्थान को अपवित्र किया है वह आज से इन वन में प्रवेश न करे और न एक योजन तक की भूमि में पैर रखें। यदि वह ऐसा करेगा तो उसका बध हो जाएगा। यदि बाली का कोई सचिव भी यहाँ रहता हो तो वह भी चला

Mookerji sharma IIT(B) Jammu Collection

जाये। आज उन सबके यहाँ आने जाने की अंतिम अवधि है और यदि कल से यहाँ कोई वानर दिखलाई पड़ जाएगा तो वह हजारों वर्ष के लिए पत्थर हो जाएगा। मुनि के इस शाप को सुनकर सभी वानर मतंग वन से चले गये। अब उन सब के लौटने पर जब बाली ने इसका कारण पूछा तो उन्होंने शाप की सारी बातें कह सुनाई। वानरों के मुख से ऐसी बात सुनकर बाली मतंग मुनि के पास पहुँचा और हाथ जोड़कर उनसे क्षमा याचना करने लगा। किन्तु महर्षि ने उसकी कुछ नहीं सुनी। शाप की बात सोंचकर बाली अत्यंत भयभीत हो गया। श्रीराम तबसे बाली ऋष्यमूक के स्थानों पर प्रवेश करना ही नहीं चाहता। अतः मैं अब निर्भय होकर अपने मंत्रियों के साथ यहाँ विचरता रहता हूँ और यह पर्वत शिखर के समान दिखलायी पड़ने वाला हड्डियों का ढेर दुन्दुभि के ही हैं। इधर जो साल के साल विशाल और मोटे वृक्ष हैं बाली इनमें से एक एक को बलपूर्वक हिला-हिलाकर पत्र हीन कर सकता है। नर श्रेष्ठ! मैंने आपके सम्मुख बाली के अपूर्व पराक्रम का वर्णन किया। अब आप सोचिये उस बाली को समरांगण में कैसे परास्त कर सकेंगे। सुग्रीव की बात सुनकर लक्ष्मण को हँसी आ गयी और उन्होंने पूछा- आखिर ऐसा कौन सा काम कर देने पर तुम्हें विश्वास होगा कि श्रीराम बाली का बध कर सकेंगे! तब सुग्रीव ने कहा पूर्व काल में बाली ने साल के इन सातों वृक्षों को एक एक करके कई बार बींध डाला है। अतएव जब श्रीराम चन्द्र इनमें से किसी एक को एक ही बाण से छेद डालेंगे तब इनका पराक्रम देखकर मुझे बाली के मारे जाने का विश्वास हो जाएगा। यदि ये दुन्दुभि की हड्डी को एक ही पैर से उठाकर दो सौ धनुष की दुरी पर फेंक देंगे तब भी मैं मान लूंगा। फिर कुछ देर रुक कर वे श्रीराम से बोले-यह वानर अब तक के युद्धों में कभी हारा नहीं। अतः उसके ही भय से मुझे ऋष्यमूक पर्वत पर शरण लेना पड़ा है। दूसरों के लिए उसे जीतना असम्भव दिखलायी पड़ता है। यद्यपि मेरे श्रेष्ठ सचिव हनुमानजी सदा मेरी सहायता के लिए रहते हैं फिर भी मेरे मन में बाली की शंका बराबर बनी रहती है। प्रभो! मैं बाली से आपकी तुलना नहीं कर सकता। मैं न तो आपको डराना चाहता हूँ और न तो आपका अपमान कर रहा हूँ बल्कि बाली के भयानक कर्मों ने मेरे मन मे कायरता उत्पन्न कर दी है। सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम ने मुस्कराते हुए कहा- वानर! यदि तुम्हें इस

समय मुझ पर विश्वास नहीं होता तो युद्ध के समय उसका विश्वास अवश्य करा देंगे। इतना कहकर उन्होंने खिलवाड़ में ही दुन्दुभि के शरीर को अपने पैर के अंगूठे से टांग लिया और उसे देखते ही देखते दस योजन दूर फेंक दिया किन्तु यह देखकर भी सुग्रीव ने शंका करते हुए कहा- यद्यपि उस समय मेरा भाई थका हुआ था और दुन्दुभि का यह शरीर मांस युक्त होने के कारण भारी था उस पर भी बाली ने उसे दूर फेंक दिया था पर आपने उसे तिनके के समान हल्के हो जाने के कारण दूर फेंका है। अतः उसके फेंक दिये जाने पर भी आप दोनों के बल का अन्दाजा ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता। तात! अब इस साल वृक्ष को विदीर्ण कर देने पर ही दोनों के बल का पता चल जाएगा। आप अपने इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाइये और इस साल वृक्ष को लक्ष्य कर एक विशाल बाण छोड़िये। इसमें संदेह नहीं कि आपका वह बाण इस साल वृक्ष को विदीर्ण कर देगा। आप से प्रार्थना है कि आप मेरा यह प्रिय कार्य अवश्य करें।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ (११)

बारहवाँ सर्ग

श्री राम के द्वारा सात साल वृक्षों का भेदन

सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम ने उन्हें विश्वास दिलाने के लिए धनुष बाण हाथ में लिया और एक बाण छोड़ दिया जो सातों साल वृक्षों को एक साथ बींधता हुआ पाताल में चला गया। और पुनः श्रीराम के तरकस में प्रविष्ट हो गया। अब तो श्रीराम के बाण से उन सात वृक्षों को एक साथ बिंधता हुआ देखकर सुग्रीव को बड़ा विस्मय हुआ। वे श्रीराम से बोले- आप समर में अपने बाणों से इन्द्रादि सारे देवताओं का बध कर सकते हैं। फिर बाली को मारना आपके लिए कौन बड़ी बात है। श्रीराम! महेन्द्र और वरूण के समान पराक्रमी आपको एक हितैषी के रूप में पाकर मैं गद्‌गद् हो उठा और मेरा सारा शोक दूर हो गया। तब श्रीराम ने सुग्रीव को गले लगाते हुए कहा- सुग्रीव! हम लोग शीघ्र किष्किंधा चलेंगे। वहाँ तुम अपने भाई बाली को युद्ध के लिए ललकारो। तदनन्तर वे सब किष्किंधापुरी में पहुँचे और गहनवन

के भीतर वृक्षों की आड़ में छिपकर खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने कमर में लँगोट कसकर बाली को बुलाने के लिए गंभीर गर्जना की। भाई का सिंह नाद सुनकर बाली को बड़ा क्रोध आया और वह वेग के साथ घर से निकलकर सुग्रीव से युद्ध करने लगा। उस समय श्रीराम को दोनों भाई परस्पर मिलते जुलते दिखाई दिये। इसलिए प्राणान्तकारी बाण चलाने का विचार उन्हें छोड़ना पड़ा। पर उस समय तक सुग्रीव के पाँव उखड़ गये और वे अपने रक्षक को न देखकर ऋष्यमूक पर्वत की ओर भागे। फिर बाली के पीछा करने पर वह मतंग मुनि के महान वन मे घुस गये। उधर श्रीराम भी लक्ष्मण सहित वहीं आ गये जहाँ सुग्रीव विद्यमान थे।अब उन्हें देखकर सुग्रीव को बड़ी लज्जा आने लगी और वे दीन वचन में बोले- श्रीराम! आपने मुझे बाली के सम्मुख भेजकर स्वयं मुझे पिटता हुआ देखकर भी छिप गये। बताइये आपने ऐसा क्यों किया ? यदि बाली को नहीं मारना था तो यह बात पहले ही बता देते। सुग्रीव को दीन वाणी में बोलते हुए देखकर श्रीराम बोले- तात! मेरी बात सुनो! मैंने ऐसा क्यों किया इसका सही कारण बता रहा हूँ। सुग्रीव! वास्तव में वेशभूषा और चालढाल में तुम दोनों भाई एक दूसरे से बहुत मिलते जुलते हो।ऐसी समानता देखकर मैंने शत्रु संहारक बाण नहीं छोड़ा ताकि कहीं जल्दीबाजी में मेरे बाण से तुम्हारे ही प्राण न चले जायें। जिसको अभय दान दिया है यदि भूल से उसी का बध हो जाये इससे भारी पाप लगेगा अतएव वानरराज! अब तुम जाकर पुनः युद्ध करो और अपनी पहचान के लिए कोई चिह्न धारण कर लो। फिर उन्होंने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण यह उत्तम लक्षणों से युक्त गज पुश्पी लता फूल रही है तुम इसे उखाड़कर सुग्रीव के गले में डाल दो। यह सुनकर लक्ष्मण ने गजपुष्पी लता उखाड़कर सुग्रीव के गले में पहना दिया। तब श्रीराम के वचन से आश्वस्त हो सुग्रीव श्रीरघुनाथ के साथ पुनः किष्किंधापुरी की ओर चल पड़े।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधाकाण्ड में बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ (१२)

तेरहवाँ सर्ग

श्रीराम आदि का पुनः किष्किंधा पहुंचना

तदनन्तर श्रीराम सुग्रीव को लेकर ऋष्यमूक से किष्किंधा पुरी की ओर

चले। श्री रघुनाथ के आगे-आगे सुग्रीव, महाबली लक्ष्मण के साथ साथ चल रहे थे। उनके पीछे हनुमान, नल, नील आदि थे। वे लोग उस समय फूलों के भार से झुके वृक्षों, जल से भरी नदियों और सुंदर दिखलायी पड़ने वाली कन्दराओं, पर्वतों को देखते हुए आगे बढ़ने लगे। उन्होंने मार्ग में वैदूर्यमणि के समान रंग वाले निर्मल जल से भरे सरोवरों को भी देखा। वहाँ नाना प्रकार के पक्षियों की प्रतिध्वनि बराबर गूँजती रहती थी। कहीं कोमल घासों का आहार करने वाले हिरन विचर रहे थे। कहीं, दो दाँत वाले मदमस्त हाथी चलते फिरते पर्वतों के समान दिखाई पड़ते थे। वहीं हाथीं के बराबर वानर भी दिखलाई पड़ते थे। इन सबको देखते हुए श्रीराम आदि सब लोग तेजी से आगे बढ़ने लगे। उस यात्रा के समय एक सघन वन को देखकर श्री राम ने सुग्रीव से पूछा- सखे! यह कौन सा वन है? जिसके वृक्ष मेघों की घटा के समान सुशोभित हो रहे हैं। इसके किनारे किनारे केलों के वृक्ष भी शोभा पा रहे हैं। सुग्रीव ने चलते चलते ही उस वन के बारे में कहा- श्रीराम! यह एक विस्तृत आश्रम है जो सबके श्रम का निवारण करने वाला है। यह उद्यानों और उपवनों से युक्त है। इस आश्रम में सप्तजन नाम से प्रसिद्ध सात मुनि रहते थे। वे कठोर व्रत के पालन में तत्पर थे और सिर नीचा करके तपस्या करते थे। वे नियम पूर्वक रहकर ही जल में शयन करने वाले थे। सात दिन और सात रात व्यतीत करके केवल वायु का आहार करते थे इस प्रकार सात सौ वर्षों तक तपस्या कर सशरीर स्वर्ग को चले गये। अब ये आश्रम इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं और असुरों के लिए भी दुर्दय बना हुआ है। इसमें कोई पक्षी और वनचारी आदि भी नहीं प्रवेश कर सकते। यदि कोई भूल से चला भी जाए तो लौटकर नहीं आता। श्रीराम! इसमें प्रत्यक्ष गाने तथा गाने बजाने के शब्द सुनायी देते हैं। इसमें से विचित्र सुगंधि आती हैं तथा अग्निहोत्र की ज्वाला ज़लती हुई दिखलाई पड़ती है। इसके वृक्षों के शिखर होम किए हुए धूम से सने हुए दिखलाई पड़ते हैं। हे श्रीराम! आप अपने भाई लक्ष्मण सहित उन मुनियों को प्रणाम करें क्योंकि ऐसा करने मे शरीर में किंचित मात्र अशुभ नहीं रह जाता। तदनन्तर श्रीराम ने लक्ष्मण तथा अन्य साथियों सहित उन ऋषियों को प्रणाम किया फिर प्रसन्न चित्त होकर वे सब

आगे बढ़ते हुए किष्किंधापुरी में जा पहुँचे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ (१३)

चौदहवाँ सर्ग

किष्किंधापुरी पहुँचकर सुग्रीव की पुनः गर्जना

किष्किंधापुरी में पहुँचकर वे सब अपने आपको एक वृक्ष की ओट में छिपाकर खड़े हो गये। तब सुग्रीव ने अपने मन में अत्यंत क्रोध का संचय कर बाली को युद्ध के लिए ललकारा। उस समय उसकी अङ्गकान्ति प्रातःकालीन सूर्य की भाँति चमक रही थी। फिर श्रीरामचंद्र की ओर देखकर सुग्रीव ने कहा- वीर! आपने पहले जो बाली बध की प्रतिज्ञा की थी उसे सफल कीजिए। ठीक उसी तरह जैसे आया हुआ अनुकूल समय लता को फल फूल से सम्पन्न कर देता है। उनकी बात सुनकर श्रीराम बोले- वीर! आज तुमने अपनी पहचान के लिए गजपुष्पी लता धारण कर ली है इससे तुम्हारी शोभा बहुत बढ़ गयी है। सुनो, आज मैं बाली से उत्पन्न हुए तुम्हारे भय और बैर को एक ही बाण के द्वारा मिटा दूँगा। सुग्रीव अब तुम अपने भ्राता को दिखला तो दो फिर तो उसका शरीर धूल में लोटता दिखाई देगा। यदि इसके बाद भी वह जीवित बचे तो तुम मुझे दोषी समझना। यद्यपि मैं बहुत दिनों से संकट झेल रहा हूँ फिर भी कभी झूठ नहीं बोला हूँ। अब तुम अपने मन से भय और घबराहट बिल्कुल निकाल दो। जैसे इन्द्र वर्षा के द्वारा किसानों का मनोरथ सफल कर देते हैं। वैसे ही मैं तुम्हारे मनोरथ को सफल करूँगा। अब तुम उस स्वर्ण मालाधारी बाली को बुलाने के लिए विकट गर्जना करो जिससे वह तुरंत नगर के बाहर आ जाये। बाली युद्ध में हर बार विजयी हुआ है और उसे युद्ध से बड़ा प्रेम है इसलिए वह तुम्हारी गर्जना सुनकर नगर के बाहर अवश्य निकलेगा। क्योंकि वीर पुरुष युद्ध के लिए शत्रुओं के तिरस्कार पूर्ण शब्द कभी सहन नहीं कर सकते। श्रीराम के यह वचन सुनकर सुग्रीव ने तुरंत विकट स्वरों में गर्जना की। इसके इस सिंह नाद को सुनकर बड़े-बड़े बैल शक्तिहीन हो इधर उधर भाग निकले तथा मृग भी घोड़ों के समान तीव्र गति से इधर उधर भागने लगे और पक्षी आकाश से पृथ्वी पर गिरने लगे। फिर सूर्य

कुमार सुग्रीव बार-बार इसी तरह की गर्जना करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१४)

पंद्रहवाँ सर्ग

सुग्रीव की गर्जना से बाली का युद्ध के लिए निकलना।

उस समय बाली अन्तःपुर में था। उसी समय उसने अपने भाई का सिंह नाद सुना। इससे उसके मन में महान् क्रोध उत्पन्न हुआ। उसका सारा शरीर तमतमाने लगा और वह राहुग्रस्त सूर्य के समान श्रीविहीन दिखलाई देने लगा तदनन्तर वह क्रोधित हो अपने पैरों के धमाके से पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ बड़े वेग से बाहर निकला। उस समय बाली की पत्नी भयभीत होकर घबरा उठी और बोली- वीर! मेरी बात पर ध्यान दीजिए और इस क्रोध का परित्याग करें। यद्यपि युद्ध की कला में कोई आपसे बढ़कर नहीं तथापि इस समय आपका घर से बाहर निकलना मुझे बिलकुल ही अच्छा नहीं लग रहा है। आपको रोकने का एक विशेष कारण भी है। आप उसे भी सुन लें। बात यह है कि सुग्रीव यहाँ पहले भी आये थे और आपको युद्ध के लिए ललकारा था। आपने उन्हें परास्त किया जिससे उन्हें फिर मतंग वन में जाना पड़ा अब उनका यह पुनरागमन मेरे मन में शंका उत्पन्न कर रहा है। इस समय उसकी गर्जना में उत्तेजना है। मेरे विचार से सुग्रीव इस बार अपने किसी प्रबल सहायक के साथ यहाँ आये हैं और उन्हीं के बल पर वे इस तरह गरज रहे हैं। वे किसी ऐसे पुरुष के साथ मैत्री नहीं करेंगे जिसका बल और पौरुष उन्होंने न परख लिया हो। वीर! कुमार अंगद से मुझे पहले ही इस तरह की जानकारी मिल चुकी है। इसीलिए मैं ऐसा कह रही हूँ। एक बार अंगद वन में गये थे। वहाँ उन्हें एक समाचार सुनने को मिला जो इस प्रकार है कि अयोध्या नरेश के दो शूरवीर पुत्र जिन्हें युद्ध में जीतना कठिन है तथा जो श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से प्रसिद्ध हैं, यहाँ वन में आये हुए हैं और वे सुग्रीव के मित्र बन गये हैं उनमें से श्रीराम शत्रु सेना का संहार करनेवाले हैं तथा साधु पुरुषों के आश्रयदाता हैं। वे ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न तथा पिता की आज्ञा में स्थिर रहने वाले हैं। वे उत्तम गुणों की खान हैं और युद्ध कला में अपना सानी नहीं रखते। शूरवीर मैं

आपके लिए हित की बातें कह रही हूँ। आप उसे सुनिये और उसी के मुताबिक काम कीजिए। अच्छा हो आप सुग्रीव को युवराज के पद पर अभिषिक्त कर दीजिए और उनके साथ युद्ध न कीजिए क्योंकि वे आपसे छोटे हैं और लाड़ प्यार पाने योग्य हैं। आप उन्हें अन्तरंग बनाकर अपने पास रखिये। मेरी समझ से सुग्रीव स्वयं आपके प्रेमी हैं। अतः भ्रातृ प्रेम का सहारा लेने के सिवा आपके पास कोई दूसरा चारा नहीं। यदि आप मुझे अपनी हितकारिणी समझते हैं तो मेरी सलाह मान लीजिए। श्री राम इन्द्र के समान तेजस्वी हैं उनसे बैर ठानना उचित नहीं। लेकिन बाली को तारा की यह बात बिल्कुल अच्छी न लगी क्योंकि वह काल के पाश मे बंध चुका था।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पंद्रहवाँ सर्ग पुरा हुआ (१५)

सोलहवाँ सर्ग

बाली का तारा को डाँटकर लौटाना

तारा की ऐसी बात सुनकर बाली ने उसे फटकारते हुए कहा- भीरू! जो कभी परास्त नहीं हुए और जिन्होंने युद्ध के अवसरों पर कभी पीठ नहीं दिखलायी ऐसे लोगों के लिए शत्रु की ललकार सुन लेना मृत्यु से भी बढ़कर दुखदायी होती है। यह सुग्रीव जो इस समय मुझसे युद्ध की इच्छा रखता है उसकी ललकार सह सकने में मैं बिलकुल असमर्थ हूँ। श्रीराम चंद्र जी की बात सोचकर तुम्हें दुखी नहीं होना चाहिए क्योंकि वे धर्म के ज्ञाता हैं और कर्तव्याकर्तव्य को समझनेवाले हैं। अतः वे पाप कर्म नहीं करेंगे। तुम अन्य स्त्रियों के साथ शीघ्र लौट जाओ! मेरे पीछे कदापि न आओ। मैं आगे बढ़कर सुग्रीव का सामना करते हुए उसके घमण्ड को चूर-चूर करूँगा। किन्तु उसके प्राण नहीं लूँगा। तारे! दुरात्मा सुग्रीव मेरे युद्ध से सम्बंधी दर्प को न सह सकेगा और वह स्वयं भाग जायेगा। अधिक न कहकर मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि युद्ध में अपने भाई को पराजित कर शीघ्र लौटूँगा। तब तारा ने बाली का आलिंगन कर रोते-रोते उसकी परिक्रमा की और अन्य स्त्रियों के साथ अन्तःपुर को चली गयी। तत्पश्चात् बाली लंबी-लंबी सांस लेता हुआ नगर के बाहर निकला और शत्रु को देखने की इच्छा से चारों ओर अपनी

दृष्टि दौड़ाने लगा। इतने में ही उन्हें सुग्रीव दिखलाई पड़ गये। तब दृढ़ता के साथ अपना लंगोट बांधकर बाली मुक्का तानते हुए सुग्रीव की ओर चल पड़ा। फिर सुग्रीव को अपनी ही ओर आते देखकर वह बोला- सुग्रीव! मेरे इस मुक्के को देख ले। यह मुक्का तेरे प्राण लेकर ही रहेंगे। बाली के ऐसा कहने पर सुग्रीव क्रोधित होकर बोले- मेरा भी मुक्का तेरे प्राण लेकर रहेगा यह सुनते ही बाली तेजी से सुग्रीव पर मुक्के का प्रहार करने लगा जिससे सुग्रीव के मुख से रक्त गिरने लगा। तत्पश्चात् सुग्रीव ने भी एक साल वृक्ष उखाड़ा और बाली पर दे मारा। उस आघात से बाली के शरीर में घाव हो गया और वह डगमगाती हुई नौका के समान कांपने लगा। उन दोनों का ही बल अद्वितीय था। वे दोनों एक दूसरे को मार डालने की इच्छा से एक दूसरे की दुर्बलता ढूँढ़ने लगे। किन्तु उस युद्ध में बाली की शक्ति बढ़ने और सुग्रीव की शक्ति क्षीण होने लगी। तब सुग्रीव ने श्रीराम को अपनी अवस्था का लक्ष्य कराया। इधर श्रीराम ने जब देखा कि वानर राज सुग्रीव कमजोर पड़ रहे हैं तो उन्होंने बाली की ओर उसे बध करने की इच्छा से देखा। तब उन्होंने अपने धनुष पर विषधर सर्प के समान, भयंकर बाण रखा और उसे जोर से खींचा। उनकी प्रत्यंचा की टंकार ध्वनि से बड़े-बड़े पक्षी और मृग भाग खड़े हुए। फिर उस बाण के छोड़ते ही बाली का वक्षस्थल क्षत-विक्षत हो गया और वह घायल अवस्था में ही तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा। अंत में वह श्रीहीन, अचेत और आंसुओं से गद्‌गद् कंठ से धाराशायी हो गया और फिर धीरे-धीरे आर्तनाद करने लगा। उस समय इन्द्र कुमार बाली के शरीर से पानी के समान रक्त की धारा बहने लगी। वह उसमें धीरे-धीरे नहा गया और फिर उखाड़े हुए पुष्पित अशोक वृक्ष के समान समराङ्गण में पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ (१६)

सत्रहवाँ सर्ग

बाली का श्रीराम को फटकारना

सदैव युद्ध में वीरता दिखलाने वाला बाली श्रीराम के बाण से घायल

होकर कटे वृक्ष की भांति सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा। किन्तु पृथ्वी पर गिर जाने के पश्चात् भी बाली के शरीर की शोभा, प्राण, तेज और पराक्रम नहीं छोड़ सके। श्रीराम के धनुष से निकले उस बाण ने बाली के लिए स्वर्ग का मार्ग खोल दिया। उस समय युद्ध स्थल में गिरा हुआ बाली पृथ्वी पर गिराये हुए सूर्य के समान जान पड़ता था। उसके गले में सोने की माला अत्यंत शोभायमान हो रही थी। तब इस अवस्था में उसे देखकर श्रीराम और लक्ष्मण उसके सम्मान में उसके निकट जा पहुँचे। तब श्रीराम और लक्ष्मण को देखकर बाली विनययुक्त किन्तु कठोर वाणी में बोला- श्रीराम! आप राजा दशरथ के सुविख्यात पुत्र हैं। मैं इस समय आपसे युद्ध करने नहीं आया था। मैं तो किसी दूसरे के साथ युद्ध करने में उलझा हुआ था। उस दशा में आपने मेरा बध किस कारण से किया। इस धरती पर सभी आपकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं- श्रीराम कुलीन, सर्वगुण सम्पन्न, तेजस्वी, उत्तम व्रत आचरण करने वाले, प्रजा के हितैषी तथा दयालु हैं। राजन्! मैं आपके सद्गुणों को जानता था कि आप मुझे असावधान अवस्था में बाण से बेधना उचित नहीं समझेंगे। किन्तु आज मुझे मालूम हुआ कि आप की बुद्धि भी मारी गयी है। आप केवल दिखावे का चोला पहने हैं और वास्तव में अधर्मी हैं। आपने धर्म की आड़ केवल दूसरों को छलने के लिए ली है। जब मैंने आपका तिरस्कार नहीं किया तब आपने मुझे क्यों मारा? श्रीराम आप एक सम्माननीय नरेश के पुत्र हैं तथा आपने धर्म का चिह्न वलकल आदि भी धारण कर रखे हैं। तब आपने ऐसा क्रूरतापूर्ण कर्म क्यों किया? महाराज! रघुकुल में जन्म लेने के बाद भी आपको लज्जा नहीं आती? पृथ्वी, सोना और चाँदी- इन्हीं वस्तुओं के लिए तो राजाओं में परस्पर युद्ध होते हैं। परन्तु यहाँ क्या रखा हुआ है। नीति और विनय, दण्ड और अनुग्रह ये तो राजधर्म हैं। किन्तु इनके उपयोग के लिए भिन्न-भिन्न अवसर हैं। राजाओं को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए। आप तो मर्यादा में स्थित रहने वाले हैं फिर भी जहाँ तहाँ बाण क्यों चलाते फिरते हैं? राजन्! मैं तो निरपराध था फिर आप यह घृणित कर्म करके लोक निंदा के भागीदार क्यों हुए? राजा का बध करने वाला, ब्रह्म हत्यारा, गोघाती और प्राणियों की हिंसा में तत्पर रहने वाला यह सबके सब नरकगामी

होते हैं। चुगली खाने वाले, लोभी, मित्र हत्यारा ये सबके सब पापात्माओं के लोक में जाते हैं। हमारा तो चमड़ा भी कहीं धारण करने योग्य नहीं होता। हमारा मांस भी अभक्ष्य है। फिर आपने मुझे अपने बाणों का शिकार क्यों बनाया। श्रीराम! मनीषी पुरुष तो वानर के चमड़े और हड्डी का भी स्पर्श नहीं करते फिर भी आज मैं आपके हाथों मारा गया। मेरी स्त्री तारा सर्वज्ञ है। उसने मुझे हित की बात बतायी थी किन्तु मैं काल के वश में होकर ही उसकी बातें नहीं सुन सका। राजन्! जैसे सुशीला स्त्री पापात्मा पति से सुरक्षित नहीं हो पाती उसी तरह आप जैसे राजा पाकर वसुधा सनाथ नहीं हो सकती। वास्तव में आप शठ, दुराचारी और मिथ्याचरण करने वाले हैं। महात्मा दशरथ ने आप जैसे पापी को कैसे उत्पन्न किया। हाय, जिसने सदाचार का रस्सा तोड़ डाला है उस राम रूपी हाथी के द्वारा आज में मारा गया। श्रीराम यदि आप युद्ध स्थल में मेरी दृष्टि के सामने आकर मेरे साथ युद्ध करते तो आज मेरे द्वारा अवश्य मारे जाते। जैसे किसी सोये हुए मनुष्य को छिपा हुआ सॉंप आकर डस जाये वैसे ही छिपकर आपने मुझे मारा है। जिस उद्देश्य से आपने सुग्रीव का यह प्रिय कार्य किया उसी उद्देश्य सिद्धि के लिए आपने पहले ही मुझसे कहा होता तो मैं सीता को एक ही दिन में ढूँढ़कर आपके पास ला देता। उस रावण को तो बिना युद्ध किये ही मैं रस्सी में बांध कर यहां तक ले आता। मेरे मरने के बाद सुग्रीव यहां का राजा बने यह अनुचित नहीं है। अनुचित तो केवल इतना है कि आपने मुझे रणभूमि में अधर्मपूर्वक मारा है। अब आपने यदि मेरे मारे जने का कोई उचित उत्तर ढूँढ़ लिया हो तो उसे अच्छी तरह सोच विचार कर कहिए। इतना कहकर बाली चुप हो गया। उसका मुँह सूखने लगा और उसकी पीड़ा बढ़ गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

Mookerji sharma (I.A.S) Jammu Collection

अठारहवाँ सर्ग

श्रीराम का बाली की बात का उत्तर देना

अब श्रीराम के द्वारा मारे जाकर बाली ने जो कठोर वचन कहे तो श्रीराम ने उत्तर दिया- वानर ! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक सदाचार को तुम स्वयं नहीं जानते हो इसीलिए बालोचित अविवेक के कारण आज मेरी निंदा कर रहे हो। धर्म के स्वरूप को ठीक ठीक समझे बिना ही वानरोचित चपलतावश मुझे यह उपदेश दे रहे हो। पर्वत, वन और उपवन युक्त यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की है। इसलिए वे दया करने और दण्ड देने, दोनों के अधिकारी हैं। वे दुष्टों के निग्रह तथा साधु पुरुषों के प्रति अनुग्रह करने में तत्पर हैं। इस समय हमें भरत तथा अन्य राजाओं की ओर से यह आदेश प्राप्त है कि जगत् में धर्म के पालन और प्रसार के लिए यत्न किया जाय। इसलिए धर्म की रक्षा हेतु हम सारी पृथ्वी पर विचरते रहते हैं और धर्ममार्ग से भ्रष्ट पुरुष को विधिपूर्वक दण्ड देते हैं। तुमने अपने जीवन में काम को ही प्रधानता दे रखी है। राजोचित मार्ग पर कभी तुम स्थिर नहीं रहे। तुमने सदा धर्म को बाधा पहुंचायी है और तुम्हारे बुरे कर्मों से सर्वत्र तुम्हारी निंदा की गयी है। सच यह है कि छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य ये तीनों पुत्र तुल्य हैं। वानर ! तुम स्वयं चपल और चंचल हो और ऐसे ही वानरों के साथ रहते भी हो और उन्हीं से परामर्श भी लेते हो इसलिए तुम धर्म का स्वरूप कैसे समझ सकते हो। मैंने यहां जो कुछ भी कहा है उसे स्पष्ट करके बताता हूँ। मैंने तुम्हें जो मारा है उसका कारण कि तुमने सनातन धर्म का त्याग कर अपने छोटे भाई की स्त्री के साथ सहवास किया है। इस सुग्रीव की पत्नी रूपा जो तुम्हारे पुत्र बधू के समान है कामवश उसका उपभोग करते हो। अतएव पापी हो। इस तरह तुम्हारे धर्म से भ्रष्ट हो जाने से तुम्हें ऐसा दण्ड मिला है जो लोक विरुद्ध आचरण करते हैं उन्हें दण्ड देने के सिवा मैं और कोई उपाय नहीं देखता। मैं उत्तम कुल में उत्पन्न हूँ इसलिए तुम्हारे पापों को क्षमा नहीं कर सकता। जो पुरुष अपनी कन्या, बहिन अथवा छोटे भाई की स्त्री को काम बुद्धि से देखता है उसका बध करना ही उसका उपयुक्त दण्ड है। वानर राज ! हम लोग तो भरत की आज्ञा से ही तुम्हारे जैसे लोगों को दण्ड देने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। सुग्रीव से मित्रता होने के कारण मेरा उनके प्रति वही

भाव है जो लक्ष्मण के प्रति। मैंने वानरों के समीप इन्हें स्त्री और राज्य दिलाने के लिए प्रतिज्ञा कर ली है। ऐसी दशा में मैं अपनी प्रतिज्ञा को कैसे तोड़ सकता था। तुम भी अब इसे मान लो कि तुम्हें जो दण्ड दिया गया है वह धर्मानुकूल है। यदि राजा होकर तुम भी धर्म के मार्ग पर चलते तो तुम्हें भी यही करना पड़ता जो कि मैंने किया है। मनु ने भी इसके लिए कहा है कि मनुष्य पाप करके यदि राजा के दिये हुए दण्ड को भोग लेते हैं वे शुद्ध होकर पुण्यात्मा पुरुष की भाँति स्वर्ग लोक में जाते हैं और यदि राजा स्वयं ऐसे अपराधों का दण्ड देने में शिथिलता बर्तता है तो दूसरे का पाप राजा को खुद भोगना पड़ता है। अतः वानर श्रेष्ठ! मुझे व्यर्थ दोष देने से कोई लाभ नहीं। मैंने धर्म के अनुसार ही तुम्हारा बध किया है। अब तुम्हारे बध का एक दूसरा कारण भी है उसे भी सुन लो। उसे सुनकर तुम्हें मेरे प्रति बिल्कुल क्रोध नहीं होगा। राजा आदि समर्थ पुरुष बड़े-बड़े जाल बिछाकर तथा अन्य नाना प्रकार के उपायों से बहुत से मृगों को पकड़ लेते हैं। भले ही वे भाग रहे हों या विश्वस्त होकर बैठे हों। लेकिन उनके लिए इस मृगया (आखेट) में कोई दोष नहीं होता। मैंने भी तुम्हें अपना निशाना इसीलिए बनाया क्योंकि तुम शाखामृग हो। राजा लोग दुर्लभ धर्म, जीवन और लौकिक अभ्युदय देनेवाले होते हैं। इसलिए न तो उनकी निंदा करें और न तो उनसे अप्रिय वचन बोलें। वास्तव में तुम धर्म के स्वरूप को न समझकर केवल रोष के वशीभूत होकर मेरी निंदा कर रहे हो। तब राम के मुख से ऐसी बात सुनकर बाली के मन में बड़ी व्यथा हुई और वह हाथ जोड़कर बोले- नर श्रेष्ठ! आपने जो कुछ कहा है उचित ही है उसमें कोई संदेह नहीं। आप जैसे श्रेष्ठ पुरुष को मेरे जैसे तुच्छ पुरुष उचित उत्तर ही नहीं दे सकता। अतः क्रोधवश मैंने पहले जो कुछ भी अनुचित बात कह डाली है उसके लिए मेरा अपराध नहीं मानना चाहिए। श्रीराम! आप सदैव प्रजा जनों के हित में तत्पर रहने वाले हैं। सचमुच मैं धर्म भ्रष्ट प्राणियों में अग्रगण्य हूँ। और इसी रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध हूँ। अतएव अब आप अपने धर्म तत्व की वाणी से मेरी रक्षा कीजिए। इतना कहकर बाली का गला भर आया और आर्तनाद करके श्रीराम की ओर देखता हुआ धीरे से बोला- भगवन्! इस समय मुझे न तो तारा के लिए और न तो अपने किसी बन्धु-बान्धवों के लिए उतना शोक हो रहा है जितना अपने पुत्र अंगद के लिए। वह मेरा इकलौता

Mookerji sharma (IPS) Jammu Collection

और दुलारा बेटा है। वह मुझे न पाकर बहुत दुखी होगा। अब उसकी रक्षा आप ही कीजियेगा। अब आप ही सुग्रीव और अंगद के रक्षक और कर्तव्य और अकर्तव्य की शिक्षा देने वाले हैं। आपका जो बर्ताव लक्ष्मण और भरत के प्रति है वही अंगद और सुग्रीव के प्रति होना चाहिए। सुग्रीव तारा का तिरस्कार न करने पायें। मैं स्वयं चाहता था कि आपके हाथों मेरा बध हो। इसीलिए तारा के मना करने पर भी मैं सुग्रीव के साथ युद्ध करने चला आया। श्रीराम से इतना कहकर बाली चुप हो गया। उस समय उसकी ज्ञान शक्ति का विकास हो गया था। तब श्रीराम बोले- कपिप्रवर! तुम्हें इसके लिए संताप नहीं करना चाहिए और न तुम्हें मेरे लिए ही चिंता करने की आवश्यकता है। क्योंकि हमने सदैव ही धर्मानुकूल कार्य करने का निश्चय किया है। तुम इस दण्ड को पाकर पाप रहित हो गये हो और तुम्हें शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो गई है। अब तुम अपने हृदय में स्थित शोक, मोह और भय को त्याग दो। कुमार अंगद तुम्हारे जीवित रहने पर जैसा था उसी प्रकार मेरे और सुग्रीव के पास सुख से रहेगा। तब श्रीराम के मधुर वचन को सुनकर बाली ने कहा- प्रभो! मैं आपके बाण से पीड़ित होने के कारण अचेत-सा हो गया था। इसलिए कुछ कठोर बातें कह डालीं। उसके लिए मुझे क्षमा कीजिएगा। मैं प्रार्थना पूर्वक आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

तारा का बाली के समीप आना और उसकी दुर्दशा देखकर रोना

वानरों का राजा बाली बाण से पीड़ित होकर भूमि पर पड़ा था। पत्थरों की मार और वृक्षों के आघात से उसके अंग अंग फूट गये थे। अंत में श्रीराम के बाण से आक्रान्त होकर वह मूर्छित हो गया था। इधर जब उसकी पत्नी तारा ने सुना कि बाली श्रीराम के बाणों से मारे गये तो वह बहुत उद्विग्न हो उठी और अंगद को साथ ले पर्वत कन्दरा से बाहर निकली। उस समय अंगद को चारों ओर से घेर कर ले चलने वाले अनके महाबली वानर भी थे किन्तु वे श्रीराम को धनुष लिए हुए खड़े देखकर भयभीत होकर भागने लगे। तब तारा

दुखी होकर उनसे बोली- वानरों! तुम तो राज सिंह बाली के आगे-आगे चलने वाले थे। अब उन्हें दुर्गति में पड़े हुए देखकर भाग क्यों रहे हो? उस समय वानरों ने सर्वसम्मति से स्पष्ट शब्दों में कहा- देवि! अभी तुम्हारा पुत्र जीवित है। तुम लौट चलो, और अपने पुत्र अंगद की रक्षा करो। इस समय श्रीराम का रूप धारण कर स्वयं यमराज आ पहुँचा है जो बाली को मार कर अपने साथ लिए जा रहा है। तेजस्वी बाली के मारे जाने पर यह सारी वानर सेना श्रीराम से पराजित सी होकर भाग निकली है। अब तुम शूरवीरों द्वारा उस नगरी की रक्षा करो। कुमार अंगद का किष्किंधा के राज्य पर अभिषेक कर दो। उस समय महाराज अंगद की सेवा सभी वानर सेना करेगी। अथवा यह भी समझ लें कि अब इस नगर में तुम्हारा रहना हमें अच्छा नहीं दिखलायी पड़ता क्योंकि सुग्रीव पक्ष के सारे वानर शीघ्र ही किष्किंधा पहुँचेंगे। पहले वे लोग राज्य सुख से वंचित कर दिए गये थे। उस सबसे हम लोगों को महान् भय प्राप्त हो सकता है। उस समय तारा ने उन्हें उत्तर दिया-वानरों! जब मेरे पति ही नहीं रहेंगे तो मुझे पुत्र, राज्य और अपने जीवन से ही क्या लेना देना है, ऐसा कहकर वह रोती बिलखती हुई बड़े जोर से दौड़ी। आगे बढ़कर तारा ने देखा कि जो रण भूमि में बड़े-बड़े पत्थरों को उठाकर फेंकते थे। जिनके वेग में आँधी का समावेश था वे शूरवीर बाली एक दूसरे शूरवीर द्वारा गिराये गये हैं। जैसे मांस के लिए एक सिंह ने दूसरे सिंह को मार डाला हो। फिर आगे बढ़कर उसने देखा कि अपने तेजस्वी धनुष को धरती पर टेके उसके सहारे श्रीराम चन्द्र जी खड़े हैं। साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण और सुग्रीव भी खड़े हैं। तदनन्तर उन सबको पारकर वह रण भूमि में घायल पड़े हुए अपने पति के पास पहुँची और उनकी दशा देखकर वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और फिर उठकर हा आर्य पुत्र! कहती हुई जोर से रोने लगी। उस समय उसे कुररी के समान क्रन्दन करते हुए देखकर सुग्रीव, अंगद का मन व्यथा से भर उठा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

तारा का विलाप

जब तारा ने देखा कि उसके पति बाण से घायल होकर धरती पर पड़े हैं तो वह उनके पास पहुँचकर उनके शरीर से लिपट गयी और विलाप करने लगी- युद्ध में भयानक पराक्रम दिखलाने वाले महान् वीर आज मुझे सामने देखकर बोलते क्यों नहीं। आप पृथ्वी पर क्यों सोये हैं ? उठिये उत्तम शय्या का आश्रय लीजिए। लगता है कि यह पृथ्वी आपको मुझसे भी अधिक प्यारी है तभी आप उसका आलिंगन किये हुए हैं। आपके साथ सदैव जो सुगन्ध युक्त वनों में बिहार किया है। उसको आपने सदा के लिए समाप्त कर दिया है। इस समय मेरा सारा आनन्द लुट गया है। मैं सब प्रकार से शोक समुद्र में डूबी हुई हूँ। इस समय मेरे कठोर हृदय के हजारों टुकड़े क्यों नहीं हो जाते हैं। वानरराज! आपने जो सुग्रीव की स्त्री छीन ली और उन्हें घर से बाहर निकाल दिया है आज उसी का यह फल प्राप्त हुआ है। मैंने जो आपसे हित की बात कही थी उसे भी आपने मोहवश नहीं माना। निःसंदेह आपके जीवन का अंत कर देने वाला काल यहाँ आ पहुँचा था। काकुत्स्थ कुल में उत्पन्न हुए श्रीराम ने बाली को मार कर अत्यंत निंदित कर्म किया है। मैंने भी कभी दीनता पूर्ण जीवन नहीं व्यतीत किया लेकिन अब आपके बिना दीन हो गयी हूँ। आज से मुझे अनाथ की भाँति अपना वैधव्य जीवन व्यतीत करना होगा। नाथ! आपने अंगद को बड़ा लाड़ प्यार किया था। सोचिए, अब उस बालक की क्या दशा होगी। अंगद तुम भी अपने धर्म प्रेमी पिता को अच्छी तरह देख तो लो क्योंकि आज के बाद से उनका दर्शन दुर्लभ हो जायेगा। प्राण नाथ! आप क्यों नहीं इसका मस्तक सूंघकर इसे धैर्य बंधाते। सुग्रीव! अब तुम्हारा मनोरथ सफल हो जायेगा क्योंकि जिसे तुम अपना शत्रु समझते थे वह तुम्हारा भाई मारा गया। अब बेखटके राज्य सुख भोगो और रूपा को भी प्राप्त करो। हे वानरेश्वर बाली! मैं आपकी प्रिय पत्नी हूँ फिर भी आप मुझसे क्यों नहीं बात करते? तारा का यह विलाप सुनकर बाली को अन्य वानर पत्नियां भी अंगद को पकड़कर जोर-जोर से विलाप करने लगीं। तदनन्तर तारा फिर बोली- वानरेश्वर! आपको अपने गुणवान् पुत्र को इस तरह छोड़ कर जाना किसी प्रकार उचित नहीं अगर उसने नासमझी के कारण कोई

अपराध किया हो तो इसे क्षमा कर दें। तारा इस प्रकार वानर पत्नियों के साथ विलाप करती हुई आमरण अनशन करने का निश्चय किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का तारा को समझाना

तदनन्तर तारा को पृथ्वी पर पड़ी देखकर हनुमानजी उसे धीरे-धीरे समझाने लगे। देवि! जीव के जाने अनजाने जितने भी कर्म हैं वे ही सुख- दुःख की प्राप्ति कराने वाले होते हैं। तुम तो स्वयं शोचनीया हो फिर दूसरे किसको शोचनीय समझकर शोक कर रही हो। तुम्हारे पुत्र अंगद कुमार अभी जीवित हैं । तुम्हें इनकी ओर देखना चाहिए और इनके ही उन्नति के लिए विचार करना चाहिए। जिन पर सैकड़ों और हजारों वानर आश लगाये जीवन निर्वाह करते थे वे ही वानर राज अपनी अवधि पूरी कर चुके हैं और धर्मानुसार प्राप्त होने वाले लोक में गये हैं। अतः इनके लिए शोक नहीं करना चाहिए। सती साध्वी देवि! ये सभी श्रेष्ठ वानर, यह तुम्हारा पुत्र अंगद और भालुओं का यह राज्य तुमसे ही सनाथ है। तुम्हीं इनकी स्वामिनी हो। ये अंगद और सुग्रीव इस समय दोनों ही शोक संतप्त हो रहे हैं। अब इन्हें अपने अधीन करके पृथ्वी का शासन करो। वानर राज का अन्त्येष्टि संस्कार कर अंगद का राज्याभिषेक किया जाये। बेटे को राज्य सिंहासन पर बैठा देखकर तुम्हें शान्ति मिलेगी। लेकिन तारा उस समय पति के दुख में विह्वल हो रही थी इसलिए हनुमान जी से बोली, अंगद के समान सौ पुत्र एक ओर और मरे होने पर भी इस वीर वर स्वामी का आलिंगन करके सती होना दूसरी ओर- इन दोनों में से अपने पति के शरीर का आलिंगन करना ही मुझे अधिक श्रेष्ठ जान पड़ता है। मैं न तो वानरों के राज्य की स्वामिनी हूँ और न मुझे अंगद के लिए ही कुछ करने का अधिकार है। इसके लिए इसके चाचा सुग्रीव ही समस्त कार्यों के लिए समर्थ हैं। कपि श्रेष्ठ हनुमान जी! आपकी यह सलाह मेरे किसी काम की नहीं। आपको यह जानना चाहिए कि पुत्र के वास्तविक सहायक पिता और चाचा ही हैं, माता नहीं। मेरे लिए तो वानर राज बाली का

अनुगमन करना ही सर्वथा योग्य है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाइसवाँ सर्ग

बाली का अंगद से मन की बात कहकर प्राण त्यागना

तदनन्तर बाली के प्राणों की गति शिथिल पड़ती गयी। उसने उर्ध्व सांस लेते हुए सामने खड़े हुए सुग्रीव को देखा और उससे बड़े ही स्नेह के साथ कहा- सुग्रीव ! पूर्व जन्म के किसी पाप के कारण मैं तुम्हें अपना शत्रु समझने लगा था। उसकी ओर तुम बिल्कुल ध्यान न देना। हम दोनों भाइयों के बीच जो प्रेम होना चाहिए था वह न होकर हम लोगों में बैर भाव उत्पन्न हुआ। भाई ! अब तुम वानरों का राज्य संभालो और मुझे यमराज के घर जाने को तैयार समझो। मैं अपनी सम्पत्ति तथा यश का तुरन्त त्याग कर रहा हूँ। वीर ! अब मैं तुमसे कुछ बात कहूँगा जो करने में कठिन है लेकिन तुम उसे करना अवश्य। मेरा पुत्र अंगद मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय है। तुम इसे सगे पुत्र की भांति मानना। तारा का यह तेजस्वी पुत्र तुम्हारे समान ही यशस्वी है। यह सदैव पराक्रम दिखलाते हुए अपने योग्य कर्म करेगा। सुषेण की पुत्री तारा सूक्ष्म विषयों के निर्णय करने तथा नाना प्रकार के उत्पातों के चिह्नों को समझने में सर्वथा निपुण है। तारा की किसी सम्मति का परिणाम उल्टा नहीं होता। श्रीराम का काम निःशंक होकर करना और उन्हें अपमानित न होने देना। सुग्रीव ! अब मेरे यह सोने की माला तुम धारण कर लो। इसमें उदार लक्ष्मी का वास है। अब बाली की ऐसीबातें सुनकर सुग्रीव बहुत दुखी हो गये। उस वचन से सुग्रीव का सारा बैर भाव नष्ट हो गया तत्पश्चात् भाई की बात मानकर सुग्रीव ने उस माला को ग्रहण कर लिया। सुग्रीव के माला ग्रहण करने के पश्चात् बाली ने अंगद से स्नेह भरे वाणी से कहा बेटा ! तुम देश काल को समझो। समयानुसार जो कुछ भी सुख दुःख आये उसे धैर्यपूर्वक सहना और मन में सदैव क्षमा भावना रखते हुए सुग्रीव की आज्ञा के अधीन रहना। तुम इनके शत्रुओं का साथ कदापि न देना और अपने इन्द्रियों को हमेशा वश में रखना। तुम न किसी से अत्यधिक प्रेम करना और न मन में

सर्वथा प्रेम का अभाव होने देना। इतना कहते-कहते बाली आँखें घूमने लगी, दांत खुल गये और प्राण पखेरू उड़ गये। अब बाली की मृत्यु से सभी वानर जोर-जोर से विलाप करने लगे। वे कहने लगे- हाय, आज वानर राज के चले जाने से पूरी किष्किंधा ही सूनी हो गयी है। यही नहीं उनके न रहने से सारा वानर समूह ही श्रीहीन हो गया है। उन्होंने गौलभ नामक गंधर्व को महान युद्ध का अवसर दिया और फिर उस दुष्ट गंधर्व को मारकर हम सबको अभयदान दिया है। आज ये ही हमारे स्वामी कैसे मार गिराये गये। उस समय बाली की मृत्यु होने से समस्त वानर उसी प्रकार दुखी हो गये जैसे वन में सांड़ के मारे जाने से गायें दुखी हो जाती हैं। तत्पश्चात् शोक समुद्र में डूबी हुई तारा भी अपने स्वामी की ओर दृष्टिपात करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में बाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेइसवाँ सर्ग

तारा का विलाप

तदनन्तर अपने मृत पति का मुख सूँघती हुई तारा बोली- वीर ! दुःखकी बात है कि आपने मेरी बात नहीं मानी। इस समय श्रीराम रूपी विधाता सुग्रीव के वश में हो गया है। प्राण नाथ ! प्रधान-प्रधान भालू और वानर जो आपकी सेवा में रहा करते थे, इस समय बड़े दुख से आपके लिए विलाप कर रहे हैं। बेटा अंगद भी अत्यंत शोक में डूबा है। आप यह सब भी देखकर जागते क्यों नहीं ? नाथ ! यही वह वीर शय्या है जिस पर पूर्वकाल में आपने ही बहुत से शत्रुओं को मारकर सुलाया है। अब स्वयं मारे जाकर आप भी इसी पर शयन कर रहे हैं। दूसरों को मान देने वाले मेरे प्रियतम तुम मुझ अनाथ को अकेली छोड़कर कहाँ चले। निश्चय ही बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि अपनी कन्या का विवाह किसी शूरवीर के साथ न करे क्योंकि वह मेरी तरह तत्काल विधवा बन जाती है। लगता है मेरा यह कठोर हृदय लोहे का बना है तभी तो अपने स्वामी को मरा हुआ देखकर भी इसके टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाते हैं। पति रहित नारी भले ही पुत्रवती एवं धन धान्य से सम्पन्न हो लेकिन वह सदा विधवा ही कही जायेगी। कपि श्रेष्ठ! आपका सारा शरीर खून से

लथपथ हो रहा है इसलिए मैं अपनी दोनों भुजाओं से आपका आलिंगन नहीं कर पा रही हूँ। आज सुग्रीव कृत्कृत्य हो गये क्योंकि एक ही बाण ने उनका सारा भय हर लिया है। आपकी छाती में जो बाण धंसा है वह मुझे आलिंगन करने से रोक रहा है। तारा की यह बात सुनकर नील ने बाली के शरीर में फंसे हुए उस बाण को निकाल लिया। बाण के निकाल लिए जाने पर बाली के शरीर से सभी घावों से खून की धारायेंबहकरगिरने लगीं मानों किसी पर्वत से लाल गेरू मिश्रित जल की धारायें बह रही हों। तारा उस समय बाण से आहत हुए अपने स्वामी के उस शरीर को पोंछती हुई उन्हें नेत्रों के जल से सींचने लगी। तत्पश्चात् उसने अपने बेटे अंगद से कहा- बेटा! देखो तुम्हारे पिता की अंतिम अवस्था कितनी भयंकर है। अब ये यम लोक जा पहुँचे हैं। तुम इनके चरणों को प्रणाम करो। माता के इतना कहने पर अंगद ने पिता के दोनों पैर पकड़ लिए और कहा- पिताजी! मैं अंगद हूँ। तब तारा फिर कहने लगी। प्राणनाथ! कुमार अंगद पहले की भाँति आपके चरणों को प्रणाम कर रहा है। किन्तु उसे आप आशीर्वाद क्यों नहीं देते? युद्ध में आपसे संतुष्ट हुए जो माला आपको दे रखी थी वह आपके गले में क्यों नहीं देख रही हूँ। मैंने आपके हित की बात कही थी किन्तु आपने उसे स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप आप युद्ध में मारे गये। युद्ध में आपके मारे जाने से मैं भी पुत्र सहित मारी गयी। अब आपके साथ ही लक्ष्मी मेरे पुत्र सहित मुझे भी छोड़ रही है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

तारा का श्रीराम से अपने बध के लिए प्रार्थना करना

उस समय दुख के समुद्र में तारा को डुबी हुई देखकर सुग्रीव को बड़ा संताप हुआ। उनका मन खिन्न हो गया और वे धीरे-धीरे श्रीराम चन्द्र के पास गये। तब श्रीराम के पास पहुँचकर सुग्रीव बोले- राजन्! आपने जैसी प्रतिज्ञा की थी वैसा कर दिखाया। मुझे इससे राज्य की प्राप्ति भी हो गयी है। लेकिन इस कर्म से मेरा जीवन निंदनीय हो गया है और अब मेरा मन सारे भोगों से हट गया है। इस समय तारा के विलाप से सभी का मन दुखी हो गया

और अब मुझे उसके लिए बड़ा दुःखहो रहा है। यहदुःखमुझे जीवन भर बना रहेगा। अब अपने जातीय वृत्ति के अनुसार जैसे-तैसे जीवन निर्वाह करते हुए मैं चिरकाल तक ऋष्यमूक पर ही बना रहना चाहता हूँ। भाई का बध कराकर अब मुझे स्वर्ग का राज्य मिल जाये तो भी मैं उसे श्रेयस्कर नहीं समझता। वीर रघुनंदन! कोई कितना भी स्वार्थी क्यों न हो फिर भी महान् गुणवान् भाई का बध कैसे अच्छा समझेगा। बाली मेरा बध नहीं करना चाहते थे पर मैंने ही काम क्रोध के वशीभूत होकर उनका बध कराया। बन्धु! जैसे वृत्तासुर का बध करने से इन्द्र पाप के भागी हुए थे वैसे ही भाई का बध कराकर मैं भी पाप का भागी हुआ। अब अपने कुल का नाश करने वाला ऐसा पाप कर्म करके मैं प्रजा के सम्मान के योग्य नहीं रहा। राज्य पाना तो दूसरी बात मुझमें युवराज होने की भी क्षमता नहीं। रघुनंदन मैंने जो दुःसह पाप किया है वह मेरे हृदय में विराजमान सदाचार को भी नष्ट किये दे रहा है। ठीक उसी प्रकार जैसे आग में तपाया जाने वाला मलिन स्वर्ण अपने भीतर के मल को नष्ट कर देता है। श्रीराम! मेरे ही कारण बाली का बध हुआ जिससे अंगद का शोक संताप बढ़ गया है और वानर यूथपतियों का समुदाय अधमरा सा जान पड़ता है। अब वीरवर अंगद भी जीवित नहीं रह सकता और तारा भी जो यों ही संताप से दीन हो रही है- उसके भी जीवन का अंत हो जायेगा यह बिल्कुल निश्चित बात है। अतः श्रीराम अपने भाई और पुत्र का साथ देने की इच्छा से मैं भी प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करूँगा। उस समय ये वानर आपकी आज्ञा में रहकर सीता की खोज करेंगे। मेरी मृत्यु के बाद भी आपका कार्य सिद्ध हो जायेगा। अतएव इस समय आप मुझे कुल की हत्या करने के अपराध में प्राण त्याग करने की आज्ञा दीजिए। अब सुग्रीव की ऐसी बातें सुनकर श्रीराम की आँखों में भी आँसू आ गये। वे भी दो घड़ी तक मन ही मन दुख का अनुभव करते रहे। इसी समय उनकी दृष्टि शोक मग्ना तारा पर पड़ी। वह उस समय भी अपने स्वामी के लिए रो रही थी और पति का आलिंगन करके पड़ी थी। तब बाली के प्रधान मंत्रियों ने तारा को वहाँ से हटाया। उस समय तारा बार-बार पति का आलिंगन करते हुए अपने को छुड़ाने की चेष्टा करने लगी। इतने में ही उसने अपने सामने धनुष बाण धारण किये हुए श्रीराम को खड़े देखा। उस समय वे अपने तेज से सूर्यदेव के समान प्रकाशित हो रहे थे।

वे राजोचित लक्षणों से सम्पन्न थे। उन्हें देखकर तारा समझ गयी कि वे ही श्रीराम हैं। तत्पश्चात् तारा तुरन्त ही गिरती पड़ती श्रीराम के समीप पहुँची और बोली- श्रीराम ! आप सीमा से रहित हैं। आपको पाना कठिन है। आप दूरदर्शी एवं क्षमाशील हैं। आपका बल महान् है तथा आप सुदृढ़ शरीर से सम्पन्न हैं। अतः मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आपने जिस बाण से मेरे प्रियतम पति का बध किया है आप उसी बाण से मुझे भी मार दीजिए। मैं मरकर उनके पास चली जाऊँगी क्योंकि मेरे बिना वे कहीं भी सुख से नहीं रह सकेंगे। वे मनोहर लगने वाली स्वर्ग की अप्सराओं को कभी स्वीकार ही नहीं कर सकते। वे मेरे बिना वहाँ उसी तरह का कष्ट उठायेंगे जैसे इस समय सीता के बिना आप। इसलिए आप मेरा बध अवश्य करें ताकि बाली को मेरे विरह का दुख न भोगना पड़े। मैं बाली की ही आत्मा हूँ यह समझकर भी आप मेरा बध कर सकते हैं। ताकि इससे आपको स्त्री हत्या का पाप न लगेगा। पत्नी के बिना पति यज्ञ कर्म का अनुष्ठान नहीं कर सकता। पत्नी को पति का आधा शरीर माना जता है अतः यह समझकर भी आप मुझे मारेंगे तो भी आपको स्त्री बध का दोष नहीं लग सकता। मैं इस समय स्वामी के बिना दुखी और अनाथ हो गयी हूँ। अतः ऐसी दशा में आपको मुझे जीवित रखना उचित नहीं। वैसे भी मैं बाली के बिना अधिक काल तक जीवित नहीं रह सकती। तारा की यह बात सुनकर भगवान्‌श्रीराम बोले - वीर पत्नी ! तुम मृत्यु का विचार त्याग दो क्योंकि विधाता ने ही इस संसार को सुख दुख में संयुक्त किया है। यह सभी जानते हैं। अतः कोई विधाता का लिखा मेट नहीं सकता। तुम्हें यह पहले की भांति ही सुख और आनन्द की प्राप्ति होगी। तुम्हारे पुत्र को पुनः यह राज प्राप्त होगा। तुम शूरवीर की स्त्री हो अतएव तुम्हें इस प्रकार का विलाप शोभा नहीं देता। अब श्रीराम के इस तरह समझाने पर तारा के मुख से विलाप की ध्वनि निकलनी बन्द हो गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पचीसवाँ सर्ग

श्रीराम का अंगद और तारा को समझाना

उस समय लक्ष्मण सहित श्रीराम समान रूप से दुखी थे। वे उस हालत में

सुग्रीव, अंगद और तारा को सांत्वना देते हुए बोले- शोक-संताप करने से मरे हुए जीव की कोई भलाई नहीं होती। अतः आगे के लिए जो कुछ कर्तव्य शेष है उसे विधिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिए। तुम लोग बहुत आँसू बहा चुके। अब लोकाचार का पालन करो। समय बिताकर विहित कर्म करने का कोई फल नहीं होता। जगत् में काल ही सब का कारण है। काल भी अपनी की हुई व्यवस्था का उल्लंघन नहीं कर सकता। उसका किसी के साथ भाईचारे का, मित्रता का अथवा जाति विरादरी का सम्बंध नहीं है। उसे वश में करने का कोई उपाय नहीं है। उस पर किसी का पराक्रम भी नहीं चल सकता। अतः विवेकी पुरुष को सब कुछ काल का ही परिणाम समझना चाहिए। वैसे मेरे द्वारा मारे जाने के कारण बाली स्वयं शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हो गया है। अतएव उनके लिए शोक करना व्यर्थ है और अब तुम्हारे सामने जो कर्तव्य उपस्थित है उसे पूरा करो। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने भी सुग्रीव से कहा- सुग्रीव! अब तुम अंगद और तारा के साथ मिलकर समस्त प्रेत कार्य करो। सेवकों को आज्ञा दो कि वे प्रचुर मात्रा में सूखी लकड़ियां और दिव्य चंदन ले आयें। अंगद जो बहुत दुखी हैं उसे धैर्य बंधाओ और किंकर्तव्यविमूढ़ न बनो। क्योंकि ये सारा नगर तुम्हारे ही अधीन है। इस समय अंगद से कहो कि वह सुगंधित वस्तुएं ले आयें। तार! तुम शीघ्र एक पालकी ले आओ। पालकी को उठाकर ले चलने के लिए जो समर्थ वानर हों वे शीघ्र तैयार हो जायें। वे ही बाली को यहां से श्मशान भूमि ले चलेंगे। लक्ष्मण की बात सुनकर बाली के सचिव तार के मन में हड़बड़ी मच गयी। वह शीघ्रतापूर्वक किष्किंधा नामक गुफा में गया और पालकी तथा शूरवीर वानरों को लेकर फिर शीघ्र ही वापस लौटा। उसके द्वारा लायी गयी पालकी रथ के समान बनी थी और उसमें राजा के बैठने के लिए आसन बना हुआ था। उसमें अनेक चित्र बने थे और उसमें चारों ओर खिड़कियां लगी हुई थीं। वह रक्त चंदन द्वारा बड़ी सुंदरता से बनायी गयी थी। इसके अतिरिक्त वह पुष्पों द्वारा सजायी गयी थी और उस पालकी में कमल की मालाएं भी रखी हुई थीं। तत्पश्चात् श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा कि ये लोग शीघ्र ही बाली के शव को यहां से ले जायें और विधिपूर्वक उसका अंतिम संस्कार करें। तब अंगद के साथ करुण क्रंदन करते हुए सुग्रीव ने बाली का शव उस शिविका में रखा और इसके शरीर को नाना प्रकार के

अलंकारों से विभूषित कर दिया। तत्पश्चात् सुग्रीव ने आज्ञा दी कि मेरे बड़े भाई का मृतक संस्कार शास्त्रानुकूल विधि से किया जाये। अब आगे-आगे बहुत से वानर नाना प्रकार के बहुसंख्यक रत्न लुटाते हुए चलें और उनके पीछे शिविका जाय। तब तार आदि वानर अंगद को हृदय से लगाकर रोते हुए शव के साथ साथ चले। उनके पीछे बाली की सभी पत्नियाँ भी थीं। वे उसके समीप आकर- हा वीर! हा वीर! कहती हुई बारम्बार चिल्ला रही थीं। उस रोदन को सुनकर वहां के पर्वत भी रोते हुए प्रतीत होने लगे। फिर वानरों ने तुंगभद्रा के तट पर एक चिता तैयार की। तदनन्तर शिविका में सुलाए अपने पति के शव को अपनी गोद में लेकर तारा विलाप करने लगी। हा प्रियतम! एक बार मेरी ओर देखो तो सही। तुम्हारे प्राण निकल जाने पर भी तुम्हारा मुख प्रभा से युक्त और प्रसन्न दिखायी पड़ता है। श्रीराम के रूप में ये काल ही तुम्हें खींचकर लिए जा रहा है। तुम्हारी वानरियाँ जो उछलना भी नहीं जानतीं बहुत दूर से तुम्हारे पीछे-पीछे चली आयी हैं। इस समय इन्हें तुम देख क्यों नहीं रहे हो? वानरराज इन तार आदि सचिवों तथा पुरवासियों को विदा कर दीजिए। फिर हम प्रेमोन्मत्त होकर एक साथ क्रीड़ा करेंगे। तब शोक संतप्त अन्य वानरियों ने उसे उठाया और अंगद ने रोते हुए सुग्रीव की सहायता से पिता के शव को चिता के ऊपर रखा। फिर शास्त्रीय विधि से उसमें आग लगाकर उसकी प्रदक्षिणा की। इस समय अंगद की सारी इन्द्रियां शोक से व्याकुल हो उठीं। तत्पश्चात् बाली का दाह संस्कार होने के बाद सभी वानर जलान्जलि देने के लिए तुंगभद्रा नदी के तट पर आये। वहां अंगद को आगे करके अंगद और सुग्रीव सहित सभी वानरों ने बाली के लिए एक साथ जलान्जलि दी। इस प्रकार बाली का दाह संस्कार कर सुग्रीव लक्ष्मण सहित श्रीराम के पास आये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

श्रीराम का किष्किंधा में अंगद और सुग्रीव का अभिषेक।

तदनन्तर वानर सेना के प्रधान-प्रधान वीर सुग्रीव को चारों ओर से घेर

कर अनायास ही श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुए और तब हुनमान हाथ जोड़कर श्रीराम से बोले- काकुत्स्थ नंदन! आपकी कृपा से सुग्रीव को वानरों का यह विशाल राज्य प्राप्त हो गया है। अतएव अब यदि आप मुझे आज्ञा दें तो ये अपने सुंदर नगर में प्रवेश करके सुहृदों के साथ मिलकर अपना सब राज्य कार्य सम्हालें। फिर राज्य पर अभिषिक्त होने पर ये मालाओं तथा चारणों के द्वारा आपकी विशेष पूजा करेंगे। इसलिए आप इन्हें राज्य का स्वामी बनाकर हम वानरों का हर्ष बढ़ायें। यह सुनकर श्रीराम ने कहा- हनुमान मैं पिता की आज्ञा पालन हेतु चौदह वर्षों तक किसी नगर या ग्राम में प्रवेश नहीं करूँगा। वीर सुग्रीव इस समृद्धिशालिनी गुफा में प्रवेश करें और वहां विधिपूर्वक इनका राज्याभिषेक कर दिया जाये। तत्पश्चात् वे सुग्रीव से बोले- कुमार अंगद सदाचार सम्पन्न तथा बल पराक्रम से परिपूर्ण हैं अतः तुम इनको भी युवराज के पद पर अभिषिक्त करो। बड़े भाई के ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते ये युवराज पद के सर्वथा अधिकारी हैं। सौम्य! अब श्रावण मास प्रारम्भ हो गया है। यह किसी पर चढ़ाई करने का समय नहीं है। अतः तुम अपने सुंदर नगरी में जाओ क्योंकि मैं लक्ष्मण के साथ इस पर्वत पर निवास करूँगा। सखे! कार्तिक आने पर तुम रावण बध के लिए प्रयत्न करना। श्रीराम चंद्र की यह आज्ञा पाकर सुग्रीव किष्किंधापुरी में गये। वहां की प्रजा ने सुग्रीव का अपूर्व स्वागत किया। सुग्रीव ने भी उन सबसे कुशल क्षेम पूछी। तत्पश्चात् सुग्रीव ने महलों में प्रवेश किया और वहां सुहृदों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक किया। तत्पश्चात् अनेक सुगंधित वस्तुएं तथा सोलह सुंदर कन्याएं सुग्रीव के पास लायी गयीं। जिन ब्राह्मणों ने सुग्रीव का राज्याभिषेक कराया उन्हें भोजन, रत्नों आदि से संतुष्ट किया गया। सुग्रीव का राज्यतिलक होने के पश्चात् सभी वानर प्रसन्न थे। तत्पश्चात् सुग्रीव ने श्रीराम की आज्ञानुसार युवराज पद पर अंगद का अभिषेक किया। यह देखकर सभी धार्मिक स्वभाव के वानर साधु-साधु कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। इसी अवसर पर उन्होंने श्रीराम की भी भूरि-भूरि प्रशंसा की। तदन्तर सुग्रीव श्रीराम के समीप जाकर उनसे सारी बातें कह सुनायीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (२६)

सत्ताइसवाँ सर्ग

प्रस्त्रवण गिरि पर श्रीराम और लक्ष्मण की बातचीत।

जब सुग्रीव का राज्याभिषेक हो गया तो किष्किंधा में जाकर रहने लगे। उस समय श्रीराम लक्ष्मण के साथ प्रस्त्रवण गिरि पर चले गये और वहीं एक गुफा में उन्होंने रहने के लिए आश्रय लिया। वहाँ निवास करते हुए श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा-लक्ष्मण! देखो यह पर्वत की गुफा कितनी सुंदर और विशाल है। हम वर्षा की रात इसी गुफा में बितायेंगे। सफेद, लाल और काले प्रस्तर खण्ड इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। यहाँ नाना प्रकार के धातुओं की खानें हैं। पास ही नदी बहती है। उसमें रहनेवाले मेढक यहाँ भी उछलते कूदते हुए चले आते हैं। भांति-भांति के पक्षी चहक रहे हैं तथा सुंदर मोरों की बोली गूँज रही है। यहाँ के जलाशय कमलों से अलंकृत हो यहाँ की कितनी शोभा बढ़ा रहे हैं। यह गुफा हमें हवा और वर्षा से बचाने के लिए बड़ी अच्छी होगी। इस गुफा के द्वार पर समतल शिला है जो बाहर बैठने के लिए बड़ी ही सुविधाजनक होगी। देखो इस पर्वत का उत्तरी भाग कटे हुए कोयले की राशि के समान काला दिखायी देता है। इसके दक्षिण दिशा का शिखर कैलाश शृंग के समान श्वेत दिखायी देता है। देखो-गुफा की दूसरी ओर मंदाकिनी के समान तुंगभद्रा नदी बह रही है। यह धारा पश्चिम से पूर्व की ओर जा रही है। इसमें कीचड़ का नाम भी नहीं। कितने ही प्रकार के वृक्ष उस नदी की शोभा बढ़ा रहे हैं। सैकड़ों पक्षी समूह से संयुक्त यह नदी नाना प्रकार के कलरवों से गूंजती रहती हैं। यह नाना प्रकार के रत्नों से सम्पन्न तथा नील कमलों से ढंकी हुई हैं। इस सौम्य नदी के जल का सेवन बड़े-बड़े ऋषि मुनि किया करते हैं। वह देखो अर्जुन और चंदन वृक्षों की पंक्तियां कितनी सुंदर दिखाई देती हैं। इस रमणीय स्थान पर हम लोगों का मन खूब लगेगा। अतः यहीं रहना ठीक रहेगा। किष्किंधापुरी भी यहां से दूर नहीं। वहाँ वानरों के द्वारा बजाये गये मृदंग की मधुर ध्वनि और वाद्य का गंभीर घोष यहाँ तक सुनाई देता है। लक्ष्मण! इस समय निश्चय ही श्रेष्ठ सुग्रीव अपनी पत्नी को पाकर अपने सुहृदयों के साथ आनन्दोत्सव मना रहे होंगे। ऐसा कहकर श्रीराम लक्ष्मण के साथ उस प्रस्त्रवण गिरि पर निवास करने लगे। यद्यपि वह स्थान बहुत रमणीक था किंतु आदरणीय सीता की याद में श्रीराम को वहाँ तनिक भी सुख

नहीं मिलता था। विशेषतः चंद्रदेव का दर्शन कर उन्हें नींद ही नहीं आती थी। कभी कभी उनके लिए आँसू बहाते-बहाते वे अचेत हो जाते। तब उन्हें उस तरह चिंतामग्न देखकर लक्ष्मण ने उन्हें समझाया- भैया! इस प्रकार दुखी होने से कोई लाभ नहीं है। शोक करनेवाले मनुष्य के सभी मनोरथ नष्ट हो जाते हैं। यदि आप उद्यम किये बिना इसी तरह शोक मग्न बैठेंगे तो आप उस राक्षस का बध करने में समर्थ न हो सकेंगे। अब आप शोक को जड़ से उखाड़ फेंकिये और अपने विचार को सुस्थिर कीजिए। फिर उस रावण का संहार करना आपके लिए कौन कठिन काम होगा? वर्षा ऋतु का आगमन हो चुका है। अब शरद ऋतु की प्रतीक्षा कीजिए। उस समय आप रावण का सेना सहित बध करियेगा। भैया! मैं इस तरह आपके बल पराक्रम की याद दिला रहा हूँ। तब लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम बोले- लक्ष्मण! इस समय जैसी बात तुम्हें कहनी चाहिए थी वैसी तुमने कही है। लो मैंने अपने शोक को छोड़कर अपने दुर्धर्ष तेज को बढ़ता हुआ शरत्काल की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। जो व्यक्ति किसी के उपकार से उपकृत होता है उसे अपने उपकार का बदला अवश्य देना चाहिए। अन्यथा वह उपकार करनेवाले के मन में ठेस पहुँचाने वाला होता है। तब लक्ष्मण ने श्रीराम का आशय समझते हुए कहा- नरेश्वर! जैसाकि आपने कहा है वानरराज सुग्रीव आपका मनोरथ शीघ्र सिद्ध करेंगे। अतः आप शत्रु के संहार का दृढ़ निश्चय करते हुए इस वर्षा काल के विलम्ब को सहन कीजिए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ (२७)

अट्ठाईसवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा वर्षा ऋतु का वर्णन।

बाली का बध एवं सुग्रीव का राज्याभिषेक होने के बाद श्रीराम चंद्र जी ने लक्ष्मण से कहा- अब जल की प्राप्ति करानेवाला वर्षा काल आ गया है। सारा आकाश मेघों से छा गया है। सूर्य के द्वारा आकाश समुद्र में से जल पीकर नौ मास तक गर्भ धारण करता है और फिर वही जल के रूप में पृथ्वी पर वर्षा के द्वारा आता है। संध्या कालीन लाली से मेघ खण्डों से घिरा आकाश ऐसा

Mookerji sharma ... Collection

प्रतीत होता है जैसे उसने अपने घाव पर रक्तरंजित पट्टी बांध रखी हो। धीरे-धीरे हवा का बहना उसकी निःश्वास मालूम होती है। संध्याकालीन लाल लाल चंदन बनकर ललाट आदि अंगों को अनुरंजित कर रही है तथा जिसमें नीले रंग का मेघ स्थापित है। इस तरह यह आकाश कामातुर पुरुष के समान जान पड़ता है। यह पृथ्वी सरिता की तरह वाष्प छोड़ रही है। मेघ के उदर से निकली कपूर की डली के समान ठंडी तथा केवड़े की सुगंध से भरी हुई इस बरसाती हवा को मानो अंजलियों में भर कर पिया जा सकता है। यह पर्वत जिस पर अर्जुन के वृक्ष खिले हैं शान्त हुए शत्रुवाले सुग्रीव की भांति जल की धाराओं से अभिषिक्त हो रहा है। ये बिजलियां सोने के बने कोड़ों के समान जान पड़ती हैं। मेघों की गंभीर घोष के रूप में मानो आकाश आर्तनाद कर रहा है। ऐसा लगता है कि बादलों के लेप लगने से ग्रहनक्षत्र और चंद्रमा अदृश्य हो गये हैं। लक्ष्मण! देखो पर्वत शिखरों पर खिले हुए कुटज कैसी शोभा पाते हैं। मैं तो प्रिया विरह से पीड़ित हूँ और ये कुटज पुष्प मेरी प्रेमाग्नि को प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। इस समय निरंतर वर्षा होने के कारण उसके जल से मार्ग टूट-फूट गये हैं इसलिए उन पर रथ आदि नहीं चल रहे हैं। इस समय पहाड़ी नदियाँ वर्षा के नूतन जल को बड़े प्रेम से बहा रही हैं। काले-काले भौंरों के समान प्रतीत होने वाले जामुन के फल आजकल लोग जी भरकर खाते हैं और हवा के वेग से हिले हुए आमके फल पृथ्वी पर गिरते रहते हैं। जिस प्रकार युद्ध के मैदान में हाथी चिंग्घाड़ते हैं उसी प्रकार आकाश में मेघ गरज रहे हैं। इस समय झुंड के झुंड मोरों ने अपना नृत्योत्सव प्रारम्भ कर दिया है। ये जलधर पर्वत शिखरों पर मार्ग विश्राम ले-लेकर आगे बढ़ रहे हैं। बलाकाओं की पंक्ति ऐसी लगती है जैसे आकाश के गले में श्वेत कमलों की सुंदर माला लटक रही हो। छोटे छोटे वीर बहुटी नामक कीड़ों से भूमि की शोभा बढ़ गयी है। वन प्रांत भौरों के सुंदर नृत्य से सुशोभित हो गये हैं तथा पृथ्वी हरी हरी खेती तथा हरे वनों से अत्यंत रमणीय प्रतीत होने लगी हैं। वन के झरनों के समीप उल्लसित हुए मद वर्षो गजराज केवड़े के फूल सूंघ-सूंघकर मतवाले हो उठे हैं। कोयलों की चूर्ण राशि के समान प्रचुर रस से भरे हुए जामुन वृक्ष की शाखाएं ऐसी जान पड़ती हैं जैसे भ्रमरों के समुदाय उनमें सटकर रस पी रहे हैं। विद्युत पताकाओं से अलंकृत एवं जोर जोर से घोष

करते हुए बादलों के रूप युद्ध के लिए तत्पर हाथियों के समान मालूम होते हैं। आकाश से गिरता हुआ मोतियों के समान स्वच्छ जल पत्तों के दोनों में एकत्र हुआ देख पपीहे उसे पीते हैं और वर्षा में भींग जाने के कारण उनकी आंखें विविध रंगों कीदिखायी देती हैं। भ्रमर रूप वीणा की मधुर झंकार हो रही हैं और मेढकों की आवाज कंठ ताल-सी जान पड़ती है। मेघों की गर्जना के रूप में मृदंग गूंज रहे हैं। मेघों की इस गर्जना से चिरकाल से रोकी हुई निद्रा को त्याग कर अनेक प्रकार के रूप और रंग वाले मेढक जोर-जोर से बोल रहे हैं। मोरों के नाचने से लगता है कि वन में नाच गान का भी आयोजन चल रहा है। नदियां चक्रवाकों को वहन करती हुई समुद्र से मिलने वेगपूर्वक चली जा रही हैं। नीले जल से भरे हुए बादल दावानलों से दग्ध हुए पर्वत वद्धमूल होकर सट गये हैं। भ्रमरों के समुदाय केसर शोभित नये-नये कदम्ब पुष्पों का रस बड़े हर्ष के साथ पी रहे हैं। इस समय हाथी मतवाले हो रहे हैं। वृषभ आनन्द मग्न हैं, सिंह अत्यंत पराक्रम कर रहे हैं। राजा लोग युद्ध विषयक उत्साह को छोड़कर मौन हैं। आकाश में लटकते मेघ पृथ्वी को जल से आप्लावित कर रहे हैं। नदियाँ कगारों को काटती हुई तीव्र गति से बह रही हैं। इन्द्र मानों वायुराज द्वारा लाये गये जल कलशों से पर्वतों का अभिषेक कर रहें हैं। जल की धाराओं से घिरे हुए पर्वतों के विशाल शिखर मोतियों के लटकते हुए हारों की भाँति बहुसंख्यक झरनों के कारण अधिक शोभा पाते हैं। देखने में मुक्ता मालाओं से प्रतीत होने वाले झरते हुए झरनों की बड़ी-बड़ी गुफायें अपनी गोद में धारण कर लेती हैं। देवांगनाओं के टूटे हुए मोतियों के हार के समान जल की अनुपम धारायें सम्पूर्ण दिशाओं में गिर रही हैं। पक्षी अपने घोंसलों में छिप रहे हैं। कमल संकुचित हो रहे हैं। मालती खिलने लगी है इससे जान पड़ता है कि सूर्य देव अस्त हो गये हैं। वर्षा के जल ने राजाओं के बैर शान्त कर दिये हैं और मार्ग भी रोक दिये। इस प्रकार उन दोनों की अवस्था एक ही हो गयी है। इस भादों के महीने में कौसल देश के राजा भरत ने चार महीने के लिए आवश्यक वस्तुओं का संग्रहकर निश्चित ही किसी उत्तम व्रत की दीक्षा ली होगी। इस समय सरयू का वेग भी अवश्य बढ़ रहा होगा साथ ही सुग्रीव भी वानर राज्य पर प्रतिष्ठित हो अपनी स्त्री के साथ सुख भोग रहे हैं। किन्तु लक्ष्मण मैं महान् राज्य से भ्रष्ट हो गया हूँ। मेरी स्त्री भी

Mookerji shashtri Jammu Collection

हर ली गयी है। मेरा शोक बढ़ रहा है। मेरे लिए अब वर्षा का दिन बिताना कठिन हो रहा है और इस समय रावण भी मुझे अजेय-सा प्रतीत होता है। वानर सुग्रीव बहुत कष्ट भोगते थे। अब वे दीर्घकाल के पश्चात् अपनी पत्नी से मिले हैं। मेरा कार्य बहुत बड़ा है इसलिए मैं उनसे कुछ कहना नहीं चाहता। पर इस तरह कुछ दिनों विश्राम करने के पश्चात् उपयुक्त समय आया हुआ जानकर वे स्वयं ही मेरे उपकार को समझेंगे इसमें संदेह नहीं। अतः लक्ष्मण मैं शरद् काल की प्रतीक्षा में चुप चाप बैठा हूँ। जो वीर पुरुष किसी के उपकार से उपकृत होता है तो उसे भी उपकार करने वाले को उसका बदला अवश्य देना चाहिए। तब श्रीराम की यह बात सुनकर लक्ष्मण हाथ जोड़कर श्रीराम से बोले- जैसाकि आपका विचार है। वानरराज सुग्रीव शीघ्र ही आपका यह मनोरथ सिद्ध करेंगे। आप शत्रु संहार का हठ निश्चय करते हुए शरद्काल की प्रतीक्षा कीजिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

हनुमान जी के समझाने से सुग्रीव का नील को वानर सैनिकों को एकत्र करने का आदेश देना

हनुमान जी जो शास्त्र के सिद्धान्तों को जानने वाले थे उन्होंने जब देखा कि आकाश निर्मल हो गया और उसमें न तो बिजली ही चमकती है और न तो बादल ही दिखलायी पड़ते हैं तब उन्हें सुग्रीव का ध्यान आया। उन्होंने देखा कि सुग्रीव का प्रयोजन सिद्ध हो जाने के कारण अब वे धर्म और अर्थ के संग्रह में शिथिलता दिखला रहे हैं। अब वे सदा युवती स्त्री के साथ क्रीड़ा विलास में ही लगे रहते हैं। अपनी पत्नी रूपा तथा सुन्दरी तारा को प्राप्त कर अब वे भोग विलास में ही लगे रहते हैं। मंत्रियों के कार्यों की देखभाल भी वे कभी नहीं करते। यह सब सोचकर हनुमान जी वानर राज सुग्रीव के पास गये और उन्हें मनोरम वचनों के द्वारा प्रसन्न करके बोले- राजन्! आपने राज्य और यश प्राप्त कर लिया है तथा कुल-परम्परा के अनुसार लक्ष्मी को भी बढ़ाया किन्तु अभी मित्रों कोअपनाने का कार्य शेष रह गया है। उनका जो कार्य शेष

रह गया है, आपको उसे तुरन्त पूरा करना चाहिए। पृथ्वी नाथ आप सदाचार से सम्पन्न और नित्य सनातन धर्म के मार्ग पर स्थित हैं। अतः आपने मित्र के कार्य को सफल बनाने हेतु जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा कीजिए। जो अपने सब कार्यों को छोड़कर मित्र का कार्य सिद्ध करने के लिए उत्साह पूर्वक शीघ्रता के साथ नहीं लग जाता वह अनर्थ का भागी होता है। शत्रुदमन! भगवान् श्रीराम हमारे परम सुहृद हैं। उनके कार्य का समय बीता जा रहा है। अतः विदेह कुमारी सीता की खोज आरम्भ कर देनी चाहिए। भगवान् श्रीराम को अपने कार्य की जल्दी पड़ी हुई है किन्तु वे संकोचवश आपसे कुछ कह नहीं पाते। वे अपनी मित्रता चिरकाल तक निभाने वाले हैं। वे गुणों में अपनी शानी नहीं रखते। अब आप उनका कार्य सिद्ध कीजिए क्योंकि उन्होंने आपका काम पहले ही सिद्ध कर दिया है। अतः आप प्रधान-प्रधान वानरों को इस कार्य को करने के लिए आज्ञा दीजिए। यदि हम श्रीराम चन्द्र के कहने के पूर्व ही उनका काम आरम्भ कर दें तो वह बीता हुआ नहीं माना जायेगा। वैसे तो जिनसे आपका कोई कार्य नहीं किया है उसका भी कार्य आप सिद्ध करने वाले हैं फिर जिसने आपको राज्य प्रदान करके आपका उपकार किया है इसके लिए तो कहना ही क्या है? अब आप श्रीराम का प्रिय कार्य करने हेतु वानरों को आज्ञा देने में विलम्ब क्यों करते हैं? उन्होंने आपके लिए बाली के प्राण तक लेने में हिचक नहीं की। ऐसे उपकार करने वाले भगवान् श्रीराम का प्रिय कार्य आपको अपनी सारी शक्ति लगाकर करना चाहिए। कपीश्वर! यदि आपकी आज्ञा हो तो हमारी गति आकाश तथा पाताल कहीं भी नहीं रुक सकती। आप कृपाकर आज्ञा दें कि कौन कहाँ से आपकी किस आज्ञा का पालन करने के लिए उद्योग करे। आपके अधीन करोड़ों से अधिक ऐसे वानर मौजूद हैं जिन्हें कोई परास्त नहीं कर सकता। सुग्रीव सत्वगुण सम्पन्न और परम बुद्धिमान थे। उन्होंने हनुमान जी का आशय समझ लिया और तत्काल नील नामक वानर को सम्पूर्ण दिशाओं से सम्पूर्ण वानरों को एकत्र कर लाने की आज्ञा दी और कहा- तुम ऐसा प्रयत्न करो- जिससे मेरी सारी वानर सेना यहाँ इकट्ठी हो जाये और यह भी ध्यान रखना जो भी वानर पन्द्रह दिनों के बाद यहाँ पहुँचेगा उसे प्राणान्त दण्ड दिया जायेगा। यह मेरी निश्चित आज्ञा है। इसके अनुसार तुम अंगद के साथ स्वयं बड़े-बूढ़े वानरों के पास जाओ।

ऐसा कहकर सुग्रीव अपने महल में चले गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

शरद् ऋतु वर्णन तथा श्रीराम का लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजना

तदनन्तर आकाश के मेघों से मुक्त हो जाने पर श्रीराम जो उस समय प्रस्रवण गिरि पर निवास करते थे सीता के विरह में अत्यंत पीड़ा का अनुभव करने लगे। वे सोचने लगे कि सुग्रीव काम में आसक्त हो रहा है और इधर जनकदुलारी सीता का भी अभी तक कुछ पता नहीं चल सका है। धीरे-धीरे रावण पर चढ़ायी करने का समय भी बीता जा रहा है। यह सोचकर श्रीराम का हृदय व्याकुल हो उठा। तत्पश्चात् शरद्काल के स्वच्छ आकाश को देखकर वे मन ही मन सीता का ध्यान करने लगे और फिर बोले- जिसकी बोली सारसों की आवाज के समान मीठी थी तथा जो आश्रम पर रहकर सारसों द्वारा परस्पर एक दूसरे को बुलाने के लिए किये गये मधुर शब्दों से मन बहलाती थी। वह मेरी पत्नी सीता आज किस तरह मनोरंजन करती होगी। जिसके सभी अंग मनोहर हैं तथा जो स्वभाव से ही मधुर भाषण करने वाली है, वह सीता पहले हंसों के मधुर शब्द से जागा करती थी। वही आज मेरी प्रिया वहाँ कैसे प्रसन्न रहती होगी? हाय! मैं नदी, तालब, बावली, कानन और वन उपवन सभी जगह घूमता हूँ परन्तु कहीं भी उस मृगनयनी सीता के बिना मुझे सुख नहीं मिलता। इस तरह श्रीराम बहुत-सी बातें कहकर विलाप करने लगे। उस समय लक्ष्मण फल लेने गये थे। वे पर्वत के रमणीय शिखरों पर घुम-फिर कर जब लौटे तब उन्होंने देखा कि श्रीराम चिंता में मग्न होकर अचेत से हो गये थे। तब लक्ष्मण भी दुखी होकर श्रीराम से बोले- आर्य! इस प्रकार काम के अधीन होकर अपने पौरुष का तिरस्कार करने से क्या लाभ होगा? मन को एकाग्र करने से ही यह सारी चिंता दूर हो सकती है। तात! आप आवश्यक कर्म करने में पूर्ण रूप से लग जाइये। क्योंकि जिनके स्वामी आप हैं वे जनकनंदनी सीता किसी भी दूसरे पुरुष को सुलभ नहीं है क्योंकि जलती हुई आग की लपट के पास जाकर कोई जले बिना नहीं रह सकता। यह

सुनकर श्रीराम बोले- लक्ष्मण तुमने इस समय जो बात कही है वह परम हितकर है। अब निश्चय ही सीता के अनुसंधान कार्य पर ध्यान देना चाहिए। तत्पश्चात् सीता का बार-बार चिंतन करते हुए श्रीराम लक्ष्मण को उदास मुंह से बोले- लक्ष्मण! इन्द्र इस पृथ्वी को जल से तृप्त करके तथा अनाजों को पकाकर अब कृत्कृत्य हो गये। देखो अब मेघ अपना सारा जल बरसाकर शान्त हो गये हैं। अनेक प्रभावशाली झंझावात उमड़-घुमड़ सम्पूर्ण दिशाओं में विचरण करके अब शान्त हो गये हैं। मेघों के जल से धुल जाने के कारण ये पर्वत शिखर पूरी तरह निर्मल हो गये हैं। हे लक्ष्मण! वर्षाकाल समाप्त हो गया है। आकाश स्वच्छ हो गया है और नदी वायु से शीतल होकर धीरे-धीरे बह रही है। शत्रुओं से युद्ध करने का यही समय है। परन्तु मैं सुग्रीव को आते हुए नहीं देख रहा हूँ और न कोई कार्य दृष्टिगोचर हुआ प्रतीत होता है। वर्षा के चार मास सीता के वियोग में मुझे सौ वर्ष के समान प्रतीत हुए हैं। तात! मुझ राज्यहीन, प्रियाहीन पर सुग्रीव अपनी कृपा नहीं करते। मैं इस समय अनाथ के रूप में हूँ। मेरा राज्य छीन लिया गया है और रावण द्वारा मेरा तिरस्कार हुआ है। इस कारण से मैं अत्यंत दुखी हूँ। मैं यहाँ किसी उद्देश्य से आया हूँ और सुग्रीव यह भी समझता है कि राम मेरी शरण में आये हैं फिर भी दुरात्मा सुग्रीव मेरा तिरस्कार कर रहा है। जिस सीता की खोज में उसने समय निश्चित कर दिया था वह उसका भी ख्याल नहीं कर रहा है। अतः लक्ष्मण! तुम जाकर भोग विलास में फँसे हुए मूर्ख सुग्रीव से कहो कि जो उपकार करने वाले पुरुषों को प्रतिज्ञा पूर्ण करने की आशा देकर उसे तोड़ देता है वह संसार के सभी पुरुषों में नीच माना जाता है। ऐसे लोगों के मरने पर मांसाहारी जन्तु भी उनका मांस नहीं खाते। वीर राजकुमार! सुग्रीव को मेरे पराक्रम का ज्ञान हो चुका है ऐसी दशा में भी यदि उसे यह चिंता न हो कि यह बाली की भाँति मुझे भी मार सकते हैं तो यह आश्चर्य की बात है। लगता है अपनी की हुई प्रतिज्ञा को सुग्रीव भूल गया है क्योंकि उसकी कामना पूरी हो चुकी है। उसने वर्षा का अंत होते ही सीता की खोज आरम्भ करने की प्रतिज्ञा की थी किन्तु इस समय वह आमोद प्रमोद में फंस कर हम पर दया भी नहीं करता। अतः लक्ष्मण तुम जाओ और सुग्रीव से बात करो। उसे मेरे रोष का स्वरूप बताते हुए मेरा संदेश कह सुनाओ। कहना कि सुग्रीव तुम्हारा भाई

बाली मारा जाकर जिस रास्ते गया है वह आज भी बन्द नहीं हुआ है फिर बाली तो अकेला ही मेरे बाणों से मारा गया किन्तु सत्य से विचलित होने पर मैं उसे बन्धु-बान्धवों सहित काल के गाल में डाल दूँगा। लक्ष्मण ! इसमें जल्दी करो क्योंकि कार्य आरम्भ करने का समय बीता जा रहा है। तेजस्वी लक्ष्मण ने जब अपने बड़े भाई को इस तरह दुखी देखा तो उन्होंने सुग्रीव के प्रति कठोर भाव धारण कर लिया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (३०)

इक्तीसवाँ सर्ग

प्लक्ष और प्रभाष का सुग्रीव को कर्तव्य का उपदेश देना

श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण बोले--आर्य! सुग्रीव वानर हैं। वानर सज्जनों के मार्ग पर नहीं चलते। देखिए न, सुग्रीव ही अपने कहे हुए वचनों का पालन नहीं कर रहा है। हमने उसके प्रति जो उपकार किया है उसे वह समझता ही नहीं। इसलिए वह राज्य भोगने का अधिकारी नहीं। मेरा क्रोध इस समय बढ़ा हुआ है। मैं इसे रोक नहीं सकता मैं आज ही असत्यवादी सुग्रीव को मारे डालता हूं। फिर अंगद ही राजा बनकर प्रधान वानर वीरों के साथ सीता की खोज करें। इतना कहकर लक्ष्मण हाथ में धनुष बाण लेकर बड़े वेग से चल पड़े। उस समय उनका क्रोध बढ़ा हुआ था। तब उन्हें शान्त करने हेतु श्रीराम ने कहा-लक्ष्मण! तुम्हें ऐसा निषिद्ध काम नहीं करना चाहिए। सदाचरी होने के नाते तुम्हें सुग्रीव के मारने का निश्चय नहीं करना चाहिए। उसके प्रति जो तुम्हारा प्रेम था, उसे निबाहो। तुम्हें सान्त्वनापूर्ण शब्दों द्वारा उसे समझाना चाहिए। श्रीराम के इस तरह समझाने पर वीर लक्ष्मण ने किष्किंधापुरी में प्रवेश किया और रोष भरे हुए ही वानरराज सुग्रीव के भवन की ओर चल पड़े। उस समय वे इन्द्र धनुष के समान तेजस्वी एवं काल के समान भयंकर दिखलायी पड़ते थे। सीता की खोज विषयक जो श्रीराम की कामना थी और सुग्रीव की असावधानी के कारण उसमें बाधा पड़ने से उन्हें क्षोभ हुआ था उन दोनों के कारण लक्ष्मण की क्रोधाग्नि भड़क उठी थी। वे उसी अवस्था में वायु के समान बड़े वेग से चले। वे उस समय अपने पैरों से

मार्ग के शिलाओं को चूर-चूर करते हुए तेजी से चल रहे थे। इसी बीच उन्होंने पर्वतों के बीच किष्किंधापुरी देखी। उस समय लक्ष्मण के ओष्ठ सुग्रीव के प्रति रोष से फड़क रहे थे। उन्होंने किष्किंधा के पास बहुतेरे भयंकर वानरों को देखा जो नगर के बाहर विचर रहे थे। उनके शरीर हाथियों की तरह विशाल थे। उन्होंने लक्ष्मण को देखते ही सैकड़ों शैल शिखर एवं बड़े-बड़े वृक्ष उठा लिये । उन्हें हथियार उठाते देख लक्ष्मण दूने क्रोध से जल उठे और वे प्रलयकारी अग्नि के समान भयंकर दिखलायी पड़ने लगे। तब यह देखकर उन वानरों के शरीर भय से कांपने लगे और वे इधर-उधर भाग गये। तत्पश्चात् कई वानरों ने जाकर सुग्रीव को लक्ष्मण के आने की सूचना दी। सुग्रीव उस समय तारा के साथ प्रेमालाप में मग्न थे। उन्होंने वानरों की बात नहीं सुनी। तब सुग्रीव के प्रमाद तथा अपने भाई के महत्वपूर्ण कार्य पर दृष्टिपात करके लक्ष्मण पुनः क्रोध के वशीभूत हो गये। वे अब अधिक गरम और लंबी-लंबी सांस खींचने लगे। इस समय वे पांच मुखवाले सर्प के समान दिखलायी पड़ने लगे। उस अवसर पर कुमार अंगद क्रोध से भरे हुए नागराज शेष की भांति दृष्टिगोचर होनेवाले लक्ष्मण के पास डरते हुए गये। तब लक्ष्मण ने अंगद से कहा- बेटा! मेरे आने की सूचना सुग्रीव को दो। उनसे कहना- श्रीराम के छोटे भाई लक्ष्मण अपने भाई के दुःख से दुखी होकर तुम्हारे पास आये हैं। उनकी बात सुनकर अंगद ने सुग्रीव के पास जाकर कहा- तात! लक्ष्मण यहां पधारे हैं। किन्तु सुग्रीव उस समय भी काम के वशीभूत होकर पड़े थे। निद्रा ने उन पर पूरा अधिकार कर लिया था इसलिए वे जाग न सके। इतने में बाहर क्रोध से भरे हुए लक्ष्मण को देखकर भय से मोहितचित्त वानर उन्हें प्रसन्न करने के लिए दीनता सूचक वाणी में किलकिलाने लगे। फिर उन वानरों ने सुग्रीव के निकटवर्ती स्थान में एक साथ ही बज्र की गड़गड़ाहट के समान जोर जोर से शब्द किया। उनकी इस महान् गर्जना से सुग्रीव की नींद खुल गयी। किन्तु उस समय उनके नेत्र मद से चंचल और लाल हो रहे थे। तब अंगद के साथ आए हुए दो मंत्री प्लक्ष और प्रभाव ने भी उन्हें लक्ष्मण के आगमन की सूचना दी। उन्होंने सार्थक वचनों द्वारा सुग्रीव को प्रसन्न करते हुए कहा-राजन्। श्रीराम और लक्ष्मण दोनों ही भगवत् स्वरूप हैं। वे ही आपके राज्य दाता हैं। उनमें से एक वीर लक्ष्मण हाथ

में धनुष लिए हुए किष्किंधा के दरवाजे पर खड़े हैं और उनके भय से ही समस्त वानर चीख रहे हैं। वानरपति! पराक्रमी लक्ष्मण को श्रीराम ने यहां भेजा है और वे क्रोध से लाल आँखें किए नगर के द्वार पर उपस्थित हैं। महाराज! अब आप शीघ्र चलें और श्रीराम जैसा चाहते हैं वैसा करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में इक्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

हनुमानजी का सुग्रीव को समझाना

तत्पश्चात् मंत्रियों सहित अंगद की बात सुनकर सुग्रीव आसन छोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने श्रीराम के महत्ता का विचार करके अपने मंत्रियों से कहा- मैंने उनके लिए कभी कोई अनुचित बात मुंह से नहीं निकाली है और न उनका कोई बुरा चेता है फिर श्रीराम के भ्राता मुझ पर क्यों कुपित हैं। उनके क्रोध के बारे में पहले तुम लोगों को यथार्थ रूप से जानकारी कर लेनी चाहिए थी। किसी को मित्र बनाना आसान है किन्तु उसे निभाना बहुत कठिन है। इसी कारण मैं और भी डर गया हूँ। सुग्रीव की यह बात सुनकर वानरों में श्रेष्ठ हनुमानजी ने मंत्रियों के बीच में ही सुग्रीव से कहा-वानरराज! श्रीराम ने अपने भाई लक्ष्मण को यहाँ भेजा है। वास्तव में आपने सीता की खोज करने के लिए जो समय निश्चित किया था उसे इन दिनों प्रमाद में पड़ जाने के कारण आप भूल गये हैं। देखिए न शरद् ऋतु आरम्भ हो गयी है। और अब आकाश में बादल बिल्कुल नही हैं। ग्रह नक्षत्र निर्मल दिखलायी देते हैं और सरिताओं के जल पूर्णतः स्वच्छ हो गये हैं। यह विजय यात्रा करने का समय आ गया है और इसीलिए लक्ष्मण को यहाँ आना पड़ा। श्रीराम बहुत दुखी हैं। अतः यदि लक्ष्मण के मुख से कोई कठोर बात सुनने को मिले तो उसे आप सह लें। मंत्रियों का कर्तव्य है कि वे सदैव राजा को उसके हित की बात बतायें। इसीलिए मुझे यह स्पष्ट रूप से कहना पड़ा। भगवान् श्रीराम यदि क्रोध करके धनुष हाथ में ले लें तो वह सम्पूर्ण जगत् को अपने वश में कर सकते हैं। जिसे पीछे हाथ जोड़कर मनाना पड़ जाए ऐसे पुरुष को क्रोध दिखलाना कदापि उचित नहीं। राजन्! इस समय आपको पुत्र और मित्रों सहित उन्हें प्रणाम

करते हुए अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहना चाहिए। आपको लक्ष्मण के आदेश की उपेक्षा मन से भी नहीं करनी चाहिए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का किष्किंधापुरी की शोभा देखते हुए सुग्रीव के महल में प्रवेश

श्रीराम की आज्ञा के अनुसार सुग्रीव का संदेश आने पर लक्ष्मण ने किष्किंधा नगरी में प्रवेश किया। किष्किंधा के द्वार पर जितने महाबली वानर थे वे लक्ष्मण को देखकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। श्री लक्ष्मण ने द्वार के भीतर प्रवेश करके देखा कि किष्किंधापुरी एक बहुत रमणीय गुफा के रूप में बसी है। वह रत्नमयी पुरी नाना प्रकार के रत्नों से भरी पूरी थी। वहाँ दिव्य माला और वस्त्र धारण करनेवाले परम सुंदर वानर थे। वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले देवताओं और गंधर्वों के पुत्र थे। उस पुरी में बिन्ध्याचल तथा मेरू के समान ऊंचे-ऊंचे महल बने थे। उन्होंने राजमार्ग पर अंगद का रमणीय भवन देखा। साथ ही महामनस्वी वानर शिरोमणियों के भी श्रेष्ठ भवन लक्ष्मण को दृष्टिगोचर हुए। वानरराज सुग्रीव का भवन तो इन्द्रासन के समान रमणीय दिखलायी देता था। उसमें हर किसी का प्रवेश करना कठिन था। वहाँ इन्द्र के दिए हुए फल फूलों से सम्पन्न मनोरम वृक्ष लगाए गये थे। अनेक बलवान् वानर हाथों में हथियार लिए उनकी ड्योढ़ी पर पहरा दे रहे थे। वह सुंदर महल दिव्य मालाओं से सजा हुआ था तथा उसका फाटक सोने का बना था। तदनन्तर सुमित्रा कुमार लक्ष्मण ने उस भवन में ऐसे प्रवेश किया जैसे सूर्यदेव महान् मेघ के भीतर गये हों। उस समय धर्मात्मा लक्ष्मण ने सात ड्योढ़ियों को पारकर बहुत ही गुप्त और विशाल अन्तःपुर को देखा। वहाँ पहुँचते ही लक्ष्मण के कानों में संगीत की मीठी तान सुनाई पड़ी। वीणा के लय पर कोई कोमल कंठ से गा रहा था। लक्ष्मण ने उस अंतःपुर में अनेक रूप रंग की बहुत सी रमणियाँ देखीं। वहाँ नूपुरों की झंकार और करधनी की खनखनाहट सुनकर वीर लक्ष्मण स्वभावतः संकोच में पड़ गये और फिर

धनुष को टंकारते हुए पीछे हट गये और एकांत में जाकर खड़े हो गये। श्री राम के कार्य सिद्धि के लिए कोई प्रयत्न होता न देख वे मन ही मन कुपित हो रहे थे। अब धनुष की टंकार सुनकर सुग्रीव समझ गये कि लक्ष्मण वहाँ आ गये। फिर तो उनका मुख सूख गया। उनके सामने सुग्रीव के जाने का साहस ही नहीं हुआ। तब उन्होंने तारा से कहा, सुंदरी! तुम्हारे देखने में कुमार लक्ष्मण के रोष का आधार क्या हो सकता है। यदि हम लोगों ने इनका कोई अपराध किया हो तो अपनी बुद्धि से सोचकर इसे शीघ्र बतलाओ। तुम स्वयं जाकर लक्ष्मण से मिलो और उन्हें प्रसन्न कर उनके क्रोध का कारण जानने का प्रयत्न करो। महापुरुष स्त्रियों के प्रति कठोर बर्ताव नहीं करते। जिस समय वे तुम्हारे शब्दों से प्रसन्न हो जाएंगे उस समय मैं लक्ष्मण से मिलने जाऊँगा। यह सुनकर तारा लक्ष्मण के समीप गयी। उस समय वह प्रमाद के कारण मस्त हो रही थी। देखने में उसकी आँखें बड़ी मनमोहक प्रतीत हो रही थीं। अब तारा को आते देख लक्ष्मण ने अपनी आँखें नीची कर लीं। उसके आने से लक्ष्मण का क्रोध शांत हो गया और उधर तारा की भी लज्जा समाप्त हो गयी। तत्पश्चात् वह लक्ष्मण से मधुर शब्दों में बोली- हे लक्ष्मण! आपके क्रोध का क्या कारण है। ऐसा कौन पुरुष है जो आपकी आज्ञा का पालन नहीं करता। तारा की यह बात सुनकर लक्ष्मण बोले- हे तारा! तुम्हारा पति काम के बाणों का शिकार हो गया है। वह हम दुखियों के बारे में जरा भी विचार नहीं करता। इसके बारे में उसके मंत्री भी कोई विचार नहीं कर रहे हैं। सुग्रीव ने जो अवधि-निश्चित की थी वह पूरी हो चुकी है। किन्तु स्त्रियों के साथ क्रीड़ा बिहार में लीन होने के कारण उसे बीते हुए समय का पता ही नहीं। धर्म और अर्थ की सिद्धि के विभिन्न प्रयत्न करनेवालों के लिए मद्यपान अच्छा नहीं माना जाता। इससे अर्थ, धर्म और काम तीनों का नाश होता है। साथ ही मित्र के उपकार का बदला समय से न चुकाया जाय तो भी धर्म की हानि होती है। अब तुम्हीं बताओ कार्य सिद्धि के लिए हमें भविष्य में क्या करना चाहिए। लक्ष्मण की बात सुनकर तारा पुनः विश्वास के साथ बोली-वीर राजकुमार! यह क्रोध करने का समय नहीं है और न तो आत्मीयजनों पर क्रोध ही करना चाहिए। मैं श्रीराम के क्रोध का कारण जानती हूँ। और उनके कार्य में विलंब हुआ उससे भी मैं परिचित हूँ। साथ ही मैं यह भी जानती हूँ कि कामशक्ति के

कारण इन दिनों सुग्रीव का मन किसी दूसरे कामों में नहीं लगता। आप जो क्रोध के वशीभूत हो गये हैं, इससे लगता है कि काम के अधीन पुरुष की स्थिति का ज्ञान आपको बिल्कुल नहीं। वानर की बात ही क्या, कामासक्त पुरुष को भी देश, काल, अर्थ और धर्म का ज्ञान नहीं रह जाता। जब निरंतर तपस्या में संलग्न रहनेवाले महर्षि भी कभी-कभी विषयाभिलाषी हो जाते हैं। तो चंचल वानर सुग्रीव सुख भोग में क्यों न आसक्त हों। नरश्रेष्ठ! यद्यपि सुग्रीव इस समय काम के गुलाम हो रहे हैं फिर भी आपका कार्य सिद्धि हेतु उन्होंने लाखों और करोड़ों वानरों को यहाँ उपस्थिति होने की आज्ञा दे रखी है। महाबाहो! इस समय तक बाहर खड़े रहकर आपने सदाचार की रक्षा की है। अब आप भीतर आइए। तारा के इस आग्रह पर महाबाहु लक्ष्मण महल के भीतर गये। वहाँ उन्होंने सुग्रीव को सोने के सिंहासन पर विराजमान देखा। उस समय वे दुर्जय इन्द्र के समान दिखलायी पड़ रहे थे और दिव्य अलंकारों से सुसज्जित स्त्रियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़ी थीं। उन्हें इस अवस्था में देखकर लक्ष्मण के नेत्र रोष से लाल हो गये। उधर सुग्रीव ने भी अपनी पत्नी रूपा को गाढ़ आलिंगन पाश में बांधे हुए लक्ष्मण को देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पुरा हुआ।(३३)

चौंतीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का सुग्रीव को फटकारना

तदनन्तर लक्ष्मण बेरोकटोक अंदर घुस आये। उन्हें देखकर सुग्रीव एकदम व्यथित हो उठे। लक्ष्मण उस समय लंबी सांस ले रहे थे। श्रीराम के कथन से उनके मन में बड़ा संताप था। अब उन्हें देखते ही सुग्रीव सिंहासन से उतर आये। सुग्रीव को देखकर लक्ष्मण ने क्रोधपूर्वक कहा-वानरराज! संसार में दयालु और सत्यवादी का ही आदर होता है। जो राजा मित्रों के सामने की हुई प्रतिज्ञा को झूठीकर देता है वह अत्यंत क्रूर होता है। जो पहले मित्रों के द्वारा अपना कार्य सिद्ध करके बदले में उन मित्रों का कोई उपकार नहीं करता वह कृतघ्न कहलाता है। कपिराज! तुम आनार्य कृतघ्न और मिथ्यायादी हो क्योंकि श्रीराम की सहायता से तुमने अपना काम तो बना

लिया किन्तु जब उनकी सहायता करने का अवसर आया, तब तुम कुछ नहीं करते। तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होने के बाद तुम्हें सीता की खोज में लग जाना चाहिए था किंतु तुम अपनी प्रतिज्ञा झूठी करके ग्राम्य भोगों में आसक्त हो। तुम्हारी बातें कुछ और हैं तथा स्वरूप कुछ और। श्री राम परम महात्मा हैं इसलिए तुम्हारे जैसे दुरात्मा को भी वानरों के राज्य पर बिठा दिया है। यदि तुम उनके उपकार को नहीं समझते तो तुम्हें भी बाली के मार्ग का अनुसरण करना पड़ेगा। लगता है तुम्हारी दृष्टि उनके तीखे बाणों की ओर नहीं जा रही है इसीलिए तुम उनके कार्य पर विचार नहीं कर रहे हो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

पैंतीसवाँ सर्ग

तारा का लक्ष्मण को समझाना

जिस समय लक्ष्मण अपने तेज से प्रज्वलित हो रहे थे उस समय तारा उनसे बोली- कुमार लक्ष्मण! आपको सुग्रीव से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। ये वानरों के राजा है। अतः आप जैसे सुहृद के मुख से ऐसे कठोर वचन सुनने के अधिकारी नहीं हैं। वीर! ये कपिराज न तो कृतघ्न हैं, न क्रूर हैं और न असत्यवादी ही हैं। श्रीराम के उपकार को इन्होंने भुलाया भी नहीं। वास्तव में पहले इन्होंने इतना दुःख उठाया कि इस उत्तम सुख को पाकर इन्हें समय का ज्ञान ही नहीं रहा। समय का ज्ञान रखने वाले विश्वामित्र को भी जब मेनका नामक अप्सरा में आसक्त होने के कारण समय का ज्ञान न रहा तो दूसरे साधारण प्राणी को कैसे रह सकता है? अतः इनसे कोई असावधानी हो गई हो तो इनका अपराध क्षमा करना चाहिए। आपको साधारण पुरुष की भाँति क्रोध के अधीन नहीं होना चाहिए। धर्मज्ञ! मेरा तो ऐसा विचार है कि श्रीराम चन्द्र को प्रिय कार्य करने के लिए अंगद सम्पूर्ण राज्य का भी त्याग कर देंगे। सुग्रीव उस राक्षस का बध करके श्रीराम को सीता से अवश्य मिलायेंगे। लंका में इच्छानुसार रूप धारण करने वाले अनेक राक्षस रहते हैं। उन्हें मारे बिना रावण का भी बध नहीं किया जा सकता। इसलिए इस काम में सुग्रीव की सहायता लेने की विशेष आवश्यकता है और इस काम को पूरा करने के

लिए ही सुग्रीव ने बहुतेरे श्रेष्ठ वानरों को असंख्य वानर वीरों की सेना एकत्र करने के लिए भेज रखा है। महाबली सुग्रीव उन वीरों की आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो श्रीराम का कार्य सिद्ध करने के लिए नगर से बाहर निकल सकें। लक्ष्मण ! सुग्रीव ने उनके एकत्र होने की अवधि पहले से ही निश्चित कर रखी है। उसके अनुसार आज ही आपकी सेवा में दस अरब रीछ, एक अरब लंगूर तथा कई करोड़ वानर उपस्थित होंगे। इसलिए आप क्रोध त्याग दें। क्योंकि आपका तमतमाता हुआ मुख देखकर हमें बाली के समान ही किसी अनिष्ट की आशंका हो रही है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का लक्ष्मण से क्षमा मांगना

तारा के इस तरह विनय युक्त बात कहने पर लक्ष्मण ने उसे मान लिया। तत्पश्चात् सुग्रीव ने भी अपने कंठ में पड़ी हुई फूलों की माला तोड़ डाली और वे मद से रहित हो गये। फिर सुग्रीव लक्ष्मण का हर्ष बढ़ाते हुए बोले- सुमित्रा नन्दन ! जिन भगवान् राम की कृपा से मुझे पुनः अपने खोये हुए राज्य की प्राप्ति हुई है उन श्रीराम के उपकार का बदला अंशमात्र भी कौन चुका सकता है। धर्मात्मा राम तो अपने ही तेज से रावण का बध करके सीता को प्राप्त कर लेंगे। मैं तो उनका एक तुच्छ सहायक मात्र रहूँगा। मुझे तो रावण का बध करने के लिए अग्रगामी सैनिकों सहित यात्रा करने वाले महाराज श्रीराम के पीछे चलना है। महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर लक्ष्मण प्रसन्न हो गये और प्रेम से बोले- वानरराज ! तुम्हारे जैसा विनयशील सहायक को पाकर मेरे भाई सनाथ हो उठे हैं। निश्चय ही तुम्हारी सहायता से वे अपने शत्रुओं का बध शीघ्र कर डालेंगे। तुम्हारे और मेरे बड़े भाई को छोड़कर दूसरा ऐसा कौन विद्वान है जो सामर्थ्य होते हुए भी ऐसा नम्रतापूर्वक वचन कह सके। तुम राम के समान ही पराक्रमी होते हुए भी ऐसा नम्रतापूर्वक वचन कह सके। तुम राम के समान ही पराक्रमी हो और देवताओं ने तुम्हें सहायक के रूप में हमें दीर्घ काल के लिए प्रदान किया है। किन्तु वानरराज इस समय तुम शीघ्र मेरे साथ

चलकर उन्हें सान्त्वना दो क्योंकि मेरे भाई पत्नी के अपहरण से बहुत दुखी हैं। सखे! दुखी राम के वचनों को सुनकर मैंने तुम्हें जो कठोर बातें कह दी हैं उनके लिए क्षमा करना।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का हनुमान जी को वानर सेना एकत्र करने के दोबारा दूत भेजने की आज्ञा देना

लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सुग्रीव ने पास खड़े हुए हनुमानजी से कहा-हे पवन सुत! महेन्द्र, हिमवान, विन्ध्य, कैलास तथा श्वेत शिखर वाले मन्दराचल इन पांच पर्वतों के शिखरों पर तो श्रेष्ठ वानर रहते हैं, साथ ही कान्तिवान तथा प्रकाशवान पर्वतों पर निवास करने वाले तथा उदयाचल एवं अस्ताचल पर जो महापराक्रमी वानर वास करते हैं उन सबको शीघ्र एकत्र कराइये। पहले भी जो वानर इन लोगों को एकत्र करने के लिए भेजे गये हैं वे भी अभी तक लौटकर नहीं आये हैं। इसलिए आप शीघ्र कार्य करने वाले दूतों को भेजिये। जो वानर काम भोग में फँसे हुए हैं तथा प्रत्येक कार्य को विलम्ब से करने वाले हों, उन सभी को यहाँ शीघ्र ले आओ। जो मेरी आज्ञा सुनकर भी दस दिन के भीतर यहाँ न आ जायें उन दुरात्मा वानरों को मार डालना चाहिए। वानरों के निवास-स्थानों को जाने वाले सभी वानर तीव्रगति से भूमण्डल में चारों ओर जाकर मेरे आदेश से उन सभी स्थानों के सम्पूर्ण वानरगणों को तुरन्त यहाँ ले आयें। सुग्रीव की बात सुनकर हनुमान जी ने सम्पूर्ण दिशाओं में बहुत से पराक्रमी वानरों को भेजा। तत्पश्चात् राजा की आज्ञा पाकर वे सब वानर तत्काल आकाश में पक्षियों और नक्षत्रों के मार्ग से चल दिये। फिर उन लोगों ने समुद्रों के किनारे, पर्वतों पर, वनों में और सरोवर के तटों पर रहने वाले समस्त वानरों को श्रीरामचन्द्र का कार्य करने के लिए चलने को कहा। सम्राट् सुग्रीव का आदेश पाकर सभी वानर तुरन्त ही किष्किंधा की ओर चल पड़े। तदनन्तर जहाँ राम थे वहाँ कज्जल गिरि से तीस करोड़ वानर तथा कैलाश के शिखरों से श्वेत कान्ति वाले दस अरब वानर

आये। हिमालय पर रहने वाले वानर एक नील की संख्या में वहाँ पहुंचे। बिन्ध्याचल पर्वत से दस अरब की संख्या में बड़े पराक्रमी वानर आये। समुद्र के किनारे पर रहने वाले वानर इतनी संख्या में आये कि उनकी गणना ही नहीं हो सकती थी। फिर वन गुफाओं और नदियों के किनारों से भी असंख्य महाबली वानर एकत्र हुए। जो वानर दूत इन वानरों को एकत्र करने के लिए भेजे गये थे, उन्होंने हिमवान् पर्वत पर एक विशाल वृक्ष को देखा। इसी पर्वत पर महादेव जी ने यज्ञ किया था तथा जिसे देखकर देवगण बहुत ही प्रसन्न हुए थे। इस सथान पर उन वानरों ने अमृत के समान मीठे-मीठे फल खाये। जो इन फलों को खा लेता था उसे एक माह तक भूख नहीं लगती थी। तब वे वानर सुग्रीव को प्रसन्न करने के लिए उन फलों को लेकर सुग्रीव को अर्पित किया और कहा- राजन्! हम लोग सभी पर्वतों, नदियों और वनों से घूम आये हैं। भूमंडल के सभी वानर आपकी आज्ञा से यहाँ आ रहे हैं। यह सुनकर वानर राज सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

अड़तीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण सहित सुग्रीव का श्रीराम के पास जाकर उन्हें प्रणाम करना

तत्पश्चात् सुग्रीव ने समस्त वानरों को मधुर वचनों द्वारा सान्त्वना दी और पुनः उन्हें विदा कर दिया। अब सहस्त्रों वानरों को बिदा करने के बाद सुग्रीव ने अपने आपको कृतार्थ माना और श्रीराम के कार्य को सिद्ध हुआ समझा। तदनन्तर लक्ष्मण सुग्रीव का हर्ष बढ़ाते हुए बोले- सौम्य! यदि तुम्हारी रुचि हो तो अब किष्किंधा के बाहर निकलो। यह सुनकर सुग्रीव ने तारा आदि को तत्काल बिदाकर दिया और शेष वानरों को आओ-आओ कहकर उच्च स्वर से पुकारा। उनकी पुकार सुनकर वे सब वानर जो अन्तःपुर की स्त्रियों के रक्षा के अधिकारी थे दोनों हाथ जोड़े उनके पास आये। अब सुग्रीव ने उनसे कहा- वानरो! तुम लोग शीघ्र मेरी शिविका को यहाँ ले आओ। उनकी आज्ञा से वानरो ने शीघ्र शिविका उपस्थित कर दी। पालकी आने पर सुग्रीव बोलें- कुमार लक्ष्मण! आप कृपया इस पर आरूढ़ हो जायें।

अब उस पालकी पर सवार हो शंख और भेरी आदि ध्वनि के साथ बन्दीजनों का अभिनंदन सुनते हुए वे किष्किंधापुरी के बाहर निकले। तत्पश्चात् हाथ में शस्त्र लिए तथा कई सौ वानरों से घिरे राजा सुग्रीव वहाँ पहुँचे जहाँ भगवान् श्रीराम निवास करते थे और लक्ष्मण सहित श्रीराम के पास हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उस समय सुग्रीव को वानर सेना के साथ आते देखकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और सुग्रीव को हृदय से लगाते हुए बोले- वीर शिरोमणि! जो राजा धर्म, अर्थ और काम के लिए समय का विभाजन करता हुआ उनका सेवन करता है वही श्रेष्ठ राजा है और जो केवल काम का ही सेवन किया करता है वह वृक्ष की अगली शाखा पर सोये हुए मनुष्य के समान है, जिसकी आँख वृक्ष से गिरने पर ही खुलती है। सुग्रीव अब हम लोगों के उद्योग करने का समय आ गया है। इस पर शीघ्र ही अपने मंत्रियों के साथ विचार करो। श्रीराम के ऐसा कहने पर सुग्रीव बोले- महाबाहो! मेरे खोये हुए राज्य की प्राप्ति आपके कारण ही हुई है। श्रीराम! ये सैकड़ों बलवान और मुख्य वानर भूमण्डल के सभी बलशाली वानरों को साथ लेकर यहाँ आये हैं। रघुनंदन इनमें रीछ, वानर तथा कितने ही बलशाली लंगूर हैं। ये सभी दुर्लभ स्थानों के जानकार हैं तथा इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हैं। ये अपनी-अपनी सेनाओं के साथ पहुँच रहे हैं। राजन्! इन सबकी संख्या असंख्य है इसके अलावा वे देवराज इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। मेघों और पर्वतों के समान विशालकाय वे सब वानर जो मेरू और बिन्ध्याचल में निवास करते हैं यहां शीघ्र ही उपस्थित होंगे। जो युद्ध में रावण का बध करके सीता को लंका से ला देंगे वे महान शक्तिशाली वानर संग्राम में राक्षस से युद्ध करने के लिए अवश्य आपके पास आयेंगे। यह सुनकर श्रीराम बड़े प्रसन्न हुए और उनके नेत्र हर्ष से खिल उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३८)

उन्तालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सुग्रीव के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना

सुग्रीव के उक्त वचन सुनकर श्रीराम ने सुग्रीव को अपनी भुजाओं में

भर लिया और कहा- सौम्य सुग्रीव ! इस प्रकार तुम्हारा जो मित्रों का हित साधन रूप, कल्याणकारी गुण है वह आश्चर्य का विषय नहीं है। क्योंकि सदा प्रिय बोलना ही तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। सखे ! तुम्हारी सहायता से मैं समस्त शत्रुओं को जीत लूंगा ऐसा मेरा विश्वास है। रावण ने अपना ही नाश करने के लिए सीता का अपहरण किया है। श्रीराम और सुग्रीव में जब इस प्रकार की बात हो रही थी उसी समय आकाश में धूल उड़ने लगी और उससे पूरा सूर्य ही ढंक गया जिससे चारों ओर अंधकार छा गया और इसके साथ ही पृथ्वी भी डगमगाने लगी। तदनन्तर पर्वत के समान शरीर वाले असंख्य वानर वहाँ पहुँचकर सारी भूमि को ही ढँक लिया। उस समय वीर शतवालि नामक वानर हिमालय में निवास करने वाले दस करोड़ वानरों सहित आते दिखाई दिये। इसी समय तारा के पिता कई हजार वानरों को लेकर आये। तत्पश्चात् सुग्रीव का श्वसुर एक हजार करोड़ वानर अपने साथ ले आये। कई हजार वानरों सहित हनुमान जी के पिता भी आये। महा-पराक्रमी राजा गवाक्ष दस अरब लंगूर वानरों सहित श्रीराम के समीप पधारे। नील नामक सेनापति अपने साथ दस करोड़ वानर लेंकर आया। गवय सेनापति पांच करोड़ वानर तथा बलवान् सरदार दरीमुख दस अरब वानरों के साथ सुग्रीव के पास आया। महाबली मैन्द और द्विविद भी दस-दस अरब वानरों की सेना के साथ यहाँ दिखाई दिये। तत्पश्चात् वीर गज तीन करोड़ वानरों के साथ एवं राजा जाम्बवान् एक करोड़ रीछों से घिरे वहाँ आये। रूमण नामक तेजस्वी वानर के साथ एक अरब वानर एवं गन्धमादन के साथ एक पदम वानर आये थे। तदनन्तर अंगद के साथ एक सहस्त्र पदम तथा सौ शंख वानर आये। तत्पश्चात् महापराक्रमी लार पांच करोड़ भयंकर और पराक्रमी वानरों के साथ आता दिखाई दिया। उस समय इन्द्रजानु ग्यारह करोड़ वानरों के साथ, रम्भ नामक वानरों ग्यारह हजार एक सौ वानरों के साथ आया था। तदनन्तर दुर्मुख दो करोड़ वानर, हनुमान जी दस अरब वानर, नील एक अरब वानर तथा दधिमुख दस करोड़ वानरों के साथ आते दिखाई पड़े। इनके सिवा शरभ, कुमुद, वह्नि तथा रम्य आदि अनेक वानर भी अपने वानरों के साथ आये जिनकी कोई गणना नहीं की जा सकती थी। वे सब वानर फिर सुग्रीव को घेर कर ऐसे बैठ गये जैसे सूर्य को बादलों का समूह घेरता है।

सुग्रीव के पास तक न पहुँचने वाले वानरों ने विभिन्न बोली बोलकर सुग्रीव को अपने आने की सूचना दी। तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव ने वहाँ आये हुए वानरों का परिचय श्रीराम चन्द्र को दिया और फिर हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये। तत्पश्चात् उन वानर यूथपतियों ने वहाँ के पर्वतीय झरनों के आसपास तथा समस्त वनों में अपनी-अपनी सेनाओं को सुखपूर्वक ठहरा दिया। तत्पश्चात् सब सेनाओं के ज्ञाता सुग्रीव उनका पूर्णतः ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ हो सके।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३९)

चालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का सीता की खोज में वानरों को पूर्व दिशा में भेजना

तदनन्तर सुग्रीव श्रीराम से बोले- भगवन्! मेरे राज्य में बसने वाले समस्त वानर सैनिक यहाँ आकर पड़ाव डाले बैठे हैं। वे अपने साथ ऐसे-ऐसे बलवान् वानर लाये हैं जो भयंकर पुरुषार्थ दिखलाने वाले हैं। ये युद्ध से कभी थकते नहीं हैं। ये जल और थल दोनों में समान रूप से चलने की शक्ति रखते हैं। ये सब आपका मनोरथ सिद्ध करने वाले होंगे क्योंकि ये सब अपने साथ कई सहस्र सेना लेकर आये हैं। अब आप जैसा उचित समझें वैसे हमें कार्य करने की आज्ञा दें। तब श्रीराम ने यह बात सुनकर सुग्रीव को हृदय से लगाया और कहा- सौम्य! पहले यह पता लगाओ कि विदेह कुमारी सीता जीवित है या नहीं तथा रावण जिस देश में रहता है वह देश कहाँ है? जब इन बातों का निश्चित पता चल जायेगा, तब आगे क्या करना होगा तुम्हारे साथ मिलकर यह निश्चित करेंगे। मेरे इस कार्य को सिद्ध करने के लिए अब तुम्हीं वानरों को उचित आज्ञा दो। तुम मेरे हित में संलग्न रहने वाले हितैषी बन्धु और विश्वास पात्र हो। श्रीराम ने ऐसा कहने पर सुग्रीव ने लक्ष्मण के समीप ही विनत नामक सेनापति से कहा- वानर शिरोमणे! तुम देश और काल के अनुसार नीति का प्रयोग करने वाले हो। तुम एक लाख वेगवान् वानरों के साथ पर्वत, वन और काननों सहित पूर्व दिशा की ओर जाओ और वहाँ पहाड़ों के दुर्गम प्रदेशों में विदेह कुमारी सीता एवं रावण के निवास स्थान की खोज

करो। नदियों के किनारे और कौशल, मगध, काशी आदि जनपदों में भी जाकर सीता की खोज करो। अन्तर्वर्ती द्वीपों के विभिन्न नगरों में तथा मन्दराचल की चोटी पर भी सीता की खोज करो। हे तात! तुम सागर पार जाकर भी सीता का पता लगाना जहाँ सिद्ध चारण आदि निवास करते हैं। तत्पश्चात् पूर्वोक्त देशों से परे तुम इक्षुरस से परिपूर्ण समुद्र तथा उसके द्वीप देखोगे। उसमें विशालकाय असुर निवास करते हैं। वे बहुत दिनों के भूखे होते हैं और प्राणियों की छाया पकड़कर ही उसे अपने पास खींच लेते हैं। उस समुद्र के भीतर बड़े-बड़े नाग निवास करते हैं। उसी महासागर के पार जाकर तुम लोग लोहित नामक भयंकर समुद्र के एक द्वीप पर पहुँचोगे। वहाँ कूटशाल्मली नामक वृक्ष का दर्शन होगा और उसी के पास विनतानन्दन गरुड़ का एक सुन्दर भवन देखने को मिलेगा। उस द्वीप पर मंदेह नामक भयंकर राक्षस निवास करते हैं। शाल्मली द्वीप के आगे बढ़ने पर घृत और दधि के समुद्र प्राप्त होंगे। वहाँ पहुँचकर उठती हुई लहरों से युक्त क्षीर सागर को इस तरह देखोगे मानों उसने मोतियों के हार पहन रखे हों। उस सागर के बीच ऋषभ नामक प्रसिद्ध एक ऊंचा पर्वत है। उसके ऊपर सुदर्शन नामक सरोवर है जो राजहंसों से भरा रहता है और जहाँ किन्नर तथा अप्सरायें जल बिहार के लिए आते हैं। वानरों! क्षीर सागर को लाँघकर तुम लोग सुस्वादु जल से भरे उस सागर को देखोगे जो समस्त प्राणियों को भय देने वाला है। सुस्वादु जल से भरे उस समुद्र के उत्तर तेरह योजन की दूरी पर एक बहुत ऊँचा पर्वत है। उसके शिखर पर इस पृथ्वी को धारण करने वाले भगवान् अनन्त बैठे दिखाई देंगे। उनके सहस्त्र मस्तक हैं। उसके बाद सुवर्णमय उदय पर्वत है ज़ो दिव्य शोभा से सम्पन्न है। उस उदय गिरि के शिखर पर एक सौमनस नामक सुवर्ण मय शिखर है जिसकी चौड़ाई एक योजन तथा लम्बाई दस योजन है। पूर्व काल में वामन अवतार के समय पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने अपना पहला पैर उस सौमनस नामक शिखर पर रखकर दूसरा पैर मेरू पर्वत के शिखर पर रखा था। उसी पर महर्षि बालखिल्य गण प्रकाशित होते देखे जते हैं। इस उदय गिरि के सौमनस नामक शिखर के सामने का द्वीप सुदर्शन नाम से प्रसिद्ध है। उदयाचल के पृष्ठभागों में कन्दराओं तथा वनों में भी जहाँ तहाँ तुम लोग सीता तथा रावण का पता लगाना। यह उदयाचल सूर्य

के उदय का पहला स्थान है। इसे बह्मा जी ने बनाया है। वानर शिरोमणियों ! केवल उदयाचल तक ही वानरों की पहुँच हो सकती है। आगे की भूमि के बारे में मुझे कुछ भी नहीं मालूम। तुम लोग उदयाचल तक जाकर सीता और रावण के स्थान का पता लगाना और एक मास होते-होते तक लौट आना। वानरों ! पूर्व दिशा में अच्छी तरह भ्रमण करके सीता का पता लगाओ। इससे तुम्हें अपूर्व सुख मिलेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४०)

इकतालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का दक्षिण दिशा के स्थानों को बताकर वानरों को भेजना

तदनन्तर सुग्रीव ने कुछ चुने हुए वानरों को दक्षिण दिशा की ओर भेजा। इनमें से अग्निपुत्र नील, पवनपुत्र हनुमान, जाम्बवान्, वृषभ , गवाक्ष सुषेण (प्रथम) आदि प्रमुख थे। सुग्रीव ने उन्हें उस दिशा में जो स्थान दुर्गम थे, उनका भी परिचय दिया। उन्होंने कहा- वानरों ! दक्षिण में विन्ध्य पर्वत रमणीय नर्मदा, सुरम्य गोदावरी, कृष्णवेणी आदि नदियों के तट पर तथा सुरम्य नगर उत्कल, आब्रवन्ती और अवन्तीपुरी में भी सीता की खोज करो। इसी प्रकार बिदर्भ , बंग, कलिंग तथा कौशिक आदि देशों में, तथा गुफाओं सहित सम्पूर्ण दण्डकारण्य में भी सीता की खोज हो। तत्पश्चात् कावेरी को देखना और मलय पर्वत की शिखर पर बैठे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य का दर्शन करना। तत्पश्चात् मुनि की आज्ञा लेकर तुम लोग ताम्रपर्णी नदी को पार करना। किन्तु इसे बहुत सावधानी से पार करना क्योंकि चन्दनवन समीप होने के कारण इसके जल में बहुत से सर्प छिपे रहते हैं। फिर इस स्थान से चलकर समुद्र तट पर पहुँचकर उसके पार जाने का विचार करना। जब तुम लोग समुद्र के बीच पहुँचोगे तो वहाँ अगस्त्य मुनि द्वारा स्थापित किया हुआ महेन्द्र नामक पर्वत मिलेगा जो सोने से निर्मित है और जल के बीचोंबीच खड़ा है। देवता, ऋषि, यक्ष और अप्सरायें उसकी शोभा बढ़ाया करती हैं। सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र प्रत्येक पर्व के दिन उस पर्वत पर पदार्पण करते हैं। उस समुद्र के उस पार एक द्वीप है। उसका विस्तार सौ योजन है। वहाँ मनुष्यों की

पहुँच नहीं है। उसमें भी चारों ओर प्रयत्न करके तुम्हें सीता की विशेष खोज करनी चाहिए। वही देश रावण का निवास स्थान है। उस दक्षिण समुद्र के बीच अंगारका नामक एक प्रसिद्ध राक्षसी रहती है जो छाया से ही पकड़कर सब प्राणियों को खींच लेती है और उन्हें खा जाती है। उस लंका द्वीप के सभी संदिग्ध स्थानों की अच्छी तरह खोज करने के बाद तुम आगे बढ़ना और फिर समुद्र में ही पुष्पितक नामक पर्वत मिलेगा। उस पर्वत का एक सुवर्ण मय शिखर है। सूर्य देव प्रतिदिन इसका सेवन करते हैं। इसी प्रकार इसका रजतमय श्वेत शिखर है जिसका सेवन चन्द्रमा करते हैं। उसे लांघने के बाद सूर्यवान् नामक पर्वत और तत्पश्चात् वैद्युत नामक पर्वत के दर्शन होंगे। फिर आगे चलने पर कुंजर नामक पवर्त मिलेगा उस पर विश्वकर्मा का बनाया महर्षि अगस्त्य का एक सुन्दर भवन है। उस पर ही भोगवतीपुरी नामक एक नगर बसा है। यह दुर्जय है। इसकी रक्षा विषैले सर्प किया करते हैं। तुम लोगों को भोगवतपुरी में भी सीता की खोज करनी चाहिए। इस पुरी के आगे बढ़ने पर ऋषभ नामक विशाल पर्वत मिलेगा। वह सम्पूर्ण रत्नों से भरा है। वहाँ अनेक चंदन के वृक्ष हैं किन्तु उन्हें स्पर्श नहीं करना चाहिए क्योंकि रोहित नामक गंधर्व उसकी रक्षा करते हैं। उसके आगे अत्यंत भयानक पितृ लोक है। वह यमराज की राजधानी है और अंधकार से घिरा हुआ है। वीर वानरों! उस दक्षिण दिशा में इतनी ही दूर तक तुम्हें जाना है। तत्पश्चात् जों एक मास पूर्ण होने पर सबसे पहले यहाँ आकर यह कहेगा कि मैंने सीता जी का दर्शन किया है वह मेरे ही समान वैभव सम्पन्न होकर सुख भोगेगा। वह मेरा बन्धु बनकर रहेगा। तुम लोग असीम पराक्रम वाले हो इसलिए यह कार्य पूरा करने के लिए उच्चकोटि का पुरुषार्थ आरम्भ करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालीसवाँ सर्ग

पश्चिम दिशा का परिचय देते हुए सुषेण (द्वितीय) आदि का वहाँ भेजना

दक्षिण दिशा की ओर वानरों को भेजने के पश्चात् सुग्रीव अपने श्वसुर

सुषेण के पास गये और हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया और कहा- आप महर्षि मारीचि के पुत्र महाकपि अर्चिस्मान को तथा अन्य वानरों को लेकर पश्चिम दिशा में सीता की खोज के लिए जाइये। सबसे पहले सौराष्ट्र, बाह्लीक और चन्द्रचित्र आदि देशों में सीता की खोज कीजिए तत्पश्चात् पश्चिम दिशा में जो प्रायः मरु-भूमि है सीता को ढूंढ़ते हुए पश्चिम समुद्र तट तक जाइये और प्रत्येक स्थान का निरीक्षण करते हुए सीता का पता लगाइए। समुद्र तट वर्ती पर्वतों और वनों में भी उन्हें ढूंढ़ना चाहिए। सिन्धु नद और समुद्र के संगम पर सोमगिरि नामक एक महान पर्वत है जिस पर बड़े-बड़े विशाल वृक्ष हैं। इस पर्वत पर सिंह नामक पक्षी निवास करते हैं जो तिमि नामक मत्स्यों को और हाथियों को अपने घोंसलों में पालने के लिए ले जाते हैं। सौमगिरि का गगन चुम्बी शिखर सुवर्णमय है। वानरों को चाहिए वहाँ के सब स्थानों को अच्छी तरह देखें। उसके आगे पारियात्र पर्वत का सुवर्णमय शिखर है। उस पर्वत के शिखर पर चौबीस करोड़ भयंकर गंधर्व निवास करते हैं। वे सबके सब अग्नि की ज्वाला के समान प्रकाशमान हैं। पराक्रमी वानरों को चाहिए कि वे उन गन्धर्वों के अधिक निकट न जायें और न कोई अपराध करें। क्योंकि उन गंधर्वों से विजय पाना कठिन है। वहाँ भी जाकर वानरों को जानकी की खोज करनी चाहिए। पारियात्र पर्वत के पास ही वज्रनाम से प्रसिद्ध एक बहुत ऊँचा पर्वत है। वह गिरि वैदूर्यमणि के समान नील वर्ण का है। उस पर्वत पर बहतु-सी गुफायें हैं। उन सब में भी सीता की खोज करनी चाहिए। समुद्र के चतुर्थ भाग में चक्रवान् नामक पर्वत है। उस पर्वत के रमणीय शिखर और विशाल गुफाओं में भी बैदेही सहित रावण का पता लगाना चाहिए उसके आगे वराह नामक पर्वत है। वहीं प्राग्ज्योतिष नामक सुवर्णमय नगर है। इसी में नरक नाम का दानव निवास करता है। यहाँ भी खोज करनी चाहिए। तत्पश्चात् वराह पर्वत से आगे बढ़ने पर मेघगिरि नामक पर्वत मिलेगा। इसकी सुरक्षा स्वयं देवराज इन्द्र करते हैं। फिर इससे भी आगे बढ़ने पर तुम लोगों को सोने के साठ हजार पर्वत मिलेंगे। उसके मध्य भाग में पर्वतों का राजा मेरू विराजमान हैं। उसके शिखर पर विश्वकर्मा का बनाया हुआ एक बहुत बड़ा दिव्य भवन है। जो अनेक प्रासादों से भरा हुआ है। वहीं वरुण का निवास स्थान है। वहाँ से उन सभी दुर्गम स्थानों, सरोवरों और

सरिताओं में सीता सहित रावण की खोज करनी चाहिए। मेरू गिरि पर ही महर्षि मेरू सावर्णि रहते हैं और अपनी तपस्या से ऊँची स्थिति को प्राप्त हुए हैं। इन्हीं मेरू सावर्णि के चरणों में मस्तक टेक कर तुम लोगों को उनसे सीता का पता पूछना चाहिए। वानर शिरोमणियों! पश्चिम दिशा में इतनी ही दूर तक वानर जा सकते हैं। उसके आगे न तो सूर्य का प्रकाश है न किसी देश आदि की सीमा ही। अतः उसके आगे की भूमि की मुझे कोई जानकारी नहीं! इस काम के लिए एक मास से अधिक न लगाना। जो देर करेगा उसे प्राण दण्ड मिलेगा। तुम लोगों को मेरे श्वसुर के अधीन रहकर कार्य करना होगा। अमित तेजस्वी श्रीराम की पत्नी का पता लग जाने पर हम सब कृत्कृत्य हो जायेंगे। सुग्रीव की बात सुनकर सुषेण आदि वानर पश्चिम दिशा की ओर चले।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैंतालीसवाँ सर्ग

उत्तर दिशा का परिचय देकर शतबलि आदि वानरों का वहाँ भेजना

इस प्रकार अपने श्वसुर को पश्चिम दिशा में भेजकर अपने हितैषी शतबलि नामक वीर वानर से बोले- पराक्रमी वीर! तुम अपने सब मंत्रियों सहित उत्तर दिशा में प्रवेश करो और सीता की खोज करो। यदि हम लोगों के द्वारा श्रीराम का यह प्रिय कार्य सम्पन्न हो जाये तो हम उनके उपकार के ऋण से मुक्त हो जायेंगे और हमारा जीवन सफल हो जायेगा। तुम लोग सब बुद्धि और पराक्रम के द्वारा अत्यंत दुर्गम प्रदेशों, पर्वतों और नदियों के तटों पर जा-जा कर सीता की खोज करो। उत्तर में म्लेच्छ, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल तथा भरत (इन्द्र प्रस्थ और हस्तिनापुर के आसपास) कुरु मद्र कम्बोज, यवन शकों के देशों एवं नगरों में भलीभांति अनुसंधान करके हिमालय पर्वत पर ढूँढो। फिर देवताओं और गंधर्वों से सेवित काल नामक पर्वत पर जाओ। इन पर्वतों और उन सबकी गुफाओं में सती साध्वी सीता का पता लगाओ। उस पहाड़ के आगे बढ़ने पर देवसख नाम वाला पहाड़ मिलेगा। उसके वन समूह निर्झर और गुफाओं में तुम्हें विदेह कुमारी सीता की खोज करनी चाहिए।

वहाँ से आगे बढ़ने पर सौ योजन लम्बा मैदान मिलेगा। उसे लांघकर श्वेत वर्ण का कैलाश पर्वत मिलेगा। यहाँ विश्वकर्मा का बनाया कुबेर का रमणीय भवन है। उसके पास ही एक बड़ा सरोवर है जिसमें अप्सरायें जल क्रीड़ा करती हैं। उस पर्वत और गुफाओं में घूम फिर कर तुम्हें सीता और रावण का पता लगाना चाहिए। इसके बाद क्रौन्चगिरि पर जाना। उसकी गुफा में सूर्य के समान तेजस्वी महात्मा निवास करते हैं। उसकी गुफाओं में घूम फिर तुम्हें सीता का पता लगाना है। क्रौन्चगिरि को लाँघ कर आगे बढ़ने पर मैनाक पर्वत मिलेगा। यहाँ मय दानव का घर है जिसे उसने स्वयं अपने लिए बनवाया है। उसके शिखरों, मैदानों और कन्दराओं में भी सीता की खोज होनी चाहिए। फिर उसे लाँघ जाने पर किन्नरियों का निवास स्थान सिद्ध सेवित आश्रम मिलेगा। उसमें सिद्ध वैखानस तथा वालखिल्य तपस्वी निवास करते हैं। तुम लोग उन सिद्धों को प्रणाम कर विनीत भाव से सीता का समाचार पूछना। उस आश्रम के पास वैखानस सर नाम से प्रसिद्ध एक सरोवर है। उस सरोवर को लाँघ जाने पर सूना आकाश दिखाई देगा। वहाँ सूर्य, तारे और चन्द्रमा के दर्शन नहीं होते किन्तु वहाँ देवोपम महर्षि के विश्राम करने से उन्हीं के अंग प्रभाव से उस देश में उजाला छाया रहता है। उस प्रदेश के आगे बढ़ने पर शैलोदा नामक नदी का दर्शन होगा। उसके तट पर उत्तर कुरू देश है। वहाँ के जलाशय लाल और सुनहरे कमल समूहों से मंडित होकर प्रातःकाल उदित हुए सूर्य के समान शोभा पाते हैं। वहाँ के वृक्षों में सदा ही फल फूल लगे रहते हैं तथा प्राणियों के लिए सारी मनचाही वस्तुओं की वर्षा किया करते हैं। वहाँ कितने ही अन्य वृक्ष विचित्र खिलौनों से युक्त शय्याओं को ही फलों के रूप में प्रकट करते हैं। वहाँ सूर्य के समान कान्तिमान गन्धर्व, किन्नर सदा नारियों के साथ क्रीड़ा विहार किया करते हैं। वहाँ निरन्तर उत्कृष्ट हास परिहास की ध्वनि से युक्त वाद्य का मधुर घोष सुनाई देता है। उस देश को लाँघकर आगे जाने पर उत्तर दिग्वती समुद्र मिलेगा। उस समुद्र के मध्य भाग में सोमगिरि नामक एक बहुत ऊँचा सुवर्ण मय पर्वत है। यह देश सूर्य से रहित है। तो भी सोमगिरि की प्रभा से सदा प्रकाशित होता रहता है। यहाँ विश्वात्मा विष्णु, रुद्र तथा ब्रह्मा जी निवास करते हैं। वह सोमगिरि देवताओं के लिए भी दुर्लभ हैं। अतः उसका दर्शन करके तुम लोग शीघ्र लौट आना। श्रेष्ठ वानरो! बस

उत्तर दिशा में तुम लोग इतनी ही दूर तक जा सकते हो। मैंने जो-जो स्थान बताये हैं उन सब में सीता को ढूँढ़ने का निश्चित विचार करना। वानरों! श्रीराम चन्द्र का प्रिय कार्य करके जब तुम लोग लौटोगे तब मैं मनोनुकूल पदार्थों के द्वारा तुम्हारा स्वागत करूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का हनुमान जी को अंगूठी देकर भेजना

तदनन्तर सुग्रीव ने अत्यंत प्रसन्न होकर हनुमानजी से कहा- कपि श्रेष्ठ! पृथ्वी, अंतरिक्ष, आकाश में कहीं भी तुम्हारे गति का अवरोध नहीं देखता। तुम्हें सम्पूर्ण लोकों का ज्ञान है। महाकपे! पिता वायु के समान ही तुम्हें अबाधित गति, वेग, तेज और फुर्ती प्राप्त है। अतः जिस प्रकार सीता की उपलब्धि हो सके वही उपाय सोचो। सुग्रीव की बात सुनकर श्रीराम चन्द्र को यह ज्ञात हुआ कि इस कार्य की सिद्धि का संबंध तथा इसे पूर्ण करने का सारा भार हनुमान पर ही है। उन्होंने स्वयं भी अनुभव किया कि हनुमान इस कार्य को पूरा करने में सफल होंगे। अतः ऐसा विचार कर वे अत्यंत प्रसन्न हो गये और फिर अपने नाम के अक्षरों से सुशोभित एक अंगूठी हनुमान जी के हाथ में दे दी और कहा- कपिश्रेष्ठ! इस चिह्न के द्वारा सीता को यह विश्वास हो जायेगा कि तुम मेरे पास से ही भेजे गये हो। इससे वह भय त्याग कर तुम्हारी ओर देख सकेगी। वीर! तुम्हारा उद्योग, धैर्य, पराक्रम और सुग्रीव का संदेश इस बात की सूचना दे रहा है कि तुम्हारे द्वारा कार्य की सिद्धि अवश्य होगी। तत्पश्चात् हनुमान जी ने उस अंगूठी को लेकर मस्तकपर लगाया और श्रीराम को प्रणाम कर वहाँ से चल पड़े। फिर वे अपनी विशाल सेना के साथ उसी प्रकार शोभित होने लगे जैसे नक्षत्र समूहों के साथ चन्द्रमा। जाते समय हनुमान जी से श्रीराम ने फिर कहा- कपिवर! जिस प्रकार से भी जनकनन्दिनी सीता प्राप्त हो सके तुम वैसा हर प्रयत्न करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैंतालीसवाँ सर्ग

जाते हुए वानरों को उत्साह सूचक वचन सुनाना

तदनन्तर सुग्रीव ने श्रीराम के कार्य सिद्धि के लिए समस्त वानरों से कहा- कपियों जैसा मैंने बताया उसी के अनुसार तुम सभी वानरों को सीता की खोज करनी चाहिए। तत्पश्चात् सभी वानर टिड्डियों के दल की भाँति वहाँ से प्रस्थान किये। उस समय से श्रीराम लक्ष्मण सहित प्रस्रवण गिरि पर रह कर वानरों के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। तदनन्तर वीर वानर शतबलि— ने उत्तर दिशा की ओर तथा विनत ने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। फिर हनुमान जी ने दक्षिण दिशा की ओर तथा सुषेण ने पश्चिम दिशा की यात्रा की। इस तरह समस्त यूथपति अपनी-अपनी दिशा की ओर चले और भाँति-भाँति के शब्द कहते हुए सुग्रीव से बोले - राजन्! हम सीता को साथ लायेंगे और रावण का बध कर डालेंगे। आप लोग यहीं ठहरें। हम लोग अकेले ही जनकनन्दनी को पाताल से भी निकाल लायेंगे। इस तरह दर्प से भरे हुए सुग्रीव के सामने एक-एक करके आते और उक्त बातें कहते हुए आगे बढ़ते जाते।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को अपने भुमण्डल भ्रमण से परिचित कराना

सभी वानरों के चले जाने पर श्रीराम ने सुग्रीव से पूछा, सखे! तुम समस्त भूमण्डल का परिचय कैसे जानते हो? तब सुग्रीव विनीत होकर बोले- भगवन्! मैं सब कुछ बिस्तार से बता रहा हूँ, आप सुनिये। जब बाली ने महिष रूप धारी दुन्दुभि का पीछा कर रहे थे उस समय वह दानव भागकर पर्वत की एक कन्दरा में जा घुसा। तब बाली ने उसे बध करने की इच्छा से कन्दरा में प्रवेश किया। उस समय मैं गुफा के द्वार पर ही खड़ा रहा। किन्तु एक वर्ष बीत जाने पर भी बाली उसके भीतर से) नहीं निकले। तदनन्तर उस गुफा से मुझे रक्त की धारा निकलती दिखाई दी। उस समय यह सोचकर कि मेरा भाई मारा गया मैं अत्यंत व्यथित हो उठा। तब सुरक्षा के लिए गुफा के द्वार पर एक

पहाड़ जैसी चट्टान रखकर मैं किष्किंधापुरी में लौट आया। यहाँ रूपा सहित तारा को पाकर मैं निश्चिंतता पूर्वक रहने लगा।— तत्पश्चात् उस दानव का बध करके बाली वापस आ गये। उनके आने पर मैंने भयभीत होकर उनका राज्य वापस कर दिया। किन्तु बाली उस समय मुझे मार डालना चाहता था इसलिए प्राण रक्षा के लिए मुझे भागना पड़ा। तब मैंने भागते-भागते सारी पृथ्वी की परिक्रमा ही कर डाली। भागते समय मुझे यह पृथ्वी दर्पण और अलात चक्र के समान दिखाई पड़ी। तत्पश्चात् पूर्व दिशा में जाकर मैंने कन्दराओं सहित अनेक पर्वत तथा सरोवर देखे। उसी समय मैंने उदयाचल और क्षीरोद सागर भी देखा। पर वहाँ से मैं जैसे ही लौटा बाली ने मेरा फिर पीछा करना आरम्भ किया तब मैं दक्षिण दिशा की ओर भागा। वहाँ बिन्ध्य पर्वत तथा नाना प्रकार के वृक्ष शोभा बढ़ा रहे थे। इसके पश्चात् मैं बाली को फिर पीछा करते हुए देखकर वहाँ से भागता हुआ पश्चिम दिशा की शरण ली। और इस तरह भागता-भागता अस्ताचल तक जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर मैं पुनः उत्तर दिशा की ओर भागा। हिमालय, मेरू तथा उत्तर समुद्र तक पहुँचने पर भी जब बाली ने मेरा पीछा करना नहीं छोड़ा तब हनुमान जी ने मुझसे कहा- राजन्! मतंग मुनि ने एक बार बाली को श्राप दिया था कि यदि वह इस आश्रम मण्डल में प्रवेश करेगा तो उसके मस्तक के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। अतः आपका वहीं निवास करना अत्यंत सुखद होगा। तब से हम लोग इसी ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगे जहाँ बाली भय के कारण प्रवेश ही नहीं कर सका। श्रीराम! इस प्रकार मैंने समस्त भू-मण्डल को प्रत्यक्ष देखा था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४६)

सैंतालीसवाँ सर्ग

पूर्व आदि तीन दिशाओं में गये वानरों का निराश लौटना

सुग्रीव की आज्ञा से सभी वानर यूथपति अपनी-अपनी दिशाओं के पर्वत, वन और काननों सहित सम्पूर्ण देशों की छा नबीन करने लगे। सीता जी की खोज के लिए समस्त वानर दिन भर इधर-उधर अन्वेषण करते और

रात के समय किसी नियत स्थान पर एकत्र हो जाते। फिर सभी ऋतुओं में फल देने वाले वृक्षों के पास जाकर वहीं सो जाते। जाने के दिन को पहला दिन मानकर एक मास पूरा होने तक वे श्रेष्ठ वानर निराश होकर लौट आये और सुग्रीव से मिलकर इसी प्रस्त्रवण गिरि पर ठहर गये। महाबली विनत, महाकपि शतबलि, वानरों सहित सुषेण सभी एक मास पूर्ण होते ही सुग्रीव के पास लौट आये और बोले- राजन्! हमने समस्त पर्वत, घने जंगल, समुद्र, सम्पूर्ण देश एवं आपकी बताई हुई सारी गुफाओं तथा लता वितान से व्याप्त झाड़ियों खोज डालीं। बड़े-बड़े प्राणियों की भी तलाशी ली और उन्हें मार भी डाला किन्तु सीता का पता न लगा। अब वानरराज हनुमान मिथिलेश कुमारी का पता लगा सकें क्योंकि वह उसी दिशा में गये हैं जिधर सीता गयी हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में सैंतालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४७)

अड़तालिसवाँ सर्ग

दक्षिण दिशा में गये वानरों का सीता की खोज करना

इधर तार के साथ अंगद और हनुमानजी सुग्रीव के बताये मार्ग से दक्षिण दिशा के देशों की ओर चल पड़े। वे पहले विन्ध्याचल पर गये। और वहाँ की गुफाओं और जंगलों, पर्वत शिखरों, दुर्गम स्थानों सरोवरों बड़े-बड़े वृक्षों और भाँति-भाँति के वन्य वृक्षों में सब ओर ढूँढ़ते फिरे। परन्तु सीता उन्हें कहीं नहीं दिखाई दी। वे दिन भर सीता की खोज करने के बाद जहाँ तहाँ ठहर जाया करते थे। विन्ध्यपर्वत के घने जंगलों में उन वानरों को अत्यंत कष्ट सहन करना पड़ा। वह पर्वत गहन गुफाओं और सघन वनों से व्याप्त था। अतः वहाँ ढूंढ़ने का कार्य बहुत कठिन प्रतीत होता था। तदनन्तर वे ऐसे प्रदेश में घुसे जिसमें जाना और भी कठिन था किन्तु वहाँ किसी का भय नहीं था। वहाँ न तो कोई पेड़ पौधे थे और न तो औषधियों की लता-बेलें। वहाँ न तो किसी तरह की सुगंध थी न भौंरे ही गुंजार करते थे। वहाँ सब तरह के प्राणियों का अभाव था। कहा जाता है कि पहले वहाँ कण्डु नाम से प्रसिद्ध एक धर्मात्मा महर्षि रहते थे। वे अपने प्रति किये गये अपराध को सहन नहीं करते थें। उनका दस वर्षीय एक बालक भी था। किन्तु किसी कारण से उसकी मृत्यु

हो गयी। इससे कुपित होकर महात्मा अपने प्राण देने को उद्यत हो गये और साथ ही समूचे वन को शाप दे दिया जिससे वह पशु पक्षियों से शून्य हो गया। वानरों ने यहाँ भी पहुँचकर सीता की खोज की किन्तु कोई फल न निकला। तत्पश्चात् उन्होंने एक भयंकर वन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने एक भयानक कर्म करने वाले असुर को देखा। अब वह असुर इन वानरों को देखकर बोला- अरे, आज तुम सब मारे गये। इतना कहकर वह उनकी ओर मुक्का तान कर दौड़ा। इसी बीच अंगद ने उसको ही रावण समझकर उसे एक तमाचा जड़ दिया फिर तो वह असुर रक्त का वमन करता हुआ कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर आ गिरा। तत्पश्चात् वानर फिर अपने कार्य में जुट गये। अंत में ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वे अत्यंत निराश होकर एक पेड़ के नीचे बैठ विश्राम करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में अड़तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४८)

उन्चासवाँ सर्ग

अंगद और गन्धमादन के उत्साह देने पर पुनः खोज प्रारम्भ करना

तत्पश्चात् अंगद सभी वानरों को आश्वासन देते हुए कहने लगे- हम लोगों ने हर स्थान को अच्छी तरह देख लिया है किन्तु हमें न तो जानकी का पता चल सका और न रावण ही मिला। हमारा समय भी बहुत बीत गया। अब जैसे भी हो हम आलस्य और निद्रा का त्याग कर सीता की खोज करें। उत्साह, सामर्थ्य और मन में हिम्मत न हारना ये गुण कार्य में सफलता पाने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक है। आज भी हमें सारे खेद का परित्याग कर सीता की खोज में लग जाना चाहिए। कर्म का फल अवश्य मिलता है। अतएव उद्योग छोड़ना नहीं चाहिए। अंगद की वाणी सुनकर गन्धमादन ने कहा- वानरो! युवराज अंगद ने ठीक ही कहा है। अब आप सब लोग इनके कथनानुसार ही कार्य करें। यह सुनकर सभी वानर उठकर खड़े हो गये और पुनः दक्षिण दिशा में सीता की खोज करना आरम्भ कर दिये। सीता के दर्शन को इच्छुक सभी वानर जंगलों में खोज करने के पश्चात् पर्वत शिखरों और कन्दराओं में खोज करने लगे। किन्तु वे सीता का दर्शन नहीं पा सके। अंत में

थककर वे सभी अचेत से हुए पेड़ों के नीचे बैठकर विश्राम करने लगे। थोड़ी थकावट कम होने पर वे विन्ध्य पर्वत के चारों ओर विचरने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में उन्चासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

पचासवाँ सर्ग

भूखे-प्यासे वानरों का गुफा में घुसना

तदनन्तर हनुमान, तार और अंगद के साथ मिलकर विन्ध्यगिरि के घने जंगलों और गुफाओं में सीता की खोज करने लगे। वहाँ घूमते-घूमते वे पर्वत के नैऋत्य कोण वाले शिखर पर जा पहुँचे। तब तक उनका निर्धारित समय बीत चुका था। फिर भी दक्षिण दिशा के देशों में वे सीता की खोज बराबर करते ही रहे। अचानक एक जगह उन्हें एक गुफा दिखाई दी जिसका द्वार बन्द नहीं था। इस ऋक्ष बिल नामक गुफा में प्रवेश करना बहुत कठिन था। उसकी रक्षा एक दानव किया करता था। उस समय उन वानरों को बड़ी प्यास सता रही थी अतएव वे लता वृक्षों से घिरी उस विशाल गुफा की ओर देखने लगे। इतने में उसमें से जल से भीगे चक्रवाक तथा अन्य पक्षी निकलते दिखलाई पड़े। इससे इन्हें गुफा में जल होने का संदेह होने लगा किन्तु वह इतनी भयानक दिखलाई पड़ती थी कि उसमें किसी को घुसने का साहस नहीं हो रहा था। अब यह देखकर हनुमानजी बोले- बन्धुओं! दक्षिण दिशा में सीता की खोज करते-करते हम लोग बहुत थक गये हैं। किन्तु हमें कहीं भी उनके दर्शन नहीं हो सके। सामने उस गुफा में हंस, क्रौंच, सारस और जल से भीगे चकवे निकल रहे हैं। इसलिए इसके भीतर कोई कुंआ या जलाशय अवश्य होगा। हनुमान जी के कहने से सभी वानर उसमें घुस गये। किन्तु भीतर उन्होंने जो कुछ भी देखा उससे उनके रोंगटे खड़े हो गये। फिर भी नाना प्रकार के वृक्षों से भरे उस भयंकर गुफा में एक योजन तक एक दूसरे को पकड़े हुए चले गये। इस समय प्यास से उनकी चेतना लुप्त हो रही थी फिर भी आलस्य रहित हो वे बराबर आगे बढ़ते गये। तदनन्तर वे श्रान्त होकर जीवन से निराश होने लगे तभी उन्होंने वहाँ प्रकाश के किरण देखे। उस अन्धकार रहित वन में उन्होंने देखा कि वहाँ के सभी वृक्ष सुवर्णमय थे। वे

देखने में प्रातःकालिक सूर्य के समान जान पड़ते थे। उनके नीचे वैदूर्यमणि की वेदी बनी थी। वहाँ कई ऐसे सरोवर भी दिखाई पड़े जो कांचन वृक्षों से घिरे थे। वहीं सोने चांदी के बने हुए बहुत से श्रेष्ठ भवन भी दिखलाई पड़े, जिनकी खिड़कियां मोती की जालियों से ढंकी थीं। उस भवन में सोने के जंगले लगे हुए थे। वहाँ के वृक्षों में जो फल फूल लगे थे वे वृक्ष मूंगे और मणियों के समान चमकीले थे। उन पर सुनहरे रंग के भौंरे मंडरा रहे थे। वहाँ के घरों में सुवर्ण जटित विचित्र पलंग तथा आसन भी सब ओर सजाकर रखे गये थे। वानरों ने वहाँ चमकीले सुवर्ण के ढेर भी देखे। फिर उस गुफा में जहाँ खोज करते हुए उन वानर वीरों ने थोड़ी ही दूर पर किसी स्त्री को देखा। वह वल्कल और काला मृग चर्म पहने अपने तेज से दिव्य दिख रही थी। अब हनुमान जी ने उससे हाथ जोड़कर पूछा- "देवि तुम कौन हो और यह किसकी गुफा है, यह हमें बताओ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

वृद्धा तापसी का अपना परिचय देना

हनुमानजी ने उस वृद्धातपस्विनी से फिर कहा- देवि ! हम लोग भूख-प्यास और थकावट से बेहद कष्ट पा रहे हैं इसलिए इस गुफा में घुस आये हैं लेकिन यहाँ के विचित्र पदार्थों को देखकर ऐसा लगता है कि यह असुरों की माया तो नहीं है ? हम जानना चाहते हैं कि ये सुवर्णमय वृक्ष तथा सोने के कमल आदि किसके तेज से उत्पन्न हुए हैं। यह वास्तव में किसके तपोबल का प्रभाव है। हनुमान जी के इस प्रकार पूछने पर उस तापसी ने कहा- वानर श्रेष्ठ! माया विशारद 'मय' का नाम तुमने सुना होगा। उसी ने अपनी माया के प्रभाव से इस समूचे सुवर्णमय वन का निर्माण किया। उसने एक सहस्र वर्ष तक तपस्या कर के ब्रह्माजी से वरदान के रूप में यह सारा शिल्प, वैभव प्राप्त किया था। फिर इन सारी वस्तुओं का निर्माण कर उसने कुछ काल तक यहाँ निवास किया और इसी बीच उसका सम्पर्क हेमा नामक अप्सरा से हो गया। तब इन्द्र ने उसे युद्ध में मार भगाया। तत्पश्चात् ब्रह्माजी ने सभी वस्तुएं हेमा

को दे दीं। वानरराज! मैं मेरू सावर्णी की कन्या हूँ और मेरा नाम स्वयंप्रभा है। मैं उसके भवन की रक्षा किया करती हूँ। अब यह बताओ कि तुम लोग कौन हो? और तुम्हारा इस वन में आना कैसे सम्भव हो सका? अब मेरे द्वारा फल-मूल प्रस्तुत है इन्हें खाकर पानी पी लो फिर अपना सारा वृत्तांत कहो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५१)

बावनवाँ सर्ग

स्वयंप्रभा के पूछने पर वानरों का अपना परिचय देना

खा-पीकर विश्राम करने के बाद तपस्विनी फिर बोली- वानरो! अब तुम लोग अपना वृत्तान्त आदि कहो। तब हनुमान जी ने बड़ी सरलता से कहा-देवी! सम्पूर्ण जगत् के राजा दशरथ नंदन श्रीराम दण्डकारण्य में आये थे। उनके साथ उनकी पत्नी सीता भी थीं। जन स्थान में आकर रावण ने उनकी स्त्री का अपहरण कर लिया। वानरों के राजा सुग्रीव उनके मित्र हैं। अतः उन्होंने अंगद आदि वीरों के साथ सीता की खोज में हमें दक्षिण दिशा में भेजा है। हमें उस रावण का पता लगाना है। हमने सारा जंगल खोज लिया है। अब हमें समुद्र के भीतर उनकी खोज करनी है। ऐसे ही सीता की खोज करते-करते हम सब एक वृक्ष के नीचे थककर बैठ गये थे। उसी समय हमें यह विशाल गुफा दिखाई पड़ी। इस गुफा से जल से भीगे कुछ पक्षियों को हमने निकलते देखा। तब हमने अनुमान किया कि इसके भीतर अवश्य पानी होगा। हम लोग अपने कार्य में उतावले होने के कारण इस गुफा में कूद पड़े और भूख प्यास से पीड़ित होकर हम तुम्हारी शरण में आये हैं। तुमने आतिथ्य धर्म के अनुसार हमें फल और मूल अर्पित करके हमारे प्राण बचाये। देवि! अब बतायें कि हम तुम्हारे इस उपकार का बदला कैसे चुकायें? तब स्वयंप्रभा बोली- मैं तुम सब वानरों पर बहुत प्रसन्न हूँ किन्तु धर्मानुष्ठान में लगी रहने के कारण मुझे किसी से कोई प्रयोजन नहीं रह गया है। तब हनुमान जी ने कहा- देवि तुम धर्माचरण में लगी हो इसलिए हम तुम्हारी शरण आये हैं। लेकिन राजा सुग्रीव ने जो हमारे लौटने का समय निश्चित किया था वह इस गुफा में ही बीत गया। हम सब सुग्रीव के भय से डरे हैं। अतः तुम

हमारा उद्धार करो। हनुमानजी के ऐसा कहने पर तपस्विनी बोली- मैं समझती हूँ कि जो एक बार इस गुफा में चला आता है उसका जीते जी यहाँ से लौटना बहुत कठिन है। फिर भी अपनी तपस्या के उत्तम प्रभाव से मैं तुम सब को यहाँ से निकाल दूँगी। श्रेष्ठ वानरों ! अब तुम लोग अपनी-अपनी आंखें बन्द कर लो क्योंकि उसके बिना यहाँ से निकलना असम्भव है। सभी वानरों ने यह सुनकर अपनी आँखें बंद कर लीं। तब तापसी ने उन्हें पलक मारते गुफा से बाहर निकाल दिया और उनसे कहा- श्रेष्ठ वानरों ! यह रहा तुम्हारा बिन्ध्यगिरि, इधर प्रस्रवण गिरि है और सामने यह महासागर लहरा रहा है। अब तुम लोग जाओ। मैं अपने स्थान को जाती हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५२)

तिरपनवाँ सर्ग

कार्य सिद्ध न होने के कारण सुग्रीव के भय से वानरों का उपवास द्वारा प्राण त्याग का निश्चय

तदनन्तर वानरों को वरुण की निवास भूमि भयंकर महासागर दिखलायी पड़ा। उस गुफा में सीता की खोज करते हुए उन वानरों का एक मास का समय बीत गया। अतः अब एक दूसरे को यह कहकर कि राजा का काम निश्चित अवधि तक जो हमें पूरा कर लेना चाहिए था वह हम न कर सके और ये कहकर वे भय के मारे अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब अंगद ने सबको मधुरवाणी में सम्बोधित करके कहा, वानरों ! हम जब चले थे तब से लौटने के लिए जो मास निर्धारित हुआ था। वह बीत चुका है, अब हमें आगे क्या करना चाहिए? आप सब ही राजा के विश्वास पात्र हैं। आप सबका पुरुषार्थ भी दसों दिशाओं में व्याप्त है। पर इस समय वानरराज सुग्रीव की आज्ञा पालन करने में हम सफल नहीं हो सके हैं। ऐसी दशा में हमें निश्चय ही प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा। अतः उससे बचने के लिए हमें उपवास करके अपने प्राणों को ही त्याग देना उचित लगता है। हम अपराध करके उनके पास जायेंगे तो वे हमें कभी क्षमा नहीं करेंगे। उल्टे इसके लिए वे हमारा बध भी कर सकते हैं। इसलिए अब घर का मोह त्याग कर हमें

मरणान्त उपवास आरम्भ कर देना चाहिए। सुग्रीव ने तो पहले से ही मेरे प्रति बैर बांध रखा है अतः राजा के हाथों मरने के बजाय इस पावन तट पर मरणान्त उपवास करूँगा। युवराज अंगद की यह बात सुनकर वे सभी श्रेष्ठ वानर करुण स्वर में बोले- सचमुच सुग्रीव का स्वभाव बड़ा कठोर है। उधर श्रीराम अपनी पत्नी को पाने के लिए व्यग्र हैं। इस खोज को समाप्त करने की तिथि भी समाप्त हो गयी है। अब विदेह कुमारी का दर्शन किये बिना ही लौटा हुआ जानकर श्रीराम को प्रसन्न करने के लिए सुग्रीव हमें मरवा सकते हैं। भय से पीड़ित हुए उन वानरों का यह वचन सुनकर तार ने कहा- अब यहाँ बैठकर विषाद करने से कोई लाभ नहीं यदि आप लोग उचित समझें तो स्वयंप्रभा की उस गुफा में ही चलकर हम लोग निवास करें। वह गुफा माया से बनी होने के कारण इसमें हमें किसी का भय नहीं रहेगा। तार की इस बात को सुनकर सभी सहमत होकर बोले- बन्धुओं- हमें वह कार्य जल्दी ही करना चाहिए जिससे हम मारे न जायें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

हनुमान जी का नीति द्वारा अंगद को अपने साथ चलने के लिए समझाना

तार के ऐसा कहने पर हनुमानजी ने सोचा कि इस तरह वानरों में फूट पड़ने से बहुत से वानर अंगद का साथ देंगे और ऐसी दशा में बलवान् अंगद सुग्रीव को राज्य से वंचित करा सकते हैं। ये तेज और बल से सदा परिपूर्ण हो रहे हैं। ये बुद्धि में वृहस्पति के समान और पराक्रम में अपने पिता बाली के तुल्य हैं। अतएव अपने स्वामी सुग्रीव का कार्य सिद्ध करने के लिए हनुमान जी ने अंगद को तार आदि वानरों से फोडने का प्रयत्न आरम्भ किया। वे साम, दाम, भेद और दण्ड आदि उपायों में से भेद द्वारा वानरों को फोड़ने लगे। जब उन सभी वानरों में फूट पड़ गयी तब उन्होंने दण्ड रूप नाना प्रकार के वचनों से अंगद को डराना आरम्भ किया। वे बोले - कुमार! तुम अपने पिता के समान अत्यंत शक्तिशाली हो। वे जैसे वानरों का राज्य सम्हालते थे वैसे तुम

भी उसे धारण करने में समर्थ हो। लेकिन ये चंचल स्वभाव वाले वानर, सुग्रीव से विरोध करके तुम्हारे प्रति अनुरक्त नहीं हो सकते। वैसे जाम्बवान, नील, सुहोल एवं मैं भी सदैव सुग्रीव के प्रति अनुरक्त रहूँगा क्योंकि वे तुम्हारी अपेक्षा अधिक प्रबल हैं। इसे याद रखो किसी बलवान् से वैर बाँधकर दुर्बल पुरुष चैन से नहीं रह सकता। इसलिए दुर्बल को किसी बलवान् से विग्रह नहीं करना चाहिए। जो तुम ऐसा मानते हो कि यह गुफा तुम्हारी रक्षा करेगी वह व्यर्थ है। क्योंकि इसे विदीर्ण करना लक्ष्मण के बाँये हाथ का खेल होगा। लक्ष्मण के पास ऐसे बहुत से अस्त्र हैं जिनसे पर्वतों को भी चूर-चूर किया जा सकता है। कुमार! जब तुम इस गुफा में रहोगे तो तुम्हारे साथ रहने वाले बहुत से वानर बाल बच्चों को याद करके उद्विग्न हो उठेंगे और फिर तुम्हारा साथ छोड़कर चल देंगे। ऐसी दशा में तुम मित्रों के सहयोग से वंचित होकर तिनकों से भी तुच्छ हो जाओगे। लक्ष्मण के बाण महान वेगशाली और दुर्जय हैं। श्रीराम के कार्य से विमुख होने पर वे तुम्हें मारे बिना कदापि नहीं रहेंगे। यदि तुम हम लोगों के साथ चलकर सुग्रीव की सेवा में रहोगे ते वे अपने बाद तुम्हीं को राज्य पर बैठायेंगे। सुग्रीव के तुम्हारे सिवा कोई पुत्र भी नहीं इसलिए तुम्हें उनके पास चलना चाहिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५४)

पचपनवाँ सर्ग

अंगद सहित वानरों का प्रायोपवेशन

हनुमान जी के विनययुक्त वाणी सुनकर अंगद ने कहा- कपि श्रेष्ठ! सुग्रीव में स्थिरता, मनकी पवित्रता और क्रूरता का अभाव है ऐसा नहीं समझना चाहिए। जिसने अपने बड़े भाई की पत्नी को उसके जीते जी बुरे भावना से ग्रहण किया क्या वह धर्म को जानने वाला हो सकता है? जो भाई के द्वारा बिल की रक्षा के लिए नियुक्त किये जाने पर भी उसका मुँह पत्थर से बन्द कर सकता है वह धर्मज्ञ कैसे हो सकता है? जब अपने मित्र राम को ही उसने भुला दिया तब दूसरे किसके उपकार को वह याद कर सकता है। जिसने अधर्म नहीं बल्कि लक्ष्मण के भय से हम लोगों को सीता की खोज के

लिए भेजा है। वह धर्म से प्रेम करने वाला कैसे हो सकता है? सुग्रीव के प्रति जो मेरी अब तक की धारणा थी उसे आज मैंने सही सही बता दिया है। अब मेरी शक्ति क्षीण हो चुकी है। मैं दुर्बल हो गया हूँ। अतः ऐसी दशा में किष्किंधा जाकर कैसे रह सकूँगा? निर्दयी सुग्रीव मुझे अवश्य इस अपराध के लिए गुप्त रूप से दण्ड देगा अथवा बंदी बनायेगा। अतएव मैं प्रतिज्ञा पूर्वक यही कहता हूँ कि अब मैं किष्किंधा नहीं जाऊँगा बल्कि यहीं रहकर मरणान्त उपवास करूँगा। आप लोग लौटकर राजा सुग्रीव एवं दोनों रघुवंशियों को मेरा प्रणाम जताकर उनसे मेरा कुशल समाचार कह देना। मेरी माँ तारा और रूपा को धैर्य बंधाइयेगा। हो सकता है मेरे नष्ट होने से मेरी माँ अपना प्राण ही त्याग दे। इतना कह अंगद सभी बड़े बूढ़ों को प्रणम कर धरती पर मरणान्त उपवास के लिए बैठ गये। उन्हें इस प्रकार बैठने पर सभी श्रेष्ठ वानर रोने लगे और गरम-गरम आँसू बहाने लगे। अब वे सब ही अंगद को चारों ओर से घेर कर आमरण उपवास करने की तैयारी करने लगे। उस समय श्रीराम के वनवास जन स्थान वाली राक्षसों का संहार, बिदेह कुमारी सीता का हरण और जटायु के मरण, बाली के बध और श्रीराम के क्रोध की चर्चा करते हुए उन पर एक दूसरा भय आ पहुँचा। उस समय भय के मारे उन बहुसंख्यक वानरों ने जोर-जोर से शब्द करना शुरू किया जो गर्जते हुए बादलों की तरह लग रहा था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

सम्पाति से वानरों को भय होना

पर्वत के जिस सथान पर वे सब वानर, मरणान्त उपवास पर बैठे थे वहाँ सहसा पक्षीराज सम्पाति आ पहुँचे। वे जटायु के भाई थे और अपने बल तथा पुरुषार्थ के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थे। जब विन्ध्य की कन्दरा से निकल कर सम्पाति ने वहाँ बैठे हुए वानरों को देखा तब उनका हृदय हर्ष से खिल उठा और वे बोले- आज जो स्वतः मेरे लिए ये भोजन प्राप्त हुआ है वह अवश्य मेरे किसी पूर्व कर्मों का फल है। अब उस पक्षी का यह वचन सुनकर अंगद को बड़ा दुख हुआ और वे हनुमान जी से बोले- देखिये अब हम वानरों को

विपत्ति में डालने के लिए साक्षात् यम आ पहुंचे हैं। हम लोगों ने अभी श्रीराम का कार्य पूरा भी नहीं किया है कि सहसा यह अज्ञात विपत्ति हम पर आ पड़ी है। समस्त प्राणी हमारी तरह प्राण देकर भी श्रीराम चंद्रजी का प्रिय कार्य करते हैं। आप लोग उनके कार्य के लिए अपने शरीर का परित्याग करें। धर्मज्ञ जटायु ने भी श्रीराम चंद्र का प्रिय कार्य किया और वे ही सुखी हैं क्योंकि युद्ध में रावण के हाथ मरकर परम गति को प्राप्त हुए। वे सुग्रीव के भय से मुक्त हैं। कपिश्रेष्ठ! आज यह संकट जो हमें घेरे हुए है यह जटायु के मरने का तथा सीता के हरण का कारण है। श्रीराम और लक्ष्मण को वनवास तथा दशरथ का मरण और जनस्थान के राक्षसों का बध यह सब कैकेयी के वरदानों के कारण हुआ। यह सुनकर सम्पाति का हृदय अत्यंत क्षुब्ध हो उठा और उन्होंने दीनवाणी में पूछा, वह कौन है जो प्राणों से बढ़कर मेरे प्रिय भाई जटायु के बध की बात कह रहा है। इसे सुनकर मेरा हृदय कम्पित-सा होने लगा है। अपने भाई का प्यारा नाम आज बहुत दिनों बाद मेरे कानों में पड़ा है। उसका विनाश कैसे हुआ इसे मैं सुनना चाहता हूँ। मेरा भाई जटायु तो जनस्थान में रहता था। श्रीराम के पिता राजा दशरथ से उसके सम्बंध कैसे हुए? यह सब सुनने के लिए आप सब मुझे इस दुर्गम स्थान से नीचे उतार दें क्योंकि मेरे पंख सूर्य की किरणों से जल गये हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५६)

सत्तावनवाँ सर्ग

अंगद का सम्पाति को जटायु का वृत्तांत सुनाना।

आमरण उपवास में बैठे उन वानरों ने उस समय गीध को देखकर सोचा कि यह हमें खा तो नहीं जाएगा। यदि यह हमें खा ले तो भी हमारा काम ही बना समझो। जब उस गीध को पर्वत शिखर से उतारकर अंगद ने कहा- पक्षीराज! पहले एक प्रतापी वानर हो गये है जिनका नाम ऋक्षरजा था। वे मेरे पितामह थे। उनके सुग्रीव और बाली नामक दो पुत्र हुए। उनमें बाली मेरे पिता हैं। आज से कुछ वर्ष पहले दशरथ नंदन श्रीराम अपने पिता की आज्ञा से दण्डकारण्य आये थे। उनके साथ उनकी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण भी

थे। जनस्थान में उनकी पत्नी सीता को रावण ने बलपूर्वक हर लिया। उस समय उनके पिता के मित्र जटायु रावण पर टूट पड़े और सीता को सुरक्षित भूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। किन्तु वृद्ध होने के कारण वे युद्ध में जल्दी थक गये और रावण के हाथों मारे गये। इस प्रकार जटायु के मर जाने पर श्रीराम चंद्र ने उनका दाह संस्कार किया। तत्पश्चात् मेरे चाचा सुग्रीव से उनकी मित्रता हो जाने पर उन्होंने सुग्रीव के कहने पर मेरे पिता का बध कर दिया। मेरे पिता ने मंत्रियों सहित सुग्रीव को राज्य सुख से वंचित कर दिया था। इसलिए श्रीराम ने मेरे पिता को मारकर सुग्रीव को राजा बना दिया। तदनन्तर श्रीराम से प्रेरित होकर हम लोग सीता की खोज में यहाँ आये हैं। किन्तु अभी तक हमें सीता के दर्शन नहीं हो सके हैं। हम लोग तब भूल से एक गुफा में जा घुसे। किन्तु वह गुफा मायावी थी। उसमें खोजते-खोजते एक मास हो गया और सुग्रीव द्वारा निर्धारित अवधि बीत गयी। अतएव हम लोग राजा के भय से आमरण उपवास कर रहे हैं। हम लोगों को सफलता प्राप्त किये बिना लौटने पर भी प्राण जाने का भय है।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

सम्पाति का पंख जलने की कथा सुनाना

अंगद की करूणा भरी बात सुनकर सम्पाति के नेत्रों में आंसू भर आये। उन्होंने फिर उच्च स्वर से कहा -वानरों! रावण द्वारा मारा गया जटायु मेरा छोटा भाई था। मेरे पंख जल जाने के कारण मैं बदला लेने में असमर्थ हूँ इसलिए चुप बैठा हूँ। पुराने समय में जब इन्द्र के द्वारा वृत्रासुर का बध हुआ उस समय इन्द्र को प्रबल जानकर हम दोनों भाई उसे जीतने की इच्छा से बड़ी तेजी से स्वर्ग लोक गये। इन्द्र को जीतकर हम लोग सूर्य के पास जाने लगे। किन्तु मार्ग में ही जटायु सूर्य की किरणों से अत्यंत पीड़ित होने लगा। तब स्नेह वश मैंने अपने दोनों पंखों से उसे ढँक लिया। वानरो! उस समय मेरे पंख जल गये और मैं विन्ध्य पर्वत पर आ गिरा। यहाँ गिरने के बाद फिर मुझे जटायु का कोई समाचार न मिला। आज पहले पहल तुम लोगों के मुख से उसके मारे

जाने की खबर मिली। सम्पाति के ऐसा कहने पर अंगद बोले- गृध्रराज ! यदि आप जटायु के भाई हैं तो मुझे उस रावण का पता अवश्य बतायें। तब सम्पाति ने उत्तर दिया- वानरो ! मेरे पंख जल गये हैं। मैं शरीर से नहीं किन्तु वाणी से तुम्हारी सहायता अवश्य कर सकता हूं। यद्यपि मैं वृद्ध हो चुका हूं फिर भी श्रीराम का यह कार्य मुझे सबसे पहले करना है। एक दिन् मैंने रावण को किसी स्त्री को हरकर ले जाते हुए देखा। वह हा, राम, हा राम, हा लक्ष्मण, की रट लगा रही थी। श्रीराम का नाम लेने से मैं समझता हूँ कि वह सीता ही रही होंगी। अब मैं उस राक्षस का पता बता रहा हूं। रावण नामक राक्षस महर्षि विश्रवा का पुत्र और साक्षात् कुबेर का भाई है। वह लंका नामक नगरी में निवास करता है। वह यहाँ से चार सौ कोस के अंतर पर समुद्र के द्वीप में स्थित है। उसकी चहार दीवारी बहुत बड़ी है। सीता वहीं बड़े दुख के साथ निवास करती है। चारों ओर से बहुत सी राक्षसियां उसके लिए पहरा देती हैं। अब समुद्र पारकर तुम लोग शीघ्रता पूर्वक पराक्रम का परिचय दो। मैं निश्चय ही ज्ञान दृष्टि से देख रहा हूँ कि तुम लोग सीता का दर्शन करके लौट आओगे। आकाश में सबसे ऊँची उड़ान गरूड़ की होती है। वानर शिरोमणियो ! हम सब का जन्म गरूड़ से ही हुआ है। अब तुम लोगों की सहायता करके मुझे रावण से अपने भाई के बैर का बदला लेना है। मैं तो रावण को यहीं से देख रहा हूँ। क्योंकि हम लोगों को दूर तक देखने की दिव्य शक्ति प्राप्त है। इस समय तुम लोग खारे पानी वाले समुद्र को लाँघने का कोई उपाय सोचो। तुम लोग अवश्य अपने मनोरथ में सफल होकर किष्किंधापुरी लौटोगे। मैं तुम लोगों की सहायता से समुद्र के किनारे चलना चाहता हूँ क्योंकि मैं वहाँ अपने भाई महात्मा जटायु को जलान्जलि प्रदान करना चाहता हूँ। यह सुनकर वानरों ने सम्पाति को उठाकर समुद्र के किनारे पहुँचा दिया। वहाँ जलान्जलि देने के पश्चात् वे पुनः सम्पाति के रहने के स्थान पर ले आये। उनके मुख से सीता का समाचार पाकर उन सभी वानरों को बड़ी प्रसन्नता होने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५८)

Mookerji Sharma (Prof.) Jammu Collection

उनसठवाँ सर्ग

सम्पाति का अपने पुत्र से सुनी हुई सीता और रावण को देखने की घटना का वृत्तांत बताना।

उस समय सम्पाति के वचन सुनकर सभी वानर हर्ष से खिल उठे। तब जाम्बवान् सब वानरों के साथ खड़े होकर पूछने लगे- पक्षिराज! बताइये कि सीता कहां हैं? उन्हें किसने देखा है और कौन उन्हें हर कर ले गया है। कौन ऐसा है जो श्रीराम और लक्ष्मण के पराक्रम को नहीं समझता? तब सम्पाति बोले- मैं तुम्हारी सभी बातों का उत्तर दे रहा हूँ, सुनो। यह दुर्गम पर्वत कई योजनों तक फैला हुआ है। उस समय मेरी प्राण शक्ति क्षीण हो गयी थी और मै बूढ़ा भी हो गया था। ऐसी दशा में मेरा पुत्र सुपार्श्व ही मुझे भोजन देकर मेरा भरण-पोषण करता था। एक दिन सूर्यास्त होने के बाद भी मेरे पुत्र को कहीं भोजन न मिल सका। तब मैंने उसे बहुत बुरा-भला कहा। लेकिन उसने मुझे आदर देते हुए कहा तात! जब मैं मांस प्राप्त करने की इच्छा से आकाश में उड़ा उस समय मैंने देखा कि कोयले की राशि के समान कोई काला पुरुष एक स्त्री को, जिसकी प्रभा सूर्योदय काल के प्रभा से प्रकाशित हो रही थी, लेकर जा रहा है। उस स्त्री और उस पुरुष को देखकर मैंने उन्हें आपके आहार के लिए लाने का निश्चय किया किन्तु उस पुरुष ने नम्रता पूर्वक मधुरवाणी में मुझसे मार्ग देने की प्रार्थना की। भूतल पर नीच पुरुष में भी ऐसा कोई नहीं है जो विनयपूर्वक वचन बोलनेवाले पर प्रहार करें। इसके बाद वह पुरुष तेजी से आकाश को व्याप्त करता हुआ सा वेग पूर्वक चला गया। तत्पश्चात् मेरी पूजा आकाशचारियों द्वारा हुई। वे महर्षि मुझसे बोले-यह सौभाग्य की बात है कि सीता जीवित हैं। उन्होंने यह भी बताया कि वह काला पुरुष राक्षसों का राजा रावण था। तात! सीता के अत्यंत शोक मग्न होने के कारण उनके आभूषण गिर रहे थे और रेशमी वस्त्र भी सिर से खिसक गया था। मैं उनकी दयनीय दशा को देखता रह गया और यही मेरे विलंब से आने का कारण है। वानरों इतना सुनकर भी बिना पंख के मेरे मन में कोई भी पराक्रम दिखलाने का विचार नहीं उठा। लेकिन अब मैं वाणी और बुद्धि द्वारा तुम लोगों का प्रिय कार्य अवश्य करूँगा क्योंकि श्रीराम का कार्य मेरा कार्य है इसमें संशय नहीं। तुम लोग भी उत्तम बुद्धि से युक्त हो इसलिए सुग्रीव ने तुम्हें इस कार्य के लिए

भेजा है। श्रीराम और लक्ष्मण के बाण साक्षात विधाता के बनाये हैं। उनसे वे तीनों लोकों को दमन करने की शक्ति रखते हैं। तुम्हारा शत्रु रावण भले ही तेजस्वी हो किन्तु तुम लोगों के लिए उसे परास्त करना दुष्कर नहीं। अतएव अब विलंब न करके सीता के दर्शन हेतु उद्योग करो।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ (५९)

साठवाँ सर्ग

सम्पाति की आत्मकथा

सम्पाति अपने भाई को जलान्जलि देकर स्नान कर चुके तब समस्त वानर उन्हें घेरकर बैठ गये। तब सम्पाति ने अपनी कथा सुनाते हुए कहा- निष्पाप अंगद! प्राचीन काल में मैं विन्ध्यपर्वत के शिखर पर गिरा था। उस समय सूर्य के प्रचण्ड ताप से मेरे सारे अंग संतप्त हो रहे थे। मैं तत्काल किसी वस्तु को पहचानने में असमर्थ हो रहा था। सहसा चेतना लौटने पर मैने अपने को विन्ध्यपर्वत पर पाया। पूर्वकाल में यहाँ निशाकर (चंद्रमा) नामक एक उग्र तपस्यां करनेवाले ऋषि रहते थे। वे धर्मज्ञ मुनि अब स्वर्गवासी हो गये हैं और बिना उन महर्षि के मुझे यहाँ रहते हुए आठ हजार वर्ष बीत गये। उस समय होश आने पर मैंने उन मुनि से मिलने की सोची और बहुत कष्ट उठाकर मैं उनके आश्रम में पहुँच सका। थोड़ी देर में मुझे महर्षि भी आते दिखलायी पड़े। वे उस समय स्नान करके लौटे और अपने तेज से चमक रहे थे। ऋषि उस समय मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए फिर मेरे यहाँ आने का प्रयोजन पूछा। वे बोले- सौम्य! तुम्हारे रोयें गिर गये और दोनों पंख जल गये हैं। इतने पर भी तुम्हारे शरीर में प्राण टिके हुए हैं। मैंने पहले दो गीधों का, जो परस्पर भाई थे, देखा था। वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले थे। सम्पाति! मैं तुम्हें पहचान गया। तुम बड़े हो और जटायु छोटा है। तुम लोग मनुष्य रूप धारण करके मेरा चरण स्पर्श किया करते थे। तुम्हारे ये पंख कैसे गिर गये। क्या तुम्हें कोई रोग लग गया है या तुम्हें किसी ने दण्ड दिया है। सब साफ-साफ बताओ।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में साठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६०)

इकसठवाँ सर्ग

सम्पाति का पंख जलने का कारण बताना

मुनि के पूछने पर मैंने कहा- भगवन्! मेरे शरीर में घाव हो गया है इसलिए अत्यंत पीड़ा के कारण मैं अच्छी तरह बात भी नहीं कर सकता। मैं और जटायु गर्व से फूले हुए, अपनी शक्ति की थाह लगाने के लिए दूर तक पहुंचने के उद्देश्य से आकाश में उड़ने लगे। कैलाश पर्वत पर रहनेवाले मुनियों के सामने हमने यह शर्त बदी थी कि सूर्य जब तक अस्ताचल जायें उसके पहले ही हम दोनों उनके पास पहुँच जाएंगे। यह निश्चय करके हम एक साथ ही आकाश में जा पहुँचे और बराबर ऊँचे उड़ते हुए सूर्य के मार्ग पर जा पहुँचे। वहाँ से नीचे देखने पर यहाँ के जंगल, हरी-हरी घास की तरह दिखलायी पड़ते थे। पर्वत ऐसे लगते थे जैसे पत्थर बिछाये गये हों। नदियों से ढँकी हुई भूमि ऐसी लगती थी मानों उसमें सूत के धागे लपेटे गये हों। बड़े - बड़े पर्वत हाथी के समान दिखलायी पड़ते थे। तत्पश्चात् हम दोनों के शरीर से बहुत पसीना निकलने लगा और हमें थकावट मालूम होने लगी। फिर तो हम भयभीत होने लगे। उस समय मुझे दिशा का ज्ञान ही नहीं हो रहा था। सूर्य के तेज से मेरी दर्शन शक्ति ही नष्ट हो गयी। लेकिन फिर भी प्रयत्न करके मैंने पुनः मन और नेत्रों को सूर्य देव की ओर लगाया। इस प्रकार विशेष प्रयास से मुझे सूर्य देव का दर्शन हुआ। वे हमें पृथ्वी के बराबर ही जान पड़ते थे। उस समय जटायु बिना मुझसे पूछे ही पृथ्वी पर उतर पड़ा। तब मैंने भी अपने आपको आकाश से नीचे की ओर छोड़ दिया और अपने दोनों पंखों से जटायु को ढंक लिया। इसलिए वह तो न जल सका, पर मैं जल गया और वायु के पथ से नीचे गिरते हुए मुझे ऐसा संदेह हुआ कि जटायु जनस्थान में गिरा है। किन्तु मैं इसी विन्ध्यपर्वत पर आ गिरा। अब राज्य से भ्रष्ट होकर तथा भाई और अपने पराक्रम को खोकर मैं सर्वथा मरने की इच्छा से इस पर्वत शिखर से नीचे गिरूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६१)

बासठवाँ सर्ग

निशाकर मुनि का सम्पाति को सांत्वना देना

वानरो! उन मुनि श्रेष्ठ से इतना कहकर मैं विलाप करने लगा। तब मेरी बातसुनकर महर्षि निशाकर बोले- सम्पाते! चिन्ता न करो। तुम्हारे छोटे और बड़े दोनों तरह के पंख निकल आयेंगे और तुम्हारा बल पराक्रम भी लौट आयेगा। तपस्या के द्वारा मैंने बहुत कुछ बातों को प्रत्यक्ष जान लिया है। उसी तप के द्वारा मैंने यह भी जान लिया है कि इक्ष्वाकुवंश में दशरथ नामक एक राजा होंगे। उनके श्रीराम नाम का एक बहुत तेजस्वी पुत्र होगा। वे श्रीराम अपने भाई, अपनी पत्नी के साथ वन जायेंगे। वनवास काल में उनकी पत्नी को रावण नामक असुर हर ले जाएगा। वह देवताओं और दानवों के लिए अवध्य होगा। सीता को राक्षस राज की ओर से हर तरह के भोगों और भक्ष्य भोज्य आदि पदार्थों का प्रलोभन दिया जायेगा। किन्तु सीता उसे स्वीकार न करकेदुःख में डूबी रहेंगी। सीता राक्षसों का अन्न नहीं खायेंगी। यह विदित होने पर देवराज इन्द्र उन्हें अमृत के समान खीर देंगे। उस खीर को स्वीकार कर सीता उसका अग्रभाग श्रीराम और लक्ष्मण के लिए समर्पित करेंगी। सम्पाते! श्रीराम के भेजे हुए दूत वानर गण जब यहाँ आयेंगे तब तुम उन्हें सीता का पता बताना यद्यपि मैं तुम्हें आज ही पंख युक्त कर सकता हूँ किन्तु यहाँ रहकर तुम संसार के लिए हितकर कार्य कर सकोगे। उन दोनों राजकुमारों का काम समस्त देवताओं और मुनियों का कार्य है। यद्यपि उन दोनों भाईयों के दर्शन की मुझे भी अभिलाषा है किन्तु अब मैं जल्दी ही प्राण त्यागना चाहता हूँ। ऐसी बात उन महर्षि ने मुझसे कही थी।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

सम्पाति का पंखयुक्त होकर उड़ जाना

तत्पश्चात् राम कार्य में सहायक होने के लिए महर्षि निशाकर ने मेरे सौभाग्य की बड़ी सराहना की। फिर वे अपने आश्रम में चले गये। तदनन्तर कंदरा से धीरे-धीरे निकलकर मैं पर्वत शिखर पर चढ़ आया और तब से तुम

लोगों के आने की बाट जोह रहा हूं। मुनि से बातचीत के बाद आज तक का जो समय बीता है इसमें आठ हजार से अधिक वर्ष निकल गये। मेरे मन में कई बार प्राण त्यागने की इच्छा हुई किन्तु मैं मुनि के वचनों को याद कर इसे टालता आया। दुरात्मा रावण में कितना बल है इसे मैं जानता हूँ। इसीलिए मैंने अपने पुत्र को डाँटा भी था कि तूने सीता की रक्षा क्यों नहीं की? वहाँ बैठे हुए वानरों के साथ सम्पाति इस तरह की बात कर ही रहे थे कि उन वानरों के सामने ही उनके दो नये पंख निकल आये। इससे सम्पाति को अनुपम हर्ष हुआ और वे वानरों से बोले- कपिवरों! निशाकर के आशीर्वाद से मेरे दोनों पंख फिर निकल आये हैं। युवावस्था में मेरा जैसा पराक्रम और बल था इस समय मैं वैसे ही पुरुषार्थ का अनुभव कर रहा हूँ। अब तुम लोग सब प्रकार से प्रयत्न करो। तुम लोगों को निश्चय ही सीता के दर्शन होंगे। मेरे नये पंख तुम्हारे कार्य सिद्धि का विश्वास दिलानेवाले हैं। ऐसा कहकर सम्पाति उस पर्वत शिखर से उड़ गये। उनकी बातें सुनकर वानरों का हृदय हर्ष से खिल उठा और वे अपने कार्य के लिए उद्यत हो गये। तदनन्तर वे सब सीता जी की खोज के लिए दक्षिण दिशा की ओर चल दिये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधा काण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६३)

चौसठवाँ सर्ग

समुद्र की विशालता देखकर अंगद का सब से उनकी शक्ति के बारे में पूछना

गृध्रराज सम्पाति की बात सुनकर हर्ष से भरे हुए वे वानर सीताजी के दर्शन की इच्छा से समुद्र तट पर आये। वह समुद्र कहीं तो शान्त दिखलाई पड़ता था और कहीं उसमें उत्ताल तरंगे उठ रही थीं। वह सारा समुद्र पाताल निवासी दानव राजों से व्याप्त था। अब उस रोमांचकारी समुद्र को देखकर सारे वानर चिंता में पड़ गये। उस समय सारी वानर सेना को चिंतित देखकर अंगद ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा-वीरों! इस समय तुम्हें अपने मन को चिंता में नहीं डालना चाहिए। क्योंकि चिंता बहुत बड़ा दोष है और वह जीते जी मनुष्य को नाश कर डालता है। तब उस रात्रि के बीत जाने पर अंगद ने

Mookerji Collection

बड़े-बड़े वानरों के साथ मिलकर पुनः विचार आरम्भ किया। उस समय अंगद को घेर कर बैठी हुई वह वानर सेना इन्द्र को घेर कर बैठी हुई देवताओं की सेना के समान प्रतीत होती थी। तब अंगद उन लोगों से बोले- सज्जनो! तुम लोगों में ऐसा कौन महाबली वीर है जो समुद्र को लांघ कर सुग्रीव का कार्य पूरा करेगा। किसके प्रसाद से हम लोग सफल मनोरथ और सुखी होकर यहाँ से लौटेंगे और अपने घर और स्त्री पुरुषों का मुख देख सकेंगे। यदि कोई वीर समुद्र लाँघने में समर्थवान् हो तो वह आगे बढ़कर हमें अभयदान दे। लेकिन अंगद की बात सुनकर सारी वानर सेना जड़वत् खड़ी रही। यह देखकर अंगद ने पुनः कहा- वानर शिरोमणियो! तुम लोग पराक्रमी हो और उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो। तुम लोगों की गति कभी रुकती नहीं इसलिए समुद्र लांघने में जिसकी जितनी शक्ति हो बताये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६४)

पैसठवाँ सर्ग

वानर वीरों का अपनी-अपनी शक्ति वर्णन

अंगद की बात सुनकर सभी वानर एक-एक करके अपनी शक्ति का परिचय देने लगे! इनमें गज ने कहा- मैं दस योजन छलांग मार सकता हूं। गवाक्ष बोले- मैं बीस योजन तक जा सकता हूं। तत्पश्चात् शरभ और ऋषभ नामक वानरों ने क्रमशः तीस और चालीस योजन तक जाने की बात कही। फिर मैन्द और गंध मरदन ने पचास और साठ योजन तक कूद जाने की बात कही। तदनन्तर महातेजस्वी द्विविद बोले, मैं सत्तर योजन तक कूद सकता हूं। फिर सुषेण ने अस्सी योजन तक जाने की प्रतिज्ञा की। तब सब वानरों की बात सुनकर ऋक्षराज जाम्बवान् ने कहा- मैं यद्यपि बूढ़ा हो चला हूँ फिर भी एक छलांग मे नब्बे योजन तक चला जाऊँगा। पूर्व काल में जब राजा बलि के यज्ञ में सर्वव्यापी भगवान् विष्णु तीन पग भूमि नापने के लिए अपना पैर बढ़ा रहे थे उस समय मैंने उस विराट स्वरूप की थोड़े ही देर में परिक्रमा कर ली थी। परन्तु इतनी गति से समुद्र लंघन नहीं किया जा सकता। जाम्बवान् की बात सुनकर अंगद उनका विशेष आदर करते हुए बोले- मैं इस महासागर में सौ

योजन की दूरी तक जा सकता हूँ। लेकिन फिर मुझसे लौटने की शक्ति रहेगी या नहीं इसे मैं नहीं कह सकता। तब जाम्बवान् बोले- वानरों में श्रेष्ठ युवराज! तुम्हारी गमन शकित से हम लोग भली भांति परिचित हैं। तुम लाखों योजन तक जाकर वहाँ से लौटने में समर्थ हो किन्तु तुम सबके स्वामी हो इसलिए हमारा तुम्हें वहाँ तक भेजना उचित नहीं। तुम अपने सेवकों में ही किसी को भेजो। तुम हमारे स्वामी हो और स्वामी सारी सेना के लिए स्त्री के समान संरक्षणीय होता है। शत्रुदमन! तुम्हीं कार्य के मूल हो और मूल के बने रहने पर ही सभी गुण सफल सिद्ध होते हैं। तुम्हीं हमारे गुरू और गुरूपात्र हो। तुम्हारा ही आश्रय लेकर ही हम लोग कार्य साधन में समर्थ हो सकते हैं। तब अंगद जाम्बवान् से बोले-यदि मैं नहीं जाऊँगा और दूसरा भी कोई वानर जाने को तैयार न होगा। तब हम लोगों को निश्चित ही मरणान्त उपवास करना चाहिए। किष्किंधा लौटने पर भी हमें प्राणों की रक्षा का कोई उपाय दिखायी नहीं देता। अतः जिस भी उपाय से सीता का दर्शन हो सके। उस पर आप ही विचार करें। उस समय अंगद के ऐसा कहने पर जाम्बवान् बोले- वीर तुम्हारे इस कार्य में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने पायेगी। अब मैं ऐसे वीर को प्रेरित कर रहा हूं जो इस कार्य को सिद्ध कर सकेगा। तब जाम्बवान् ने एकांत में मौज से बैठे हुए हनुमान जी को इस कार्य के लिए प्रेरित किया क्योंकि वे दूर तक छलांग लगाने में सभी वानरों में श्रेष्ठ थे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के किष्किंधा काण्ड में पैसठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६५)

छाछठवाँ सर्ग

जाम्बवाऩ का हनुमान को उनकी उत्पत्ति कथा सुनाकर उन्हें उत्साहित करना

तदनन्तर वानर सेना को विषाद में पड़ी देखकर जाम्बवान् ने हनुमान जी से कहा-शास्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ हनुमान! तुम एकांत में चुपचाप बैठे हो। कुछ बोलते क्यों नहीं? तुम बल और तेज में श्रीराम और लक्ष्मण के समान हो। तुम विख्यात शक्तिशाली और शीघ्रगामी हो। जो बल पक्षिराज गरूड़ के पंखों में हैं वही बल तुम्हारी दोनों भुजाओं में है फिर तुम अपने को समुद्र

लांघने के लिए तैयार क्यों नहीं करते? वीरवर! तुम्हारे जन्म की कथा इस प्रकार है। उसे सुनो। पुंजिक स्थल नामक विख्यात अप्सरा एक बार शापवश यहाँ कपियोनि में अवतीर्ण हुई। उस समय वह अंजना नाम से विख्यात होकर केसरी की पत्नी हुई। एक दिन की बात है अंजना मानवी शरीर धारण कर पर्वत शिखर पर खड़ी थी। उस समय उसके सुन्दर अंग को देखकर पवन देवता काम से मोहित हो गये और उन्होंने उस अनिन्द्य सुन्दरी को अपनी विशाल भुजाओं में भर लिया। अंजना अपना सतीत्व नष्ट होते देखकर घबरा उठीं और बोलीं- कौन मेरे पातिव्रत्यका नाश करना चाहता है। अंजना की बात सुनकर पवन देव ने उत्तर दिया- मैं तुम्हारे एक पत्नी व्रत का नाश नहीं कर रहा हूँ। अतः तुम्हारे मन से यह भय दूर हो जाना चाहिए। यशस्विनी! मैंने जो यह तुम्हारे साथ समागम किया है इससे तुम्हें बल पराक्रम से सम्पन्न एक बुद्धिमान पुरुष प्राप्त होगा। वह महान धैर्यवान, महातेजस्वी, महापराक्रमी तथा लाँघने और छलाँग मारने में मेरे समान होगा। महाकपे! वायुदेव के ऐसा कहने पर तुम्हारी माता प्रसन्न हो गयीं और फिर उन्होंने तुम्हें एक गुफा में जन्म दिया। बाल्यावस्था में ही तुमने उदित होते हुए सूर्य को फल समझकर उसे लेने के लिए अंतरिक्ष में जा पहुँचे। तब इन्द्र ने कुपित होकर तुम्हारे ऊपर बज्र का प्रहार किया। उस समय उदयगिरि के शिखर पर तुम्हारे हनु (ठोड़ी) का बायाँ भाग बज्र की चोट से खंडित हो गया। तभी से तुम्हारा नाम हनुमान पड़ गया। लेकिन तुम्हारे ऊपर प्रहार हुआ देखकर वायु देवता को बड़ा क्रोध आया। इससे उन्होंने तीनों लोकों में प्रवाहित होना छोड़ दिया। उस समय समस्त लोकपाल कुपित हुए वायुदेव को मनाने लगे। तब पवन देव के प्रसन्न होने पर ब्रह्मा जी ने तुम्हारे लिए यह वर दिया कि मृत्यु तुम्हारी इच्छा के अधीन होगी। तुम जब चाहोगे तभी मर सकोगे अन्यथा नहीं। इस प्रकार तुम केसरी क्षेत्रज पुत्र हो। वत्स! तुम छलांग मारने में पवन के तुल्य हो। अतः पराक्रमी वीर! तुम अपने असीम बल का विस्तार करो। यह सारी वानर सेना तुम्हारे बल पराक्रम को देखना चाहती है। अतः हनुमान! उठो और इस महासागर को लाँघ जाओ। वेगशाली वीर जैसे भगवान् विष्णु ने त्रिलोकी को नापने के लिए तीन पग बढ़ाये थे उसी प्रकार तुम भी अपना पैर बढ़ाओ। इस प्रकार जाम्बवान् की

प्रेरणा पाकर पवन कुमार हनुमान को अपने वेग पर महान् विश्वास हो आया। उन्होंने वानरों की सेना का हर्ष बढ़ाते हुए उस समय अपना विराटरूप प्रकट किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

सड़सठवाँ सर्ग

हनुमानजी का समुद्र लाँघने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चढ़ना

सौ योजन समुद्र लाँघने के लिए हनुमान जी को बढ़ते हुए देखकर सारी वानर सेना हर्ष से भर उठी। वे सब उनके चारों ओर खड़े होकर आश्चर्य चकित नेत्रों से उन्हें देखने लगे। तब महाबली हनुमान ने अपना शरीर और बढ़ाना शुरू किया। साथ ही अपनी पूँछ को बार-बार घुमाकर अपने महान् बल का स्मरण किया। हनुमान का रूप उस समय बड़ा उत्तम दिखलायी पड़ता था। तदनन्तर वे वानरों के बीच से उठकर खड़े हो गये। उनके सारे शरीर में रोमान्च हो आया। उस अवस्था में उन्होंने बड़े बूढ़े वानरों को प्रणाम करते हुए कहा- आकाश में विचरने वाले पवन देवता बड़े बलवान् हैं। और उनकी शक्ति की कोई सीमा नहीं। वे अपने वेग से बड़े-बड़े पर्वत शिखरों को भी तोड़ डालते हैं। अतः उनका औरस पुत्र होने के कारण मैं उन्हीं के समान छलांग मार सकता हूँ। मैं मेरुगिरि जो सैकड़ों योजन तक फैला है, की परिक्रमा सैकड़ों बार कर सकता हूँ। मैं समुद्र के जल में सम्पूर्ण जगत् को आप्लावित कर सकता हूँ। यह समुद्र मेरी जाँघों और पिंडलियों के वेग से विक्षुब्ध हो उठेगा। गरुड़ नन्दन जब आकाश में उड़ते हों उस समय मैं हजारों बार उनके चारों ओर घुम सकता हूँ। सूर्य के उदयाचल से निकलने पर उनके अस्त होने के पहले ही मैं उन्हें छू सकता हूँ। ग्रह नक्षत्रों को लाँघकर मैं उनके आगे भी जा सकता हूँ। अतः इस महासागर को लाँघकर मैं उसके पार अवश्य पहुँच सकता हूँ। वानरो ! आज समस्त प्राणी मुझे भयंकर आकाश में सीधे जाते हुए उछलते हुए और फिर नीचे उतरते हुए देखेंगे। विनता नंदन गरुड़ में, मुझमें और वायुदेवता में ही समुद्र लाँघ जाने की शक्ति है। उसके अलावा मैं किसी भी प्राणी को ऐसा नहीं देखता जो छलाँग मार कर मेरे साथ

जा सके। वानरो ! मैं बुद्धि से जैसा देखता या सोचता हूँ मेरे मन की चेष्टा उसी के अनुरूप होती है। मुझे ऐसा विश्वास होता है कि मैं मिथिलेश कुमारी सीता का दर्शन अवश्य करूँगा। अतएव तुम सब प्रसन्न हो उठो। देवराज इन्द्र अथवा ब्रह्मा के हाथ से भी मैं बल पूर्वक अमृत छीनकर यहाँ ला सकता हूँ। सम्पूर्ण लंका को हाथ पर उठाये चल सकता हूँ। हनुमान जी के ऐसा कहने पर सारे वानर हर्ष से भर उठे और चकित नेत्रों से उनकी ओर देखने लगे। फिर जाम्बवान् प्रसन्न होकर बोले- पवनकुमार ! तुमने अपने बन्धुओं का महान् शोक नष्ट कर दिया है। अब ये मंगल कृत्य के लिए स्वस्तिवाचन करेंगे। ऋषियों के प्रसाद, वृद्ध वानरों की अनुमति तथा गुरुजनों की कृपा से तुम इस महासागर के पार हो जाओ। फिर जब तक तुम लौटकर नहीं आओगे हम सब तुम्हारी प्रतीक्षा एक पैर से खड़े होकर करेंगे। तब हनुमानज़ी ने कहा- जब मैं यहाँ छलाँग मारूँगा उस समय कोई मेरे वेग को धारण नहीं कर सकेगा। मैं अब इस महेन्द्र पर्वत के शिखर पर पैर रखकर छलाँग मारूँगा। यों कहकर हनुमान जी पर्वतों में श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चढ़ गये। बड़े-बड़े शिखरों से ऊँचे प्रतीत होने वाले महेन्द्र पर्वत पर आरूढ़ होकर महापराक्रमी हनुमान वहाँ इधर से उधर टहलने लगे। हनुमानजी के पैरों के नीचे दबा हुआ वह महान पर्वत सिंह से आक्रान्त हुए हाथियों की तरह चीत्कार करने लगा। उसके शिला समूह इधर-उधर बिखर गये और उसमें नये नये झरने फूट निकले। वहाँ के सारे पशु थर्राने लगे और पक्षीगण उस विशाल पर्वत को छोड़कर जाने लगे। सारे सर्प बिलों में घुस गये और इस प्रकार महान् पर्वत दुरावस्था में पड़ गया। उस समय भय से घबराये हुए ऋषि मुनि भी उस पर्वत को छोड़कर जाने लगे ! जैसे कोई अकेला चलने वाला राही भारी विपत्ति में फँस जाये। वही दशा महेन्द्र पर्वत की हो रही थी पर वीर हनुमान का मन तो केवल छलाँग मारने में लगा था। उन्होंने फिर एकाग्रचित्त होकर लंका का स्मरण किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के किष्किंधाकाण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६७)

किष्किंधाकाण्ड समाप्त

सुन्दर काण्ड

पहला सर्ग

हनुमान जी द्वारा समुद्र लँघन

तदनन्तर हनुमानजी आकाश मार्ग से जाने का विचार करके अपने मस्तक और ग्रीवा को ऊँचा किया। उस समय वे हृष्ट पुष्ट सांड़ के समान लग रहे थे। उस पर्वत का तल प्रदेश श्वेत तथा श्याम वर्ण वाली निर्मल धातुओं से अच्छी तरह अलंकृत था। उस पर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले यक्ष, किन्नर, गन्धर्व और नाग भी परिवार सहित निवास करते थे। उसके समतल प्रदेश में खड़े हुए हनुमान जी सरोवर में खड़े हुए हाथी के समान दिखाई पड़ते थे। उन्होंने उन समस्त देवताओं तथा अपने पिता पवन देव को प्रणाम किया। तत्पश्चात् दक्षिण दिशा में जाने के लिए अपना शरीर बढ़ाने लगे। तब समुद्र लाँघने के लिए वे अपने शरीर को बढ़ाते हुए अपनी दोनों भुजाओं और चरणों से उस पर्वत को दबाया। हनुमानजी के द्वारा दबाये जाने पर वह पर्वत कांप उठा और दो घड़ी तक डगमगाता रहा। अब बलवान् पवन कुमार के भार से दबा हुआ महेन्द्रगिरि से सुनहरे, रुपहले और काले रंग के जल स्त्रोत बहने लगे और यही नहीं वह पर्वत मैनसिल सहित बड़ी-बड़ी शिलाएं गिराने लगा। उनके व्यवहार से उस पर्वत के सभी जीव जन्तु गुफाओं में घुसकर चिल्लाने लगे। बड़े-बड़े भयानक सर्प आग उगलते हुए उन शिलाओं को डसने लगे। उस पर्वत पर साँपों के विष को नष्ट करने वाली बहुत-सी औषधियाँ उगी थीं किन्तु वे भी उस समय साँपों के विष को शान्त नहीं कर सकीं। वहाँ रहनेवाले विद्याधरों और तपस्वियों ने समझा कि इस पर्वत को भूत लोग तोड़ रहे हैं। इससे भयभीत होकर वे अपनी स्त्रियों सहित ऊपर उठकर अंतरिक्ष में चले गये और फिर आकाश में निराधार खड़े होने की शक्ति का परिचय देते हुए अंतरिक्ष में एक साथ खड़े होकर पर्वत को

देखने लगे। तब हनुमान जी ने उनकी यह बात सुनी- अहा! ये पर्वत के समान वेग शाली पवन पुत्र इस समुद्र को पार करना चाहते हैं। उस समय हनुमान जी अग्नि पुंज के समान जान पड़ते थे। वे ऊपर उछलना चाहते थे इसलिए उन्होंने अपनी पूँछ को आकाश में इस तरह फेंका जैसे पक्षिराज गरुण सर्प को फेंकते हैं। फिर उन्होंने अपनी भुजाओं को पर्वत पर जमाकर अपने दोनों पैरों को भी समेट लिया। फिर उन्होंने अपनी गर्दन और भुजाओं को समेटा और मार्ग पर दृष्टि दौड़ाने के लिए नेत्रों को ऊपर उठाया। तत्पश्चात् छलांग मारने की तैयारी में उन्होंने अपने पैरों को अच्छी तरह जमाया और अन्य वानरों से इस प्रकार बोले- जैसे श्रीराम चन्द्र का छोड़ा हुआ बाण वायुवेग से चलता है उसी प्रकार रावण के लंका पुरी में मैं जाऊँगा। यदि वहाँ जनक नंदिनी सीता के दर्शन नहीं हुए तो उसी वेग से स्वर्ग लोक में चला जाऊँगा। अगर वहाँ भी सीता न दिखीं तो राक्षस राज रावण को ही लंका सहित यहाँ लाऊँगा। ऐसा कहकर हनुमान जी ने बड़े वेग से ऊपर की ओर छलाँग मारी। उस समय वे पक्षियों से सुशोभित वृक्षों को अपने महान् वेग से ऊपर की ओर खींचते हुए निर्मल आकाश में बढ़ने लगे। हनुमान जी के वेग से उखड़े हुए साल तथा दूसरे वृक्ष उनके पीछे इस प्रकार चले जैसे राजा के पीछे उसके सैनिक चलते हैं। उस समय हनुमानजी अद्भुत शोभा से सम्पन्न हो रहे थे। तदनन्तर उनमें से जो भारी वृक्ष थे वे थोड़ी ही देरबाद समुद्र में गिर जाते थे। वे उस समय वैसे लग रहे थे जैसे सुहृद वर्ग के लोग परदेश जानेवाले किसी बन्धु को दूर तक पहुँचाकर लौट आते हैं। वृक्षों की भाँति जब फूल समुद्र में गिरते तो वे डूबते नहीं थे। इसलिए उनकी शोभा विचित्र लग रही थी। उस समय महासागर तारों से भरे हुए आकाश की भाँति सुशोभित हो रहा था। उधर आकाश में फैलायी गयी दोनों भुजाएं ऐसी लग रही थीं जैसे किसी पर्वत के शिखर से पाँच फन वाले दो साँप निकले हों। उनकी आँखें उस तरह प्रकाशित हो रही थीं जैसे दो स्थानों में लगे हुए दावानल दहक रहे हों। उस समय हनुमानजी की उठी हुई पूँछ इन्द्र की ऊँची ध्वजा के समान जान पड़ती थी। उनकी कमर के नीचे का भाग लाल होने के कारण वे गेरू से युक्त विशाल पर्वत के समान शोभा पा रहे थे। वे आकाश में जाते हुए पुच्छयुक्त उल्का के समान लग रहे थे। हनूमान जी का शरीर समुद्र के ऊपर चल रहा था किन्तु

उनकी परिछाईं जल में डूबी हुई-सी दिखलायी पड़ती थीं। वे समुद्र के जिस-जिस भाग में जाते वहाँ उनके अंग के वेग से उत्ताल तरंगें उठने लगती थीं। उस समय हनुमान जी के शरीर से उठी हुई प्रबल वायु ने भीषण गर्जना करने वाले समुद्र में भारी हलचल मचा दी। वे उस समय समुद्र में उठी हुई उत्ताल तरंगों को गिनते हुए आगे बढ़ रहे थे। समुद्र में विचरने वाले सर्प आकाश में जाते हुए हनुमानजी को देखकर उन्हें गरुड़ समझने लगे। वे उस समय पंख युक्त पर्वत के समान दिखलाई पड़ते थे और वायु के समान मेघमालाओं को अपनी ओर खींच लेते थे। वे विभिन्न रंग के मेघ वहाँ बड़ी शोभा पाते थे। उस समय तीव्र गति से आगे बढ़ते हुए हनुमान को देखकर देवता, गंधर्व और चारण उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे तथा जितने ऋषि मुनि थे वे उनकी स्तुति करने लगे। इस तरह कपि श्रेष्ठ को बिना थकावट आगे बढ़ते हुए देखकर नाग, यक्ष और नाना प्रकार के राक्षस उनकी प्रशंसा करने लगे। इस समय इक्ष्वाकु कुल का सम्मान करने की इच्छा से सागर ने भी विचार किया कि मुझे भी कोई ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे वानर वीर यहाँ कुछ विश्राम कर लें जिससे ये मेरे शेष भाग को सुगमता से पार कर लें। यह सोचकर समुद्र ने मैनाक गिरि से कहा- गिरिश्रेष्ठ! तुम्हें यहाँ इन्द्र ने पातालवासी असुर समूहों के निकलने के मार्ग को रोकने के लिए अवरोध के रूप में स्थापित किया था। लेकिन तुममें ऊपर, नीचे, दायें, बायें सब ओर बढ़ने की शक्ति है इसलिए मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम ऊपर की ओर उठो। ये राम के सेवक हैं और सबके पूजनीय हैं। अतः तुम भी इनकी सहायता करो। इसलिए तुम पानी के ऊपर उठो जिससे ये छलांग मारने वाले हनुमान जी तुम्हारे ऊपर कुछ काल तक ठहर कर विश्राम कर सकें। ये हमारे पूजनीय अतिथि भी हैं। तुम्हारे ऊपर विश्राम करने के बाद कपिवर हनुमान शेष मार्ग सुखपूर्वक तय कर लेंगे। यह सुनकर बड़े-बड़े वृक्ष तथा लताओं से आवृत मैनाक पर्वत जल के ऊपर उठ गया और दो ही घड़ी में हनुमान जी को अपना दर्शन कराया। उस पर्वत के उठे हुए सुवर्णमय शिखरों के कारण नीले रंग वाला आकाश सुनहरी प्रभा से झिलमिलाने लगा। किन्तु उस क्षार समुद्र में अविलम्ब उठकर खड़े हुए मैनाक को देखकर हनुमान जी मन ही मन सोचने लगे कि यह अवश्य कोई विघ्न आ गया है। अतएव हनुमान जी ने तुरन्त

मैनाक पर्वत के उठे हुए शिखर को अपनी छाती के धक्के से गिरा दिया। इस प्रकार मैनाक अपने को नीचा देखने पर गजर्न भरता हुआ बोला- वानर शिरोमणि! आपने यह दुष्कर कर्म किया है। अब नीचे उतरकर मेरे इन शिखरों पर सुखपूर्वक विश्राम कीजिए फिर आगे की यात्रा के लिए तत्पर होइये। मेरे इस कार्य के द्वारा समुद्र आपका सत्कार करना चाहता है। अतएव कपि श्रेष्ठ! कुछ देर मेरे ऊपर विश्राम करके उसके सत्कार का सम्मान कीजिए। पवन नन्दन! जो-जो छलांग लगाने वाले श्रेष्ठ वानर हैं उनमें मैं आपको ही श्रेष्ठतम मानता हूँ। आप देव शिरोमणि वायु के पुत्र हैं और वेग में उन्हीं के समान हैं। आपकी पूजा से साक्षात् वायु देव की पूजा होगी। आप मेरे एक और कारण से पूजनीय हैं, उसे सुनिये। तात, सत्युग में पर्वतों के भी पंख होते थे और वे गरुड़ के समान चारों ओर उड़ते फिरते थे। तब इस तरह उड़ने फिरने से ऋषियों के मन में उनके गिरने की आशंका होने लगी। इससे इन्द्र ने कुपित हो अपने बज्र से लाखों पर्वतों के पंख काट डाले। उस समय वे बज्र लेकर मेरी ओर भी आये। तब महात्मा वायु ने सहसा मुझे इस समुद्र में गिरा दिया। इस प्रकार आपके पिता ने मेरी रक्षा की इसलिए मैं आपका आदर करता हूँ और आज चिरकाल के बाद मुझे आपके पिता के उपकार का बदला देने का अवसर मिला है। मैनाक के ऐसा कहने पर हनुमान जी उस पर्वत से बोले- मैनाक! मुझे भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई लेकिन मैंने वानरों के सामने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं बीच में कहीं नहीं ठहरूँगा। इसलिए मैंने आपकी पूजा स्वीकार कर ली है। ऐसा कहकर उन्होंने मैनाक का स्पर्श किया और फिर आकाश में उड़ते हुए आगे बढ़े। उस समय पर्वत और समुद्र दोनों ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए उनका अभिनंदन किया। हनुमान जी का यह दूसरा दुष्कर कर्म देखकर सारे देवता, सिद्ध और महर्षि गण उनकी प्रशंसा करने लगे। उस समय इन्द्र ने भी मैनाक के व्यवहार से संतुष्ट होकर सुन्दर वाणी में कहा- मैनाक! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हें अभयदान देता हुआ कहता हूँ कि तुम सुखपूर्वक जहाँ चाहो जाओ। यह वानर श्रेष्ठ हनुमान जी श्रीराम की सहायता के लिए जा रहे हैं अतएव इनका सत्कार करके तुमने मुझे संतोष प्रदान किया है। तब मैनाक के पुनः जल में स्थित हो जाने पर देवता सिद्ध गन्धर्व और महर्षियों ने नागमाता सुरसा से

कहा- ये पवन नंदन हनुमान जी समुद्र के ऊपर होकर जा रहे हैं तुम दो घड़ी के लिए इनके मार्ग में विघ्न डाल दो। तुम राक्षसी के समान रूप धारण कर विकट मुँह बनाओ। इससे इसी समय इनके बलाबल का तुरन्त ज्ञान हो जायेगा। फिर देवताओं के इस प्रकार कहने पर देवी सुरसा ने समुद्र के बीच राक्षसी का रूप धारण किया और समुद्र के पार जाते हुए हनुमान जी को घेरकर उनसे इस प्रकार बोली- कपिश्रेष्ठ! आज देवताओं ने तुम्हें मेरे भोजन के रूप में यहाँ भेजा है। अतएव तुम मेरे मुँह में चले आओ। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने मुझे ऐसा ही वर दिया था। ऐसा कहकर वह तुरंत ही अपना विशाल मुँह खोल कर हनुमान जी के सामने खड़ी हो गयी। सुरसा के इस प्रकार कहने पर हनुमानजी ने प्रसन्न होकर कहा- देवि! दशरथ नन्दन श्रीराम चन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीता के साथ दण्डकारण्य में आये थे। वहाँ रहते हुए श्रीराम का बैर राक्षसों से हो गया। अतः रावण ने उनकी यशस्विनी भार्या सीता को हर लिया। मैं श्रीराम की आज्ञा से उनका दूत बनकर सीता के पास जा रहा हूँ। तुम भी राम के राज्य में निवास करती हो। अतएव तुम्हें भी उनकी सहायता करनी चाहिए। यदि तुम इस पर भी मुझे खाना ही चाहती हो तो मुझे राम के इस कार्य को पूरा कर लेने दो फिर मैं तुम्हारे मुँह में खुद आ जाऊँगा। मैं प्रतिज्ञा करके इस बात को कह रहा हूँ। यह सुनकर सुरसा बोली- मुझे वर मिला है कि कोई भी मुझे लाँघकर नहीं जा सकता ऐसा कहकर सुरसा तुरन्त अपना विशाल मुख फैलाकर हनुमान जी के सामने खड़ी हो गयी। सुरसा के ऐसा कहने पर हनुमान जी कुपित होकर बोले- तुम अपना मुँह इतना बड़ा बना लो जिससे मेरा भार सह सको। इतना कहकर जब वे मौन हुए तब सुरसा ने तुरन्त अपना मुख दस योजन का बना लिया। तब हनुमान जी भी तत्काल दस योजन के हो गये। यह देखकर सुरसा ने अपना मुख बीस योजन बड़ा बना लिया। तब हनुमानजी ने अपने शरीर को तीस योजन का कर लिया। तब सुरसा ने अपने मुख को चालीस योजन ऊँचा कर लिया। यह देगकर हनुमान जी पचास योजन ऊँचे हो गये। तब सुरसा ने अपना मुख साठ योजन का बनाया। फिर तो वीर हनुमान सत्तर योजन ऊँचे हो गये। अब सुरसा ने अस्सी योजन मुँह बना लिया तदनन्तर हनुमान जी नब्बे योजन ऊँचे हो गये। यह देखकर सुरसा ने अपने मुँह का विस्तार सौ

योजन का कर लिया। उस समय बुद्धिमान हनुमान जी अपने शरीर को अंगूठे के बराबर छोटा किया और सुरसा के उस मुँख में प्रवेश करके तुरन्त बाहर निकल आये और फिर बोले- दक्षकुमारी! तुम्हें नमस्कार है। मैंने तुम्हारे वर को सत्य कर दिया है। अब मैं उस स्थान को जा रहा हूँ जहाँ सीता जी विद्यमान हैं। तब सुरसा भी अपने असली रूप में प्रकट होकर बोली- कपिश्रेष्ठ! तुम शीघ्र अपना कार्य सिद्ध करके लौटो। तदनन्तर हनुमानजी अगर के समान काले, लाल, श्वेत और पीले बादलों को चीरते हुए आगे बढ़ने लगे। उस अवस्था में छिपते तथा प्रकट होते हुए वर्षा काल में चन्द्रमा की भाँति उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। फिर इस तरह जाते हुए हनुमान जी को इच्छानुसार रूप धारण करने वाली विशाल काया सिंहिका नामवाली राक्षसी ने देखा। तब वह विचार करने लगी। बहुत दिनों बाद यह विशाल जीव मेरे वश में आया है। इसे खा लेने पर मेरा पेट अच्छी तरह भर जायेगा। ऐसा सोचकर उस राक्षसी ने हनुमान जी की छाया पकड़ ली। यह देखकर हनुमानजी बोले- ओह, मुझे किसने इस तरह पकड़कर मेरे पराक्रम को पंगुकर दिया है। जैसे विपरीत हवा चलने से जहाज की गति रुक जाती है वैसी ही इस समय मेरी दशा हो रही है। इसी समय उन्हें जल से उठता हुआ एक विशालकाय प्राणी दिखायी दिया। हनुमान जी ने उसे देखकर अपने शरीर को वर्षाकालीन मेघ की भाँति बढ़ाना शुरू कर दिया। इस प्रकार वे विशालकाय हो गये। तब सिंहिका मेघों की घटा के समान गर्जना करती हुई हनुमान जी की ओर दौड़ी। हनुमान जी को उसका मुख अपने शरीर के बराबर ही दिखाई दिया। तब हनुमान जी ने सिंहिका के मर्म स्थान को ही अपना लक्ष्य बनाया और उपने शरीर को संकुचित करके उसके विकराल मुख में आ गिरे। मुख में प्रवेश करने के बाद उन वानरवीर ने अपने तीखे नखों से उस राक्षसी के मर्म स्थान को विदीर्ण कर डाला। उसके बाद वे वेग पूर्वक उछलकर बाहर आ-गये। उस

राक्षसी को मारकर हनुमानजी ने पुनः वेग के साथ अपने शरीर को बड़ा बना लिया। इधर सिंहिका मरकर जल में आ गिरी तब आकाश में विचरने वाले प्राणी कपि श्रेष्ठ से बोले- कपिवर! जिस पुरुष में तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता ये चार गुण होते हैं उन्हें अपने कार्य में सदा सफलता प्राप्त होती है।

इस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध हो जाने से उन आकाश चारी प्राणियों ने हनुमान्जी का बड़ा सत्कार किया। इसके बाद वे आकाश में चढ़कर गरुड़ के समान वेग से चलने लगे।

सौ योजन के अन्त में प्रायः समुद्र के पार पहुँचकर जब उन्होंने सब ओर दृष्टि डाली, तब उन्हें एक हरी-भरी वनश्रेणी दिखायी दी।

आकाश में उड़ते हुए ही शाखामृगों में श्रेष्ठ हनुमान्जी ने भाँति-भाँति के वृक्षों से सुशोभित लङ्का नाम द्वीप देखा। उत्तर तट की भाँति समुद्र के दक्षिण तट पर भी मलय नामक पर्वत और उसके उपवन दिखायी दिये।

समुद्र, सागरतटवर्ती जलप्राय देश तथा वहाँ उगे हुए वृक्ष एवं सागरपत्नी सरिताओं के मुहानों को भी उन्होंने देखा।

मन को वश में रखने वाले बुद्धिमान हनुमान्जी ने अपने शरीर को महान् मेघों की घटा के समान विशाल तथा आकाश को अवरुद्ध करता-सा देख मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया–

'अहो! मेरे शरीर की विशालता तथा मेरा यह तीव्र वेग देखते ही राक्षसों के मन में मेरे प्रति बड़ा कौतूहल होगा– वे मेरा भेद जानने के लिये उत्सुक हो जायँगे।' परम बुद्धिमान् हनुमान्जी के मन में यह धारणा पक्की हो गयी।

मनस्वी हनुमान् अपने पर्वताकार शरीर को संकुचित करके पुनः अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो गये। ठीक उसी तरह, जैसे मन को वश में रखनेवाला मोहरहित पुरुष अपने मूल स्वरूप में प्रतिष्ठित होता

है।

जैसे बलि के पराक्रम सम्बन्धी अभिमान को हर लेने वाले श्रीहरि ने विराट् रूप से तीन पग चलकर तीनों लोकों को नाप लेने के पश्चात् अपने उस स्वरूप को समेट लिया था, उसी प्रकार हनुमान्जी समुद्र को लाँघ जाने के बाद अपने उस विशाल रूप को संकुचित करके अपने वास्तविक स्वरूप में स्थित हो गये।

हनुमान्जी बड़े ही सुन्दर और नाना प्रकार के रूप धारण कर लेते थे। उन्होंने समुद्र के दूसरे तट पर, जहाँ दूसरों का पहुँचना असम्भव था, पहुँचकर अपने विशाल शरीर की ओर दृष्टिपात किया। फिर अपने कर्तव्य का विचार करके छोटा-सा रूप धारण कर लिया।

महान् मेघ-समूह के समान शरीरवाले महात्मा हनुमान्जी केवड़े, लसोड़े और नारियल के वृक्षों से विभूषित लम्बपर्वत के विचित्र लघु शिखरोंवाले महान् समृद्धिशाली शृंङ्ग पर कूद पड़े।

तदनन्तर समुद्र के तट पर पहुँचकर वहाँ से उन्होंने एक श्रेष्ठ पर्वत के शिखर पर बसी हुई लङ्का को देखा। देखकर अपने पहले रूप को तिरोहित करके वे वानरवीर वहाँ के पशु-पक्षियों को व्यथित करते हुए उसी पर्वत पर उतर पड़े।

इस प्रकार दानवों और सर्पों से भरे हुए तथा बड़ी-बड़ी उत्ताल तरङ्गमालाओं से अलंकृत महासागर को बलपूर्वक लाँघकर वे उसके तट पर उतर गये और अमरावती के समान सुशोभित लङ्कापुरी की शोभा देखने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

दूसरा सर्ग

लंकापुरी का वर्णन

तदनन्तर महाबली हनुमानजी लंका की शोभा देखते हुए सोचने लगे कि मैं सौ-सौ योजनों के बहुत से समुद्र लाँघ सकता हूँ फिर इस गिने गिनाये सौ योजन समुद्र को पार करना कौन सी बड़ी बात है। तत्पश्चात् वे उस पर्वत पर स्थित हो बहुत से वन और उपवन देखे तथा उसके अग्रभाग में बसी हुई लंका का भी अवलोकन किया। उन्होंने वहाँ चीड़, कनेर, खजूर, चिरौंजी, नींबू, केवड़ा के अनेक वृक्ष देखे तथा उन्हें वहाँ हंसों और कारण्डवों से व्याप्त तथा कमल और उलकों से आच्छादित अनेक जलाशय भी दिखाई पड़े। तदनन्तर हनुमान जी धीरे-धीरे रावण पालित लंकापुरी के पास पहुँचे। उसके चारों ओर खुदी हुई खाइयाँ उस नगरी की शोभा बढ़ा रही थीं। सीता को हरने के पश्चात् रावण ने लंकापुरी की रक्षा का विशेष प्रबन्ध कर रखा था। उसके चारों ओर भयंकर धनुष धारण करने वाले राक्षस घूमा करते थे। वह महापुरी सोने की चहारदीवारी से घिरी हुई थी तथा पर्वत के समान ऊँचे और शरद्-ऋतु के बादलों के समान श्वेत भवनों से भरी हुई थी। सैकड़ों ध्वज, पताकाएं उस नगरी की शोभा बढ़ा रही थीं। उसके बाहरी फाटक सोने के बने हुए थे और उनकी दीवारें लता-वेलों के चित्र से सुशोभित थीं। तब हनुमान जी लंका को इस तरह से देखने लगे जैसे कोई देवता देवपुरी का निरीक्षण कर रहा है। तेजस्वी कपि हनुमान् ने सुन्दर शुभ्र सदनों से सुशोभित और पर्वत के शिखर पर स्थित लङ्का को इस तरह देखा, मानों वह आकाश में विचरनेवाली नगरी हो। कपिवर हनुमान् ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित तथा राक्षसराज रावण द्वारा सुरक्षित उस पुरी को आकाश में तैरती-सी देखा। विश्वकर्मा की बनायी हुई लङ्का मानो उनके मानसिक संकल्प से रची गयी एक सुन्दरी स्त्री थी। तत्पश्चात् उस पुरी के द्वार पर पहुँचकर हनुमान जी बड़े चिंता में पड़ गये। वह द्वार कैलाश

पर्वत पर बसी हुई अलकापुरी के बहिर्द्वार के समान ऊँचा था और आकाश में रेख-सा खींचता जान पड़ता था। उसके ऊँचे-ऊँचे प्रासादों ने मानो आकाश को उठा रखा था। उसे देखकर हनुमानजी को यह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा कि पूर्वकाल में कुबेर वहाँ अवश्य निवास करते रहे होंगे। उस समय हाथों में शूल और हिरा लिए बड़ी बड़ी दाढ़ोंवाले बहुत से शूरवीर उस लंकापुरी की रक्षा उसी प्रकार कर रहे हैं जैसे विषधर सर्प अपने पुरी की करते हैं। उस समय नगर की भारी चौकसी देखकर हनुमानजी ने सोचा कि यदि कोई वानर यहाँ तक आ भी जाये तो व्यर्थ सिद्ध होगा क्योंकि युद्ध के द्वारा लंका पर विजय नहीं पायी जा सकती। वहाँ तो केवल चार ही वेगशाली वानरों की पहुँच हो सकती है। बालिपुत्र अंगद की, नील की, मेरी और राजा सुग्रीव की। फिर वे सोचने लगे अच्छा अब मैं चलकर इस बात का पता लगाऊँ कि सीता जीवित भी हैं अथवा नहीं? उन जनक किशोरी का दर्शन करके ही मैं आगे के लिए कोई विचार बनाऊँगा। इसकेबाद उन्होंने विचारा कि इस रूप में राक्षसों की नगरी में प्रवेश नहीं किया जा सकता क्योंकि बहुत-से क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं। उन तेजस्वी राक्षसों से मुझे आँख बचानी होगी। अतएव मुझको रात के समय ही नगर में प्रवेश करना चाहिए। और उस समय ऐसे रूप का आश्रय लेना चाहिए जो आँख से न देखा जा सके। अब मैं ऐसा कौन-सा उपाय काम में लाऊँ जिससे रामचन्द्र का कार्य भी न बिगड़े और में एकान्त में सीता जी से भेंट भी कर लूँ। अब उसी उपाय का सहारा लेना होगा जिससे स्वामी का कार्य भी न बिगड़े और मेरा लंका लाँघना भी व्यर्थ न होने पाये। यदि राक्षसों ने मुझे इस रूप में देख लिया तो श्रीराम के कार्य में बाधा पहुँच सकती है। इस समय राक्षसों का रूप धारण करके भी राक्षसों से अज्ञात नहीं रहा जा सकता। क्योंकि यहाँ ऐसा कोई स्थान नहीं जो राक्षसों को अपरिचित हो। अतः मैं श्रीराम के कार्य सिद्धि के लिए रात में छोटा शरीर धारण करके लंका में प्रवेश करूँगा। ऐसा सोचकर हनुमान जी सीता के दर्शन हेतु सूर्यास्त की प्रतीक्षा करने लगे। सूर्यस्ति होने पर हनुमान जी ने अपना रूप बिल्ली के बराबर बना लिया और उछलकर उस रमणीय पुरी में जा घुसे। यह नगरी प्रासादों से युक्त दूर-दूर तक फैली हुई थी। वहाँ के अठमहलों, मकानों में रत्न जड़े हुए थे। सोने के बने हुए विचित्र फाटक सब ओर से उस लंका को

रमणीय बना रहे थे। उसपुरी की रक्षा भयंकर बलशाली निशाचर अच्छी तरह से कर रहे थे। ऐसी लंका में प्रवेश करते हुए हनुमानजी ने देखा- तारागणों के साथ चंद्रमा भी उनकी सहायता-सी करते हुए समस्त लोकों पर अपनी चाँदनी का चँदोबा-सा तानकर उदित हो गये। उस समय वे आकाश में इस प्रकार शोभायमान थे जैसे सरोवर में कोई हंस तैर रहा हो।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दर काण्ड में दूसरा सर्ग समाप्त हुआ (२)

तीसरा सर्ग

लंकापुरी को देखकर हनुमानजी का विस्मित होना

तदनन्तर रात में लंकापुरी में प्रवेश कर हनुमानजी ने देखा कि बादलों की भांति श्वेत कांति वाले सुंदर भवन उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं और अलकापुरी के समान शक्तिशाली सेना उसकी शोभा बढ़ा रही थी। पुरी के फाटकों पर मतवाले हाथी शोभा पाते थे। अमरावती पुरी के समान वहाँ आवश्यकतानुसार बिजली सहित मेघ छाये रहते थे। सोने के बने हुए विशाल परकोटे से घिरी हुई लंकापुरी परियों की झंकार के साथ पताकाओं से सजी थी। तब उस पुरी के समीप पहुँचकर हर्षऔर उत्साह से भरे हनुमानजी सहसा उछलकर परकोटे पर चढ़ गये। तब सब ओर से लंकापुरी का अवलोकन करके हनुमानजी का चित्त आश्चर्य से चकित हो उठा। वहाँ क्रौंच और मयूरों के कलरव गूंजते रहते थे। मकानों के द्वारों पर राज हंस पक्षी भी निवास करते थे। वहाँ भांति-भांति के वाद्यों और आभूषणों की मधुर ध्वनि होती रहती थी। उन्होंने देखा राक्षस राज की यह सुंदर पुरी लंका सबसे उत्तम और समृद्धि शालिनी थी। उसे देखकर हनुमानजी सोचनेलगे- रावण के सैनिक इसकी रक्षा अस्त्र-शस्त्र लेकर सदैव किया करते हैं। अतः दूसरा कोई बलपूर्वक उस पर काबू नहीं कर सकता। इस पुरी में केवल, कुमुद, अंगद, सुषेण मैन्द द्विविद, सुग्रीव, कुशपर्वा और जाम्बवान तथा मेरी ही पहुँच हो सकती है। उन्होंने देखा कि रावण की नगरी वस्त्राभूषणों से विभूषित सुंदर युवती के समान जान पड़ती है। यह सब प्रकार के समृद्धियों से सम्पन्न है। प्रकाश पूर्ण द्वीपों और महान ग्रहों ने यहाँ का अंधकार नष्ट कर

दिया है। तत्पश्चात् पवनकुमार हनुमान उस पुरी में प्रवेश करने लगे। उस समय वानर श्रेष्ठ हनुमान को देखकर रावण पालित लंका स्वयं उठ खड़ी हुई। उसका मुंह देखने में बड़ा विकट था। वह पवन कुमार के सामने खड़ी होकर बोली-वनचारी वानर ! कौन है और किस काम से यहाँ आया है। तू अपने प्राण रहने तक यहाँ आने का ठीक-ठीक कारण बता दे। अन्यथा रावण की सेना तेरा बधकर डालेगी। हनुमानजी यह सुनकर बोले- क्रूरनारी! तू जो पूछ रही है उसे मैं ठीक ठीक बता दूंगा। लेकिन पहले तू मुझे अपना परिचय दे। तू मुझे इस प्रकार क्यों डाँट रही है। तब लंका कुपति होकर बोली- मैं महामना राक्षस राज रावण की आज्ञा की प्रतीक्षा करनेवाली दासी हूँ। मैं इस नगरी की रक्षा करती हूँ। तब उसकी बात सुनकर पवन कुमार हनुमान उसे जीतने के लिए वहाँ पर्वत के समान खड़े हो गये और फिर उससे इस प्रकार बोले- मैं अट्टालिकाओं, परकोटों और नगर द्वारों सहित इस लंका नगरी को देखूंगा। इस लंका के वन, उपवन, कानन और जो मुख्य मुख्य भवन है उन्हें देखने के लिए ही मेरा यहाँ आना हुआ है। यह सुनकर लंका फिर कठोर वाणी में बोली-नीच वानर! राक्षसेश्वर रावण द्वारा मेरी रक्षा हो रही है अतः तू मुझे परास्त किये बिना आज इस पुरी को नहीं देख सकता। तब हनुमानजी बोले- भद्रे! इस पुरी को देखकर मैं फिर जैसे आया हूँ वैसे चला जाऊँगा। यह सुनकर लंका ने जोर से गरजकर हनुमानजी को एक थप्पड़ मार दिया। लंका के इस व्यवहार से हनुमानजी ने गरजते हुए उसको मुक्का जमा दिया। तब हनुमानजी के उस प्रहार से लंका के सारे अंग व्याकुल हो गये और वह सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ी। अब उसे स्त्री समझकर हनुमानजी को उस पर दया आ गयी। तदनन्तर लंका हनुमानजी से गद्गद् वाणी में इस प्रकार बोली-कपि श्रेष्ठ प्रसन्न होईये और मेरी रक्षा कीजिए। शास्त्र में स्त्री को अवध्य बताया गया है अतएव आप मेरे प्राण न लीजिए। मैं स्वयं लंकापुरी हूँ और आपने अपने पराक्रम से मुझे परास्त कर दिया है। अब ब्रह्माजी ने मुझे जो वरदान दिया है उसे भी सुनिये। उन्होंने कहा था कि जब कोई वानर अपने पराक्रम से तुझे वश में कर ले तब समझना चाहिए कि राक्षसों पर बड़ा भारी भय आ पहुँचा है। लगता है सीता हरण के कारण राक्षसों के विनाश का समय आ गया है। अतएव आप इस पुरी में प्रवेश करके जो-जो कार्य करना चाहते हैं उसे पूर्ण

कर लीजिए और स्वेच्छानुसार सर्वत्र विचरण कर सीता की खोज कीजिए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य सुंदर काण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ (३)

चौथा सर्ग

हनुमानजी का रावण के अन्तःपुर में प्रवेश

तदनन्तर लंकापुरी को अपने पराक्रम से परास्त कर हनुमानजी बिना दरवाजे के ही चहारदीवारी फाँद कर लंका के भीतर घुस गये तत्पश्चात् फूलों से सुशोभित राजमार्ग का आश्रय ले लंकापुरी की ओर चले। वह पुरी श्वेत ग्रहों से शोभित हो रही थी। तब हनुमानजी ने उस पुरी को अच्छी तरह देखकर प्रसन्नता का अनुभव किया। वे फिर जहाँ तहाँ एक घर से दूसरे घर में जाते और उसमें से मंद, मध्यम तथा उच्च स्वर से विभूषित गीतों के स्वर आते हुए सुनते! महामनस्वी राक्षसों के घरों में सीढ़ियों पर बढ़ते समय स्त्रियों की कांची और मंजीर की मधुर ध्वनि तथा पुरुषों के ताल ठोकने और गर्जन की भी आवाजें उन्हें सुनाई दीं। राक्षसों के घरों में उन्होंने बहुतों को मंत्र जपते सुना और कितनों को ही स्वाध्याय में लगे हुए देखा। कई राक्षस रावण की स्तुति में लगे थे। मध्य भाग में उन्हें विभिन्न रूपों में बहुत से गुप्तचर दिखाई दिये।उनमें से किसी की एक ही आँख थीं तो कई बहुरंगे थे। कुछ विकराल थे और कुछ के मुंह टेढ़े मेढ़े थे। कुछ निशाचर न अधिक मोटे थे न अधिक दुर्बल, न बहुत लंबे थे न अधिक छोटे। कोई शक्ति और वृक्षरूप आयुध धारण किये थे तो क़िसी के पास पट्टिश वज्र, गुलेल और पाश थे। हनुमानजी ने उन सभी को अच्छी तरह देखे इसके सिवा हनुमान ने एक लाख रक्षक सेना को रावण की आज्ञा से सावधान होकर नगर के मध्य भाग की रक्षा में संलग्न देखा। रक्षक सेना के लिए जो विशाल भवन बना था उसका फाटक बहुमूल्य सुवर्ण द्वारा निर्मित हुआ था। तत्पश्चात् उन्होंने राक्षस राज रावण के सुप्रसिद्ध राजमहल को देखा वह त्रिकूट पर्वत के एक शिखर पर निर्मित था। तथा सब ओर से श्वेत कमलों द्वारा अलंकृत खाईयों से घिरा हुआ था। इसके चारों ओर बहुत ऊँचा परकोटा था। सहस्रों महापराक्रमी निशाचर उस महल की रक्षा करते थे। अब उस गुप्त भवन में

भी कपिवर हनुमानजी जा पहुंचे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुंदर काण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ (४)

पाँचवाँ सर्ग

हनुमानजी का रावण के अन्तःपुर में सीता की खोज करना

तत्पश्चात् हनुमानजी ने देखा कि जिस प्रकार गोशाला के भीतर गौओं के झुण्ड में साँड़ विचरता है उसी प्रकार पृथ्वी के ऊपर चाँदनी का चँदोवा तानते हुए चँद्रमा मध्य आकाश में तारिकाओं के साथविचरणकर रहे हैं। वे जगत् के पाप-ताप का नाश करते हुए आकाश में क्रमशः ऊपर की ओर उठ रहे हैं। वे उसी प्रकार शोभायमान थे जैसे चाँदी के पिंजरे में हंस या मंदराचल की कन्दरा में सिंह। जिन्होंने सूर्य-किरणों को ग्रहण करने के कारण अपने अंधकार रूपी पंक को भी नष्ट कर दिया है। वे चँद्रदेव आकाश में प्रकाशित हो रहे थे। उस समय वहाँ वीणा के श्रवण सुखद शब्द झंकृत हो रहे थे और सदाचारिणी स्त्रियाँ पतियों के साथ सो रही थीं। तथा भयंकर शील स्वभाव वाले राक्षस निशीथ काल में बिहार कर रहे थे। हनुमानजी को बहुत से ऐश्वर्यमद से मत्त निशाचर भी दिखायी पड़े जो अपनी मोटी-मोटी भुजाओं को हिलाते, डुलाते और बहकी-बहकी बातें करते। वे मदिरा से उन्मत्त होकर परस्पर कटुवचन बोलते, अपनी छाती पीटते तथा कभी-कभी अपना हाथ पत्नियों के अंगों पर रख देते। हनुमानजी ने यह भी देखा कि नायिकाएं अपने अपने अंगों में चंदन आदि का अनुलेपन करती हैं। दूसरी वहीं सोती हैं तो तीसरी हंसती तथा अन्य कुपित हो लंबी-लंबी सांसें खींचती हैं। उस समय वह लंकापुरी फुफकारते हुए सर्पों से मुक्त सरोवरों के समान दिखलायी पड़ती थी। फिर हनुमानजी ने वहाँ नाना प्रकार के गुणों से सम्पन्न तेजस्वी राक्षस देखे। उन्हें देखकर हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने ऐसी राक्षस रमणियां देखीं जिनका भाव अत्यंत विशुद्ध था। उन्हें कुछ ऐसी स्त्रियां भी दिखायी पड़ीं जो अपने रूप सौंदर्य से प्रकाशित हो रही थीं। वे अपने पति के आलिंगन पाश में इस प्रकार बंधी थीं जैसे पक्षिणी पक्षी के द्वारा आलिंगित होती हैं। वे सबके सब आनंद में मग्न थीं। दूसरी बहुत सी स्त्रियां

महलों की छतों पर बैठी हुई अपने पति की सेवा में तत्पर थीं। कितनी ही पति वियोगिनी बालाएं चँद्रमा के समान श्वेत वर्ण की दिखाई देती थीं। उनकी अंग कान्ति बड़ी ही सुंदर थी। तत्पश्चात् हनुमानजी ने विभिन्न गृहों में ऐसी परम सुन्दरी रमणियों को देखा जो पति का संयोग पाकर अत्यंत प्रसन्न हो रही थीं। लेकिन इन सबके बावजूद प्रफुल्ल लता के समान शोभा पाने वाली सीता जी उन्हें कहीं नहीं दिखलाई पड़ीं। जब श्रीराम चन्द्र में अनुराग रखनेवाली मिथिलेश कुमारी सीता को उन्होंने कहीं नहीं देखा तो वे विषाद से भरकर अत्यंत दुखी हो उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठा सर्ग

हनुमान जी का सर्वत्र सीता की खोज करना

तदनन्तर हनुमानजी शीघ्रता के साथ लंका के सतमहले मकानों में विचरने लगे और फिर राक्षस राज रावण के महल में जा पहुँचे जो सूर्य के समान चमचमाते हुए परकोटों से घिरा हुआ था। वह महल चाँदी के मढ़े हुए चित्रों, सोने से जड़े हुए दरवाजों अद्‌भुत् ड्योढ़ियों तथा सुन्दर द्वारों से युक्त था। वहाँ हाथी पर चढ़े हुए महावत, महान शूरवीर, तथा रथवाहक अश्व मौजूद थे। रावण का वह भवन अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण था। उसमें दर्शनीयएवं परमसुन्दर नाना प्रकार के पशु पक्षी भरे हुए थे। वहाँ की रत्न स्वरूपा युवती रमणियाँ सदा प्रसन्न रहा करती थीं। यह भवन राजोचित सामग्री से पूर्ण था और प्रधान-प्रधान पुरुषों से भरा हुआ था। वहाँ मृदंग और शंख की ध्वनि सब ओर गूँजती थी। पर्वों के दिन यहाँ होम किया जाता था और राक्षस लोग सदा उस राजभवन की पूजा किया करते थे। उसे देखकर हनुमान जी ने उसे लंका का आभूषण माना। तदनन्तर वे उस भवन के आस-पास ही विचरने लगे। इस प्रकार घूमते हुए वे प्रहस्त और महापार्श्व केमहलों में गये तत्पश्चात् कुंभकरण और विभीषण के महलों में गये। इसी तरह से क्रमशः बज्रदंष्ट्र, शुक, इन्द्रजित, रश्मिकेतु, घन, विघन, चक्र, शट, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व आदि सभी प्रमुख राक्षसों के घर गये। तत्पश्चात् उन

भवनों को लाँघकर वे पुनः राक्षस राज रावण के महल पर आ गये। वहाँ पहुँचकर हनुमानजी ने राक्षसियों और राक्षसों के समूह देखे जो भवन की रक्षा के लिए नियुक्त थे। इतना ही नहीं वहाँ उन्होंने लाल और सफेद रंग के बहुत से वेगशाली घोड़े तथा रूपवान हाथी भी बंधे हुए देखे। उस समय हनुमानजी ने रावण के उस महल में अनके प्रकार की पालकियाँ, विचित्र लता गृह, चित्रशालाएँ तथा विलास गृह भी देखे। उस समय वह साक्षात् कुबेर के भवन की तरह दिखलाई पड़ता था। वहाँ हनुमान जी को स्वर्ण के बने हुए अनेक पात्र, चौकी तथा पलंग आदि दिखलाई पड़े। वह भवन नूपुरों की झंकार, करधनियों की खनखनाहट, तालियों की मधुर ध्वनि तथा अन्य वाद्यों से मुखरित हो रहा था। उसमें सैकड़ों अट्टालिकाएँ थीं। तब ऐसे विशाल भवन में हनुमानजी ने प्रवेश किया

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

रावण के राज भवन एवं पुष्पक विमान का वर्णन

तदनन्तर वहाँ हनुमानजी ने नाना प्रकार के रत्नों से सुशोभित ऐसे-ऐसे घर देखे जिनकी देवता और असुर भी प्रशंसा करते थे। वे भवन विशेष प्रयत्न से बनवाये गये थे। मानो इनका निर्माण साक्षात् मय दानव ने किया था। फिर उन्होंने उत्तम और अनुपम पुष्पक विमान भी देखा जो मेघ के समान ऊँचा, सुवर्ण के समान सुन्दर कान्तिवाला तथा मनोहर था। वह इस भूतल पर बिखरे हुए स्वर्ण के समान जान पड़ता था। वह विमानरूपी भवन मालओं से पूजित, मेघ के समान रमणीय, रत्नों से देदीप्यमान हो रहा था और श्रेष्ठ हंसों द्वारा आकाश में ढोये जाते हुए विमान की भाँति जान पड़ता था। अनेक प्रकार के रत्नों से निर्मित होने के कारण विमान विचित्र शोभा से सम्पन्न दिखलाई पड़ता था। उस विमान में श्वेत भवन बने थे। सुन्दर फूलों से सुशोभित पोखरे बनाये गये थे तथा उसमें केसरयुक्त कमल, विचित्र वन का भी निर्माण किया गया था। वह रत्नों से प्रकाशमान होकर इधर उधर भ्रमण करता था। उस विमान पर सुन्दर मुख और मनोहर पंख वाले बहुत से ऐसे

विहंगम दृश्य बने थे जो साक्षात काम देव के सहायक मालूम होते थे। उसकी पाँखें मूँगे और स्वर्ण से युक्त थीं। अब उस विमान में पहुँचकर हनुमानजी को बहुत विस्मय हुआ। लेकिन हनुमानजी को इधर उधर बहतु घूमने पर भी जानकी जी का पता न लगा तब उनका मन दुःख से भर उठा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

हनुमान जी के द्वारा पुनः पुष्पक विमान का दर्शन

रावण के भवन के मध्य भाग में खड़े हुए बुद्धिमान पवन कुमार हनुमानजी ने उस विशाल विमान को पुनः देखा। उसकी रचना को सौन्दर्य की दृष्टि से आँका नहीं जा सकता था। वह आकाश मार्ग में स्थित होकर सौर मार्ग में सुशोभित होता था। उसका कोई स्थान ऐसा न था जो रत्नों से जटित न हो। उसकी जैसी विशेषतायें देवताओं के विमानों में भी नहीं थीं। रावण ने निराहार रहकर तप किया था और उससे मिले हुए पराक्रम द्वारा उसने उस विमान पर अधिकार प्राप्त किया था। उस विमान की यह विशेषता थी कि मन में जहाँ भी जाने का विचार उठता था वह विमान वहीं पहुँच जाता था। वह स्वामी के मन का अनुसरण करने वाला तथा वायु के समान वेग पूर्वक आगे बढ़ने वाला था। उस विमान में विचित्र वस्तुओं का समुदाय एकत्र किया गया था। यह रावण का विमान देवताओं के घर के समान था, और हजार भूतों का भार लेकर चलता था तथा उन भूतों का मुँह मँडल के समान प्रतीत होता था। क्योंकि वे समस्त कुन्डल धारण किये हुए थे तथा उनके विशाल नेत्र थे जो कुछ गोल और टेढ़े थे। बसन्त ऋतु के आ जाने से विमान अधिक सुन्दर प्रतीत होता था। वानर श्रेष्ठ हनुमान ने उस समय अपने नेत्रों से उस पुष्पक नामक विमान को देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

हनुमान जी का रावण की हवेली में सहस्त्रों सुन्दर स्त्रियों का अवलोकन करना

तत्पश्चात् हनुमानजी सीता की खोज करते हुए उस स्थान का चक्कर लगाते रहे और रावण के निजी गृह में आ पहुँचे। चार दाँत और तीन दाँत वाले हाथी और हाथों में हथियार लिए बहुत से राक्षस उसकी रक्षा करते थे। रावण का वह महल उसकी राक्षस जातीय पत्नियाँ तथा पराक्रम पूर्वक हरकर लायी हुई राज कन्याओं से भरा हुआ था। जो वैभव महाराज कुबेर, यम और वरुण के यहाँ दृष्टिगोचर होता है, उससे भी बढ़कर वैभव रावण के यहाँ देखा जाता था। उस महल के मध्य भाग में पुष्पक विमान था जिसका हनुमान जी ने फिर अवलोकन किया। उसे स्वयं विश्वकर्मा ने ब्रह्माजी के लिए बनवाया था। तब कुबेर ने तप के द्वारा उसे ब्रह्माजी से प्राप्त कर लिया था। फिर उसको राक्षस राज रावण ने अपने बल द्वारा कुबेर से प्राप्त कर लिया। उसमें सुमेर और मन्दराचल के समान गुप्त गृह और मंगलभवन बने थे। उनका प्रकाश अग्नि और सूर्य के समान था। विश्वकर्मा ने बड़ी कारीगरी से उसका निर्माण किया था। उसका फर्श विभिन्न मूँगे, बहुमूल्य मणियों तथा मोतियों से जड़ा था। जिससे वह विमान अत्यधिक शोभायमान हो रहा था। फिर पवन पुत्र हनुमान उस पुष्पक विमान पर चढ़ गये और उस गंध को सूँघा जो वायु के द्वारा उस विमान से उड़ रही थी। वह पेय, भक्ष्य और अन्न आदि की दिव्य गंध थी। उस गंध के द्वारा हनुमानजी को ऐसा लगा जैसे वह मित्र के रूप में उन्हें रावण के समीप बुला रहा है। तत्पश्चात् उस पुष्पक विमान से उतर कर हनुमानजी ने एक विशाल कमरा देखा। वह रावण को बहुत ही प्रिय था। उसमें स्वर्ण की लगी हुई सीढ़ियाँ थीं। उस कमरे की भूमि पर हाथी दाँत तथा मणियाँ जड़ी हुई थीं। उसमें बहुत से सुन्दर खम्भे लगे थे जिनको देखने से लगता था कि वह भवन स्तम्भरूपी पंखों के द्वारा आकाश में उड़ रहा है। उस शाला में अनेक पक्षी शब्द कर रहे थे तथा उसमें अमूल्य वस्त्र बिछे हुए थे। उसमें राक्षस राज रावण निवास करता था तथा वह शाला वशिष्ठ की गाय की तरह सब को मनवांछित फल देने वाली थी। वह रावण के मनको प्रसन्न करती थी तथा उसकी शोभा में वृद्धि करने वाली थी। उस

शाला में जब हनुमानजी ने प्रवेश किया तो उनकी सभी इन्द्रियाँ उसी प्रकार तृप्त हो गयीं जैसे माता से उसका पुत्र तृप्त होता है। अब उसे देखकर हनुमानजी विचार करने लगे कि यह देव लोक है अथवा स्वर्ग लोक। अथवा यह इन्द्रकी पुरी भी हो सकती है। हनुमानजी ने उस शाला में सुवर्णमय दीपकों को एक तार जलते देखा। दीपों के प्रकाश तथा रावण के तेज और आभूषणों की कान्ति से वह सारी हवेली जलती हुई-सी प्रतीत होती थी। तदनन्तर हनुमानजी ने गलीचे पर बैठी हुई सहस्रों सुन्दर स्त्रियाँ देखी जो रंग बिरंगे वस्त्रों को धारण किये थीं। आधीरात में निद्रा के वशीभूत हो उस समय गाढी निद्रा में सो रही थीं। तब हनुमान जी ने उन सुन्दरियों के मुख देखे जिनसे कमलों की-सी सुगंध फैल रही थी। रावण की वह हवेली उन स्त्रियों से प्रकाशित होकर उसी प्रकार शोभा पा रही थी जैसे शरद्काल में निर्मल आकाश ताराओं से प्रकाशित एवं सुशोभित होता है। उन स्त्रियों से घिरा हुआ रावण ताराओं से घिरे हुए चन्द्रमा के समान शोभा पा रहा था। हनुमानजी को ऐसा लगा जैसे आकाश की तारिकाएँ अपना पुण्य क्षीण होने पर यहाँ सुन्दरियों के रूप में एकत्र हो गयी हैं। ये स्त्रियाँ मद्यपान और नृत्य की थकावट के कारण निद्रा के वशीभूत हो गयी थीं और उनमें अनके स्त्रियों के वस्त्र आदि शरीर से अलग पड़े हुए थे और उनके गले की माला टूटकर भूमि पर पड़ी हुई थी। किन्हीं के चन्द्रमा और सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान हुए वक्षःस्थल पर पड़कर वे मालाएँ उभरे हुए प्रतीत होते थे। वे उन युवतियों के स्तन मंडल पर ऐसे प्रतीत होते थे मानों वहाँ हँस सो रहे हैं। अन्य स्त्रियों के उरोजों पर जो सोने के हार थे वे चक्रवाक नामक पक्षियों के समान शोभा पा रहे थे। वे सोयी हुयी स्त्रियाँ सरिताओं के समान सुशोभित हो रही थीं। घुँघरुओं के समूह उनमें मुकुल के समान प्रतीत होते थे। सोने के आभूषण स्वर्ण कमलों की शोभा धारण करते थे। किन्हीं के मुखपर पड़ी हुई उनकी झीनी साड़ी के अंचल उनकी नासिका से निकली हुई साँस से कम्पित हो बारम्बार हिल रही थी। किन्हीं कामनियों के कानों के कुन्डल उनके निःश्वास जनित कम्पन से धीरे-धीरे हिल रहे थे। रावण की कितनी ही तरुणी पत्नियाँ रावण का ही मुख समझकर बारम्बार अपनी सौतों के ही मुखों को सूँघ रही थीं। अन्य मदमत्त स्त्रियाँ अपनी सजी हुई भुजाओं का ही तकिया

लगाकर तथा कोई-कोई सिर के नीचे अपने सुरम्य वस्त्रों को ही रखकर वहाँ सो रही थीं। कुछ स्त्रियाँ दूसरों की छाती पर सिर रखकर सोई थीं तो कोई दूसरों की गोद में सिर रखकर सोई थीं। इसलिए रावण के स्नेह और मदिरा के मद के वशीभूत हो वे एक दूसरे का आलिंगन किए पड़ी थीं और एक दूसरे से गुथी हुई माला के समान प्रतीत हो रही थीं। रावण का वह उपवन एक लता वन के समान दिखाई पड़ता था और वहाँ जो आभूषण पड़े थे उनमें से यह ठीक-ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता था कि कौन आभूषण किसका है। रावण के सो जाने पर वहाँ के सुवर्ण दीपक उन कान्तिवाली स्त्रियों को मानो एक टक देख रहे थे। राजर्षियों, ब्रह्मर्षियों, दैत्यों, गन्धर्वों और राक्षसों की कन्यायें काम के वशीभूत होकर रावण की पत्नियाँ बन गयी थीं। वहाँ कोई ऐसी स्त्री नहीं थी जिसे बल पराक्रम से सम्पन्न होने पर भी रावण उनकी इच्छा के विरुद्ध बलात्कार से हर लाया हो। केवल सीताजी को छोड़कर दूसरी कोई ऐसी स्त्री नहीं थी जो रावण के सिवा किसी दूसरे की इच्छा रखती हो। रावण की ऐसी कोई भार्या भी नहीं थी जो उत्तम कुल में न पैदा हुई हो। उस समय श्रेष्ठ वानर राज हनुमान के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि रावण की ये भार्याएँ परम सुखी हैं। उसी प्रकार यदि रावण सीताजी को श्रीराम की सेवा में समर्पित कर देता तो वे भी पति के साथ रहकर सुखों का अनुभव करतीं। यह महाबली लंकापति ने मायमय रूपधारण कर सीता का हरण किया वह सीता के प्रति अत्यंत नीच कर्म था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

हनुमानजी का मन्दोदरी को सीता समझना

तदनन्तर वहाँ इधर-उधर देखने पर हनुमानजी को एक दिव्य एवं श्रेष्ठ वेदी दिखाई दी, जिस पर पलंग बिछाया जाता था। वे पलंग की पाटी-पाये आदि हाथी दांत और सुवर्ण जटित होने से चितकबरे दिखाई देते थे। उस पर बहुमूल्य बिछौने बिछे थे और पलंग के एक भाग में उन्होंने चन्द्रमा के समान एक श्वेत छत्र देखा जो दिव्य मालाओं से सुशोभित था। उसके चारों

ओर खड़ी हुई बहुत-सी स्त्रियाँ हाथों में चँवर लिए उस पर हवा कर रही थीं। उस पर हनुमानजी ने वीर राक्षस राज रावण को सोते हुए देखा। उस समय उसके अंगों पर सुगंधित लाल चंदन का अनुलेप लगा हुआ था। उसकी अंगकान्ति मेघ के समान श्याम थी। उसकी आंखें लाल और भुजायें बड़ी-बड़ी थीं। उसके वस्त्र सुनहरे थे। वह मदिरा पीकर आराम कर रहा था। उस समय साँस लेता हुआ रावण फुफकारते हुए सर्प के समान लग रहा था। उस राक्षस राज रावण की फैलायी हुई दो बाँहें जो बाजूबंद से विभूषित थीं इन्द्र ध्वज के समान मालूम होती थीं। युद्ध काल में उसकी भुजाओं पर जो हाथी के दाँतों के अग्रभाग से प्रहार किया गया था उनके आघात के चिह्न भी बन गये थे। वे भुजाएं सब ओर से समान सुन्दर कंधों वाली तथा मोटी थीं। उनकी अंगुलियाँ और हथेलियाँ बड़ी सुन्दर दिखाई देती थीं। सुन्दर युवतियाँ धीरे-धीरे उसकी बाँहों को दबा रही थीं जो युद्ध में यक्ष, नाग, गंधर्व, देवता सबको रुलाने वाली थीं और मंदराचल की गुफा में सोये हुए दो रोष भरे अजगरों के समान जान पड़ती थीं। उसके मुख से आम और नागकेसर की सुगंध, जो मधुपान की गंध से मिश्रत थी,सौरभयुक्त सॉस निकल रही थी। उसकी छाती लाल चंदन से चर्चित हार से सुशोभित थी और रावण के सम्पूर्ण शरीर की शोभा बढ़ा रही थी। उसके कटि के नीचे का भाग ढीले-ढाले श्वेत रेशमी वस्त्र से ढंका था और वह नीले रंग की बहुमूल्य रेशमी चादर ओढ़े हुए था। इस उज्ज्वल पलंग पर सोया हुआ रावण अगाध जलराशि में सोये गजराज की तरह दिखायी देता था। उसके चारों ओर सुवर्णमय दीपक जल रहे थे। पत्नियों के प्रेमी उस महाकाय राक्षस राज के घर में हनुमानजी ने उसकी पत्नियों को भी देखा जिनके मुख चन्द्रमा के समान खिले हुए थे। तथा वे ऐसे फूलों का हार पहने हुए थीं जो कभी मुर्झाते नहीं थे। वे सुन्दर आभूषण धारण किये हुए थीं। हनुमानजी ने सबको वहाँ सोते हुए देखा। पतली कमर वाली ये स्त्रियाँ रतिक्रीड़ा के परिश्रम से थककर जहाँ-तहाँ जिस अवस्था में थीं वैसे ही सो गयी थीं। विधाता ने उनके सारे अंगों को सुन्दर और विशेष शोभा से सम्पन्न बनाया था। उन स्त्रियों के गहने इधर उधर पड़े हुए थे। वह अपने बगल में अनेक वस्तु दबाये हुए थीं। जो स्त्री नाचने वाली थी वह अपना सितार लेकर सो गयी थी मानों वह अपने पति को बगल में सुलाये है। दूसरी

भामिनियाँ छोटे-छोटे वाद्य बगल में दबाये इस प्रकार सो रही थीं जैसे जननी अपने छोटे शिशु को गोद में लेकर सोती हैं। नृत्य कला से सुशोभित एक अन्य युवती वीणा को अंक में भरकर प्रियतमा के साथ सोयी हुई प्रेयसी की भाँति निद्रा के आधीन हो गयी थी। कोई स्त्री अपने स्तनों को सुवर्ण घड़े के समान पकड़ कर सोयी थी। कोई कमल नयन दूसरों काआलिंगन करके सो गयी थीं। इसके पश्चात् हनुमानजी ने एक पलंग पर सोयी हुई एक अत्यंत सुन्दर स्त्री को देखा जो अनेक रत्नों से विभूषित थी और अपनी कान्ति से उस घर की शोभा बढ़ा रही थी। वह गोरे अंगवाली थी तथा समस्त स्त्रियों में श्रेष्ठ दिखलाई पड़ती थी। अब उस रावण की पत्नी मन्दोदरी को ही हनुमान जी सीता समझकर अत्यंत प्रसन्न हो गये और अपनी पूँछ को भूमि पर पटकने लगे और इधर उधर कूद फांदकर अपनी वानरोचित लीला दिखलाने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

यह जानकर कि वह स्त्री सीता नहीं है पुनः सीता की खोज करना

तदनन्तर अपनी स्वाभाविक स्थिति में आने पर वे सीता के विषय में दूसरे प्रकार की चिंता करने लगे। उन्होंने सोचा- भामिनी सीता श्रीराम से बिछुड़कर न तो इस तरह से सो सकती हैं और न भोजन ही कर सकती हैं। वे किसी दूसरे पुरुष के पास जाने की कल्पना भी नहीं कर सकतीं हैं। अतः यह निश्चय ही सीता नहीं कोई दूसरी स्त्री है। ऐसा सोचकर हनुमानजी पुनः सीता के दर्शन के लिए उत्सुक हो गये। तत्पश्चात् वानर श्रेष्ठ हनुमानजी ने उस भूमि को सहस्रों ऐसी रमणियों से भरा हुआ देखा जो रूप लावण्य की चर्चा करने वाली देशकाल को समझने वाली तथा रति क्रीड़ा में अधिक भाग लेने वाली थीं। उन सब के बीच रावण उसी प्रकार शोभायमान था जैसे गोशाला में श्रेष्ठ गौओं के बीच में साँड़ या हाथियों से घिरा हुआ कोई महान् गजराज। तदनन्तर हनुमान ने वहाँ सोने के बड़े-बड़े पात्रों में मोर, मुर्गे, सुअर, गेंडा, साही हरिण के माँस रक्खे हुए देखे। बहुत-से पशुओं के माँस पकाकर भी रखे गये थे। सोने के कलशों में शराब भरी हुई रखी थी। वहाँ कुछ

ऐसी भी प्यालियाँ रखी हुई थीं जिसमें शराब बची हुई थी। उन्हें कुछ खाली बिछौने भी दिखाई पड़े जिन्हें देखकर हनुमानजी ने सोचा कि उन बिछौनों की स्त्रियाँ दूसरों के साथ मिलकर सो रही हैं इसलिए वे स्थान खाली पड़े हैं। वहाँ उन्होंने स्नान हेतु चन्दन आदि भी रखा हुआ देखा जिसे छूकर बहने से वायु सुगंधित हो गयीं थी। उस समय उस घर में उन्होंने कंचन वर्ण की अनेक स्त्रियाँ देखीं जो बहुत कामातुर-सी दिखलाई पड़ती थीं। तत्पश्चात् हनुमानजी ने उस स्थान का कोना-कोना देख लिया किन्तु वे सीताजी के दर्शन न कर सके। तदनन्तर उन स्त्रियों को देखकर हनुमान जी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं इससे उनके धर्म का नाश तो नहीं हो रहा है। यद्यपि उन स्त्रियों के प्रति उनके मन में कोई पाप पूर्ण विचार नहीं थे। अब वे किंकर्तव्यविमूढ हो कर सोचने लगे कि मैंने रावण के भय से उन स्त्रियों को छिपकर देखा है और उनके देखने से मेरे मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं हुआ है, साथ ही यह मन ही सारे इन्द्रियों का स्वामी है तथा उसी के द्वारा अच्छे और बुरे की पहचान होती है। अतएव मन स्वच्छ होने से यह पर स्त्री दर्शन मेरे धर्म का लोप करने वाला नहीं। इसके सिवा सीताजी को और कहीं ढूँढ़ा भी नहीं जा सकता था। जो जिस योनि में जन्म लेता है उसको उसी मे ढूँढ़ा जा सकता है। खोई हुई स्त्रियों को हिरनियों के बीच में नहीं ढूँढ़ा जा सकता अतएव यहाँ मैंने शुद्ध, हृदय से ही उनकी खोज की है। तत्पश्चात् दूसरा सुन्दरियों को देखते हुए वे अन्यत्र जाने को तैयार हुए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११)

बारहवाँ सर्ग

सीता के मरण की आशंका से हनुमानजी का शिथिल होना

तदनन्तर सीता का पता लगाने के लिए उत्सुक हनुमानजी क्रमशः लता मण्डपों में, चित्र शालाओं में तथा रात्रिकालिक विश्राम गृहों में गये परन्तु वहाँ भी उन्हें सीताजी के दर्शन नहीं हुए। हनुमानजी चिंतित होकर सोचने लगे कि निश्चय ही मिथिलेश कुमारी सीता जीवित नहीं हैं। इसलिए वे मेरे दृष्टि में नहीं आ रही हैं। सती साध्वी सीता आर्य मार्ग पर स्थित रहने वाली

थीं अतएव रावण ने उन्हें मरवा दिया होगा। अथवा यहाँ के भयानक राक्षसों को देखकर सीताजी ने भय के मारे प्राण त्याग दिये होंगे। अब बिना सीता के दर्शन हुए मुझे अपने पुरुषार्थ का फल नहीं प्राप्त हो सकता। मैंने भ्रमण करके लौटने की अवधि भी बिता दी है। अतएव अब सुग्रीव के पास मेरे जाने का मार्ग भी बन्द हो गया। समस्त अन्तःपुर छान डालने के बाद भी सीता नहीं मिल सकी। अब मैं उन वानरों को क्या उत्तर दूँगा जो मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। इसके लिए मुझे आमरण उपवास करके प्राण त्याग देना होगा। इस तरह कुछ देर तक निराशाजनक अवस्था में रहने के बाद उन्होंने सोचा- हताश न होकर उत्साह को बनाये रखना परम सुख प्राप्त करने का मूल कारण है। अब मैं उन स्थानों में सीता को ढूँढूगा जहाँ मैं अभी तक नहीं गया। उत्साह प्राणियों को कर्मों में प्रवृत्त करा कर उन्हें सफलता प्रदान करता है। मैं अब आपानशाला, पुष्पगृह, चित्रगृह, क्रीड़ाशाला, गृहउद्यान में सब जगह जाकर सीताजी की पुनः खोज करूँगा फिर वे तहखाने, चौराहों, मन्डपों, तथा घरों के अटारियों पर चढ़कर सीता की खोज करने लगे। उन्होंने जगह-जगह नाना प्रकार के आकारवाली, कुरूप और विकट राक्षसियाँ देखीं। किन्तु कहीं जानकी जी के दर्शन नहीं हुए। इनके सिवा चन्द्रमा के समान मुख वाली नाग कन्याएं तथा हर लायी हुई अन्य स्त्रियाँ हनुमानजी को वहाँ दिखलाई पड़ीं। किन्तु सीताजी वहाँ कहीं भी देखने में नहीं आयीं। इसलिए वे फिर चिंतित हो उठे। शोक के कारण उनकी चेतना शक्ति ही लुप्त होने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२)

तेरहवाँ सर्ग

हनुमानजी का पुनः खोजने का विचार करना

रावण के सभी घरों में जब हनुमानजी ने सीता को नहीं देखा तो वे सोचने लगे- यद्यपि मैंने रावण की लंका को अच्छी तरह छान डाला है तथापि सीता मुझे कहीं नहीं दिखलाई पड़ीं। गृध्रराज सम्पाति ने सीता जी को यहाँ रावण के महल में ही होना बताया था। फिर भी वे न जाने क्यों यहाँ दिखलायी नहीं पड़तीं। सीता कभी विवश होकर रावण की सेवा में उपस्थित हो यह

असम्भव है। मेरी समझ में जब श्रीराम चन्द्र का नाम सुनकर रावण मार्ग में सीता को लेकर कहीं उछला होगा तो वे अवश्य बीच में छूट कर कहीं गिर पड़ी हैं। अथवा मार्ग में समुद्र के भय के मारे उनका हृदय ही फटकर नीचे गिर गया हो। ऐसा भी हो सकता है रावण से पीड़ित हो उन्होंने अपने प्राणों को त्याग दिया हो अथवा वह छटपटाकर समुद्र में गिर पड़ी हों। ऐसा भी संभव है कि स्वयं रावण या उसकी पत्नियों ने उन्हें अपना आहार बना लिया हो। अथवा वे रावण के ही किसी गुप्त गृह में रखी गयी हों। हाय! वे वहाँ पिंजरे में बन्द मैना की भाँति बारम्बार आर्तनाद करती होंगी। जनक पुत्री सीता कभी रावण के अधीन हो ही नहीं सकतीं। यदि सीता ने किसी भी तरह प्राणों से हाथ धो लिया है तो उसकी सूचना श्रीराम को देना उचित न होगा क्योंकि वे अपनी पत्नी को बहुत प्यार करते हैं। अब मैं इसे श्रीराम को बताऊँ या न बताऊँ? हनुमान जी इन्हीं बातों पर बारम्बार विचार करने लगे। उन्होंने फिर सोचा कि यदि मैं बिना सीता की खोज किये किष्किंधापुरी लौटता हूँ तो मेरा पुरुषार्थ ही क्या रह जाता है। यदि मैं किसी तरह लौटकर श्रीराम को यह बताता हूँ कि सीता के दर्शन नहीं हुए तो वे निश्चय ही अपने प्राणों का परित्याग कर देंगे। फिर उन्हें प्राणों का त्याग करते हुए देखकर बुद्धिमान लक्ष्मण भी जीवित नहीं रह सकेंगे। फिर भाइयों के विनाश के समाचार से भरत और शत्रुघ्न भी जीवित न रह सकेंगे। ऐसी दशा में उन चारों की माताएं भी प्राण त्याग देंगी। हो सकता है फिर सुग्रीव और उनकी पत्नियाँ रूपा और तारा भी जीवित रहना पसन्द न करें। और इनके मरने पर बालिकुमार अंगद भी प्राणों का परित्याग कर दें। फिर अपने राजा को शोक से पीड़ित होते देख सारे वानर भी किसी न किसी ढंग से अपने प्राण त्याग देंगे। वहाँ जाने से इक्ष्वाकु कुल का नाश और वानरों का विनाश हो जायगा अतएव मैं किष्किंधापुरी न जाकर यहाँ वानप्रस्थी हो जाऊँगा। उस समय मेरे हाथ पर अपने आप जो फल आदि खाने की वस्तु आयेगी उसी को खाकर जीवित रहूँगा और नियमों का पालन करता हुआ वृक्ष के नीचे निवास करूँगा। या चिता बनाकर जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। यदि सीता के दर्शन नहीं हुए तो मैं जल समाधि ले लूँगा। इस प्रकार मन में अनके प्रकार के दुखों को धारण किये हनुमान जी शोक सागर में डूब गये। फिर धैर्य का सहारा

लेकर वे सोचने लगे क्यों न मैं महाबली रावण का बध कर डालूँ इससे उस बैर का बदला ले लिया जाये। अथवा उसे समुद्र के ऊपर से ले जाकर श्रीराम के हाथों सौंप दूँ। फिर वे सोचने लगे कि जब तक मैं राम की पत्नी सीता का दर्शन न कर लूँगा मैं बारम्बार उनकी खोज करता रहूँगा और सारे नर और वानरों को नष्ट होने से बचाऊँगा। इधर अब बहुत बड़ी अशोक वाटिका है अब मैं समस्त देवताओं को नमस्कार कर इस अशोक बाटिका में चलूँगा। फिर सब देवताओं को नमस्कार कर वे अशोक वाटिका की ओर जाने को उद्यत हुए। तब उन्होंने पहले मन के द्वारा उस अशोक बाटिका का चिंतन किया और सोचने लगे कि अशोक बाटिका निश्चय ही अनेक राक्षसों द्वारा रक्षित होगी। लेकिन श्रीराम के कार्य सिद्धि हेतु ऋषि सहित समस्त देवता मुझे इसमें सिद्धि प्रदान करें। अब मुझे प्रफुल दल के समान सुशोभित उन सीता का मुख कब दिखाई देगा। इस दुष्ट रावण ने तपस्विनी सीता का अपहरण किया है अब वे किस प्रकार मेरी दृष्टि में आ सकती हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१३)

चौदहवाँ सर्ग

हनुमानजी का अशोक बाटिका पहुँचकर सीता की खोज करना

तब हनुमानजी एक मुहूर्त तक इसी प्रकार विचार करते रहे तत्पश्चात् सीता का ध्यान करके वे रावण के महल से कूद पड़े। और अशोक बाटिका की चहारदीवारी पर चढ़ गये। उस चहारदीवारी पर बैठे हुए महाकपि हनुमानजी के सारे अंग रोमांचित हो आये। वह बाटिका सोने और चाँदी के समान वर्ण वाले वृक्षों से सब ओर से घिरी थी। उसमें नाना प्रकार के पक्षी कलरव कर रहे थे। हनुमानजी ने उसमें प्रवेश करके उसका निरीक्षण किया। भाँति-भाँति के विहंगमों और मृग समूहों से उसकी विचित्र शोभा हो रही थी। वह बाटिका ऐसी थी जिसका सेवन मतवाले भ्रमर और कोकिल करते थे। उसमें जाने से हर समय लोगों के मन में प्रसन्नता होती थी। उस बाटिका में सती साध्वी सीता की खोज करते हुए वानरवीर हनुमान ने घोंसलों में सुख पूर्वक सोये हुए पक्षियों को जगा दिया। उस समय पक्षियों के पंखों के हवा

लगने से वहाँ के वृक्ष अनेक प्रकार के रंग बिरंगे फूलों की वर्षा करने लगे। उन फूलों से आच्छादित होकर हनुमानजी इस तरह शोभा पाने लगे जैसे वे फूलों के कोई पहाड़ हैं। उस समय उन्हें वहाँ देखकर सारे राक्षस उनको साक्षात् बसन्त ऋतु ही समझने लगे। उस समय हनुमानजी के दुम से हिलाये हुए वे वृक्ष विचित्र फूलों की वर्षा कर रहे थे और फल वाले श्रेष्ठ वृक्ष तुरन्त ही अपने फल, फूल और पत्तों का परित्याग कर देते थे। उस पर आश्रय लेने वाले पक्षियों के समुदाय भी उन वृक्षों को छोड़कर चल दिये। जैसे वायु वर्षा ऋतु में अपने वेग से मेघ समूहों को छिन्न-भिन्न कर देती है उसी प्रकार कपिवर हनुमान वहाँ फैली हुई बिशाल लता बल्लरियों को तोड़ डाले। उन्होंने उस बाटिका में जहाँ तहाँ विभिन्न आकारों की बावड़ियाँ देखीं, जो उत्तम जल से भरी थीं और सोपानों से युक्त थीं। उनमें खिले हुए कमल वन और चक्रवाकों के जोड़े शोभा बढ़ा रहे थे तथा वहाँ पपीहा, हंस और सारसों के कलनाद गूँज रहे थे। फिर वहीं कपिश्रेष्ठ हनुमानजी ने मेघ के समान काला और ऊँचे शिखरों वाला एक पर्वत देखा जिनकी चोटियाँ बड़ी विचित्र थीं और उसमें बहुत सी पत्थर की गुफायें थीं। उसमें अनेकानेक वृक्ष उगे हुए थे और वह बहुत रमणीय लग रहा था। उस पर्वत से थोड़ी दूर पर हनुमानजी ने अनेक कमल मंडित सरोवर देखे जिनमें नाना प्रकार के पक्षी चहचहा रहे थे। उनमें श्रेष्ठ मणियों की सीढ़ियाँ बनी थीं और वह मोतियों के बालुका राशि से सुशोभित था। उसमें विश्वकर्मा के बनाये हुए बड़े-बड़े महल और कृत्रिम उपवन सब ओर शोभा दे रहे थे। तत्पश्चात् हनुमानजी ने वहाँ सुवर्णमयी एक शिंशिपा (अशोक) का वृक्ष देखा जो बहुत से लता वितानों और अगणित पत्तों से व्याप्त था और सब ओर से सुवर्णमयी वेदिका से घिरा था। उसमें लगे हुए सुवर्णमयी वृक्षों की प्रभा के कारण हनुमानजी ने भी अपने को सुवर्णमय समझा। उन वृक्षों के वायु द्वारा हिलने पर उसमें सैकड़ों घुँघुरुओं के बजने की सी मधुर ध्वनि होती थी। हनुमानजी को यह देखकर बड़ा विस्मय हुआ। तत्पश्चात् वे पत्तों से हरा-भरा उस अशोक के वृक्ष पर चढ़ गये और सोचने लगे कि मैं यहीं से श्रीराम के दर्शन के उत्सुक सीता को देखूँगा। दुरात्मा रावण की वह अशोक वाटिका बहुत ही रमणीय है। सीता इसके सरोवर के तटों पर अवश्य आती होंगी। क्योंकि ऐसे सुन्दर स्थानों में आने से उनकी

चिंता निश्चित रूप से कुछ कम हो जाती होगी। उन श्रीराम के बिरह शोक से व्याकुल सीता वन में विचरती हुई उधर निश्चय ही आयेगी। वे जीव जन्तुओं से विशेष प्रेम करती हैं इसलिए इधर उनका आना स्वाभाविक है। यह सन्ध्या के उपासना का समय है इसलिए वे इस पुण्यं सलिला नदी के तट पर अवश्य आयेंगी। यदि चन्द्रमुखी सीता जीवित हैं तो उनका पदार्पण यहाँ अवश्य होगा। ऐसा सोचते हुए हनुमानजी उस अशोक वृक्ष पर छिपे रहकर इधर उधर देखने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१४)

पन्द्रहवाँ सर्ग

हनुमान का सीता जी को दयनीय अवस्था में देखना

तदनन्तर उस वृक्ष पर बैठे-बैठे हनुमानजी उस सम्पूर्ण वन को देखते हुए सीताजी को ढूँढ़ने लगे। वह भूमि उस समय नन्दनवन के समान शोभा पा रही थी। अब हनुमानजी ने उस वृक्ष पर से ही उस दमकती हुई बाटिका को देखते हुए बारम्बार उन वृक्षों को पत्तों और शाखाओं से हीन कर रहे थे। वहाँ सहस्त्रों अशोक वृक्ष थे। उनमें कुछ तो सुवर्ण के समान कान्तिवन थे कुछ आग की ज्वाला के समान प्रकाशित हो रहे थे, और कोई-कोई काले काजल की-सी कान्ति वाले थे। वह पुष्प रूपी नक्षत्रों से युक्त दूसरे आकाश की तरह सुशोभित था। सब ऋतुओं में फूल देने वाले मनोरम गंधयुक्त वृक्षों से भरा हुआ तथा भाँति-भाँति के कलरव करने वाले मृगों और पक्षियों से सुशोभित वह उद्यान अत्यंत रमणीय दिखाई पड़ता था। उस अशोक वाटिका में हनुमानजी ने थोड़ी ही दूर पर एक गोलाकार ऊँचा मंदिर देखा जिसके भीतर एक हजार खम्भे लगे थे। वह मन्दिर कैलाश पर्वत की भाँति श्वेत रंग का था। उसमें सोने की वेदियाँ बनी थीं जो दर्शकों की आँखों में चकाचौंध पैदा करती थीं। उस मंदिर को देखने के बाद उनकी दृष्टि वहाँ एक सुन्दर स्त्री पर पड़ी जो मलिन वस्त्र पहने राक्षसियों से घिरी हुई बैठी थी। वह उपवास के कारण दुर्बल थी और अत्यंत दीन हीन अवस्था में थीं। वह शुक्ल पक्ष के आरम्भ में चन्द्रमा की कला जैसी निर्मल और कृश दिखाई देती थीं। वह धुएं से ढँकी हुई

अग्नि के ज्वाला के समान जान पड़ती थीं। एक ही पीले रंग के पुराने रेशमी वस्त्र से उसका शरीर ढँका था। उपवास से दुर्बल हुई उस दुखिया नारी के मुँह पर आँसुओं की धारा बह रही थी। उसकी द्रृष्टि के सामने सदा राक्षसियों का समूह बैठा रहता था। वह सुख भोगने योग्य थी किन्तु दुख से संतप्त हो रही थी। अब उस क्षीणकाय, विशाल नेत्रों वाली अबला को देखकर हनुमानजी ने बिचार किया कि हो न हो यही सीता हैं। रावण जब सीता को हरकर ले जा रहा था उस दिन जिस रूप में उनका दर्शन हुआ था। आज भी उस अबला का वही रूप दिखलाई पड़ रहा था। वे अपनी अंग कान्ति से सम्पूर्ण दिशाओं का अंधकार दूर कर रही थीं। वह रति के समान ही सुन्दरी थीं और सारे जगत के लिए प्रिय थीं। यद्यपि वह स्वभाव से ही भीरू और चिंता के कारण बार-बार लम्बी सॉंस खीचती थीं तो भी नागिन के समान वह दूसरों के लिए भयंकर थीं। वह धुएं के समूह से मिली अग्निशिखा के समान लग रही थीं। श्रीराम चन्द्र की सेवा में रुकावट पड़ जाने से उसके मन में बड़ी व्यथा हो रही थी। और राक्षसों से पीड़ित होने के कारण वह असहाय की भाँति इधर-उधर देख रही थीं। उनके मुख पर प्रसन्नता नहीं थी और उनकी आँखों मे निरन्तर आँसुओं की धारा बह रही थी। वह दीनता की मूर्ति थी और आभूषण धारण करने योग्य होने पर भी आभूषण से रहित थीं। हनुमानजी ने उस समय बड़े कष्ट से उन्हें पहचाना। उन्होंने अब तर्क बितर्क करके यह निश्चय किया कि सीता वास्तव में यही हैं और हनुमान ने सीता के पास उन्हीं आभूषणों को देखा जिसके विषय में श्रीराम ने इनके समक्ष चर्चा की थी। उन्होंने सीता के कर्ण फूलों को देखा जो वे पहने हुए थीं और जो मैल के कारण मलिन पड़ गये थे। उन्होंने मणि के जड़े गहने भी अपने हाथों में पहन रखे थे। तब हनुमानजी सोचने लगे कि जो गहने श्रीराम चन्द्र ने बताये थे वे वहीगहनेहैं किन्तु जो गहने ऋष्यमूक पर्वत पर सीता जी ने गिराये थे वे इस समय सीता के शरीर पर नहीं थे। तथापि यह निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि इस समय वह स्त्री उसी रंग का वस्त्र धारण किए हुई थी जैसा कि सीता द्वारा पर्वत पर गिराया गया था। तब हनुमान जी ने उन्हें पहचानते हुए कहा कि मैंने निश्चित रूप से सीता को पहचान लिया है जिनके लिए भगवान् श्रीराम व्याकुल हो रहे थे। जिस प्रकार इन सीता की सुन्दरता देखता हूँ उसी प्रकार

श्रीराम चन्द्र का अंग भी सुन्दर है। अतः ये उनके ही अनुकूल हैं। इन देवी का मन श्रीरामचन्द्र में लगा हुआ है उसी प्रकार श्रीराम का मन इस देवी में लगा है। इनके बिछुड़ जाने पर भी भगवान् श्रीराम अपने शरीर को धारण करते हुए शोक से शिथिल नहीं होते यह उन्होंने अत्यंत दुष्कर कार्य किया है। इस प्रकार उस अवस्था में सीताजी को पाकर हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए और सीता जैसी साध्वी को पत्नी के रूप में पाकर वे उनके सौभाग्य की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१५)

सोलहवाँ सर्ग

हनुमानजी का मन ही मन सीताजी के लिए शोक करना

तदनन्तर सीता और श्रीराम की प्रशंसा करके वे फिर विचार करने लगे- अहा, यदि श्रीराम की पत्नी सीता भी इस प्रकार दुःख से आतुर हो रही हैं तो यह कहना पड़ता है कि काल का उल्लंघन करना सबके लिए कठिन है। यद्यपि वे श्रीराम और लक्ष्मण के अमोघ पराक्रम का ध्यान करते हुए अधिक विचलित नहीं हो रही हैं। सीता के शील स्वभाव श्रीराम के ही समान है अतः श्रीराम सीता के सर्वथा योग्य हैं। फिर वे श्रीराम का स्मरणकर सोचने लगे उन्हीं सीता के लिए श्रीराम ने महाबली बाली एवं पराक्रमी विराध तथा कबंध का बध किया।इन्हीं के कारण श्रीराम ने जनस्थान मेंअपने तेजस्वी बाणों द्वारा खर त्रिशिरा तथा दूषण को भी मार डाला। इनके लिए यदि श्रीराम समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को उलट भी देते तो भी वह मेरे विचार से उचित ही होता। इस त्रिलोकी का राज्य भी सीता के एक कला के बराबर भी नहीं हो सकता। ये जनक पुत्री सीता पतिव्रत धर्म में बहुत दृढ़ हैं। ये पृथ्वी फाड़कर प्रकट हुई थीं और महाराज दशरथ की यशस्विनी ज्येष्ठ पुत्र बधू हैं। ये केवल पति प्रेम के कारण ही समस्त सुखों को लात मार कर निर्जन वन में चली आयी हैं। यद्यपि रावण ने इन्हें बहुत ही यातना दिया है फिर भी उसके वशीभूत नहीं हो सकीं। जैसे राज्य से भ्रष्ट हुआ राजा पुनः राज्य प्राप्त कर लेने पर प्रसन्न होता है उसी प्रकार श्रीराम सीता को पाकर प्रसन्न हो उठेंगे।

सीता श्रीराम के साथ समागम की आशा से ही अपना शरीर धारण किये हुए हैं। भगवान् श्रीराम इनके बिछुड़ जाने पर भी जो अपने शरीर को धारण कर रहे हैं यह वास्तव में अत्यंत दुष्कर कर्म है। जिन सीता की रक्षा करने वाले श्रीराम और लक्ष्मण हैं वे आज इस वृक्ष के नीचे बैठी हैं और राक्षसियाँ इनकी रखवाली करती हैं। आज सीता अपनी सहचर से बिछुड़ी हुई चकवी के समान पति वियोग का कष्ट सहन करती हुई बड़ी दयनीय अवस्था को पहुँच गयी हैं। इसी प्रकार बिचार करते हुए हनुमानजी यह निश्चय करके कि ये ही सीता हैं उसी वृक्ष पर बैठे रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१६)

सत्रहवाँ सर्ग

सीता के दर्शन से हनुमानजी का प्रसन्न होना

तत्पश्चात् चन्द्रदेव की निर्मल किरणों के प्रकाश में उन्होंने मनोहर मुख वाली सीता को अच्छी तरह देखा। उसी समय उन्हें उनके पास ही बहुत-सी राक्षसियाँ बैठी हुई दिखाई दीं। उनमें से किसी के एक आँख थी तो दूसरी के एक कान। किसी के कान ही नहीं दिखाई देते थे तो किसी के कान ऐसे दिखाई देते जैसे खूँटे गड़े हों। किसी के साँस लेने वाली नाक मस्तक पर थी। उनमें कोई नाटी तो कोई लम्बी, कोई टेंढ़ी आँख वाली तो कोई विकट मुँह वाली थी। उन लोगों ने अपने हाथों में शूल, कूट और मुग्दर धारण कर रखे थे। कितनी ही राक्षसियाँ का मुख सुअर, मृग, सिंह तथा भैसों के समान थे। किन्हीं का एक हाथ था तो किन्हीं का एक पैर, किन्हीं का कान गदहों के समान तो किन्हीं का घोड़ों के समान। किन्हीं के पैर हाथियों के समान थे तो किन्हीं के गौओं के समान। किन्हीं के मुँह और नेत्र सीमा से अधिक बड़े थे तो किन्हीं के मुख में बड़ी-बड़ी जिह्वाएं थीं। कोई क्रोधी स्वभाव की थीं तो कोई कलह से प्रेम रखने वाली थीं। कितनी ही अपने अंगों में रक्त और मांस का लेप लगाये थीं। कपि श्रेष्ठ हनुमानजी ने उन सबको देखा और उस समय उन्होंने सीताजी की ओर विशेष रूप से लक्ष्य किया। उनके मुख की कान्ति फीकी पड़ गयी थी और केशों में मैल जम गयी थी। वे उत्तम आभूषणों से

रहित थीं, किन्तु पति के स्नेह से विभूषित थीं। पति के हित में तत्पर रहने वाली सीता राक्षसों के अधीन रहने योग्य नहीं थीं फिर भी वैसी ही दशा में पड़ी थीं। अशोक वाटिका में रहकर भी वे शोक सागर में डूबी हुई थीं। वे पुष्पहीन लता की भाँति श्रीहीन हो रही थीं। उनके सारे अंगों में मैल जम गयी थी। केवल शरीर सौन्दर्य ही उनका अलंकार था। मैले और पुराने वस्त्र से ढँकी हुई मृगशावकनयनी सीता को हनुमानजी ने उस अवस्था में देखा। यद्यपि सीता के मुख पर दीनता छा रही थी फिर भी अपने पति के तेज का स्मरण करते ही उनका समस्त दैन्य दूर हो जाता था। वे उस समय शोक की प्रक्रिया एवं दुःख की उठी हुई तरंग के समान प्रतीत होती थीं। इस समय सीता को दैन्यावस्था में ही देखकर उनका पता लग जाने के कारण हनुमान जी को अनुपम हर्ष होने लगा। वे श्रीराम और लक्ष्मण को नमस्कार कर वहीं छिप कर बैठे रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सत्रहावाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

अठारहवाँ सर्ग

स्त्रियों से घिरे रावण का अशोक वाटिका में आना

इस तरह वहाँ बैठे-बैठे हनुमानजी की वह सारी रात बीत चली। केवल एक पहर रात बाकी रह गयी। उस समय यज्ञों द्वारा भजन करने वाले ब्रह्म राक्षसों के घरों में वेद पाठ की ध्वनि निकलने लगी थीं। तत्पश्चात् मंगल वाद्य द्वारा रावण को जगाया गया। जागते ही रावण ने सीता का चिंतन किया। वह निशाचर काम के वशीभूत हो सीता के प्रति अत्यंत आशक्त हो गया था। उस समय वह परम उत्तम शोभा से सम्पन्न हो अशोक वाटिका में आया और जैसे देवताओं और गंधर्वों की स्त्रियाँ देवराज इन्द्र के पीछे चलती हैं उसी तरह अशोक वाटिका में जाते हुए पुलस्त्यनंदन रावण के पीछे-पीछे एक सौ सुन्दरियाँ गयीं। उनमें किन्हीं ने सुवर्णमय दीपक ले रखा तो किसी के हाथ में चँवर थे। कुछ सोने की झारियों में जल लेकर चल रही थीं। कुछ आसन लिए पीछे-पीछे जा रही थीं। किसी के हाथ में चमचमाती कलशी थी तो कोई छत्र लिए रावण के पीछे चल रही थीं। उस समय उनकी आँखें झंपी जाती थीं। वे

सुमुखि स्त्रियाँ मद और निद्रा से झूमती हुई-सी चल रही थीं। जिनकी आँखें मदमत्त बना देने वाली थीं। वे रावण की पत्नियाँ अपने पति के साथ बड़े अनुराग पूर्वक जा रही थीं। उन सबका पति उस समय काम के अधीन हो रहा था। वह सीता में मन लगाये मंदगति से आगे बढ़ रहा था। उस समय पवन पुत्र हनुमान ने रावण-पत्नियों की करधनी और नूपुरों की ध्वनि सुनी। तब तक रावण अशोक बाटिका के द्वार तक आ पहुँचा। वह काम, दर्प और मद से युक्त हो रहा था। उसकी आँखें टेढ़ी, लाल और बड़ी-बड़ी थीं। अशोक वृक्ष के पत्ते और डालियों में हनुमानजी अच्छी तरह ढँक गये थे। उसी अवस्था में उन्होंने निकट आये हुए रावण को पहचानने का यत्न किया। उन्होंने रावण की सुन्दर युवतियों की ओर भी लक्ष्य किया जो रूप और यौवन से सम्पन्न थीं। उस समय रावण मतवाला दिखाई दे रहा था। उसके आभूषण विचित्र थे। तारा़ओं से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति वह युवतियों से घिरा हुआ था। तब उसे देखकर हनुमानजी ने निश्चित कर लिया कि पहले जो नगर के उत्तम महल के भीतर सोया था वह महाबाहु रावण यही है। अब वे जहाँ बैठे थे वहाँ से कुछ नीचे उतर कर रावण की चेष्टाएं देखने लगे। यद्यपि हनुमानजी बड़े उग्र तेजस्वी थे फिर भी रावण के तेज से तिरस्कृत हो पत्तों के आड़ में छिप गये और रावण सीता को देखने के लिए उनके पास गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

रावण को देखकर सीता का दुख और चिंता में डूबना

उस समय सीता ने जब राक्षस राज को आते देखा तो वे भयभीत होकर कदली के समान थर-थर काँपने लगीं। वे वहाँ बैठी-बैठी ही रोने लगीं। वे सागर में जीर्ण शीर्ण होकर डूबी हुई नौका के समान दुखी हो गयीं। उस अवस्था में रावण ने भी उन्हें देखा। उस समय सीता कीचड़ में सनी हुई कमल नाल की भाँति शोभा पा रही थीं। वे संकल्पों के घोड़े पर सवार होकर मनोमय रथ पर चढ़कर श्रीराम के पास जाती हुई-सी प्रतीत होती थीं। उनका शरीर

सूखा जा रहा था और वे श्रीराम के वियोग के दुःख में डूबी रहती थीं। जैसे नाग की बधू मंत्रादि से अभिभूत हो छटपटाने लगती है उसी प्रकार वे पति के वियोग में तड़प रही थीं। यद्यपि सुशील कुल में उनका जन्म हुआ था और धार्मिक कुल में ब्याही गयी थीं फिर भी वे दूषित कुल में उत्पन्न हुई नारी के समान मलिन दिखाई देती थीं। वे क्षीण हुई कीर्ति, चन्द्रग्रहण से मलिन हुई पूर्णमासी की रात, तुषारपात से जीर्ण शीर्ण हुई कमलिनी और बुझी हुई अग्नि शिखा के समान दिखलाई पड़ रही थीं। पति विरह के शोक में उनका हृदय बहुत व्याकुल था। जिसका जल नहरों द्वारा निकाल लिया गया हो ऐसी नदी के समान वे सूखी दिखलायी पड़ती थीं। वे तुरन्त तोड़कर फेंकी हुई कमलिनी के समान दयनीय दशा को पहुँच गयी थीं। वे उपवास, शोक, चिंता और भय से अत्यंत कृशकाय और दीन हो गयी थीं। उस समय एकमात्र तप ही उनका धन था। वे श्रीराम के प्रति अत्यंत अनुराग रखती हुई इधर-उधर देखती हुई रो रही थीं। इस अवस्था में रावण उन्हें अपने ही बध हेतु उनको लुभाने का यत्न करने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

रावण का सीताजी को प्रलोभन देना

रावण सीता से अत्यंत मधुर वचनों में बोला- विशाल-लोचने! मैं तो तुम्हें चाहता हूँ। तुमसे प्रेम करता हूँ। अतः मुझे आदर देते हुए मेरी प्रार्थना स्वीकार करो। यहाँ तुम्हारे लिए कोई भय नहीं। भीरू! मैंने कोई अधर्म नहीं किया क्योंकि परायी स्त्रियों को बलपूवर्क हर कर ले आना राक्षसों का सदा से ही धर्म रहा है। लेकिन जब तक तुम न चाहोगी मैं तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकता चाहे काम देव मेरे शरीर पर कितना ही अत्याचार क्यों न करें। देवि! इस तरह शोक करके उपवास आदि करना तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम स्त्रियों में रत्न हो अतएव मुझे पाकर सुख भोगो। यह जो तुम्हारा यौवन बीत रहा है यह लौटकर नहीं आयेगा जैसे नदियों का प्रवाह फिर लौटकर नहीं आता। सीते! संसार में कौन ऐसा पुरुष होगा जो तुम्हें देखकर विचलित न हो। मेरा

मन बराबर तुम्हीं में लगा है। तुम उन सब में श्रेष्ठ पटरानी बनकर मेरे राज को भी ग्रहण करो। इस संसार में मेरे पराक्रम के आगे किसी का टिकना असम्भव है। देवता तथा असुर सभी युद्ध में मुझको पीठ दिखला चुके हैं। सुमुखि! आज मैं शृंगार से सुसज्जित तुम्हारे रूप को देखना चाहता हूं। अत: तुम इसके लिए तैयार हो जाओ। तुम मेरी समृद्धि और धन दौलत को देखो। चीर वस्त्रधारी राम को अब लेकर क्या करोगी। इस समय तो मुझे यह भी संदेह हो रहा है कि वे जीवित हैं भी या नहीं? राम का तुम्हें मेरे हाथों से पाना दुष्कर है। भीरू! देखो तो तुम्हारा पीताम्बर मैला हो गया है। तुम दुर्बल हो गयी हो फिर भी तुम्हें छोड़कर मेरा मन और कहीं नहीं लगता। सुन्दरी! जैसे अप्सरायें लक्ष्मी की सेवा करती हैं वैसे यहाँ की सुन्दरियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी। कुबेर के यहाँ जितने भी रत्न हैं वे सब तुम्हारे होंगे। तुम्हारा राम तो किसी बात में मेरी समानता ही नहीं कर सकता। मैं तुम्हें सारी धन राशि और पृथ्वी समर्पित किये देता हूँ। तुम मेरे पास रहकर इन सबका उपभोग करो। तुम निर्मल हाथों से अपने अंगों को संवार कर समुद्र के तटपर चलकर विहार करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के सुन्दर काण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

सीताजी का रावण को समझाना

उस राक्षसराज की बातें सुनकर धीरे-धीरे उन्होंने तिनके की ओट कर रावण को समझाना शुरू किया- तुम मेरी ओर से अपना चित्त हटा लो और अपनी पत्नियों से प्रेम करो। यह मेरे लिए न करने योग्य कार्य है क्योंकि मैं एक महान् कुल में उत्पन्न हुई हूँ। रावण! मैं परायी स्त्री हूँ और तुम धर्म की ओर दृष्टिपात करते हुए दूसरी स्त्रियों की तरह मेरी भी रक्षा करो। जो अपनी स्त्रियों से संतुष्ट नहीं रह पाता उसकी बुद्धि को धिक्कार है। उस चंचल मन वाले पुरुष को परायी स्त्रियाँ पतन की ओर पहुँचा देती हैं। तुम बुद्धिमान हो इसलिए मैं तुम्हारे हित की बात कह रही हूँ। जिसका मन अपवित्र होता है और सदुपदेश को ग्रहण नहीं करता वह और उसका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो

जाता है तथा ऐसे कुकर्मियों के विनाश होने पर सभी प्राणियों को प्रसन्नता होती है। जैसे प्रभा को सूर्य से अलग नहीं किया जा सकता वैसे मुझे राम से अलग नहीं किया जा सकता। श्रीराम के सम्मानित भुजा पर सर रख लेने के बाद अब में दूसरे किसी के बाँह की तकिया कैसे लगा सकती हूँ। रावण इस समय तो तुम्हारे लिए यही उचित होगा कि तुम मुझ दुखिया को श्रीराम से मिला दो और उन्हें अपना मित्र बना लो। श्रीराम शरणागत वत्सल हैं। अतएव यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो उनसे मित्रता कर लो। उन्हें प्रसन्न करते हुए तुम मुझे उनके पास लौटा दो। इस प्रकार तुम्हारा भला होगा अन्यथा तुम घोर विपत्ति में पड़ोगे और शीघ्र ही श्रीराम के धनुष की टंकार सुनोगे। यहाँ उनके बाण सर्पों के समान शीघ्र ही इस तरह गिरेंगे कि यहाँ तिल रखने की जगह नहीं रह जायेगी। जैसे विष्णु ने असुरों को परास्त कर उनकी राज लक्ष्मी छीन ली थी वैसे ही मेरे स्वामी मुझे भी यहाँ से निकाल ले जायेंगे। नीच निशाचर तूने आश्रम में घुसकर मेरा हरण किया किन्तु तुझे नहीं मालूम कि श्रीराम और लक्ष्मण की गंध पाकर भी तू उनके सामने नहीं ठहर सकता। क्या कुत्ता भी कभी बाघों के सम्मुख टिक सकता है। मेरे प्राणनाथ लक्ष्मण के साथ आकर तुम्हारे प्राणों को शीघ्र हर लेंगे क्योंकि काल तो तुम्हें पहले से ही मार चुका है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाइसवाँ सर्ग

रावण का सीता को दो मास की अवधि देना

सीता के ऐसे कठोर वचन सुनकर रावण भी उसी प्रकार बोला- संसार में कोई भी पुरुष स्त्रियों से जितना भी अनुनय विनय करता है उतना ही वह उसका प्रिय होता जाता है किन्तु तुमसे जितने ही मीठे वचन बोलता हूँ उतना ही तुम मेरा तिरस्कार कर रही हो। मिथिलेश कुमारी! तुम मुझसे जैसी-जैसी कठोर बातें कह रही हो उसके लिए तुम्हें प्राणदण्ड ही देना उचित है। सुन्दरि! मैंने तुम्हारे लिए दो महीने की अवधि निश्चित की है। उसके बाद मेरी शय्या पर आना होगा अन्यथा मेरे रसोइये कलेवा के लिए तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर

डालेंगे। रावण के द्वारा सीता को इस तरह धमकाये जाने पर देवताओं और गंधर्वों की कन्याओं को बड़ा दुःख हुआ फिर उनमें कितनों ने ओठों से कितनों ने नेत्रों और कितनों ने मुँह के संकेत से सीता को धैर्य बंधाया। तब सीता फिर बोलीं- निश्चय ही इस नगर में तेरा कोई भला चाहने वाला नहीं है जो तुझे इस निंदित कर्म से रोके। मैं धर्मात्मा श्रीराम की पत्नी हूँ उनके सिवा मुझे कोई पा ही नहीं सकता। और नीच राक्षस! तूने जो ऐसी बात कही है उसका दण्ड तुझे मिलकर ही रहेगा। मुझपर कुदृष्टि डालकर तेरी आँखें पृथ्वी पर क्यों नहीं गिर पड़ीं? मुझसे बात करते हुए तेरी जीभ गल क्यों नहीं जाती। इस समय केवल राम की आज्ञा से मैं तुझे भस्म नहीं कर रही हूँ। लगता है तेरे बध के लिए ही ऐसा हुआ है। तू इतना शूरवीर होकर मुझे छलकर क्यों लाया? सीता की बात सुनकर रावण उसे तरेरता हुआ देखने लगा। उस समय वह पराक्रमी सिंह की तरह दिखलायी पड़ रहा था। उसकी जीभ आग की लपट की तरह लपलपा रही थी। क्रोध के कारण उसके मुकुट का अगला भाग हिल रहा था। पर्वत के समान विशाल काय राक्षस राज अपनी दोनों भुजाओं से उसी प्रकार शोभा पा रहा था मानों दो शिखरों से मंदराचल सुशोभित हो रहा है। उसी समय उसने क्रोध से लाल आँखें करके सीता की ओर देखा और फुफकारते हुए सर्प के समान बोला- जैसे सूर्य अंधेरे का नाश करते हैं वैसे आज में तेरा नाश करूँगा। फिर उसने भयंकर दिखलायी पड़ने वाली एकाक्षी, एक कर्णा अपादिका आदि राक्षसियों को बुलाकर कहा- निशाचरियों तुम सब मिलकर अथवा अलग-अलग ऐसा उपाय करो कि सीता मेरे वश में आ जाये। फिर वह सीता की ओर देखकर गर्जना करने लगा। इसी समय राक्षसियों की स्वामिनी मन्दोदरी तथा धान्यमालिनी नामक राक्षस कन्या शीघ्र रावण के पास आकर बोलीं- राक्षस राज! आप मेरे साथ क्रीड़ा करें। इस दीन हीन मानवी कन्या से आपका क्या प्रयोजन! यह सुनकर रावण जोर-जोर से हँसता हुआ अपने महल में चला गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में बाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेईसवाँ सर्ग

राक्षसियों का सीता को समझाना।

तत्पश्चात् रावण राक्षसियों को उन्हें वश में करने का आदेश देकर वहाँ से चला गया। अब रावण के चले जाने के बाद वे भयानक राक्षसियाँ सीता के पास दौड़ती हुई आयीं और कठोर वाणी में कहने लगीं। सीते तुम पुलस्त्य वंशज रावण की भार्या होना पसंद क्यों नहीं करती? फिर एकजटा नामक राक्षसी बोली- पुलस्त्य जी चौथे प्रजापति हैं। उन्हीं के मानस पुत्र विश्रवा हैं। वे भी प्रजापति के समान हैं। राक्षसराज रावण उन्हीं का पुत्र है अतः तुम्हें इनकी भार्या हो जाना चाहिए। तत्पश्चात् हरिजटा नामक राक्षसी बोली- अरी! जिसने देवताओं के राजा इन्द्र को परास्त कर दिया। तू उसकी भार्या क्यों नहीं बन जाती। वे समस्त रमणियों से भरे हुएअन्तःपुरको छोड़कर तेरे पास पधारेंगे। तदनन्तर विकटा नामक राक्षसी बोली- जिन भयानक पराक्रमी राक्षस राज ने नागों, राक्षसों और दानवों को भी समर में बार-बार परास्त किया है वे ही तुम्हारे पास पधारे थे। तुम्हें उनकी भार्या बनने की इच्छा क्यों नहीं होती? फिर दुर्मुखी बोली- जिनके वश में सूर्य और वायु भी रहते हैं तू उनके पास क्यों नहीं रहती। देवि! मैंने तुमसे उत्तम और हित की बात कही है तू शीघ्र मेरी बात मान ले अन्यथा तुझे प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

राक्षसियों का धमकाना

तदनन्तर उन राक्षसियों ने सीता से कठोर वचन कहने आरंभ किये। सीते! तुम मानुषी हो इसलिए मनुष्य का जो पद है उसी को तुम अधिक महत्व देती हो। लेकिन अब तुम राम से मन हटा लोअन्यथा जीवित नहीं रह सकती। तुम त्रिलोकी के ऐश्वर्य भोगने वाले रावण की भार्या बनकर आनन्द पूर्वक विहार करो क्योंकि राम इस समय राज्य भ्रष्ट हो चुके हैं। राक्षसियों की बात सुनकर सीता ने कहा- तुम सब मिलकर मुझसे जो यह लोक विरुद्ध प्रस्ताव कररहीहो वह पापपूर्ण वचन मेरे हृदय में एक पल के लिए भी नहीं

ठहर पाता। एक मानव कन्या राक्षस की पत्नी कदापि नहीं बन सकती। भले ही तुम लोग मुझे खा जाओ। मेरे पति राज्य से हीन हैं फिर भी मैं उन्हीं के प्रति अनुराग रखती हूँ जैसे सुवर्चला सूर्य के प्रति स्नेह रखती है। जैसे शची इन्द्र से, अरुन्धती वशिष्ठ से, रोहिणी चन्द्रमा से, लोपा मुद्रा अगस्त्य से, दमयन्ती नल से अनुरक्त हैं वैसे ही मैं राम में अनुरक्त हूँ। अब सीता की बात सुनकर राक्षसियों के क्रोध की सीमा न रही। वे रावण की आज्ञानुसार कठोर वचनों से उन्हें डराने धमकाने लगीं। इधर अशोक वृक्ष में छिपे हुए हनुमानजी उन सबकी बातें सुनते रहे। इसी समय सब राक्षसियाँ सीता पर फर्शे आदि लेकर दौड़ पड़ीं और चिल्लाने लगीं। यह राक्षस राज रावण को पति के रूप में पाने योग्य है नहीं। तब सीता अपने आँसू पोंछती हुई उसी अशोक वृक्ष के नीचे चली आयीं जिस पर हनुमान जी छिपे थे। तब उन राक्षसियों ने उन्हें वहाँ आकर भी घेर लिया। वहाँ भयानक राक्षसियों ने सीता को फिर धमकाना आरम्भ किया। तदनन्तर विनता नामक राक्षसी आगे बढ़कर बोली- मिथिलेश कुमारी! मैं तुमसे संतुष्ट हूँ क्योंकि तुमने शिष्टाचार का अच्छी तरह पालन किया है। अब मैं तुम्हारे हित के लिए कहना चाहती हूँ कि तुम महाराज रावण को अपने पति के रूप में स्वीकार कर लो। वे इन्द्र के समान ही पराक्रमी और बलवान् हैं। श्रीराम तो दीन और असहाय हैं। उनकी आयु भी समाप्त हो चली है। उनसे तुम्हें क्या मिलने वाला। यदि तुम यह बात नहीं मानती तो राक्षस तुम्हें अपना आहार बना लेंगे। तब विकटा नाम की राक्षसी सामने आयी और सीता को मुक्का दिखाती हुई बोली- सीते! अब तक हम लोगों ने तुम्हारी बहुत-सी अनुचित बात दयावश मान ली हैं। पर तुम हमारी बात नहीं मानती। देखो, तुम्हें समुद्र पार से लाया गया है और रावण के अन्तःपुर में रखा गया है। यहाँ कितनी ही भयानक राक्षसियाँ तुम्हारी चौकसी कर रही हैं। यहाँ इन्द्र भी तुम्हारी रक्षा के लिए नहीं आ सकते। अतः मैं तुम्हारे हित की बात कह रही हूँ कि तुम व्यर्थ का शोक त्यागकर रावण के साथ क्रीड़ा विहार करो क्योंकि नारियों का यौवन टिकनेवाला नहीं होता। देवि! रावण की बात मान लेने पर यह सहस्त्रों स्त्रियाँ तुम्हारी आज्ञा के अधीन रहेंगी। यदि तुम हमारी बात नहीं मानती तो मैं तुम्हारा कलेजा निकालकर खा जाऊँगी। इसके बाद चन्डोदरी नामक राक्षसी बोली- जब महाराज रावण इसे हर कर

लाये उस समय यह भय से थर-थर काँप रही थी उसी दिन मुझे इसको खाने की इच्छा हुई थी और इस समय भी वही इच्छा मेरे मन में जागृत हो रही है।

तदनन्तर प्रघसा नामक राक्षसी आगे बढ़कर बोली- फिर तो हमें चाहिए कि हम इसका गला घोंटकर इसे मार दें और फिर इसका माँस खा डालें। उसी समय राक्षसी अजामुखी बोल उठी- मुझे व्यर्थ का वाद-विवाद अच्छा नहीं लगता। आओ पहले हम इसके टुकड़े-टुकड़े करके आपस में खा लें। फिर सूर्पणखा नामक राक्षसी बोली- अजामुखी की बात मुझे भी पसन्द है। अब उन विकराल राक्षसियों की बात सुनकर सीता अधीर होकर फूट-फूट कर रोने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पच्चीसवाँ सर्ग

शोक संतप्त सीता का विलाप

जब वे राक्षसियाँ इस प्रकार की कठोर बातें कर रही थीं उस समय सीता अधीर होकर रोती हुई बोली- राक्षसियों! मैं राक्षस की भार्या नहीं हो सकती। तुम लोग चाहो मुझे खा जाओ परन्तु मैं तुम्हारी बात नहीं मानूँगी। तत्पश्चात् अपने शरीर को आसुओं से नहलाती हुई वे अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं और लम्बी-लम्बी साँस लेती हुई विलाप करने लगीं। हा राम! हा लक्ष्मण! हा मेरी सासु कौसल्ये! हा आर्ये सुमित्रा, हाय पंडितों ने यह लोकोक्ति ठीक ही कही है कि किसी भी स्त्री या पुरुष की मृत्यु बिना समय आये नहीं होती। तभी तो मैं श्रीराम के दर्शन से वंचित होकर इन क्रूर राक्षसियों के हाथ यहाँ पड़ी हूँ। पूर्व जन्म में मेरा पुण्य थोड़ा ही रहा होगा इसलिए मैं यहाँ इस दशा में पड़ी हुई अनाथ की भाँति मारी जाऊँगी। मुझे पतिदेव के दर्शन नहीं हो रहे हैं। किन्तु वे लोग धन्य हैं जिन्हें सत्यवादी मेरे पति के दर्शन हुआ करते हैं। यहाँ रहकर मैं पतिदेव को कदापि नहीं पा सकती। ऐसे परतंत्रतामय जीवन को धिक्कार है जहाँ मैं इच्छानुसार अपने प्राण भी नहीं दे सकती।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

सीता का करुण विलाप और प्राण त्यागने का निश्चय

जनक नन्दिनी सीता के मुख पर आँसुओं की धारा बह रही थी। वे शोक के मारे धरती पर लोटती हुई बछेड़ी के समान पड़ी-पड़ी छटपटा रही थीं। उसी अवस्था में उन्होंने फिर विलाप करना आरम्भ किया- हाय! जब मारीच ने अपना कपट रूप धारण कर श्रीराम को दूर हटा लिया तभी रावण मुझे बलपूर्वक यहाँ उठा ले आया। अतः मैं यहाँ राक्षसियों के इन धमकियों को सुनती हुई पीड़ित हो रही हूँ। अवश्य ही मेरा यह हृदय लोहे का बना हुआ है। अथवा अजर अमर है, जो इस महान् दुख में भी पड़कर नहीं फटता। उस लोक निंदित रावण को मैं बाँये पैर से भी नहीं छू सकती। फिर उसे चाहने की बात ही क्या? वह राक्षस क्रूर स्वभाव के कारण न तो मेरे बातों पर ध्यान देता है और न अपनी प्रतिष्ठा पर विचार करता है। राक्षसियों अब बकवास करना व्यर्थ है। तुम लोग चाहे मेरे टुकड़े-टुकड़े कर दो, पर मैं रावण के पास फटक नहीं सकती। श्रीराम के दयालु होने के बावजूद लगता है वे मेरे प्रति निर्दयी हो गये हैं अन्यथा इतने पराक्रमी होने के बाद भी वे मेरे पास क्यों नहीं आते जिन्होंने चौदह हजार राक्षसों को मारकर बिराध को भी काल के मुख में डाल दिया था वे रावण को मारने क्यों नहीं आते। वह कौन सा कारण हो सकता है जिससे बंधकर श्रीराम अपनी प्यारी पत्नी को मुक्त कराने नहीं आ रहे हैं। ऐसा लगता है श्रीराम को मेरे यहाँ रहने का पता ही नहीं। मेरे हरे जाने की सूचना उन्हें गृध्र राज जटायु दे सकते थे। यदि श्रीराम को इसका पता लग भर जाता तो वे इस संसार को राक्षसों से शून्य कर देते। रावण का नाम और उसका यश दोनों ही नाश हो जाता। अपने पतियों के संहार हो जाने पर यहाँ की राक्षसियाँ उसी प्रकार क्रन्दन करेंगी जैसे आज मैं रो रही हूँ। अब थोड़े ही समय में यह लंका श्मशान भूमि के समान हो जायेगी और तब मेरा मनोरथ भी पूर्ण होगा। लंका में जो अशुभ लक्षण दिखलाई पड़ रहे हैं इससे लगता है कि अब शीघ्र ही इसकी चमक दमक नष्ट हो जायेगी। रावण के मरने पर यह निश्चय ही विधवा सती की भाँति श्रीहीन होगी। तब मैं घर-घर से आती हुई राक्षस कन्याओं की क्रन्दन ध्वनि सुनूँगी। श्रीराम के बाणों से जलकर यहाँ के राक्षस काल के गाल में समा जायेंगे। यह पापाचारी राक्षस इस समय यह

नहीं जानता कि इसे क्या करना है और क्या नहीं ? माँस भक्षी राक्षस धर्म को बिल्कुल नहीं जानते। ये राक्षस अवश्य ही मेरे शरीर के टुकड़े करवा डालेंगे। उस समय मुझ असहाय अबला को पति के चरणस्पर्श के बिना ही यम देवता का दर्शन करना पड़ेगा। श्रीराम को शायद यह नहीं मालूम कि मैं जीवित हूँ अन्यथा वे मेरी खोज अवश्य करते। मुझे लगता है वे शोक से पीड़ित होकर अथवा शरीर त्याग कर अवश्य देव लोक को चले गये हैं। वे ऋषि, देवता, गंधर्व धन्य हैं जो श्रीराम का दर्शन पा रहे हैं। हो सकता है अब उन्हें अपनी भार्या से कोई प्रयोजन ही न हो। इसलिए शायद आँखों से ओझल होने के कारण वे मुझे भूल गये हैं। ऐसी दशा में जीवित रहने की अपेक्षा मेरे लिए मर जाना ही श्रेयस्कर है। लगता है अब वे दोनों वनवासी वीर अस्त्र शस्त्रों को त्याग कर अहिंसा का ब्रत ले चुके हों। कहीं रावण ने ही छलकर उन्हें मरवा तो नहीं डाला। किन्तु यह सब होते हुए भी अभी मेरी मृत्यु नहीं लिखी है। सत्य स्वरूप परमात्मा को ही अपना आत्मा समझने वाले महर्षि गण धन्य हैं जो प्रिय और अप्रिय दोनों से परे हैं। उन्हें मेरा नमस्कार है। मैं अपने प्रियतम श्रीराम से बिछुड़कर रावण के चंगुल में आ फँसी हूँ। अतः अब मैं इन प्राणों का परित्याग कर दूँगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२६)

सत्ताइसवाँ सर्ग

त्रिजटा का स्वप्न

सीता की ऐसी भयंकर बात सुनकर सभी राक्षसियाँ क्रोध सेअचेत हो गयीं। तत्पश्चात् वे भी सीता के निकट आकर इस प्रकार कहने लगीं- सीते ! तेरे इस विचार के कारण आज इसी समय वे राक्षसियाँ मौज के साथ तेरा माँस खायेंगी। तब सीता को इस प्रकार डरायी जाती देख त्रिजटा, जो तत्काल सोकर उठी थी उन सबसे कहने लगी- नीच निशाचरियों ! तुम लोग अपने आपको ही खा जाओ। लेकिन सीता को नहीं खा सकोगी। आज ही मैंने एक भयंकर सपना देखा है जो राक्षसों के विनाश की सूचना दे रहा है। आज स्वयं मैंने आकाश में चलने वाली एक दिव्य शिविका देखी है। वह

हाथी दाँतों का बना है और उसमें एक हजार घोड़े जुते हैं। श्रीराम जी लक्ष्मण के साथ उसी शिविका पर यहाँ आये हैं। साथ ही सीता को मैंने श्वेत वस्त्र धारण किये हुए एक पर्वत शिखर पर बैठी हुई देखा है। फिर मैंने श्रीरघुनाथजी को चार दाँत वाला विशाल गजराज पर लक्ष्मण के साथ बैठे हुए देखा। दोनों भाई जानकी जी के पास आये। उस समय जानकीजी भी हाथी के कंधे पर आ गयी हैं। यहाँ मैंने देखा सीता अपने हाथों से सूर्य और चन्द्रमा को पोछ रही हैं। फिर वह गजराज उन सबको लिए हुए लंका के ऊपर आ खड़ा हुआ। तत्पश्चात् श्रीराम श्वेत पुष्पों की माला पहने पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के माथ यहाँ पधारे हैं। फिर दूसरी जगह मैंने देखा कि वे लक्ष्मण और सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर उत्तर दिशा को गये हैं। मैंने स्वयं रावण को मूड़ मुड़ाये, तेल में नहाकर, लाल कपड़े पहने हुए देखा। उसी वेश भूषा में रावण पुष्पक विमान से पृथ्वी पर गिर पड़ा है। तदनन्तर एक स्त्री उस मुंडित मस्तक रावण को कहीं खींचे लिए जा रही है। उसकी दशा उस समय एक पागल के समान दिखाई दी। वह तैर भी रहा था और कभी हँसता था कभी रोता था। इसके उपरान्त मैंने देखा कि रावण मूढ़ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके बाद घबराया हुआ-सा उठ खड़ा हुआ और उस समय दुर्वचन बकता हुआ मूत्र और मलरूपी नरक में घुसकर डूब गया। इसके बाद मैंने यही दुर्दशा रावण के समस्त पुत्रों की देखी। तत्पश्चात् मैंने देखा कि रावण सुअर पर इन्द्रजित् सूंस पर और कुंभकरण ऊँट पर सवार होकर दक्षिण दिशा को गये हैं। राक्षसों में एकमात्र विभीषण ही ऐसे हैं जो श्वेत वस्त्र धारण किये हुए चार मंत्रियों सहित छत्र लगाकर आकाश में उड़ रहे हैं। इसके बाद मुझे यह भी दिखायी दिया कि समस्त राक्षसों का एक उत्सव हुआ है जिसमें गाना बजाना, रास रंग हो रहा है। इसके बाद सारी लंका धन-धान्य सहित इस समुद्र में लोप हो गयी है। इसके समस्त तोरण टूटकर भूमि पर आ गिरे हैं। यह देखकर समस्त राक्षसियाँ मतवाली होकर हँसने लगी हैं। इससे यह लगता है कि श्रीराम चन्द्र को सीता अवश्य मिलेंगी। यह भी निश्चय समझ लो कि श्रीरामचन्द्र राक्षसों सहित तुम लोगों का बध भी अवश्य कर देंगे। वे पराक्रमी श्रीराम अपने पत्नी का तिरस्कार होते हुए नहीं देख सकेंगे। इसलिए तुम लोग सीता से कठोर वचन न बोलकर उनके पास से हट जाओ

तथा सीता को प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रार्थना करो। यदि तुम उनसे नम्रतापूर्वक बोलोगी तो वे भी प्रसन्न हो उठेंगी। यह निश्चय समझ लो कि सीता के कष्टों का अन्त होकर उनका कल्याण ही होना है। उनका कष्ट तो एक छाया मात्र है जो कुछ समय बाद विलग हो जायेगा। यह भी निश्चय समझ लो कि सीता के दुखों का अंत होकर रावण का विनाश होगा। फिर श्रीराम चन्द्र की विजय शीघ्र होगी और सीता का मनोरथ पूरा होगा। मैंने अपने स्वप्न में यह भी देखा है कि सीता के कुशल के लिए उनका बाँया नेत्र फड़क रहा है। उनकी बाँयीं भुजा कम्पायमान हो रही है और उनकी दायीं जाँघ भी फड़क रही है। मुझे यह देखकर पूर्ण विश्वास होने लगा है कि यह सपना सच होगा। त्रिजटा की यह बात सुनकर लजीली सीता उन सब से बोली- यदि तुम्हारी बात ठीक हुई तो मैं अवश्य ही तुम सब की रक्षा करूँगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२७)

अट्ठाइसवाँ सर्ग

सीता का प्राण त्यागने को उद्यत होना

पति के विरह में व्याकुल हुई सीता रावण के वचनों को यादकर उसी तरह भयभीत हो उठीं जैसे वन में सिंह के पंजों में फंसी हुई गजराज की कोई बच्ची। अब वे विलाप करती हुई बोली- वास्तव में बिना समय आये किसी की मृत्यु नहीं होती। तभी तो मैं भी ऐसी अवस्था में जीवित हूँ। मेरा हृदय भी बज्र के समान है जो ऐसी अवस्था में खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता। मैं बड़ी दुखिया हूँ। राजा के कारागार में कैद हुए और रात्रि के अन्त में फाँसी की सजा पाने वाले अपराधी चोर की जो दशा होती है वही मेरी भी है। हा राम! हा लक्ष्मण! हा सुमित्रे! हा कौसिल्ये! जिस प्रकार बवन्डर में पड़कर नौका महासागर में डूब जाती है ठीक उसी प्रकार आज मेरे प्राण संकट की दशा में पड़े हुए हैं। निश्चय ही उस कपट मृगने उन दोनों राजकुमारों को मार डाला होगा। अवश्य ही काल ने मृग का रूप धारण कर मुझे लुभाया था जिससे प्रभावित होकर मैंने श्रीराम और लक्ष्मण को उसके पीछे भेज दिया था। मेरी यह अनन्योपासना, क्षमा, भूमि शयन धर्म सम्बन्धी नियमों का पालन

कृतघ्ना के प्रति किये गये उपकार की भाँति निष्फल हो गये हैं। यह एक पत्नीव्रत भी किसी काम नहीं आया। हे श्रीराम! मैं तो समझती हूँ कि आप नियमानुसार पिता की आज्ञा का पालन करके अपने व्रत को पूर्ण करने के पश्चात् जब वन से लौटेंगे तब बहुत से सुन्दरियों के साथ विवाह करके उनके साथ रमण करेंगे किन्तु मैं तो केवल आप में ही अनुराग रखती हूँ। मैं अपने विनाश के लिए ही आपसे प्रेम करती हूँ। अब मुझे निश्चय ही अपने प्राणों का परित्याग करना होगा। मैं शीघ्र ही किसी तीखे शस्त्र अथवा विष से अपने प्राण त्याग दूँगी। परन्तु इस राक्षस के यहाँ मुझे कोई विष या शस्त्र देने वाला भी नहीं। तत्पश्चात् शोक से भरी हुई सीता ने बहुत देर तक इसी प्रकार विचार करके अपनी चोटी को पकड़कर निश्चय किया कि मैं शीघ्र ही इस चोटी से फाँसी लगाकर यमलोक जाऊँगी। इस प्रकार सीता जब अपने प्राण देने को उद्यत हुई तो उस समय उनके समक्ष ऐसे बहुत से श्रेष्ठ शकुन प्रकट हुए जो शोक की निवृत्ति करने वाले थे। उन श्रेष्ठ शकुनों का दर्शन और उनके शुभ फलों का अनुभव उन्हें पहले भी हो चुका था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

सीता जी को शुभ शकुन

इस प्रकार अशोक वृक्ष के नीचे आने पर बहुत से शुभ शकुन प्रकट होने लगे। उस समय सीता का विशाल बायाँ नेत्र उसी प्रकार फड़कने लगा जैसे मछली के आघात से लाल कमल हिलने लगता है। साथ ही तत्काल ही उनकी बाँयी भुजा भी फड़कने लगी। तत्पश्चात् उनकी बाँयी जांघ भी फड़ककर बार-बार इस बात का संकेत करने लगे कि भगवान् श्रीराम तुम्हारे सामने ही खड़े हैं इसके साथ ही उनका मलिन पीताम्बर तनिक-सा खिसक गया और भावी शुभ की सूचना देने लगा। इसके अतिरिक्त दूसरे शुभ शकुनों को देखकर सीता उसी प्रकार खिल उठी जैसे नष्ट हुआ बीज फिर वर्षा का जल पाकर खिल उठे। उस समय उनका मुख उसी प्रकार दमकने लगा जैसे राहू के ग्रास से मुक्त हुए चन्द्रमा का। उनका सारा शोक उस समय जाता रहा और

उनका मुख अभूत शोभा पाने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

सीताजी से वार्तालाप करने के लिए हनुमानजी का विचार करना

उस समय हनुमानजी ने भी सारे प्रसंग ठीक-ठीक सुन लिए। सीताजी उस समय ऐसी दिखलायी पड़ती थीं मानों नंदनवन में कोई देवी हों। उन्हें देखकर हनुमानजी सोचने लगे- जिस सीता को हजारों लाखों वानर चारों ओर ढूँढ़ रहे हैं उन्हें मैंने पा लिया। मैंने रावण के प्रभाव और उसकी पुरी का भी निरीक्षण कर लिया है। इस समय सीताजी जो राम के दर्शन की अभिलाषा रखती हैं, सान्त्वना देना उचित है। इन्होंने पहले ऐसा दुख भी नहीं देखा है अतएव इन्हें आश्वासन देना आवश्यक है अन्यथा मेरे चले जाने पर यह अपनी जान भी दे सकती हैं। परन्तु राक्षसियों के सामने मेरा इनके साथ बातचीत करना उचित न होगा। अब इसका निश्चय करना मेरे लिए बड़ी कठिन बात है। यदि रात बीतते बीतते इन्हें सान्त्वना नहीं देता तो वे अपने प्राणों का त्याग कर देंगी फिर मैं श्रीराम को क्या उत्तर दूँगा। अच्छा होगा कि राक्षसियों के रहते हुए ही यहाँ बैठे-बैठे में इन्हें सान्त्वना दूँ। क्योंकि इनके मन में बहुत अधिक शोक है। इनके समझाने के लिए मैं उस सार्थक भाषा का प्रयोग करूँगा जो अयोध्या के आसपास की साधारण जनता बोंलती है। फिर यदि मैं सामने जाता हूँ तो सीता मेरे इस वानर शरीर को देखकर और मेरी मानवोचित भाषा सुनकर ये मुझे इच्छा रूप धारण करने वाला रावण समझकर जोर-जोर चीखने चिल्लाने लगेंगी। तब ये राक्षसियाँ मुझे पकड़ने दौड़ेंगी और वे भी बुरी तरह चीखने चिल्लाने लगेंगी। इस हलचल के कारण सभी राक्षस भी शस्त्र लिए यहाँ आ जायेंगे तब वे फुर्तीले राक्षस यदि मुझे घेर कर पकड़ लेंगे ऐसी दशा में सीताजी का मनोरथ भी पूरा नहीं हो पायेगा। यदि राक्षसों ने संग्राम में मुझे मार दिया या पकड़ लिया तो श्रीराम के इस कार्य को पूरा करने के लिए कोई दूसरा सहायक भी नहीं दिखाई पड़ता। वैसे तो मैं इच्छानुसार सहस्रों राक्षसों का बध कर सकता हूँ। किन्तु युद्ध में

फँस जाने के कारण मैं महासागर के उस पार नहीं जा सकूँगा। युद्ध में किसकी विजय होगी यह अनिश्चित रहता है। अतः इसे संशय रहित बनाना होगा। अविवेकी दूत के हाथ में पड़ने से बने बनाये कार्य भी निष्फल हो जाते हैं। अब मुझे इस कार्य के लिए कैसे सीता जी मेरी बातें सुन लें बहुत सोच विचार कर कार्य करना होगा। तब हनुमानजी ने निश्चय किया कि सीता को मीठी वाणी बोलकर श्रीराम के सारे संदेशों को इस प्रकार सुनाऊँगा कि सीताजी को उन बातों पर विश्वास हो जाये। इस प्रकार भाँति-भाँति से विचार करके अशोक वृक्ष की शाखाओं में छिपकर श्रीराम की पत्नी को देखते हुए वे मधुर एवं यथार्थ बात कहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३०)

इक्तीसवाँ सर्ग

हनुमाजी का श्रीराम कथा का वर्णन करना

तदनन्तर हनुमानजी बहुत सोच समझकर बोले- इक्ष्वाकु वंश के राजा **दशरथ** नामक एक बहुत बड़े राजा हो गये हैं। वे बहुत ही महान् और यशस्वी थे। उनके मन में अहिंसा धर्म के प्रति बड़ा अनुराग था। चारों समुद्र जिसकी सीमा है उस सम्पूर्ण भूमण्डल में उनकी बड़ी ख्याति थी। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम नाम से प्रसिद्ध थे। वे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ तथा समस्त जीव जगत के रक्षक थे। वे अपने बूढ़े पिता की आज्ञा मानकर अपनी पत्नी और अपने भाई के साथ वन में चले आये। उन्होंने इच्छानुसार रूप धारण करने वाले बहुत से शूरवीर राक्षसों का बध कर डाला। उनके बध का समाचार सुनकर रावण ने उनकी भार्या सीता का अपहरण कर लिया। भगवान् श्रीराम परम साध्वी सीता देवी की खोज करते हुए मतंग वन में आकर सुग्रीव नामक वानर से मिले और उनके साथ उन्होंने मैत्री कर ली। तदनन्तर वानर राज सुग्रीव की आज्ञानुसार हजारों वानर सीता देवी का पता लगाने के लिए सम्पूर्ण दिशाओं में निकले हैं। उन्हीं में से एक मैं हूँ और सम्पाति के कहने से समुद्र को वेगपूर्वक लाँघकर यहाँ आया हूँ। मैंने रघुनाथजी के मुख से जानकी जी का जैसा रूप, जैसा रंग, जैसे लक्षण सुने थे उनके अनुरूप ही इन्हें पाया।

इतना कहकर हनुमानजी चुप हो गये। उनकी बातें सुनकर जनकनन्दिनी सीता को बड़ा विस्मय हुआ। तब उन्होंने मुँह ऊपर करके अशोक वृक्ष की ओर देखा और श्रीराम का स्मरण करते हुए समस्त दिशाओं में दृष्टि दौड़ाने लगीं। तब उन्होंने पवनपुत्र हनुमान को उदयाचल पर विराजमान सूर्य के समान देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में इक्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

सीताजी का तर्क वितर्क

तब सीता की दृष्टि पिंगलवर्ण वाले हनुमान जी पर पड़ी। उन्होंने देखा कि एक विनीत और प्रियवादी वानर डालियों के बीच बैठा है। उसके नेत्र सुवर्ण की तरह चमक रहे हैं। हनुमानजी को देखकर सीता सोचने लगीं- अहा, यह वानर तो भयंकर दिखलायी पड़ता है। इसकी ओर तो आँख उठाकर देखने का साहस तक नहीं होता। ऐसा सोचकर वे पुनः मूर्छित हो गयीं। तत्पश्चात् वे मन्द स्वरों में रो उठीं। इसी बीच उन्होंने देखा कि वह वानर विनय के साथ निकट आ बैठा। अब उसे देखकर सीता सोचने लगीं- लगता है यह स्वप्न है और स्वप्न में वानर को देखना निषिद्ध है। मेरी भगवान् से प्रार्थना हैं कि इसका बुरा प्रभाव श्रीराम, लक्ष्मण तथा मेरे पिता पर न पड़े। मेरा हृदय सदैव रघुनाथ में ही लगा रहता है। उन्हीं को देखती हूँ और उन्हीं की कथा सुनना चाहती हूँ। सम्भव है कि यह मेरे मनकी ही कोई भावना है। लेकिन इस वानर की हाव भाव देखकर तो स्पष्ट लगता है कि यह मुझसे बात-चीत करना चाहता है। मैं समस्त देवताओं को प्रणाम करती हूँ। इस समय इस वनवासी वानर ने जो कुछ कहा है वह सत्य हो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

सीताजी का हनुमानजी को अपहरण का वृत्तान्त सुनाना

तदनन्तर हनुमानजी ने अशोक वृक्ष से उतर कर सीताजी से मधुरवाणी

में कहा- देवि! आप कौन हैं और इस वृक्ष का सहारा लिए क्यों खड़ी हैं? आपकी आँखों से शोक के आँसू क्यों गिर रहे हैं। आप देवता, असुर, नाग, किन्नर, मरुद्गण आदि में किसकी पत्नी हैं? आप वसिष्ठ जी की पत्नी अरुंधती तो नहीं हैं? आपका पुत्र, पिता, भाई अथवा पति परलोक वासी तो नहीं हो गये हैं? जिनका शोक आपको सता रहा हो। आप बार-बार किसी राजा का नाम ले रही हैं। उसे सुनकर लगता है कि आप राजा की पत्नी अथवा कन्या हैं। रावण जिस सीता को बलपूर्वक हरकर लाया है यदि आप वही हैं तो आपका कल्याण हो। आपका अलौकिक रूप देखकर लगता है कि आप श्रीरामचन्द्र की महारानी हैं। हनुमानजी के मुख से श्रीराम जी की चर्चा होते देख सीता अत्यंत प्रसन्न हो उठीं और पवन कुमार से इस प्रकार बोलीं- कपिवर! भूमण्डल में श्रेष्ठ नृपति महाराज दशरथ की मैं पुत्रवधू हूँ। विदेहराज राजा जनक की पुत्री और परम बुद्धिमान श्रीराम की पत्नी हूँ। मेरे विवाह के तेरहवें वर्ष में महाराज दशरथ ने श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारी कर ही रहे थे कि उनकी कैकेयी नाम की भार्या उनसे बोली- यदि राम का राज्याभिषेक हुआ तो यही मेरे जीवन का अन्त होगा। महाराज आपने मुझे जो वर देने को कहे थे उनमें से एक के बदले मेरे पुत्र भरत को राजगद्दी और दूसरे के बदले ज्येष्ठपुत्र श्रीराम को चौदह वर्षों का वनवास दिया जाये। श्रीराम के लिए पिता के वचन राज्याभिषेक से भी बढ़कर थे। अतः उन्होंने मन तथा वाणी दोनों से उसे स्वीकार कर लिया और तत्काल अपने उत्तरीय वस्त्रों को उतार दिये। तत्पश्चात् उन्हें वन की ओर जाते देख मैं उनके पहले ही वन की ओर चल पड़ी। फिर उनके भाई लक्ष्मण ने भी उनका अनुसरण करने के लिए कुश तथा चीर के वस्त्र धारण कर लिए। इस प्रकार हम लोगों ने महाराज दशरथ की आज्ञा पालने हेतु वन में प्रवेश किया। फिर यहाँ दण्डक वन में श्रीराम की भार्या मुझ सीता को दुरात्मा रावण हर ले आया। उसने मेरे जीवन धारण करने की अवधि दो मास की निश्चित कर दी है। उन दो महीनों के बाद मुझे अपने प्राणों को त्याग देना होगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३३)

चौंतीसवाँ सर्ग

सीताजी का हनुमान के प्रति संदेह

तदनन्तर सीता के वचन सुनकर हनुमानजी ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा- देवि! मैं श्रीराम का दूत हूँ। श्रीरामचन्द्रजी सकुशल हैं और उन्होंने आपका कुशल समाचार पूछा है तथा लक्ष्मण ने आपके चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम कहलाया है। तब सीता के अंगों में रोमांच हो आया और वे बोलीं - यह कहावत सच है कि मनुष्य यदि जीवित रहे तो उसे सौ वर्ष बाद भी आनन्द प्राप्त होता है। उस समय हनुमानजी सीता के और निकट चले गये। इस पर सीता को संदेह होने लगा कि कहीं रूप बदल कर यह रावण तो नहीं आ गया है। अब सीता सच बात कह देने से अपने को धिक्कारती हुई शोक कातर हो वहीं जमीन पर बैठ गयीं और भयभीत होने के कारण हनुमान के प्रणाम का उत्तर भी न दे सकीं। किन्तु वानर को बार-बार वन्दना करते देख वे बोलीं- यदि तुम वास्तव में रावण हो तो यह तुम्हारे लिए अच्छी बात नहीं। किन्तु अगर तुम वास्तव में रामदूत हो तो तुम्हें देखकर मेरे मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। वानर! मुझे रामकी चर्चा बहुत प्रिय है। मेरा आज का दिन बहुत सुखद है क्योंकि इस समय मैं राम के दूत को सामने देख रही हूँ। सीता के इन वचनों को सुनकर हनुमान उनकी प्रसन्नता बढ़ाते हुए बाले- भगवान् श्रीराम सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान लोककमनीय हैं। वे विष्णु के समान पराक्रमी तथा बृहस्पति के समान सत्यवादी हैं। रूपवान तो इतने हैं मानों प्रत्यक्ष कामदेव हों। सम्पूर्ण विश्व उन्हीं की छत्रछाया में विश्राम करता है। आपके अपहरण करने वाले को उसका बुरा फल शीघ्र ही मिलने वाला है। वे समरांगण में शीघ्र ही रावण का बध करेंगे। वे इस समय शोक से पीड़ित हैं इसलिए आपकी कुशल पूछी है। उनका सखा सुग्रीव ने भी आपकी कुशलता के बारे में पूछा है। यह आपका सौभाग्य है कि आप श्रीराम का दर्शन शीघ्र करेंगी। मैं उन्हीं का दूत हनुमान नामक वानर हूँ। देवि! आप मुझे जो समझ रही हैं वह मैं नहीं हूँ। आप अपना संदेह छोड़कर मुझ पर विश्वास करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

पैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का श्रीराम के शारीरिक चिह्नों और गुणों का वर्णन कर सीता को विश्वास दिलाना

तब हनुमान जी के वचन सुनकर सीता मधुरवाणी में बोलीं- कपिवर! तुम्हारा श्रीराम और लक्ष्मण से सम्बंध कैसे हुआ? मनुष्यों और वानरों का मेल कैसे सम्भव हो सका। मेरे सामने श्रीराम और लक्ष्मण के चिह्नों का फिर से वर्णन करो जिससे मेरा शोक दूर हो सके। सीता के इस प्रकार पूछने पर हनुमानजी बोले- विदेहराजकुमारी! श्रीराम और लक्ष्मण के जिन-जिन चिह्नों को मैंने लक्ष्य किया है उसे बता रहा हूँ। देवि! श्रीराम का मुख खिले कमल के समान सुन्दर और पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मनोहर है। वे जन्म से ही उदार हैं तथा उनका यश इन्द्र के समान है। वे सदा शत्रुओं को संताप देने वाले तथा अपने धर्म और सदाचार की रक्षा करने वाले हैं। वे सभी वर्णों के रक्षक तथा परम प्रकाश स्वरूप हैं। वे राजनीति में पूर्ण शिक्षित ब्राह्मणों के उपासक तथा शीलवान और विनम्र हैं। उनके कंधे मोटे भुजायें बड़ी-बड़ी तथा गला शंख के समान है। गले की हंसली माँस से ढँकी हुई है तथा नेत्रों में लालिमा है। वे श्रीराम के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनका स्वर दुन्दुभि के समान है तथा उनकी कान्ति श्याम है। उनके वक्षः स्थल, कलाई और मुट्ठ सुदृढ़ हैं। नेत्रों के कोने तरल तथा हाथ पैर के तलवे लाल हैं। उनके उदर तथा गले में तीन रेखायें हैं। उनके होठ, ठोढ़ी और नासिका सभी प्रशस्त हैं। केश, नेत्र, दाँत, त्वचा और पैर के तलवे इन पाँचों अंगों में स्निग्धता भरी है। उनके नेत्र, मुख मंडल, जिह्वा, होठ, तालु, हृदयस्थल, नख, हाथ और पैर कमल के समान हैं। पार्श्व भाग, उदर, वक्षःस्थल, नासिका, कंधे और ललाट ये छः अंग ऊँचे हैं। वे प्रजा पर अनुग्रह करने वाले, देश काल में विभाग को समझने वाले तथा सब लोगों से प्रिय वचन बोलने वाले हैं। उनके सौतेले भाई सुमित्राकुमार लक्ष्मण भी बड़े तेजस्वी हैं। उनके शरीर की कान्ति सुवर्ण के समान गौर हैं। सद्गुणों की दृष्टि से वे भी श्रीरामचन्द्र के समान हैं। उन दोनों भाइयों ने आपको ढूँढ़ते हुए वानरराज सुग्रीव से साक्षात्कार किया। उन दिनों अपने भाई के डर से सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वत पर रहा करता था। इसने श्रीराम और लक्ष्मण को वल्कल वस्त्र धारण कर हाथ में धनुष बाण लिए हुए आते देखा तो

वह भय से घबरा उठा। तब उन दोनों भाइयों का परिचय जानने के लिए सुग्रीव ने मुझको ही उनके पास भेजा। तब उन दोनों को मुझसे यथार्थ बात जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर महात्मा सुग्रीव और श्रीराम में गहरी मित्रता हो गयी। तब श्रीराम ने स्त्री के लिए अपने महातेजस्वी भाई बाली द्वारा घर से निकाले गये सुग्रीव को सान्त्वना दी। उसके बद ही आपके शरीर पर शोभा पाने वाले उन आभूषणों को लेकर सुग्रीव ने बड़ी प्रसन्नता के साथ श्रीरामचन्द्र जी को दिखलाया जिन्हें आपने उस समय पृथ्वी पर गिराया था जबकि राक्षस आपको हरकर लिए जा रहा था। आपके द्वारा गिराये जाने पर ये आभूषण झन-झन की आवाज के साथ जमीन पर गिरे और बिखर गये। जब श्रीराम ने इसे देखा तो वे इन्हें गोद में लेकर अचेत हो गये। फिर बार-बार रोते हुए तिलमिला उठते थे। तब उन्होंने वे सारे आभूषण सुग्रीव को दे दिये। देवि! अब आपको न देख सकने का शोक श्रीराम को बारम्बार संतप्त कर रहा है। जनकनन्दिनी भगवान् श्रीराम रावण को उसके मित्र और बन्धु बान्धवों सहित मारकर शीघ्र ही आपसे मिलेंगे। सुग्रीव ने उनसे आपकी खोज कराने का वचन दिया है। तत्पश्चात् श्रीराम ने भी मित्रता निभाने के लिए किष्किंधा में जाकर वानरराज बाली को युद्ध में मार गिराया। देवि! मैं उन्हीं दोनों का दूत बनकर यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान समझें। सुग्रीव की आज्ञा से भयभीत होकर हम तथा अन्य वानर आपकी खोज में निकले हैं। किन्तु इसी बीच पर्वत श्रेष्ठ विन्ध्य में आकर खो जाने के कारण हमारे वहाँ बहुंत दिन बीत गये। तत्पश्चात् निश्चित अवधि बीत जाने पर भी जब हमारे कार्यसिद्धि की कोई आशा न रही तो हम सब लोग अपने प्राण त्यागने के लिए उद्यत हो गये। विदेह नन्दिनी! आपका पता न लगने, वानरराज बाली के मारे जाने तथा हम लोगों के मरणान्त उपवास करने और जटायु के मरने की बात पर विचार करके कुमार अंगद को बड़ा दुख हुआ। तत्पश्चात् हम लोग निराश होकर मरना ही चाहते थे कि वहाँ जटायु के बड़े भाई सम्पाति आ पहुँचे। हमारे मुख से अपने भाई की मृत्यु का समाचार सुनकर वे कुपित हो उठे और बोले- वानर शिरोमणियों! बताओ मेरे भाई जटायु का बध किसने किया? वह कहाँ मारा गया। यह सब वृतान्त मैं तुम लोगों से सुनना चाहता हूँ। तब अंगद ने रावण के हाथों जिस प्रकार जटायु

का बध हुआ था वह प्रसंग ज्यों का त्यों सुना दिया। उन्होंने ही हमें बताया कि आप रावण के घर मिल सकती हैं। सम्पाति का यह वचन सुनकर अंगद आदि सभी वानर समुद्र के किनारे आ पहुँचे। तब सामने विशाल समुद्र को देखकर हम लोग फिर चिंता में पड़ गये। यह समझकर मैं उनके तीव्र भय को दूर करता हुआ सौ योजन समुद्र को लाँघ कर यहाँ आ गया। यहाँ मैंने रावण को भी देखा और शोक से पीड़ित आपका भी दर्शन किया। मुझे आप वायु देवता का पुत्र हनुमान समझें। लक्ष्मण जी अपने भाई की सेवा में लगे रहकर प्रसन्न हैं। मैं सुग्रीव की आज्ञा से अकेला ही यहाँ आया हूँ और अकेले ही दक्षिण दिशा का अनुसंधान किया है। अब मैं सब वानर सैनिकों को आपके बारे में बताकर उनका संताप दूर करूँगा। मेरा समुद्र लँघन व्यर्थ नहीं गया। यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। देवि! कपिराज केसरी मेरे पिता हैं। उनकी स्त्री के गर्भ से वायुदेवता के द्वारा मेरा जन्म हुआ। मेरा नाम हनुमान है। अब यह निश्चित समझ लें कि श्रीराम आपको यहाँ से शीघ्र ले चलेंगे। तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण के शारीरिक चिह्नों द्वारा उन्होंने हनुमानजी को राम का दूत समझ लिया और उस समय उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। तब यह देखकर हनुमानजी ने प्रियदर्शनी सीता से कहा- देवि! आप धैर्य धारण करें और बताइये इस समय मैं और क्या सेवा करूँ। अब आज्ञा हो तो मैं लौट जाऊँ। आप मुझे वायु देवता के समान ही प्रभावशाली वानर समझें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

हनुमानजी का सीता को मुद्रिका देना

तदनन्तर हनुमानजी ने सीताजी से फिर कहा- देवि! यह श्रीराम के नाम से अंकित मुद्रिका लें। इसको मैं आपको विश्वास दिलाने के लिए लेता आया हूँ। उसे आप लेकर देख लें। तब पति के हाथ में सुशोभित करने वाली उस मुद्रिका को लेकर सीता बड़े ध्यान से देखने लगीं। उन्हें उस समय इतनी प्रसन्नता हुई मानों स्वयं पतिदेव ही उन्हें मिल गये हों। अब वे हनुमानजी की

प्रशंसा करती हुई बोलीं- वानर श्रेष्ठ ! तुम बड़े पराक्रमी हो। तुमने जन्तुओं से भरे सौ योजन विस्तार वाले इस समुद्र को लाँघ कर सचमुच प्रशंसा पाने योग्य काम किया है। अब मैं तुम्हें साधारण वानर न समझकर राम का भेजा हुआ दूत समझती हूँ और तुम्हें इस योग्य पाती हूँ कि तुमसे बातचीत की जाये। श्रीरामजी मेरे पास ऐसे किसी व्यक्ति को न भेजेंगे जिसके पराक्रम का उन्हें ज्ञान न हो। जिसकी उन्होंने परीक्षा न कर ली हो। यदि श्रीराम सकुशल हैं तो वे इस समुद्र से घिरी हुई पृथ्वी को राख क्यों नहीं कर देते। इसलिए मैं समझ सकती हूँ कि अभी मेरे दुखों का अन्त नहीं हुआ है। अच्छा अब यह बताओ कि उन्हें आगे जो कुछ करना है उसे वे करते हैं या नहीं। उनमें किसी प्रकार की दीनता या घबराहट तो नहीं है। क्या वे मित्रों के प्रति मित्र भाव रखकर साम और दाम रूप दो उपायों का अवलम्बन करते हैं या नहीं। क्या वे प्रयत्न पूर्वक मित्रों का संग्रह करते हैं या नहीं। क्या उन्होंने मित्रों का उपकार करके उन्हें अपने लिए कल्याणकारी बना लिया है। क्या वे अपने मित्रों से उपकृत होते हैं ? दुर्भाग्यवश जो मैं उनसे दूर हो गयी हूँ इसलिए वे मुझ पर स्नेहहीन तो नहीं हो गये हैं ? क्या दुःख पर दुःख उठाने के कारण वे अधिक शिथिल तो नहीं हो गये हैं ? क्या उन्हें माता कौशल्या, सुमित्रा तथा भरत का समाचार बराबर मिलता रहता है ? क्या भाई पर अनुराग रखनेनवाले भरत जी मेरे उद्धार के लिए मंत्रियों द्वारा सुरक्षित भयंकर अक्षौहिणी सेना भेजेंगे ? क्या वानरराज सुग्रीव अपने वानर सेना को साथ ले मुझे यहाँ से छुड़ाने के लिए आयेंगे ? क्या लक्ष्मण बाणों की वर्षा कर राक्षसों का संहार करेंगे ? क्या मैं श्रीराम के बाणों द्वारा रावण को मरा हुआ देख सकूँगी ? तब सीताजी के मधुर वचन सुनकर पवनकुमार उनसे इस प्रकार बोले- देवि ! कमलनयन भगवान् श्रीराम को यह पता भी नहीं है कि आप लंका में हैं। इसलिए आपको लेने अभी तक नहीं आये हैं। जब मैं यहाँ से लौटकर आपके बारे में बताऊँगा तभी वह वानर, भालुओं की सेना लेकर तुरन्त वहाँ से चल देंगे और सारी लंका को राक्षसों से विहीन कर देंगे। उस समय यदि उनके सामने मृत्यु, देवता, असुर भी विघ्न बनकर खड़े हो जायें तो वह सब का संहार कर डालेंगे। देवि ! इस समय मैं अपने जीविका के साधन फल मूल की सौगंध खाकर कहता हूँ कि आप शीघ्र श्रीराम का चन्द्रमा के समान नवोदित मुख

देखेंगी। श्री रघुनाथजी का चित्त सदैव आप में ही लगा रहता है। वे आपको छोड़कर कोई दूसरी बात सोचते ही नहीं। उन्हें आपकी चिंता के कारण कभी रात में नींद भी नहीं आती। सीता सीता इस मधुर वाणी का उच्चारण करते हुए वे जल्दी ही जाग उठते हैं। देवि! भगवान् श्रीराम आपके लिए सदा दुखी रहते हैं। वे आपकी ही रट लगाये हुए आपको पाने के प्रयत्नों में लगे हुए हैं। श्रीरामचन्द्रजी की चर्चा सुनकर सीता का अपना शोक तो दूर हो गया किन्तु श्रीराम के शोक की बात सुनकर वे पुनः उन्हीं के समान शोक में निमग्न हो गयीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम को शीघ्र बुलाने का आग्रह

तदनन्तर सीताजी ने कहा- वानर श्रेष्ठ! श्रीराम का चित्त दूसरी ओर नहीं जाता यह तुम्हारी बात मुझे विष मिश्रित अमृत के समान लगी। काल मनुष्य को इस तरह खींच लेता है मानों उसे रस्सी में बाँध रखा हो। उदाहरण के लिए श्रीराम को, मुझको और सुमित्रा कुमार लक्ष्मण को ही देख लो। हम लोग किस वियोग दुख से पीड़ित हो रहे हैं। अब मैं राक्षसों का बध, रावण का संहार तथा लंकापुरी का विध्वंस कब देख सकूँगी। अब निर्दयी रावण की दी हुई अवधि के अनुसार मेरे जीवन के दो मास ही शेष रह गये हैं। यद्यपि रावण के भाई विभीषण ने मुझे लौटाने के लिए बहुत अनुनय-विनय को पर रावण को मेरा लौटाया जाना जरा भी अच्छा नहीं लगता क्योंकि वह काल के अधीन हो रहा है और युद्ध में मौत उसे ढूँढ़ रही है। यह बात मुझे विभीषण की ज्येष्ठ पुत्री कला के द्वारा मालूम हुई थी। अविन्ध्य नामक एक श्रेष्ठ राक्षस ने भी रावण को यही बात समझायी किन्तु उस दुरात्मा ने उसकी बात भी नहीं मानी। मेरा अन्तराल शुद्ध है इसलिए मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे पति मुझसे आकर मिलेंगे। श्रीराम श्रेष्ठ पुरुष हैं इसलिए वह किसी संकटों से विचलित हो सकें यह असम्भव है। वे सूर्य के समान हैं। उनके बाण समूह ही उनकी किरणें हैं। वे राक्षस रूपी जल को शीघ्र ही सोख लेंगे। इतना कहते-कहते

उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। तब उन्हें शोक से पीड़ित देखकर हनुमानजी बोले- देवि! आप धैर्य रखें। मेरी बात सुनकर वे शीघ्र विशाल सेना लेकर यहाँ के लिए प्रस्थान कर देंगे। यदि आप चाहें तो मेरी पीठ पर बैठ जाइये मैं आपको लेकर समुद्र को लाँघ जाऊँगा। वे इस समय प्रस्त्रवण गिरि पर रह रहे हैं। मैं आज ही आपको उनके पास पहुँचा दूँगा। आप, श्रीराम और लक्ष्मण का दर्शन आज ही कर सकेंगी। हो शोभने! आप मेरे इस कथन की उपेक्षा न कीजिए। जब मैं आपको यहाँ से लेकर चलूँगा तो समूचे लंका निवासी मिलकर मेरा पीछा नहीं कर सकते। आप मेरा पराक्रम देखिए। हनुमानजी की यह बात सुनकर सीता के सारे शरीर में हर्ष और विस्मय के कारण रोमांच हो आया। उन्होंने हनुमानजी से कहा- हनुमान! तुम्हारे इस कथन को मैं वानरोचित चपलता ही समझती हूँ। तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है फिर तुम मुझे श्रीराम के पास कैसे ले चलोगे। हनुमानजी ने सीताजी की यह बात सुनकर अपना तिरस्कार माना। ऐसा विचार कर के हनुमानजी उस समय सीताजी को अपना स्वरूप दिखलाने के लिए वृक्ष के नीचे कूद पड़े और धीरे-धीरे अपने शरीर को बढ़ाने लगे। फिर बात की बात में उनका शरीर मेरू पर्वत के समान ऊँचा हो गया। तत्पश्चात् ताम्बे के समान लाल मुख तथा ब्रज के समान दाढ़ और मुखवाले भयानक वानर वीर हनुमान जी सीता जी से बोले- देवि! मुझमें रावण समेत इस समस्त लंकापुरी को उठा ले जाने की शक्ति है। आप मेरे साथ चलकर लक्ष्मण समेत श्रीराम रघुनाथ जी का दुःख दूर कीजिए। तब सीता ने उनसे कहा- महाकपे! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रम को समझती हूँ। लेकिन मेरा तुम्हारे साथ जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। तुम्हारा वायु के समान वेग मुझे मुर्छित कर सकता है। ऐसी दशा में मैं तुम्हारी पीठ से नीचे गिर सकती हूँ। और फिर समुद्र में रहने वाले जन्तुओं का आहार बन जाऊँगी। मुझे ले जाते समय रावण के पराक्रमी राक्षस तुम्हारा पीछा करते हुए तुम पर आक्रमण करेंगे। लेकिन उस समय तुम्हारे हाथों में अस्त्र न होने से तुम मेंरी रक्षा कैसे कर सकोगे? कपि श्रेष्ठ! ऐसे समय में यदि मैं तुम्हारी पीठ से गिरी तो यह राक्षस मुझे पुनः पकड़ ले आयेंगे। अगर उस समय राक्षसों की डाँट पड़ने पर मेरे प्राण ही निकल गये तो तुम्हारा सारा प्रयास ही निष्फल चला जायेगा। यह भी

सम्भव हो सकता है कि दुबारा वे मुझे किसी ऐसे गुप्त स्थान पर रख दें जहाँ न तो वानरों को ही मेरा पता चल सके न श्रीरघुनाथजी को ही। ऐसी दशा में श्रीराम को ही यहाँ आना उचित होगा। वानर श्रेष्ठ! मेरा तुम्हारे साथ न जाने का एक कारण और है। पतिभक्ति की ओर दृष्टि रखकर मैं भगवान् श्रीराम के सिवा किसी दूसरे पुरुष का स्पर्श स्वेच्छा से नहीं करना चाहती। जब रावण के शरीर से मेरा स्पर्श हुआ था, उस समय मैं असमर्थ और बेबस थी। यदि श्रीराम रावण का बध करके मुझे ले चलें तो यह उनके अनुकूल काम होगा। मैंने युद्ध में महात्मा श्रीराम के पराक्रम अनेक बारं देखें हैं। युद्ध भूमि में मतवाले दिग्गज की भाँति खड़े हुए रणमर्दन श्रीराम और लक्ष्मण का सामना कौन कर सकता है? अतः कपिश्रेष्ठ! तुम प्रयत्न करके सुग्रीव और लक्ष्मण सहित श्रीराम चन्द्र को शीघ्र यहाँ बुला लाओ जिससे मुझ शोकाकुल को हर्ष प्राप्त हो सके।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

अड़तीसवाँ सर्ग

सीताजी का पहचान के रूप में चित्रकूट पर्वत पर एक कौवे के प्रसंग को सुनाना

सीता के इस वचन से कपि श्रेष्ठ हनुमानजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अब सीता से बोले देवि! आपका कथन बिल्कुल ठीक है। आपके लिए मेरी पीठ पर बैठकर सौ योजन विस्तार वाले समुद्र का लाँघना कठिन होगा। आपने जो दूसरा कारण बताया है कि मेरे लिए श्रीराम के सिवा दूसरे पुरुष का शरीर छूना उचित नहीं है। यह वचन आपको छोड़कर दूसरी कौन स्त्री कह सकती है। देवि! मैंने आपको जो अपने साथ ले चलने की बात कही थी वह केवल श्रीराम को शीघ्र प्रसन्न कर देने के कारण ही कही थी लेकिन आपकी यदि मेरे साथ चलने की इच्छा नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही दे दीजिए जिससे श्रीराम यह समझ लें कि मैंने आपके ही दर्शन किये हैं। तब सीताजी ने कहा- वानर श्रेष्ठ! तुम श्रीराम को मेरी पहचान बताते हुए कहना कि चित्रकूट के मंदाकिनी नदी के समीप, जहाँ फल, मूल और जल की

अधिकता है, जब मैं निवास कर रही थी उस समय जल बिहार करके आप भीगे हुए आये और मेरी गोद में बैठ गये। तदनन्तर किसी दूसरे समय एक माँस लोलुप कौआआकर मुझ पर चोंच मारने लगा। मैंने ढेला मारकर उसे भगाने का प्रयास किया किन्तु वह मुझे बार-बार चोंच मार-मारकर कहीं छिप जाता। अंत में उस कौवे ने मुझे चोंच मार मारकर क्षत विक्षत कर दिया। तब मैं थककर अपने स्वामी की गोद में जा बैठी थी। उस समय कुपित होने के कारण मेरी आँखों से आँसू की धारा बहने लगी थी। फिर मैं थक जाने के कारण बहुत देर तक उनकी गोद में सोयी रही। फिर उनकी बारी आयी और वे मेरी गोद में सिर रखकर सोये। इसी समय वह कौआ वहीं फिर आया। मैं श्रीराम की गोद से उठकर बैठी ही थी कि उसने मेरी छाती में चोच मार दी। इसी समय मेरे स्वामी की नींद खुल जाने से वे जागकर बैठ गये। उस समय मेरी छाती में घाव हुआ देखकर वे कुपित हो उठे और रोष भरे दृष्टि से कौवे की ओर देखा जिसके तीखे पँजे खून से रंग गये थे। वह कौआ और कोई न होकर इन्द्र का पुत्र था। उसकी गति वायु के समान तीव्र थी और वह शीघ्र ही स्वर्ग से उड़कर पृथ्वी पर आ पहुँचा था। तब श्रीराम ने कुश की चटाई से एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्र मंत्र से अभिमंत्रित किया। अभिमंत्रित करते ही वह कालाग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा। तब उसे श्रीराम ने उस कौवे की ओर छोड़ दिया। फिर तो वह उसका पीछा करने लगा। अब वह कौआ प्राण बचाने के लिए सम्पूर्ण जगत् में भागता फिरा पर उस बाण ने कहीं भी उसका पीछा न छोड़ा। उस समय उसके पिता तथा अन्य महर्षियों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। तब वह पुनः श्रीराम की शरण में आया। शरणागत वत्सल रघुनाथजी को उस पर दया आ गयी। और वे द्रवित होकर बोले- ब्रह्मास्त्र तो व्यर्थ नहीं किया जा सकता। अतः बताओ तुम्हारा कौन-सा अंग भंग किया जाय? तब उसकी सम्मति लेकर उसकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी गयी। इस प्रकार वह अपने प्राणों की रक्षा कर अपने निवास स्थान को चला गया। कपि श्रेष्ठ! तुम मेरे स्वामी से जाकर कहना कि जब उन्होंने साधारण अपराध करने वाले कौए पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था फिर मेरे अपहरण करने वाले को क्षमा कैसे कर रहे हैं। वे हर प्रकार से अस्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ, बलवान् और शक्तिशाली होते हुए भी

इन राक्षसों पर अस्त्र का प्रयोग क्यों नहीं करते? अपने तीखे सायकों से इन राक्षसों का संहार क्यों नहीं कर डालते। अथवा वीर लक्ष्मण ही भाई की आज्ञा लेकर मेरा उद्धार क्यों नहीं करते। वे दोनों देवताओं के लिए भी दुर्जय हैं फिर मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं। तब सीता को उस समय आँसू बहाते हुए देखकर महाबली हनुमानजी बोले- देवि! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीरामचन्द्र आपके विरह शोक से पीड़ित हो अन्य कार्यों से विमुख होकर केवल आपकी ही चिंता करते हैं। उनके दुःख से लक्ष्मण भी दुखी रहते हैं। शोभने! अब आप इस घड़ी से अपने दुखों का अंत होता देखेंगी। वे पुरुष सिंह राजकुमार आपको पाने के लिए समस्त राक्षसों को भस्म कर डालेंगे। अब आप भगवान् श्रीराम, महाबली लक्ष्मण और तेजस्वी सुग्रीव के प्रति जो कहना हो कहिए। यह सुनकर सीताजी बोलीं- कपि श्रेष्ठ! जगत् के स्वामी श्रीराम को मेरा प्रणाम कहकर उनका कुशल समाचार पूछना। तत्पश्चात् श्रीराम की रक्षा करते हुए जो सदा उनके अनुकूल चलते हैं जिनके कंधे सिंह के समान और भुजाएं बड़ी-बड़ी हैं उन लक्ष्मण से भी तुम मेरी ओर से कुशल पूछना और ऐसी बातें कहना जिससे वे मेरा दुःख दूर करने के लिए तैयार हो जायें। अब मैं अधिक क्या कहूँ तुम्हें वही उपाय करना चाहिए जिससे मेरा कार्य सिद्ध हो सके। तुम मेरे स्वामी से कहना दशरथ नंदन! मेरे जीवन की अवधि के लिए दो मास निश्चित है उतने ही दिनों तक मैं जीवन धारण करूँगी। अतः वे शीघ्र मेरा यहाँ से उद्धार करें। ऐसा कहकर सीताजी ने कपड़े में बंधी हुई सुन्दर दिव्य चूड़ामणि को खोलकर हनुमानजी के हाथों में रख दिया और पुनः कहने लगी- इसे श्रीराम चन्द्र को दे देना। इस परम उत्तम मणि को लेकर हनुमानजी ने सीता को प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करके विनीत भाव से उनके पास खड़े हो गये। तदनन्तर वे मनही मन श्रीराम लक्ष्मण का चिंतन करते हुए उनके पास पहुँच गये। फिर वे वहाँ से लौट जाने की तैयारी करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३८)

उन्तालीसवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम आदि को उत्साहित करने हेतु हनुमानजी से कहना

मणि देने के बाद सीता हनुमानजी से बोली- मेरे इस चिह्न को श्रीराम चन्द्र भली भाँति पहचानते हैं। इसे देखकर वो मेरी माता तथा महाराज दशरथ और मेरा एक ही साथ स्मरण करेंगे। वानर शिरोमणि! इस कार्य को निभाने में तुम्हीं प्रमाण हो। तुम इसके लिए ऐसा कोई उपाय सोचो जो मेरे दुःख का निवारण करने वाला हो। तब बहुत अच्छा कहकर हनुमानजी सीता के चरणों में सिर झुकाकर वहाँ से चलने को तैयार हो गये। तत्पश्चात् सीता जी गद्‌गद् होकर बोलीं- हनुमान! महाबाहु श्रीरघुनाथजी जिस प्रकार इस दुःख के समुद्र से मेरा उद्धार करें वैसा ही यत्न तुम्हें करना चाहिए। यद्यपि श्रीराम सदा ही उत्साह से भरे रहते हैं तथापि मेरी कही हुई बातों से उनका पुरुषार्थ और भी बढ़ेगा। सीताजी की बात सुनकर हनुमानजी विनययुक्त वाणी में बोले- देवि! भगवान् श्रीराम युद्ध में विजय प्राप्त करने हेतु वानर और भालुओं के साथ यहाँ शीघ्र पधारेंगे। उनके सामने असुर, देवता तथा मनुष्य कोई भी नहीं ठहर सकता। उनकी इस युद्ध में विजय निश्चित होगी। तदनन्तर इनसे प्रसन्न होती हुई बोलीं- वीर! यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ एक दिन किसी गुप्त स्थान में निवास करो। यहाँ एक दिन विश्राम करके फिर चले जाना। तुम्हारे निकट रहने से मेरा शोक भी कुछ कम होगा। तत्पश्चात् यहाँ से जाने के बाद तुम लोगों के आने में विलम्ब हुआ तो मेरे प्राणों पर संकट निश्चित रूप से आ जायेगा। वानरेश्वर! मेरे मन में एक संदेह अब भी विद्यमान है कि अपनी सेनाओं के साथ श्रीराम इस महासागर को कैसेपार करेंगे? क्योंकि इस महासागर को लाँघने की शक्ति केवल तुममें गरुड़ में अथवा वायु देवता में ही पायी जाती है। ऐसी दशा में तुम्हें कार्य सिद्धि का कौन-सा उपाय दिखायी देता है? यद्यपि तुम अकेले मेरा उद्धार करने में सफल हो सकते हो लेकिन उस समय इसका यश केवल तुमको मिलेगाश्रीराम को नहीं। यदि श्रीराम यहाँ आकर शत्रु सेना का संहार करके मुझे ले जायें तो यह उनके अनुरूप कार्य होगा। यह सुनकर हनुमानजी बोले- देवि! वानर और भालुओं के सेना के स्वामी कपि श्रेष्ठ! सुग्रीव आपके उद्धार के लिए दृढ़ निश्चय कर चुके हैं। वे अपनी सेना लेकर शीघ्र आयेंगे। उनके पास संकल्प के

समान दूर तक उछलकर चलने वाले बहुत से वानर हैं। वे कभी हिम्मत हारने वाले ही नहीं हैं। उनकी सेवा में मुझसे भी बढ़कर पराक्रमी वानर हैं। जब मैं ही यहाँ आ गया तब अन्य महाबली वानरों का यहाँ तक आने में क्या संदेह। अतः देवि! आपको दुख करने की कोई आवश्यकता नहीं। वे दोनों नर श्रेष्ठ वीर श्रीराम और लक्ष्मण एक साथ आकर अपने सायकों से लंकापुरी का विध्वंस कर डालेंगे। फिर आपको लेकर शीघ्र ही अपने पुरी को लौटेंगे। रावण के मरने पर आप श्रीराम से वैसे ही मिलेंगी जैसे रोहिणी चन्द्रमा से मिलती है। तत्पश्चात् सीता को इस प्रकार आश्वासन देकर हनुमानजी वहाँ से लौटने का निश्चय करके उनसे फिर बोले- देवि! आप शीघ्र श्रीराम तथा लक्ष्मण को देखेंगी और उनके साथ ही मुख्य वानरों के बहुत से झुन्ड लंकावर्ती मलय पर्वत के शिखरों पर गरजते दिखाई देंगे। अब आप शोक के कारण रोदन न करें। शोभने! जैसे शची देवराज इन्द्र से मिलती हैं उसी प्रकार आप अपने पतिदेव से मिलेंगी। राक्षसों द्वारा सेवित इस अत्यंत भयंकर देश में आपको अधिक दिनों तक नहीं रहना पड़ेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३९)

चालीसवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम से कहने के लिए पुनः संदेश देना

तब हनुमानजी के वचन सुनकर सीता ने कहा- वानर वीर! तुमने मुझे बड़ा ही प्रिय संवाद सुनाया है। अब मुझ पर ऐसी दया करना जिससे मैं अपने अंगों द्वारा श्रीराम का प्रेमपूर्वक स्पर्श कर सकूँ। श्रीराम ने जो कौवे की एक आँख फोड़ने वाली सींक का बाण चलाया था उन्हें उस प्रसंग की भी याद दिलाना। कहना कि आप बलवान् होकर भी अपहृत हुई सीता का तिरस्कार कैसे सहन करते हैं। इस दिव्य चूड़ामणि को मैंने बड़े यत्न से सुरक्षित रखा था और संकट के समय इसे देखकर हर्ष का अनुभव करती थी। अब इसे लौटाने के बाद मैं अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकूँगी। उनसे यह भी कहना कि मैं आपकी प्रतीक्षा में किसी तरह एक मास तक का जीवन धारण करूँगी। इसके बाद मैं आपके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी क्योंकि रावण बड़ा क्रूर

है। मेरे प्रति उसकी दृष्टि भी अच्छी नहीं है। अब यदि आपको विलम्ब हुआ तो मैं जीवित न रहूँगी। यह सुनकर हनुमानजी आँसू बहाते हुए बोले- देवि! आपका दर्शन किसी तरह हो गया इसलिए अब रोने-धोने या शोक करने का अवसर नहीं रहा। वे दोनों भाई अब आपके दर्शन के लिए उत्साहित होकर लंकापुरी भस्म कर डालेंगे और आपको अपनी पुरी में ले जायेंगे। देवि! जिसे रामचन्द्रजी जान सके और उनके हृदय में प्रसन्नता का संचार हो ऐसी कोई और पहचान आपके पास हो तो मुझे दे दें। तब सीताजी बोलीं- कपिश्रेष्ठ! मैंने तुम्हें सबसे उत्तम पहचान दे दी है। इसे देखकर श्रीराम के लिए तुम्हारी सारी बातें विश्वसनीय हो जायेंगी। यह सुनकर हनुमानजी सीताजी को प्रणाम करके यहाँ से जाने को उद्यत हुए। अब हनुमानजी को वहाँ से छलाँग मारने के लिए उद्यत होते देख सीता की आँखों में आँसू आ गये और वे बोलीं- हनुमान! तुम राम को मेरा कुशल मंगल कहना और इस प्रकार समझाना कि वे शोक सागर से मेरा शीघ्र उद्धार करें। यह सुनकर हनुमानजी ने प्रसन्न चित्त होकर आगे के कार्यक्रमों पर विचार करते हुए उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४०)

इक्तालीसवाँ सर्ग

हनुमानजी द्वारा अशोक बाटिका का विध्वंस

सीताजी के वचन सुनकर हनुमानजी ने वहाँ से जाते हुए सोचा, मैंने सीताजी का दर्शन तो कर लिया है अब शत्रु की शक्ति का पता लगाने का कार्य शेष रह गया है। इसके लिए चार उपाय हैं- साम, दाम, दण्ड और भेद। किन्तु यहाँ भेद का प्रभाव ज्यादा उपयोगी दिखायी देता है। इस कार्य की सिद्धि के लिए पराक्रम के सिवा यहाँ किसी और उपाय का अवलम्बन ठीक नहीं जँचता। यदि राक्षसों के कुछ मुख्य-मुख्य वीर मारे जायें तो ये लोग कुछ नरम पड़ सकते हैं और तभी ये बिचार कर सकते हैं कि श्रीरामचन्द्र का दूत कितना भयानक और बली है। ये तब सोचने के लिए विवश होंगे कि जिसने अकेले होते हुए भी राक्षसों का नाश किया तो जब श्रीरामचन्द्र सेना लेकर

आयेंगे तो हमारी क्या दशा होगी? यह बिचार कर वे शिथिल होकर श्रीराम के शरण में अवश्य पहुँचेंगे। इसके पश्चात् हनुमान सोचने लगे कि कार्य को सिद्ध करने से ही कार्य-कर्ता कहलाता है किन्तु अगर वह उस काम को अनेक उपायों से करे तो और अच्छा होता है। और जब मैं रावण के विषय में पूर्णता से जानकारी करके अपने स्वामी सुग्रीव के पास जाऊँगा तो मेरे द्वारा स्वामी की आज्ञा का पूर्णता से पालन समझा जायेगा। यहाँ मेरा आना कैसे सफल समझा जायेगा तथा इन राक्षसों के साथ कैसे युद्ध होगा और रावण अपने बल की तुलना मेरे पराक्रम से कैसे करेगा इन सब बातों पर विचार कर लेना चाहिए। इस निर्दयी रावण का सुन्दर उपवन आनन्द देने वाला तथा मनोरम है। यह नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं से भरा होकर चन्दनवन-सा प्रतीत होता है। मैं आज इसका इसी प्रकार विध्वंस कर देना चाहता हूँ जैसे सूखे वन को आग जलाती है। तत्पश्चात् रावण विशाल सेना लेकर आयेगा और मुझसे महान संग्राम छेड़ेगा। मैं फिर प्रचण्ड पराक्रम दिखलाता हुआ उसकी सेना को मौत के घाट उतार कर किष्किंधापुरी लौट जाऊँगा। ऐसा सोचकर हनुमानजी क्रोध से भरकर वायु के समान भारी वेग से वहाँ के वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर फेंकने लगे। तदनन्तर उन वृक्षों का खण्ड-खण्ड करते हुए वहाँ के जलाशयों को मथ डाला और पर्वत शिखरों को चूर-चूर कर डाला। इससे उस वन की सुन्दरता ही नष्ट हो गयी। वहाँ की लतायें अपने आवरणों से नष्ट भ्रष्ट हो जाने से घबरायी हुई स्त्रियों के समान प्रतीत होती थीं। तत्पश्चात् वहाँ पाले हुए हिंसक पशु, मृग तथा पक्षी आर्तनाद करने लगे। उस समय उन्होंने प्रस्तर निर्मित प्रासाद तथा अन्य साधारण गृह भी नष्टकर दिये। उस समय उसकी दुरावस्था देखकर मन में बड़ा दुख होता था। इस प्रकार रावण के मन को विशेष कष्ट पहुँचाने वाले कार्य करके महाबली हनुमान उस वन के फाटक पर आ गये। उस समय वे अपने तेज से स्वयं प्रकाशित हो रहे थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में इक्तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालिसवाँ सर्ग

अशोक वाटिका के विध्वंस का समाचार सुनकर रावण का किंकर नामक राक्षसों को भेजना

उधर पक्षियों के कोलाहल और वृक्षों के टूटने की आवाज सुनकर सारे लंकावासी भय से घबरा उठे। राक्षसों के सामने भयंकर अपशकुन पैदा होने लगे। तब वहाँ सोयी हुयी राक्षसियों की निद्रा टूट गयी। उन्होंने सारा वन उजड़ा हुआ देखा साथ ही उनकी दृष्टि महाकपि हनुमानजी पर पड़ी। हनुमानजी ने भी जब उन्हें देखा तो उन्हें डराने वाला विशाल रूप धारण कर लिया। तब उन्हें देखकर वे सब सीताजी से पूछने लगीं। विशाल लोचने! यह कौन है और कहाँ से आया है? इसने तुम्हारे साथ क्या बात-चीत की है? तब सीता जी बोलीं- अनेक रूप धारण करने वाले राक्षसों को पहचानने का मेरे पास क्या उपाय है। मैं स्वयं इसे देखकर डरी हूँ। हो सकता है यह कोई राक्षस ही हो। तब यह बात सुनकर कुछ राक्षसियाँ बड़े वेग से रावण को सूचना देने चली गयीं और उससे बोलीं कि कोई भयंकर वानर प्रमदा वन में (अशोक वाटिका) आ पहुँचा है। उसका शरीर भयंकर है और उसने सीता से बात चीत की है। वह वानर वहाँ अब भी मौजूद है किन्तु सीता उसके बारे में हमें कुछ भी बताना नहीं चाहतीं। सम्भव है वह कुबेर अथवा श्रीराम का दूत हो और सीता की खोज करने आया हो। अशोक वाटिका का ऐसा कोई स्थान न होगा जिसको उसने नष्ट न किया हो। उसने केवल मनोहर पल्लवों से भरा हुआ अशोक वृक्ष, जिसके नीचे सीता का निवास है, सुरक्षित रख छोड़ा है। उस वानर को आप कोई कठोर दण्ड देने की व्यवस्था करें। राक्षसियोंकी बात सुनकर रावण क्रोध से जल उठा। उसके नेत्र रोष से घूमने लगे। उसकी आँखों से उस तरह आँसू की बूँदें टपकने लगीं जैसे आग की लपटों के साथ तेल की बूँदें झर रही हों। तब रावण ने हनुमानजी को कैद करने के लिए अपने ही समान वीर किंकर नाम धारी राक्षसों को जाने की आज्ञा दी। वे भयानक और महान् बली राक्षस हनुमानजी को पकड़ने के लिए उत्सुक हो रहे थे। उस वन के फाटक पर खड़े हुए हनुमानजी को देखकर वे राक्षस उन पर इस तरह झपटे जैसे पतंगे दीपक की लौ पर। इस प्रकार हाथों में मुद्गर पट्टिश, तोमर और शूल लिए हुए भयंकर राक्षसों के बीच हनुमानजी चारों

ओर से घिर गये। उस समय पर्वत के समान विशाल हनुमानजी अपनी पूँछ पटककर बड़े जोर से गरजने लगे। उनका गंभीर घोष बहुत दूर तक गूँजने लगा। और उनके उस नाद से पक्षीगण आकाश से भयभीत होकर नीचे गिरने लगे। इस समय हनुमानजी उच्च स्वर से कहने लगे- भगवान् श्रीराम और महाबली लक्ष्मण की जय हो। सुग्रीव की भी जय हो। मैं श्रीराम का दूत हूँ और मेरा नाम हनुमान है। मैं वायु का पुत्र हूँ। अब मैं शत्रुओं पर वृक्षों और पत्थरों से प्रहार करूँगा उस समय सहस्त्रों रावण भी मेरी समानता नहीं कर सकते। मैं लंकापुरी को तहस नहस कर डालूँगा और सीता को प्रणाम कर वापस ले जाऊँगा। उस समय हनुमानजी ने देखा कि राक्षसों के मुख पर भय और आतंक की छाया व्याप्त हो गयी है। हनुमानजी ने स्वयं अपना परिचय दे दिया था इसलिए राक्षसों को उन्हें पहचानने में कोई संदेह न रहा। वे नाना प्रकार के भयंकर अस्त्र लेकर उन पर टूट पड़े। तब शूरवीर हनुमान ने लोहे का परिध उठा लिया और उससे उन निशाचरों का संहार करना आरंभ कर दिया। जिस प्रकार इन्द्र अपने वज्र से दैत्यों का बध करते हैं उसी प्रकार हनुमानजी ने परिधि के सामने आये हुए समस्त राक्षसों को मार डाला। तदनन्तर कुछ राक्षसों ने जाकर रावण को यह समाचार सुनाया कि समस्त किंकर नामक राक्षस मार डाले गये हैं। तब रावण की आँखें चढ़ गयीं और उस प्रहस्त के पुत्र को जिसके पराक्रम की कोई तुलना न थी, हनुमानजी का सामना करने के लिए भेजा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में बयालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैंतालीसवाँ सर्ग

हनुमानजी का चैत्य प्रासाद का विध्वंस

तदनन्तर किंकरों का बध करके हनुमानजी सोचने लगे, मैंने वन तो उजाड़ दिया किन्तु राक्षसों के कुल देवता के स्थान (चैत्य प्रासाद) को तो नष्ट ही नहीं किया। तब वे उछलकर चैत्य प्रसाद पर चढ़ गये और विशाल शरीर धारणकर उस प्रासाद को तोड़ने फोड़ने लगे। इस तोड़ फोड़ के भयंकर शब्द को सुनकर वहाँ के पक्षी और प्रसाद रक्षक भी पृथ्वी पर गिर पड़े। उस समय

हनुमानजी पुनः उच्च स्वर से घोषणा करने लगे- भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण की जय हो। राजा सुग्रीव की भी जय हो। मैं राजदूत हनुमान हूँ। जिस समय पत्थरों से शत्रु सेना का संहार करूँगा उस समय सहस्रों रावण मेरी समानता नहीं कर सकेंगे। मैं लंकापुरी को तहस-नहस कर सीता को प्रणाम करने के उपरान्त यहाँ से जाऊँगा। उस भीषण गर्जना को सुनकर सैकड़ा प्रासाद रक्षक नाना प्रकार के अस्त्रों को लेकर वहाँ आ गये और हनुमानजी को घेरकर खड़े हो गये। तब राक्षसों को इस प्रकार आक्रमण करते देख हनुमानजी ने कुपित होकर बड़ा भयंकर रूप धारण कर लिया और उस प्रासाद के स्वर्ण भूषित खम्भे को, जिसमें सौ धारें थीं बड़े वेग से उखाड़ लिया। तत्पश्चात् उन्होंने उस खम्भे को बड़े वेग से घुमाना शुरू कर दिया। उसके घुमाने से उसमें आग उत्पन्न हो गयी जिससे वह प्रासाद जलने लगा। तत्पश्चात् उन्होंने उस खम्भे से ही सैकड़ों राक्षसों को मार डाला और आकाश में खड़े होकर बोले, राक्षसो! सुग्रीव के अधीन रहने वाले मेरे जैसे सहस्रों वानर सब ओर भेजे गये हैं। उनमें किसी में सौ हाथियों का बल है तो किसी में सहस्र हाथियों का। किन्हीं का बल तो महान् प्रवाह की भाँति असहनीय है। अब ऐसे करोड़ों वानरों को लेकर वानरराज सुग्रीव यहाँ पधारेंगे जो तुम्हारे जैसे निशाचरों का पल भर में संहार कर डालेंगे। अब श्रीराम से बैर बाँधने वाला रावण, उसकी लंकापुरी तथा उसकी सेना का बच पाना ही कठिन है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालीसवाँ सर्ग

प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली का बध

तदनन्तर रावण की आज्ञा पाकर प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली हाथ में धनुष लिए राज महल के बाहर निकला। उसका धनुष इन्द्र-धनुष के समान विशाल था। उस धनुष की महती टंकार ध्वनि से सम्पूर्ण दिशाएं और आकाश गूँज उठती थीं। वह गधे जुते हुए रथ पर बैठकर आया था। उसे देखकर हनुमानजी बड़े प्रसन्न हुए और जोर जोर से गर्जना करने लगे। तब

Mookerji sharma (I.A.S) collection

जम्बुमाली ने हनुमानजी को फाटक के छज्जे पर खड़ा देखकर बाणों से उन्हें बींधना शुरू किया। उसने अपने बाणों से उनके मुख, मस्तक एवं भुजाओं पर चोट की। राक्षस के बाणों की चोट खाकर कपि हनुमानजी कुपित हो उठे और पास ही पड़े हुए एक चट्टान को उठाकर बड़े वेग से उस राक्षस की ओर फेंका। उस राक्षस ने भी दस बाण मार कर उस पत्थर शिला को तोड़ फोड़ डाला। तब हनुमान ने एक विशाल साल वृक्ष उखाड़कर उसे घुमाना आरम्भ किया, हनुमान को ऐसा करते देख जम्बुमाली ने उन पर बहुत से बाणों की वर्षा की और चार बाणों से साल वृक्ष काट गिराया। तत्पश्चात् उसने अपने बाणों से उनकी छाती, भुजा और मध्य भाग में चोट पहुँचायी। बाणों से अपने शरीर को भरते देखकर हनुमानजी ने क्रोधित होकर उसी परिघ को उठाकर बड़ी तेजी से घुमाना आरम्भ किया और उस परिघ को जम्बुमाली के शरीर पर दे मारा। फिर तो न उसके मस्तक का पता चला और न दोनों भुजाओं तथा घुटनों का। अब जम्बुमाली तथा महाबली किंकरों के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें रोष से रक्त वर्ण की होकर नाचने लगीं। तब उसने अपने मंत्री के पुत्रों को जो बड़े बलवान् तथा पराक्रमी थे युद्ध के लिए भेजा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में चौवालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैंतालिसवाँ सर्ग

मंत्री के सात पुत्रों का बध

तदनन्तर रावण की आज्ञा पाकर मंत्री के सात बेटे जो अग्नि के समान तेजस्वी थे राजमहल से बाहर निकले। उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। वे अत्यंत पराक्रमी थे। वे सोने से चित्रित अपने धनुषों की टंकार करते हुए बड़े हर्ष और उत्साह से आगे बढ़े। किन्तु पहले जो किंकर नामक राक्षस मारे गये थे उनकी मृत्यु का समाचार पाकर इनकी माताएँ अमंगल की आशंका से घबरा उठी थीं। तब जैसे वर्षा काल में मेघ वर्षा करते हुए विचरते हैं उसी प्रकार से राक्षस रूपी बादल बाणों की वर्षा करते हुए वहाँ विचरण करने लगे। उस समय राक्षसों द्वारा की गयी बाण वर्षा से हनुमानजी ढक गये। फिर

उनके बाणों को व्यर्थ करते हुए अपने को बचाने लगे। उन धनुर्धर वीरों के साथ क्रीड़ा-सा करते हुए वे आकाश में अद्भुत शोभा पा रहे थे। तत्पश्चात् एक विकट गर्जना के साथ उन्होंने राक्षसों पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया। फिर तो उनमें से किसी को थप्पड़ से और किसी को उन्होंने पैरों से कुचल कर मार डाला। किन्हीं का घूसों से काम तमाम किया और किन्हीं को नखों से फाड़ डाला। किन्हीं का छाती से दबाकर कचूमर निकाला तो कितनों को अपने गर्जना से प्राणहीन कर दिया। इस प्रकार जब मंत्री के सारे पुत्र धराशायी हो गये तो उनकी बची खुची सारी सेना भी भाग निकली। प्रचण्ड पराक्रमी और महाबली वानरवीर हनुमान जी उन बढ़े-चढ़े राक्षसों को मौत के घाट उतार कर दूसरे राक्षसों के साथ युद्ध करने की इच्छा से फिर उसी फाटक पर जा पहुँचे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

रावण के पाँच सेनापतियों का बध

जब हनुमानजी के द्वारा मंत्रियों के पुत्र भी मार दिये गये तब रावण ने भयभीत होकर भी उत्तम बुद्धि का सहारा लेकर आगे का कर्तव्य निश्चित किया। उस समय रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर, प्रघस और भासकर्ण इन पाँच महाबलियों को हनुमानजी को पकड़ने की आज्ञा दी। उसने कहा- तुम उस वानर को पकड़कर अच्छी तरह शिक्षा दो। उस वनचारी वानर के पास पहुँचकर तुम लोगों को सावधानीपूर्वक प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि वह वानर नहीं बल्कि कोई महान् प्राणी जान पड़ता है। सम्भव है इन्द्र ने हम लोगों का विनाश करने के लिए अपने तपोबल से उसकी सृष्टि की हो। मेरी आज्ञा से तुम सब लोगों ने मेरे साथ रहकर नागों सहित यक्षों, गंधर्वों,देवताओं, असुरों और महर्षियों को भी अनेक बार पराजित किया है अतएव वे अवश्य हमारा अनिष्ट करना चाहेंगे। अब इसमें संदेह नहीं कि ये उन्हीं का रचा हुआ कोई प्राणी है। इसलिए मेरी सेना के वीरो! तुम लोग उसे पकड़कर अच्छी तरह शिक्षा दो। यद्यपि मैंने पहले ही अनेक पराक्रमी

वानर और भालू देखे हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं, बाली, सुग्रीव, जाम्बवान्, सेनापति नील तथा द्विविद आदि अन्य वानर। किन्तु अब वानर के रूप में यह कोई बड़ा शक्तिशाली जीव उत्पन्न हुआ है। तुम लोग हर प्रयत्न से उसे बंदी बनाओ। स्वामी की आज्ञा पाकर वे सबके सब अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् राक्षस तेज चलनेवाली सवारियों पर बैठकर युद्ध के लिए चल दिये। वे सब प्रकार के तीव्र शस्त्रों और सेनाओं से सम्पन्न थे। तब आगे जाने पर वीरों ने देखा कि महाकपि हनुमानजी फाटक पर खड़े हैं। तथा अपने तेजोमयी किरणों से देदीप्यमान हो रहे हैं। उनकी शक्ति, बुद्धि, भुजायें तथा उनका शरीर सभी महान् थे। उन्हें देखते ही वे राक्षस गण अस्त्रों की वर्षा करते हुए उन पर टूट पड़े और उनके निकट पहुँचकर मस्तक पर पाँच लोहे के बाण मारे। तब उन बाणों की गहरी चोट खाकर वानर वीर हनुमानजी अपनी भीषण गर्जना से आकाश में उछल पड़े। उस समय महाबली वीर दुर्धर ने धनुष चढ़ाये कई बाणों की वर्षा करते हुए उनका पीछा किया, किन्तु हनुमान ने उन्हें रोक दिया और विकट गर्जना के साथ अपने शरीर को बढ़ाने लगे और दुर्धर के रथ पर इस प्रकार कूद पड़े कि उसका कचूमर ही निकल गया। दुर्धर को धराशायी हुआ देख यूपाक्ष और विरुपाक्ष को बड़ा क्रोध आया और वे आकाश में उछल पड़े। तब उन्होंने हनुमान की छाती पर मु मुद्गर का प्रयोग किया। तब हनुमान उनके प्रहारों को विफलकर पृथ्वी पर कूद पड़े और एक साल वृक्ष को उखाड़कर उसी के द्वारा उन दोनों राक्षसों को मार डाला। यह देखकर बलवान् प्रघस तथा भासकर्ण भी हनुमानजी के निकट हाथों में शूल लिए हुए आ खड़े हुए। तत्पश्चात् प्रघस ने पट्टिश तथा भासकर्ण ने शूल से हनुमानजी पर प्रहार किया। इन प्रहारों से हनुमान जी के शरीर में कई जगह घाव हो गये और उनकी रोमावली रक्त से रंग गयी। तब हनुमान ने एक पर्वत शिखर को उखाड़ कर उन राक्षसों पर दे मारा जिससे वे दोनों पिसकर खण्ड-खण्ड हो गये। इस प्रकार उन पाँचों सेनापतियों के नष्ट हो जाने पर हनुमानजी ने बची खुची सेना का भी संहार कर डाला। तब वहाँ की सारी भूमि ही इस तरह लाशों से पट गयी कि आने जाने का रास्ता ही बंद हो गया। तत्पश्चात् युद्ध के लिए तत्पर हुए हनुमानजी पुनः फाटक पर जाकर

खड़े हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४६)

सैंतालीसवाँ सर्ग

रावण पुत्र अक्ष कुमार का बध

हनुमानजी के द्वारा अपने सेनापतियों और सेवकों के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण के सामने बैठे हुए अपने पुत्र अक्षकुमार की ओर देखा जो युद्ध के लिए सदैव उद्धत रहने वाला था। अब पिता को अपनी ओर दृष्टिपात करते हुए देखकर वह युद्ध के लिए उत्साहित हो उठा और सुवर्ण जाल से आच्छादित रथ पर सवार हो उस महाकपि हनुमान जी के पास चल दिया। उसका ध्वजदण्ड रत्नों से विभूषित था। उसमें मन के समान वेग वाले आठ घोड़े जुते थे। उस रथ को सब सामग्रियों से सुसज्जित किया गया था और यथा स्थान सारे अस्त्र रख दिये गये थे। तब वह राजमहल से बाहर निकल कर पृथ्वी और आकाश को गूँजाता हुआ बड़ी भारी सेना को साथ लेकर वाटिका के द्वार पर बैठे हुए हनुमानजी के पास जा पहुँचा। उन हनुमानजी के पराक्रम पर दृष्टिपात करके उसे क्रोध आ रहा था अतः उसने एकाग्रचित्त से तीन तीखे बाणों द्वारा हनुमानजी को युद्ध के लिए प्रेरित किया तथा उनकी ओर देखता हुआ और निकट आ गया। उस समय उन दोनों वीरों में जो टक्कर हुई उसकी कहीं तुलना न थी। उनका युद्ध देवताओं और असुरों के मन में घबराहट पैदा कर देने वाला था। उस युद्ध को देखकर भूतल के सारे प्राणी चीख उठे और आकाश में भयंकर शब्द होने लगा। अक्षकुमार निशाना साधके बाण को धनुष पर चढ़ाने और उसे लक्ष्य की ओर छोड़ने में बड़ा प्रवीण था। अब उसने तीन सर्पों के समान भयंकर बाण हनुमानजी के मस्तक पर मारे। वे तीनों बाण हनुमानजी को एक साथ ही लगे। इससे उनके मस्तक से खून की धारा बह निकली। तब हनुमानजी भी उत्साह से भरकर युद्ध की इच्छा से अपने शरीर को बढाने लगे। उस समय उनका क्रोध बहुत बढ़ा हुआ था। वे बल और पराक्रम से सम्पन्न थे। अतः वे सूर्य देव के समान अपनी नेत्राग्नि किरणों से राजकुमार अक्ष को दग्ध से करने लगे। तब जैसे

बादल पर्वत पर जल बरसाता है उसी प्रकार वह भी अपने तीरों से हनुमान रूपी पर्वत पर जल बरसाने लगा। तब हनुमानजी भयंकर गर्जना करने लगे। यह सुनकर अक्षयकुमार को बड़ा क्रोध आया। अब वह हनुमानजी का सामना करने के लिए आगे बढ़ा और उन्हें बाणों से बिंद्ध दिया। तब हनुमानजी भींषण गर्जना करते हुए बहुत भयंकर दिखलाई पड़ने लगे। तब अक्षकुमार ने बाणों की वर्षाकरते हुए फिर उनका पीछा किया। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे कोई किसी पर्वत पर ओले और पत्थरों की वर्षा कर रहा हो। लेकिन हनुमानजी उसके बाणों को व्यर्थ करते हुए वायु पथ पर विचरते हुए उसके दो बाणों के बीच से वायु की तरह निकल जाते। तब वीर अक्षकुमार ने अपने बाणों द्वारा हनुमानजी की दोनों भुजाओं के मध्य भाग-छाती में गहरा आघात किया। अब हनुमानजी उसके पराक्रम को देखकर सोचने लगे- यह वीर अक्षकुमार बालक होकर भी महान् कर्म कर रहा है। यह बल, पराक्रम की दृष्टि से महान् है और युद्ध में एकाग्रचित्त और सावधान है। शत्रु के वेग को सहन करने में सक्षम है और युद्ध के मुहाने पर मेरे सामने खड़ा हो मुझे ही देख रहा है। शीघ्रता पूर्वक युद्ध करनेवाले इस वीर का पराक्रम देवताओं और असुरों के हृदय को भी कंपित कर देता है। संग्राम में इसका पराक्रम बढ़ता ही जा रहा है। अतः अब मुझे इसको मार डालना ही उचित होगा। उस शत्रु को मार डालने के विचार से उन्होंने अपने वेग को बढ़ाया और थप्पड़ों की मार से अक्षकुमार के उत्तम और विशाल घोड़ों को यम लोक पहुँचा दिया। तत्पश्चात् हाथ से ही पीटकर रथ की बैठक तोड़ डाली और उसके हौदे को उलट दिया। उस रथ के घोड़े पहले ही मर चुके थे। अतः वह महान् रथ आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय अक्षकुमार धनुष और तलवार लेकर अंतरिक्ष में ही उड़ने लगा। तब वायु के समान पराक्रम वाले हनुमानजी उसके पास पहुँचकर उसके दोनों पैरों को दृढ़तापूर्वक पकड़ लिये। फिर तो उसे सर्प की तरह घुमाते हुए बड़े वेग से युद्ध भूमि में पटक दिया। नीचे गिरते ही उसकी भुजा, जाँघ, कमर और छाती के टुकड़े-टुकड़े हो गये। खून की धारा बहने लगी। और शरीर की हड्डियाँ चूर-चूर हो गयीं। आँखें बाहर निकल आयीं और सारे नाड़ियों के बन्धन शिथिल हो गये। इस तरह अक्षकुमार के मरने से राक्षसराज रावण के हृदय में बड़ा भय उत्पन्न हो

गया। तब अक्षकुमार का काम तमाम करके वीरवर हनुमानजी प्रजा के संहार के लिए तत्पर होकर काल की भाँति पुनः युद्ध की प्रतीक्षा करते हुए वाटिका के उसी द्वार पर आ पहुँचे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४७)

अड़तालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित् और हनुमान का युद्ध

हनुमानजी के द्वारा अक्षकुमार के मारे जाने पर रावण ने किसी तरह अपने मन को सुस्थिर करके इन्द्रजित् (मेघनाद) को आज्ञा दी- बेटा ! तुमने ब्रह्मा जी की आराधना करके उनसे दिव्यास्त्र प्राप्त किये हैं। वे श्रेष्ठ अस्त्र देवताओं और असुरों को भी शोक प्रदान करने वाले हैं। इन्द्र के आश्रम में रहनेवाले देवता और मरुद्गण भी समरभूमि में तुम्हारे इस अस्त्र बल का सामना नहीं कर सकते। तुम बाहुबल से तो सुरक्षित हो ही, तपस्या के बल से भी पूर्ण निरापद हो। युद्ध में तुम्हारे लिए कुछ भी असाध्य नहीं। त्रिलोकी में कोई भी ऐसा वीर नहीं है जो तुम्हारीशारीरिकशक्ति और तुम्हारे अस्त्रबल कौन जानता हो। युद्ध स्थल मे तुम्हें देखकर मेरे मन में कभी खेद नहीं होता क्योंकि मुझे यह विश्वास रहता है कि विजय तुम्हारे पक्ष में है। देखो, मेरे सभी राक्षस मार डाले गये हैं। इसके साथ ही घोड़े और रथों सहित मेरी बहुत सी सेनाएं भी नष्ट हो गयी हैं। पराक्रमी अक्षयकुमार भी मार डाला गया। शत्रुसूदन ! मुझमें जो तीनों लोकों पर विजय पाने की शक्ति है वह तुम्हीं में है अतः तुम उस वानर के पराक्रम को देखकर फिर अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करो। जिससे हमारी सेना का विनाश रुक जायें। वह वानर न तो सेनाओं की सहायता से भगाया जा सकता है न किसी ब्रज आदि से मारा ही जा सकता है। इसलिए तुम इन बातों को ध्यान में रखकर आगे बढ़ते हुए ऐसा पराक्रम दिखलाओं जो खाली न जाये। यद्यपि तुम्हें रण में भेजना स्नेह की दृष्टि से उचित नहीं, किंतु ऐसा बिचार क्षत्रिय धर्म के अनुकूल है। तब पिता के वचन सुनकर इन्द्रजीत् रावण की परिक्रमा करता हुआ संग्राम भूमि में जाने को उद्यत हुआ। तत्पश्चात् वह पक्षीराज गरूड़ के समान तीव्रगति वाले

रथ पर, जिसमें चार सिंह जुते थे सवार होकर उस स्थान पर जा पहुंचा जहाँ हनुमानजी बैठे हुए थे। उस समय रथ की घर्घराहट और धनुष की प्रत्यंचा की घोष सुनकर वानर वीर हनुमान हर्ष तथा उत्साह से भर गये। उन्होंने तुरंत जोर से गर्जना करते हुए अपने शरीर को बढ़ाया। तब इन्द्रजीत् ने भी बिजली की गड़गड़ाहट के समान टंकार करनेवाले अपने धनुष को खींचा। फिर तो हनुमानजी आगे बढ़कर उनसे भिड़ गये और विशाल शरीर धारण कर राक्षस वीर के बाणों के महान् वेग को व्यर्थ करने लगे। इन्द्रजीत् ने भी ब्रज्र के समान वेगशाली बाणों को लगातार छोड़ना आरम्भ किया। तब उस धनुष की टंकार सुनकर हनुमानजी फिर ऊपर उछले और मेघनाथ के निशाने को व्यर्थ करते हुए शीघ्रतापूर्वक निकलकर अपने को बचाने लगे। वे बारम्बार उसके बाणों के सामने खड़े हो जाते और फिर दोनों हाथ फैलाकर बात की बात में उड़ जाते। वह राक्षस हनुमानजी पर प्रहार करने का अवसर ही नहीं पाता था। हनुमानजी भी उस वीर को धर दबोचने का मौका नहीं पा रहे थे। वे दोनों एक दूसरे के लिए दुस्सह हो रहे थे। लेकिन अमोघ बाणों को व्यर्थ होकर गिरते हुए देखकर मेघनाथ चिंतित होकर सोचने लगे कि यह वानर अवध्य लगता है। अब इन्हें किसी तरह कैद कर लेना चाहिए। पर वे उसकी पकड़ के बाहर थे। फिर सोच विचार कर उसने ब्रह्माजी के दिये हुए अस्त्र का अनुसंधान किया और उससे तत्काल हनुमानजी को बांध लिया। अब उससे बाँध लिए जाने पर हनुमानजी निश्चेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इससे हनुमानजी को थोड़ी सी पीड़ा भी न हुई और इसको उन्होंने ब्रह्माजी का अनुग्रह समझा। यद्यपि ब्रह्माजी ने उन्हें वर दिया था कि मेरा अस्त्र तुम्हें एक ही मुहुर्त में अपने बंधन से मुक्त कर देगा फिर भी हनुमानजी ने ब्रह्मा के सम्मानार्थ उसका अनुसरण कर लिया। उन्होंने मन ही मन सोचा कि इस अस्त्र से बंधे जाने पर भी मुझे लाभ ही दिखलायी देता है क्योंकि इससे राक्षस राज रावण से बातचीत करने का अवसर मिलेगा। ऐसा विचारकर हनुमानजी तुरंत निश्चेष्ट हो गये। तब तो सारे शत्रु निकट आकर उनको बलपूर्वक पकड़ने और डॉटने लगे। उस समय हनुमानजी मानों बहुत कष्ट पा रहे हैं इस प्रकार वे चीखने और कराहने लगे। फिर तो राक्षसगण ने उन्हें वल्कल के बने हुए रस्सों से बांध दिया। तब वल्कल के रस्से से बंध जाने पर

वे ब्रह्मास्त्र के बंधन से मुक्त हो गये क्योंकि उस अस्त्र का बंधन किसी दूसरे अस्त्र के साथ नही रह सकता था। यह देखकर इन्द्रजीत् को बड़ी चिंता हुई। वह सोचने लगा राक्षसों ने उनहें वल्कल से बांधकर मेरा किया हुआ बहुत बड़ा काम चौपट कर दिया। उन्होंने मंत्र शक्ति पर विचार नहीं किया क्योंकि अब दूसरी बार इसका प्रयोग नहीं हो सकता। इस समय तो विजयी होकर भी हम लोग संशय में पड़ गये हैं। इधर हनुमानजी यद्यपि ब्रह्मास्त्र के बंधन से मुक्त हो चुके थे फिर भी उन्होंने ऐसा बर्ताव किया जैसे वे इसके बारे में जानते ही नहीं। तब क्रूर राक्षस उन्हें तरह तरह से पीड़ित करते हुए रावण के पास ले गये और हनुमानजी को उन्हीं की सेवा में समर्पित कर दिया। तब उन्हें देखकर राक्षसवीर आपस में बोले- यह कौन है? किसका सेवक है? कहाँ से आया है? फिर क्रोध में भरकर कहने लगे। इस वानर को मार डालो, जला डालो या खा डालो। उस समय महातेजस्वी रावण ने विकट आकार वाले - राक्षसों के द्वारा घसीटे जाते हुए महाकपि हनुमानजी को देखा। हनुमानजी ने भी रावण को तपते हुए सूर्य के समान देखा। तब रावण ने रोष भरी आँखों से मुख्यमंत्रियों को उसका परिचय पूछने के लिए आज्ञा दी। तदनन्तर मंत्रियों द्वारा पूछे जाने पर हनुमानजी ने बताया कि मैं वानर राज सुग्रीव के पास से उनका दूत होकर आया हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में अड़तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४८)

उन्चासवाँ सर्ग

रावण के प्रभाव को देखकर हनुमानजी के मन में अनेक प्रकार के विचारों का उठना।

तदनन्तर हनुमानजी ने रोष से भरे हुए रावण की ओर देखा। मुकुट में मोतियों का काम किया हुआ था तथा उसके सारे अंगों में सोने के विभिन्न आभूषण शोभायमान हो रहे थे। बहुमूल्य रेशमी वस्त्र धारण किये हुए रावण की शोभा बड़ी विचित्र हो रही थी। उसकी आँखें लाल लाल और भयावनी थीं। वह उस समय अनेक सर्पों से भरे हुए मंदराचल पर्वत के समान प्रतीत हो रहा था। उसका शरीर कोयले की ढेर की भांति काला था और उस पर चंदन

का लेपहुआ था। वह स्फटिक मणि के बने हुए विशाल सिंहासन पर बैठा था। वस्त्र और आभूषणों से सजी हुई बहुत सी स्त्रियां चँवर लिये उसके आस पास खड़ी थीं। तथा तंत्र-मंत्र जाननेवाले दुर्धर, प्रहस्त महापार्श्व तथा निकुम्भ ये चार मंत्री उसके पास बैठे थे। उस समय राक्षसों से पीड़ित होने पर भा हनुमानजी अत्यंत विस्मित होकर रावण को बड़े गौर से देखते रहे। तत्पश्चात् उसे देखकर हनुमानजी मन ही मन इस प्रकार बोले- अहो। इस राक्षस राज का रूप कैसा अद्भुत है। कैसा अनोखा धैर्य है। कैसा तेज है। यदि इसमें प्रबल अधर्म न होता तो यह इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं का संरक्षक हो सकता था। इसके लोकनिन्दित, क्रूरता निष्ठुर, कर्मों के कारण देवताओं और दानवों सहित सम्पूर्ण लोक इससे भयभीत रहते हैं। तब अमित तेजस्वी राक्षस राज का प्रभाव देखकर वे बुद्धिमान वानर वीर ऐसी अनेक प्रकार की चिंताएं करते रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में उन्चासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

पचासवाँ सर्ग

रावण का प्रहस्त द्वारा हनुमानजी का वहाँ आने का कारण पुछवाना।

तत्पश्चात् समस्त लोकों को चलानेवाला रावण हनुमानजी को सामने देखकर महान् रोष में भर गया। साथ ही तरह तरह की आशंकाओं से उसका दिल ही बैठ गया। उसने सोचा क्या इस वानर के रूप में साक्षात् भगवान् नंदी तो यहाँ नहीं पधारे हैं जिन्होंने पूर्वकाल में कैलाश पर्वत पर मेरे द्वारा उपहास किये जाने पर मुझे शाप दे दिया था। तब इस तरह तर्क वितर्क के बाद उसने मंत्रिवर प्रहस्त से कहा- इस दुरात्मा से पूछो तो सही कि यह कहाँ से आया है और इसके यहाँ आने का कारण क्या है? प्रमदावन (अशोक वाटिका) को उजाड़कर राक्षसों को मारने का इसका उद्देश्य क्या है? रावण की बात सुनकर प्रहस्त हनुमानजी से बोला-वानर तुम घबराओ नहीं। तुम्हारा भला हो। तुम्हें जिस किसी ने यहाँ भेजा हो ठीक ठीक बता दो तो छोड़ दिये जाओगे। विष्णु, वरुण, कुबेर, यक्ष ने तो तुम्हें दूत बनाकर नहीं भेजा

है ? यदि तुम सच-सच बता दोगे तो छोड़ दिये जाओगे, यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना असम्भव हो जायेगा। अथवा सब बातें छोड़कर यह बताओ कि तुम्हारा यहाँ आने का उद्देश्य क्या है ? तब प्रहस्त के इस प्रकार पूछने पर हनुमानजी रावण से बोले, मैं न तो यम, वरुण, कुबेर का दूत हूँ और न मुझे भगवान् विष्णु ने ही यहाँ भेजा है। मैं जन्मजात वानर हूँ और राक्षसराज रावण से मिलने के उद्देश्य से ही मैंने इस दुर्लभ वन को उजाड़ा है। फिर तुम्हारे बलवान राक्षस युद्ध की इच्छा से मेरे पास आये तब अपनी रक्षा के लिए मुझे उनका सामना करना पड़ा। देवता या असुर मुझे ब्रह्मास्त्र से बाँध नहीं सकते क्योंकि इसके लिए भी मुझे वरदान मिल चुका है। मैंने यह बंधन राक्षसराज को देखने की इच्छा से स्वीकार किया है। मैं तुम्हारे पास भगवान् श्रीराम के कार्य से आया हूँ इसलिए मेरे हितकारी वचन को आप अवश्य सुनें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुंदर काण्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

हनुमानजी का राम के प्रभाव का वर्णन

तब रावण की ओर देखते हुए हनुमानजी ने अत्यंत शांति भाव से कहा- मैं सुग्रीव का संदेश लेकर तुम्हारे पास आया हूँ अतः तुम उनके लाभदायक वचनों को सुनो। अभी हाल में ही दशरथ नाम के एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं। उनके परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचंद्रजी पिता की आज्ञा से धर्म मार्ग का आश्रय लेकर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में आये थे। सीता महात्मा जनक की पुत्री हैं। जन स्थान में आने पर श्री राम की पत्नी सीता कहीं खो गयी हैं। तब श्रीराम ऋष्यमूक पर्वत पर जाकर सुग्रीव से मिले। वहाँ सुग्रीव ने उनसे सीता को ढूँढ़ निकालने की प्रतिज्ञा की और श्री राम ने सुग्रीव को वानरों का राज्य दिलाने का वचन दिया। तत्पश्चात् श्रीराम ने बाली को मारकर सुग्रीव को किष्किंधा का राजा बना दिया। अब सुग्रीव सीता को खोज निकालने के लिए व्यग्र हो उठे हैं। उन्होंने समस्त दिशाओं में सीता की खोज में वानरों को भेजा है। उन वानरों में कोई गरूड़ के समान गति वाला है तो कोई वायु के समान। मेरा नाम हनुमान है और मैं वायुदेवता का

औरस पुत्र हूँ। सीता का पता लगाने और तुमसे मिलने के लिए मैं सौ योजन समुद्र लांघकर, तीव्र गति से यहाँ आया हूँ। मैंने घूमते हुए सीता को तुम्हारे अन्तःपुर में देखा है। महामते ! तुमने तप का संग्रह किया है। अतः तुम्हें दूसरे की स्त्री क़ो अपने घर में रखना शोभा नहीं देता। क्योंकि धर्म विरुद्ध कार्य करनेवाले का भगवान जड़ मूल से नाश कर डालते हैं। देवताओं और असुरों में ऐसा कोई वीर नहीं जो श्रीराम के बाणों के आगे ठहर सके। इसलिए मेरी हितकर बात मानकर जानकी जी को श्रीराम के पास लौटा दो । मैंने सीता को वहाँ पा लिया है और उनकी अवस्था को भी लक्ष्य किया है। वे निरंतर शोक में डूबी रहती हैं। जैसे विषमिश्रित अन्न को कोई पचा नहीं सकता वैसे ही सीताजी को अपनी शक्ति से पचा लेना किसी के लिए भी सम्भव नहीं। तुमने तपस्या के बल पर ऐश्वर्य का संग्रह किया है तथा शरीर को चिरकाल तक धारण करने की शक्ति प्राप्त की है उसका विनाश करना उचित नहीं। राक्षसराज! सुग्रीव और श्रीराम न तो देवता है न यक्ष और न राक्षस ही हैं। श्रीरघुनाथजी मनुष्य हैं और सुग्रीव वानरों के राजा। अतः उनके हाथों से तुम अपने प्राणों की रक्षा कैसे करोगे ? तुमने पहले जो धर्म किया है उसका पूरा पूरा फल यहीं पा लिया है। अब सीता हरण रूपी अधर्म का फल भी तुम्हें शीघ्र मिलेगा। जनस्थान के राक्षसों का संहार, बाली का बध तथा श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री इन तीनों कार्यों को अच्छी तरह समझ लो फिर वैसे ही अपने हित के लिए कार्य करो। मैं अकेले ही सम्पूर्ण लंका का नाश कर सकता हूँ किन्तु मेरे लिए श्रीराम की ऐसी आज्ञा नहीं है। उन्होंने सीता का तिरस्कार करने वालो क़ो स्वयं संहार करने क़ा व्रत लिया है। तुम्हारी बात क्या ? स्वयं इन्द्र भी उनके सामने नहीं ठहर सकते। सीता को तुम लंका का विनाश करनेवाली काल रात्रि समझो। अतः तुम अपने कल्याण की बात को ध्यान में ले आओ। अपने हक से सम्पूर्ण लंका को मौत के मुख में न झोंको श्रीराम में इतनी शक्ति है कि वे सम्पूर्ण लंका का विनाश कर उसका नूतन निर्माण कर सकते हैं। वे विष्णु के समान पराक्रमी हैं। उनसे लोहा लेना किसी के वश की बात नहीं। इस अपराध के कारण तुम्हारा भी जीवित रहना कठिन है। यद्यपि निर्भयता पूर्वक भाषण करनेवाले वानर श्रेष्ठ हनुमानजी की बातें बड़ी युक्ति पूर्ण थी लेकिन फिर भी वह रावण को बहुत अप्रिय लगीं। उसने अपनी आंखें तरेर

कर उनके बध के लिए आज्ञा दे दी।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के सुन्दर काण्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५१)

बावनवाँ सर्ग

विभीषण का दूत के बध को अनुचित बताना

महाकपि हनुमानजी की बात सुनकर रावण ने सेवकों को आज्ञा दी इस वानर का बध कर डालो। तब विभीषण जो वहीं थे, बोले हनुमानजी अपने को सुग्रीव और श्रीराम के दूत बता चुके हैं। अतः राक्षसराज आप अपना क्रोध त्याग कर मेरी बात सुनिये। ऊँच-नीच का ज्ञान रखनेवाले श्रेष्ठ राजा दूत का बध नहीं करते हैं। आप भले बुरे का ज्ञान रखनेवाले हो यदि रोष के वशीभूत हो जायें तो समस्त शास्त्रों का पान्डित्य प्राप्त करना केवल भ्रम ही होगा। अतः आप उचित अनुचित का बिचार करके किसी दूसरे दण्ड का विधान कीजिए। तब रावण अत्यंत कोप करता हुआ बोला-पापियों का बध करने में पाप नहीं इसलिए मैं इसका बध करके रहूँगा। रावण का वचन दोषों से भरा था अतएव इसे सुनकर विभीषण ने फिर कहा- लंकेश्वर प्रसन्न होइये। सत्पुरुषों का कथन है कि दूत कहीं किसी भी समय बध करने योग्य नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है। लेकिन दूत के लिए बध करने का कोई विधान नहीं है। उनके लिए किसी अंग को विकृत कर देना या कोड़े से पिटवाना या शरीर में कोई चिह्न दाग देना ही उचित बताया गया है। आप बुद्धि धर्म और अर्थ की शिक्षा से युक्त हैं। आप शक्तिशाली भी हैं। आपने अनेक युद्धों में बार बार देवेश्वरों तथा नरेशों को पराजित किया है। किन्तु इस वानर को मारने में मुझे कोई लाभ नहीं दिखायी देता बल्कि जिन्होंने इनको भेजा है उन्हीं को यह प्राण दण्ड दिया जाये। इसके मारने से आपको शत्रु के गतिविधि का भी पता न चलेगा और इसके नष्ट हो जाने पर मैं किसी ऐसे प्राणी को भी नहीं देखता जो दोनों राजकुमारों को आपके विरुद्ध युद्ध करने के लिए तैयार कर सके। वीर! आप देवताओं के लिए भी दुर्जय हैं। अतः पराक्रम और उत्साह से भरे हुए इन राक्षसों के मन में जो युद्ध करने का हौसला बढ़ा है उसे नष्ट न होने दें। आप उन राजकुमारों को अपनी सेना

भेजकर कैद करवा लें यहीं उचित होगा। अपने छोटे भाई विभीषण के इस राय को रावण ने बुद्धि से सोच विचारकरकेस्वीकार कर लिया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुंदर काण्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५२)

तिरपनवाँ सर्ग

राक्षसों का हनुमानजी की पूंछ में आग लगाना

तदनन्तर विभीषण की बात सुनकर रावण बोला- विभीषण ! तुम्हारा कथन उचित है। वास्तव में दूत का बध करने के बजाय उसे कोई दूसरा दण्ड देना चाहिए। वानरों को अपनी पूँछ बहुत प्यारी होती है। वही इसका आभूषण है। अतः इसकी पूंछ जला दी जाए तब यह जली पूंछ ही लेकर अपने स्वामी के पास जाये। फिर उसने आज्ञा दी कि इसकी पूंछ में आग लगाकर इसे सड़कों और चौराहों सहित समस्त नगर में घुमाया जाये। स्वामी का आदेश पाकर राक्षसगण हनुमानजी की पूंछ में पुराने सूती वस्त्र लपेटने लगे। जिस समय उनकी पूंछ में वस्त्र लपेटा जाने लगा उस समय उनका शरीर बहुत बड़ा हो गया, फिर जब राक्षसों ने उनकी पूंछ पर तेल छिड़कर आग लगायी उस समय हनुमानजी का हृदय रोष से भर उठा और वे अपनी जलती हुई पूंछ से राक्षसों को पीटने लगे। तत्पश्चात् उन राक्षसों ने उन्हें कसकर बांध दिया। तब उन्होंने सोचा यद्यपि मैं बंधा हुआ हूँ तो भी इन राक्षसों का मुझ पर जोर नहीं चल सकता। इनके बंधनों को तोड़कर मैं ऊपर उछल जाऊँगा और इन्हें फिर मारुँगा। यद्यपि मैं अकेला ही इन्हें मार सकता हूँ किंतु श्रीराम चंद्र की प्रसन्नता के लिए मैं ऐसे बंधन को चुपचाप सह लूंगा। फिर मैं इसके दुर्ग रचना की विधि पर दृष्टि रखते हुए इनका अच्छी तरह अवलोकन करुँगा। तत्पश्चात् वे क्रूर कर्मा राक्षस हनुमानजी को पकड़कर बड़े हर्ष से ले चले और उनके अपराधों की घोषणा करते हुए सारी लंकापुरी में घुमाने लगे। हनुमानजी बड़े मौज से सारी पुरी का अवलोकन करने लगे। सब राक्षसगण उन्हें चौराहों में चार खंभे वाले मण्डपों में घुमाते हुए जासूस कहकर उनका परिचय देने लगे। उस समय हनुमानजी की जलती हुई पूंछ देखने के लिए सभी बालक, वृद्ध, स्त्रियाँ अपने अपने घरों से निकल पड़े। लेकिन जब

सीताजी को यह समाचार सुनाया गया तो वे मन ही मन शोक संतप्त होकर अग्नि देव की उपासना करने लगीं और बोलीं-अग्निदेव ! यदि मैंने पति की सेवा की है तो तुम हनुमानजी के लिए शीतल हो जाओ। यदि मेरा सौभाग्य शेष है तो तुम हनुमानजी के लिए शीतल हो जाओ। यदि सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीव इस दुख के महासागर से मेरा उद्धार कर सके तो तुम शीतल हो जाओ। तब अग्नि देव शांत भाव से जलने लगे और वायुदेव भी बर्फीली हवा के समान शीतल होकर बहने लगे। तब हनुमानजी ही सोचने लगे। अरे यह आग सब ओर से प्रज्वलित होने पर भी मुझे जलाती क्यों नहीं ? इसकी लौ तो ऊँची उठती दिखाई पड़ती है लेकिन यह मुझे पीड़ा नहीं पहुँचा रही है। लगता है इस तरह शीतलता प्रकट कर यह श्रीराम के प्रति आदर प्रकट कर रहे हैं। निश्चय ही सीताजी की दया, श्रीराम का तेज और मेरे पिता के मैत्री के प्रभाव से अग्निदेव मुझे जला नहीं रहे हैं। मेरे लिए भी यही उचित होगा कि मैं पराक्रम रहते हुए इसका बदला लूँ। यह सोचकर महाकपि हनुमान जिन्हें राक्षसों ने पकड़ रखा था बड़े वेग से ऊपर उछले और गर्जना करने लगे। फिर उछलकर वे पर्वत शिखर के समान ऊँचे नगर द्वार पर जा पहुँचे तत्पश्चात् वह पुनः छोटे और पतले हो गये इस प्रकार उन्होंने अपने सारे बंधनों को निकाल दिया। उन बंधनों को निकाल देने के पश्चात् वे पुनः पर्वताकार हो गये और फाटक के सहारे रखे हुए एक परिघ को उठाकर समस्त राक्षसों को पुनः मार गिराने लगे। इस समय जलती हुई पूंछ से जो ज्वालाओं की माला सी निकल रही थी उससे विभूषित होकर वेदेदीप्यमानसूर्य के समान प्रकाशित हो रहे थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

लंकापुरी का दहन और राक्षसों का विलाप

हनुमानजी के मनोरथ पूर्ण हो गये थे। उनका उत्साह बढ़ता जा रहा था। वे सोचने लगे लंका वासियों को अधिक कष्ट पहुँचनेवाले अब मुझसे कौन सा काम बाकी रह गया है। प्रमदावन को तो मैंने पहले ही उजाड़ दिया।

रावण की सेना के भी एक अंश का संहार कर डाला है। अब दुर्ग का विनाश करना शेष है। मेरी पूंछ में जो यह अग्नि देव देदीप्यमान हो रहे हैं उनसे श्रेष्ठ गृहों की आहुति देना न्याय संगत जान पड़ता है। ऐसा सोचकर वे लंका के महलों पर घूमने लगे। घूमते-घूमते वायु के समान बलवान हनुमानजी उछलकर प्रहस्त के मकान पर जा पहुँचे। उसमें आग लगाकर वे दूसरे घर में कूद पड़े। वह महापार्श्व का निवास स्थान था। हनुमानजी ने उसमें भी आग लगा दी। तत्पश्चात् उन्होंने वज्रदंष्ट्र, शुक और सारण के घर में भी कूदकर आग लगायी। फिर मेघनाद, जम्बुमाली और सुमाली के घरों को फूंका। तदनन्तर रश्मिकेतु, सूर्यशत्रु, ह्रस्वकर्ण आदि प्रमुख निशाचरों के घरों को जलाया। उस समय उन्होंने विभीषण का घर छोड़ सारे समृद्धिशाली राक्षसों के घरों को जलाकर उनकी सम्पत्ति नष्ट कर डाली। तत्पश्चात् वे राक्षसराज रावण के महल में जा पहुँचे। तब उस श्रेष्ठ भवन को भी जलाते हुए हनुमानजी भयानक गर्जन करने लगे। हवा का सहारा पाकर वह प्रबल आग बड़े वेग से बढ़ने लगी और कालाग्नि के समान प्रज्वलित हो उठी। तब पवन देव उस आग को सभी घरों में फैलाने लगे। इससे रत्नों से विभूषित ऊँचे-ऊँचे महल कट कट कर पृथ्वी पर गिरने लगे। उस समय राक्षस अपने अपने घरों को बचाने और उनकी आग बुझाने के लिए इधर उधर दौड़ने लगे। उनका उत्साह नष्ट हो गया था और तुमुल आर्तनाद करने लगे। कितनी ही स्त्रियाँ गोद में बच्चे लिए रोती चिल्लाती हुई नीचे गिर पड़ीं उस समय हनुमान जी ने देखा कि जलते हुए घरों से हीरा, मूंगा, नीलम तथा सोने चाँदी आदि पिघल पिघल कर बहे जा रहे हैं जैसे आग सूखे काठ और तिनकों को जलाने में कभी तृप्त नहीं होती वैसे हनुमानजी बड़े बड़े राक्षसों के बध करने से कभी तृप्त नहीं होते थे। जैसे पूर्वकाल में भगवान् रुद्र ने त्रिपुर को दग्ध कर डाला था वैसे ही हनुमानजी ने लंकापुरी को जला दिया। उस समय हवा का सहारा पाकर वह आग इतनी बढ़ गयी थी कि वह प्रलय कालीन अग्नि के समान दिखाई पड़ने लगी। वह आग राक्षसों के शरीर रूपी घी की आहुति पाकर उत्तरोत्तर बढ़ने लगी थी। साथ ही मकानों और पर्वतों के फटने आदि से होनेवाले नाना प्रकार के धड़ाकों के शब्द बिजली के कड़कने को भी मात करने लगे। वह विशाल अग्नि ब्रह्माण्ड को फोड़ती हुई सी प्रतीत होती थी।

Mookerji sharma (I.K.S) Jammu Collection

उस समय आकाश तक फैली हुई आग की प्रभा टेसू के फूल की भांति लाल लाल दिखाई देती थी। नीचे से जिनका संबंध टूट गया था वे आकाश में फैली हुई धूम पंक्तियां नीले रंग के मेघ के समान शोभायमान थे। तब लंकापुरी के बड़ें-बड़े राक्षसों के झुण्ड एकत्र होकर आपस में कहने लगे। यह देवताओं का राजा बज्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् यम तो नहीं है। यह वरुण, रुद्र अग्नि, चँद्रमा में से तो कोई नहीं है। अथवा ब्रह्माजी ने स्वयं ही वानर का रूप धारण कर हमारा संहार करने तो नहीं आ गये। तत्पश्चात् वे लंकापुरी को इस तरह द्ग्ध होते देख तुमुलनाद करते हुए फूट फूटकर रोने लगे और कहने लगे-हाय! लगता है अब हमारे सारे पुण्य नष्ट हो गये हैं। उस समय हनुमानजी के क्रोध बल के प्रभाव से सारी लंकापुरी आग की ज्वाला से घिर गयी थी। इस समय वह पुरी किसी शाप से आक्रांत हुई सी जान पड़ती थी। तब हनुमानजी ने देखा कि वहीं के समस्त राक्षस घबराहट के कारण त्रस्त और विषादग्रस्त हो गये थे। तत्पश्चात् पवनपुत्र हनुमान जी अशोक वाटिका को उजाड़कर बड़े बड़े राक्षसों को मारकर तथा लंकापुरी को जलाकर शान्त हो गये। तब वे मन ही मन श्रीराम का स्मरण करने लगे और उस समय सम्पूर्ण देवताओं ने हनुमान जीका स्तवन किया। तदनन्तर श्रेष्ठ भवनों के शिखर पर खड़े हुए हनुमानजी पूँछ से उठी हुई ज्वालाओं से अलंकृत देदीप्यमान सूर्य देव के समान प्रकाशित होने लगे। फिर उन्होंने समुद्र के जल में अपनी पूँछ की आग बुझायी। उस समय हनुमानजी को कालाग्नि मानकर समस्त प्राणी भय से थर्रा उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुंदरकाण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५४)

पचपनवाँ सर्ग

सीताजी के लिए हनुमानजी की चिंता

तदनन्तर जब हनुमानजी ने देखा कि सारी लंकापुरी जल रही है और वहाँ के निवासियों पर त्रास छा गया है तब उनके मन में सीता के दग्ध होने की आशंका से बड़ी चिंता हुई। अब उन्हें अपने से घृणा होने लगी और वे मन ही मन कहने लगे कि हाय! मैंने यह कौन से कुत्सित कर्म कर डाला है।

वास्तव में महात्मा पुरुष वही है जो अपने मन में उठे हुए कोप को बुद्धि के द्वारा उसी प्रकार शांत करे जैसे साधारण लोग जल से अग्नि को, अधिक कुपित हुआ मनुष्य कभी इस बात का विचार नहीं करता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं। मेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, मैं निर्लज्ज और महान् पापाचारी हूँ। मैंने सीता की रक्षा का कोई विचार न करके लंका में आग लगा दी और इस तरह अपने स्वामी की ही हत्या कर डाली। जिस कार्य की सिद्धि के लिए यह सारा उद्योग किया वह कार्य ही मैंने नष्ट कर दिया क्योंकि लंका को जलाते समय मैंने सीता की रक्षा नहीं की। इस तरह क्रोध में पागल हो जाने से मैंने श्रीराम के कार्य को जड़ से काट दिया। यदि अपनी विपरीत बुद्धि के कारण मैंने सारा कार्य चौपट कर दिया तो अच्छा नहीं जान पड़ता है मैं आज ही अपने प्राणों का विसर्जन कर दूँ। जब मैंने सारा कार्य ही नष्ट कर डाला है तब जीते जी कैसे सुग्रीव व श्रीराम और लक्ष्मण को मुँह दिखा सकता हूँ। मैंने रोष के कारण तीनों लोकों में विख्यात इस वानरोचित चंचलता का ही प्रदर्शन किया है। यदि सीता नष्ट हो जाती हैं तो श्रीराम लक्ष्मण भी नष्ट हो जायेंगे। उस समय बान्धवों सहित उनके मित्र सुग्रीव भी जीवित नहीं रहेंगे। फिर इस समाचार को सुनकर भरत, शत्रुघ्न कैसे जीवित रहेंगे। इस प्रकार सबके नष्ट होने पर सारी प्रजा ही शोक संतप्त से पीड़ित हो जायेगी। इस तरह मुझे ही सम्पूर्ण जगत् के विनाश के लिए भय का भागी होना पड़ेगा। तब इस तरह चिंता में पड़े हनुमानजी को कई शुभ शकुन दिखाई दिये जिनके अनेक परिणामों से वे अच्छी तरह परिचित थे। अब उन्होने सोचा कि सम्भवतः सीता अपने ही तेज से सुरक्षित हों। क्योंकि आग आग को नहीं जलाती। मुझे भी श्रीराम के प्रभाव और सीता के पुण्य बल से यह दहक अग्नि नहीं जला सकी है। उस समय हनुमानजी ने विस्मित होकर पुनः उस घटना का स्मरण किया जब कि समुद्र के जल में उन्हें मैनाक पर्वत का दर्शन हुआ था। फिर वे सोचने लगे-तपस्या, सत्य भाषण तथा पति में आनंद भक्ति के कारण आर्या सीता अग्नि को ही जला सकती हैं अग्नि उन्हें नहीं जला सकती। वे सीताजी के बारे में यह सोच ही रहे थे कि वहाँ उन्हें महात्मा चारणों की बात सुनाई दी-अहो, हनुमानजी, राक्षसों के घरों में आग लगाकर तुमने बहुत दुष्कर कार्य किया है। इस समय सारी लंका जन कोलाहल से परिपूर्ण

चीत्कार करती हुई सी जान पड़ती है। परन्तु सीता पर आँच नहीं आयी यह हमारे लिए बहुत ही अद्भुत और आश्चर्य की बात है। चारणों की यह बात सुनकर हनुमानजी के मन मे बड़ी प्रसन्नता हुई। उस समय हनुमानजी ने अपना मनोरथ सफल समझा और पुनः सीता का प्रत्यक्ष दर्शन करके लौट जाने का विचार किया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के सुंदर काण्ड में पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

हनुमानजी का पुनः सीताजी से मिलना

तदनन्तर हनुमानजी अशोक वृक्ष के पीछे बैठी हुई जानकीजी के पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले-आर्ये! यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि मैं आपको सकुशल देख रहा हूँ। तब सीताजी बोलीं-वानरवीर! तुम यहाँ किसी गुप्त स्थान पर ठहर जाओ और आज विश्राम करके कल लौटो! जब तुम चले जाओगे तब फिर तुम्हारे आने तक मेरे प्राण रहेंगे या नहीं इसका कोई विश्वास नहीं। कपि श्रेष्ठ ! मेरे मन में यह संदेह अब भी लगा हुआ है कि श्रीराम और लक्ष्मण तुम अन्य वानर वीर इस दुर्लघ्य समुद्र को कैसे पार कर सकोगे। यद्यपि मैं जानती हूँ कि इस कार्य को पूरा करने में तुम अकेले ही सक्षम हो। किन्तु इससे केवल तुम्हारा यश बढ़ेगा श्रीराम का नहीं। अतएव तुम ऐसा उपाय करो जिससे महाराज श्रीराम का पराक्रम प्रकट हो। तब यह सुनकर हनुमानजी ने कहा-देवि! वानरराज सुग्रीव बड़े शक्तिशाली पुरुष हैं। वे आपके उद्धार के लिए प्रतिज्ञा कर चुके हैं। वे शीघ्र ही कोटि वानरों से घिरे हुए यहाँ आयेंगे। उनके साथ श्रीराम और लक्ष्मण भी होंगे जो अपने सायकों से लंकापुरी को विध्वंस कर देंगे और फिर आपको साथ ले अपनी पुरी पधारेंगें। पुत्र मंत्री और भाई बंधुओं सहित राक्षस राज रावण के मारे जाने पर आप श्री रामचंद्रजी से उसी प्रकार मिलेंगी जैसे रोहिणी चंद्रमा से। फिर सीता को इस प्रकार आश्वासन देकर उन्होंने उन्हें प्रणाम कर समुद्र के बीच से होकर लौट जाने का बिचार किया। अब उनके लिए यहाँ कोई कार्य बाकी नहीं रह गया था। इसलिए वे श्रीरामचंद्र के दर्शन के लिए उत्सुक हो

उत्तम अरिष्ट गिरि पर चढ़ गये। वहाँ ऊँचे-ऊँचे पद्म के समान वर्णवाले वृक्ष उस पर्वत के वस्त्र के समान प्रतीत होते थे। नाना प्रकार के रत्न मानो उसके नेत्र थे। पर्वतीय नदियों का गंभीर घोष ऐसा लग रहा था मानो पर्वत सस्वर वेद पाठ कर रहा हो। नदियों के कल कल नाद से मानो वह गीत गा रहा था। झूमते हुए सरकंडों के श्याम वन से वह काँपता हुआ प्रतीत होता था। विषधर सर्पों के फुफकार से वह लंबी सांस लेता प्रतीत हो रहा था। विशाल गुफाओं द्वारा वह ध्यान साकरता हुआ लग रहा था और शिखरों द्वारा वह आकाश में अंगड़ायी सी ले रहा था। वहाँ नाना प्रकार के पशु सब ओर भरे हुए थे। बहुसंख्यक झरनों से विभूषित तथा राशि-राशि शिलओं से भरा हुआ था। ऐसे रमणीय पर्वत पर हनुमानजी श्रीराम चंद्र के दर्शन की शीघ्रता से प्रेरित होकर चढ़ गये। उस समय उनके पैरों के आघात से उसके शिखरों की शिलायें चूर-चूर होकर बिखरने लगीं। तब उन्होंने अपने शरीर को बहुत बड़ा बना लिया और दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर बड़े वेग से चले। हनुमानजी के पैरों के दबाव से वह पर्वत भांति-भांति के प्राणियों सहित तत्काल धरती में धंस गया। फूलों से लदे उसमें बहुसंख्यक वृक्ष इस प्रकार पृथ्वी पर गिर पड़े मानो उन्हें बज्र मार गया। उस पर्वत की कन्दराओं में दबे हुए सिंह का आर्तनाद आकाश को फाड़ता हुआ सुनायी दे रहा था। उस पर मौजूद विद्या धारियाँ सहसा उस पर्वत से ऊपर की ओर उड़ चलीं। साथ ही किन्नर,नाग, गंधर्व यक्ष पर्वत, छोड़ कर आकाश में स्थित हो गये।अरिष्टपर्वत तीस योजन ऊँचा और दस योजन चौड़ा था फिर भी हनुमानजी के पैरों से दबकर वह भूमि के बराबर हो गया। तब उस भयानक समुद्र को लीलापूर्वक लाँघ जाने की इच्छा से हुनमानजी आकाश में उड़ चले।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दर काण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५६)

सत्तावनवाँ सर्ग

हनुमानजी का समुद्र लांघकर सुहृदों से मिलना

तदनन्तर हनुमानजी बिना थके मादे उस रमणीय आकाशरूपी समुद्र को पार करने लगे। वे उस समय आकाश को अपना ग्रास बनाते हुए चँद्र मण्डल को नखों से खरोंचते हुए, सम्पूर्ण अंतरिक्ष को समेटते हुए और बादलों के समूह को

खींचते हुए अनायास ही अपार महासागर के पार चले आ रहे थे। वे कभी उन मेघ समूहों में प्रवेश करते और कभी बाहर निकलते थे। नाना प्रकार के मेघों की घटाओं के भीतर होकर जाते हुए धवलाम्बरधारी वीर वर हनुमानजी का शरीर कभी दिखता था और कभी अदृश्य हो जाता था। अतः वे उस समय चँद्रमा के समान प्रतीत होते थे। मेघ समूहों को विदीर्ण करने के कारण वे आकाश में गरूड़ के समान जान पड़ते थे। वे प्रसिद्ध राक्षसों को मारकर अपना नाम प्रसिद्ध कर चुके थे। तत्पश्चात् सीता को नमस्कार कर वे तीव्रगति से पुनः समुद्र के मध्य भाग में आ पहुँचे। वहाँ से मैनाक का स्पर्श कर धनुष से छूटे हुए बाण की भाँति आगे बढ़ गये और भारी गर्जना करते हुए सब ओर से दसों दिशाओं को कोलाहल पूर्ण कर दिया। फिर वे अपने मित्रों को देखने के लिए उत्सुक होकर उनके विश्राम स्थान की ओर बढ़े और पूंछ हिलाकर जोर जोर से सिंहनाद करने लगे। उस समय हनुमानजी के दर्शन की इच्छा से जो शूरवीर महाबली वानर समुद्र के तट पर पहले से ही बैठे थे। उन्होंने हनुमानजी का जोर जोर से सिंहनाद सुना। गर्जते हुए पवन कुमार का वह सिंहनाद सुनकर सब ओर बैठे हुए समस्त वानर अपने सुहृद् हनुमानजी की दर्शन करने के लिए उत्कंठित हो उठे। वे कहने लगे- इसमें संदेह नहीं कि हनुमानजी अपना कार्य सिद्ध कर के आ रहे हैं क्योंकि कार्य में सफलता पाये बिना इनकी ऐसी गर्जना हो ही नहीं सकती। उस समय हनुमानजी के भुजाओं और जाँघों का महान् वेग देखकर सभी वानर हर्ष में भरकर इधर उधर उछलने कूदने लगे। तब वे वृक्षों पर चढ़कर अपने स्पष्ट दिखायी पड़नेवाली वस्त्र हवा में इधर उधर हिलाने लगे। तत्पश्चात् पर्वत के समान विशाल शरीर वाले वेगशाली वीरवर हनुमानजी जो अरिष्ट पर्वत से उछलकर चले थे वृक्षों से भरे हुए महेन्द्र पर्वत के समान आकाश से नीचे आ गये। तब वे सभी श्रेष्ठ वानर प्रसन्न चित्त हो हनुमानजी को घेरकर खड़े हो गये। उस समय वे भाँति भाँति की भेंट सामग्री तथा फल-फूल लेकर आये और हनुमानजी का स्वागत सत्कार करने लगे। यहही नहीं वे हनुमानजी को बैठाने के लिए वृक्षों की शाखाएं तोड़ लाये। तत्पश्चात् महामय हनुमानजी ने कहा- मुझे सीताजी के दर्शन हो गये हैं। फिर सबके पूछने पर उन्होंने बताया कि जनकनंदिनी सीता लंका के अशोक वन में निवास करती हैं। वहाँ भयंकर

आकार वाली राक्षसियाँ उनकी रखवाली करती हैं। साध्वी सीता बहुत भोली भाली हैं और एक वेणी धारण किये रहती हैं। वे श्रीराम के दर्शन के लिए उत्सुक हैं और उपवास के कारण बहुत थक गयी हैं। उनके केश जटा के रूप में बदल गये हैं। उस समय सीताजी के दर्शन हो गये हैं यह वचन वानरों को अमृत के समान प्रतीत हुआ। तब उनमें से अनेक हर्षनाद और कई कई सिंहनाद करने लगे। बहुत से हर्ष से उल्लसित हो अपनी पूँछ ऊपर उठाकर नाचने लगे, उस समय अंगद हनुमानजी से कहने लगे- वानर श्रेष्ठ! बल और पराक्रम में तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है। तुम उस समुद्र को लांघकर फिर इस पार लौट आये। वास्तव में तुम्हीं हम लोगों के जीवनरक्षक हो। तुम्हारे ही प्रसाद से हम लोग सफल मनोरथ होकर श्रीरामचंद्र से मिलेंगे। यह तुम्हारे लिए सौभाग्य की बात है जो तुम श्रीराम की पत्नी सीता देवी का दर्शन कर आये। तत्पश्चात् सभी वानर इस समाचार को सुनने के लिए अंगद, हनुमान और जाम्बवान् चारों ओर से घेरकर बैठ गये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के सुन्दर काण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

जाम्बवान् के पूछने पर हनुमानजी का सारा वृत्तांत बताना

जब सभी वानर वहाँ प्रसन्नता पूर्वक बैठ गये तब जाम्बवान् ने हनुमानजी से प्रेमपूर्वक कार्य सिद्धि का समाचर पूछा- महाकपे! तुमने सीताजी को कैसे देखा? वे वहाँ किस प्रकार रहती हैं। राक्षस उनके प्रति कैसा व्यवहार करते हैं? तुमसे उनकी कब बातचीत हुई? तब यह सब बातें सुनकर हम लोग आगे के कार्यक्रम पर बिचार करेंगे। जाम्बवान् की बातें सुनकर हनुमानजी के शरीर में रोमांच हो आया। उन्होंने मन ही मन सीता जी को प्रणाम कर इस प्रकार कहा- मैं सुमद्र के दक्षिण तट पर जाने की इच्छा से महेन्द्र पर्वत के शिखर से आकाश में उछला था, तब आगे बढ़ने पर एक सुवर्ण मय पर्वत मेरी राह में खड़ा हो गया। मैंने उस सुवर्णमय पर्वत को अपने कार्य में बाधा समझकर उसे विदीर्ण करने का निश्चय किया। उस निश्चय के साथ ही मैंने अपनी पूँछ से उन पर प्रहार किया। फिर तो उसकी टक्कर से उस

महान् पर्वत के शिखर के सहस्त्रों टुकड़े हो गये। तब महागिरी मैनाक ने मेरे मन को प्रसन्न सा करते हुए मधुर वाणी में पुत्र कहकर मुझे पुकारा और कहा- मैं तुम्हारे पिता वायुदेव का मित्र हूँ इसलिए मुझे अपना चाचा समझो। मेरा नाम मैनाक है। बेटा! पूर्वकाल में सभी श्रेष्ठ पर्वत पंखधारी हुआ करते थे वे प्रजा को पीड़ा देते हुए सब ओर विचरते रहते थे। उनका ऐसा आचरण सुनकर इन्द्र ने अपने ब्रज्र से सहस्त्रों पर्वतों के पंख काट डाले। किन्तु उस समय तुम्हारे पिता ने मुझे इन्द्र के हाथ से बचा लिया। क्योंकि उन्होंने मुझे समुद्र में लाकर डाल दिया था और इससे मेरे पंख कटने से बच गये। तब मैनाक की बात सुनकर मैंने उन्हें अपना कार्य बताया और उनकी आज्ञा से वहाँ से आगे जाने को उत्साहित हुआ। फिर मैं वेग से आगे बढ़ा। तत्पश्चात् मुझे बीच समुद्र में नाग माता सुरसा देवी का दर्शन हुआ। उस समय देवी सुरसा मुझसे बोली-कपि श्रेष्ठ! देवताओं ने आज तुम्हें मेरा आहार नियत किया है। इसलिए मैं तुम्हें भक्षण करुँगी। यह सुनकर मैं उदास मुख होकर बोला-देवि! जिस समय श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण और अपनी पत्नी सीता के साथ दण्डकारण्य में आये थे। उस समय दुरात्मा रावण ने अनकी पत्नी सीता को हर लिया है। अब श्रीराम का दूत होकर सीता देवी के पास जा रहा हूँ। तुम श्रीराम चंद्रजी के राज्य में ही रहती हो। इसलिए तुम्हें उनकी सहायता करनी चाहिए। मैं इस कार्य को पूरा करने के बाद स्वयं तुम्हारे मुख में आ जाऊँगा। तब यह सुनकर सुरसा बोली-आहार के रूप में आया हुआ कोई प्राणी मुझे टालकर नहीं जा सकता। जब सुरसा ने ऐसा कहा तब मैं अपने दस योजन वाले शरीर के ड्योढ़ा कर लिया। तब सुरसा ने अपने मुख को मेरे शरीर से अधिक फैला लिया। यह देखकर मैने अपना शरीर अंगूठे के बराबर कर लिया और मुँह में घुसकर तत्क्षण बाहर निकल आया। उस समय सुरसादेवी अपने दिव्य रूप में प्रकट होकर बोली कपिश्रेष्ठ! तुम अपने कार्य सिद्धि के लिए सुखपूर्वक यात्रा करो और सीता को श्रीराम से मिलाओ। उस समय सभी प्राणियों ने साधु-साधु कहकर मेरी प्रशंसा की। तत्पश्चात् मैं फिर उड़ने लगा। उस समय किसी ने मेरी परछाँई पकड़ ली किन्तु मैं वहाँ किसी को देख नहीं पाया। तब मैंने नीचे की ओर दृष्टि डाली उस समय मुझे एक भयानक राक्षसी दिखाई दी जो जल में निवास करती थी। वह भयानक

राक्षसी अट्टहास करती हुई मुझसे बोली-विशाल काय वानर! कहाँ जा रहे हो। आओ, चिरकाल से निराहार पड़े हुए मेरे शरीर को आकर तृप्त करो। तब मैंने अच्छा कहकर उसकी बात मान ली और अपने शरीर को उसके मुख के प्रमाण से बहुत अधिक बढ़ा लिया। तब उसका विशाल और भयानक मुख मुझे भक्षण करने के लिए बढ़ने लगा। उसने मेरे प्रभाव को नहीं समझा था। फिर तो पलक मारते मारते मैंने अपने विशाल शरीर को छोटा बना लिया और उसका कलेजा निकालकर आकाश में उड़ गया। मेरे द्वारा कलेजा काट लिये जाने पर वह शिथिल होकर समुद्र के जल में गिर पड़ी। तब मुझे आकाशचारी सिद्ध महात्माओं की सौम्यवाणीसुनायीदी?अहो!तुमने सिंहिका नामवाली भयानक राक्षसी को मार डाला। तत्पश्चात् मुझे पर्वतमालाओं से मंडित समुद्र का वह दक्षिणी किनारा दिखाई पड़ा जहाँ लंकापुरी बसी हुई है। तब सूर्य देव के अस्ताचल को चले जाने पर मैंने लंकापुरी में प्रवेश किया। किन्तु वे भयानक पराक्रमी राक्षस मेरे विषय में कुछ नहीं जान सके। किन्तु उसी समय मेरे सामने एक भयानक स्त्री अट्टहास करती हुई आ खड़ी हुई। वह मुझे मार डालना चाहती थी पर मैने बायें हाथ के मुक्के के प्रहार कर उसे परास्त कर दिया और प्रदोषकाल में पुरी के भीतर प्रविष्ट हुआ। तब उस डरी हुई निशाचरी ने मुझसे कहा-वीर मैं साक्षात् लंकापुरी हूँ। तुमने जब अपने पराक्रम से मुझे जीत लिया तब तुम समस्त राक्षसों पर निश्चय ही विजय पा लोगे। उस समय सारा नगर घूमकर मैं रावण के अंतःपुर में पहुँचा। किन्तु मुझे सीता वहाँ दिखाईनहीं दी। इसलिए मेरे शोक का पारावर न रहा। तब मैं रावण के अशाक बाटिका में जा पहुँचा। वहाँ मुझे एक अशोक वृक्ष दिखायी दिया। उस पर चढ़कर मुझे सर्वांगसुंदरी सीताजी का दर्शन हुआ। वे एक ही वस्त्र पहने हुए थीं और उनके केश धूल से धूसर हो गये थे। रक्त और मास का सेवन करनेवाली क्रूर राक्षसियाँ उन्हें चारों ओर से घेरकर रखवाली करती थीं। वे बीच में बैठी हुई सीता को बारम्बार धमका रही थीं। किन्तु वे सिर पर एक ही वेणी धारण कर पति के चिंतन में तल्लीन थीं। वे रावण के हार्दिक भाव से दूर रहकर मरने का निश्चय कर चुकी थीं उसी अवस्था में मैं मृगनयनी सीता के पास पहुँच सका। उस समय सीता को अशोक वृक्ष के नीचे बैठी देखकर मैं भी उस वृक्ष पर स्थित हो गया और उन्हें

वहीं से निहारने लगा। इतने में ही रावण की स्त्रियां और महाबली रावण सहित सबके सब उस स्थान पर आ पहुँचे जहाँ सीताजी विराजमान थीं। यह देखकर सीता अपने दोनों उभरे हुए उरोजों को भुजाओं से ढंककर बैठ गयीं। तब रावण सीता के चरणों पर गिर पड़ा और बोला- विदेह कुमारी! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। तुम मुझे आदर दो। फिर सीता को अपनी उपेक्षा करते देख बोला- गर्वीले सीते! यदि तूने घमण्ड में आकर मेरा अभिनंदन नहीं करेगी तो आज से दो महीने बाद मैं तेरा खून पी जाऊँगा। तब सीता कुपित होकर बोली-नीच निशाचर! महाराज दशरथ के पुत्रवधू से यह न कहने योग्य बात करते हुए तेरी जीभ गिर क्यों नहीं गयी? तूने छिपकर मेरा हरण किया है? किन्तु तू भगवान श्रीराम चंद्र की समानता नहीं कर सकता। तू उनका दास होने योग्य भी नहीं। उस समय सीता की यह बात सुनकर रावण क्रोध से तिलमिला उटा और अपना दाहिना मुक्का उठाकर मिथलेश कुमारी को मारने को तैयार हो गया। तब रावण की भार्या मन्दोदरी ने आगे बढ़कर रावण को ऐसा करने से रोका और मधुर वचनों से रावण से बोली-राक्षस राज! सीता से तुम्हें क्या काम? आज तुम मेरे साथ रमण करो क्योंकि सीता मुझसे अधिक सुंदरीनहीं है।तदनन्तर उसकी अन्य स्त्रियाँ रावण को उठाकर अपने महल में ले गयीं। तत्पश्चात् रावण के हटते ही विकराल मुखवाली राक्षसियाँ क्रूरता पूर्ण वचनों से सीता को डराने धमकाने लगीं। किन्तु सीता पर उसका कोई असर न पड़ा। तब वे हताश होकर निद्रा के वशीभूत हो गयीं। उन सबके सो जाने पर सीता पुनः विलाप करने लगीं। तब उन राक्षसियों के बीच से त्रिजटा नामक राक्षसी उठी और उनसे बोली- अरी तुम सब अपने आपको ही जल्दी खाओ। सीता इस योग्य नहीं। आज मैंने रोंगटे खड़ेकर देने वाला स्वप्न देखा। वह राक्षसों के विनाश का सूचक है। हम लोग विदेहनन्दिनी से अपने अपराधों के लिए क्षमा मांगें यही अच्छा होगा। यदि सीता देवी प्रसन्न हो जायेंगी तो महान् भय से हमारी रक्षा करेंगी। तब यह सुनकर सीताजी बोलीं- यदि यह बात सच होगी तो मैं तुम लोगों की रक्षा अवश्य करुँगी। वहाँ कुछ क्षण ही विश्राम करने के बाद मैंने जानकी जी से वार्तालाप करने का विशेष उपाय सोचा। उस समय पहले मैंने इक्ष्वाकु वंश की प्रशंसा की। तब सीताजी के आँखों मे आँसू भर आये और वे मुझसे बोलीं-

कपिश्रेष्ठ! तुम कौन हो ? उनके वचन सुनकर मैंने कहा-देवि! तुम्हारे पति के सहायक एक महान पराक्रमी वानरराज सुग्रीव हैं। मैं उन्हीं का सेवक हूँ। मैं श्री राम की सहायता के लिए उन्हीं का दूत बनकर आया हूँ। श्रीराम ने पहचान के लिए आपको एक अंगूठी दी है। यह सुनकर सीता बोलीं-मेरी इच्छा है कि श्री रघुनाथजी रावण का संहार कर मुझे यहाँ से ले चलें। तब मैंने उनसे भी ऐसी पहचान मांगी जो श्रीरामचंद्र के आनंद प्रदान करनेवाली हो। मेरे कहने पर सीताजी ने मुझे उत्तम चूड़ामणि प्रदानकर फिर बोलीं- हनुमान तुम रघुनाथजी से मेरा सारा वृत्तांत सुनाना और ऐंसा प्रयत्न करना जिससे मेरा हाल सुनते ही श्रीराम और लक्ष्मण अविलंब यहाँ आ जायें। यदि ऐसा नहीं हुआ तो दो महीने तक ही मेरा जीवन शेष है। उनकी बात सुनकर राक्षसों के प्रति मेरा रोष बहुत बढ़ गया। फिर मैंने शेष बचे हुए भावी कार्यक्रम पर विचार किया। तदनन्तर मेरा शरीर बढ़ने लगा और मैं तत्काल पर्वत के समान हो गया। तब मैंने युद्ध की इच्छा से रावण के उस वन को उजाड़ना शुरू किया और वन विध्वंस का सारा समाचार राक्षसों ने जाकर उससे कहा। यह सुनकर राक्षसराज के अनुकूल चलनेवाले किंकर नामक अस्सी हजार बलशाली राक्षस आये। किंतु मैंने एक ही परिघ से जो लंका का सबसे सुंदर भवन था, वहाँ के राक्षसों का सहार करके तोड़-फोड़ डाला। फिर रावण ने प्रहस्त के बेटे जम्बुमाली को युद्ध के लिए भेजा। तब मैं अत्यंत घोर परिघ से मारकर उसे भी काल के गाल में डाल दिया। तब रावण ने अपने मंत्री के पुत्रों को भेजा। किन्तु वे भी मेरे हाथों मारे गये। तत्पश्चात् रावण ने अपने पुत्र अक्षकुमार को बहु संख्यक राक्षसों के साथ युद्ध के लिए भेजा। पर अक्षकुमार भी जल्दी ही युद्ध में काम में आ गया। तब रावण ने अपने दूसरे पुत्र बलवान् इन्द्रजीत् को भेजा। उसने जब देखा कि उसकी सारी सेना कुचल दी गयी है तो उसने ब्रह्मास्त्र चलाकर मुझे बाँध लिया। फिर तो राक्षसों ने मुझे रस्सी से बांध लिया। वे मुझे रावण के समीप ले गये। वहाँ रावण के द्वारा लंका आने का कारण पूछने पर मैंने बताया प्रभो ! सीता के दर्शन की इच्छा से मैं तुम्हारे महल में आया हूँ। मैं वायुदेवता का औरस पुत्र हूँ और मेरा नाम हनुमान है। मैं रामचंद्रजी का दूत हूँ और वानर राज सुग्रीव का मंत्री हूँ। वानरराज सुग्रीव ने मुझसे कहलाया है कि मैंने ऋष्यमुक पर्वत पर रहते हुए पराक्रमी रघुनाथ जी

के साथ मित्रता स्थापित कर ली है। श्री रघुनाथजी ने युद्धस्थल में एक हा बाण में बाली को मारकर सुग्रीव को वानरों का राजा बना दिया है। अतः उनको भी सम्पूर्ण हृदय से श्रीराम की सहायता करनी है। उनका कहना है कि इसके पहलेकि श्रीरघुनाथ जी तुम्हारी सेना का विनाश कर दें। तुम सीताजी को उन्हें लौटा दो। किन्तु मेरे इतना कहते ही रावण ने मुझे इस तरह देखा जैसे कि वह मुझे जला डालेगा। तब उसने मेरे प्रभाव को न जानकर अपने सेवकों को आज्ञा दी-कि इस वानर का बध कर दिया जाए। उसी समय उनके भाई विभीषण ने रावण से प्रार्थना की कि ऐसा करना कदाचित् उचित नहीं। क्योंकि यह मार्ग राजनीति के विरुद्ध है। क्योंकि किसी भी शास्त्र में दूत के वध का विधान नहीं है। दूत तो वही कहता है जो स्वामी के द्वारा उसे बताया गया होता है। अतः दूत को किसी दण्ड को देने के स्थान पर उसके किसी अंग को विकृत कर देना ही उचित बताया गया है। तब रावण ने मेरी पूँछ जलाने की आज्ञा दे दी। उसकी आज्ञा सुनकर राक्षसों ने मेरी पूँछ में सब ओर से सुतली की रस्सियों तथा रेशमी और सूती कपड़े लपेट दिये और तुरंत ही उन लोगों ने मेरी पूँछ में आग लगा दी। किन्तु उसी समय मैंने अपने विशालरूप को संकुचित कर अपने उस बंधन से छुड़ा लिया और लोहे के एक परिघ को उठाकर मैने उन राक्षसों को मार डाला। उसके बाद बड़े वेग से कूदकर मैं उस नगर के द्वार पर चढ़ गया। तत्पश्चात् मैं बिना किसी घबराहट के उस पुरी को अपनी जलती हुई पूँछ से जलाने लगा। फिर मैंने सोचा कि लंका में ऐसा कोई स्थान नहीं है जो जला हुआ न हो। अतः जानकी जी भी अवश्य नष्ट हो गयी होंगी। यदि सीताजी जल गयीः होंगी तो भगवान् श्रीराम का सारा काम ही विफल हो जायेगा। तभी चारणों की यह शुभवाणी मेरे कानों में पड़ी कि जानकीजी आग से नहीं जली हैं। तब सीताजी के सकुशल होने की बात सुनकर मेरा मन हर्ष से भर उठा। तत्पश्चात् विदेह नंदिनी से विदा लेकर अरिष्ट पर्वत पर आ गया। फिर दुबारा आकाश में उड़ता हुआ आप लोगों का दर्शन किया है। श्रीरामचन्द्रजी के प्रभाव से सुग्रीव के कार्य सिद्धि के लिए सब कुछ किया है। अब जो कार्य अधूरा रह गया है उसे आप लोग पूरा करें।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के सुन्दर काण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५८)

उनसठवाँ सर्ग

हनुमानजी का सीता की दुरावस्था बताकर लंका पर आक्रमण हेतु उत्तेजित करना

इतना कहकर हनुमानजी पुनः बोले कपिवरों! सुग्रीव का उत्साह सफल हुआ। इस समय सीताजी का पातिव्रत्य देखकर मेरा मन अत्यंत संतुष्ट हुआ। सीता के समान नारियाँ अपनी तपस्या से सम्पूर्ण लोकों को जला सकती हैं रावण भी महान तपोबल से सम्पन्न है। इसीलिए सीताजी को स्पर्श करते समय उसका अंग तपस्या से नष्ट नहीं हुई। इस कार्य में मुझे जहाँ तक सफलता मिली है मैंने आप लोगों को बता दिया अब उसे जाम्बवान् आदि सभी महाकपियों की सम्मति से सीता के साथ ही श्रीराम और लक्ष्मण का दर्शन करें। यही न्याय संगत जान पड़ता है। मैं अकेले ही लंका को विध्वंस कर रावण को मार डालने की क्षमता रखता हूँ। फिर भी यदि सम्पूर्ण अस्त्रों के जाननेवाले आप जैसे वीर विजयाभिलाषी लाखों वानरों की सहायता मिल जाए तो कहना ही क्या? युद्ध स्थल में उसकी सेना और सगे सम्बन्धियों सहित रावण का तो मैं ही बध कर डालूँगा। यद्यपि इन्द्रजीत् के पास अनेक दुर्लभ अस्त्र हैं, फिर भी मैं उनका निवारण कर राक्षसों का संहार कर डालूँगा। इस समय आप लोगों की आज्ञा न होने के कारण ही मेरा पुरुषार्थ मुझे रोके रहा। अन्यथा समरांगण में कभी न विचलित होनेवाले जाम्बवान, राक्षसों को यम लोक पहुँचाने वाले अंगद और अपने महान् वेग से मंदराचल को भी विदीर्ण करनेवाले नील। इसके सिवा वीरवर मैन्द तथा द्विविद इनके साथ लोहा ही कौन ले सकता है। मैंने अकेले ही लंकावासियों को मार गिराया और वहाँ के सब सड़कों पर अपने नाम का डंका पीट दिया। वहाँ रावण की अशोक बाटिका के मध्य भाग में एक अशोक वृक्ष है। उसके नीचे सती साध्वी सीता बड़ी दयनीय अवस्था में रहती हैं। राक्षसियों से घिरी रहने के कारण वे दयनीय हो गयी हैं। वे रावण को कुछ नहीं समझतीं फिर भी वे उसी के कैद में पड़ी हैं। उनका चित्त सदैव श्रीराम के चिंतन में लगा रहता है। वे एक ही साड़ी पहने सदैव धूल धूसरित हो रही हैं और बारम्बार राक्षसियों की डांट फटकार सुनती रहती हैं। वे नीचे भूमि पर सोती हैं और मरने का निश्चय किये बैठी हैं। उन सीता को बड़ी कठिनाई से मैंने अपने ऊपर विश्वास दिलाया। सीता

स्वयं रावण को नहीं मार डालती हैं तथापि सीताहरण के पाप से वह नष्टप्राय हीहोचुका है। अब श्रीराम चंद्रजी तो केवल उसके निमित्त मात्र होंगे। भगवती सीता एक तो स्वभाव से ही दुबली पतली हैं फिर श्रीराम के वियोग में और भी कृश हो गयी हैं। अतएव महाभागा सीता जो सदा ही शोक में डूबी रहती हैं उनके लिए इस समय जो प्रतिकार करना है करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५९)

साठवाँ सर्ग

अंगद को लंका जीतने का उत्साह पूर्ण विचार

तब हनुमानजी की बात सुनकर बालीपुत्र अंगद ने कहा- अश्विनी कुमार के पुत्र मैन्द और द्विविद दोनों वानर अत्यंत वेगशाली और बलवान् हैं। पूर्वकाल में ब्रह्माजी का वर पाकर वे अत्यंत घमंड में भर गये हैं। लोक पितामह ने इन दोनों को यह अनुपम वरदान दिया था कि कोई भी तुम्हें मार नहीं सकता। तब अभिमान से मत्त होकर इन दोनों ने देवताओं की विशाल सेना को मथ कर अमृत पी लिया था? यदि ये दोनों ही क्रोध में भर जायें तो लंका को विध्वंस करने के लिए पर्याप्त है। फिर भी सम्पूर्ण अस्त्रों को जानने वाले आप जैसे वीरों की सहायता मिल जाए तो कहना ही क्या? वायु पुत्र हनुमानजी ने अकेले ही लंका फूंक डाली है इसे हम लोगों ने सुन ही लिया है। आप जैसे ख्यातनाम्मा; पुरुषार्थी वीरों के रहते हुए श्रीराम के समक्ष यह कहना उचित नहीं जान पड़ता है कि हमने सीता के दर्शन तो किया किंतु उन्हें ला नहीं सके। अतएव यह अच्छा होगा कि हम लोग निशाचर समुदाय सहित लंका को जीतकर तथा युद्ध में राक्षस वर्ग का बध कर सीता को साथ लेकर श्री राम चंद्र के पास चलें। इसके लिए किष्किंधा में जुटे हुए अन्य सारे वानरवीरों को कष्ट देने की कया आवश्यकता है? उस समय अंगद की यह बात सुनकर अर्थ तत्व के ज्ञाता जाम्बवान् ने यह सार्थक बात की- महाकपे! तुम बहुत बुद्धिमान हो फिर भी इस समय जो कुछ कह रहे हो यह बुद्धिमानी की बात नहीं। महाराज सुग्रीव ने हमें सीता को खोजने की आज्ञा दी है साथ लाने की नहीं। श्रीराम हमारे इस कार्य को कदापि पसंद नहीं करेंगे। उन्होंने सीता को

स्वयं जीतकर ले आने की प्रतिज्ञा की है उसे वे मिथ्या कैसे करेंगे? इसलिए हमारा परिश्रम दिखलाना व्यर्थ सिद्ध होगा। अतः अच्छा यही होगा कि हम वहीं चलकर श्रीराम और लक्ष्मण को इसकी सूचना दे दें।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दर काण्ड में साठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६०)

इकसठवाँ सर्ग

वानरों का मधुवन में जाकर वहाँ के फलों का उपभोग करना

तदनन्तर अंग आदि सभी वानरों ने जाम्बवान् की बात मान ली। फिर वे महेन्द्र गिरि के शिखर पर उछलते-कूदते हुए चल दिये। वे उस समय सारे आकाश को छाये हुए जा रहे थे। उस समय सिद्ध आदिभूतगण हनुमानजी की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। श्रीराम चन्द्र के कार्य की सिद्धि करने का उत्तम यश पाकर उन वानरों का मनोरथ सफल हो गया था। वे सभी श्रीराम को यह प्रिय संवाद सुनाने के लिए उत्सुक हो रहे थे। उसी समय आकाश में छलाँग लगते हुए सैकड़ों वृक्षों से भरे एक ऐसे सुन्दर वन में जा पहुँचे जो नन्दन वन के समान मनोहर था। उस वन का नाम मधुवन था। सुग्रीव कायह मधुवन सर्वथा सुरक्षित था। उसकी रक्षा कपिश्रेष्ठ दधिमुख किया करते थे। सुग्रीव के इस महावन में पहुँचकर सभी वानर वहाँ का मधुपान करने के लिए एवं वहाँ के फल खाने के लिए अत्यंत इच्छुक हो उठे। उन लोगों ने तब कुमार अंगद से मधुपान करने की आज्ञा माँगी। अंगद ने उन्हें आज्ञा दे दी। उस समय ऐसी आज्ञा मिलते ही सभी वानर आनन्द मग्न होकर नाचने लगे। वे सब एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर दौड़ जाते और फिर कोई उन डालियों से पृथ्वी पर कूद पड़ते। कितने ही प्रचण्ड वेग वाले वानर पृथ्वी से दौड़कर बड़े-बड़े वृक्षों की चोटियों तक पहुँच जाते। कोई रोता तो दूसरा उसके पास हँसता हुआ आता। कोई हँसते हुए के पास जाकर जोर-जोर से रोने लगता। वानरों के समुदाय में कोई भी ऐसा न था जो मतवाला न हो गया हो और कोई भी ऐसा नहीं था कि दर्प से भर न गया हो। तदनन्तर उस मधुवन को इस तरह नष्ट होता हुआ देखकर दधिमुख को बड़ा क्रोध आया। उसने समस्त वानरों को ऐसा करने से रोका। तब जिन पर अधिक नशा चढ़ गया था उन्होंने उस

वृद्ध वानर वीर को उल्टे डांट बतानी शुरू की। उस समय दधिमुख ने भी निर्भय होकर किसी को कड़ी बातें सुनाई तो कितनों को थप्पड़ों से मारा। बहुतों से भिड़कर झगड़ा किया तो किन्हीं के साथ शांतिपूर्ण ढंग से काम लिया। उस मद के कारण जिनका वेग रोकना असम्भव हो गया था वे सब मिलकर उन्हें बलपूर्वक घसीटने लगे और यह भूल गये कि वनरक्षक दधिमुख पर आक्रमण करने से उन्हें राजदण्ड भी प्राप्त हो सकता है। उन्होंने दधिमुख को थप्पड़ और घूंसे से मार-मार कर अधमरा कर दिया और इस प्रकार उन लोगों ने उस विशाल वन को सब ओर से फल आदि से शून्य कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६१)

बासठवाँ सर्ग

दधिमुख का सुग्रीव के पास जाना

तदनन्तर हनुमान ने अपने साथियों से कहा- वानरो! तुम सब लोग बेखटके मधु का पान करो। मैं तुम्हारे विरोधियों को रोकूँगा। हनुमानजी की यह बात सुनकर अंगद ने भी प्रसन्न चित्त होकर कहा- वानरगण अपनी इच्छा के अनुसार मधुपान करें। हनुमानजी इस समय कार्य सिद्धि करके लौटे हैं अतः उनकी बात स्वीकार करने योग्य है। उस समय अंगद की यह बात सुनकर सब वानर जहाँ मधुवन था उस मार्ग पर दौड़ पड़े और वन रक्षकों पर पूरी शक्ति से आक्रमण करके मधुवन में घुस गये और वहाँ इच्छानुसार मधु पीते हुए रसीले फल खने लगे। रोकने के लिए पास आये रक्षकों को वे सब वानर सैकड़ों की संख्या में जुट कर उछल-उछलकर मारते थे। वे वहाँ मधु के छत्ते पकड़ लेते और उसे सहर्ष पी जाते। कितने ही मधु को फेंक देते और कितने ही वृक्षों की डालियाँ पकड़कर खड़े हो गये थे। जो मधु पीकर मतवाले हो गये वे बड़े हर्ष के साथ पत्ते बिछाकर सो गये थे। कोई लड़खड़ा कर गिरता तो कोई पक्षियों की भाँति कलरव करते थे। कितने पृथ्वी पर ही सो गये थे और कुछ ढीठ वानर हँसते और रोदन करते थे। तत्पश्चात् उस वन में जो दधिमुख के सेवक मधु की रक्षा के लिए नियुक्त थे वे भयंकर वानरों द्वारा

Mookerji shastra (I.F.S) Jammu Collection

पीटे जाने पर सभी दिशाओं में भाग गये। उसमें कई रखवालों को पीठ के बल गिराकर आकाश दिखा दिया गया था। अपने इस पराभव के कारण वे सेवक दधिमुख के पास जाकर इसकी शिकायत करने लगे। तब दधिमुख ने कुपित होकर उन वानरों से कहा- अब मैं मधु लूटकर खाने वालों को बलपूर्वक रोकूँगा। ऐसा कहकर दधिमुख ने एक विशाल वृक्ष लेकर हनुमानजी के दल पर धावा बोल दिया। साथ ही वन रक्षक भी उन मधु पीने वाले वानरों पर टूट पड़े। दधिमुख को कुपित हुआ देखकर हनुमानजी आदि सभी श्रेष्ठ वानर बड़े वेग से उनकी ओर दौड़ पड़े। उस समय अंगद जो मधु पीकर मदान्ध हो रहे थे तुरन्त तेजी से उन्हें पृथ्वी पर पटककर रगड़ने लगे। इससे उनकी भुजाएं, जांघें और मुँह सभी टूट-फूट गये और वे दो घड़ी तक मूर्छित होकर पृथ्वी पर पड़े रहे। अब उनसे छुटकारा मिलने पर दधिमुख ने अपने सेवकों को एकान्त में बुलाकर कहा- आओ हम लोग वहाँ चलें जहाँ हमारे स्वामी सुग्रीव और श्रीराम विराजमान हैं। वहाँ चलकर सारा दोष अंगद के सिर मढ़ देंगे। मधुवन सुग्रीव को बड़ा प्रिय है इसलिए वे क्रोध में आकर उन्हें कठोर दण्ड देकर सबको मरवा डालेंगे। इतना कहकर वन रक्षकों के साथ दधिमुख आकाश मार्ग से उछलकर चलने लगे और पलक मारते ही उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ सूर्य पुत्र सुग्रीव विद्यमान थे। तब श्रीराम, लक्ष्मण तथा सुग्रीव को दूर से देखकर वे आकश से समतल भूमि पर कूद पड़े और उदास मुख किये हुए उनके चरणों में मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

मधुवन के विध्वंस के समाचार से हनुमान आदि वानरों की सफलता का अनुमान

तदनन्तर दधिमुख को पैरों पर पड़ा हुआ देखकर सुग्रीव उद्विग्न होकर बोले- उठो-उठो ! तुम लोग इस तरह क्यों पैरों पर पड़े हो, उसे साफ-साफ बताओ। मधुवन में कुशल तो है। तब महाबुद्धिमान दधिमुख खड़े होकर बोले- राजन् आपके पिता ऋक्षराज ने, बाली ने तथा आपने भी जिस वन के

मनमाने उपभोग के लिए किसी को आज्ञा नहीं दी उसी को हनुमान आदि वानरों ने आज नाश कर दिया। मेरे रक्षकों ने यद्यपि उन्हें रोकने की बड़ी चेष्टा की किन्तु फिर भी वे सब मनमाने ढंग से फल खाते रहे। यह देखकर जब वन रक्षक इन पर अधिक कुपित हुए तब उन्होंने उन पर आक्रमण कर दिया। फिर उन वानर पुङ्गवों ने इन रक्षकों को वन से बाहर निकाल दिया और इनके साथ बुरी तरह व्यवहार किया। प्रभो! आप जैसे स्वामी के रहते हुए ये सूरवीर वनरक्षक उनके द्वारा इस तरह पीटे गये हैं। अब जिस समय सुग्रीव को मधुवन के लूटे जाने का वृत्तान्त सुनाया जा रहा था उस समय लक्ष्मण ने उनसे पूछा- राजन्! वन की रक्षा करने वाला यह वानर यहाँ किसलिए उपस्थित हुआ है और किसके विषय में उसने ऐसी बातें कहीं हैं। यह सुनकर सुग्रीव बोले- आर्य लक्ष्मण! दधिमुख ने मुझसे यह कहा है कि अंगद आदि वीर वानरों ने मधुवन का सारा मधु खा पी लिया है। यह सुनकर ऐसा अनुमान हो रहा है कि वे जिस काम के लिए गये थे उसे उन लोगों ने अवश्य पूरा कर लिया होगा अन्यथा वे मधुवन के लूटने का साहस नहीं कर सकते थे। उन्होंने उस समय दधिमुख एवं वन रक्षकों को भी कुछ नहीं समझा। इससे यह बात समझ में आती है कि उन्होंने देवि सीता का दर्शन अवश्य कर लिया है और यह काम हनुमानजी को छोड़कर और किसी का नहीं हो सकता। क्योंकि कार्य सिद्धि की शक्ति और बुद्धि उन्हीं में है। जिस दल के नेता अंगद और जाम्बवान् हों उसे सफलता न मिले ऐसा हो नहीं सकता। महाबाहु लक्ष्मण! अब आप इस बात पर अच्छी तरह विश्वास कर लें कि सीताजी का पता लग गया है। क्योंकि उस दिव्य वन का, जो देवताओं से मेरे पूर्वजों को वरदान स्वरूप प्राप्त हुआ, ये विख्यात वानर कभी विध्वंस नहीं कर सकते थे। किन्तु अब सुग्रीव की यह बात सुनकर श्रीराम चन्द्र जी के साथ लक्ष्मण को बड़ा हर्ष हुआ। तत्पश्चात् सुग्रीव अपने वन रक्षकों से बोले- मामा! अपना कार्य सिद्ध करके लौटे हुए उन वानरों ने जो मधुवन का उपभोग किया है उससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अतः तुम्हें भी उस उदण्डता के लिए उन्हें क्षमा कर देना चाहिए। अब तुम शीघ्र जाकर उस मधुवन की रक्षा करो और हनुमान आदि हमारे वानरों को जल्दी यहाँ भेजो। मैं इस समय हनुमान आदि वानरों से शीघ्र मिलना चाहता हूँ। मैं उन लोगों से

मिलकर पूछना चाहता हूँ कि सीता प्राप्ति के लिए क्या प्रयत्न किया जाये। तब वे दोनों राजकुमार समाचार से अपने को सुग्रीव से इस सिद्धि को हाथों आयी हुई देखकर आनन्द में निमग्न हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६३)

चौसठवाँ सर्ग

हनुमान आदि वानरों का किष्किंधा में पहुँचना

तदनन्तर सुग्रीव का आदेश पाकर दधिमुख सुग्रीव राम और लक्ष्मण को प्रणाम कर वापस मधुवन को लौटे। मधुवन में प्रवेश करने पर उन्होंने देखा कि समस्त वानर अब मद रहित हो गये हैं। तब दधिमुख उनके पास जाकर मधुर वाणी में बोले- सौम्य! इन रक्षकों ने अज्ञानवश आपको रोका था। इसके लिए आप अपने मन में क्रोध न करें। क्योंकि कुमार अंगद के सिवा हमारा कोई दूसरा स्वामी नहीं। मैंने यहाँ से जाकर आपके चाचा सुग्रीव से वानरों के यहाँ पधारने का हाल कहा था। इन वानरों के आगमन से उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उस समय उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उन सबको उनके पास शीघ्र भेजूँ। अंगद ने उनसे मधुर वाणी में कहा- जान पड़ता है भगवान् श्रीराम ने हम लोगों के लौटने का समाचार सुन लिया है। अतएव वीरो अब हम लोगों को यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिए। पराक्रमी वानर अब इच्छानुसार मधु भी पी चुके हैं। इसलिए अब हमको वहीं चलना चाहिए जहाँ सुग्रीव हैं। उस समय अंगद के इतना कहने पर सब वानरों का चित्त प्रसन्न हो गया। वे सब बोले- हम सब लोग भी जहाँ वानर वीरों के अविनाशी पति सुग्रीव विराजमान हैं, वहाँ चलने के लिए उत्साहित हो आपके पास आये हैं। इतना सुनकर अंगद कहने लगे- बहुत अच्छा। अब हम लोग चलें। इतना कहकर वे महाबली वानर आकाश में उड़ चले। आगे-आगे अंगद और उनके पीछे-पीछे सभी वानर यूथपति उड़ने लगे। वे आकाश को आच्छादित कर गुलेल से फेंके गये पत्थरों की भाँति तीव्र गति से जा रहे थे। फिर इस तरह उड़ते हुए अंगद शीघ्र ही किष्किंधापुरी में सुग्रीव के निकट आ पहुँचे। तब अंगद के निकट पहुँचते ही सुग्रीव ने शोक संतप्त श्रीराम से कहा- प्रभो! धैर्य धारण

करें। इसमें संशय नहीं कि सीता देवी का पता लग गया है क्योंकि कृतकार्य हुए बिना दिये हुए समय की अवधि को बिताकर ये वानर यहाँ कदापि नहीं आ सकते थे। यदि कार्य सिद्ध न हुआ होता तो अंगद के मुख पर उदासी छायी होती। कोई जनक किशोरी का दर्शन किये बिना मधुवन का विध्वंस नहीं कर सकता था। उन सीताजी का दर्शन किसी और ने नहीं हनुमानजी ने किया है। जिस दल के नेता जाम्बवान् और महाबली अंगद हों तथा अधिष्ठाता हनुमान हों उस दल को असफलता मिले यह सम्भव नहीं। वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि उन्हें निकट के आकाश से वानरों की किलकारियाँ सुनायी दीं। वे वानर श्रीरामचन्द्र के दर्शन की इच्छा से अंगद और हनुमानजी को आगे करके वहाँ आ पहुँचे। फिर सुग्रीव और श्रीराम के समीप पहुँचकर वे आकश से नीचे उतरे। उस समय हनुमान ने श्रीराम के चरणों में प्रणाम करके कहा- देवी सीता पातिव्रत्य के कठोर नियमों का पालन करती हुई शरीर से सकुशल हैं। देवी सीता का दर्शन हो गया है यह सुनकर लक्ष्मण सहित श्रीराम को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब शत्रु वीरों का संहार करने वाले श्रीरघुनाथजी ने परम सम्मान के साथ हनुमानजी की ओर देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६४)

पैंसठवाँ सर्ग

हनुमानजी का श्रीराम को सीता का समाचार सुनाना

उस समय अंगद को आगे कर सब वानरों ने सीता का समाचार बताना शुरू कर दिया कि सीता देवी रावण के अन्तःपुर में रोककर रखी गयी हैं। किन्तु उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँची है और वे सकुशल हैं। विदेहकुमारी की सकुशल होने की बात सुनकर श्रीराम ने आगे की बात पूछते हुए कहा- वानरो! देवी सीता कहाँ हैं? मेरे प्रति उनका कैसा भाव है? ये सारी बातें मुझे शीघ्र बताओ। श्रीराम की यह बात सुनकर सभी वानर हनुमान जी को उत्तर देने के लिए प्रेरित करने लगे। तब हनुमानजी ने दक्षिण दिशा की ओर मस्तक झुका कर प्रणाम किया और अपने तेज से प्रकाशित होने वाले उस कांचनमणि को भगवान् श्रीराम के हाथों में देते हुए कहा- प्रभो! जनकनन्दिनी सीता के

दर्शन की इच्छा से उनका पता लगाता हुआ सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघकर उसके दक्षिण किनारे पर पहुँचा। वहाँ दुरात्मा रावण की नगरी लंका है। वह समुद्र के दक्षिण तट पर ही बसी हुई है। उस लंका में पहुँचकर मैंने रावण के अंतः पुर में प्रमदावन (अशोक वाटिका) के भीतर राक्षसियों के बीच में बैठी हुई सती साध्वी सुन्दरी देवी सीता का दर्शन किया। वे अपनी सारी अभिलाषायें आप पर ही केन्द्रित करके किसी तरह जीवन धारण किये हुए हैं। वीरवर देवी सीता आपके साथ सुख भोगने योग्य हैं किन्तु इस समय वे रावण के अन्तःपुर में राक्षसियों के पहरे में रहकर बड़े दुख से अपना दिन बिता रही हैं। वे नीचे भूमि पर सोती हैं। उनके अंगों की कान्ति फीकी पड़ गयी है। उन्होंने प्राण देने का निश्चय किया है। उनका मन निरन्तर आपमें ही लगा रहता है। मैंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह सीता का पता लगाया और इक्ष्वाकुवंश की कीर्ति का वर्णन करते हुए किसी तरह उनके मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया। तत्पश्चात् आपकी सारी बातें सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। महाभाग! मैंने आपकी शक्ति से प्रेरित होकर उन्हें कठोर तपस्या करते देखा है। चित्रकूट में एक कौए को लेकर जो घटना घटित हुई थी उस वृत्तान्त को पहचान के रूप में मुझसे कहा है।जानकी जी ने आते समय मुझसे यह भी कहा था कि वायुनन्दन! तुम मेरी जैसी हालत देख चुके हो वह सब भगवान् श्रीराम को बताना और इस मणि को बड़े यत्न से उनके हाथ में देना। संकट के समय इसे देखकर वे उसी प्रकार आनन्दमग्न हो जाती थीं जैसे आपके दर्शन से आनन्दित हो जाती हैं। आपने जो मेरे ललाट में नासिका तिलक लगाया था इसको भी स्मरण कीजिएगा। उन्होंने यह भी कहा कि वे एक मास तक जीवन धारण करेंगी। श्रीराम! वहाँ का यही वृत्तान्त है जो मैंने आपको बताया। अब आप सब प्रकार से समुद्र पार करने का प्रयत्न कीजिए। ऐसा कहकर उन्होंने वह मणि श्रीराम के हाथों में दे दी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६५)

छाछठवाँ सर्ग

चूड़ामणि देखकर श्रीराम का विलाप

हनुमानजी के ऐसा कहने पर श्रीराम उस मणि को अपनी छाती से

लगाकर रोने लगे। उस समय लक्ष्मण की आँखों में भी आँसू आ गये। तब आँखों में आँसू भरे हुए श्रीराम सुग्रीव से बोले- मित्र! जैसे वत्सला गाय के थन से अपने बछड़े को देखकर दूध झरने लगता है वैसे आज इस मणि को देखकर मेरा हृदय भी द्रवीभूत हो गया है। जलसे प्रकट हुई यह मणि श्रेष्ठ देवताओं द्वारा पूजित है। इस मणि को इन्द्र ने किसी यज्ञ से संतुष्ट हो राजा जनक को दी थी। यह मणि देखकर ऐसा लगता हैं मानो सीता के लिए उस पर जल के छींटे दिये जाते हैं वैसे मुझ मूर्छित हुए राम को अपने फलरूपी शीतल जल से सींचकर शीतलता पहुँचाओ। तत्पश्चात् वे लक्ष्मण से बोले- सीता के यहाँ आये बिना मैं इस मणि को देख रहा हूँ इससे बढ़कर दुख की बात और क्या हो सकती है। फिर वे हनुमान से बोले- वीर पवन ! मैं अब सीता के बिना एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। तुमने जैसे मेरी प्रिया को देखा है अब मुझे भी वहाँ ले चलो। हाय, मेरी सीता राक्षसों के बीच कैसे रहती होगी। निश्चय ही बादलों से ढँके हुए चन्द्रमा की भाँति उसका मुख शोभा नहीं पा रहा होगा। वह दुःख पर दुःख उठाकर कैसे जीवन धारण कर रही होगी। अब बताओ उन्होंने मुझे क्या-क्या संदेश दिया है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड म्रें छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

सरसठवाँ सर्ग

हनुमानजी का श्रीराम को सीता का संदेश सुनाना

तब श्रीराम के ऐसा पूछने पर हनुमानजी बोले- पुरुषोत्तम! जानकी देवी ने पहले चित्रकूट पर बीती हुई घटना का यथावत् वर्णनकिया था। पहले वह चित्र कूट में आपके साथ सुख पूर्वक सोयी थीं। वे जब सोकर उठीं तो सहसा किसी कौए ने उनके हृदयस्थल पर चोंच मार दी। फिर उसके बार-बार कष्ट देने से जब देवी के शरीर से रक्तबहनेलगा तब आप जाग उठे थे। महाबाहो! उस समय उनकी छाती में घाव हुआ देखकर आप कुपित हो उठे और बोले भीरू! किसने अपने नखों से तुम्हारी छाती में घाव कर दिये हैं? ऐसा कहकर जब उन्होंने इधर-उधर दृष्टि डाली तब उस कौए को देखा। उसके तीखे पंजे खून से सने हुए थे। सुना जाता है वह कौवा साक्षात् इन्द्र का पुत्र था जो पृथ्वी

पर विचर रहा था। उस समय आपने क्रोधित होकर उस कौवे को कठोर दण्ड देने का विचार किया और अपनी चटायी से एक कुशा निकाल कर उसे ब्रह्मास्त्र के मंत्र से अभिसिंचित कर दिया। फिर तो वह कुशा प्रलय काल की अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठा और वहं उस कौवे का पीछा करने लगा। डरके मारे वह तीनों लोकों का चक्कर काटता फिरा किन्तु कहीं भी उसे कोई रक्षक नहीं मिला। श्रीराम! तब सब ओर से निराश होकर वह कौआ फिर आपकी शरण में आया। यद्यपि वह बध के योग्य था फिर भी कृपापूर्वक आपने उसकी रक्षा की। श्रीराम! उस बह्मास्त्र को व्यर्थ नहीं किया जा सकता था इसलिए आपने उस कौए की दाहिनी आँख फोड़ डाली। रघुनन्दन! सीताजी का कहना है कि आप इतने शक्तिशाली होते हुए भी राक्षसों पर उन अस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं करते। आप बल पराक्रम से सम्पन्न हैं। यदि आपका मेरे प्रति थोड़ा भी आदर है तो आप शीघ्र ही अपने तीखे बाणों से रावण का बध कर डालिये। पुरुष सिंह श्रीराम मेरी उपेक्षा किसलिए कर रहे हैं। श्रीराम! तब देवी सीताजी की यह बात सुनकर मैंने कहा- देवि! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि श्रीराम चन्द्रजी आपके शोक के कारण ही सब कार्यों से विरत हो रहे हैं। श्रीराम के दुखी होने से लक्ष्मण भी संतप्त हो रहे हैं। अब आपका पता लग गया है इसलिए आप इसी मुहूर्त में अपने दुखों का अन्त देखेंगी। शत्रुओं को संताप देनेवाले वे दोनों वीर राजकुमार आपके दर्शन के लिए उत्साहित हो लंकापुरी को जलाकर भस्म कर देंगे और रावण को मारकर आपको अपनी पुरी में ले जायेंगे, फिर मैंने उनसे ऐसी कोई पहचान माँगी जो आपको प्रसन्न करने वाला हो। तब उन्होंने चारों ओर देखकर इस मणि को अपने वस्त्र से खोलकर मुझे दे दिया। उस समय मैं उन्हें प्रणाम कर के यहाँ आने के लिए उतावला हो गया। तब लौटने के लिए उत्साहित हो मुझे अपने शरीर को बढ़ाते हुए देख, वे गद्गद् स्वरों में बोलीं- महाकपे! तुम सौभाग्यशाली हो जो मेरे प्रियतम श्रीराम और देवर महाबाहु लक्ष्मण को अपनी आँखों से देखोगे। सीताजी की यह बात सुनकर मैंने कहा- जनकनन्दिनी! आप शीघ्र मेरी पीठ पर बैठ जाइये। मैं आपको अभी सुग्रीव और लक्ष्मण सहित श्रीराम का दर्शन कराता हूँ। तब सीता बोलीं- महाकपे! मैं स्वेच्छा से तुम्हारी पीठ का आश्रय लूँ, यह मेरा धर्म नहीं। वीर! पहले जो

रावण के शरीर से मेरा स्पर्श हुआ, उस समय मैं बेबस थी। अब तुम जाओ और श्रीराम और लक्ष्मण तथा मंत्रियों सहित सुग्रीव से मेरा कुशल समाचार कहना और मेरी ओर से उनका पूछना। तुम ऐसी बात कहना जिससे श्रीराम शीघ्र मेरा उद्धार कर सकें। मुझे नित्य राक्षसों से डराया-धमकाया जाता है। उनसे यह भी कहना- नरेश्वर! आर्या सीता ने मुझसे यह बातें कहलायी हैं। अब आप विश्वास करें कि सीता सकुशल हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६७)

अड़सठवाँ सर्ग

हनुमानजी का सीता के संदेह को बताना

तदनन्तर हनुमानजी श्रीराम से फिर बोले - रघुनन्दन! सीताजी तब मेरे सत्कार के लिए उतावली हुई मुझसे बोलीं- यदि तुम ठीक समझो तो यहाँ किसी गुप्त स्थान में एक दिन के लिए ठहर जाओ। उस समय जब तुम पुनः आने के लिए यहाँ से जाओगे तब मेरे प्राणों के लिए संदेह उपस्थित हो जायेगा। इसमें तनिक संदेह नहीं। किंतु वानरराज! मेरे सामने यह महान् संशय-सा खड़ा हो गया है कि वानरों और रीछों की वे सेनायें तथा श्रीराम और लक्ष्मण इस अपार समुद्र को कैसे पार करेंगे। अब इस दुष्कर कार्य की सिद्धि के लिए तुम कौन सा उपाय देखते हो। कपिश्रेष्ठ! इसमें संदेह नहीं कि इस कार्य की सिद्धि के लिए तुम अकेले ही बहुत हो। किन्तु यह तुम्हारे यश को बढ़ाने वाला होगा (श्रीराम का नहीं) यदि श्रीराम अपनी सेना के साथ यहाँ आकर रावण को मार डालें तो यह उनके यश की वृद्धि करने वाला होगा। महात्मा श्रीराम संग्राम में शौर्य प्रकट करने वाले हैं अतः जिस प्रकार उनके अनुरूप पराक्रम प्रकट हो सके तुम वैसा ही उपाय करो। यह सुनकर मैंने उन्हें उत्तर दिया- देवि! वानरों और भालुओं की सेना के स्वामी कपिश्रेष्ठ! सुग्रीव बहुत शक्तिशाली हैं। वे आपके उद्धार करने के लिए दृढ़ निश्चय कर चुके हैं। उनके पास अनेक पराक्रमी और शक्तिशाली वानर हैं। अगल-बगल ऊपर-नीचे उनकी गति कहीं नहीं रुकती। उन बलवान् वानरों ने अनेक बार इस पृथ्वी की परिक्रमा की है। सुग्रीव के पास ऐसा कोई वानर नहीं जो मुझसे

Mookerji Sharma [illegible] Jammu Collection

किसी बात में कम हो। जब मैं यहाँ आ गया तो उनके आने में क्या संदेह। देवि! अतः अब आपके संताप करने की कोई आवश्यकता नहीं। वे वानर यूथपति एक ही छलांग में लंका पहुँच जायेंगे, तथा श्रीराम और लक्ष्मण मेरी पीठ पर बैठकर आपके पास आ जायेंगे। अब जल्दी ही लंकावली मलय पर्वत शिखरों पर मेघों के समान विशाल शरीर वाले वानर आकर गर्जना करेंगे और आप शीघ्र ही उनका सिंहनाद सुनेंगी।। आपको फिर जल्दी ही यह देखने का सौभाग्य मिलेगा कि श्रीराम शीघ्र ही वनवास की अवधि पूरी कर आपके साथ अयोध्या लौटकर वहीं के राजा बनेंगे। तब यह सुनकर मिथिलेश कुमारी के मन मे कुछ शान्ति मिली।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के सुन्दरकाण्ड में अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६८)

सुन्दरकाण्ड समाप्त

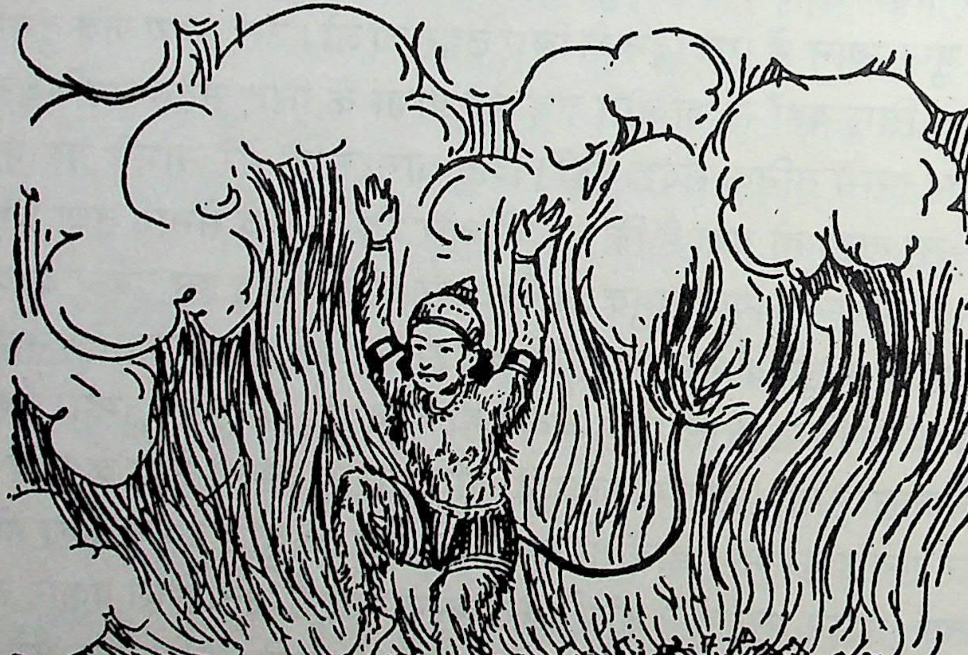

युद्धकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीराम का हनुमान को हृदय से लगाना

तदनन्तर हनुमानजी के वचनों को सुनकर श्रीराम प्रसन्न होकर बोले- हनुमान ने बहुत बड़ा कार्य किया है। भूमण्डल में दूसरा कोई ऐसा कार्य करने के बारे में सोच भी नहीं सकता। जिस पर देवता, दानव, यक्ष, गंधर्व, नाग और राक्षस भी आक्रमण करने से डरते हैं। उस लंकापुरी में अपने बल के भरोसे प्रवेश करके कौन जीवित निकल सकता है। हनुमान जी ने समुद्र लँघन आदि कार्यों के द्वारा एक सच्चे सेवक के योग्य सुग्रीव का कार्य किया है। हनुमानजी ने स्वामी के एक कार्य में नियुक्त होकर उसके साथ ही दूसरे महत्वपूर्ण कार्य को भी पूरा किया है। इसमें उन्होंने सुग्रीव को भी पूर्णतया संतुष्ट कर दिया है। आज हनुमान ने सीता का पता लगाकर मेरी, समस्त रघुवंश की और महाबली लक्ष्मण की रक्षा की है। आज मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुओं का अभाव है। यह बात मेरे मन में बहुत कसक पैदा कर रही है। इस समय मुझे जिसने यह प्रिय संवाद सुनाया है उसका मैं वैसा ही कोई प्रिय कार्य नहीं कर पा रहा हूँ। इस समय मैं इन हनुमानजी को केवल अपना प्रगाढ़ आलिंगन प्रदान करता हूँ। इतना कहकर उन्होंने पुलकित होकर हनुमानजी को हृदय से लगा लिया। फिर उन्होंने सुग्रीव से कहा- बन्धु! सीता की खोज का काम तो सम्पन्न हो गया। लेकिन समुद्र की दुस्तरता का विचार करके मेरे मन का उत्साह फिर नष्ट हो गया है। यहाँ के वानर समुद्र के दक्षिण तट पर कैसे पहुँचे थे। मेरी सीता ने भी यही संदेह उठाया था जिसका वृत्तान्त अभी-अभी मुझसे कहा गया है। तब यह कहकर श्रीराम पुनः शोकाकुल होकर चिंता में पड़ गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

दूसरा सर्ग

सुग्रीव का श्रीराम को उत्साह प्रदान करना

श्रीराम को शोक-संतप्त होते हुए देखकर सुग्रीव बोले- रघुनन्दन! जब सीता का समाचार मिल गया और शत्रु के निवासस्थान का पता लग गया तब मुझे आपके इस दुःखका कोई कारण नहीं दिखलायी पड़ता। बड़े-बड़े नागों से भरे हुए समुद्र को लाँघकर हम लोग लंका पर चढ़ाई करेंगे। और आपके शत्रु को नष्ट कर डालेंगे। जो पुरुष उत्साह हीन होकर शोक में पड़ा रहता है वह बड़ी विपत्ति में पड़ जाता है। ये वानर, यूथपति सब प्रकार से समर्थ एवं शूरवीर हैं। आपका प्रिय कार्य करने का इनके मन में बड़ा उत्साह है। वे आपके लिए जलती हुई आग में भी कूद सकते हैं। समुद्र को लाँघने और रावण के मारने का प्रसंग चलने पर इनका मुख प्रसन्नता से खिल जाता है। रघुनन्दन! आप ऐसा कोई उपाय कीजिए जिससे समुद्र पर सेतु बंध सके और हम अपने शत्रु रावण को मारकर सीता जी को यहाँ ले आयें। त्रिकूट पर्वत पर बसी हुई लंकापुरी एक बार दिख जाये तो निश्चित समझिये कि युद्ध में रावण दिखायी दिया और मारा गया। उस समुद्र पर पुल बाँधे बिना लंका को पददलित करना मुश्किल है। अतः जब समुद्र पर पुल बँध जायेगा तब हमारी सेना उस पार चली जायेगी। फिर यही समझिये आपकी जीत हो गयी। अतः महाभ्रान्त श्रीराम! इस समय आप तेज के साथ ही धैर्य का आश्रय लें। कोई वस्तु खो गयी हो अथवा नष्ट हो गयी हो तो उसके लिए आप जैसे शूरवीर महात्मा पुरुषों को शोक नहीं करना चाहिए क्योंकि शोक सब कामों को बिगाड़ देता है। आप बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हैं अतः हम जैसे सहायकों को पाकर आप अवश्य ही शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। श्रीराम मुझे तो तीनों लोकों में ईसा कोई वीर नहीं दखिलायी पड़ता जो आपके सामने ठहर सके। पृथ्वीनाथ! इस समय आप शोक छोड़कर क्रोध धारण कीजिए। क्योंकि जो क्षत्रिय क्रोध शून्य होते हैं उनका कोई काम नहीं बन पाता लेकिन जो शत्रु के प्रति आवश्यक रोष सें भरा होता है उससे सब डरते हैं। अब नदियों के स्वामी इस ओर समुद्र को पार करने के लिए क्या उपाय किया जाये इस विषय में आप हमारे साथ बैठकर विचार कीजिए क्योंकि आपकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है। यदि हमारे सैनिक समुद्र लाँघ गये तो अपनी विजय निश्चित समझिये

क्योंकि ये वानर बड़े शूर वीर हैं और इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। ये पत्थरों और पेड़ों की वर्षा करके ही उन शत्रुओं का संहार कर डालेंगे। अब बहुत कहने से क्या लाभ ? मेरा विश्वास है कि आपकी सर्वथा विजय होगी क्योंकि मुझे ऐसे ही शकुन दिखाई देते हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में दूसरा सर्ग पूरा हुआ। (२)

तीसरा सर्ग

हनुमानजी का श्रीराम से सेना को कूच करने की आज्ञा देने के लिए प्रार्थना करना

सुग्रीव के ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने हनुमानजी से कहा- मैं तपस्या से पुल बाँधकर और समुद्र को सुखाकर सब प्रकार से महासागर को लाँघ जाने में समर्थ हूँ। वानरवीर! अब यह बताओ कि उस दुर्गम लंकापुरी में कितने दुर्ग हैं। मैं देखे हुए के समान उसका सारा विवरण स्पष्ट रूप से जानना चाहता हूँ। यह सुनकर हनुमानजी बोले- सुनिये! मैं सब बातें बता रहा हूँ कि लंका के दुर्ग किस विधि से बने हैं, किस प्रकार लंकापुरी की रक्षा की व्यवस्था की गयी है, किस प्रकार वह सेनाओं से सुरक्षित है। रावण के तेज से प्रभावित हो राक्षस उसके प्रति कैसा स्नेह रखते हैं। प्रभो! अब मैं उसे ठीक-ठीक बता रहा हूँ। आप सुनें। वह लंकापुरी हर्ष और आमोद-प्रमोद से पूर्ण है। वह विशालपुरी मतवाले हाथियों से व्याप्त तथा असंख्य रथों से भरी हुई है। राक्षसों का समुदाय सदा उसमें निवास करते हैं। उस पुरी के चार बड़े-बड़े दरवाजे हैं। उन दरवाजों पर बड़े विशाल और प्रबल यंत्र लगे हैं। ये तीर और पत्थरों के गोले बरसाते हैं। उसके द्वारा शत्रु सेना को आगे बढ़ने से रोका जाता है। उन दरवाजों पर लोहे की चार हाथ लम्बी गदायें सजाकर रक्खी गयी हैं। उस पुरी के चारों ओर सोने का बना हुआ बहुत ऊँचा परकोटा है जिसको तोड़ना बहुत कठिन है। परकोटे के चारों ओर महा भयंकर शत्रुओं का महान अमंगल करने वाली ठंडी जल से भरी हुई और अगाध गहराई वाली खाइयाँ बनी हैं जिनमें ग्राह और बड़े-बड़े मत्स्य निवास करते हैं। उन चारों दरवाजों के सामने उन खाइयों पर मचानों के रूप में चार लकड़ी के पुल

हैं जो बहुत ही विस्तृत हैं। उनमें बहुत से बड़े-बड़े यंत्र लगे हैं। जब शत्रु की सेना आती है तब उन पुलों की रक्षा की जाती है और यंत्रों के द्वारा ही उन्हें सब ओर खाइयों में गिरा दिया जाता है तथा वहाँ पहुँची हुई शत्रु सेनाओं को उन्हीं यंत्रों से सब और फेंक दिया जाता है। रघुनाथजी ! रावण युद्ध के लिए उत्सुक होता हुआ कभी क्षुब्ध नहीं होता। लंका पर चढ़ाई करने के लिए कोई अवलम्ब नहीं। वह पुरी देवताओं के लिए भी दुर्गम और बड़ी भयावनी है। वह बहुत दूर तक फैले हुए समुद्र के दक्षिण किनारे पर बसी हुई है। वहाँ जाने के लिए नाव का भी मार्ग नहीं। वह दुर्गमपुरी पर्वत शिखर पर बसायी गई है और देवपुरी के समान सुन्दर और दुर्जय दिखायी देती है। लंका के पूर्वी द्वार पर दस हजार राक्षस रहते हैं। वह सबके-सब शूल धारण करते हैं। लंका के दक्षिणी द्वार पर एक लाख राक्षस निवास करते हैं। उस पुरी के उत्तर द्वार पर दस करोड़ राक्षस रहते हैं जिनमें से कुछ तो रथी हैं और कुछ घुड़सवार। लंका के मध्यभाग की छावनी में सैकड़ों सहस्त्र दुर्जय राक्षस रहते हैं जिनकी संख्या एक करोड़ से अधिक है लेकिन मैंने उन सभी संक्रमों (पुलों) को तोड़ डाला है। खाइयाँ पाट दी हैं और लंकापुरी जला दी है। और इसके परकोटों को भी जला दिया है। यही नहीं, वहाँ के विशालकाय राक्षसों की सेना का एक चौथाई भाग नष्ट कर डाला है। यदि हम लोग एक बार समुद्र को पार कर लें तो फिर लंका को नष्ट ही समझिये। अंगद, द्विविद, मैन्द, जाम्बवान्, पनस, नल और नील, इतने ही वानर लंका विजय के लिए पर्याप्त हैं। बाकी सेना लेकर आपको क्या करना है ? ऐसा समझकर आप शीघ्र आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करके कूच करने की आज्ञा दीजिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ। (३)

चौथा सर्ग

श्रीराम आदि का वानर सेना सहित प्रस्थान

तब हनुमानजी की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- हनुमान मैं सच कह रहा हूँ कि तुमने जिस लंकापुरी का वर्णन किया है उसे मैं शीघ्र नष्ट कर डालूँगा। सुग्रीव तुम इसी समय अब कूच की तैयारी करो। रावण सीता को

हर तो ले गया किन्तु वह बचकर जायेगा कहाँ। अब सिद्ध आदि के मुख से लंका पर मेरी चढ़ाई का समाचार सुनकर सीता को अपने जीवन की आशा बँध जायेगी। आज उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र है और चन्द्रमा का इससे योग होगा। इसलिए हम लोग आज ही सारी सेनाओं के साथ यात्रा कर दें। इस समय जो शकुन प्रकट हो रहा है उससे रावण बध का योग स्पष्ट दिखलाई देता है। मेरी दाहिनी आँख का ऊपरी भाग फड़क रहा है। यह मनोरथ सिद्धि का सूचक है। तदनन्तर उन्होंने फिर कहा- अब इस सेना के आगे आगे एक लाख वानरों से घिरे हुए सेनापति नील मार्ग देखने के लिए चलें। फिर नील से बोले- नील! तुम सेना को ऐसे मार्ग से ले चलो जिसमें फल मूल की अधिकता हो। ठंडा जल और मधु भी उपलब्ध हो। वानरों को चाहिए कि जहाँ गड्ढे, दुर्गम वन और साधारण जंगल हों, वहाँ सब ओर कूद फाँदकर यह देखते रहें कि कहीं शत्रुओं की सेना तो नहीं छिपी है। जिस सेना में बाल, वृद्ध आदि के कारण दुर्बलता हो वे किष्किंधा में ही रहें। सहस्त्रों कपि केशरी अपार वानर सेना के अग्रभाग को अपने साथ आगे बढ़ाये चलें। विशालकाय गज की भाँति पराक्रमी गवाक्ष सेना के आगे-आगे चलें। उछल कूद कर चलने वाले कपियों के पालक वानर शिरोमणि ऋषभ इस वानर सेना के दाहिने भाग की रक्षा करते चलें। गन्धमादन इस वाहिनी के वाम भाग में रहकर इसकी रक्षा करें। मैं स्वयं हनुमान के कंधे पर चढ़कर सेना के बीच रहकर उसका हर्ष बढ़ाता हुआ चलूँगा। लक्ष्मण अंगद की पीठ पर आरुढ़ होकर यात्रा करेंगे। महाबाहु ऋक्षराज जाम्बवान् सुषेण सेना के पृष्ठ भाग की रक्षा करेंगे। रघुनाथ जी के यह वचन सुनकर सेनापति सुग्रीव ने उन वानरों को यथोचित आज्ञा दी। तब वे वानर अपने स्थानों से निकलकर उछलते-कूदते हुए चलने लगे। तत्पश्चात् श्रीराम सेना सहित दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित हुए। उस समय अनेक वानरों से घिरे हुए श्रीराम आगे बढ़ने लगे। सेना के सभी वीर सुग्रीव के द्वारा पालित होने के कारण हृष्ट-पुष्ट एवं प्रसन्न थे। इनमें से कुछ वानर सेना की रक्षा के लिए उछलते कूदते, कुछ गर्जते और कुछ दहाड़ते हुए दक्षिण दिशा की ओर अग्रसर हो रहे थे। वे सुगंधित मधु पीते और मीठे-मीठे फल खाते कुछ विशाल वृक्षों को उखाड़कर कंधों पर ढोते हुए, कुछ विनोद के लिए एक दूसरे को ढोते। श्रीरामचन्द्र के समीप चलने वाले वानर

यह कहकर गर्जना करते कि हमें रावण को मार डालना चाहिए। सबसे आगे ऋषभ, नील और वीर कुमुद थे। बहुसंख्यक वानर रास्ता ठीक करते जाते थे। सेना के मध्यभांग में सुग्रीव, श्रीराम और महाबली लक्ष्मण वानरों से घिरे हुए चल रहे थे। शतबलि नामक वानर अकेले ही सारी सेना का नियंत्रण करता हुआ चल रहा था। केसरी और पनस सेना के दक्षिण भाग तथा गज और आर्क उस वानर सेना के दूसरे भाग की रक्षा कर रहे थे। इस प्रकार सुषेण, जाम्बवान्, नील, दरीमुख, प्रजङ्घ, जम्भ और रयस ये वीर सब ओर से वानरों को शीघ्र आगे बढ़ने की प्रेरणा दे रहे थे। रास्ते में उन्हें बहुत से सुन्दर सरोवर और तालाब दिखाई दिये। जिनमें मनोहर कमल खिले थे किन्तु रामचन्द्रजी की आज्ञा थी कि मार्ग में कोई किसी प्रकार का उपद्रव न करे। हनुमान और अंगद इन दो वानर वीरों द्वारा ढोये जाते हुए नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण शुक्र और वृहस्पति इन दो महाग्रहों से संयुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्य के समान शोभा पा रहे थे। उस समय वानर राज सुग्रीव तथा श्रीराम और लक्ष्मण सेना सहित दक्षिण दिशा की ओर बढ़े जा रहे थे। इसी समय अंगद के कंधों पर बैठे हुए लक्ष्मण ने कहा- रघुनंदन! मुझे पृथ्वी और आकाश में बहुत अच्छे-अच्छे शकुन दिखलाई पड़ रहे हैं। यह सब मनोरथ की सिद्धि सूचित करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि आप शीघ्र रावण को मारकर हरी हुई सीताजी को प्राप्त करेंगे। देखिए इस समय शीतल मंद समीर बह रही है। सब दिशाएं प्रसन्न हैं और सूर्यदेव निर्मल दिख रहे हैं। सप्तर्षियों का समुदाय शोभा पा रहा है और हमारे साथ ही हमारे पितामह त्रिशंकु भी निर्मल कान्ति से प्रकाशित हो रहे हैं। हम इक्ष्वाकु वंशियों के लिए जो सब से उत्तम नक्षत्र विशाखा है वह भी उपद्रव शून्य होकर प्रकाशित हो रहा है। राक्षसों का नक्षत्र मूल जिसके देवता निर्ऋति हैं अत्यंत पीड़ित हो रहा है। जल स्वच्छ है और जंगलों में पर्याप्त फूल उपलब्ध हैं। प्रभो! इस समय यह वानरी सेना अत्यंत शोभा सम्पन्न जान पड़ती है। ऐसे शुभ लक्षण देखकर आपको भी प्रसन्न होना चाहिए।

जिस समय लक्ष्मण ऐसा कह रहे थे, उस समय वानरों की सारी सेना वहाँ की भूमि को घेरकर आगे बढ़ रही थी। वे सभी सैनिक पैरों तथा हाथों की अंगुलियों से बड़ी धूल उड़ा रहे थे। वह सेना लगातार वन पर्वतों को

आच्छादित होकर बढ़ रही थी और जब वह किसी नदी को पार करती थी उस समय कई योजनों तक उसकी धार उल्टी होकर बहने लगती थी। उस सेना के समस्त वानर अत्यंत वेग वाले थे। कार्यसिद्धि के लिए उनका पराक्रम उछला पड़ता था। उनमें से कोई तो बड़े तेजी से भूतलपर चलते थे और कोई उछलकर आकाश में उड़ जाते थे। कितने ही अपनी बाँहें फैलाकर पर्वत शिखरों और उसके वृक्षों को तोड़ डालते तो कितने इसकी चोटियाँ पर चढ़ जाते। इस प्रकार यह विशाल सेना दिन रात चलती रही। सुग्रीव से सुरक्षित सभी वानर हृष्ट पुष्ट एवं प्रसन्न थे। सभी युद्ध से प्रेम करनेवाले थे इसलिए अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए कहीं दो घड़ी विश्राम भी नहीं लिया। फिर चलते-चलते वे वानर सह्य पर्वत के ऊपर चढ़ गये। उस समय श्रीराम चन्द्रजी सह्य और मलय पर्वतों की शोभा देखते हुए आगे बढ़ रहे थे। रमणीय पर्वत शिखरों पर सब ओर खिली हुई केतकी और बासन्ती लतायें बड़ी मनोरम जान पड़ती थीं। महुआ, वकुल, रंजक, तिलक और नाग केसर के वृक्ष भी वहाँ खिले हुए थे। प्रसन्नता से भरे हुए वानरों ने इन सब वृक्षों को घेर लिया था। खिले हुए सुगंधित कमल, कुमुद, उत्पल और जल में होने वाले भाँति-भाँति के पुष्पों से वहाँ के जलाशय बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। कुछ वानर पर्वत पर चढ़कर वहाँ के वृक्षों के अमृत तुल्य मीठे फलों को तोडते और कितने ही मदमस्त वानर वृक्षों में लटके मधु के छत्तों को तोड़कर उनका मधु पी लेते। वे वानर इसी तरह तीव्र गति से आगे बढ़ रहे थे। तत्पश्चात् कमल नयन महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी महेन्द्र पर्वत के पास पहुँचकर भाँति-भाँति के वृक्षों से सुशोभित उसके शिखर पर चढ़ गये। फिर उस पर्वत शिखर पर आरूढ़ हो उन्होंने मत्स्यों और कछुवों से भरे हुए समुद्र को देखा। तदनन्तर उस पर्वत से उतरकर भगवान् श्रीराम लक्ष्मण के साथ शीघ्र ही सागर तटवर्ती परम उत्तम वन में जा पहुँचे। इस विस्तृत सिंधु तट पर पहुँचकर श्रीराम ने कहा-सुग्रीव ! लो हम सब समुद्र के किनारे आ गये। अब यहाँ हमको फिर वहीं चिंता उत्पन्न हो गयी जो हमारे सामने पहले उपस्थित थी। मेरी समझ से सेना का पड़ाव यहीं डाल दिया जाये और फिर यह विचार किया जाये कि किस प्रकार यह वानर सेना उस पार तक पहुँच सकती है। इस समय कोई भी सेनापति किसी भी कारण से अपनी सेना छोड़कर अन्यत्र न

जाये। क्योंकि राक्षसों की माया के कारण किसी भी समय कोई गुप्त भय आ सकता है।

श्रीरामचन्द्र की यहबात सुनकर सुग्रीव ने अपनी सेना वहीं सागर तट पर ठहरा दी। वहाँ सागर के तट पर पहुँचकर वह वानर सेना वायुवेग से कम्पित हुए समुद्र की शोभा देखती हुई बड़े हर्ष का अनुभव कर रही थी। क्रोध में भरे हुए नाकों के कारण समुद्र बड़ा भयंकर दिखलायी पड़ता था। चन्द्रोदय होने पर उसमें ज्वार आ गया था। उस समय फेन समूहों के कारण वह हँसता हुआ और उत्ताल तरंगों के कारण नाचता-सा प्रतीत होता था। वह समुद्र प्रदीप्त कणों वाले सर्प, विशालकाय जलचरों और नाना प्रकार के पर्वतों से व्याप्त जान पड़ता था। राक्षसों का निवास भूत वह अगाध महासागर अत्यंत दुर्गम था और उसको पार करने का कोई सुगम साधन भी न था। सागर के जल कण बहुत ही चमकीले दिखाई देते थे। उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानों महासागर में आग की चिंगारियां बिखेर दी गयी हों। उस समय समुद्र और आकाश में कोई अंतर नहीं दिखाई देता था। जल आकाश से मिला हुआ था और आकाश जल से। आकाश में तारे छिटके हुए थे और समुद्र में मोती। इसलिए दोनों एक-से ही दिखाई देते थे। आकाश में घटा घिरी थी तो समुद्र तरंग मालाओं से भरपूर था। परस्पर टकराकर और सटकर सिन्धुराज की लहरें देवताओं की बड़ी-बड़ी भेरियों के समान भयानक शब्द करती थीं। तब उन महामनस्वी वानर वीरों ने देखा कि समुद्र वायु के थपेड़े खाकर पवन की प्रेरणा से आकाश में ऊँचे उछलकर उत्ताल तरंगों द्वारा नृत्य-सा कर रहा है। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हो रहा था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ। (४)

पाँचवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता के लिए विलाप

उस समय नील ने जिसकी विधिवत् रक्षा की व्यवस्था की गयी थी उस परम सावधान वानर सेना को उत्तर तट पर अच्छे ढंग से ठहराया। मैन्द और द्विविद दोनों वानरवीर उस सेना की रक्षा के लिए सब ओर विचरते रहते थे।

तब वह पड़ाव पड़ जाने पर श्रीराम अपने पास बैठे हुए, लक्ष्मण से बोले- लक्ष्मण कहते हैं कि शोक, बीतते हुए समय के साथ, स्वयं दूर हो जाता है। लेकिन मेराशोक तो सीता को न देख सकने के कारण दिनों दिन बढ़ रहा है। मुझे उसके दूर रहने का दुःख नहीं है। मुझे तो इसलिए दुःख है कि उसके जीवित रहने की जो अवधि निश्चित कर दी गयी है वह बीती जा रही है। अपहरण होते समय मेरी प्राण बल्लभा ने जो मुझे 'हा नाथ' कहकर पुकारा था वह विष की भाँति मेरे अंगों को दग्ध किये देता है। लक्ष्मण ! तुम यहीं रहो मैं तुम्हारे बिना अकेले ही समुद्र में घुस कर सोऊँगा। इस तरह जल में शयन करने पर वह प्रज्वलित प्रेमाग्नि मुझे दग्ध नहीं कर सकेगी। कब वह समय आयेगा जब शत्रुओं को परास्त करके मैं समृद्धिशालिनी राज लक्ष्मी के समान कमलनयनी सीता को देखूँगा। सीता के प्रफुल्ल कमल जैसे मुख को ऊपर उठाकर चूमूँगा । मेरा आलिंगन करती हुई प्रिय सीता के वे परस्पर सटे हुए, ताल फल के समान गोल और मोटे दोनों उरोज कब किंचित कम्पन के साथ मेरा स्पर्श करेंगे। वह सती साध्वी सीता राक्षसों के बीच पड़कर निश्चय ही कोई रक्षक नहीं पा रही होगी। वह राक्षसियों के बीच कैसे सोती होगी ? वह समय कब आयेगा जबकि सीता मेरे द्वारा उन दुर्धर्ष राक्षसों का विनाश करके अपना उद्धार करेगी। स्वभाव से दुबली पतली सीता विपरीत देशकाल में पड़ जाने के कारण और दुर्बल हो गयी होगी। मैं रावण के शरीर में अपने सायकों को धँसाकर सीता का उद्धार करूँगा। ऐसा समय कब आयेगा जब मैं मिथिलेश कुमारी के वियोग से होने वाले इस शोक को मलिन वस्त्र की भाँति त्यागूँगा। सूर्यदेव अस्ताचल को आ पहुँचे। उस समय लक्ष्मण के धैर्य बँधाने पर उन्होंने शोक त्याग कर सन्ध्योपासना की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठवाँ सर्ग

रावण का कर्तब्य निर्णय हेतु मंत्रियों से सलाह

इधर पराक्रमी हनुमानजी ने जो भयावह कर्म किया था उसे देखकर रावण का मुख शर्म से झुक गया था, तब रावण राक्षसों से बोला- हनुमान ने

सीता से भेंट तो की ही, साथ ही चैत्य प्रासाद को धराशायी कर पूरे लंका में खलबली मचा दी। निशाचरो! तुम्हारा भला हो! अब मैं क्या करूँ? जिससे कोई अच्छा परिणाम निकले ऐसा सुझाव दो। वीरो! मंत्रियों की अच्छी सलाह विजय का कारण होती है। इसलिए मैं आप लोगों की सलाह लेना अच्छा समझता हूँ। संसार में उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। मैं उनके गुण-दोष बताता हूँ सुनो। जो पुरुष समर्थ मित्रों, समान दुखवाले बान्धवों तथा हितकारियों की सलाह लेकर कार्य करता हुआ देव के सहारे प्रयत्न करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं। जो अकेला ही अपने कर्तव्य का विचार करता है, अकेला ही धर्म में मन लगाता हुआ, अकेला ही सब काम करता है उसे मध्यम श्रेणी का पुरुष कहा जाता है। जो गुण-दोष का विचार न करके, दैव का भी आश्रय छोड़ कर केवल 'करूँगा' इसी बुद्धि से कार्य आरंभ करता है वह पुरुषों में अधम है। पुरुषों के समान निश्चित किया हुआ विचार मंत्र भी उत्तम, मध्यम, अधम समझना चाहिए। जिसमें शास्त्रोक्त दृष्टि से सब मंत्री एकमत होकर परामर्श देते हैं, उसे उत्तम मंत्री कहते हैं। जहाँ आरम्भ में कई प्रकार के मतभेद होने पर भी अंत में निर्णय एक हो जाता है वह मन्त्री मध्यम माना जाता है। जहाँ भिन्न-भिन्न बुद्धि का आश्रय ले सब ओर से तरह-तरह के भाषण दिया जाये और जिसमें कल्याण की सम्भावना न हो वह निश्चय ही अधम मंत्री कहलाता है। अतः आप सब लोग बुद्धिमान होने के कारण कोई कार्य निश्चित करें। इस निश्चय की आवश्यकता इसलिए आ पड़ी है कि राम सहस्रों धीर, वीर वानरों के साथ हमारी लंकापुरी में चढ़ाई करने के लिए आ रहे हैं। अब यह बात भी स्पष्ट हो चुकी है कि राम अपने बल के द्वारा सेवकों सहित समुद्र पार कर लेंगे। वे या तो समुद्र को ही सुखा डालेंगे अथवा अपने पराक्रम से दूसरा उपाय करेंगे। ऐसी स्थिति में हमारे लिए जो हितकर हो वैसी सलाह आप लोग मुझे दीजिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

राक्षसों का रावण और इन्द्रजित के बल का वर्णन करते हुए राम पर विजय पाने का विश्वास दिलाना

राक्षसों को न तो नीति का ज्ञान था न तो उन्हें शत्रुओं के पक्ष का ज्ञान था इसलिए रावण की बात सुनकर वे बोले- राजन् हमारे पास परिघ, शक्ति, ऋष्टि , शूल पहिया और भालों से लैस बहुत बड़ी सेना मौजूद है। फिर आप शोक क्यों करते हैं ? आपने तो भोगवती पुरी में जाकर नागों को भी युद्ध में परास्त कर दिया था। कुबेर को भी आपने मार काट मचाकर वश में कर लिया था। आपने यक्षों की सेना को विचलित कर उनका वह विमान छीन लिया था। दानव-राज मय ने भी आपसे भयभीत होकर आपको अपनी पुत्री समर्पित कर दी। आपने घमंड से भरे दानव-राज मधु को युद्ध छेड़कर वश में कर लिया था। आपने रसातल पर चढ़ायी कर वासुकि, तक्षक, शंख और जटी आदि लोगों को परास्त कर अपने अधीन किया। प्रभो ! दानव गण भी किसी समय वर पाकर अद्भुत शक्ति से सम्पन्न हो गये थे। तब आपने उन्हें भी अपने अधीन कर उनसे बहुत सी मायाएँ प्राप्त कीं। आपने वरुण के बलवान पुत्रों को भी, उनकी चतुरंगिणी सेना सहित, युद्ध में परास्त किया था। आपने यमलोक रूपी महासागर में प्रवेश कर यमराज की सागर जैसी सेना को मथ डाला और मृत्यु को रोककर महान् विजय प्राप्त की। राजन् ! ऐसी दशा में राम पर विजय पाना आपके लिए कौन-सी बड़ी बात है। महाराज ! आप चुपचाप यहीं बैठे रहें। आपको परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है। अकेले यह महाबाहु इन्द्रजित् ही सब वानरों का संहार कर डालेंगे। महाराज इन्होंने परम उत्तम माहेश्वर यज्ञ का अनुष्ठान करके ऐसा वर प्राप्त किया है जो दूसरों के लिए अत्यंत दुर्लभ है। उसी के बल पर उन्होंने देवताओं की दुर्जय सेना को परास्त कर देवराज इन्द्र को कैद कर उन्हें लंकापुरी में लाकर बंद कर दिया था। फिर ब्रह्माजी के कहने से इन्होंने इन्द्र को कैद से मुक्त किया। अतः महाराज इस काम के लिए आप राजकुमार इन्द्रजित् को ही भेजिए जिससे यह राम सहित समस्त वानर सेना का संहार, यहाँ आने के पहले ही कर डालें। अतएव राजन् साधारण मनुष्य और वानरों से प्राप्त हुई इस आपत्ति के

लिए आपका चिंतित होना कदापि उचित नहीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

प्रहस्त, दुर्मुख, निकुम्भ आदि का शत्रु सेना को मार गिराने का उत्साह दिखाना

इसके बाद नील वर्ण वाले प्रहस्त नामक राक्षस ने हाथ जोड़कर कहा-महाराज! हम लोगों ने देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच सबको पराजित कर दिया है। फिर उन दो मनुष्यों को रणभूमि में हराना कौन-सी बड़ी बात है। पहले हम लोग असावधान थे। इसलिए हनुमान हमें धोखा दे गया। महाराज, यदि आपकी आज्ञा हो तो पर्वत, वन, काननों सहित समुद्र तक की सारी भूमि मैं वानरों से सूनी कर दूँ। तत्पश्चात् दुर्मुख नामक राक्षस ने कहा-यह क्षमा करने योग्य अपराध नहीं। क्योंकि इसके द्वारा हम लोगों का तिरस्कार हुआ है। वानर के इस आक्रमण से हमारा जो पराभव हुआ उसके फलस्वरूप मैं अभी इसी मुहूर्त में अकेला ही जाकर सारे वानरों को मार भगा दूँगा। चाहे वे कहीं भी क्यों न छिप गये हों। इतने में ही बज्रदंष्ट्र अत्यंत क्रोध भरकर रक्त-मांस से सने हुए भयानक परिघ को हाथ में लिये हुए बोला-आज मैं अकेला ही वानर सेना में तहलका मचा दूँगा। और सुग्रीव, लक्ष्मण तथा राम का भी काम तमाम कर दूँगा। राजन्! उपाय कुशल पुरुष ही यदि आलस्य छोड़कर प्रयत्न करें तो शत्रुओं पर विजय पा सकता है। राक्षसराज! मेरी दूसरी राय यह है कि इच्छानुसार रूप धारण करने वाले भयानक शूरवीर राक्षस मनुष्य का रूप धारण कर श्रीराम के पास जायें और उनसे कहें कि हम आपके सैनिक हैं। हमको आपके अनुज भरत ने भेजा है। राम इतना सुनते ही वानर सेना को उठाकर तुरन्त लंका पर आक्रमण करने के लिए वहाँ से चल देंगे। तत्पश्चात् इधर से हम लोग भी शूल, शक्ति, गदा, और धनुष बाण धारण कर शीघ्र ही मार्ग में उनके पास जा पहुँचेंगे। फिर आकाश में अनेक यूथ बनाकर खड़े हो जायें और पत्थरों तथा शस्त्र-समूहों की भारी वर्षा करके श्रीराम और लक्ष्मण सहित उनकी सेनाओं को यम लोक पहुँचा देंगे।

तदनन्तर कुंभकर्ण के पुत्र निकुम्भ ने अत्यंत कुपित होकर कहा- आप सब लोग यहाँ चुपचाप महाराज के साथ बैठे रहो, मैं अकेला ही राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान तथा अन्य वानरों को मौत के घाट उतार दूँगा। तब विशालकाय बज्र हनु नामक राक्षस अपनी जीभ से अपने जबड़े को चाटते हुए बोला- आप सब लोग निश्िंचत होकर अपना-अपना काम करें। मैं अकेला ही सारी वानर सेना को खा जाऊँगा और अकेला ही सुग्रीव, लक्ष्मण, अंगद हनुमान तथा अन्य वानरों का बध कर डालूँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

विभीषण का सीता को लौटाने का अनुरोध

तत्पश्चात् निकुम्भ, रभस, सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महोदर , दुर्जय आदि अनेक राक्षस हाथों में अस्त्र शस्त्र लिए रावण के सामने आये और अपने तेज से उद्दीप्त होकर उससे बोले- हम लोग आज ही राम, सुग्रीव, लक्ष्मण और उस क्रायर हनुमान को, जिसने लंका जलायी है, मार डालेंगे। तब उन राक्षसों को युद्ध के लिए तैयार हुए देखकर विभीषण ने उन्हें रोका और हाथ जोड़कर रावण से कहा- तात! श्रीराम चन्द्रजी बेखबर नहीं हैं। वे यहाँ विजय की इच्छा से आ रहे हैं। उनके साथ सेना भी है। उन्होंने क्रोध को जीत लिया है। अतः वे सर्वथा दुर्जय हैं। ऐसे अजेय वीर को तुम लोग परास्त करना चाहते हो। निशाचरो! जो एक ही छलाँग में महासागर को लाँघ कर यहाँ तक आ पहुँचे थे ऐसे हनुमानजी की गति को संसार में कौन जान सकता है। शत्रुओं के पास असंख्य सेनाएँ हैं। उनमें भी असीम बल और पराक्रम है। दूसरों की शक्ति को भुलाकर उसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। श्रीराम ने पहले कौन-सा अपराध किया था जो उनकी पत्नी हरी गयी। यदि कहा जाये कि उन्होंने खर को मारा था तो यह ठीक नहीं क्योंकि खर अत्याचारी था। उसने स्वयं उन पर आक्रमण किया था और ऐसे समय हर प्राणी अपने प्राणों की रक्षा अवश्य करता है। यदि इस कारण सीताजी को हरा गया तो उन्हें जल्दी ही लौटा देना चाहिए। अन्यथा हम पर महान् भय आ सकता है।

श्रीराम बड़े धर्मात्मा हैं। अतः उनके साथ वैर छोड़कर सीता को उन्हें लौटा देना चाहिए। इसके पहले कि वे अपने बाणों से लंका का विध्वंस करें हमें सीता को उन्हेंवापस कर देना चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते तो लंकापुरी नष्ट हो जायेगी और सब राक्षस मारे जायेंगे। आप मेरे बड़े भाई हैं इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप श्रीराम चन्द्र को उनकी सीता वापस कर दें। भाई! इस समय आप क्रोध को त्याग दें। क्योंकि वह सुख और धर्म का नाश करने वाला है। आप धर्म के मार्ग पर चलते हुए अपना सुयश बढ़ायें और सीता कोवापस कर दें। विभीषण की यह बात सुनकर रावण सभी सभासदों को विदाकर अपने महल में चला गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

विभीषण का रावण के महल में जाकर सीता को लौटा देने के लिए प्रार्थना करना

दूसरे दिन सबेरा होते ही महातेजस्वी विभीषण अपने बड़े भाई के महल में गये। वह महल अनेक प्रासादों के कारण पर्वत शिखर के समूहों की भाँति शोभा पाता था। वहाँ बहुतेरे श्रेष्ठ पुरुषों का आना जाना लगा रहता था और वहाँ अनेकानेक बुद्धिमान् महामंत्री बैठे थे। वहाँ की वायु मतवाले हाथियों के निःश्वास से मिश्रित हो बवंडर-सी जान पड़ती थी। शंख ध्वनि के समान राक्षसों का गंभीर घोष वहाँ गूँजता रहता था। साथ ही रूप और यौवन के मद से मतवाली युवतियों की भीड़-सी लगी रहती थी। उत्तम सजावटी वस्तुओं से वह महल अच्छी तरह सजा हुआ था। रत्नराशि से परिपूर्ण होने के कारण वह नाग भवन के समान मनोरम लग रहा था।

वहाँ पहुँचकर तेजस्वी विभीषण ने अपनेभाई की विजय के उद्देश्य से वेदवेत्ता ब्राह्मणों द्वारा किए गये पुण्याह वाचन के पवित्र घोष सुने। वहाँ जाने पर राक्षसों ने उनका स्वागत सत्कार किया। फिर विभीषण ने रावण को प्रणाम किया। उनकी आँखों का संकेत पाकर एक सुवर्ण मंडित सिंहासन पर विद्यमान हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने सान्त्वना पूर्ण वचनों से रावण को

प्रसन्न किया और अत्यंत हितकारक वचन कहे- शत्रुओं को संताप देने वाले महाराज! जब से विदेह कुमारी सीता यहाँ आयी हैं तभी से हम लोगों को अमंगल सूचक अपशकुन दिखलाई पड़ रहे हैं। मंत्रों द्वारा विधिपूर्वक धधकाए जाने पर भी आग अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं हो रही है। उसकी लपट के साथ धुआँ उठने लगता है। रसोई घरों में अग्नि शालाओं में तथा वेदाध्ययन के स्थानों पर भी साँप देखे जाते हैं। हवन सामग्रियों में चींटीं पड़ी दिखायी देती हैं। गायों का दूध सूख गया है। गजराज मदरहित एवं घोड़े दीन बन गये हैं। गधे, ऊँट और खच्चरों की आँखों से आँसू गिरने लगते हैं। कौवे झुंड के झुंड इकट्ठे होकर कर्कश स्वर में काँव-काँव करने लगते हैं। लंकापुरी के ऊपर झुंड के झुंड गीध मंडराते हुए दिखाई पड़ते हैं। नगर के सभी फाटकों पर हिंसक पशुओं का चीत्कार, बिजली के गड़गड़ाहट के समान सुनाई पड़ते हैं। अतः ऐसी स्थिति में मुझे यही उचित दिखलाई पड़ता है कि सीताजी श्रीराम को लौटा दी जायें। ये अपशकुन यहाँ की जनता, राक्षस, राक्षसी तथा अंतःपुर के लोगों को साफ दिखलाई पड़ता है किंतु वे आपके कानों तक पहुँचाने में संकोच करते हैं। परन्तु मैंने जो बात देखी या सुनी है उसे आपके सम्मुख बता देना चाहा। इसलिए इस पर जैसा विचार करना चाहें करें। किन्तु रावण को ऐसी बातें सुनकर मानों बुखार आ गया। क्योंकि राम के साथ बैर बढ़ाने में उसकी आसक्ति हो गयी थी। इसलिए उसने उत्तर दिया- विभीषण! मुझे कहीं से कोई भय नहीं दिखलायी पड़ता। राम सीता को कभी नहीं पा सकते। देवताओं की सहायता लेने पर भी वे मेरे सामने नहीं टिक सकते। इतना कहकर रावण ने विभीषण को वहाँ से विदा कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

रावण और सभासदों का सभा-भवन में एकत्र होना

रावण सीता के काम से मोहित हो रहा था। किन्तु उसके हितैषी विभीषण आदि उसका अनादर करते हुए उसकी निंदा करने लगे थे। इन सब कारणों से वह दुर्बल हो गया था। वह इसके लिए सुहृदों की सलाह लेकर

युद्ध को ही अपना कर्तब्य मानने लगा। ऐसा विचार कर वह अपने रथ पर सवार होकर सभा भवन की ओर चल पड़ा। उसके आगे-आगे ढाल-तलवार लिये हुए बहुत से राक्षस जा रहे थे। तब रावण को प्रस्थान करते देख उसके पीछे बहुत महारथी वीर भी चलने लगे। उनमें से किन्हीं के हाथों में गदा और परिघ शोभा पा रहे थे तो कोई शक्ति और तोमर लिए थे। कुछ लोगों ने फरसे धारण कर रखे थे तो कोई शूल पकड़े हुए था। तत्पश्चात् रावण का वह रथ सहसा शोभाशाली राजमार्ग पर जा पहुँचा। राक्षसराज के ऊपर तना हुआ श्वेत छत्र चन्द्रमा के समान शोभा पा रहा था। मार्ग में पृथ्वी पर खड़े हुए सभी राक्षस दोनों हाथ जोड़कर रथ पर बैठे हुए रावण की वन्दना कर रहे थे। इस तरह सबं की स्तुति और जयनाद सुनता हुआ रावण विश्वकर्मा द्वारा निर्मित राजसभा में जा पहुँचा। विश्वकर्मा ने उसे बहुत ही सुन्दर बनाया था। सभा भवन में पहुँचते ही उसने अपने शीघ्रगामी दूतों को आज्ञा दी- तुम लोग शीघ्र यहाँ बैठने वाले सुविख्यात राक्षसों को बुला लाओ। क्योंकि शत्रुओं के दमन करने का महान् कार्य मेरे ऊपर आ पड़ा है। रावण की यह आज्ञा पाकर वे राक्षस घूम-घूमकर उनसभी राक्षसों को सभा भवन में चलने के लिए प्रेरित करने लगे। तब वे सभी राक्षस हाथी और घोड़ों पर सवार हो सभा भवन के लिए चल दिये। सभा भवन में पहुँचने पर रावण ने उनका खूब सत्कार किया। तत्पश्चात् वे लोग सोने के सिंहासन एवं अन्य यथायोग्य स्थानों पर बैठ गये। तदनन्तर महात्मा विभीषण भी एक विशाल रथ पर सवार हो भाई की सभा में जा पहुँचे। सुवर्ण एवं नाना प्रकार के मणियों के आभूषणों से विभूषित राक्षसों की उस सभा में बहुमूल्य अगर, चन्दन तथा पुष्पहारों की सुगंध छा रही थी। उस समय उस सभा का कोई भी सदस्य न तो चिल्लाते थे और न तो जोर-जोर से बातें करते थे। उस समय वे अपने स्वामी रावण के मुँह की ओर देख रहे थे। उस सभा में महाबली वीरों का समागम होने पर उसके बीच बैठा हुआ मनस्वी रावण उसी प्रकार शोभायमान हो रहा था जैसे वसुओं के बीच बज्रधारी इन्द्र देदीप्यमान होते हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११)

बारहवाँ सर्ग

रावण का सीता के प्रति अपनी आसक्ति बताकर सभासदों की सम्मति माँगना

तब रावण ने सारी सभा की ओर दृष्टिपात करके सेनापति प्रहस्त को आदेश दिया- सेनापते! तुम सैनिकों को ऐसी आज्ञा दो जिससे तुम्हारे अस्त्रविद्या में पारंगत रथी, घुड़सवार, हाथी सवार, और पैदल योद्धा नगर की रक्षा के लिए तैयार रहें। तब प्रहस्त ने राजा के आदेश का पालन करने हेतु नगर के बाहर और भीतर सभी स्थानों पर सेना की नियुक्ति कर दी। तत्पश्चात् रावण के सामने आ कर बोला- महाराज! मैंने सेना को नगर के बाहर और भीतर यथास्थान नियुक्त कर दिया है। अब आप अपने इच्छित कार्य का सम्पादन कीजिए। प्रहस्त की बात सुनकर रावण ने सुहृदों से यह बात कही- सभासदों! आप लोगों ने परस्पर विचार करके जिन कार्यों का आरंभ किया वे सबके सब कभी निष्फल नहीं हुए हैं। मैंने इस समय जो भी काम किया है। उसको भी पहले आप लोगों के सम्मुख रखकर समर्थन चाहता था किन्तु उस समय कुंभकर्ण सोये थे इसलिए मैंने इसकी चर्चा नहीं चलायी। मैं दंडकारण्य से, जो राक्षसों के विचरने का स्थान है, राम की प्यारी रानी सीता को हर लाया हूँ। किन्तु वह सीता मेरी शय्या पर आरुढ़ होना नहीं चाहती। मेरी दृष्टि में तीनों लोगों के भीतर सीता के समान सुन्दरी दूसरी कोई स्त्री नहीं है। वह सौम्य रूप और स्वभाव वाली सीता सोने की बनी हुई प्रतिमा सी जान पड़ती है। उसके तलवे के रंग लाल हैं तथा दोनों पैर चिकने और सुडौल हैं। उसके चरणों को देखकर मेरी कामाग्नि प्रज्वलित हो उठती है। जिसमें घी-सी आहुति डाली गयी है उस अग्नि की लपट और सूर्य की प्रभा के समान तेजस्विनी सीता को देखकर तथा उसके मनोहर मुख का अवलोकन कर मैं अपने वश में नहीं रह गया हूँ। काम ने मुझे अपने अधीन कर लिया है। उस काम ने मेरे हृदय को व्याकुल कर दिया है। जैसे बड़े मार्ग में चलते-चलते घोड़ा रुक जता है उसी प्रकार मैं भी काम से पीड़ित हो थकावट का अनुभव कर रहा हूँ। वैसे तो मुझे शत्रुओं की ओर से कोई डर नहीं क्योंकि वे वनवासी वानर और राम, लक्ष्मण इस अलंघ्य समुद्र को कैसे पार करेंगे।

लेकिन दूसरी ओर एक ही वानर ने आकर हमारे यहाँ महान् संहार मचा दिया। इसे भी देखते हुए कार्य सिद्धि के लिए जिसको अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा उचित जान पड़े वैसी बात बतायें। यद्यपि हमें मनुष्य से कोई भय नहीं तथापि तुम लोगों को विजय के उपाय पर विचार तो करना ही चाहिए। उन दिनों जब देवताओं और असुरों में युद्ध चल रहा था उसमें आप लोगों की सहायता से ही मैंने विजय प्राप्त की थी। उसी प्रकार आज भी आप लोग मेरे सहायक हैं। उन दोनों राजकुमारों को सीता का पता चल चुका है और वे वानरों के साथ समुद्र तट तक पहुँच चुकें हैं। अब आप सब सोच समझकर ऐसी तरकीब बताइये जिससे सीता को लौटना न पड़े और दशरथ कुमार मारे जायें। यद्यपि समुद्र पारकर यहाँ तक आने की शक्ति राम के सिवा और किसी में नहीं, किन्तु वे भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अब रावण के उन खेदपूर्ण वचनों को सुनकर कुंभकर्ण एकदम क्रोधित होकर बोला- तुम मनमाने ढंग से जब सीता को यहाँ हर लाये उसी समय हम लोग उस पर विचार कर लेते। अब अवसर बिताकर सारा काम बिगड़ जाने के बाद हमारे साथ विचार करने चले हो। महाराज! यह छलपूर्वक किसी पराई स्त्री का हरण करना अनुचित था। जो राजा सब राजकाज न्यायपूर्वक करता है उसे बाद में पछताना नहीं पड़ता। जो पहले करने योग्य कार्यों को पीछे करता है और पीछे करने योग्य कार्य को पहले कर डालता है वह नीति और अनीति को नहीं जानता। राजन्! तुमने भावी परिणाम का विचार किये बिना यह बहुत बड़ा दुष्कर्म कर डाला है। जैसे विष से मिला हुआ भोजन, खाने वाले का प्राण हर लेता है उसी प्रकार श्रीराम चन्द्रजी तुम्हारा बध कर डालेंगे। उन्होंने अभी तक तुम्हें मारा नहीं यह अपने लिए सौभाग्य की बात समझो। वीर! यद्यपि तुमने बड़ा अनुचित कार्य किया है फिर भी मैं तुम्हारे शत्रुओं का संहार कर सब ठीक कर दूँगा। मैं सूर्य, अग्नि, वायु, कुबेर के साथ भी युद्ध करूँगा और तुम्हारे शत्रुओं को उखाड़ फेकूँगा। मैं विशाल शरीर धारण कर हाथ में महान् परिध लेकर जब गर्जना करूँगा तब देवराज इन्द्र भी भयभीत हो जायेंगे। राम जब मुझे एक बाण मारकर दूसरा बाण मारने लगेंगे उसी बीच मैं उनका खून पी लूँगा। इसलिए तुम निश्चिंत हो जाओ और अपने लिए हितकर कार्य करते रहो। सीता निश्चय ही चिरकाल तक के लिए तुम्हारे

अधीन हो जायेगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२)

तेरहवाँ सर्ग

महापार्श्व का रावण को बलात्कार हेतु उकसाना

उस समय रावण को कुपित हुआ देखकर महाबली महापार्श्व बोल उठा-महाराज! जो दुर्गम वन में भी पीने योग्य मधु पाकर भी उसे नहीं पीता वह मूर्ख है। आप तो स्वयं ईश्वर हैं फिर शत्रुओं पर पैर रखकर आप सीता के साथ रमण कीजिए। आप कुक्कुटों (मुर्गों) के बर्ताव को अपना सीता के साथ बलात्कार कर उसका उपभोग कीजिए। यदि इससे कोई भय भी उत्पन्न होता है तो उससे निपटा जायेगा। हमारे साथ यदि कुंभकर्ण और इन्द्रजित् खड़े हो जायें तो हम इन्द्र को भी आगे बढ़ने से रोक सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि आपके शत्रु आयेंगे उन्हें हम अपने शस्त्रों के प्रताप से वश में कर लेंगे। तब रावण उसके वचनों की प्रशंसा करते हुए बोला- महापार्श्व! बहुत दिन पहले एक गुप्त घटना घटित हुई थी। वास्तव में मुझे एक शाप मिला था जिसे मैं बता रहा हूँ सुनो। एक बार मैंने आकाश में पुंजिकस्थला नामक अप्सरा को देखा। वह ब्रह्माजी के भवन की ओर जा रही थी। उस समय मैंने बलपूर्वक उसके वस्त्र उतार दिये और उसका उपयोग किया। जब मेरे इस दुष्कर्म का पता ब्रह्माजी को चला तो उन्होंने मुझे शाप दिया कि आज से यदि तू किसी दूसरी नारी के साथ बलपूर्वक समागम करेगा तो तेरे मस्तक के सौ टुकड़े हो जायेंगे। इस तरह मैं ब्रह्माजी के शाप से भयभीत हूँ और इसी से मैं अपनी शय्या पर सीता को बल पूर्वक नहीं चढ़ाता। मेरा वेग समुद्र के समान है और मेरी गति वायु के तुल्य है। यह बात दशरथ नन्दन राम नहीं जानते इसलिए वे मुझपर चढ़ायी कर रहे हैं। अथवा कन्दरा में सोये हुए शेर की तरह रावण को कौन जगाने की हिम्मत कर सकता है। मैं अपने धनुष से छूटे हुए बाणों द्वारा राम को बुरी तरह जला दूँगा। जैसे प्रातः उगता हुआ सूर्य नक्षत्रों को प्रभाव हीन कर देता है उसी प्रकार मैं राम की सेना को आत्मसात कर लूँगा। पूर्वकाल में मैंने कुबेर से लंका को भी इसी बाहुबल से जीता

था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१३)

चौदहवाँ सर्ग

विभीषण का सीता को लौटा देने की सम्मति देना

रावण की बात सुनकर विभीषण ने कहा- राजन्! हाथी रूप शरीर वाले, चिंतारूपी विषवाले, सुन्दर मंद मुस्कान रूपी तीखे दाँत वाले, पाँच अंगुली रूपी पाँच सिरवाले महाकाय इस सीता रूपी साँप को किसने आपके ऊपर डाल दिया है। इसके पहले कि पर्वत शिखर के समान ऊँचे वानर, जिनके दाँत और नख ही आयुध हैं, लंका पर चढ़ायी करें, आप सीता को राम के हाथों सौंप दें। राजन्! ये कुंभकर्ण, इन्द्रजित्, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ कोई समरांगण में रघुनाथजी के सामने नहीं ठहर सकेंगे। उस समय यदि सूर्य, यम, वायु भी आपको अपनी गोद में छिपा लें तो भी आप श्रीराम के हाथों से बच नहीं सकते। विभीषण की बात सुनकर प्रहस्त बोला- हम देवता या दानव किसी से नहीं डरते। भय क्या वस्तु है हम जानते भी नहीं। फिर समरांगण में हमें राम से क्या भय हो सकता है। इस पर विभीषण ने फिर कहा-प्रहस्त! महाराज रावण, महोदर, तुम और कुंभकर्ण श्रीराम के प्रति जो कुछ भी कह रहे हो वह तुम लोगों के किये नहीं हो सकता। वे अर्थविशारद हैं और समस्त कार्यों के साधन में कुशल हैं। वे धर्म को ही प्रधान मानते हैं और उनका जन्म इक्ष्वाकु कुल में हुआ है। वे समस्त कार्यों के सम्पादन में कुशल और महारथी वीर हैं। ऐसे पराक्रमी के सामने पड़ने पर देवता भी अपनी हेकड़ी भूल जायेंगे। फिर हमारी तुम्हारी बात ही क्या? प्रहस्त अभी तक श्रीराम के तीखे बाण तुम्हारे शरीर में नहीं घुसे हैं इसलिए तुम इतना बढ़-चढ़ कर बोल रहे हो। श्रीराम के बाण बज्र के समान वेगशाली होते हैं। रावण, महाबली त्रिशिरा, निकुम्भ और इन्द्रविजयी मेघनाद, इनमें से कोई भी, तेजस्वी श्रीराम के बाणों का वेग सहन करने में असमर्थ हैं। देवान्तक, नरान्तक, अतिकाय, अतिरथी तथा अकम्पन कोई भी श्रीराम के सम्मुख नहीं ठहर सकते। महाराज रावण तो मद्यपान, स्त्री, मृगया आदि व्यसनों के

वशीभूत हैं। उन्होंने सहस्र फन वाले विषैले नाग से अपनी शरीर को आवेष्ठित कर रखा है। क्योंकि श्रीराम के साथ बैर बाँधना उसी सर्प बाँधने के समान है। अब आप लोग उनके हितैषी होने के कारण उनके केश पकड़ कर उन्हें अनुचित मार्ग पर जाने से रोकें। इस समय उत्तम चरित्ररूपी जल से भरे हुए श्रीराम रूपी समुद्र इन्हें डुबाने पर तुला है। ऐसी दशा में मिलजुलकर इनका उद्धार करना आवश्यक है। इसलिए मेरी राय में ये मिथिलेश कुमारी को श्रीराम के हाथों सौंप दें। वास्तव में सच्चा मंत्री वही है जो स्वामी के लिए उचित और हितकर बात कहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१४)

पन्द्रहवाँ सर्ग

इन्द्रजित् द्वारा विभीषण का उपहास

विभीषण की बात सुनकर इन्द्रजित् बोला- मेरे छोटे चाचा! आप डरे हुए की भाँति कैसी बातें कर रहे हैं। जिसने अच्छे कुल में जन्म न लिया होगा वह भी ऐसी बात न करेगा। वे दोनों मानव कुमार हैं ही क्या? उन्हें तो हमारा एक छोटा-सा राक्षस भी मार सकता है। फिर आप हमें इस तरह क्यों डरा रहे हैं। मैंने तो जब इन्द्र को बन्दी बनाया उस समय सारे देवताओं ने इधर-उधर भागकर शरण ली थी। अपने पराक्रम से मैंने सम्पूर्ण देवताओं को आतंकित कर दिया था। जब मैंने देवताओं का दर्प दलन कर लिया तो उन राजकुमारों की विसात ही क्या? उस समय इन्द्रजित् की बात सुनकर विभीषण ने कहा- तात! अभी तुम बालक हो। तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। इसलिए तुम्हारी बातें निरर्थक हैं। तुम वास्तव में अन्दर से राक्षसराज के शत्रु मालूम होते हो। तुम अपनी खोटी बुद्धि के कारण स्वयं तो मार डालने योग्य हो ही। इसके साथ ही तुम्हें यहाँ बुलाने वाला भी बध के योग्य है। इन्द्रजित् तुम कच्चे बुद्धिवाले तो हो ही, तुम्हारा स्वभाव भी बहुत तीखा है। इसके साथ ही तुम मूर्ख भी हो। इसे जान लो कि भगवान् श्रीराम के बाण यमण्ड के समान भयंकर होते हैं अतः हम लोगों के लिए अच्छा होगा कि सीता जी को श्रीराम के हाथों सौंप कर शोक रहित हो

जायें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१५)

सोलहवाँ सर्ग

रावण के द्वारा विभीषण का तिरस्कार

रावण के सिर पर काल मंडरा रहा था इसलिए उसने विभीषण से कठोर वाणी में कहा- भाई! कुपित हुए साँप के साथ रहना पड़े तो रह ले किन्तु जो मित्र होकर भी शत्रु की सेवा कर रहा हो उसके साथ कदापि न रहे। राक्षस! सम्पूर्ण लोकों में सजातीय बन्धुओं का जो स्वभाव होता है उसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। वे सदैव सजातियों के कष्ट में हर्ष मनाते हैं। वे कुटुम्बीजन को अपमानित करके उन्हें नीचे दिखलाने की चेष्टा करते हैं। वे आततायी होते हैं और मौका पड़ने पर आग लगाने, जहर देने तथा शस्त्र चलाने में भी नहीं हिचकते। हमें अग्नि तथा दूसरे शस्त्रों का भय नहीं। मुझे तो अपने भाई ही भयानक और खतरे की वस्तु मालूम होते हैं। वे हमें शत्रुओं से पकड़े जाने का उपाय बता देंगे। अतः इनका भय ही हमें अधिक कष्ट दायक जान पड़ता है। सौम्य! आज संसार द्वारा मेरा जो सम्मान हो रहा है वह शायद तुम्हें अभीष्ट नहीं। जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी हुई ओस की बूँदे उसमें सटती नहीं, उसी प्रकार अनार्यों के हृदय में सौहार्द नहीं टिकता। जैसे भौंरा बड़े चाव से फूलों का रस पीता हुआ वहाँ ठहरता नहीं उसी प्रकार अनार्यों से स्नेह होता वह अधिक नहीं ठहरता। जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूँड से धूल उछालकर अपने शरीर को गंदलाकर लेता है उसी प्रकार दुर्जनों की मैत्री भी दूषित होती है। कुल कलंक निशाचर! यदि तेरे सिवा कोई दूसरा ऐसी बात कहता तो उसे इसी क्षण अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता।

रावण की यह बात सुनकर विभीषण अन्य चार राक्षसों के साथ उसी क्षण उछलकर आकाश में चले गये और अंतरिक्ष में खड़े होकर राक्षसराज रावण से बोले- राजन्! तुम्हारी बुद्धि भ्रमित है इसलिए धर्म के मार्ग पर नहीं चल रहे हो। बड़े भाई होने के नाते तुम पिता के समान आदरणीय हो, इसलिए जो चाहो कह लो। किन्तु अग्रज होने पर भी तुम्हारे इस कठोर वचन्

को कदापि नहीं सह सकता। लगता है तुम सारे प्राणियों का संहार करने वाले काल के पाश में बँध चुके हो। जिस घर में आग लग गयी हो तुम ऐसे घर में रहकर स्वयं नष्ट हो रहे हो। मैं तुम्हारी मृत्यु नहीं देखना चाहता इसलिए तुम्हें समझाने की चेष्टा की थी। काल के वशीभूत होने पर बड़े शूरवीर और बलवान् भी बालू की भीत की भाँति नष्ट हो जाते हैं। राक्षसराज! मैं तुम्हारा हित चाहता था इसलिए ऐसी बातें कही थीं। यदि वह तुम्हें अच्छा नहीं लगा तो मुझे क्षमा कर दो क्योंकि अब मैं यहाँ से चला जाऊँगा। वास्तव में जिन लोगों की आयु समाप्त हो जाती है वे अपने सुहृदों की कही हुई बातों को हितकर नहीं मानते।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१६)

सतरहवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम की शरण में जाना

रावण की कठोर वाणी सुनकर विभीषण दो क्षण में उस जगह पर आ पहुँचे जहाँ लक्ष्मण और श्रीराम विराजमान थे। विभीषण का शरीर सुमेरु पर्वत के समान ऊँचा था। उस समय पृथ्वी पर खड़े हुए वानरों ने उन्हें आकाश में स्थित देखा। उनके साथ उनके चार अनुचर भी थे जो उत्तम आभूषणों से विभूषित थे। उन चार राक्षसों और विभीषण को देखकर वानर राज सुग्रीव ने कुछ देर तक विचार करने के बाद हनुमान आदि वानरों से कहा- देखो, यह राक्षस अन्य चार निशाचरों के साथ हमें मारने आया है। सुग्रीव की बात सुनकर सभी वानर सालवृक्ष और पर्वत शिलाएं उठाकर बोले- राजन्! आप हमें शीघ्र इनके बध की आज्ञा दीजिए। तब विभीषण, आकाश में खड़े रहकर ही, उच्च स्वरों में बोले- मैं रावण नामक दुराचारी राजा का छोटा भाई विभीषण हूँ। रावण ने सीता का अपहरण किया इसके लिए उसे बारम्बार युक्तिपूर्ण वचनों से लौटाने के लिए समझाता रहा किन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी और मुझे कठोर बातें सुनाते हुए बहुत अपमानित किया है। इसलिए मैं अपने स्वजनों को छोड़कर यहाँ आया हूँ। अतः आप लोग शीघ्र राम के पास जाकर उन्हें मेरे आगमन की सूचना दो विभीषण की

बात सुनकर सुग्रीव ने तुरन्त श्रीराम और लक्ष्मण के सामने कहा- प्रभो! आज कोई राक्षस जो पहले शत्रु सेना में था, हमारी सेना में प्रवेश लेने के लिए आ गया है। वह मौका पाकर हमें उसी तरह मार डालेगा जैसे उल्लू कौवों का काम तमाम कर देता है। श्रीराम ये राक्षस लोग मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। इनमें अन्तर्धान होने की शक्ति है। ये मायावी तो होते ही हैं अतः उन पर किसी तरह का विश्वास नहीं करना चाहिए। सम्भव है यह रावण का कोई गुप्तचर हो। ये हमारे बीच आकर हममें फूट पैदा कर देगा। मित्रों की जंगली जातियों की तथा परम्परागत भृत्यों की सेनाओं का संग्रह तो किया जा सकता है किन्तु जो शत्रु पक्ष से मिले हों ऐसे सैनिकों का संग्रह कदापि नहीं करना चाहिए। वह अपने को रावण का छोटा भाई विभीषण बतलता है। अतः हो सकता है उसे रावण ने यहाँ भेजा हो। ऐसी दशा में हमें उसे कैद ही कर लेना चाहिए क्योंकि सम्भव है वह माया से यहाँ छिपा रहे और फिर हमारे असावधान होने पर हमारे ऊपर चोट कर बैठे। वह क्रूर रावण का भाई है इसलिए इसके मंत्रियों सहित इसे मार डालना चाहिए। इतना कहकर सुग्रीव चुप हो गये। तब अन्य वानरों से राम बोले- वानरो तुम लोगों ने सुग्रीव की बात सुन ली है अतः आप सबको भी इस पर सहमति देनी चाहिए। इतना सुनकर सभी वानर अपनी-अपनी राय देते हुए बोले- रघुनन्दन! तीनों लोकों में ऐसी कोई बात नहीं जो आपको ज्ञात न हो। आप सत्यव्रती और शूरवीर हैं तथा मित्रों पर विश्वास करके उन्हीं के हाथों अपने आपको सौंप देने वाले हैं। इसलिए आपके सभी बुद्धिमान सचिव एक-एक करके अपने विचार प्रकट करें। तब अंगद अपना सुझाव देते हुए बोले- भगवन्! विभीषण पर एकाएक विश्वास कर लेना उचित न होगा। बहुत से शठ अपनेमनोभावों को छिपाकर विचरते रहते हैं और मौका पाते ही प्रहार कर बैठते हैं। अतः पहले यह निश्चय कर लेना चाहिए कि उस व्यक्ति से अर्थ की प्राप्ति होगी या अनर्थ की। तदनन्तर शरभ ने अत्यंत सोच विचार कर कहा- इस विभीषण पर कोई गुप्तचर नियुक्त कर दिया जाये। तत्पश्चात् जाम्बवान् बोले- राक्षसराज रावण बड़ा पापी है। वास्तव में सशंकित रहनाचाहिए। नीति के ज्ञाता मैन्द ने सुझाव दिया- महाराज! यह विभीषण रावण का छोटा भाई है इसलिए इससे मधुर व्यवहार के साथ धीरे-धीरे सब बातें पूछनी

चाहिए। तदनन्तर सचिवों में श्रेष्ठ हनुमानजी बोले- प्रभो! मैं जो कुछ निवेदन करूँगा वह किसी प्रकार के कामना से नहीं करूँगा। मैं कार्य की गुरुता को ध्यान में रखकर जो उचित समझूँगा कहूँगा। वास्तव में यह परीक्षा लेने का समय नहीं। जहाँ तक यह निर्णय करना है कि वह योग्य है या नहीं। इसका निर्णय उसका किसी काम में नियुक्त किये बिना नहीं किया जा सकता और सहसा किसी काम में लगा देना भी सदोष प्रतीत होता है। उनके लिए किसी गुप्तचर के लगाने की बात भी उचित नहीं प्रतीत होती। क्योंकि जो सामने खड़ा है और स्पष्ट रूप से अपना वृतान्त बता रहा हो उसके लिए गुप्तचर लगने की क्या आवश्यकता? अतः मैं अपने बुद्धि के अनुसार जो कहना चाहता हूँ उसे सुनें। विभीषण एक नीच पुरुष के पास से चलकर एक श्रेष्ठ पुरुष के पास आया है। उसने दोनों के गुणों और दोषों का भी विवेचन किया है। तत्पश्चात् वह रावण की दुष्टता और आपका पराक्रम देखकर आपके पास आया है। वास्तव में उसका यहाँ आगमन सर्वथा उचित और उत्तम बुद्धि के अनुरूप है। जहाँ तक उससे सारी बातें पूछने का सवाल है उसके संबंध में मेरी निश्चित धारणा यह है कि जब किसी व्यक्ति से यह पूछा जायेगा कितुम कौन हो और कहाँ से आये हो तो उस नवागत मित्र का हृदय कलुषित हो जायेगा और मित्र से मिलने वाले लाभ से वंचित होना पड़ेगा। इसके अलावा किसी दूसरे के मन की बात को सहसा समझ लेना भी असम्भव है। बीच-बीच में स्वर भेद से आप अच्छी तरह निश्चित कर लें कि वह साधु भाव से आया है अथवा असाधु भाव से। इसकी बातचीत में कोई दुर्भाव भी नहीं दिखलायी पड़ता। इसलिए इसके प्रति मेरे मन में कोई संदेह नहीं। कोई अपने आकार को कितना भी छिपाये उसके मन का भाव अपने आप प्रकट हो जाता है। मेरी समझ में इनका यह आगमन हमारे अनुरूप है। हो सकता है सुग्रीव के राज्य पाने का समाचार सुनकर यह यहाँ इस विश्वास से आया हो कि राम मेरी रक्षा करते हुए मुझे राज्य दिलायेंगे। अतएव इसे अपना लेना मुझे उचित जान पड़ता है। श्रीरघुनाथ! मैंने इसकी सरलता और निर्दोषता को साफ-साफ बता दिया है अब आप जैसा उचित समझें करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

अट्ठारहवाँ सर्ग

भगवान् श्रीराम का शरणागत की रक्षा

तदनन्तर हनुमानजी की बात सुनकर श्रीराम प्रसन्न होकर बोले- मित्रों ! विभीषण के सम्बन्ध में मुझे भी कुछ कहना है, उसे भी आप लोग सुन लें। जो मित्र भाव से मेरे पास आ गया मैं उसे त्याग नहीं सकता। सम्भव है उसमें कुछ दोष हों, पर इस समय दोषी पुरुषों को भी आश्रय देना सत्पुरुषों के लिए निंदित नहीं है। तब सुग्रीव ने भी इस बात को दुहराते हुए कहा- यह दुष्ट हो या निष्कपट पर है तो निशाचर ही। जो संकट में पड़े हुए अपने भाई को त्याग सकता है तो वह दूसरा और कौन होगा जिसे वह त्याग नहीं सकता। यह सुनकर श्री रघुनाथजी लक्ष्मण की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले- लक्ष्मण इस समय वानर राज ने जो बात कही है, उसे कोई भी शास्त्रों का अध्ययन किये बिना नहीं कह सकता। लेकिन सुग्रीव जो तुमने भाई को त्यागने की बात कही है उसके बारे में मैं तुम्हें एक सुक्ष्म बात बताना चाहता हूँ सुनो।राजाओं के छिद्र दो प्रकार के बताये गये हैं- एक तो उसी कुल में उत्पन्न हुए जाति भाई और दूसरे पड़ोसी देश के निवासी। वे संकट पड़ने पर अपने विरोधी राज या राजपुत्र पर प्रहार कर बैठते हैं। सम्भवतः अपने भाई से भय होने के कारण ही विभीषण यहाँ आया हो। रावण विभीषण को शंका की दृष्टि से देखने लगा है। इसलिए इसका अपनी रक्षा हेतु यहाँ आना अनुचित नहीं। तुमने शत्रु पक्षीय सैनिकों को अपनाने में जो दोष बतलाया है उसका उत्तर यह है कि यह राक्षस राज्य पाने का अभिलाषी है इसलिए यह हमारा त्याग नहीं कर सकता। इसके अलावा युद्ध ठन जाने पर ये हमारे काम के सिद्ध होंगे इसमें कोई दो राय नहीं। इसलिए विभीषण को अपने पक्ष में करना उचित होगा। तात सुग्रीव ! सब भाई भरत के समान नहीं होते। सब बेटे मेरे जैसे नहीं होते और न सभी मित्र तुम्हारे समान होते हैं। तब श्रीराम के कहने पर सुग्रीव ने कहा- श्रीराम ! आप उसे रावण के द्वारा ही भेजा हुआ समझें। अतः उसे बंदी बनाना ही ठीक होगा। यह रावण के कहने से कुपित विचार लेकर आया है। हमारे निश्चिंत हो जाने पर यह हमारे ऊपर प्रहार भी कर सकता है। अतः मंत्रियों सहित उसका बधकर देना ठीक दिखायी देता है।

उस समय श्रीराम ने सुग्रीव को समझाया- वानर शिरोमणि ! विभीषण

दुष्ट हो या साधु। पर क्या यह मेरा कोई अहित कर सकता है। मैं चाहूँ तो पृथ्वी पर जितने भी निशाचर, दानव, यक्ष और राक्षस हैं उन सबको अंगुली के अग्रभाग से मार सकता हूँ। सुना जाता है कि एक कबूतर ने अपने शरण में आये हुए अपने शत्रु, एक बाघ का, यथोचित आतिथ्य सत्कार किया था और अपने शरीर के मांस का भोज कराया था। फिर मेरे जैसा मनुष्य शरणागत पर अनुग्रह क्यों न करे। पूर्वकाल में कण्व मुनि के पुत्र कन्डु ने एक धर्म विषयक गाथा का गान किया था उसे बताता हूँ सुनो- वह इस प्रकार है कि यदि शरण में आकर दीन भाव से बोले तो उस पर कभी प्रहार नहीं करना चाहिए। फिर तो अपने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी रक्षा करनी चाहिए। यदि वह उसकी रक्षा नहीं कर पाता तो वह लोक निंदित होता है। शरणागत की रक्षा न करना महान् दोष बतलाया गया है। यह सुयश को मिटाकर बल और वीर्य का नाश करता है। अतएव मैं महर्षि कन्डु के उस उत्तम वचन का पालन करूँगा। जो एक बार मेरी शरण में आकर मुझसे रक्षा की प्रार्थना करता है उसे मैं अभय कर देता हूँ। अतः सुग्रीव तुम उसे ले आओ। मैंने उसे अभय दान दे दिया है। तब सुग्रीव बोले- लोक शिरोमणे! आपने जिस श्रेष्ठ धर्म की बात कही है इसमें आश्चर्य ही क्या ? क्योंकि आप महान् हैं। और सन्मार्ग पर रहने वाले हैं। मेरी अन्तरआत्मा भी विभीषण को शुद्ध समझती है और हनुमानजी ने भी उनको बाहर भीतर से परख लिया है। अतएव अब विभीषण शीघ्र ही हमारे यहाँ रह कर हमारी मित्रता प्राप्त करें। यह सुनकर श्रीराम ने आगे बढ़ कर सुग्रीव को गले लगा लिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

विभीषण का आकाश से उतरकर श्रीराम के चरणों की शरण लेना

तदनन्तर श्रीराम के अभय देने पर विभीषण ने नीचे उतरने के लिए पृथ्वी की ओर देखा। फिर वे अपने भक्त सेवकों के साथ पृथ्वी पर उतर आये तथा चारों राक्षसों के साथ श्रीराम के चरणों पर पड़े और बोले- भगवन्! मैं रावण का छोटा भाई हूँ। रावण ने मेरा अपमान किया है इसलिए मैं आपकी

Mookerji sharma Jammu Collection

शरण आया हूँ। अब मेरा सारा सुख और जीवन आपके अधीन है। यह सुनकर श्रीराम मधुरवाणी में बोले- विभीषण! तुम मुझे राक्षसों का ठीक-ठीक बलाबल बताओ। तब विभीषण ने राक्षसों के बल का परिचय देते हुए कहा- राजकुमार ब्रह्माजी का वरदान पाकर मेरा भाई रावण, मनुष्यों को छोड़कर अन्य प्राणियों के लिए अवध्य है। रावण से छोटा किन्त मुझसे बड़ा भाई कुंभकर्ण इन्द्र के समान बलशाली है। रावण के सेनापति का नाम प्रहस्त है। उसने युद्ध में कुबेर के सेनापति मणिभद्र को परास्त किया था। रावण का पुत्र इन्द्रजित् है। यह जब युद्ध में खड़ा होता है उस समय वह अदृश्य हो सकता है। उसने अग्निदेव को तृप्त करके ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिससे वह अदृश्य होकर युद्ध कर सके। महोदर, महापार्श्व और अकम्पन ये तीनों रावण के सेनापति हैं। विभीषण की बात सुनकर श्रीराम ने अच्छी तरह विचार करने के बाद कहा- विभीषण! तुमने रावण के जिन-जिन पराक्रमों का वर्णन किया है उन्हें मैं अच्छीं तरह जानता हूँ। लेकिन सुनो मैं सच कह रहा हूँ कि सेनापति और पुत्रों सहित रावण का बध करके तुम्हें लंका का राजा बनाऊँगा। वह अब किसी तरह मेरे हाथों से बच नहीं सकता। मैं अब सौगन्धपूर्वक कहता हूँ कि मैं रावण का बध करके ही अयोध्यापुरी में प्रवेश करूँगा। यह सुनकर धर्मात्मा विभीषण बोले- प्रभो! राक्षसों के संहार में यथाशक्ति आपकी सहायता करूँगा। विभीषण के ऐसा कहने पर श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और लक्ष्मण से बोले- सुमित्रानन्दन! तुम समुद्र का जल ले आओ और लंका के राज्य पर शीघ्र इनका अभिषेक कर दो। मेरे प्रसन्न होने पर इन्हें यह राज्य मिलना ही चाहिए। इस समय लक्ष्मण ने मुख्य-मुख्य राक्षसों के बीच महाराज श्रीराम के आदेश से विभीषण को राक्षसों के राजा के पद पर अभिषेक कर दिया। तब यह देखकर सभी वानर हर्षध्वनि करते हुए श्रीराम को साधुवाद देने लगे। उस समय हनुमान और सुग्रीव ने विभीषण से पूछा- राक्षसराज! हम वानरों की सेना साथ लेकर इस समुद्र को कैसे पार कर सकेंगे। विभीषण यह सुनकर बोले- इसके लिए श्रीराम को सागर की शरण लेनी चाहिए। क्योंकि यह सागर के वंशज हैं। समुद्र को इनका कार्य अवश्य करना चाहिए। श्रीराम स्वभाव से स्वयं धर्मशील हैं इसलिए उन्हें विभीषण की यह बात बड़ी अच्छी लगी और वे

कहने लगे- लक्ष्मण ! विभीषण की यह सम्मति मुझे अच्छी लगती है। किन्तु सुग्रीव और तुम दोनों भी यथोचितसलाह देने में कुशल हो इसलिए इस पर तुम लोगों को भी जो ठीक जान पड़े वह बताओ। तब सुग्रीव और लक्ष्मण श्रीराम से बोले- विभीषण ने जो कुछ भी कहा है वह हम दोनों को क्यों अच्छी नहीं लगेगी। समुद्र में पुल बाँधे बिना इसे पार करना देवताओं के लिए भी कठिन है। अतः हम विभीषण के सुझाये हुए रास्ते से चलें और समुद्र से अनुरोध किया जाये कि लंकापुरी पहुँचाने में हमारी सहायता करें। उन लोगों के ऐसा कहने पर श्रीरामचन्द्रजी उस समय समुद्र तट पर कुशा बिछाकर उसके ऊपर उसी तरह बैठे जैसे वेदी पर अग्नि देव प्रतिष्ठित होते हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

शार्दूल के कहने से रावण का शुक को दूत बनाकर सुग्रीव के पास संदेश भेजना

इसी बीच में रावण के गुप्तचर शार्दूल ने सागर-तट पर छावनी डाले पड़ी हुई सुग्रीव की वानरी सेना को देखा। तब वह राक्षस लौटकर रावण से बोला- महाराज ! लंकापुरी की ओर वानरों और भालुओं का एक प्रवाह-सा बढ़ा चला आ रहा है। श्रीराम और लक्ष्मण यहाँ सीता का उद्धार करने के लिए आ रहे हैं। राक्षस सम्राट ! अब आप शीघ्र सारी बातों का पता लगाने के लिए अपने दूत को वहाँ भेजें। फिर आप जैसा उचित समझें वैसा करें। चाहे आप सीता को लौटा दें चाहे सुग्रीव से मीठी-मीठी बातें करके उन्हें आप अपनी ओर मिला लें और सुग्रीव तथा श्रीराम में फूट डलवा दें। शार्दूल की बात सुनकर रावण सहसा व्यग्र हो उठा और अर्थवेत्ताओं में श्रेष्ठ शुक नामक राक्षस से बोला- दूत ! तुम शीघ्र वानरराज सुग्रीव के पास जाकर मेरा यह संदेश कहो कि वानरराज ! आप वानरों के महाराज के कुल में उत्पन्न हुए हैं। मैं आपको अपने बड़े भाई के समान समझता हूँ। यदि आपको मुझसे कोई लाभ नहीं हुआ तो मुझसे आपका कोई हानि भी नहीं हुई। सुग्रीव ! जरा सोचिए यदि मैं राम की स्त्री को हर लाया हूँ तो इसमें आपकी क्या हानि हुई।

अतः आप किष्किंधा को लौट जाइये। क्योंकि हमारी इस लंका में वानर किसी तरह नहीं पहुँच सकेंगे। यहाँ तो देवता और गंधर्व भी नहीं पहुँच सकते फिर वानर और मनुष्यों की बात ही क्या? उस समय शुक नामक राक्षस तोता का रूप धारण कर आकाश में उड़ जाता है और आकाश में ही ठहर कर सुग्रीव से रावण की सारी बातें कह सुनाई। जिस समय वह संदेश सुना रहा था उस समय सारे वानरों ने उस निशाचर को बलपूर्वक पकड़ लिया और उसे आकाश से भूतल पर उतारा। इस प्रकार वानरों के पीड़ा देने पर शुक पुकार उठा- रघुनन्दन! राजा लोग दूतों का बध नहीं करते। अतः आप इन वानरों को रोकिये। तब शुक के वचन और उसका विलाप सुनकर श्रीराम ने उन वानरों को ऐसा करने से रोक दिया। उस समय श्रीराम केअभय देने पर शुक पुनः आकाश में खड़ा हो गया और बोला- महान् पराक्रमी सुग्रीव! अब मुझे आपकी ओर से रावण को क्या उत्तर देना चाहिए? सुग्रीव ने उससे निश्चल वाणी में कहा- दूत तुम रावण से कहना कि तुम न तो मेरे मित्र हो और न मेरे प्रिय व्यक्तियों में ही। भगवान् श्रीराम के शत्रु होने के कारण तुम बाली की भाँति मेरे लिए वध्य हो। मैं बन्धु-बान्धवों सहित तुम्हारा बध करके लंकापुरी भस्म कर दूँगा। तुम यदि इस समय कहीं छिप भी जाओ तो फिर भी राम के हाथों मरने से नहीं बच सकते। तीनों लोक में मुझे कोई भी पिशाच, राक्षस, गंधर्व या असुर ऐसा नहीं दिखलायी पड़ता जो तुम्हारी रक्षा कर सके। चिरकाल के बूढ़े जटायु को तुमने क्यों मारा? यदि तुममें बल था तो तुमने राम और लक्ष्मण के सामने ही सीता का अपहरण क्यों नहीं किया? श्रीराम देवताओं के लिए दुर्जय हैं इसलिए वे छिपकर नहीं बल्कि तुम्हारे सामने आकर तुम्हारे प्राणों का अपहरण करेंगे। फिर तो वानरों ने उछल कर उसे पकड़ लिया और वह बेचारा अनाथ की भाँति विलाप करता रहा। तब उस शुक ने पुनः श्रीराम को जोर से पुकारकर कहा- प्रभो! मेरी आँखें और मेरी पाँखे बलपूर्वक नोची जा रही हैं। यदि मैंने आज प्राणों का त्याग किया तो इस जन्म से लेकर मरण के बीच मैंने जो भी पाप किया है वह सब आपको ही लगेगा। तब श्रीराम ने सब वानरों से कहा- इसे छोड़ दो यह दूत होकर आया है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीराम का समुद्र के तट पर तीन दिनों तक धरना देना

तत्पश्चात् श्रीराम समुद्र के तट पर कुशा बिछाकर महासागर के समक्ष हाथ जोड़ पूर्वाभिमुख हो वहाँ लेट गये। उस समय उन्होंने अपनी दाहिनी बाँह को तकिया बना लिया। उस बाँह को कितनी ही नारियाँ पहले नहलाया-धुलाया करती थीं। पहले चन्दन और अगरू से उस बाँह की सेवा होती थी। सीता हरण से पहले शासन काल में सीता का सिर उस बाँह की शोभा बढ़ाता था। युद्ध स्थल में वह भुजा शत्रुओं का शोक बढ़ाने वाली और मित्रों को आनन्दित करने वाली थी। तब उस दाहिनी भुजा का तकिया लगाकर उदारता आदि गुणों से मुक्त महाबाहु श्रीराम आज या तो मैं समुद्र पार करूँगा या मेरे द्वारा समुद्र का संहार होगा, उद्देश्य से विधिपूर्वक धरना देते हुए उसी कुशासन पर सो गये। इस तरह कुशासन पर लेटे हुए श्रीराम की वहाँ तीन रातें व्यतीत हो गयीं। लेकिन इस प्रकार तीन रातें व्यतीत होने के बाद भी मन्दमति सागर ने उन्हें अपने अधिदैविक रूप का दर्शन नहीं कराया। तब श्रीराम समुद्र पर कुपित हो उठे और पास खड़े हुए लक्ष्मण से बोले-समुद्र को अपने ऊपर बड़ा अहंकार है। जिससे वह स्वयं मेरे सामने प्रकट नहीं हो पा रहा है। शान्ति, क्षमा, सरलता और मधुर भाषण ये जो सत्पुरुषों के गुण हैं इनका गुणहीनों के प्रति प्रयोग करने पर यही परिणाम होता है। इससेलोग गुणवान पुरुष को भी असमर्थ समझ लेते हैं और वो दुष्ट, धृष्ट, सर्वत्र धावा करने वाला होता है। उस मनुष्य का सब लोग सत्कार करते हैं। लक्ष्मण! शान्ति के द्वारा इस लोक में न तो कीर्ति प्राप्त की जा सकती है न यश का प्रसार हो सकता है। तुम देखो, आज मैं महान युद्ध ठानकर शंखों और सीपियों के समुदाय तथा मत्स्यों और मगरों से भरे हुए उस समुद्र को अभी सुखाये देता हूँ। यह समुद्र मुझे क्षमा से युक्त देखकर मेरा तिरस्कार करने लगा है। इसलिए धनुष तथा विषधर सर्पों के समान भयंकर बाण ले आओ। मैं उससे समुद्र को सुखा डालूँगा फिर वानर पैदल ही लंकापुरी चलें। यद्यपि समुद्र सदा अपनी मर्यादा में रहता है पर आज मैं अपने बाणों से इसकी मर्यादा नष्ट कर दूँगा। बड़े-बड़े दानवों से भरे हुए इस महासागर में मैं हलचल-सी मचा दूँगा। इतना कहकर श्रीराम ने अपने हाथों में धनुष ले

लिया और समुद्र को आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए अपने धनुष पर धीरे-से प्रत्यंचा चढ़ा दी और उसके टंकार से सारे जगत को कम्पित करते हुए बड़े भयंकर बाण छोड़े। तब तेज से प्रज्वलित होते हुए वे महान वेगशाली श्रेष्ठ बाण समुद्र के जल में घुस गये। इससे वहाँ के रहने वाले सर्प आदि भय से थर्रा उठे। जल का वेग सहसा भयंकर हो गया और वहाँ तूफान-सा कोलाहल छा गया। समुद्र बड़ी-बड़ी तरंग मालाओं से प्राप्त हो गया और शंख और सीपियाँ पानी के ऊपर छा गयीं। उस समय पाताल में रहने वाले महापराक्रमी दानव भी व्यथित हो उठे। सागर की उत्ताल तरंग मालायें झूमने और चक्कर काटने लगीं। तथा उसमें निवास करने वाले नाग और राक्षस घबरा गये। तदनन्तर रघुनंदन जी रोष से लम्बी साँस लेते हुए वेगशाली अनुपम धनुष प्रत्यंचा की पुनः खींचने लगे। यह देखकर लक्ष्मण उछलकर उनके पास जा पहुँचे और 'बस-बस अब नहीं' ऐसा कहते हुए उनका हाथ पकड़ लिया। फिर बोले, भैया! आप वीर शिरोमणी हैं। इस समुद्र को नष्ट किये बिना ही आपका कार्य सम्पन्न हो जायेगा। आप जैसे महापुरुष क्रोध के अधीन नहीं होते। अब आप सुदीर्घकाल तक उपयोग में लाये जाने वाले किसी अच्छे उपाय पर दृष्टि डालें। इसी समय अंतरिक्ष में स्थित महर्षियों और देवर्षियों ने भी 'अब नहीं, अब नहीं' कहकर बड़े जोर का कोलाहल किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाइसवाँ सर्ग

समुद्र की सलाह से नल के द्वारा सागर पर सौ योजन लम्बे पुल का निर्माण

तब श्रीराम ने कठोर शब्दों में कहा- महासागर! आज मैं तुझे पाताल सहित सुखा दूँगा। आज मेरे बाणों से तुम्हारी सारी जल राशि दग्ध हो जायेगी और यहाँ जल के स्थान पर विशाल बालुका राशि पैदा हो जायेगी।। तब वानर सेना पैदल, ही चलकर तेरे उस पार पहुँच जायेगी। अभी तक तुझको मेरे बल-विक्रम का पता नहीं है किन्तु याद रख मेरी उपेक्षा के कारणतुझे संताप ही मिलेगा। यों कहकर श्रीराम ने पुनः एक बाण अभिमंत्रित करके उसे

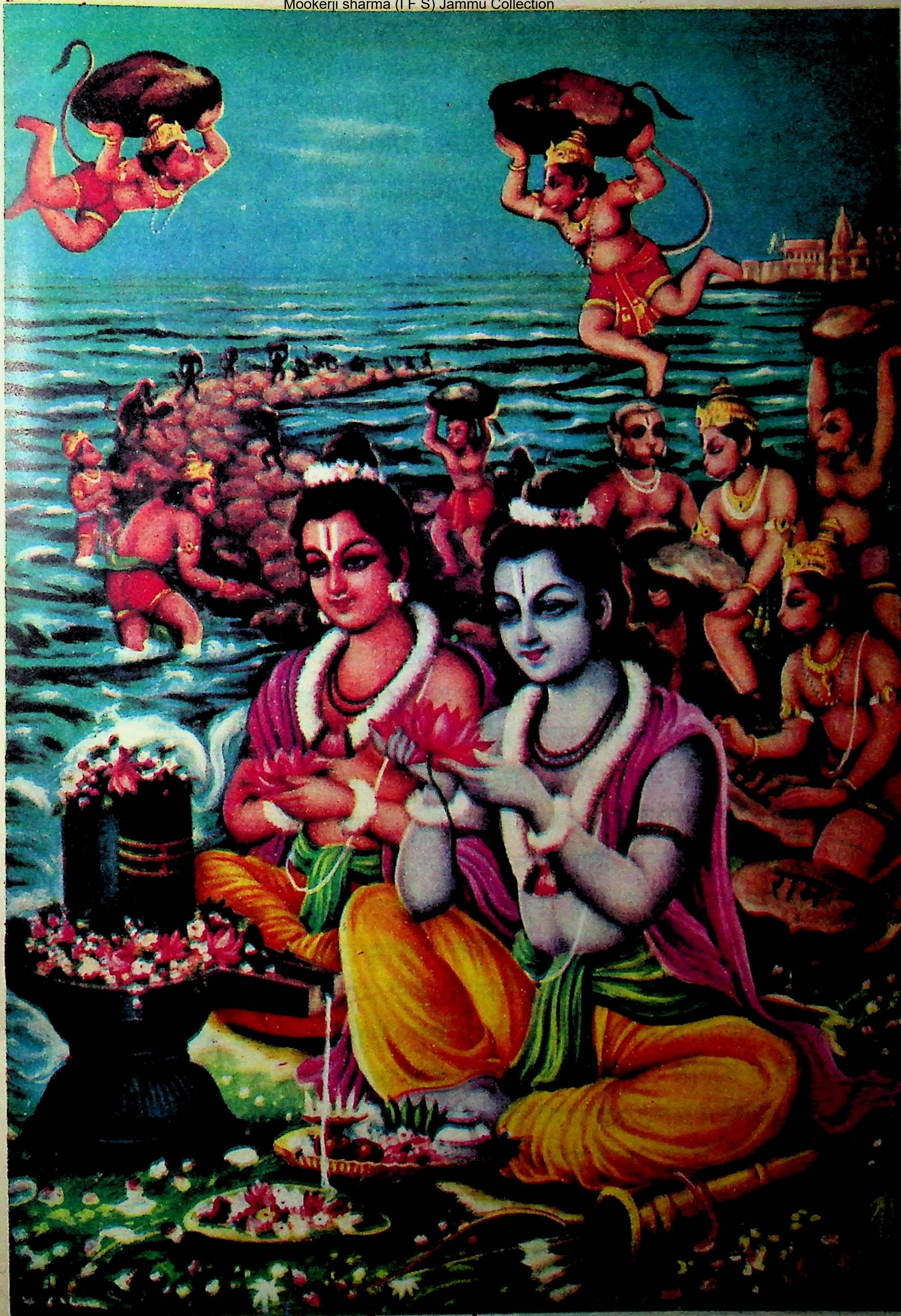

सेतुबन्ध रामेश्वर

धनुष पर चढ़ाकर खींचा। उस धनुष के खींचे जाते ही पर्वत डगमगा उठे। सारे संसार में अंधकार छा गया और किसी को दिशाओं का ज्ञान न रहा। चन्द्रमा और सूर्य अन्य नक्षत्रों के साथ तिर्यक गति से चलने लगे। अंतरिक्षमें गड़गड़ाहट के साथ बज्रपात होने लगे। वे विशाल बज्र नयी गड़गड़ाहट के साथ टकराकर विद्युत पैदा करने लगे। इससे समस्त प्राणी व्यथा से व्याकुल होने लगे। उनमें से कितने भय से जड़वत् हो गये। समुद्र का भयानक वेग मार्यादा लाँघ कर एक-एक योजन आगे बढ़ गया किन्तु मर्यादा लाँघ कर समुद्र के बढ़ जाने पर भी श्रीराम चन्द्रजी अपने स्थान से पीछे नहीं हटे। तब समुद्र के बीच से सागर स्वयं मूर्तिमान होकर प्रकट हुआ। उसका वर्ण स्निग्ध वैदूर्यमणि के समान श्याम था। उसने जम्बूनद नामक सुवर्ण आभूषण पहने हुए थे। वह लाल वस्त्र धारण किये हुए था और उसके नेत्र कमल दल के समान सुन्दर थे। वह अपने ही भीतर उत्पन्न हुए रत्नों के उत्तम आभूषण से विभूषित था। चंचल तरंगे उसे घेरे हुए थीं। वह मेघमाला तथा वायु से व्याप्त था तथा गंगा और सिन्धु आदि नदियां उसे सब ओर से घेरे हुए खड़ी थीं। तत्पश्चात् नदीपति समुद्र ने निकट आकर श्रीराम से कहा- रघुनन्दन! पृथ्वी , वायु, आकाश, जल और तेज ये सदैव अपने स्वभाव से स्थित रहते हैं। मेरा भी यही स्वभाव है कि कोई मेरे पार नहीं जा सकता अतः मैं आपके पार होने का एक उपाय बताता हूँ। जिससे आप उस पार चले जायेंगे और वानरों को कोई कष्ट भी नहीं होगा। तब रामचन्द्र ने कहा- वरुणालय! किन्तु मेरा यह बाण अमोघ है इसको किस स्थान पर छोड़ा जाये। यह सुनकर सागर ने कहा- मेरे उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नाम से एक विख्यात देश है, वहाँ आभीर जाति के बहुत से मनुष्य निवास करते हैं। वे सब के सब पापी और लुटेरे हैं। वे सब मेरा जल पीते हैं। मुझे लगातार ऐसे पापाचारियों का स्पर्श होता रहता है। अतः आप अपना बाण वहीं सफल कीजिए। श्रीराम ने तब ऐसा ही किया। अब वह बाण जिस सथान पर गिरा वह दुर्गम मरुभूमि के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर उसकी चोट से जो छेद हुआ उसमें से होकर रसातल का जल ऊपर को उछलने लगा और फिर वह कुआँ व्रण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्पश्चात् वह स्थान मरु कान्तार नाम से विख्यात हो गया। तब श्रीराम ने उस मरुभूमि को वरदान दिया कि वह मरुभूमि पशुओं के लिए

हितकारी होगी और वहाँ घी आदि चिकने पदार्थ अधिक सुलभ होंगे और अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न होंगी। इस प्रकार श्रीराम का वरदान पाकर वह मरु प्रदेश बहुसंख्यक गुणों से सम्पन्न हो सबके लिए मंगलकारी हो गया। तदनन्तर समुद्र ने श्री रघुनाथजी से कहा- सौम्य! आपकी सेना में जो नल नामक कान्तवान वानर हैं वह साक्षात् विश्वकर्मा का पुत्र है। इसके पिता ने इसे यह वरदान दिया था कि तुम मेरे ही समान शिल्पकला में निपुण होगे। यह उत्साही वानर शिल्प कर्म में अद्वितीय है। अतः यह मेरे ऊपर पुल का निर्माण करे। मैं उस पुल को धारण करूँगा। इतना कहकर समुद्र अदृश्य हो गया। तब नल उठकर श्रीराम से बोला- प्रभो! सागर ने ठीककहा है। मैं पिता द्वारा दी हुई शक्ति से इस विस्तृत समुद्र पर सेतु का निर्माण करूँगा। इस भयानक समुद्र को राजा सगर के पुत्रों ने बढ़ाया है। फिर भी उसने कृतज्ञता वश नहीं बल्कि दण्ड भय से ही सेतुकर्म देखने की इच्छा मन में लाकर श्रीरघुनाथ जी को अपनी थाह दी। मन्दराचल पर विश्वकर्माजी ने मेरी माता को यह वर दिया था- कि देवि, तुम्हारे गर्भ से मेरे ही समान पुत्र होगा। इस प्रकार मैं विश्वकर्मा का औरस पुत्र हूँ और शिल्पकर्म में उन्हीं के समान निपुण हूँ। समुद्र ने आज मुझे इन सब बातों का स्मरण दिला दिया। अब तक मैं बिना पूछे आप लोगों को अपना गुण नहीं बता सकता था इसलिए चुप था। मैं इस सागर पर पुल बाँधने में समर्थ हूँ। इसलिए सब वानर आज ही पुल बाँधने का कार्य आरंभ कर दें। तब श्रीराम का आदेश पाकर लाखों बड़े-बड़े वानर उत्साह में भरकर जंगलों में घुस गये और बड़े-बड़े पर्वत शिखरों और वृक्षों को तोड़कर उन्हें समुद्र तक खींच लाते थे। फिर वे उन वृक्षों से समुद्र को पाटने लगे। महाकाय महाबली वानर हाथी के समान बड़ी-बड़ी शिलाओं और पर्वतों को उखाड़कर विभिन्न साधनों द्वारा समुद्र तट पर ले आते। उन वानरों ने सब ओर पत्थर गिराकर समुद्र में हलचल मचा दी। कुछ दूसरे वानर सौ योजन लम्बा सूत पकड़े हुए थे। इस तरह भयंकर कर्म करने वाले वानरों ने मिल जुलकर उस समय सेतु का निर्माण आरम्भ कर दिया। कोई नापने के लिए दण्ड पकड़ते तो कोई सामग्री जुटाते। उस समय उस महासागर में फेंकी जाती हुई शिलाओं और गिराये जाते हुए पहाड़ों के गिरने से बड़ा भीषण शब्द हो रहा था। इस तरह वानरों ने पहले दिन चौदह योजन लम्बा पुल

बाँधा। दूसरे दिन फिर बीस योजन लम्बा पुल बाँध दिया गया। तीसरे दिन इक्कीस योजन तथा चौथे दिन बाइस योजन लम्बा पुल बाँध दिया गया। तत्पश्चात् पाँचवें दिन तेइस योजन और इस प्रकार धीरे-धीरे नल के द्वारा सौ योजन लम्बा पुल बनाकर तैयार कर दिया गया। नल के बनाये उस सौ योजन लम्बे तथा दस योजन चौड़े पुल को देवताओं, सिद्धि, महर्षि और गंधर्वों ने भी देखा जिसे बनाना बहुत ही कठिन था। इस प्रकार एक खरब महाबली वानर सेतु बाँधते-बाँधते समुद्र के उस पार पहुँच गये। पुल तैयार हो जाने पर अपने साथियों के साथ विभीषण गदा हाथ में लेकर समुद्र के दूसरे तट पर खड़े हो गये जिससे शत्रु पक्षीय राक्षस यदि पुल तोड़ने के लिए आयेंगे तो उन्हें दण्ड दिया जा सके। तदनन्तर सुग्रीव ने श्रीराम से कहा- वीरवर आप हनुमान के कंधे पर चढ़ जाइये और लक्ष्मण अंगद की पीठ पर हो लें। क्योंकि यह समुद्र बहुत लम्बा चौड़ा है और ये दोनों वानर आकाश मार्ग से चलनेवाले हैं। अतः ये दोनों ही आप दोनों भाइयों की सहायता कर सकेंगे। तब श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ उस सेना के आगे-आगे चले। इस प्रकार पार जाती हुई उस भयंकर वानर सेना ने अपने महान् घोष से समुद्र की बढ़ी हुई भीषण गर्जना को भी दबा दिया। फिर धीरे-धीरे समुद्र के उस पार पहुँचकर सागर के तट पर ही सेना का पड़ाव डाला। तब श्रीराम का उस अद्भुत और दुष्कर कर्म देखकर सिद्ध, चारण और महर्षियों के साथ, देवता उनके पास आये एवं पवित्र तथा शुभजल से उनका अभिषेक किया और आशीष वचनों में बोले- तुम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेइसवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण से उत्पात सूचक लक्षणों का वर्णन

तत्पश्चात् श्रीराम ने बहुत से अपशकुन देखकर सुमित्राकुमार लक्ष्मण को हृदय से लगाया और इस प्रकार कहा- लक्ष्मण! जहाँ शीतल जल की सुविधा हो और फलों से भरे हुए जंगल हों उन स्थानों का आश्रय लेकर हम अपने सेना समूह को कई भागों में बाँट दें, और इसे व्यूह बद्ध करके इसकी

रक्षा के लिए सावधान रहें। मैं देखता हूँ समस्त लोकों का संहार करने वाला, भीषण भय उत्पन्न हुआ है, जो रीछों, वानरों और राक्षसों के प्रमुख वीरों के विनाश का सूचक है। धूल से भरी प्रचण्ड वायु चल रही है। धरती काँपती है। पर्वत हिलते हैं। ये घटा जो इस समय घिरी है देखने में बहुत क्रूर है जो क्रूरतापूर्वक रक्त की बूँदों से मिले हुए जल की वर्षा करते हैं। यह लालिमा लिए सन्ध्या बड़ी भयंकर दिखलायी पड़ रही है। क्रूर पशु और पक्षी भी दीन आकार धारण कर सूर्य की ओर मुँह करके दीनता पूर्ण स्वरों में चीत्कार कर रहे हैं। यह रात्रि-कालीन चन्द्रमा पूर्णरूप से प्रकाशित न होकर स्वभाव के विपरीत ताप दे रहे हैं। लक्ष्मण ! निर्मल सूर्य मण्डल में नीला चिह्न दिखायी देता है। जो अशुभ है। वे तारे धूलिराशि में आच्छादित होकर स्तब्ध हो गये हैं और जगत् के भावी संहार की सूचना दे रहे हैं। कौए, बाज और गीध महाभयंकर बोलियाँ बोल रहे हैं। ऐसा लगता है कि वानरों और राक्षसों के चलाये हुएशिला खंडों से यह सारी भूमि पट जायेगी और रक्त की कीच जम जायेगी। हम लोगों को चाहिए कि जितनी भी जल्दी हो सके इस लंका पर वेग पूर्वक धावा बोल दें। ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम हाथ में धनुषबाण लेकर लंका की ओर स्वयं प्रस्थित हुए। फिर विभीषण और सुग्रीव के साथ वे सभी श्रेष्ठ वानर युद्ध की इच्छा रखते हुए आगे बढ़े। वे सबके सब श्रीराम की भलाई चाहते थे। वानरों की ये चेष्टाएं देखकर श्रीराम को बड़ा संतोष हुआ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण से लंका की शोभा का वर्णन

तब सुग्रीव ने उस वीर वानर सेना की यथोचित व्यवस्था की। वह विशाल सैन्य समूह समुद्र के समान जान पड़ता था। तदनन्तर वानरों ने लंका में महान कोलाहल सुना जो भेरी और मृदंग के घोष से मिलकर बड़ा ही भयंकर और रोमान्चकारी जान पड़ता था। उस तुमुलनाद को सुनकर वानर यूथपति उत्साह से भर उससे भी बढ़कर जोर-जोर से गर्जना करने लगे। वह आवाज आकाश में मेघों की गर्जना के समान जान पड़ती थी। तब श्रीराम

सीता का स्मरण करते हुए मन ही मन बोले- हाय, यहीं वह मृगनयनी सीता रावण के कैद में पड़ी है। तब यह सोचते हुए श्रीराम लक्ष्मण की ओर देखते हुए बोले- लक्ष्मण! इस लंका की ओर देखो। यह अपनी ऊँचाई से आकाश में रेखा खींचती हुई सी जान पड़ती है। जान पड़ता है विश्वकर्मा ने अपने मन से ही इस पर्वत शिखर पर इसका निर्माण किया है। पूर्वकाल में यह पुरी अनेक सतमंजिले मकानों से भरी पूरी बनाई गयी थी। अब भी फूलों से भरे हुए सुन्दर काननों से लंकापुरी सुशोभित हो रही है। देखो, यह शीतल सुखद वायु इन वनों को जिनमें मतवाले पक्षी चहचहा रहे हैं तथा भौंरे फलों और फूलों में लीन हो रहे हैं और जिनके प्रत्येक खण्ड कोकिलों के समूह एवं संगीत से व्याप्त हैं, कितना आकर्षक लग रहा है। तत्पश्चात् श्रीराम ने सेना का विभाग करते हुए सैनिकों को आदेश दिया कि इस विशाल सेना में से अपनी-अपनी सेना को साथ लेकर दुर्जय एवं अंगद नील के साथ वानर सेना के मुख्य व्यूह में हृदय के स्थान में स्थित हों। इसी तरह ऋषभ कपियों के समुदाय से घिरे रहकर इस वानर वाहिनी के दाहिने पार्श्व में खड़े हों। मैं लक्ष्मण के साथ सावधान रहकर इस मस्तक के स्थान में खड़ा होऊँगा। जाम्बवान्, सुखेण और वेगदर्शी ये तीनों जो रीछों की सेना के प्रधान हैं, अपने सैन्य व्यूह के कुक्षि भाग की रक्षा करें। वानर राज सुग्रीव पश्चिम भागकी रक्षा करें। इस प्रकार विभक्त किये जाने पर वह विशाल सेना मेघों से घिरे हुए आकाश के समान जान पड़ती थी। वानर पर्वतों के शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष लेकर युद्ध के लिएलंका पर चढ़ आये। वे उस पुरी को पददलित करके धूल में मिला देना चाहते थे। तदनन्तर श्रीराम ने सुग्रीव से कहा- हम लोगों ने अपनी सेना को सुन्दर ढंग से विभक्त करके उसे व्यूह वद्ध कर लिया है। अतः अब इस शुक को छोड़ दिया जाये। श्रीराम के आदेश से सुग्रीव ने रावण दूत शुक को बन्धन मुक्त कर दिया। तब शुक अत्यंत भयभीत होकर राक्षस राज रावण के पास पहुँचा और कहने लगा- महाराज! मैंने समुद्र के उत्तर तट पर पहुँच कर आपका संदेश बहुत स्पष्ट मधुर वाणी में सुग्रीव को सुनाया किन्तु मुझपर दृष्टि पड़ते ही कुपित हुए वानरों ने उछल कर मुझे पकड़ लिया और घूसों से मारना तथा पंखों को नोचना आरंभ किया। राक्षसराज! ये वानर स्वभाव से ही क्रोधी और तीखे हैं। जो विराध, कबन्ध और खर का बध कर चुके हैं, वे

श्रीराम सुग्रीव के साथ सीता के स्थान का पता पाकर उनका उद्धार करने के लिए आये हैं। वीर! जैसे देवता और दानवों में मेल होना असम्भव है उसी प्रकार राक्षसों और सुग्रीव के सैनिकों से संधि नहीं हो सकती। अब जब तक वे लंका पुरी के चहारदीवारी को पार करें उसके पहले ही आप या तो सीता को उन्हें लौटा दीजिए अथवा फिर सामने खड़े होकर युद्ध कीजिए। शुक की बातें सुनकर रावण की आँखे रोष से लाल हो उठीं और वह बोला- इस समय यदि देवता, गंधर्व और दानव भी मुझसे युद्ध करने को तैयार हो जायें तो भी मैं सीता को नहीं लौटाऊँगा। मुझे अब वह अवसर कब मिलेगा जब मेरे धनुष से छूटे हुए तेजस्वी बाण उस रघुवंशी पर धावा करेंगे। जैसे सूर्य अपने उदय के साथ ही समस्त नक्षत्रों की प्रभा हर लेते हैं उसी प्रकार मैं विशाल सेना के साथ रणभूमि में खड़े होकर राम की समस्त वानर सेना को आत्मसात कर लूँगा। दशरथ कुमार राम ने अभी समर भूमि में समुद्र के समान मेरे वेग और वायु के समान मेरे बल का अनुभव नहीं किया है। इसलिए वह मेरे साथ युद्ध करना चाहता है। मेरा धनुष एक सुन्दर वीणा है जो बाणों के कोनों से बजाया जाता है। उस समय नाराचों को छोड़ते समय जो चट-चट शब्द होता है वह मानों हथेली पर दिया जाने वाला ताल है। बहती हुई नदी के समान जो शत्रुओं की वाहिनी है वह उस संगीतोत्सव के लिए विशाल रंगभूमि है। आज मैं समरांगण के उस रंगभूमि के भीतर प्रवेश कर अपनी वह भयंकर वीणा बजाऊँगा। उस समय इन्द्र, वरुण, यम या कुबेर भी मेरे सम्मुख आ जायें तो भी मुझे पराजित नहीं कर सकते।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पचीसवाँ सर्ग

रावण का शुक और सारण का वानर सेना में भेजना

दशरथ नन्दन भगवान् राम जब सेना सहित समुद्र पार कर चुके तब रावण अपने मंत्री शुक और सारण से फिर बोला- यद्यपि समुद्र को पार करना अत्यंत कठिन था तो भी सारी वानर सेना उसे लाँघ कर इस पार चली आयी। राम के द्वारा इस प्रकार सागर पर सेतु का बाँधा जाना अभूतपूर्व कार्य

है। अब वानर सेना कितनी है इसका ज्ञान मुझे अवश्य प्राप्त करना चाहिए। तुम दोनों वानर सेना में इस तरह प्रवेश करो कि तुम्हें कोई पहचान न सके। फिर वहाँ जाकर इस बात का पता लगाओ कि वानर सेना कितनी है? उनकी शक्ति कैसी है और उनमें मुख्य-मुख्य वानर कौन-कौन हैं। यह पुल किस प्रकार बाँधा गया। वानरों की छावनी कैसे पड़ी? वे क्या करना चाहते हैं? उनके पास कौन-कौन से अस्त्र हैं। तुम लोग इन सब बातों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके शीघ्र लौट आओ। ऐसा आदेश पाकर शुक और सारण वानर रूप धारण करके इस वानरी सेना में घुस गये। उस समय उन्होंने देखा कि वह वानरी सेना गिनना तो दूर रहा उसका अंदाजा लगाना भी असम्भव है। उस अपार सेना को देखकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। उसका कुछ भाग तो समुद्र पार कर रहा था, कुछ पार कर चुका था और कुछ पार करने की तैयारी में लगा था। यह विशाल सेना कुछ स्थानों पर छावनी डाल चुकी थी और कुछ स्थानों पर डालती जा रही थी। उस समय वानर वेश में छिपकर सेना का निरीक्षण करते हुए दोनों राक्षस शुक और सारण को विभीषण ने पहचान लिया और फिर उन दोनों को पकड़कर श्रीराम चन्द्रजी से कहा- नरेश्वर! ये दोनों लंका से आये हुए गुप्तचर शुक और सारण हैं। तब श्रीराम को सामने देखकर वे अत्यंत व्यथित हो उठे और श्रीराम से हाथ जोड़कर बोले- रघुनन्दन! हम लोगों को रावण ने यहाँ आपकी सैन्य शक्ति का पता लगाने के लिए भेजा है। तब श्रीराम उनसे हँसते हुए बोले- यदि तुमने हमारी शक्ति का पता लगा लिया हो तो अब अपनी इच्छानुसार प्रसन्नतापूर्वक लौट जाओ। अथवा तुम्हें और कुछ देखना बाकी रह गया हो तो उसे भी देख लो। विभीषण तुम्हें सब कुछ पूरी तौर से दिखा देंगे। वैसे इस समय तुम निहत्थे पकड़े गये इसलिए तुम्हें अपने जीवन का भय नहीं होना चाहिए। विभीषण! अब इनका भण्डा फूट चुका है इसलिए इन्हें छोड़ दिया जाये। तत्पश्चात् शुक और सारण से कहा कि तुम लोग रावण से कहना कि उसने जिस बल पर सीता का हरण किया था उसे अब दिखलाओ। मैं कल सबेरे ही सेना सहित तुम लोगों पर अपना भयंकर बाण छोड़ूँगा। तब शुक और सारण मुक्त होकर लंकापुरी में रावण से आकर बोले- राजेश्वर! हमें विभीषण ने बध करने के लिए पकड़ लिया किन्तु धर्मात्मा राम ने हमें छुड़वा दिया। श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण

तथा सुग्रीव य चारों लोकपालों की तरह पराक्रमी हैं। ये चारों अब एक जगह एकत्र हो गये हैं इसलिए उनकी विजय निश्चित है। महाराज! श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव से सुरक्षित यह वानरों की सेना देवताओं और असुरों के लिए भी दुर्जय है। अतः आपका उनसे विरोध करना उचित न होगा। अब आप श्रीराम से संधि कर सीता को उन्हें लौटा दीजिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

सारण का रावण को यूथपतियों का परिचय

तत्पश्चात् शुक और सारण के ये वचन सुनकर रावण बोला- यदि देवता, दानव भी मुझसे युद्ध करने आ जायें तो भी मैं सीता को नहीं दूँगा। लगता है तुम अधिक भयभीत हो। भला ऐसा कौन शत्रु है जो समरभूमि में मुझे जीत सके। इतना कहकर रावण, वानरों की सेना का निरीक्षण करने के लिए अपनी कई ताल ऊंची अट्टालिका पर चढ़ गया। तब उन्हें पृथ्वी का सारा प्रदेश ही वानरों से भरा दिखायी दिया। यह देखकर रावण ने सारण से पूछा- सारण इन वानरों में कौन कौन से मुख्य हैं, कौन शूरवीर हैं और कौन बल में बहुत बढ़े-चढ़े हैं? सुग्रीव किनकी बात सुनते हैं और कौन यूथ पतियों के भी यूथपति हैं? उस समय सारण उन वानरों का परिचय देते हुए रावण से बोला-महाराज! यह जो लंका की ओर मुख करके खड़ा है और एक लाख यूथों से घिरा हुआ है इसका नाम नील है और यह वीर यूथपतियों में से हैं। सुग्रीव की सारी सेना के आगे यही खड़ा होता है। जो पराक्रमी वानर दोनों उठी हुई बांहों को एक दूसरे से पकड़कर दोनों पैरों से पृथ्वी पर टहल रहा है और लंका की ओर क्रोधपूर्वक देखता हुआ बारम्बार अंगड़ाई लेता है तथा जिसकी पूंछ के पटकने की आवाज से दसों दिशायें गूंज उठती हैं, वह युवराज अंगद है। वह आपको अपने साथ युद्ध के लिए अनेक बार ललकार चुका है। बाली का यह पुत्र अपने पिता के समान ही पराक्रमी है और श्रीराम के लिए अपना पुरूषार्थ दिखलाने के लिए तत्पर है। जिन हनुमानजी ने यहां आकर जनकनंदिनी सीता का दर्शन किया था उसके भीतर इस अंगद की ही

सारी बुद्धि काम कर रही है। वही अपनी सेना के साथ आपको कुचलने आ रहा है। अंगद के पीछे संग्राम भूमि में जो विशाल सेना से घिरा खड़ा है, इसका नाम नल है। सेतु के निर्माण में इसी का हाथ मुख्य है। जो अपने अंगों को सुस्थिर करके सिंहनाद करते हुए और गरजते हैं तथा जो कपि श्रेष्ठ वीर अपने आसनों से उठकर क्रोधपूर्वक अंगड़ाई लेते हैं। इनके वेग को सहना कठिन है और इनकी संख्या दस अरब और आठ लाख है। ये सब यूथपति नल का ही अनुसरण करते हैं। और लंकापुरी को कुचल देने का हौसला रखते हैं। यह चांदी के समान सफेद रंग का चंचल वानर श्वेत है। यह भयंकर पराक्रम दिखलाने में तीनों लोकों में विख्यात है। इसका काम है सैनिकों में उत्साह भरना। संरोचन पर्वत के चारों ओर विचरने वाला यह कुमुद नामक यूथपति है वह जो लाखों वानर सैनिकों को सहर्ष अपने साथ खींचे लाता है और देखने में बड़ा भयंकर है। जो कभी दीनता न दिखाकर सदा युद्ध की इच्छा रखता है इस वानर का नाम चन्ड है। वह भी अपनी सेना द्वारा लंका को कुचल देने की इच्छा रखता है। राजन्! जो सिंह के समान पराक्रमी और कपिल वर्ण का है वह ध्यान लगाकर लंका की ओर इस प्रकार देख रहा है मानों इसे भस्म कर देगा, वह रम्भ नामक यूथपति है। जब वह युद्ध के लिए चलता है तो उस समय उसके पीछे एक करोड़ तीस श्रेष्ठ भयंकर और पराक्रमी वानर चलते हैं। वह जो कानों को फैलाता है और बारम्बार जम्हाई लेता हुआ मृत्यु से भी नहीं डरता और सेना के पीछे न चलकर अकेला ही युद्ध करना चाहता है इसका नाम शरभ है। यह साल्वेय पर्वत पर निवास करता है और इसके पास जो यूथपति हैं ये बड़े बलवान् हैं और इनकी संख्या एक लाख चालीस हजार है। जो विशाल वानर मेघ के समान आकाश को घेरे हैं, जो वानरों के बीच में ऐसा लगता है जैसे देवताओं के बीच इन्द्र तथा जो युद्ध में दुःसह है वह 'पनस' नाम से प्रसिद्ध यूथपति हैं। जो समुद्र के तट पर स्थित हुई इस उछलती कूदती भीषण सेना को दूसरे मूर्तिमान समुद्र की भाँति सुशोभित करता हुआ खड़ा है वह पर्वत के समान विशालकाय वानर 'विनत' नाम से प्रसिद्ध यूथपति है। इसके पास सात लाख वानर सैनिक हैं जो युद्ध के लिए सदा आपको ललकारता रहता है तथा जिसके पास अनेक पराक्रमी यूथपति रहते हैं वह क्रोधन नामका प्रसिद्ध वानर है। यह जो गेरू के समान लाल रंग

के शरीर वाला वानर है उसका नाम गवाय है। उसे अपने बल का बड़ा घमन्ड है। वह सदा सब वानरों का तिरस्कार किया करता है। देखिये वह कितने रोष से आपकी ओर बढ़ा आ रहा है। इसकी सेना में सत्तर लाख वानर रहते हैं। ये सब वानर तो दुःसह वीर हैं ही, किन्तु यूथपतियों में श्रेष्ठ जो यूथप हैं उन सबके अलग-अलग यूथ हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२६)

सत्ताइसवाँ सर्ग

प्रधान यूथपतियों का परिचय

सारण फिर बोला- राक्षसों के स्वामी! आप वानर सेना का निरीक्षण कर रहे हैं इसलिए मैं आपको उन यूथपतियों का परिचय दे रहा हूँ जो श्रीराम का कार्य करने के लिए प्राणों का मोह भी नहीं रखते। यह हर नामक वानर बहुत ही भयंकर कर्म करने वाले हैं। इसके रोम उठे होने के कारण से सूर्य की किरणों के समान चमक रहे हैं। इनके पीछे सैकड़ों यूथपति वृक्ष उठाये लंका पर आक्रमण करने के लिए आ रहे हैं। उधर काले रंग के जिन रीछों को आप देख रहे हैं वे युद्ध में सच्चा पराक्रम दिखलानेवाले हैं। समुद्र के किनारे पड़े हुए बालुका कणों के समान इनकी गिनती नहीं की जा सकती। राजन्! ये अत्यंत भयंकर स्वभाव वाले रीछ आप पर चढ़े आ रहे हैं। इनके बीच इनका राजा धूम्र खड़ा है। यह ऋक्षवान् पर्वत पर रहता हुआ सदा नर्मदा का जल पीता है। इस धूम्र के छोटे भाई जाम्बवान् हैं। ये रूप में अपने भाई के समान दिखलायी पड़ते हैं किन्तु पराक्रम में उनसे भी बढ़चढ़कर हैं। वैसे इनका स्वभाव शान्त है किन्तु युद्ध के अवसरों पर इनका रोष और अमर्ष बहतु बढ़ जाता है। इन्होंने देवासुर संग्राम में इन्द्र की बड़ी सहायता की थी। इन्हें बहुत से वर भी प्राप्त हुए। इनके सैनिकों के बल और पराक्रम की कोई सीमा नहीं। ये मेघों के समान विस्तृत एवं विशाल शिलाखंड शत्रुओं पर छोड़ते हैं। जो खेल-खेल में ही कभी उछलता और कभी खड़ा होता है और तब वानर जिसकी ओर आश्चर्य पूर्वक देखते हैं। वह दम्भ नामक प्रसिद्ध यूथपति हैं। यह दम्भ इन्द्र की उपासना करता है और सहायता के लिए उनके पास सेनायें

भेजता है। जो चलते समय एक योजन दूर खड़े हुए पर्वत को भी छू लेता है वह संनादन नाम से विख्यात है उसे वानरों का पितामह कहा जाता है। एक बार युद्ध के अवसर पर इन्द्र को भी उसने परास्त कर दिया था। वह यूथपतियों का सरदार भी है। इधर इन्द्र के समान पराक्रमी क्रथन नामक यूथपति खड़ा है। यह अग्निदेव के द्वारा एक गंधर्व कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। यह राजाधिराज कुबेर के साथ बैठा करते हैं और सदैव दस अरब वानरों से घिरे रहते हैं। जो सदैव गज यूथपतियों को भयभीत करता हुआ गंगा किनारे विचरा करता हुआ जंगली पेड़ों को उखाड़कर उनके आगे बढ़ने का रास्ता रोक देता है तथा वानर यूथपतियों का संचालक है। वह दुर्जयवीर प्रमाथी नामक यूथपति इस ओर खड़ा है। इसके साथ पराक्रम पर गर्व रखकर गर्जना करने वाले दस करोड़ वानर रहते हैं। ये काले मुख वाले लंगूर जाति के वानर हैं। इनमें महान् बल है। ये गवाक्ष नामक यूथपति को चारों ओर से घेर कर चल रहे हैं। ये लंका को बलपूर्वक कुचल डालने के लिए और जोर जोर से गर्जना कर रहे हैं। जिस पर्वत पर सभी ऋतुओं में फल देने वाले वृक्ष भौंरों से सेवित दिखायी देते हैं जिसका वर्ण सूर्यदेव के समान है और जिसकी कान्ति से वहाँ के मृग और पक्षी सुनहरे रंग के समान प्रतीत होते हैं, उसी रमणीय सुवर्णमय पर्वत पर वानरों में प्रधान यूथपति केसरी रमण करते हैं। साठ हजार जो रमणीय सुवर्णमय पर्वत हैं उनके बीच में एक श्रेष्ठ पर्वत सावर्णि मेरु है। उस पर भूरे, श्वेत, लाल मुँह वाले और मधु के समान पिंगल वर्ण वाले वानर निवास करते हैं। वे बाघ के समान दुर्जय एवं अग्नि के समान तेजस्वी हैं। वे विषधर सर्प के समान क्रोधी भी हैं। वे सारे वानर यहाँ आकर इस तरह खड़े हैं मानो आपकी लंका को देखते ही मसल डालेंगे। देखिए उन सबके बीच उनका पराक्रमी सेनापति खड़ा है। वह वीर इस भूमण्डल में शतबलि के नाम से विख्यात है। यह वीर श्रीराम चन्द्र जी का प्रिय कार्य करने के लिए अपने प्राणों पर भी दया नहीं करता। गज, गवाक्ष, गवय, नल और नील इनमें से एक-एक सेना पति दस-दस करोड़ योद्धाओं से घिरा है। इसी प्रकार विन्ध्यपर्वत पर निवास करने वाले अन्य श्रेष्ठ वानर भी हैं जो अधिक होने के कारण गिने नहीं जा सकते। महाराज! ये वानर बड़े प्रभावशाली हैं और पर्वतों को भी चूर कर देने की शक्ति रखते

हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२७)

अट्ठाइसवाँ सर्ग

शुक के द्वारा श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव का परिचय देकर वानरों की संख्या का निरूपण करना

जब उस वानरी सेना का परिचय देकर सारण चुप हुआ तब शुक ने रावण से कहा राजन्! जिन्हें आप मतवाले गजराजों के समान वहाँ खड़े देख रहे हैं। इनका वेग दुःसह है और ऐसे इन वानरों की संख्या इक्कीस कोटि सहस्र, सहस्र शंकु और सौ वृन्द हैं। ये सब वानर किष्किंधा में रहने वाले सुग्रीव के मंत्री हैं। ये सभी इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हैं। राजन्! इन वानरों में देवताओं के रूपवाले जिन दो वानरों को आप खड़ा हुआ देख रहे हैं ये मैन्द और द्विविद हैं। युद्ध में इनकी बराबरी करनेवाला कोई नहीं है। ब्रह्माजी की आज्ञा से इन दोनों ने अमृत पान किया है। ये दोनों लंका को कुचल डालने की इच्छा रखते हैं। इधर जिसे आप मद की धारा बहाने वाले हाथी की भाँति खड़ा देख रहे हैं, जो लंका में आपके पास आया और आपसे मिलकर गया। यह केसरी का पुत्र पवनपुत्र के नाम से विख्यात है। इसी ने पहले समुद्र लाँघा था। यह इच्छानुसार रूप धारण कर सर्वत्र विचर सकता है। जब वह बालक था तो एक दिन उसे भूख लगी। तब उगते हुए सूर्य को देखकर इसने उसे आकाश का दिव्य फल समझा। तब उसे पाने के लिए यह बलाभिमानी बालक ऊपर उछल पड़ा। लेकिन उस समय यह उन सूर्य देव तक न पहुँचकर उदयगिरि पर ही गिर पड़ा। वहाँ से शिलाखण्ड पर गिरने के कारण इस बालक की एक हनु (ठोढ़ी) कुछ कट गयी। साथ ही वह अत्यंत दृढ़ हो गयी इसलिए वह हनुमान नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह वानर अकेला ही सारी लंका को मसल देना चाहता है। जिस वानर ने आपकी सम्पूर्ण लंका जला डाली है उसे आप भूलते कैसे हैं? हनुमान जी के पास ही जो कमल के समान नेत्र वाले शूरवीर विराजमान हैं। इनका पौरुष सारे लोकों में प्रसिद्ध है। धर्म इनसे कभी अलग नहीं होता। ये अपने बाणों से आकाश का भी भेदन

कर सकते हैं। राजन्! जिनकी भार्या सीता को आप जन स्थान से हर लाये हैं वे ही ये श्रीराम आपसे युद्ध करने के लिए सामने आकर खड़े हैं। उनके दाहिने भाग में जो सुवर्ण के समान कान्तिमान, विशाल वक्षस्थल से सुशोभित कुछ-कुछ लाल नेत्र वाले हैं इनका नाम लक्ष्मण है। यह सम्पूर्ण शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ हैं। ये श्रीराम के दाहिने हाथ तथा बाहर विचरने वाले प्राण हैं। इन्हें भी युद्ध में सारे राक्षसों के विनाश करने की अभिलाषा है। श्रीराम की बाँयी ओर जो राक्षसों से घिरे हैं ये राजा विभीषण हैं। श्रीराम ने इन्हें लंका के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया है। अब यह भी कुपित होकर आपके सामने युद्ध के लिए आ गये हैं। जिन्हें आप वानरों के बीच अविचल भाव से खड़ा देख रहे हैं वे वानरों के राजा अमित तेजस्वी सुग्रीव हैं। ये गहन वृक्षों से युक्त किष्किंधा नाम गुफा में निवास करते हैं। इनके साथ वहाँ के प्रधान प्रधान यूथपति भी रहते हैं। इनके गले में जो सौ कमलों की सुवर्णमयी माला शोभायमान है उसमें लक्ष्मी का निवास है। श्रीराम ने बाली को मार कर यह माला, तारा और वानरों का राज्य ये सब सुग्रीव को समर्पित कर दी। राजन्! सौ लाख की संख्या को एक कोटि और सौ सहस्र कोटि (एक नील) को एक शंकु कहा जाता है। एक लाख शंकु को महाशंकु और एक लाख महाशंकु को वृन्द कहते हैं। एक लाख वृन्द का नाम महावृन्द तथा एक लाख महावृन्द को पद्म कहते हैं। एक लाख पद्मम को महापद्म तथा एक लाख महापद्म को खर्व कहते हैं। एक लाख खर्व को महाखर्व तथा एक लाख महाखर्व को समुद्र कहते हैं। एक लाख समुद्र को ओष और एक लाख ओष को महौष कहा जाता है। इस तरह कोटि महौष सैनिकों से वीर विभीषण तथा अपने सचिवों से घिरे हुए सुग्रीव युद्ध के लिए आपको ललकारते हुए सामने आ रहे हैं। महाराज! अब आप ऐसा कोई उपाय करें, जिससे आपकी विजय हो और शत्रुओं के सामने आपको नीचा न देखना पड़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

रावण का शुक और सारण को फटकारना

शुक के बताये अनुसार समस्त यूथपतियों को देखकर श्रीराम की

दाहिनी बाँह लक्ष्मण को अपने भाई विभीषण को, वानरों के राजा सुग्रीव को, अंगद तथा हनुमान को और उसके अन्य श्रेष्ठ वानरों को देखा। उन्हें देखकर रावण को क्रोध आ गया और उसने शुक तथा सारण को फटकारते हुए कहा- राजा निग्रह और अनुग्रह करने में भी समर्थ होता है। उसके सहारे जीविका चलाने वाले मंत्रियों को ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिए जो अप्रिय लगने वाली हो। जो हमारे शत्रु हैं उनकी स्तुति करना क्या तुम दोनों के लिए उचित है? क्या राजनीति के इस संग्रहणीय सार को भी तुम लोग ग्रहण नहीं कर सके। तुम लोग केवलअज्ञान का बोझ ढो रहे हो। ऐसे मूर्ख मंत्रियों के रहते हुए मैं अपने राज्य को अब तक सुरक्षित रख सका यह सौभाग्य की बात है। मैं यहाँ का शासक हूँ। फिर भी तुम दोनों ने मेरे सामने कठोर बात कहने का साहस किया। क्या तुम्हें मृत्यु का भय नहीं। यदि तुम्हारे पहले के उपकारों को याद कर मेरा क्रोध नरम न पड़ जाता तो मैं तुम्हारे जैसे पापियों को अभी मार डालता। अब तुम दोनों मेरी सभा में प्रवेश न करना क्योंकि तुम कृतघ्न हो। ऐसा सुनते ही वे रावण की जय-जयकार करते हुए वहाँ से निकल गये। इसके बाद रावण ने अपने पास बैठे हुए महोदर से कहा- मेरे सामने शीघ्र ही गुप्तचरों को बुलओ। यह आदेश पाते ही महोदर ने शीघ्र ही गुप्तचरों को वहाँ हाजिर होने की आज्ञा दी। गुप्तचरों के आने पर रावण उनसे बोला- तुम लोग सभी वानर सेना में राम का क्या निश्चय है, यह जानने के लिए वहाँ जाओ। वै कैसे सोते हैं, कैसे जागते है और क्या करेंगे, इन सब बातों का अच्छी तरह पता लगाकर लौट आओ। गुप्तचरों के द्वारा यदि शत्रु की गतिविधि का पता चल गया तो बुद्धिमान राजा थोड़े से ही प्रयत्न में उसे धर दबाते हैं। गुप्तचरों ने शार्दूल को आगे कर रावण की परिक्रमा की और उस स्थान पर गये जहाँ लक्ष्मण सहित श्रीराम विराजमान थे। तब उन गुप्तचरों ने छिपे रहकर श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीव को देखा। तब उस सेना को देखकर वे गुप्तचर व्याकुल हो उठे। इतने में विभीषण ने उन्हें देख लिया। तब उन्होंने वहाँ आये हुए राक्षसों को फटकारा और शार्दूल को पकड़वा लिया। फिर तो वानर उसे पीटने लगे। तब भगवान् श्रीराम ने दयावश उसे तथा अन्य राक्षसों को भी छुड़वा दिया। तब वे मुक्ति पाकर किसी तरह हाँफते-हाँफते फिर लंका में जा पहुँचे और रावण को यह सूचना दी कि

रामचन्द्रजी की सेना सुवेल पर्वत के निकट डेरा डाले पड़ी है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

शार्दूल का वानर सेना का समाचार बताना

गुप्तचरों ने लौटकर रावण को बताया कि श्रीराम की सेना सुवेल पर्वत के पास आकर ठहरी है जो सर्वथा अजेय है। तब रावण कुछ भयभीत होकर बोला- निशाचर तुम्हारे शरीर में पहले जैसी शान्ति नहीं रह गयी है। तुम बहुत दीन (दुखी) दिखलाई पड़ रहे हो। रावण की बात सुनकर शार्दूल मन्द स्वरों में बोला- राजन् उन श्रेष्ठ वानरों की गतिविधि का पता गुप्तचरों द्वारा नहीं लगाया जा सकता, वे पराक्रमी और बलवान् हैं तथा सब ओर से मार्ग की रक्षा करते हैं। अतः वहाँ प्रवेश पाना भी कठिन है। मैंने जब उसमें प्रवेश होकर उनकी गतिविधियों का पता लगाने की चेष्टा की तो उसी समय विभीषण के सभी राक्षसों ने मुझे पहचानकर बलपूर्वक पकड़ लिया और बारम्बार इधर-उधर घुमाया। सर्वत्र घुमाकर मुझे श्रीराम के दरबार में ले जाया गया। उस समय वानर मुझे पीट रहे थे तब उस दशा में अकस्मात श्रीराम ने 'मत मारो, मत मारो' कह कर मेरी रक्षा की। श्रीराम इस समुद्र को लाँघ कर लंका के द्वार पर आ धमके हैं और मुझे विदा करने के बाद लंका पर चढे चले आ रहे है। अब उनके यहाँ आने के पहले आप सीता को लौटा दीजिए या उनका सामना कीजिए। यह सुनकर मन में विचार करता हुआ रावण बोला- यदि देवता, गंधर्व, दानव मुझसे युद्ध करें और सम्पूर्ण लोक भी मुझे भय देने लगे तब भी मैं सीता को वापस नहीं कर सकता। तुम इस समय केवल यह बताओ कि उसमें कौन-कौन से वानर अधिक शूरवीर हैं क्योंकि उन वानरों का बलाबल जानकर ही मैं अपने कर्तव्य का निश्चय करूँगा। रावण के इस प्रकार पूछने पर शार्दूल बोला- राजन्! उस सेना में जाम्बवान् नाम का एक प्रसिद्ध वीर है। उसे युद्ध में हराना बहुत कठिन है। वह ऋक्षरजा का पुत्र है। इन्द्र के गुरू वृहस्पति का पुत्र केसरी है जिसके पुत्र हनुमान ने अकेले ही यहाँ आकर बहुत पहले राक्षसों का संहार कर डाला है। पराक्रमी सुषेण धर्म का

पुत्र है और दधिमुख नामक वानर चन्द्रमा का बेटा है। सुमुख, दुर्मुख और वेगदर्शी वानर मृत्यु के पुत्र हैं। इनका सेनापति नील अग्नि का पुत्र है। विख्यात वीर हनुमान वायु का बेटा है। वीर अंगद इन्द्र का नाती है। वीर वानर मैन्द और द्विविद ये दोनों अश्विनी कुमारों के पुत्र हैं। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गंधमादन ये पाँच यमराज के पुत्र हैं। इस प्रकार देवताओं से उत्पन्न हुए तेजस्वी वानरों की संख्या दस करोड़ है। ये सब युद्ध की इच्छा रखनेवाले हैं शेष वानरों के विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता क्योंकि उनकी गणना असंभव है। दशरथ नन्दन श्रीराम का शरीर सिंह के समान सुगठित है। उनकी युवावस्था है और उन्होंने अकेले ही खर, दूषण और त्रिशिरा का संहार किया है। भूमण्डल में ऐसा कोई पराक्रमी नहीं। उन्होंने भयंकर राक्षस विराध और कबन्ध का भी बध किया था। धर्मात्मा लक्ष्मण श्रेष्ठ गजराज के समान पराक्रमी हैं। उनके बाणों का निशाना बन जाने पर देवराज इन्द्र भी जीवित नहीं रह सकते हैं। उनके अलावा श्वेत और ज्योतिमुख ये दोनों भगवान सूर्य के औरस पुत्र हैं। हेमकूट नामक वानर वरुण का पुत्र बताया जाता है। बीरवर नल विश्वकर्मा के पुत्र हैं और पराक्रमी दुर्धर वसु देवता का पुत्र है। आपके भाई विभीषण भी लंकापुरी का राज्य लेकर श्रीराम के हित साधन में तत्पर हैं। इस प्रकार मैंने सुवेल पर्वत पर ठहरी हुई वानर सेना का पूरा-पूरा वर्णन कर दिया है। अब जो शेष कार्य है वह आपके हाथ है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३०)

इक्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम का माया रचित कटा मस्तक दिखाकर रावण द्वारा सीता को मोह में डालने का प्रयत्न करना

रावण के गुप्तचरों ने जब लंका लौटकर यह बताया कि श्रीराम की सेना सुवेल पर्वत पर आकर ठहरी है तब उसने अपने मंत्रियों से कहा- मेरे सभी मंत्री शीघ्र यहाँ आ जायें क्योंकि अब हमारे लिए गुप्त मंत्रणा करने का समय आ गया है। रावण के इस आदेश को सुनकर सभी मंत्री वहाँ आ गये। अब रावण के लिए जो उचित कार्य हो उसके विषय में शीघ्र ही विचार विमर्श

करके उसने उन साथियों को बिदाकर दिया और अपने भवन में चला गया। फिर वह महामायावी राक्षस विद्युज्जिह्व को साथ लेकर उस अशोक बाटिका (प्रमदावन) में प्रवेश किया जहाँ सीता थीं। उस समय रावण ने माया जानने वाले विद्युज्जिह्व से कहा- हम दोनों माया द्वारा जनक नन्दिनी सीता को मोहित करेंगे। तुम श्रीराम का माया निर्मित मस्तक लेकर एक महान धनुष बाण के साथ मेरे पास आओ। तब विद्युज्जिह्व ने बहुत अच्छा कहकर बड़ी कुशलता से प्रकट की हुई अपनी माया दिखलायी। इससे रावण उस पर बहुत प्रसन्न होकर उसे अपना आभूषण उतार कर दे दिया। फिर रावण अशोक बाटिका में जा पहुँचा और वहाँ सीता को दीन दशा में पड़ी हुई देखा। वे सिर नीचा किये हुई अपने पतिदेव का चिंतन कर रही थीं। उनके चारों ओर बड़ी भयंकर राक्षसियाँ बैठी थीं। तब वहाँ पहुँचकर रावण बड़े ही धृष्टतापूर्वक वचनों में बोला- भद्रे! मेरे बार-बार प्रार्थना करने पर भी तुम, जिनके बल पर मेरी बात नहीं मानती थी वे तुम्हारे पतिदेव समरभूमि में मारे गये हैं। मूढ़ सीते! अब तुम श्रीराम का चिंतन छोड़कर मेरी भार्या बन जाओ। लगता है तुम्हारा पुण्य कम हो गया था इसलिए ऐसा हुआ। कहा जाता है कि श्रीराम मुझे मारने के लिए समुद्र किनारे तक आये थे। उनके साथ वानर सेना, वानरराज सुग्रीव की लायी हुई विशाल सेना भी थी। किन्तु आधीरात में सबके सो जाने पर मेरी बहुत बड़ी सेना जहाँ राम लक्ष्मण थे वहाँ जाकर उस वानर सेना को नष्ट कर दिया। और फिर प्रहस्त ने बिना किसी रुकावट के राम का मस्तक काट डाला। तत्पश्चात् विभीषण को पकड़ लिया गया और फिर वानर सैनिकों सहित लक्ष्मण को विभिन्न दिशाओं में भाग जाने के लिए विवश कर दिया गया। सीते! वानर राज सुग्रीव की ग्रीवा काट दी गयी थी हनुमान को हनु (ठोड़ी) नष्ट करके राक्षसों ने उन्हें मार डाला। मैन्द और द्विविद दोनों वानर खून से लथपथ होकर पड़े हैं। पनस नामक वानर फटे हुए पनस (कटहल) के समान पृथ्वी पर पड़ा है। दधिमुख नाराचों से छिन्नभिन्न हो किसी दरी (कन्दरा) में पड़ा सो रहा है और कुमुद सायकों से घायल होकर मर गया। अंगद भी रक्त से सने होकर पृथ्वी पर पड़े हैं और इस तरह समस्त वानरों को रौंद कर मथ डाला गया। उनमें से कई भाग गये, कई समुद्र में कूद पड़े और कोईआकाश में उड़ गये। बहुत से रीछ पेड़ों पर चढ़ गये और फिर

शेष वन्दरों को खदेड़ कर मार डाला गया। इस तरह मेरी सेना ने तुम्हारे पति को भी मौत के घाट उतार दिया और अब खुन से सना हुआ उनका मस्तक यहाँ लाया गया है। फिर यह कह कर उसने एक राक्षसी से कहा- तुम राक्षस विद्युज्जिह्व को बुला लाओ जो स्वयं संग्राम भूमि से उनका सिर यहाँ ले आया है। तब विद्युज्जिह्व धनुष सहित उस मस्तक को लेकर आया और सिर झुकाकर रावण के सामने खड़ा हो गया। तब रावण ने उससे कहा- तुम राम का मस्तक जल्दी से सीता के आगे रख दो जिससे यह बेचारी अपने पति का अंतिम दर्शन कर ले। रावण के ऐसा कहने पर वह राक्षस उस सुन्दर मस्तक को सीता के सम्मुख रखकर अदृश्य हो गया। रावण ने भी उस विशाल चमकीले धनुष को यह कहकर सीता के सामने डाल दिया कि यही तुम्हारे राम का प्रत्यंचा सहित धनुष है। रात के समय उसे मार कर प्रहस्त इस धनुष को यहाँ ले आया है। तत्पश्चात् वह सीता से फिर कहने लगा- सीते! अब तुम मेरे वश में हो जाओ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इक्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

श्रीराम के मारे जाने का विश्वास कर सीता का विलाप

सीता जी उस मस्तक और उस उत्तम धनुष को देखकर तथा उनके सारे चिह्नों से पति को पहचान कर बहुत दुखी हुई। फिर यह देखकर वह कुबड़ी की भाँति रो-रोकर कैकेयी की निंदा करने लगी। कैकेयी! अब तुम सफल मनोरथ हो जाओ। रघुकुल को आनन्दित करने वाले मेरे पतिदेव मारे गये। इस तरह तुमने समस्त रघुकुल का संहार कर डाला है। आखिर आर्य श्रीराम ने उनका कौन-सा अपराध किया था। ऐसा कहकर वैदेही कांपती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। फिर चेतना लौटने पर वे मस्तक को निकट रखकर विलाप करने लगीं। हाय महाबाहो! मैं मारी गयी। आपने मुझे विधवा बना दिया। स्त्री से पहले पति का मरना बहुत अनर्थकारी बताया गया है। आप जैसे सदाचारी पति की मृत्यु होना मेरे लिए अत्यंत दुःखकी बात है। जो मेरे उद्धार के लिए उद्यत थे उन्हें शत्रुओं ने मार गिराया। अब जैसे कोई बछड़े को गाय

से अलगकर दे, वही हाल मेरी सास कौशल्या की हुई। वे आप जैसे पुत्र से बिछुड़ गयीं। रघुनन्दन! ज्योतिषियों ने तो आपकी आयु बहुत बड़ी बतायी थी। लेकिन उनकी बातझूठी सिद्ध हुई। आप तो नीति शास्त्र के विद्वान थे। संकट से बचने का उपायभी जानते थे फिर आपको ऐसी मृत्यु कैसे प्राप्त हुई। महाबाहो! अब आप मुझ तपस्विनी को त्यागकर कहाँ सो रहे हैं? मैं प्रयत्नपूर्वक गंध और पुष्पमाला आदि के द्वारा जिसका नित्यप्रति पूजन करती थी यह आपका वही स्वर्ण भूषित धनुष है। निश्चय ही इस समय स्वर्ग पहुँचकर अपने पिता महाराज दशरथ से तथा अन्य सब पितरों से आप मिले होंगे। राजन्! आपने अपनी छोटी अवस्था में जब मेरी भी छोटी अवस्था थी, मुझे पत्नी के रूप में प्राप्त किया था। मैं सदा आपके साथ विचरने वाली सहधर्मिणी हूँ। अब आप मेरी ओर क्यों नहीं देखते अथवा मेरी बात का उत्तर क्यों नहीं देते? आपने मेरे साथ धर्माचरण करने की प्रतिज्ञा की थी। इसलिए मुझ दुखिनी को अपने साथ ही ले चलिए। मैंने अनेक मंगलमय उपचारों से आपके जिस सुन्दर विग्रह का आलिंगन किया था आज उसी को मांसभक्षी, हिंसक जन्तु अवश्य इधर-उधर घसीट रहे होंगे। हम तीन व्यक्ति एक साथ वन में आये थे। परन्तु अब शोकाकुल माता कौशल्या केवल एक व्यक्ति लक्ष्मण को ही घर लौटा हुआ देख सकेंगी। उनके पूछने पर लक्ष्मण उन्हें रात्रि के समय राक्षसों के हाथ से आपके मित्र की सेना के तथा आपके भी बध का समाचार अवश्य सुनायेंगे। फिर जब उनहें ज्ञात होगा कि आप सोते समय मारे गये तो उनका हृदय विदीर्ण हो जायेगा और वेप्राण त्याग देंगी। मुझ अनार्या के लिए श्रीराम जो महापराक्रमी थे, बिना युद्ध किये, सोते समय मारे गये। जिनके यहाँ सब लोग याचक बनकर आते थे एवं सभी अतिथि जिन्हें प्रिय थे उन्हीं श्रीराम की पत्नी होकर आज मैं शोक कर रही हूँ। इससे जान पड़ता है मैंने पिछले जन्म में निश्चय ही उत्तम, दान, धर्म में बाधा पहुँचायी होगी। रावण! मुझे भी श्रीराम के शव के ऊपर रखकर, मेरा बधकर डालो। मेरे सिर से पति के सिर का और मेरे शरीर से उनके शरीर का संयोग करा दो। इस प्रकार मैं अपने महात्मा पति की गति का ही अनुसरण करूँगी। इस प्रकार जब सीता, विलाप कर रही थी उसी समय वहाँ रावण की सेना का एक राक्षस हाथ जोड़े हुए आया और उसे सूचना दी कि सेनापति प्रहस्त

पधारे हैं। वे आपका दर्शन करना चाहते हैं। क्षमाशील महाराज! निश्चय ही कोई अत्यंत आवश्यक राजकीय कार्य आ पड़ा है अतः आप उन्हें दर्शन देने का कष्ट करें। रावण यह सुनकर तुरन्त वहाँ से चला गया। तब रावण के वहाँ से निकलते ही वह सिर और उत्तम धनुष दोनों वहाँ से अदृश्य हो गये। उस समय बाहर निकलकर रावण ने मंत्रियों के साथ बैठकर राम के प्रति किये जाने वाले तत्कालिक कर्तव्य का निश्चय किया फिर अपने हितैषियों से कहा- तुम लोग शीघ्र ही डंडे से पीटपीटकर धौंसा बजाते हुए समस्त सैनिकों को एकत्र करो। तब दूतों ने तथास्तु कहकर एक विशाल सेना को एकत्र कर दिया और स्वामी को यह सूचना दी कि सारी सेना आ गयी है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

सरमा का सीता को सान्त्वना देना

सीता को शोक में पड़ी हुई देखकर सरमा नाम की दयालु राक्षसी उनके पास आयी और बोली- विदेह नन्दिनी! धैर्य धारण करो। तुम्हारे मन में कोई व्यथा नहीं होनी चाहिए। रावण और तुम्हारी सारी बातें मैंने छिपकर सुन ली है। रावण जिस कारण यहाँ से घबराकर निकल गया है उसका भी मैं वहाँ जाकर पूर्ण रूप से पता लगाकर आयी हूँ। मिथिलेश कुमारी श्रीराम तो सर्वज्ञ परमात्मा हैं। उनका सोते समय वध करना किसी के लिए सर्वथा असम्भव है। यह बात युक्त संगत बिल्कुल नहीं जान पड़ती। वानर वृक्षों से युद्ध करने वाले हैं। उनका भी इस तरह मारा जाना कदापि संभव नहीं। क्योंकि जैसे देवता लोग इन्द्र से पालित हैं उसी तरह ये वानर श्रीराम से भलीभँति पालित हैं। सीते! श्रीराम महान पराक्रमी हैं। वे अपने भाई लक्ष्मण की सहायता से अपनी तथा दूसरों की रक्षा करने में समर्थ हैं। वे शत्रुपक्ष के सैन्य समूहों का संहार करने की शक्ति रखते हैं। शत्रुसूदन श्रीराम कदापि नहीं मारे गये हैं। रावण की बुद्धि और कर्म दोनों ही बुरे हैं। उसने तुम पर माया का प्रयोग किया था। अब तुम्हारे शोक के दिन बीत गये हैं और सब प्रकार के कल्याण का अवसर उपस्थित हुआ है। वह कैसे सम्भव होगा अब

इसे भी सुन लो। श्रीराम चन्द्रजी वानर सेना के साथ समुद्र बाँधकर इस पार आ गये हैं। उन्होंने सागर के दक्षिण तट पर पड़ाव डाला है। सीते! इसीलिए राक्षस राज इस समय अपने सभी मंत्रियों के साथ गुप्त परामर्श कर रहा है। जब राक्षसी सरमा सीता से यह बात कह रही थी उस समय उसने युद्ध के लिए तैयार सैनिकों का भैरवनाद सुना। तब उसने सीता से कहा- भीरू! यह भयानक भेरी नाद युद्ध के लिए तैयारी की सूचना दे रहा है। इस रण भेरी के गंभीर घोष को तुम भी सुन लो। इस समय मतवाले हाथी सज रहे हैं। रथ में घोड़े जोते जा रहे हैं तथा हजारों सैनिक हाथ में भाला लिए दृष्टिगोचर हो रहे हैं। जहाँ तहाँ युद्ध के लिए सनद्ध सहस्रों सैनिक दौड़े चले आ रहे हैं और सड़कें सैनिकों से उसी तरह भरती जा रही हैं जैसे जल के असंख्य प्रवाह सागर में मिल रहे हों। राक्षस राज का साथ देने वाले राक्षसों में हड़बड़ी दिखायी देती है। हाथियों पर बजते हुए घंटों का गंभीर घोष सुनो। रथों की घर्घराहट सुनो। तथा भाँति-भाँति के बाजों की आवाज भी सुनो। राक्षसों के मन में इस समय घबराहट है। इससे भी समझ लो इन पर कोई विपत्ति आने वाली है। तुम्हारे पति क्रोध को जीत चुके हैं। वे शीघ्र ही रावण का बध करके तुम्हें प्राप्त कर लेंगे। वे अपने भाई लक्ष्मण के सहयोग से राक्षसों पर अपने बल विक्रम का प्रयोग करेंगे। मैं शीघ्र ही तुम्हें श्रीराम की गोद में हर्ष सहित बैठी हुई देखूँगी। देवी! कई महीनों से तुम्हारी केशों की एक ही वेणी जटा के रूप में परिणित हो, जो कमर तक लटक रही है, उसे राम शीघ्र ही अपने हाथों से खोलेंगे। तुम शीघ्र ही अपने पति का मुदित मन देखकर शोक के आँसू बहाना छोड़ दोगी। जैसे पृथ्वी उत्तम वर्षा से अभिशिक्त होने पर हरी-भरी खेती से लहलहा उठती है उसी प्रकार तुम श्रीराम से सम्मानित हो आनन्द मग्न हो जाओगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३३)

चौंतीसवाँ सर्ग

सरमा का रावण का निश्चित विचार बताना

रावण के पूर्वोक्त वचन से सीताजी संतप्त हुई थीं। उसे सरमा की वाणी

ने इस प्रकार आह्लाद पहुँचाया जैसे ग्रीष्म ऋतु के ताप से दग्ध हुई पृथ्वी को वर्षाकाल की मेघमाला अपने जल से आह्लादित कर देती है। तत्पश्चात् सरमा फिर बोली- कजरारे नेत्रों वाली सखी! मुझमें यह साहस है कि मैं श्रीराम के पास जाकर तुम्हारा समाचार और संदेश निवेदित कर दूँ और फिर से छिपी हुई लौट आऊँ। आकाश में उड़ती हुई मेरी गति का अनुसरण करने में वायु अथवा गरुड़ भी समर्थ नहीं। तब सीता स्नेह भरी वाणी में सरमा से बोली- सरमे! यदि तुम्हें मेरा प्रिय कार्य करना है और उस विषय में तुम्हारी बुद्धि स्थिर है तो मैं यह जानना चाहती हूँ कि रावण यहाँ से जाकर क्या कर रहा है? वह राक्षस राक्षसियों द्वारा प्रतिदिन मुझे डाँट बताता है, धमकाता है और सदा मेरी रखवाली करता है। यदि मंत्रियों सहित उसकी बातचीत चल रही हो तो वहाँ जो कुछ निश्चित हो अथवा रावण का जो निश्चित विचार हो वह सब मुझे बताती रहो। यह मुझपर तुम्हारी बड़ी कृपा होगी। तब सरमा ने सीता के आँसुओं को पोंछते हुए कहा- सीते! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं जाती हूँ और शत्रु के अभिप्राय को जानकर अभी लौटती हूँ। ऐसा कहकर सरमा वहाँ से चली गयी उस राक्षस की सारी बातें सुनकर फिर अशोक बाटिका में लौट आयी। तब उसे लौटती देख सीता ने स्वयं उसे बैठने के लिएआसन दिया और कहा- सखी! अब तुम यहाँ सुख से बैठकर सारी बातें ठीक-ठीक बताओ। सीता के पूछने पर सरमा बोली-विदेहनन्दिनी! इस समय रावण की माता एवं एक बूढ़े मंत्री ने भी बड़ी-बड़ी बातें कहकर रावण को तुम्हें छोड़ देने के लिए प्रेरित किया है। उन लोगों ने कहा- राक्षसराज! जनस्थान में जो अद्‌भुत घटना घटी है वह श्रीराम के पराक्रम को समझने के लिए पर्याप्त है। उनके सेवकों में भी अद्‌भुत शक्ति है। अतः तुम उनकी पत्नी को लौटा दो। किन्तु अपने बूढ़े मंत्री एवं माता के बहुत समझाने पर भी वह तुम्हें उसी तरह छोड़ने की इच्छा नहीं रखता जैसे धन का लोभी धन को नहीं त्यागना चाहता। असका निश्चय है कि वह युद्ध में मरे बिना तुमको नहीं छोड़ सकता। रावण के सिर पर काल नाच रहा है इसलिए उसके मन में मृत्यु के प्रति लोभ पैदा हो गया है। अब जब तक वह युद्ध में मारा नहीं जाता वह तुम्हें छोड़ नहीं सकता। सीते! इसका फल यही होगा कि श्रीराम अपने तीखे बाणों से युद्धकाल में रावण का बध करके तुम्हें अयोध्या ले जायेंगे। वानर

सैनिकों के उस भीषण सिंहनाद को सुनकर लंका में रहनेवाले राक्षसराज रावण के सेवक हतोत्साहित हो गये हैं क्योंकि अब उन्हें भी अपने कल्याण का कोई उपाय नहीं दिखलायी पड़ता।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

पैंतीसवाँ सर्ग

माल्यवान् का रावण को संधि के लिए समझाना

तदनन्तर श्रीराम ने तुमुल नाद करने वाली भेरी की आवाज के साथ लंका पर आक्रमण किया। उस भेरी नाद को सुनकर रावण ने दो घड़ी विचार करने के बाद अपने मंत्रियों की ओर देखा और कहने लगा- आप लोगों ने श्रीराम के बल पराक्रम की जो बातें बतायीं हैं उन सबको मैंने सुन लिया है किन्तु मैं आप लोगों को भी कम पराक्रमी नहीं समझता। तब रावण की यह बात सुनकर माल्यवान् नामक राक्षस (रावण का नाना) ने इस प्रकार कहा- राजन्! जो राजा चौदह विद्याओं में सुशिक्षित और नीति का अनुसरण करने वाला होता है वह दीर्घकाल तक राज्य का शासन करता है। इसे समझ लो कि जिस राजा की शक्ति क्षीण हो रही हो अथवा जो शत्रु के समान ही शक्ति रखता है, उसे संधि कर लेनी चाहिए। यदि स्वयं ही वह शक्ति से बढ़ा-चढ़ा हो तभी वह शत्रु के साथ युद्ध ठाने। अब अच्छा यही होगा कि तुम श्रीराम के साथ संधि करके सीता को उन्हें लौटा दो। देखो, देवता, ऋषि और गंधर्व सभी श्रीराम की विजय चाहते हैं। इसलिए तुम उनका विरोध न करो। सुना जाता है कि देवताओं का पक्ष धर्म है और असुरों का पक्ष अधर्म। जब सत्ययुग होता है तब धर्म बलवान् होकर अधर्म को ग्रस लेता है। तुमने दिग्विजय के लिए सब लोकों में भ्रमण करते हुए महान धर्म का नाश किया है और अधर्म को गले लगाया है। इसलिए हमारे शत्रु हमसे प्रबल हैं। विषयों में लीन होकर तुमने जो मनमाना आचरण किया है इससे ऋषियों को बड़ा कष्ट पहुँचा है। इसलिए उन्होंने राक्षसों को नष्ट करने के लिए वेद मंत्रों की ध्वनि का विस्तार किया है उसकी के फलस्वरूप ग्रीष्म ऋतु में मेघ की भाँति राक्षस सम्पूर्ण दिशाओं में भाग खड़े हुए हैं। तेजस्वी ऋषियों के अग्निहोत्र से प्रकट

हुआ धूम दसों दिशाओं में व्याप्त होकर राक्षसों के तेज को हर लेता है। उत्तम व्रत का पालन करने वाले ऋषि लोग जो तीव्र तपस्या करते हैं, वही राक्षसों को कष्ट दे रहे हैं। तुमने देवताओं, दानवों और यक्षों से अवध्य होने का व्रत प्राप्त किया है परन्तु मनुष्य आदि से नहीं। परन्तु यहाँ तो मनुष्य, वानर, रीछ और लंगूर गरज रहे हैं। वे सबके सब हैं भी बड़े बलवान्। नाना प्रकार के भयंकर उत्पातों को लक्ष्य करके मैं तो इन राक्षसों के विनाश का ही अवसर उपस्थित हुआ देख रहा हूँ। भयंकर बादल लंका पर खून की वर्षा कर रहे हैं। घोड़े, हाथी आदि वाहनों के नेत्रों में आँसू हैं। गीदड़ तथा गीध आदि पशु वहाँ के उपवनों में घुसकर भयंकर बोलियाँ बोल रहे हैं। सपने में काली रंग की स्त्रियाँ घर की सामान चुराती हुई जोर जोर से हंसती हैं। गौओं से गधे और नेवलों से चूहे पैदा, होते हैं। कुत्तों के साथ सुअर तथा मनुष्यों के साथ किन्नर समागम करते हैं। सफेद पंख और लाल पेंजे वाले कबूतर राक्षसों के भारी विनाश की सूचना दे रहे हैं। पक्षी और मृग सभी सूर्यदेवकी ओर मुखकर के रोते हैं। इसके अलावा और भी बहतु से अपशकुन दिखायी देते हैं। मेरी समझ से साक्षात् विष्णु ही यहाँ राम होकर आये हैं। जिन्होंने समुद्र में सेतु बाँधा है वे श्रीराम साधारण मनुष्य नहीं हैं। श्रीराम के अलौकिक कर्म तथा लंका में होने वाले अपशकुन को देखते हुए भविष्य में होने वाले कार्य का निश्चय करो। इतना कहकर महाबली माल्यवान् रावण की ओर देखता हुआ चुप हो गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

रावण का माल्यवान् पर आरोप करना

उस समय रावण काल के अधीन हो रहा था इसलिए माल्यवान् की कही हुई हितकर बातों को वह सहन नहीं कर सका और माल्यवान् से बोला- तुमने शत्रु का पक्ष लेकर मेरे लिए बड़े अहित की बात कही है। बेचारा राम एक मनुष्य ही तो है और सहारा भी लिया है तो बन्दरों का। पिता के त्याग देने पर उसने वन की शरण ली। किस विशेषता से उसे तुम सामर्थ्यशाली मान

रहे हो। मैं सब पराक्रमों से सम्पन्न हूँ। फिर भी मुझे हीन क्यों समझ रहे हो तुम्हारी बातें सुनकर मुझे संदेह हो रहा है कि तुम शत्रु पक्ष से मिले हो। मैं उस सुन्दरी को वन से लाकर अब केवल राम के भय से कैसे लौटा दूँ। करोड़ो वानरों से घिरे उस राम को मैं कुछ ही दिनों में मार डालूँगा। इसे तुम लोग अपनी आँखों से देख लेना। जब रावण के सम्मुख इन्द्र भी नहीं ठहर सकता तो वह और किससे भयभीत होने वाला है। यदि उसने समुद्र पर सेतु बाँध लिया तो आश्चर्य की क्या बात ? पर यह अच्छी तरह समझ लो कि राम यहाँ से जीवित नहीं लौट सकते। रावण की यह बात सुनकर माल्यवान् कुछ लज्जित हो रावण की आज्ञा प्राप्त कर अपने घर चला गया। तदनन्तर मंत्रियों से विचार विमर्श कर रावण ने तत्काल लंका की रक्षा का प्रबंध किया। उसने पूर्व द्वार पर रक्षा के लिए प्रहस्त को तैनात किया। दक्षिण द्वार पर महापार्श्व और महोदर को नियुक्त किया तथा पश्चिम द्वार पर अपने पुत्र इन्द्रजित् को रखा। तदनन्तर नगर के उत्तर द्वार पर शुक और सारण को रक्षा करने की आज्ञा देते हुए कहा- मैं स्वयं भी उत्तर द्वार पर जाऊँगा। नगर की बीच की छावनी पर उसने विरुपाक्ष को स्थापित किया। इस प्रकार लंकापुरी की रक्षा का प्रबंध कर अपने को कृतकृत्य मानता हुआ रावण अपने अंतःपुर में चला गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में छत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम से रावण द्वारा किये गये लंकापुरी की रक्षा के प्रबंध का वर्णन

शत्रु के देश में पहुँचकर श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान, विभीषण शरभ आदि आपस में विचार करते हुए बोले- यही वह विशाल लंकापुरी है। जिसका पालन रावण करता है। इस पर विजय पाना असुर, नाग, गंधर्व और देवताओं के लिए भी कठिन है। अब हम इस पर विजय प्राप्त करने के लिए परस्पर विचार करेंगे। तब विभीषण ने गूढ़ अर्थ से भरी हुई वाणी में कहा- मेरे मंत्री अनल, पनस, सम्पाति और प्रमति पक्षी का रूप धारण कर लंकापुरी

में गये थे और वहाँ की व्यवस्था देखकर अभी लौटे हैं। श्रीराम! रावण ने लंकापुरी की रक्षा के लिए जो प्रबंध किया है। उसका वर्णन आप मुझसे सुनें। सेना सहित प्रहस्त नगर के पूर्व द्वार का आश्रय लेकर खड़ा है। महापार्श्व और महोदर दक्षिण द्वार पर खड़े हैं। इन्द्रजित् नगर के पश्चिम द्वार पर खड़ा है। स्वयं रावण, शुक, सारण आदि कई सहस्त्र राक्षसों के साथ नगर के उत्तर द्वार पर सावधानी के साथ खड़ा है। वह मन ही मन उद्विग्न दिखायी पड़ता है। विरुपाक्ष विराट सेना के साथ नगर के बीच छावनी पर खड़ा है। इस प्रकार मेरे सारे मंत्री लंका के विभिन्न स्थानों पर नियुक्त हुई सेनाओं का निरीक्षण करके यहाँ लौट आये हैं। रावण की सेना में दस हजार हाथी, दस हजार रथ, बीस हजार घोड़े और एक करोड़ से भी ऊपर पैदल राक्षस हैं। वे सभी बल और पराक्रम से सम्पन्न हैं तथा एक-एक राक्षस के पास युद्ध के लिए दस-दस लाख परिवार मौजूद हैं। तदनन्तर विभीषण ने अपने मंत्री राक्षसों को भी श्रीराम से मिलाकर पुनः उनके द्वारा लंका का सारा वृत्तान्त कहला दिया। तब विभीषण ने फिर कहा- श्रीराम जब रावण ने कुबेर के साथ युद्ध किया था उस समय साठ लाख राक्षस उनके साथ गये थे। वे सब शौर्य और पराक्रम में रावण के समान थे। लेकिन मैं यह सारी बात आपको डराने के लिए नहीं कह रहा हूँ। क्योंकि आप अपने पराक्रम द्वारा देवताओं को दमन करने में भी समर्थ हैं। विभीषण की बात सुनकर श्रीराम बोले- बहुसंख्यक वानरों से घिरे कपि श्रेष्ठ नील पूर्व द्वार पर जाकर प्रहस्त का सामना करें। विशाल वाहिनी के साथ बालीकुमार अंगद दक्षिण द्वार पर जाकर महापार्श्व और महोदर के कार्य में बाधा पहुँचायें। पवनकुमार हनुमान बहुत से वानरों के साथ लंका के पश्चिम फाटक में प्रवेश करें। दुरात्मा रावण के बध का निश्चय लेकर मैं स्वयं ही लक्ष्मण के साथ नगर के उत्तर फाटक पर आक्रमण कर पुरी के भीतर प्रवेश करूँगा। सुग्रीव, राजा जाम्बवान् तथा विभीषण ये बीच के मोर्चे पर आक्रमण करें। वानरों को युद्ध करते समय मनुष्य का रूप नहीं धारण करना चाहिए। इस युद्ध में वानरों की सेना का हमारे लिए यही संकेत या चिह्न होगा। इस स्वजन वर्ग में वानर ही हमारे चिह्न होंगे। केवल हम सात व्यक्ति ही मनुष्य रूप में रहकर शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे। मनुष्य के रूप में युद्ध करने वाले होंगे- मैं, लक्ष्मण, विभीषण, और उनके चार मंत्री।

तदनन्तर विभीषण से ऐसा कहकर श्रीराम ने सुवेल पर्वत पर चढ़ने का निश्चय किया और तत्पश्चात् वे शत्रुबध का निश्चय करते हुए बड़े हर्ष और उत्साह के साथ लंका की ओर चले।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीराम का प्रमुख वानरों के साथ सुवेल पर्वत पर चढ़ना

तदनन्तर सुवेल पर्वत पर चढ़ने का विचार करके श्रीराम जिनके पीछे लक्ष्मण जी चल रहे थे सुग्रीव और विभीषण से बोले- मित्रों ! हम सब लोग इस पर्वत पर चढ़ें और आज की रात वहीं निवास करें। यहीं से हम लोग उस राक्षस की निवास भूमि लंकापुरी का भी अवलोकन करेंगे जिसने मेरी भार्य का अपहरण किया। अब केवल उसी अधर्म निशाचर के अपराध में मैं समस्त राक्षसों का बध करूँगा। इस प्रकार कहते हुए श्रीराम रावण के प्रति कुपित हो विचित्र शिखर वाले सुवेल पर्वत पर निवास करने के लिए चढ़ गये। उनके साथ उनके अनुज लक्ष्मण भी हाथ में धनुष बाण लिए उस पर्वत पर आरूढ़ हो गये। तत्पश्चात् सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदि सभी उनके साथ ही सुवेल-गिरि पर चढ़ गये। तब उन वानर यूथपतियों ने सुवेल पर्वत पर खड़े हो उस सुन्दर लंकापुरी का निरीक्षण किया जो आकाश में बनी हुई सुन्दर-सी जान पड़ती थी। उत्तम परकोटे उस पुरी की शोभा बढ़ाये हुए थे तथा वह राक्षसों से भरी पूरी थी। युद्ध की इच्छा रखनेवाले राक्षसों को देखकर वे सब वानर श्रीराम के देखते-देखते नाना प्रकार से सिंहनाद करने लगे। तत्पश्चात् वहाँ उजेली रात छा जाने से श्रीराम ने अपने भाई लक्ष्मण तथा यूथपतियों के समुदाय के साथ उस पर्वत के पृष्ठ भाग पर सुखपूर्वक निवास किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३८)

उन्तालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सुवेल शिखर सें लंकापुरी का निरीक्षण

वानर यूथपतियों ने वह रात उस सुवेल पर्वत पर ही बितायी और वहीं

से उन वानरों ने लंका के वन और उपवन भी देखे। हरे-भरे वृक्षों और फूलों से युक्त उस पुरी की शोभा बड़ी सुन्दर हो रही थी। वहाँ के वृक्ष सुगंधित और अत्यंत रमणीय फल धारण करते थे। वहाँ के वन उपवन नित्य मतवाले पक्षियों से विभूषित रहने वाले थे। कुछ वानर वीर उन वनों और उपवनों में घुस गये। वे सभी वानर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले उत्साही और आनन्द मग्न थे। उनके प्रवेश करते ही वहाँ घ्राणेन्द्रियों को सुख देने वाली मंद वायु चलने लगी। फिर दूसरे बहुत से यूथपति उन वानर वीरों ने समूह से निकल कर ध्वजापताकाओं से अलंकृत लंकापुरी में गये। वे अपने सिंहनाद से पक्षियों को डराते, मृगों और हाथियों के हर्ष छीनते तथा लंका को कंपाते हुए आगे बढ़ रहे थे। वानरों के उस सिंहनाद से त्रस्त एवं भयभीत हुए रीक्ष, सिंह, भैंसे और हाथी दसों दिशाओं में भाग गये। त्रिकूटपर्वत का ऊँचा शिखर पीले रंग के फूलों के खिले होने के कारण सोने का प्रतीत होता था। उस शिखर का विस्तार सौ योजन का था और लोग उस शिखर पर मन के द्वारा चढ़ने का कल्पना भी नहीं कर सकते थे। उस पर बसी हुई लंकापुरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लंबी थी। जैसे ग्रीष्म के अंतकाल में धनीभूत बादल आकाश की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार प्रासादों और विमानों से लंकापुरी अत्यंत सुशोभित हो रही है। राक्षस रावण का वह चैत्य प्रासाद लंकापुरी का आभूषण था। कई सौ राक्षस रक्षा के सभी साधनों से सम्पन्न होकर प्रतिदिन उसकी रक्षा करते थे। धन-धान्य से सम्पूर्ण मनोवांछित वस्तुओं से भरी-पूरी उस रावण की पुरी को श्रीराम ने अन्य वानरों के साथ देखा। बड़े-बड़े महलों से सघन बसी हुई उस स्वर्ग तुल्य नगरी को देखकर पराक्रमी श्रीराम बहुत विस्मित हुए। इस प्रकार अपनी विशाल सेना के साथ श्रीरघुनाथजी ने अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण वह अद्भुत पुरी देखी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३९)

चालीसवाँ सर्ग

सुग्रीव और रावण का मल्लयुद्ध

तदनन्तर वानर यूथों से युक्त सुग्रीव सहित श्रीराम सुवेल पर्वत के

सबसे ऊँचे शिखर पर चढ़े जिसका विस्तार दो योजन का था। वहाँ दो घड़ी ठहर कर दसों दिशाओं की ओर दृष्टिपात करते हुए श्रीराम ने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित लंकापुरी को देखा। उस नगर के गोपुर की छत पर उन्हें दुर्जय राक्षसराज रावण बैठा दिखायी दिया। उसके दोनों ओर श्वेत चंवर डुलाये जा रहे थे। सिर पर विजय छत्र शोभा दे रहा था। रावण का सारा शरीर रक्त चंदन से मंडित था। उसके अंग लाल रंग के आभूषणों से विभूषित थे। वह काले मेघ के समान लगता था। खरगोश के रक्त के समान लाल रंग से रंगे हुए वस्त्र से ढँके हुए होने के कारण आकाश में सन्ध्याकाल की धूप से ढंकी हुई मेघमाला के समान दिखायी देता था। राक्षस राज पर दृष्टि पड़ते ही सुग्रीव सहसा खड़े हो गये और क्रोध से युक्त हुए अपने शारीरिक एवं मानसिक बल से प्रेरित हो, सुवेल शिखर से उठकर उस गोपुर की छत पर कूद पड़े। फिर रावण को कुछ देर देखने के बाद कठोर वाणी में बोले-राक्षस! मैं श्रीराम का दास और सखा हूँ। आज तू मेरे हाथ से छूट नहीं सकता। ऐसा कहकर वे रावण के ऊपर जा कुदे और उसके मुकुटों को खींचकर पृथ्वी पर गिरा दिये। यह देखकर रावण भी बोल उठा- अरे! जब तक तू मेरे सामने नहीं आया था तभी तक। अब तू भी अपने इस सुन्दर ग्रीवा से रहित हो जायेगा। इतना कहकर अपनी दोनों भुजाओं से उन्हें उठाकर फर्श पर दे मारा। सुग्रीव भी गेंद की तरह उछलकर उसे अपनी भुजाओं से उठाकर फर्श पर पटक दिया। रावण तथा सुग्रीव दोनों ही बड़े बलवान थे। अतः दोनों ही घूंसे, थप्पड़, कोहनी और पंजों की मार से असह्य युद्ध करने लगे। इस तरह एकदूसरे से परस्पर सटे हुए शरीर वाले वे दोनों योद्धा किले की खाई के बीच में आ गिरे। वहाँ पृथ्वी का कुछ देर तक आलिंगन कर पड़े रहने के बाद वे पुनः उछलकर खड़े हो गये। दोनों ही कसरती जवान थे और युद्ध शिक्षा तथा बल से सम्पन्न थे। उन्हें जल्दी थकावट नहीं होती थी। मतवाले हाथियों के समान सुग्रीव और रावण एक दूसरे के दाँव को रोकते हुए बहुत देर तक पैंतरे बदलते हुए युद्ध करते रहे। जैसे दो बिलाव किसी भक्ष्य वस्तु के लिए क्रोधपूर्वक स्थित हो परस्पर दृष्टिपात कर बारम्बार गुर्राते रहते हैं। उसी तरह रावण और सुग्रीव भी लड़ रहे थे। कभी तिरछी चाल से चलते तो कभी टेढ़ी चाल से। दाँयें-बाँये घूम जाते, कभी अपने स्थान से हटकर शत्रु प्रहार को व्यर्थ

कर देते। कभी बदले में स्वयं भी दाव पेंच का प्रयोग करके शत्रु आक्रमण से अपने को बचा लेते। वे कभी झुककर या मेंढक की भाँति धीरे-धीरे उछलकर चलते। कभी लड़ते-लड़ते एक ही जगह पर स्थित रहते। इस प्रकार मल्ल युद्ध की कला में प्रवीण वानर राज सुग्रीव तथा रावण एक दूसरे पर आघात करने के लिए मण्डलाकार विचर रहे थे। इसी बीच रावण ने अपनी माया शक्ति से काम लेने का विचार किया। वानरराज सुग्रीव उसके इस भाव को ताड़ गये इसलिए सहसा वे आकाश में उछल पड़े। और इस तरह रावण को चकमा देकर निकल गये कि वह वहीं खड़ा-खड़ा देखता रह गया। तब सुग्रीव राक्षस राज रावण को युद्ध में थकाकर आकश मार्ग का लंघन करते हुए वानरों की सेना के बीच आ पहुँचे। इस प्रकार वहाँ अद्भुत कर्म करके शीघ्रगामी सूर्यपुत्र सुग्रीव ने श्रीराम के युद्ध विषयक उत्साह को बढ़ाते हुए वानर सेना में प्रवेश किया। इस समय प्रधान-प्रधान वानरों ने वानरराज का अभिनन्दन किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४०)

एकतालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सुग्रीव को दुःसाहस से रोकना

सुग्रीव के शरीर में युद्ध के चिह्न देखकर श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगा लिया और कहने लगे- सुग्रीव! तुमने मुझसे सलाह लिए बिना ही यह बड़े साहस का काम कर डाला है। राजा लोग ऐसे दुःसाहसपूर्ण कार्य नहीं किया करते। वीर! तुम्हारे इस साहसपूर्ण कार्य को देखकर मुझे बड़ा कष्ट हुआ। क्योंकि यदि तुम्हें कुछ हो गया होता तो मैं सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा अपने शरीर को लेकर ही क्या करता। यद्यपि मै तुम्हारे बल और पराक्रम को जानता था फिर भी मैंने निश्चय कर लिया था कि अगर जब तुम लौटकर नहीं आते, मैं, रावण का बध करके लंका के राज्य पर विभीषण का अभिषेक कर दूँगा और अयोध्या का राज्य भरत को देकर अपने इस शरीर का त्याग कर दूँगा। यह बात सुनकर सुग्रीव बोल उठे- वीर रघुनंदन! मैं आपकी भार्या का अपहरण करनेवाले रावण को देखकर कैसे क्षमा कर सकता था। सुग्रीव के

ऐसे वचन सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! अब हम इस वानर सेना का विभाग करके व्यूह रचना के साथ युद्ध के लिए तैयार हो जायें। मैं इस समय अपशकुन देख रहा हूँ। पृथ्वी कांप रही है। दिग्गज चीत्कार कर रहे हैं। मेघ हिंसक जन्तुओं के समान क्रूर हो गये हैं। सन्ध्या रक्त चन्दन के समान रक्ता हो गयी है। सूर्य से आग का पुंज दिखलायी पड़ रहा है। निषिद्ध पशु पक्षी दीन हो गये हैं। रात में चन्द्रमा का प्रकाश क्षीण हो जाता है तथा शीतलता की जगह संताप दे रहा है और उनके किनारे का भाग काला और लाल दिखाई पड़ता है। सूर्य मंडल में अतीव लाल घेरा दिखलायी देता है। ये नक्षत्र भी प्रकाशित नहीं होते। कौए, बाज और गीध नीचे गिर रहे हैं। इससे विदित हो रहा है कि वानरों और राक्षसों द्वारा चलाये गये अस्त्रों से यह धरती पट जायेगी और यहाँ रक्त और माँस की कीच जमेगी। यद्यपि रावण के द्वारा पालित यह लंकापुरी शत्रुओं के लिए दुर्जय है तथापि अब हम शीघ्र ही वानरो के साथ इस पर सब ओर से आक्रमण कर दें। लक्ष्मण से ऐसा कहकर वीर महाबली श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वत से नीचे उतर आये और कपिराज की उस सेना को सुसज्जित करके समय का ज्ञान रखने वाले श्रीराम ने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार शुभ समय में सेना को युद्ध के लिए कूच करने की आज्ञा दी। फिर उस विशाल सेना के साथ श्रीराम शुभ मुहूर्त में आगे-आगे लंकापुरी की ओर चल दिये। रीछ और वानरों की सेना उनके पीछे-पीछे चली। उस समय विशालकाय वानरों ने सैकड़ों शैल शिखरों और बड़े-बड़े वृक्षों को हाथ में ले रखा था। अब श्रीराम और लक्ष्मण थोड़े ही देर में लंकापुरी के पास जा पहुँचे। उस लंकापुरी के चारों ओर बड़ा ही अद्भुत और ऊँचा परकोटा था। उस परकोटे से ही मिला हुआ ही नगर का सदर फाटक था। इन परकोटों के कारण ही लंकापुरी में पहुँचना बहुत कठिन मालूम पड़ रहा था। फिर भी वे वानर श्रीराम की आज्ञा से प्रेरित हो उस पुरी पर घेरा डालकर उसके भीतर प्रवेश करने लगे। लंका का उत्तर द्वार पर्वत शिखर के समान ऊँचा था। श्रीराम और लक्ष्मण ने धनुष हाथ में लेकर उसका मार्ग रोक लिया और वहीं रहकर वे अपनी सेना की रक्षा करने लगे। उस द्वार पर स्वयं रावण खड़ा था और श्रीराम के सिवा दूसरा कोई भी उस द्वार पर अपने सैनिकों की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकता था। राक्षसों द्वारा सुरक्षित उत्तर का वह द्वार

पाताल की तरह भय दायक जान पड़ता था। पराक्रमी नील, मैन्द और द्विविद लंका के पूर्व द्वार पर जाकर डट गये। ऋषभ ने गवाक्ष, गज और गवय के साथ दक्षिण द्वार पर अधिकार जमा लिया। प्रमाथी, प्रघस, तथा वलवान् हनुमान ने पश्चिम द्वार का मार्ग रोक लिया। तत्पश्चात् उत्तर और पश्चिम के मध्य भाग में वेगशाली वानर वीरों के साथ सुग्रीव ने आक्रमण किया। श्रीराम की आज्ञा से विभीषण सहित लक्ष्मण ने लंका के प्रत्येक द्वार पर एक-एक करोड़ वानरों को नियुक्त कर दिया। सुषेण और जाम्बवान् सेना के साथ मोर्चे की रक्षा करते रहे। उस समय सभी वानरों की पूछें क्रोध के कारण अस्वाभाविक रूप से हिल रही थीं। इनमें से कई वानरों में दस हाथियों का बल था तो कोई उन से भी दस गुने अधिक बलवान् थे। किन्हीं-किन्हीं में तो एक हजार हाथियों का बल था। बहुत से वानरों के बल का तो अंदाज ही नहीं किया जा सकता था। लंका में उछल-उछल कर आते हुए वानरों से आकाश भर गया था। रीछों और वानरों की एक करोड़ सेना तो लंका के चारों द्वारों पर आ डटी थी और अन्य सैनिक सब ओर युद्ध के लिए चल दिये थे। एक करोड़ वानर तो उस पुरी में सभी द्वारों पर लड़ती हुई सेना का समाचार लेने के लिए नगर में सब ओर घूमते रहते थे। जिस लंका में वायु के लिए भी प्रवेश पाना कठिन था वहाँ वानरों द्वारा सहसा पीड़ित होने के कारण सभी राक्षसों को बड़ा विस्मय हुआ। उस समय वहाँ आक्रमण करते हुए वानर सेना का महान् कोलाहल हो रहा था। इससे समूची लंकापुरी में हलचल मच गयी। इस प्रकार श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव से सुरक्षित वह वानर सेना देवताओं और असुरों के लिए भी दुर्जय हो गयी थी। तत्पश्चात् सेना को यथा स्थान खड़ी करके श्री रघुनाथ जी मंत्रियों की सलाह लेकर अंगद से बोले- सौम्य! दशमुख रावण राज्य लक्ष्मी से भ्रष्ट हो गया है। अतः तुम लंकापुरी जाकर मेरी ओर से कहो- निशाचर! तुमने ब्रह्माजी के वरदान के घमंड में आकर ऋषि, देवता, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष और राजओं का जो अपमान किया उसके नष्ट होने का समय आ गया है। साथ ही जो मेरी भार्या का हरण करके मुझे कष्ट पहुँचाया है उसी का दण्ड देने के लिए मैं लंका के द्वार पर आ खड़ा हुआ हूँ। अब यदि तुम मिथिलेश कुमारी को लेकर मेरी शरण में नहीं आये तो मैं अपने तीखे बाणों द्वारा इस संसार को राक्षसों से सूना कर दूँगा और ये

विभीषण जो मेरे साथ आये हैं लंका का निष्कंटक राज्य इन्हें ही प्राप्त होगा। अब तुम अधर्म पूर्वक इस राज्य को एक क्षण के लिए भी नहीं भोग सकते। इस समय मेरे दृष्टि पथ में आने के पश्चात् यदि तुम पक्षी होकर तीनों लोकों में उड़ते और छिपते फिरो तो भी अपने घर को जीवित नहीं लौट सकोगे। अब मैं तुम्हें हित की बात बताता हूँ। तुम अपना श्राद्ध कर डालो और परलोक में सुख देने वाले दान पुण्य कर लो। साथ ही लंका को भी जी भरकर देख लो जो मेरे अधीन हो चुकी है। उसी समय अंगद तुरंत ही आकाश मार्ग से चलते हुए-रावण के निकट पहुँचकर खड़े हो गये। फिर वहाँ अपना परिचय देकर राम की कही हुई बातें ज्यों की त्यों सुना दीं। उन्होंने कहा- मैं बाली का पुत्र अंगद हूँ। सम्भवतः कभी मेरा नाम भी तुम्हारे कानों में पड़ा हो। श्रीराम ने इस समय मुझसे कहलाया है- नृशंस रावण! जरा मर्द बनो और घर से बाहर निकलकर युद्ध में मेरा सामना करो। मैं वहाँ तुम्हारा बध करके तीनों लोकों को निर्भय करूँगा। अब भी यदि तुम मेरे चरणों पर गिरकर सीता को आदरपूर्वक नहीं लौटा देते तो तुम मेरे हाथों से मारे जाओगे और तुम्हारा सारा ऐश्वर्य विभीषण को प्राप्त होगा। अंगद के ऐसे कठोर वचन कहने पर रावण अत्यंत क्रोध में भर उठा और बार-बार अपने मंत्रियों से कहने लगा कि इस वानर को पकड़कर मार डालो। उस समय अंगद ने स्वयं अपने आपको पकड़वा दिया। फिर उन राक्षसों को लिए दिये ही उछले और उसे महल की छत पर जो पर्वत शिखर के समान ऊँची थी, चढ़ गये। उनके उछलने के वेग से झटका खाकर वे सब राक्षस रावण के सामने पृथ्वी पर गिर पड़े। यही नहीं उनके पैरों के भार से वह छत देखते ही देखते फट गयी। तब महल की छत को तोड़कर उन्होंने जोरों से सिंहनाद किया और आकाश मार्ग से उड़ते हुए श्रीराम के पास लौट आये। अपने महल को विध्वंस होते देख रावण को बड़ा क्रोध आया। परन्तु अपने विनाश की घड़ी आयी हुई देखकर वह लम्बी साँस छोड़ने लगा। इसी समय वानर वीरसुषेण ने बहुसंख्यक वानर वीरों के साथ लंका के सभी दरवाजों को काबू में कर लिया। लंका पर घेरा डालकर समुद्र तक फैले हुए उन वनवासी वानरों की सौ अक्षोहिणी सेनाअं को देखकर रावण को बड़ा विस्मय हुआ। उस समय बहुत से राक्षस भयभीत हो गये और कितने ही तो समरांगण में हर्ष और उत्साह से भर गये तथा

समस्त निशाचर योद्धा बड़े-बड़े आयुध हाथों में लेकर प्रलय काल के प्रचन्ड वायु के समान विचरने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इक्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालीसवाँ सर्ग

लंका पर वानरों की चढ़ाई

तत्पश्चात् राक्षसों ने रावण के महल में जाकर निवेदन किया कि वानरों ने लंकापुरी को चारों ओर से घेर लिया है। यह सुनकर रावण अत्यंत क्रोध में भर उठा और नगर की रक्षा का पहले से भी दुगुना प्रबंध करके महल की अटारी पर चढ़ गया। वहाँ से उसने देखा कि लंका सब ओर से असंख्य वानरों से घिरी हुई है। तब उसने बहुत देर तक चिंता करने के पश्चात् वानर सेनाओं की ओर पुनः देखा। इधर श्रीरामचन्द्रजी अपनी सेना के साथ प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े और व्यथित चित्त से मन ही मन सीता का स्मरण करने लगे। इस प्रकार राक्षसों द्वारा पीड़ित हुई सीता का बार-बार स्मरण कर उन्होंने तत्काल राक्षसों के बध करने की आज्ञा दे दी। इस आज्ञा को पाकर वानरों ने अपने सिंहनाद से वहाँ की धरती और आकाश गुंजा दिया। वे वानर सेनापति पर्वत के बड़े-बड़े शिखर उठाकर और नाना प्रकार के वृक्षों को उखाड़कर प्रहार करने के लिए खड़े थे। तत्पश्चात् वे रावण के देखते-देखते लंका के परकोटों पर चढ़ गये। वे सभी वानर श्रीरामचन्द्र पर प्राण न्यौछावर करने के लिए तत्पर थे। तदनन्तर वे सबके सब साल वृक्ष और शैल शिखरों से युद्ध करने वाले थे इसलिए उन्होंने लंका पर ही आक्रमण किया तथा उछलते कूदते लंका के परकोटे पर टूट पड़े। इसी समय वीर बाहु, सुबाहु, नल और पनस आदि वानर यूथपति लंका के परकोटों पर चढ़कर बैठ गये। उसी बीच वहाँ उन्होंने सेना का पड़ाव भी डाल दिया। बलवान् कुमुद विजयश्री से सुशोभित करोड़ों वानरों के साथ लंका के पूर्व द्वार को घेर कर खड़ा हो गया। उसकी सहायता के लिए अन्य वानरों के साथ पनस और प्रघस भी आकर डट गये। वीर शतबलि ने बीस करोड़ वानरों के साथ दक्षिण द्वार को घेर लिया। तारा के बलवान् पिता सुषेण कोटि-कोटि वानरों

के साथ पश्चिम द्वार को घेर कर खड़े हो गये। लंगूर जाति के महापराक्रमी वानर गवाक्ष एक करोड़ वानरों के साथ श्रीराम चन्द्रजी के बगल में खड़े हो गये। इसी तरह महाबली शत्रुसूदन, ऋक्षराज धूम्र एक करोड़ भयानक रीछों को लेकर श्रीराम के दूसरो ओर खड़े हो गये। पराक्रमी विभीषण भी हाथ में गदा लिए वहीं आकर डट गये। गज, गवाक्ष, गवय, शरभ और गंधमादन सब ओर घूम-घूमकर वानर सेना की रक्षा करने लगे। तदनन्तर रावण ने भी अपनी सेना को बाहर निकलने की आज्ञा दी। तब धौसों की आवाजों के साथ लाखों गंभीर घोष वाले शंख बजने लगे। तत्पश्चात् रावण की प्रेरणा से उसके सैनिक बड़े उत्साह के साथ युद्ध के लिए निकलने लगे। यह देखकर वानर सैनिकों ने भी बड़ी जोर से सिंहनाद किया। इतने में ही पूर्वकाल में घटित हुए देवासुर संग्राम की भाँति राक्षसों और वानरों में घोर युद्ध होने लगा। वानर सेना में 'वानरराज सुग्रीव की जय हो' का महान् शब्द होने लगा और राक्षस लोग भी महाराज रावण की जय हो ऐसा कहकर अपने नामों का उल्लेख करने लगे। उस समय जो राक्षस परकोटे पर चढ़े हुए थे। पृथ्वी पर खड़े हुए वानरों को भिन्दिपालों और शूलों से विदीर्ण करने लगे। तब पृथ्वो पर खड़े हुए वानर भी अत्यंत कुपित हो उठे और आकाश में उछल कर परकोटे में बैठे हुए राक्षसों को अपनी बांहों में पकड़कर गिराने लगे। इस प्रकार राक्षसों और वानरों में बड़ा ही अद्‌भुत और घमासान युद्ध हुआ जिससे वहाँ रक्त और मांस की कीच जम गयी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैंतालीसवाँ सर्ग

द्वन्द्व युद्ध में वानरों द्वारा राक्षसों की पराजय

उस समय परस्पर युद्ध करते हुए वानरों को और राक्षसों की एक दूसरे की सेना को देखकर बड़ा भयंकर रोष हुआ। तत्पश्चात् श्रीराम की विजय चाहनेवाले वानरों की इस विशाल सेना ने भी घोर कर्म करने वाले राक्षसों की सेना पर धावा किया। फिर एक दूसरे पर धावा बोलते हुए राक्षसों और वानरों में द्वन्द्व युद्ध छिड़ गया। अंगद के साथ इन्द्रजित् आ भिड़ा तो हनुमान

जी ने जाम्बुमाली के साथ युद्ध प्रारंभ किया। महाबली सम्पाति प्रजंघ के साथ जा उलझा। इस युद्ध में महाबली गज तपन से लड़ने लगे तो नील भी निकुम्भ के साथ जूझने लगे। सुग्रीव प्रघस के साथ तथा लक्ष्मण विरुपाक्ष के साथ उलझ गये। दुर्जयवीर अग्निकेतु रश्मिकेतु सुप्तघ्न और यज्ञकोप आदि सब श्रीराम के साथ युद्ध करने लगे। मैन्द के साथ बज्रमुष्टि और द्विविद के साथ अशनिप्रभ जा भिड़े। प्रतपन नामक घोर राक्षस नल के साथ युद्ध करने लगा। महाकपि सुषेण राक्षस विद्युन्माली के साथ लोहा लेने लगे और फिर इस प्रकार युद्ध करते हुए वे वानर और राक्षस आपस में द्वन्द्वयुद्ध करने लगे। यह युद्ध बहुत ही रोमांचकारी था। उस समय वानरों और राक्षसों के शरीर से निकल कर खून की नदियाँ बहनें लगीं। ऐसे समय में इन्द्रजित् ने वीर अंगद पर गदा का प्रहार किया। किन्तु अंगद ने उसकी गदा को हाथ में पकड़ कर सारथी और घोड़ों सहित रथ को चूर-चूर कर डाला। प्रजंघ ने सम्पाति को तीन बाणों से घायल कर दिया। तब सम्पाति ने अश्वकर्ण नामक वृक्ष से प्रजंघ को मार डाला। जाम्बुमाली से कुपित हो हनुमान जी के छाती पर चोट की। तब हनुमानजी ने उछलकर थप्पड़ों से मार-मार कर उसको मार डाला। दूसरी ओर जब प्रतपन नामक राक्षस नल की ओर दौड़ कर नल के शरीर को क्षत विक्षत करने लगा तो नल ने उसकी दोनों आँखें निकाल लीं। उस समय राक्षस प्रघस वानर सेना को काल का ग्रास बना रहा था तब सुग्रीव ने उसे सप्तपर्णनामक वृक्ष से वेग पूर्वक मार गिराया। इधर अग्निकेतु, दुर्जय, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप आदि राक्षसों ने अपने बाणों से श्रीराम चन्द्रजी को घायल कर दिया। तब श्रीराम ने कुपित होकर अपने बाणों से उन चारों के सिर काट डाले। उस युद्धस्थल में मैन्द ने बज्रमुष्टि पर मुक्के का प्रहार किया तब वह रथ और घोड़े सहित पृथ्वी पर आ गिरा। निकुम्भ ने अपने पैने बाणों से नील को छिन्न-भिन्न करना शुरू किया तो वह जोर जोर से हँसने लगा। तब नील ने उसी के रथ के पहिये से निकुम्भ तथा उसके सारथी का सिर काट गिराया। द्विविद का स्पर्श वज्र और अशनि के समान दुःसह था। उसने अशनिप्रभ के बाणों से अपने शरीर को क्षत विक्षत होते देख एक साल वृक्ष से अशनिप्रभ को रथ और घोड़ों सहित मार गिराया। इधर सुषेण ने बड़ी ही फुर्ती से एक बहुत बड़ी शिला को चुपके से उठाकर विद्युन्माली की

छाती पर दे मारा जिससे वह तत्काल प्राण शून्य होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस प्रकार वे सारे शूरवीर निशाचर वानरों द्वारा युद्ध में उसी तरह कुचल दिये गये जैसे देवताओं द्वारा दैत्य मथ डाले गये थे। उस समय यह युद्धभूमि भालों, बाणों, तोमरों, सायकों, फेंके हुए रथों,वानरों और राक्षसों के इधर उधर पड़े होने के कारण बड़ी भयानक दिखलायी पड़ रही थी। राक्षसों के मस्तक रहित धड़ सम्पूर्ण दिशाओं में उछल रहे थे। उस समय सारे निशाचर सूर्य के अस्त होने की प्रतीक्षा करते हुए (क्योंकि रात में राक्षसों का बल अधिक बढ़ जाता है) पुनः बड़े वेग से घमासान युद्ध करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालीसवाँ सर्ग

रात में वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध

इस प्रकार वानरों और राक्षसों का युद्ध चल ही रहा था कि रात्रि का आगमन हुआ। इस भीषण अंधकार में वानर अपने विपक्षी से पूछते थे क्या तुम राक्षस हो और राक्षस भी पूछते थे कि क्या तुम वानर हो। इस तरह पूछ-पूछ कर वे युद्धभूमि में एक दूसरे पर प्रहार करते थे। सेना में सब ओर मारो-काटो, आओ, क्यों भागे जाते हो ?' आदि भयंकर शब्द सुनायी दे रहे थे। उक्त अंधकार से पार पाना कठिन हो रहा था। क्रोध से अधीर हुए वेगशाली राक्षस वानरों को खाते हुए उन पर टूट पड़ते। तब वानरों का क्रोध भी बड़ा भयानक हो उठा। वे उछलकर अपने तीखे दाँतों द्वारा राक्षस दल के घोड़ों को और उनके ध्वजों को विदीर्ण कर देते। इसके अलावा वे रथों को खींच लेते और दाँतों से काट-काट कर उसे क्षत-विक्षत कर देते। बड़े-बड़े राक्षस कभी प्रकट होकर तो कभी अदृश्य होकर युद्ध करते किन्तु श्रीराम और लक्ष्मण अपने बाणों द्वारा दृश्य और अदृश्य सभी राक्षसों को मार गिराते। इस तरह के रोमांचकारी भयंकर संग्राम के छिड़ जाने पर वहाँ खून की नदियाँ बहनें लगीं। घायल होकर कराहते हुए राक्षसों और शस्त्रों से क्षत विक्षत हुए वानरों का आर्तनाद बड़ा भयंकर प्रतीत होता था। वानरों और राक्षसों का संहार करने वाली वह भयंकर रात्रि काल रात्रि के समान समस्त प्राणियों के लिए

दुर्लंघ्य हो गयी थी। तत्पश्चात् उस भयावह अंधकार में वहाँ के सब राक्षस हर्ष और उत्साह में भरकर बाणों की वर्षा करते हुए श्रीराम पर धावा करने लगे। इस समय आक्रमणकारी राक्षसों का शब्द प्रलय के समान सातों समुद्रों के महान् कोलाहल-सा जान पड़ता था। तब श्रीराम ने अपने छः भयानक बाणों से यक्षशत्रु, महापार्श्व, महोदर, महाकाय, बज्रदंष्ट्र तथा शंकु और सारण को बुरी तरह घायल कर दिया जिससे वे छओं राक्षस युद्ध छोड़कर भाग गये। उस समय श्रीराम के प्रज्वलित बाणों ने सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशमय कर दिया। उस समय श्रीराम के सम्मुख खड़े हुए सभी राक्षस उसी प्रकार भस्म हो गये जैसे आग में पड़कर पतिंगा जल जाते हैं। राक्षसों के सिंहनादों और भेरियों की आवाजों से वह भयानक रात्रि और भी भयंकर हो उठी थी। लंगूर जाति के विशालकाय वानर जो अंधकार के समान काले थे। निशाचरों को दोनों भुजाओं में कस-कसकर मार डालते थे और उन्हें कुत्ते आदि को खिला देते थे। दूसरी ओर अंगद ने आगे बढ़कर रावण पुत्र इन्द्रजित् को घायल कर दिया और उसके सारथी तथा घोड़ों को भी यमलोक पहुँचा दिया। तब कष्ट में पड़ जाने से इन्द्रजित अपने रथ को वहीं छोड़कर अन्तर्धान हो गया। किन्तु इधर शत्रु को पराजित हुआ देखकर सुग्रीव और विभीषण सहित सब वानर बड़े प्रसन्न हुए और अंगद को साधुवाद देने लगे। अब अंगद से पराजित होने पर इन्द्रजित् ने बड़ा भयंकर क्रोध प्रकट किया और अन्तर्धान विद्या का सहारा लेकर बज्र के समान तीखे और तेजस्वी बाण बरसाने आरंभ किये और कुपित होकर राम और लक्ष्मण को घायल कर दिया। फिर श्रीराम तथा लक्ष्मण को मोह में डालते हुए उन्हें सर्पाकार बाणों के बन्धन में बाँध दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैंतालीसवाँ सर्ग

इन्द्रजित् के बाणों से राम लक्ष्मण का अचेत होना

तत्पश्चात् श्रीराम ने दस वानर यूथपतियों को इन्द्रजित् का पता लगाने की आज्ञा दी। उनमें दो सुषेण के पुत्र और शेष नील, बालिपुत्र अंगद, शरभ,

द्विविद, हनुमान, सानुप्रस्थ, ऋषभ तथा स्कंध थे। श्रीराम की आज्ञा पाकर सभी वानर भयंकर वृक्ष उठाकर दसों दिशाओं में खोजते हुए बड़े हर्ष के साथ आकाश मार्ग से चले। उस समय इन्द्रजीत् ने अत्यंत वेगशाली बाणों की वर्षा करके उन वानरों के वेग को रोक दिया। किन्तु बाणों से घायल हो जाने पर भी वे मेघों से ढंके हुए सूर्य के समान इन्द्रजीत् को नहीं देख सके। उस समय इन्द्रजीत् ने पुनः श्रीराम लक्ष्मण पर बाणों की वर्षा की और उनसे उन्हें बांधने लगा। उसके इन बाणों की वर्षा से उन दोनों भाईयों के अंग से जो घाव हो गये थे उनसे बहुत-सा रक्त बहने लगा। तब इन्द्रजीत् उसी अन्तर्धान अवस्था में उन दोनों भाइयों से बोला-युद्ध के समय अन्तर्धान हो जाने पर मुझे देवराज इन्द्र भी नहीं देख सकते फिर तुम्हारी क्या बिसात? मैं तुम दोनों को अभी यमलोक भेज देता हूँ। ऐसा कहकर भयानक गर्जना करता हुआ बाणों की घोर वर्षा करने लगा। युद्ध के मुहाने पर बाणों के बंधनों से बंधे हुए वे दोनों भाई पलक मारते-मारते ऐसी दशा में पहुँच गये थे कि उनमें आँख उठाकर देखने की शक्ति भी नहीं रही। इस प्रकार उनके सारे अंग बिंध गये और वे विचलित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। वीर शय्या पर सोये हुए वे दोनों रक्त से नहा उठे। वास्तव में यह लीला मात्र थी। उनके शरीर में एक अंगुल भी ऐसी जगह न बची थी जो बाणों से बिंधी न हो। उस समय इन्द्रजीत् ने उन्हें शीघ्रगामी नाराच, भल्ल, अंजलिक, वत्संदत जाति के बाणों से घायल कर दिया। जिसकी प्रत्यंचा चढ़ी हुई थी किन्तु मुट्ठी का बंधन ढीला पड़ गया था। उस धनुष को त्यागकर भगवान् श्रीराम वीर शय्या पर सोये हुए थे। फेंका हुआ बाण जितनी दूर पर गिरता है अपने से उतनी ही दूरी पर धरती पर पड़े हुए श्रीराम को देखकर लक्ष्मण अपने जीवन से निराश हो गये। उन्हें उस अवस्था में देखकर वानरों को भी बड़ा शोक हुआ। वे शोक से आतुर हो आर्तनाद करने लगे। नाग पाश में बंधे वीर शय्या पर सोये हुए उन दोनों भाइयों को चारों ओर से घेरकर सब वानर खड़े हो गये। वहाँ आये हुए हनुमान आदि मुख्य-मुख्य वानर व्यथित हो बड़े विषाद में पड़ गये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण को मूर्छित देख वानरों का शोक

तत्पश्चात् जब उपर्युक्त दस वानर पृथ्वी और आकाश को छानबनी करके लौटे, तब उन्होंने दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को बाणों से बिंधा हुआ देखा। उस समय वे दोनों भाई खून से लथपथ बाण शय्या पर पड़े थे। वे धीरे-धीरे निश्चल होकर सांस ले रहे थे। उनकी हरकतें मन्द हो गयी थीं। निश्चेष्ट पड़े हुए उन दोनों भाइयों का पराक्रम मन्द हो गया था। वीर शय्या पर सोये हुए मन्द चेष्ट वाले वे दोनों वीर आंसू भरे नेत्रवाले अपने यूथपतियों से घिरे हुए थे। किन्तु वे समस्त वानर सम्पूर्ण दिशाओं और आकाश में बारम्बार दृष्टि दौड़ाने पर भी इन्द्रजीत को रणभूमि में नहीं देख पा रहे थे। तब विभीषण ने माया से ही देखना शुरू किया। उस समय उन्होंने माया से छिपे हुए अपने भतीजे को सामने ही खड़ा हुआ देखा। वह श्रीराम और लक्ष्मण को युद्ध भूमि में सोये हुए देखकर बड़ा प्रसन्न हो रहा था और राक्षसों का हर्ष बढ़ाते हुए कहने लगा- वह देखो जिन्होंने खर दूषण का वध किया है वे दोनों भाई मेरे बाणों से मारे गये। इस समय यदि मुनियों और देवताओं का समूह भी आ जाये तो उन दोनों को छुटकारा नहीं दिला सकता। जो अभी तक मेरे पिता के लिए चिंता के कारण बने थे उन्हीं अनर्थ को आज मैंने शान्त कर दिया। राक्षसों से ऐसा कहकर इन्द्रजित् ने वानरों के समस्त यूथपतियों को भी मारना आरम्भ किया। उसने नील को नौ बाणों से तथा मन्द और द्विविद को तीन-तीन बाणों द्वारा संतप्त कर दिया। फिर जाम्बवान् को एक बाण से गहरी चोट पहुँचायी और हुनमानजी को दस बाण मारे। राजकुमार का वेग उस समय इतना बढ़ा हुआ था कि उसने युद्ध स्थल में गवाक्ष और शरभको भी दस-दस बाण मार कर घायल कर दिया। तत्पश्चात् बहुसंख्यक बाणों द्वारा गवाक्ष और अंगद को भी गहरी चोट पहुँचायी। इस प्रकार उन मुख्य-मुख्य वानरों को घायलकर वह जोर जोर से गर्जना करता हुआ बोला-राक्षसो! देख लो मैंने अपने बाणों के पाश से दोनों भाई, श्रीराम और लक्ष्मण को एक साथ ही बांध लिया है। इन्द्रजित् के इस बात से भी राक्षसों को बड़ा हर्ष होने लगा। फिर तो वे सबके सब मेघों के समान सिंहनाद करने लगे। तब उन लोगों ने यह समझकर कि श्रीराम मारे गये रावण कुमार का बड़ा अभिनंदन किया।

उसके तुरन्त बाद ही वह राक्षसों का हर्ष बढ़ाता हुआ लंकापुरी में चला गया। किन्तु इधर श्रीराम और लक्ष्मण के शरीरों तथा सभी अंगों को बाणों से घायल देख सुग्रीव के मन में भय समा गया। तब सुग्रीव को शोकाकुल देख विभीषण ने कहा- सुग्रीव डरो मत। सभी युद्धों की प्रायः यही स्थिति होती है। उनमें विजय निश्चित नहीं होती। यदि हमारा भाग्य शेष होगा तो ये दोनों महाबली शीघ्र मूर्छात्याग देंगे। वे जो सत्य और धर्म में अनुराग रखते हैं उन्हें मृत्यु का भय ही नहीं होता। तत्पश्चात् हाथ में जल लेकर उसे मंत्रपूत करके धर्मात्मा विभीषण ने सुग्रीव के नेत्रों में लगाया और कहने लगे- वानर सम्राट यह घबराने का समय नहीं। क्योंकि यह घबराहट सब कामों को बिगाड़ देने वाली हैं। अब तो आप अपनी इस घबराहट को छोड़कर अपने इन सेनानायकों के हित का विचार करें। अब जब तक श्रीराम को चेत न हो तब तक हमें इनकी रक्षा करनी चाहिए। होश आने पर ये दोनों बंधु हमारा सारा भय दूरकर देंगे। श्रीराम के लिए यह संकट कुछ भी नहीं हैं। ये मर नहीं सकते। अब तुम उन्हें सम्हालो और अपनी सेना को आश्वासन दो क्योंकि इन वानरों के मन में भय समा गया है। इसलिए आपस में कानाफूंसी करते हैं। इस प्रकार सुग्रीव को आश्वासन दे विभीषण ने भागने के लिए तत्पर सेना को फिर से सांत्वना दी। इधर इन्द्रजित् अपनी सेना के साथ लंकापुरी लौटा और रावण के सामने पहुंच हाथ जोड़कर श्रीराम और लक्ष्मण के मारे जने का समाचार सुनाया। रावण यह सुनकर हर्ष से उछल पड़ा और पुत्र को गले लगा लिया। तब तो उसे जो भय और चिंता प्राप्त हुई थी उसने उसको तत्काल त्याग दिया और अपने पुत्र का अभिनन्दन किया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (४६)

सैंतालीसवाँ सर्ग

वानरों द्वारा श्रीराम और लक्ष्मण की रक्षा

इन्द्रजीत् जब अपना काम बनाकर लंका को चला गया तो सभी श्रेष्ठ वानर श्रीराम को चारों ओर से घेरकर उनकी रक्षा करने लगे। हनुमान, अंगद, नील, सुषेण, कुमुद, नल, गवाक्ष, गवय, गन्धमादन, शरभ सभी

सावधान हो हाथों में वृक्ष लिए हुए सब ओर से पहरा देने लगे। वे सभी दिशाओं में चौकसी से देखते रहे। उधर रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजित् को विदा करके उस समय सीता की रक्षा करनेवाले राक्षसियों को बुलाया और उन लोगों से कहा, तुम लोग सीता के पास जाकर कहो कि इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार डाला है और फिर सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ाकर उन दोनों मारे गये भाईयों को दिखा दो। जिसका आश्रय लेकर वह मेरे पास नहीं आती थी वही उसका पति युद्ध में मारा गया। इस तरह सीता को उसकी अपेक्षा नहीं रहेगी और वह फिर मेरी सेवा में आ जायेगी। तब वे राक्षसियां बहुत अच्छा कहकर उस स्थान पर गयीं जहाँ पुष्पक विमान था। फिर वे सब उस पुष्पक विमान को सीता के पास लाकर उस पर सीता को चढ़ा दिया और उन्हें श्रीराम और लक्ष्मण का दर्शन कराने के लिए ले गयीं। तब त्रिजटा के साथ उस विमान से सीता ने रण-भूमि में मारी गयी वानरों की सेना को देखा। तदनन्तर सीता ने बाण शय्या पर सोये हुए दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को भी देखा जो बाणों से पीड़ित हो संज्ञा शून्य होकर पड़े थे। उन दोनों वीरों के कवच टूट गये थे और धनुष बाण अलग पड़े थे। तब उन दोनों वीरों को उस अवस्था में बाण शय्या पर पड़ा देख दुःख से पीड़ित हुई सीता करुण स्वर में जोर-जोर से विलाप करने लगी। उनके नेत्रों से आँसू बह रहे थे और हृदय शोक के आघात से पीड़ित था। उस समय वे दोनों भाईयों के मरण की आशंका करती हुई वे प्रलाप करने लगीं।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (४७)

अड़तालीसवाँ सर्ग

सीता का विलाप और त्रिजटा का समझाना

सीता जी प्रलाप में कह रही थीं- सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता विद्वानों ने मुझे पुत्रवती और सौभाग्यवती बताया था। आज श्रीराम के मारे जाने से वे सब ज्ञानी पुरुष असत्यवादी हो गये। जिन लोगों ने मुझे वीर राजाओं की पत्नियों में पूजनीय और पति द्वारा सम्मानित बताया था आज श्रीराम के न रहने से वे सभी लक्षणज्ञ पुरुष मिथ्यावादी हो गये हैं। जिन ब्राह्मणों ने मेरे सामने ई

मुझे नित्य मंगलमयी कहा था वे सभी असत्यवादी हो गये हैं। जिन अशुभ लक्षणों के कारण सौभाग्य दुर्लभ होता है और स्त्रियां विधवा हो जाती हैं, मैं बहुत देखने पर भी अपने अंगों में ऐसे लक्षणों को नहीं देखपाती, फिर भी लगता है मेरे सारे शुभ लक्षण निष्फल हो गये हैं। स्त्रियों के हाथ और पैरों में जो कमल के चिह्न होते हैं उन्हें ज्योतिषियों ने अमोघ बताया है। किन्तु आज श्रीराम के मारे जाने से वे सारे शुभ लक्षण मेरे लिए व्यर्थ हो गये हैं। मेरे सिर के बाल महीन और काले हैं। मेरी पिंडलियाँ गोल तथा रोग रहित हैं तथा मेरे दांत भी परस्पर सटे हैं। जांघें पुष्ट हैं तथा अंगुलियां बराबर एवं चिकनी हैं। मेरे दोनों उरोज सटे हुए और स्थूल हैं। मेरा पार्श्व भाग तथा छाती मांसल है। मेरी अंगकान्ति तराशी हुई मणि के समान उज्ज्वल है। मेरे पैरों की दसों अँगुलियाँ और तलवे पृथ्वी से अच्छी तरह सट जाते हैं। ज्योतिष के सिद्धांत जाननेवाले निपुण ब्राह्मणों ने यह भी बताया है कि मेरा पति के साथ राज्याभिषेक होगा किन्तु आज वे सारी बातें झूठी हो गयीं। इन दोनों भाईयों ने अथाह समुद्र को तो पार कर लिया किंतु हाय, उसके बावजूद थोड़ी सी राक्षस सेना के द्वारा मारे गये। परन्तु उस समय इन दोनों भाईयों ने वारूण, आग्नेय ऐन्द्र, वायव्य अस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं किया जिसे ये अच्छी तरह जानते थे। श्रीराम और लक्ष्मण तो इन्द्र के समान पराक्रमी थे किन्तु इन्द्रजित् ने स्वयं माया से अदृश्य रहकर ही उन्हें रणभूमि में मार डाला है। अन्यथा श्रीराम के दृष्टिपथ में आकर कोई भी राक्षस जीवित नहीं जा सकता था। परन्तु काल सब कुछ कर सकता है इसलिए उसी काल के वश में होकर आज श्रीराम अपने भाई के साथ मारे जाकर युद्ध भूमि में पड़े हैं। मैं इस समय श्रीराम, लक्ष्मण तथा अपनी माता के लिए भी इतना शोक नहीं करती जितना तपस्विनी सासुजी के लिए कर रही हूं। वे यही सोचती होंगी कि कब वनवास से लौटे हुए श्रीराम लक्ष्मण और सीता का मुख वह देखेंगी। तब इस प्रकार सीता को विलाप करती हुई देखकर राक्षसी त्रिजटा ने कहा- देवि! मैं तुम्हें कई ऐसे उचित कारण बताऊँगी जिससे यह विदित होता है कि श्रीराम और लक्ष्मण जीवित हैं। युद्ध में स्वामी के मारे जाने पर योद्धाओं के मुँह क्रोध और हर्ष की उत्सुकता से युक्त न रहते। लेकिन यहाँ वे दोनों बातें पायी जाती हैं इसलिए वे जीवित हैं। सीता! यह विमान तुम्हारे विधवा होने पर तुम्हें

धारण ही न करता। इसके अलावा प्रधान वीर के मरने पर उसकी सेना युद्ध स्थल में मारी-मारी फिरती है। किन्तु यहाँ इस सेना में किसी प्रकार की घबराहट या उद्वेग नहीं है। यह इन राजकुमारों की रक्षा कर रही है इससे प्रतीत होता है ये दोनों जीवित हैं। मिथलेश कुमारी! तुम्हारा शील स्वभाव तुम्हारे निर्मल चरित्र के कारण बड़ा सुखदायक जान पड़ता है इसलिए तुम मेरे मन में घर कर गयी हो। इसलिए न मैंने तुमसे कभी झूठ कहा है और न आगे कहूँगी। इन दोनों वीरों को तो इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता और असुर भी नहीं जीत सकते। यह आश्चर्य की बात तो देखो कि इनके अचेत पड़े होने पर इनके शरीर की सहज कान्ति इनका त्याग नहीं कर रही हैं। जिनके प्राण निकल जाते हैं उनके मुख प्रायः विकृत दिखायी देते हैं परन्तु इनके मुख की शोभा ज्यों की त्यों बनी हुई है। इसलिए ये जीवित हैं। अतः जनक किशोरी! तुम शोक और मोह को त्याग दो। ये मर नहीं सकते। त्रिजटा की बात सुनकर सीता ने हाथ जोड़कर कहा- बहिन! ऐसा ही हो। फिर मन के समान वेगवाले पुष्पक विमान को लौटाकर त्रिजटा दुखिनी सीता को लंकापुरी ले आयी और उसे अशोक वाटिका में पहुँचा दिया। तब वहाँ सीता दोनों राजकुमारों का चिंतन करके महान शोक में डूब गयीं।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड मे अड़तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ (४८)

उनचासवाँ सर्ग

श्रीराम का सचेत होकर लक्ष्मण के लिए विलाप करना

दशरथ कुमार श्रीराम और लक्ष्मण भयंकर सर्पाकार बँधनों में बँधे पड़े थे। उन दोनों को घेरकर सुग्रीव आदि सभी श्रेष्ठ महाबली वानर शोक में डूबे हुए खड़े थे। इस बीच श्रीराम शरीर की दृढ़ता और शक्ति मत्ता के कारण मूर्छा से जाग उठे। उस समय उन्होंने देखा कि भाई लक्ष्मण बाणों से अत्यंत घायल होकर खून से लथपथ पड़े हुए हैं। अतः वे विलाप करने लगे- हाय यदि मुझे सीता मिल भी गयी तो मैं उन्हें लेकर क्या करूँगा। मर्त्यलोक में ढूढ़ने पर मुझे सीता जैसी दूसरी स्त्री मिल सकती है पर लक्ष्मण के समान सहायक और युद्ध कुशल भाई दूसरा नहीं मिल सकता। यदि लक्ष्मण जीवित न रहे तो

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

मैं भी अपने प्राणों को त्याग दूँगा। लक्ष्मण के बिना यदि मैं अयोध्या लौटता हूँ तो माता कौशल्या और कैकेयी को क्या जवाब दूँगा। मैं यशस्वी भ्राता भरत और शत्रुघ्न को क्या कहूँगा कि लक्ष्मण मेरे साथ वन तो गये किन्तु मैंने उनको वहीं खो दिया है। दोनों भ्राताओं सहित माता सुमित्रा का उपालम्भ भी मैं नहीं सह सकूँगा। मेरे जैसे दुष्कर्मी को धिक्कार है जिसके कारण लक्ष्मण मरे हुए के समान बाण शय्या पर लेटे हैं। लक्ष्मण! जिस समय मैं अत्यंत शोक में डूब जाता था, उस समय तुम ही मुझे धैर्य बँधाते थे। अतः तुम्हीं इस बाण शय्या पर खून से लथपथ होकर पड़े हो और अस्ताचल को जाते हुए सूर्य के समान प्रकाशित हो रहे हो। बाणों से तुम्हारा मर्मस्थल विदीर्ण हो गया है इसलिए तुम बातचीत भी नहीं कर पा रहे हो। लेकिन तुम्हारे नेत्रों की लाली से तुम्हारा मार्मिक पीड़ा सूचित हो रही है। हाय! मेरे अनुरागी लक्ष्मण आज मेरी दुर्नीतियों के कारण ही हम इस अवस्था को पहुँच गये हैं। जो लक्ष्मण एक ही वेग से पाँच सौ बाणों की वर्षा करते थे वे ही लक्ष्मण आज स्वयं मारे जाकर पृथ्वी पर सो रहे हैं। मैं विभीषण को लंका का राजा नहीं बना सका यह झूठा प्रलाप भी मुझे सदा जलाता रहेगा। सुग्रीव! तुम इसी मुहूर्त में यहाँ से लौट जाओ क्योंकि मेरे बिना रावण तुम्हें असहाय समझकर तुम्हारा तिरस्कार करेगा। तुम, अंगद, नल और नील के साथ समुद्र पार करके चले जाओ। मैं गवाक्ष, जाम्बवान्, अंगद, मैन्द और द्विविद से भी बहुत संतुष्ट हूँ क्योंकि केसरी और सम्पाति के साथ इन लोगों ने भी युद्ध में घोर पराक्रम दिखलाया लेकिन सुग्रीव! मनुष्यों के लिए दैव का विधान लाँघना असम्भव है। तुम्हारे द्वारा मेरे लिए जितना भी किया जा सकता था वह सब तुमने किया। पर, अब मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम सब जहाँ इच्छा हो चले जाओ। तब भगवान् श्रीराम का यह विलाप भूरी आँख वाले जिन-जिन वानरों ने सुना वे सब नेत्रों से आँसू बहाने लगे। तदनन्तर हाथ में गदा लिए वे उस स्थान पर आये जहाँ श्रीराम चन्द्रजी विद्यमान थे। लेकिन वहाँ विभीषण को इन्द्रजित् समझकर सारे वानर फिर इधर उधर भागने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

Mookerji sharmá (I F S) Jammu Collection

पचासवाँ सर्ग

विभीषण को इन्द्रजित् समझकर वानरों का पलायन

उस समय वानर राज सुग्रीव ने पूछा- वानरो! जैसे जल में बवन्डर की मारी हुई नौका डगमगाने लगती है उसी प्रकार हमारी यह सेना व्यथित हो उठी है। इसका क्या कारण है? यह सुनकर अंगद ने कहा- देखते नहीं दशरथ कुमारों की क्या दशा हो रही है। तब सुग्रीव ने कहा- बेटा! यह भगदड़ किसी न किसी भय के कारण हुई है। सहसा इसी बीच विभीषण हाथ में गदा लिए वहाँ आ गये और उन्होंने विजय सूचक आशीर्वाद देकर सुग्रीव तथा श्रीराम के अभ्युदय की कामना की। तब सुग्रीव ने समझ लिया कि वानरों को भयभीत करने वाले विभीषण ही हैं। यह देखकर सुग्रीव ने जाम्बवान् से कहा- विभीषण को इन्द्रजित् समझकर वानरों में बड़ा भय समा गया है। अब तुम जाकर शीघ्र सबको यह बताओ कि यह इन्द्रजित् नहीं विभीषण आये हैं। ऐसा कहकर तुम पलायित होते हुए वानरों को रोको। सुग्रीव के ऐसा कहने पर जाम्बवान् ने सभी वानरों को सान्त्वना दी जिससे वे सबके सब फिर लौट आये। तत्पश्चात् श्रीराम और लक्ष्मण के शरीर को बाणों से व्याप्त हुआ देख धर्मात्मा विभीषण को उस समय बड़ी व्यथा हुई। फिर वे रोते हुए बोले- हाय, जिसे युद्ध अधिक प्रिय था और जो बल विक्रम से समान थे वे ही दोनों भाई राक्षसों द्वारा इस अवस्था को पहुँचा दिये गये। इस युद्ध में उस दुरात्मा कुटिल ने अपनी राक्षसी बुद्धि के द्वारा इन दोनों के साथ धोखा किया। जिनके बल पराक्रम का आश्रय ले मैंने लंका के राज्य पर प्रतिष्ठित होने की अभिलाषा की थी वे दोनों ही देह त्याग करने हेतु सोये हुए हैं। रावण ने सीता को न लौटाने की जो प्रतिज्ञा की थी आज उसके पुत्र के द्वारा वह पूर्ण हो गयी। तब उन्हें सुग्रीव ने समझाया धर्मज्ञ! तुम्हें लंका का राज्य प्राप्त होगा। पुत्र सहित रावण अपनी कामना कदापि पूरी नहीं कर सकेगा। मूर्छा त्यागते ही श्रीराम और लक्ष्मण सारे राक्षसों सहित रावण का बध करेंगे। विभीषण से इतना कहकर सुग्रीव ने बगल में खड़े हुए अपने श्वसुर सुषेण से कहा- आप होश आने पर इन दोनों राजकुमारों को लेकर किष्किंधा चले जाइये। मैं रावण को बन्धु-बान्धवों सहित मार कर सीता को उसी प्रकार छीनं लाऊँगा जैसे देवराज इन्द्र अपनी खोयी हुई राज्य लक्ष्मी दैत्यों के यहाँ से हर लाये थे।

Mookerji sharma (m) Jammu Collection

सुग्रीव की यह बात सुनकर सुषेण ने कहा- पूर्वकाल में जो देवासुर संग्राम हुआ था उसे मैंने देखा था। उस समय दानवों ने दैत्यों को बार-बार अपने बाणों से घायल कर दिया था। उस समय उनकी रक्षा के लिए वृहस्पति जी मंत्र युक्त विद्याओं से और दिव्य औषधियों द्वारा उनकी चिकित्सा करते थे। मेरी राय में सम्पाति और पनस आदि वानर शीघ्र ही क्षीर सागर के तट पर जायें। सम्पाति आदि वानर वहाँ पर्वत पर प्रतिष्ठित हुई दो प्रसिद्ध महौषधियों को जानते हैं उनमें से एक का नाम है संजीव करणी और दूसरे का नाम है विशल्य करणी। इन दोनों दिव्य औषधियों का निर्माण साक्षात् ब्रह्माजी ने किया है। उसी क्षीर सागर के तट पर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वत हैं जहाँ पूर्वकाल में अमृत का मंथन किया गया था। उन्हीं दोनों पर्वतों पर वे श्रेष्ठ औषधियाँ विद्यमान हैं। महासागर में देवताओं ने ही उन दोनों पर्वतों को प्रतिष्ठित किया है। राजन्! ये वायु पुत्र हनुमान उन दिव्य औधधियों को लाने के लिए वहाँ जायें। इन औषधियों के लाने की बात चल ही रही थी कि बड़े जोर से वायु प्रकट हुई। मेघों की घटा घिर आयी और बिजलियाँ चमकने लगी। वायु सागर के जल में हलचल मचाकर पर्वतों को कम्पित करने लगीं और सारे द्वीपों के बड़े-बड़े वृक्षों की डालियां तोड़ डाली और उन्हें लवण समुद्र के जल में गिरा दिया। तब इसी समय दो घड़ी में समस्त वानरों के प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी महाबली गरुड़ को वहाँ उपस्थित देखा। उन्हें आया देख जिन महाबली नागों ने बाण रूप में आकर उन दोनों महापुरुषाों को बांध रखा था वे सबके सब वहाँ से भाग खड़े हुए। तत्पश्चात् गरुड़ ने उन दोनों रघुवंशियों को स्पर्श करके उनका अभिनंदन किया। गरुड़जी का स्पर्श प्राप्त होते ही श्रीराम और लक्ष्मण के सारे घाव भर गये और वे वीर्य, बल, उत्साह, बुद्धि और स्मरण शक्ति से दुगुने हो गये। तब श्रीराम ने प्रसन्न होकर उनसे कहा- इन्द्रजित् के कारण हम पर जो संकट आ गया था उसे हम आपकी कृपा से लाँघ गये। इस समय मेरे पिता और पितामह के पास जाने से मेरा जितना मन प्रसन्न हो सकता था उतना ही आपको पाकर मेरा हृदय हर्ष से खिल उठा। आप बड़े रूपवान हैं। अब हम जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं? तब पक्षीराज गरुड़ मन ही मन प्रसन्न होकर बोले-काकुत्स्थ मैं आपका मित्र गरुड़ हूँ। बाहर विचरने वाला आपका प्राण हूँ। आप दोनों की सहायता के

लिए ही मैं इस समय यहाँ आया हूँ। इस समय महापराक्रमी असुर, महाबली दानव, देवता तथा गन्धर्व भी यहाँ आते तो भी वे इस सर्पाकार बंधन से आपको छुड़ाने में असमर्थ थे। क्रूरकर्मी इन्द्रजित् ने माया के बल से जिन नागरूपी बाणों का बंधन तैयार किया था। वे कद्रूप के पुत्र थे। उनके दांत तीखे होते हैं और विष भयंकर होता है। वे राक्षसी माया के प्रभाव से बाण बनकर आपके शरीर से लिपट गये थे। श्रीराम! मैं देवताओं के मुख से आप लोगों के नागपाश में बंधने का समाचार सुनकर बड़ी उतावली से यहाँ आकर बाण बंधन से आप दोनों को मुक्त किया हूँ। ये राक्षस स्वभाव से ही संग्राम में कपटपूर्वक युद्ध करनेवाले होते हैं। इसलिए रणक्षेत्र में राक्षसों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। ऐसा कहकर गरुड़ ने श्रीराम को हृदय से लगाकर कहा- रघुनंदन! अब मै यहाँ से प्रस्थान करूँगा और इसके लिए आज्ञा चाहता हूँ। मैंने जो अपने को सखा बताया है इसके लिए आपको अपने मन में कोई कौतूहल नहीं रखना चाहिए। आप युद्ध में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद इस सखा भाव को स्वयं समझ लेगें। आप अपने बाणों के बल से लंका की ऐसी दशा कर देंगे कि यहाँ केवल बालक और बूढ़े ही शेष रह जायेंगे और इस तरह रावण का संहार कर आप सीता को प्राप्त कर लेंगे। ऐसा कहकर वे वायु के समान गति से आकाश में चले गये। उस समय श्रीराम और लक्ष्मण को निरोग हुआ देखकर सभी वानर यूथपति सिंहनाद करने लगे और पहले के ही भांति वे गरजने और ताल ठोंकने लगे। फिर तो वे नाना प्रकार के वृक्ष उखाड़कर लाखों की संख्या में युद्ध के लिए खड़े हो गये। उस समय जोर-जोर से गरजते और निशाचरों को डराते हुए वे सारे वानर युद्ध की इच्छा से लंका के दरवाजे पर आ डटे। तत्पश्चात् दे अपने तुमुलनाद से सभी दिशाएं गुंजाने लगे और तब उनकी मेघों के समान गंभीर गर्जना सब ओर व्याप्त होने लगी।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

श्रीराम के बंधन मुक्त होने का पता पाकर रावण का चिंतित होना

तदनन्तर महाबली वानरों का तुमुल नाद सुनकर रावण बोला- इस

Mookerji sharma (JS) Jammu Collection

समय वानरों का यह महान कोलाहलह हो रहा है इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन सबको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ है। लेकिन वे दोनों भाई तो तीखे बाणों से बँधे हैं। इधर यह महान् हर्ष नाद भी हो रहा है। यह मेरे मन में संदेह उत्पन्न करने वाला है। अब राक्षसों तुम लोग जाकर पता लगाओ कि इन सब वानरों के हर्ष का कौन-सा कारण है। तब सभी राक्षस घबराये हुए गये और परकोटे पर चढ़कर वानर सेना की ओर देखने लगे। तत्पश्चात् जब उन लोगों को मालूम हुआ कि श्रीराम और लक्ष्मण भयंकर नागरूपी बन्धन से मुक्त होकर उठ गये हैं तब वे सब राक्षस परकोटे से उतरकर उदास मुख हो रावण के पास जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने यह सारा अप्रिय समाचार रावण को यथावत् बताया कि कुमार इन्द्रजित् ने जिन राम और लक्ष्मण को युद्धस्थल में नागरूपी बाणों के बंधन से बाँधा था वे पुनः बन्धन से मुक्त होकर समराङ्गण में खड़े दिखायी देते हैं। यह सुनकर रावण का चेहरा उतर गया और वह मन ही मन सोचने लगा- ये वरदान स्वरूप प्राप्त हुए बाणों के द्वारा इन्द्रजित् ने जिन दोनों शत्रुओं को बाँध दिया था उन्हें पुनः बन्धन मुक्त देखकर मेरा मन अपनी सारी सेना के लिए शंसय ग्रस्त हो रहा है। ऐसा सोचकर रावण फुफकारते हुए साँप के समान जोर-जोर से सांस लेता हुआ धूम्राक्ष नामक निशाचर से बोला- वीर ! तुम राक्षसों की बहुत बड़ी सेना लेकर राम के बध के लिए शीघ्र जाओ। तब धूम्राक्ष राजभवन से बाहर निकलकर सेनापति से बोला- अपनी सेना को शीघ्रता से तैयार करो। यह सुनकर सेनापति ने भारी संख्या में सेना को तैयार कर दिया। उस समय वे भयानक निशाचर अस्त्र से लैस होकर धूम्राक्ष को घेर कर खड़े हो गये। वे सब के सब कवच धारण किये हुए थे और शीघ्रगामी घोड़ों तथा मदमस्त हाथियों पर सवार हो दुर्जय बाघों के समान युद्ध के लिए बाहर निकले। इस प्रकार बहुत से राक्षसों के साथ महारथी धूम्राक्ष हँसता हुआ पश्चिम द्वार से जहाँ हनुमानजी शत्रु का सामना करने के लिए खड़े थे युद्ध के लिए निकला। उस समय गदहों से जुते और गदहों ही सी आवाज करने वाले श्रेष्ठ रथ पर बैठकर उसे युद्ध के लिए जाते देख आकाशचारी क्रूर पक्षियों ने अशुभ सूचक बोली बोल कर उसे आगे बढ़ने से मना किया। उसके रथ के ऊपरी भाग पर एक महाभयानक गीध आ गिरा। ध्वज के अग्र भाग पर बहुत से मुर्दाखोर पक्षी परस्पर गुंथे हुए से गिर

पड़े। एक श्वेत धड़ खून से लथपथ हो धूम्राक्ष के पास गिरा। बादल खून की वर्षा करने लगे और पृथ्वी डोलने लगी। इन भयंकर उत्पातों को देखकर धूम्राक्ष व्यथित हो और नगर के बाहर निकल कर श्रीराम चन्द्र के बाहुबल से सुरक्षित इस विशाल वानरी सेना को देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५१)

बावनवाँ सर्ग

धूम्राक्ष का हनुमानजी के द्वारा बध

उस पराक्रमी धूम्राक्ष को निकलते देख युद्ध की इच्छा रखनेवाले समस्त वानर हर्ष से सिंहनाद करने लगे। उस समय वानरों और राक्षसों में भयानक युद्ध छिड़ गया। वे वृक्षों, शूलों तथा मुद्गरों से एक दूसरे को चोट पहुँचाने लगे। राक्षसों ने वानरों को काटना आरम्भ किया तथा वानरों ने भी राक्षसों को वृक्षों से मार-मार कर धराशायी कर दिया। उस समय वानरों का वेग बड़ा भयंकर था। वे जोर-जोर से गर्जना करते हुए जहाँ तहाँ वीर राक्षसों को पटक पटक कर मथने लगे और अपने नामों की भी घोषणा करने लगे। नाना प्रकार के शिलाओं और बहुत-सी शाखावाले वृक्षों के प्रहार से वहाँ वानरों और राक्षसों का घोर एवं अद्भुत युद्ध होने लगा। इस युद्ध में वानरों ने असंख्य राक्षसों को मसल डाला। जिससे कितने ही राक्षस रक्त का वमन करने लगे। उनमें कुछ राक्षसों की पसलियाँ फाड़ डाली गयीं और कितनों का पत्थरों द्वारा चूर्ण बना दिया गया। वानरों के चलाये हुए पर्वत शिखरों से बहुत से राक्षस कुचल डाले गये। पर्वताकार हाथियों, घोड़ों और घुड़सवारों से वह सारी रण-भूमि पट गयी। वेगशाली वानर उछल-उछल कर राक्षसों का मुख पंजों से नोच लेते तब उनके बाल सब ओर बिखर जाते और वे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते। उन राक्षसों का बहुत से अत्यंत वेगशाली वानरों ने लातों, मुक्कों, दाँतों और वृक्षों की मार से कचूमर निकाल दिया। अपनी सेना को वानरों द्वारा भगायी गयी देखकर धूम्राक्ष ने क्रोध में भरकर वानर सेना का संहार करना आरम्भ कर दिया। उस समय कितने ही वानर राक्षस द्वारा मारे जाने पर खून से लथपथ हो पृथ्वी पर सो गये और कितने ही खदेड़े जाने

पर कहीं भाग कर छिप गये। कितनों के हृदय विदीर्ण कर धूम्राक्ष ने उनकी आँतें बाहर निकाल दीं। वानरों और राक्षसों का वह युद्ध बड़ा ही भयानक दिखलायी पड़ रहा था। इस प्रकार धनुष हाथ में लिए धूम्राक्ष युद्ध के मुँहाने पर बाणों की वर्षा करके वानरों को हँसते-हँसते चारों ओर मार भगाया। तब धूम्राक्ष की मार से अपनी सेना को पीड़ित होता हुआ देखकर हनुमान जी अत्यंत कुपित हो उठे और एक विशाल शिला हाथ में लेकर उसके सामने आये और उस शिला को धूम्राक्ष के रथ पर दे मारा। उस शिला को रथ की ओर आते हुए देखकर धूम्राक्ष हड़बड़ी में अपनी गदा लेकर रथ से पृथ्वी पर कूद पड़ा। उस समय वह शिला पहिये, कूबर, अश्व और ध्वज सहित उसके रथ को चूर-चूर करके पृथ्वी पर गिर पड़ी। इस प्रकार धूम्राक्ष के रथ को चौपट कर हनुमानजा ने वृक्षों द्वारा राक्षसों का संहार करना आरम्भ किया। इससे बहुतेरे राक्षसों के सिर फट गये और वे रक्त से नहाते हुए धरती पर लेट गये। फिर हनुमानजी ने एक पर्वत का शिखर उठा लिया और धूम्राक्ष पर धावा किया। धूम्राक्ष भी गदा उठाकर हनुमानजी की ओर दौड़ पड़ा। अब धूम्राक्ष ने कुपित हो हनुमानजी के मस्तक पर अपनी काँटों से भरी हुई गदा दे मारी। उस समय हनुमानजी ने इस प्रहार को कुछ भी नहीं समझा और धूम्राक्ष के मस्तक पर वह पर्वत शिखर चला दिया। इस चोट से धूम्राक्ष के सारे अंग छिन्न-भिन्न हो गये और वह बिखरे हुए पर्वतों की भाँति सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर तो बचे हुए निशाचर भी वानरों की मार खाते हुए लंका में घुस गये। इस प्रकार शत्रुओं को मार कर हनुमानजी युद्ध जनित परिश्रम से थक गये तथापि वानरों द्वारा प्रशंसित होने पर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५२)

तिरपनवाँ सर्ग

बज्रदंष्ट्र का सेना सहित युद्ध के लिए प्रस्थान

धूम्राक्ष के मारे जाने का समाचार सुनकर राक्षस राज रावण को बड़ा क्रोध हुआ। अब वह लंबी-लंबी साँस लेता हुआ क्रूर निशाचर बज्रदंष्ट्र से बोला- वीर! तुम राक्षसों की सेना के साथ जाओ और राम तथा सुग्रीव को

मार डालो। वह मायावी राक्षस बहुत अच्छा कहकर बहुत बड़ी सेना के साथ युद्ध के लिए चल पड़ा। उस समय बहुत से सेनाध्यक्ष उसके साथ चल रहे थे। उनके हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र शोभा पा रहे थे। विचित्र वस्त्र धारण करने वाले राक्षस भी अपने तेज से उद्भासित हो रहे थे। हाथों में तोमर, अंकुश धारण करने वाले महावत जिनकी गर्दन पर सवार थे वे हाथी भी युद्ध के लिए आगे बढ़े। बहुत से शूर-वीर सैनिक घोड़ों पर भी सवार थे। उस समय युद्ध के लिए जाती हुई वह सेना वर्षाकाल में गरजते हुए बिजलियों सहित मेघ के समान शोभा पा रही थी। तत्पश्चात् वह सेना लंका के दक्षिण द्वार से निकली जहाँ वानर यूथपति अंगद राह रोके हुए खड़े थे। राक्षसों के उधर से निकलते ही अनेकों अपशकुन होने लगे। मेघ रहित आकाश से उलकापात होने लगा। भयानक गीदड़ मुँह से आग की ज्वाला उगलते हुए चिल्लाने लगे। डरावने पशु ऐसी बोली बोलते थे जिससे राक्षसों के संहार की सूचना मिल रही थी। उस समय सारे योद्धा भी लड़खड़ा कर गिर पड़ते थे। इन अशुभ सूचक लक्षणों को देखकर भी बज्रदंष्ट्र ने अपना धैर्य नहीं छोड़ा और युद्ध के प्रति अपनी उत्सुकता बनाये रखा। उन राक्षसों को आते हुए देख, वानरों ने भी जोर-जोर से गर्जना की और युद्ध के लिए निकल पड़े। तदनन्तर वानरों और राक्षसों का युगल युद्ध छिड़ गया। दोनों दलों के योद्धा एक दूसरे का बध कर देना चाहते थे। उस युद्ध में प्रयोग होने वाले वृक्षों, शस्त्रों और शिलाओं का महान घोर शब्द जब कानों में पड़ता तो हृदय फटने लगता था। उस समय कुछ योद्धा अपने हथियार फेंक कर मल्ल युद्ध करने लगते थे। फिर तो थप्पड़ों, लातों, मुक्कों की मार खा-खाकर कितने ही राक्षसों के शरीर चूर-चूर हो गये। वानरों ने शिलाओं के प्रहार से कितने ही राक्षसों का चूरा बना दिया था। ऐसे समय में बज्रदंष्ट्र भी वानरों को अत्यंत भयभीत करता हुआ तीनों लोकों के संहार के लिए यमराज के समान रणभूमि में विचरने लगा। साथ ही नाना प्रकार के अस्त्र लिए हुए भयंकर राक्षस भी वानर सेना का रणभूमि में संहार करने लगे। यह देखकर अंगद दूने क्रोध से भर गये। उनकी आँखें क्रोध से लाल होने लगीं। फिर तो उन्होंने एक वृक्ष उठाकर राक्षस गणों का संहार किया। तत्पश्चात् अंगद की मार खाकर कितने ही पराक्रमी राक्षसों के सिर कट गये और वे वृक्षों के समान

पृथ्वी पर गिरने लगे। अंगद के वेग से वह विशाल राक्षस सेना उसी तरह कांपने लगी जैसे वायु के वेग से मेघ कम्पित हो उठता है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

बज्रदंष्ट्र और अंगद का युद्ध

अंगद के पराक्रम से अपनी सेना संहार होते देख महाबली राक्षस बज्रदंष्ट्र अत्यंत कुपित हो उठा। तब वह अपना भयंकर धनुष खींच कर वानरों की सेना पर बाणों की वर्षा करने लगा। इसके साथ ही अन्य प्रधान शूरवीर राक्षस भी तेजी से युद्ध करने लगे। वानरों में भी जितने शूरवीर थे हाथों में शिलायें लिए हुए जूझने लगे। उस समय राक्षसों और वानरों ने एक दूसरे पर अस्त्र शस्त्र की वर्षा आरम्भ कर दी। इस युद्ध में किसी के सिर कटे तो किसी के हाथ पैर कट गये। बहुत से योद्धा तो शस्त्रों के आघात लगने के कारण खून से नहा उठे। उस समय वानर और राक्षस दोनों दलों के लोग धराशायी हो रहे थे। तत्पश्चात् कुछ देर बाद वानर सैनिकों के प्रहारों से पीड़ित हो- सारी निशाचर सेना बज्रदंष्ट्र के देखते-देखते भाग चली। यह देखकर बज्रदंष्ट्र की आंखें क्रोध से लाल हो गयीं और वह वानरों की सेना को भयभीत करता हुआ उसके भीतर घुस गया और अपने बाणों से शत्रुओं को विदीर्ण करने लगा। वह अपने प्रहारों से आठ नौ वानरों को एक साथ घायल कर देता। यह देखकर सभी वानर अंगद की शरण में आये। वानरों को अंगद की शरण में जाते देख बज्रदंष्ट्र ने अग्नि शिखा के समान एक लाख तेजस्वी बाण अंगद के मर्म स्थानों में मारे। इससे अंगद के सारे अंग ही लहूलुहान हो गये। यह देखकर महाबली अंगद ने भी बज्रदंष्ट्र पर एक वृक्ष चलाया। तब बज्रदंष्ट्र ने अपने बाणों से उसके दो टुकड़े कर दिये। यह देखकर अंगद ने कुपित होकर एक विशाल चट्टान उठाई और उसे बज्रदंष्ट्र के ऊपर दे मारा। उस समय बज्रदंष्ट्र भी रथ से कूद कर पृथ्वी पर खड़ा हो गया। उधर- अंगद की फेंकी हुई चट्टान ने उसके रथ को घोड़ों सहित चूर-चूर कर डाला। तत्पश्चात् अंगद ने वृक्षों से भरा हुआ एक दूसरा विशाल शिखर हाथ में

लेकर बज्रदंष्ट्र के मस्तक पर दे मारा। इस चोट से वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। तदनन्तर होश में आने पर उस निशाचर ने कुपित होअंगदकी छाती पर गदा से प्रहार किया। फिर गदा त्याग कर वे एक-दूसरे को मुक्कों से मारने लगे। अंत में आपस के प्रहारों से वे दोनों थक गये और मुंह से खून का वमन करने लगे। तब अंगद ने बज्रदंष्ट्र पर प्रहार करने के लिए एक वक्ष उखाड़ लिया। उधर बज्रदंष्ट्र ने भी ऋषभ के चर्म की बनी हुई ढाल और एक विशाल तलवार ले ली। तब एक दूसरे पर वेग से चोट करने के कारण दोनों के घाव हो गये और उनसे रक्त की धारा बहने लगी। लड़ते-लड़ते थक जाने के कारण दोनों ने ही पृथ्वी पर घुटने टेक दिये। किन्तु इधर अंगद पलक मारते मारते उठ कर खड़े हो गये। वे डंडे खाये हुए सर्प के समान उत्तेजित हो रहे थे। इस समय उनके नेत्र रोष से उदीप्त हो उठे थे और उन्होंने तत्काल अपनी निर्मल और तेज धार वाली हथियार से बज्रदंष्ट्र का मस्तक काट डाला। वज्रदंष्ट्र को मरा हुआ देखकर कुछ राक्षस भय से अचेत हों गये और शेष भय के मारे लंका की ओर भाग गये।

इस प्रकार वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५४)

पचपनवाँ सर्ग

रावण की आज्ञा से अकम्पन आदि राक्षसों का युद्ध में आना

बाली पुत्र अंगद के हाथ से बज्रदंष्ट्र के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण ने विनय पूर्वक अपने पास खड़े सेनापति प्रहस्त से कहा-अकम्पन सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों के ज्ञाता हैं अतः उन्हीं को श्रीराम और लक्ष्मण को परास्त करने के लिए भेजा जाये। इसमें संदेह नहीं कि वे राम लक्ष्मण के साथ ही अन्य वीर वानरों का भी संहार कर डालेंगे। तब रावण की उस आज्ञा को शिरोधार्य करके महाबली सेनाध्यक्ष ने अकम्पन को एक विशाल सेना के साथ युद्ध के लिए भेज दिया। महासमर में देवता भी उसे कम्पित नहीं कर सकते थे। इसलिए वह अकम्पन नाम से विख्यात था। यद्यपि अकम्पन युद्ध चाहनेवाला था फिर भी उस समय उसकी बायीं आंख फड़कने लगीं और वह शुभ दिन भी सूखी हवा चलने कारण दुर्दिन में बदल गया। अकम्पन के कंधे सिंह के

समान शक्तिशाली थे और उसका पराक्रम बाध के समान था। इसलिए वह पूर्व उत्पातों की परवाह न करके रण-भूमि की ओर चल पड़ा। इधर वानरों की सेना भी युद्ध के लिए उद्यत थी। उस समय राक्षसों की सेना आती देख वे सब उन पर गर्जते हुए टूट पड़े। उनका महान शब्द दूर-दूर तक सुनायी पड़ने लगा। वानरों और राक्षसों द्वारा उड़ायी गयी लाल रंग की धूल बड़ी भयंकर जान पड़ती थी। उसने दसों दिशाओं को आच्छादित कर दिया था। उसके द्वारा समरांगण के समस्त प्राणी ढंक गये थे। अतः वानर और राक्षस एक दूसरे को देख नहीं पाते थे। उन गर्जते और दौड़ते हुए प्राणियों का वहाँ भयंकर शब्द सबको सुनाई पड़ता था परन्तु उनके रूप नहीं दिखायी देते थे। उस समय कुपित हुए वानर वानरों पर ही प्रहार कर बैठते थे तथा राक्षस राक्षसों को ही मारने लगते थे। तदनन्तर उनके शरीर से रक्त बहने के कारण वहाँ की धूल बैठ गयी तथा युद्ध भूमि लाशों से भर गयी। तत्पश्चात् भयंकर कर्म करने वाले वानर अपनी परिधि के समान भुजाओं द्वारा पर्वताकार राक्षसों के साथ युद्ध करते हुए रणभूमि में उन्हें मारने लगे। तब राक्षस भी कुपित हो भयंकर शस्त्रों द्वारा वानरों का बध करने लगे। इसी समय वीर वानर कुमुद, नल और मैन्द तथा द्विविद कुपित हो-अपना परम उत्तम शौर्य प्रकट करने लगे। उन लोगों ने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों द्वारा राक्षसों को भली-भाँति मथ डाला।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्ध काण्ड में पचपनवाँ सर्ग पुरा हुआ (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

हनुमानजी के द्वारा अकम्पन का बध

उन वानरशिरोमणियों द्वारा किये गये उस महान पराक्रम को देखकर युद्ध में अकम्पन को बड़ा क्रोध आया। तब वह अपने उत्तम धनुष को हिलाता हुआ अपने सारथी से बोला- सारथे! ये वानर युद्ध में बहुतेरे राक्षसों का बध कर रहे हैं। अतः पहले शीघ्रतापूर्वक मेरा रथ वहीं पहुँचाओ। ये वानर बलवान तो हैं हीं इनका क्रोध भी बड़ा भयानक है। अतः मैं इन सबका बध करना चाहता हूँ। तदनन्तर तेज चलनेवाले घोड़ों से जुते हुए रथ के द्वारा

अकम्पन दूर से ही बाणों की वर्षा करता हुआ उन वानरों पर टूट पड़ा। तत्पश्चात् अकम्पन के बाणों से घायल होकर सभी वानर भाग चले। अकम्पन के बाण वानरों के पीछे लगे थे और वे मृत्यु के अधीन हो जाते थे। तब अपने जातिभाइयों की दुर्दशा देखकर हनुमानजी अकम्पन के निकट आये। उन्हें आया देखकर वे सभी श्रेष्ठ वानर शिरोमणि एकत्र हो उन्हें चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। पर्वत के समान विशालकाय हनुमानजी को अपने सामने उपस्थित देखकर अकम्पन उन पर बाणों की वर्षा करने लगा। उस समय हनुमानजी ने अकम्पन को मार डालने का निश्चय किया और महान अट्टहास करके पृथ्वी को कंपाते हुए उस राक्षस की ओर दौड़े। उस समय उनके हाथ में हथियार न था इसलिए उन्होंने एक पर्वत को उखाड़ लिया और बड़े जोर से गर्जना करते हुए उसे घुमाने लगे फिर उन्होंने अकम्पन पर धावा किया। तब अकम्पन ने उस उठे हुए पर्वत शिखर को अपने बाणों के द्वारा दूर से ही विदीर्ण कर डाला। यह देख हनुमानजी अश्वकर्ण नामक वृक्ष के पास जाकर उसे शीघ्रता पूर्वक उखाड़ कर युद्ध भूमि में घुमाना आरम्भ किया। इस तरह वे पृथ्वी को विदीर्ण करते हुए अनेक राक्षसों को मौत के घाट उतारने लगे। उस समय अकम्पन ने जब हनुमानजी को ऐसा करते देखा तो वह क्रोध से भरकर जोर जोर से गर्जना करने लगा फिर अपने चौदह पैने बाणों को मारकर उसने हनुमानजी को घायल कर दिया। इस प्रकार नारचों से छिपे हुए तीर हनुमान वृक्षों से व्याप्त पर्वतों के समान दिखाई देते थे। तदनन्तर पूरे वेग से हनुमानजी ने एक दूसरा वृक्ष उखाड़ लिया और तुरंत ही उसे राक्षस राज अकम्पन के सिर पर दे मारा। तब हनुमानजी के द्वारा चलाये हुए उस वृक्ष की गहरी चोट खाकर राक्षस अकम्पन पृथ्वी पर गिर पड़ा और मर गया। अकम्पन को मरा हुआ देखकर सभी राक्षस भय से कंपित हो उठे और अपना अस्त्र शस्त्र फेंक कर डर के मारे लंका की ओर भाग गये। उनके केश खुले हुए थे और भय के कारण अनके अंगों से पसीने चू रहे थे। भय से एक दूसरे को कुचलते हुए वे भागकर लंकापुरी में घुस गये। उन राक्षसों के भाग जाने के पश्चात् समस्त महाबली वानरों ने एकत्र हो वहाँ हनुमानजी का अभिनंदन किया। तत्पश्चात् विजयोल्लास से सुशोभित होनेवाले वानरों ने पूरा बल लगाकर उच्च स्वर से गर्जना की और वहाँ

जीवित राक्षसों को पकड़ पकड़कर घसीटना शुरु किया तथा उन्हें मौत के घाट उतार दिया। उस समय देवताओं ने तथा श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण आदि ने कपिवर हनुमानजी का यथोचित सम्मान किया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्ध काण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पुरा हुआ (५६)

सत्तावनवाँ सर्ग

प्रहस्त का रावण की आज्ञा से विशाल सेना सहित युद्ध के लिए प्रस्थान

अकम्पन के बध का समाचार सुनते ही रावण के मुख पर उदासीनता छा गयी और वह मंत्रियों की ओर देखने लगा। फिर उनके साथ विचार कर वह स्वयं लंका के सभी मोरचों का निरीक्षण करने के लिए गया। राक्षसों से सुरक्षित उस नगरी को राजा रावण ने अच्छी तरह देखा। अब यह देखकर कि लंकापुरी शत्रुओं के द्वारा चारों ओर से घेर ली गयी है उसने अपने हितैषी युद्ध कला कोविद प्रहस्त से कहा- वीर ! नगर के अत्यंत निकट शत्रु की सेना छावनी डाले पड़ी है। इसलिए सारा नगर व्यथित हो उठा है। अब तो इस तरह के युद्ध का भार मैं, कुंभकर्ण, मेरे सेनापति तुम, बेटा इन्द्रजित् या निकुंभ ही उठा सकते हैं। अतः तुम शीघ्र ही सेना लेकर युद्ध के लिए प्रस्थान करो। वानर बड़े चंचल, ढीठ और डरपोक होते हैं। जैसे हाथी सिंह की गर्जना नहीं सह सकते वैसे ही ये वानर भी तुम्हारा सिंहनाद नहीं सह सकेगें और वे युद्ध का मैदान छोड़ कर भाग खड़े होंगे। तब कोई सहारा न होने के कारण श्रीराम और लक्ष्मण तुम्हारे अधीन हो जायेंगे। यद्यपि युद्ध में मृत्यु भी हो सकती है किन्तु ऐसी मृत्यु श्रेष्ठ है। मेरा तो यही विचार है अब तुम जो अच्छा समझते हो उसे बताओ। रावण के ऐसा कहने पर प्रहस्त बोल उठा- राजन्! मेरा पहले से यह निश्चय रहा है कि सीताजी को लौटा देने से ही हम लोगों का कल्याण होगा। न लौटाने पर युद्ध अवश्य करना होगा। उसके अनुसार ही हमें युद्ध का यह संकट दिखाई पड़ रहा है। किन्तु चूंकि आपने समय-समय पर सदा ही मेरा कल्याण किया है फिर मैं आपका हित साधन क्यों न करूँगा। मुझे अपने जीवन, स्त्री, पुत्र, धन आदि की रक्षा की भी चिंता नहीं इसलिए

अब आप देखिएगा कि मैं किस तरह आपके लिए युद्ध की ज्वाला में अपने जीवन की आहुति देता हूँ। अपने स्वामी रावण से ऐसा कहकर उसने अपने सामने खड़े सेनाध्यक्षों से कहा, तुम लोग शीघ्र राक्षसों की विशाल सेना ले आओ और समरांगण में मेरे बाणों से मारे गये वानरों का मांस खाकर तृप्त हो जाओ। तब महाबली सेनाध्यक्षों ने यह बात सुनकर रावण के महल के पास एक विशाल सेना युद्ध के लिए तैयार की। उस समय राक्षसों ने मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित नाना प्रकार की मालाएं ग्रहण कीं और उत्साह के युद्धपयोगी वेश भूषा धारण की। तब धनुष और कवच धरण किये हुए वे राक्षस वेग से उछलते हुए रावण का दर्शन कर प्रहस्त को घेरकर खड़े हो गये। तदनन्तर प्रहस्त भेरी बजवाकर युद्ध के लिए सुसज्जित रथ पर आरूढ़ हुआ उन वेगशाली घोड़ों से जुते हुए रथ पर बैठकर विशाल सेना से घिरा हुआ प्रहस्त तुरंत लंका के बाहर निकला। उसके निकलते ही मेघ की गंभीर गर्जना के समान धौंसा बजने लगा। सेनापति के प्रस्थान काल में शंखों की ध्वनि भी सुनायी दी। उस समय नरांतक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत प्रहस्त को चरों ओर से घेरे हुए निकले। प्रहस्त की वह विशाल सेना अत्यंत भयंकर जान पड़ती थी। उसकी व्यूह रचना हो चुकी थी और प्रहस्त उस व्यूह बद्ध सेना के साथ लंका के पूर्व द्वार से निकला। उस समय क्रोध से भरा हुआ प्रहस्त संहारकारी यमराज के समान दिखाई पड़ता था। उसके साथ ही आकाश में, मांस का भक्षण करनेवाले पक्षी, प्रहस्त के रथ के दक्षिणावत परिक्रमा करने लगे। गीदड़ियां मुख से ज्वाला उगलती हुई अशुभ सूचक बोलियां बोलने लगीं। ग्रह रोष पूर्वक आपस में युद्ध करने लगे जिससे उनका प्रकाश मंद पड़ गया। प्रहस्त के ध्वज के ऊपर गीध दक्षिण की ओर मुंह करके आ बैठा। संग्राम भूमि में प्रवेश करते समय सारथी के हाथ से कई बार चाबुक गिर पड़ा। उसके घोड़े भी लड़खड़ाकर गिरने लगे। प्रहस्त के युद्ध भूमि में उपस्थित होते हीतमाम साधनों से सम्पन्न वानर सेना भी उसका सामना करने लिए आ गयी। तब एक ओर राक्षस सिंह नाद करते तो दूसरी ओर वानरों की गर्जन सुनायी देती। वे एक दूसरे के बध करने की इच्छा से परस्पर ललकार रहे थे। उनका महान् कोलाहल सबको सुनायी देता था। इसी समय प्रहस्त विजय की अभिलाषा से वानर राज सुग्रीव की वेगवाली उस वानर सेना में घुसने

की चेष्टा करने लगा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

नील के द्वारा प्रहस्त का बध

प्रहस्त को लंका के बाहर निकलते देख श्रीराम ने विभीषण से मुस्कराकर कहा-महाबाहो! यह बड़े शरीर तथा महान् वेगवाला कौन योद्धा आ रहा है? मुझे इसका परिचय दो। तब विभीषण बोले- प्रभो! इस राक्षस का नाम प्रहस्त है। यह रावण का सेनापति है और इसका पराक्रम जग विख्यात है। उसी समय वानरों की सेना ने भी बहुसंख्यक राक्षसों से घिरा हुआ उस प्रहस्त को लंका से बाहर निकलते देखा। अतः उसे देखते ही वानरों की सेना में भी हलचल होने लगी और वे प्रहस्त की ओर देख-देखकर गरजने लगे। तब राक्षस भी विजय की इच्छा से उनकी ओर दौड़ पड़े। उनके हाथ नाना प्रकार के अस्त्रों से सुशोभित हो रहे थे। उन्हें देखकर वानरों ने भी युद्ध की इच्छा से खिले हुए वृक्ष, बड़े-बड़े पत्थर तथा पर्वत उठा लिये। उस युद्ध में वानरों ने बहुत से राक्षसों का संहार कर डाला। उस समय राक्षसों ने भी बहुतेरे वानरों का बध कर डाला। तब क्रोधित हुए वानरों के बज्रतुल्य कठोर थप्पड़ों और मुक्कों से भली-भाँति पीटे गये राक्षस मुँह से रक्त वमन करने लगे तथा उनके नेत्र और दाँत छिन्न-भिन्न होकर बिखर गये। क्रोध से भरे हुए राक्षस और वानर वीरोचित मार्ग का अनुसरण करके युद्ध में पीठ नहीं दिखाते थे। वे मुँह बा-बा कर निर्भय के समान क्रूरतापूर्ण कर्म करते थे। उस समय प्रहस्त के सामने नरान्तक कुम्भ हनु, महानाद और समुन्नत टूट-टूट कर वानरों का बध करने लगे। तभी द्विविद ने एक पर्वत शिखर जल्दी से उठाकर नरान्तक को मार डाला। उसी तरह दुर्मुख ने एक वृक्ष फेंककर समुन्नत को कुचल डाला। तत्पश्चात् अत्यंत कुपित हुए तेजस्वी जाम्बवान् ने एक बड़ी भारी शिला उठायी और महानाद की छाती पर दे मारी। तब केवल पराक्रमी कुम्भ हनु ही बच रहा। वह तार नामक वानर से भिड़ा और एक विशाल वृक्ष की चपेट में आकर अपना प्राण गवां बैठा। तब रथ पर बैठे हुए प्रहस्त से

वानरों का यह पराक्रम नहीं सहा गया। उसने भी हाथ में धनुष लेकर वानरों का घोर संहार आरम्भ कर दिया। उस समय पृथ्वी पर वानरों और राक्षसों की लाशों का ढेर लग गया और रणभूमि भयानक पर्वतों से ढंकी हुई-सी जान पड़ने लगी। उस समय रक्त के प्रवाह से आच्छादित वह युद्ध भूमि बैशाख माह में फूले हुए पलाश वृक्षों से ढंकी हुई-सी मालूम होती थी। उस समय युद्ध भूमि ने नदी का स्वरूप धारण कर लिया था। उस नदी के दोनों तट मारे गये वीरों की लाशें थीं। रक्त का प्रवाह उसकी महान जलराशि थी। टूटे फूटे अस्त्र तटवर्ती वृक्षों के समान जान पड़ते थे। सैनिकों के जिगर और तिल्ली उसके महान पंक थे। निकली हुई आँखें सेवार का काम करती थीं। कटे हुए धड़ और सिर उसमें मछली के समान प्रतीत होते थे। तदनन्तर नील ने देखा कि रथ पर बैठा हुआ प्रहस्त बाणों की वर्षा करके वानरों का संहार कर रहा है। तब नील भी बलपूर्वक राक्षसों की सेना का संहार करने लगे। तब प्रहस्त की सेना बुरी तरह भागने लगी। यह देखकर प्रहस्त ने कुपित होकर नील पर ही बाणों की वर्षा शुरू कर दी। प्रहस्त के पैने बाण प्रज्वलित अग्नि के समान जान पड़ते थे। उससे नील घायल हो गये। तब दुर्जय प्रहस्त को अपने ऊपर आक्रमण करते हुए देखकर महाकपि नील ने एक वृक्ष उखाड़कर उसी से प्रहस्त पर आघात किया। उस समय प्रहस्त भी गरजता हुआ नील पर वेग से बाणों की वर्षा करने लगा। किन्तु नील आँख बंद करके उन बाणों के आघात उसी प्रकार सहने लगे जैसे सांड सहसा आयी शरद ऋतु की वर्षा को अपने शरीर पर सह लेता है। तदनन्तर इससे कुपित हो नील ने एक विशाल वृक्ष के द्वारा उसके घोड़े को मार डाला। फिर उस दुरात्मा के धनुष को भी वेगपूर्वक तोड़ डाला। तब नील के द्वारा धनुष रहित किये जाने पर प्रहस्त एक भयानक मुसल अपने हाथ में लेकर रथ से कूद पड़ा और आपस में लड़ते हुए एक दूसरे के अंगों को घायल करने लगे। वे उस समय वृत्तासुर और इन्द्र के समान युद्ध में विजय पाने की लालशा रखते थे। तभी प्रहस्त ने महान मुसल हाथ में लिए हुए नील के ललाट पर आघात किया। इससे उनके ललाट से रक्त की धारा बह निकली। तब नील ने भी एक विशाल वृक्ष उखाड़कर प्रहस्त की छाती पर दे मारा। किन्तु प्रहस्त उसकी कोई परवाह न करके फिर हाथ में मुसल लिए नील की ओर दौड़ पड़ा। इसी बीच नील ने एक बड़ी भारी शिला हाथ में ले

ली और उसे प्रहस्त के मस्तक पर दे मारा। इससे प्रहस्त के मस्तक के दो टुकड़े हो गये और वह कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़ा। फिर तो उसके शरीर से खून इस तरह बहने लगा जैसे पर्वत से पानी का झरना बह रहा हो। उस समय प्रहस्त की सेना युद्ध में बिल्कुल न ठहर सकी और पूरी सेना लंका को लौट गयी। फिर रावण के महल में पहुँच वह सेना चुपचाप खड़ी हो गयी। इधर महाबली नील इस काम के लिए श्रीराम और लक्ष्मण से प्रशंसित होते हुए बड़े हर्ष का अनुभव करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५८)

उनसठवाँ सर्ग

प्रहस्त के मारे जाने पर रावण का दुखी होकर स्वयं युद्ध के लिए पधारना

जब रावण को प्रहस्त के मारे जाने का समाचार मिला तो वह पहले क्रोध से तमतमा उठा किन्तु थोड़ी ही देर में उसका चित्त शोक से व्याकुल हो उठा। तब वह राक्षस सेना के मुख्य अधिकारी से बोला- शत्रुओं को छोटा समझकर कभी उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। मैं जिन्हें बहुत छोटा समझता था उन्होंने ही मेरे सेनापतियों, सेवकों और उनकी अधिकांश सेनाओं को मार गिराया है। अब मैं शत्रु पर विजय पाने के लिए युद्ध के मुहाने पर स्वयं जाऊँगा। जैसे आग वन को जला देती है उसी तरह आज मैं अपने बाणों से लक्ष्मण सहित श्रीराम को भस्म कर डालूँगा। ऐसा कहकर रावण प्रकाशमान रथ पर सवार हुआ और युद्ध के लिए प्रस्थान कर दिया। उस समय शंख, भेरी, पणव आदि बाजे बजने लगे और उसके सभी योद्धा ताल ठोंक ठोंक कर गरजने लगे। तब रावण ने उस राक्षसों की सेना के साथ लंकापुरी से निकल कर वानरों की सेना को देखा जो हाथों में पर्वत शिखर, वृक्ष आदि लिए युद्ध के लिए तैयार खड़े थे। इधर राक्षसों की इस विशाल सेना को देखकर श्रीराम ने विभीषण से पूछा- ये नाना प्रकार की ध्वजा, पताकाओं और छत्रों से सुशोभित और निडर योद्धाओं से सेवित तथा विशालकाय हाथियों से भरी हुई सेना किसकी है? तब विभीषण बोले- राजन्! यह जो महामनस्वी वीर

Mookerji sharma (UPS) Jammu Collection

हाथी की पीठ पर बैठा है और जिसका मुख नवोदित सूर्य के समान लाल रंग का है तथा जो अपने भार से हाथी के मस्तक को कंपाता हुआ आ रहा है, यह अकम्पन नाम का दूसरा राक्षस है। (हनुमानजी द्वारा मारे गये अकम्पन से यह भिन्न है।) वह जिसकी ध्वजा पर सिंह का चिह्न है, जिसके दांत हाथी के समान बाहर निकले हैं तथा जो इन्द्रधनुष के समान कान्तिमान धनुष हिलाता हुआ आ रहा है, वह इन्द्रजित् है। वह वरदान के प्रभाव से अजेय हो गया है। यह जो विन्ध्याचल की तरह विशालकाय हैं और अपने धनुष को बारम्बार खींच रहा है, अतिकाय है। इसकी काया बहुत बड़ी है। जिसके नेत्र प्रातःकाल उदित हुए सूर्य कें समान लाल हैं और जो गजराज पर सवार हो जोर-जोर से गर्जना कर रहा है वह वीर महोदर के नाम से प्रसिद्ध है, जो पर्वत की सी आभावाले और सुवर्णमय आभूषणों से विभूषित है और जो अपने भाले को हाथ में लिए हुए इधर उधर घुमा रहा है इसका नाम पिशाच है। यह बज्र के समान वेगशाली योद्धा है। जिससे बिजली की सी प्रभा छिटकती रहती है, ऐसे तीखे त्रिशूल को हाथ में लिये जो यह चन्द्रमा के समान कान्तिवाले सांड़ पर चढ़कर युद्ध भूमि में आ रहा है यह वीर त्रिशिरा है। (यह जन स्थान में मारे गये त्रिशिरा से भिन्न है।) जिसका रूप मेघ के समान काला है, जिसकी छाती उभरी हुई और सुन्दर है, जो एकाग्रचित्त से अपने धनुष को हिलाता और तेजी से आ रहा है, वह कुम्भनामक योद्धा है। जो सुवर्ण और बज्र से जटिल होने के कारण दीप्तिमान तथा इन्द्रनील मणि से मंडित होने से धूम्रयुक्त अग्नि सा प्रकाशित है तथा जिसके हाथ में परिघ है यह निकुम्भ है। यह जो धनुष, खंड और बाण समूह से भरे हुए ध्वजा, पताका से अलंकृत तथा अग्नि के समान देदीप्यमान है वह नरान्तक (रावण का पुत्र) है। यह जो बाघ, ऊँट, हाथी, हिरन और घोड़े के मुखवाले अनेक भयंकर राक्षसों से घिरा है तथा जिसके ऊपर पूर्णचन्द्रमा के समान श्वेत एवं पतली कमानी वाला सुन्दर छत्र शोभा पाता है और जो भूतों से घिरे हुए, रुद्रदेव के समान सुशोभित होता है, यही राक्षसराज महामना रावण है। यह इन्द्र और यमराज के घमण्ड को भी चूर करने वाला है। यह सुनकर श्रीराम ने विभीषण से कहा अहो! राक्षसराज रावण का तेज तो बहुत ही बढ़ा-चढ़ा और देदीप्यमान है। रावण अपनी प्रभा से सूर्य की भाँति ऐसी शोभा पा रहा है कि उसकी ओर

Mookerji shastri Trust Jammu Collection

देखना कठिन हो रहा है। तेजोमंडल से व्याप्त होने के कारण इसका मुख मुझे साफ-साफ नहीं दिखलाई पड़ रहा है। इस महाकाय राक्षस के सभी योद्धा पर्वतों के समान विशाल हैं। ये चमकीले अस्त्र लिए हुए हैं और तीखे स्वभाव वाले दिखलाई देते हैं। सौभाग्य की बात है कि रावण मेरे सामने है और सीता हरण के कारण मेरे मन में जो क्रोध है आज मैं इसके ऊपर उतारूँगा। ऐसा कहकर श्रीराम लक्ष्मण सहित युद्ध के लिए डट गये। इधर रावण भी अपने साथ आये हुए राक्षसों से बोला- तुम लोग निर्भय होकर नगर के सभी ड्योढ़ियों पर खड़े हो जाओ। इस प्रकार राक्षसों को यथा स्थान भेजकर रावण पूरी वानर सेना को विदीर्ण करने लगा। तब वानर राज सुग्रीव ने एक भारी पर्वत उखाड़ लिया और निशाचर राज रावण पर आक्रमण किया। उस शिखर को अपने ऊपर आते देख रावण ने बहुत से बाण मार कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् उस शैल शृंग के खंडित हो जाने पर रावण ने एक सर्प और यमराज के समान भयंकर बाण का संधान किया और उसे सुग्रीव के बध के लिए चलाया। उस बाण की चोट से सुग्रीव अचेत हो गये। यह देखकर सभी राक्षस हर्ष के साथ सिंहनाद करने लगे। तब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख और नल पर्वत शिखरों को उखाड़ उखाड़ कर राक्षसराज रावण पर टूट पड़े। किन्तु रावण ने उस समय सैकड़ों तीखे बाण छोड़कर उन सबके प्रहारों को व्यर्थ कर दिया। और उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया। रावण के उन तीखे बाणों से भीमकाय वानरगण घायल होकर धरती पर गिर पड़े। तब तो रावण ने और भी भयंकर बाण छोड़कर उन्हें आच्छादित कर दिया। इस समय उन बाणों से पीड़ित होकर सभी वानर धराशायी होने लगे। यह देखकर महात्मा श्रीराम सहसा धनुष लेकर आगे बढ़े। तब लक्ष्मण उनके सामने हाथ जोड़कर बोले- प्रभो! मैं ही उसके नाश करने के लिए पर्याप्त हूँ। आप मुझे आज्ञा दें। यह सुनकर राम ने आज्ञा दी- लक्ष्मण जाओ, किन्तु संग्राम में विजय पाने के लिए प्रयत्नशील रहना क्योंकि युद्ध में रावण के वेग को सहन कर पाना कठिन है। तुम युद्ध में रावण की दुर्बलता की ओर भी ध्यान रखना और उससे लाभ उठाने की चेष्टा करना। साथ ही अपनी दुर्बलताओं की ओर भी दृष्टि रखना। श्रीराम की बात सुनकर लक्ष्मण ने उनका अभिवादन किया और युद्ध के लिए चल पड़े। उस समय उन्होंने देखा

कि रावण के बाण समूह वानरों को ढंकते हुए उन्हें छिन्न-भिन्न करते जा रहे थे। तब रावण के इस पराक्रम को देखकर हनुमानजी ने रावण के रथ के निकट पहुँचकर रावण को भयभीत करते हुए कहा- राक्षस! तुमने देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों से न मारे जाने का वर तो प्राप्त कर लिया है किन्तु वानरों से तो तुम्हें भय है ही। देखो यह मेरा दाहिना हाथ उठा हुआ है, यह तुम्हारे शरीर में चिरकाल से जो जीवात्मा निवास करती है उसे आज से अलग कर देगा। हनुमानजी की बात सुनकर रावण ने क्रोध से भरकर कहा- वानर! तुम निःशंक होकर मुझ पर प्रहार करो किन्तु इतना सब होने पर भी मैं ही तुम्हारा नाश अवश्य करूँगा। इस पर हनुमानजी बोले- मैंने तुम्हारे पुत्र अक्ष को मार गिराया है इसे भी याद कर लो। हनुमान जी के इतना कहते ही रावण ने पवनकुमार की छाती पर एक तमाचा मार दिया। यद्यपि इस चोट से हनुमानजी को चक्कर आने लगा पर वे जल्दी ही सुस्थिर हो गये और उन्होंने तत्काल रावण को कसकर थप्पड़ मारा। जिससे रावण अत्यंत व्यथित हो उठा। संग्राम भूमि में रावण को थप्पड़ खाते देख सभी देवता और असुर हर्ष ध्वनि करने लगे। रावण ने तब संभलते हुए कहा- शाबाश! वास्तव में पराक्रम की दृष्टि से तुम ही मेरी बराबरी करने लायक हो। यह सुनकर पवन पुत्र हनुमान ने कहा- रावण तू अभी तक जीवित है इसलिए मेरे पराक्रम को स्वीकारता है। हनुमानजी की यह बात सुनकर रावण ने अत्यंत क्रोधित होकर अपने दाहिने मुक्के से उनकी छाती में वेगपूर्वक प्रहार किया। हनुमानजी इस चोट से पुनः विचलित हो उठे। उस समय हनुमानजी को विह्वल देखकर रावण अपने रथ के साथ शीघ्र ही नील पर जा चढ़ा। फिर उसने अपने भयंकर बाणों के द्वारा नील को भी संताप देना शुरू किया। तब नील ने भी एक ही हाथ से पर्वत का एक शिखर उठाकर राक्षसराज पर चला दिया। तब तक हनुमानजी भी सम्हल गये थे और रावण से युद्ध करने की इच्छा से उसकी ओर देखने लगे। पर उस समय उसे नील के साथ उलझे हुए देखकर उन्होंने रोषपूर्वक कहा- ओ निशाचर! इस समय तुम दूसरे के साथ युद्ध कर रहे हो अतः तुम पर धावा करना मेरे लिए उचित न होगा। इधर रावण ने नील के चलाये हुए पर्वत शिखर पर सात बाण मारे जिससे वह टूट-टूटकर पृथ्वी पर बिखर गया। तब उसे बिखरता देखकर नील क्रोध से जल

उठे और नाना प्रकार के वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर रावण पर चलाना शुरू किया। रावण ने भी तब उन वृक्षों को काट गिराया और नील पर भयंकर बाणों की वर्षा करने लगा। तब नील भी छोटा-सा रूप बनाकर रावण की ध्वजा के शिखर पर जा बैठे और जोर-जोर से गर्जना करने लगे। उस समय नील को कभी रावण की ध्वजा पर, कभी धनुष पर और कभी रावण के मुकुट पर बैठे देखा गया। यह देखकर श्रीराम, लक्ष्मण और हनुमान को बड़ा विस्मय हुआ। किन्तु रावण ने यह देखकर तुरन्त आग्नेय अस्त्र हाथ में ले लिया। तब नील की फुर्ती से रावण को घबराया हुआ देखकर वानर बड़ी प्रसन्नता से किलकारियाँ भरने लगे। रावण को यह देखकर बड़ी घबराहट होने लगी और वह अपने कर्तव्य का निश्चय ही न कर सका। तदनन्तर आग्नेयास्त्र से सिद्ध किया हुआ बाण लेकर उसने नील की ओर देखकर कहा- वानर! तुम माया के साथ-साथ अपने भीतर बड़ी फुर्ती भी रखते हो। अब मेरे इस बाण से अपने जीवन की रक्षा करो। ऐसा कहकर उसने उस बाण को नील के ऊपर छोड़ दिया। उस बाण ने नील की छाती में गहरी चोट की और वे आँच से जलते हुए सहसा पृथ्वी पर गिर पड़े। तब नील को अचेत हुआ देख उसने सुमित्रा कुमार लक्ष्मण पर धावा किया और शीघ्र ही उनके पास पहुँचकर अपने धनुष की टंकार करने लगा। उस समय अपने धनुष को खींचते हुए लक्ष्मण ने राक्षस राज रावण से कहा- निशाचरराज! समझ लो मैं आ गया। अतः तुम वानरों के साथ युद्ध करना छोड़ दो। तब रावण ने भी क्रोध में भरकर कहा- रघुवंशी राजकुमार! सौभाग्य की बात है कि तुम मेरे सामने आ गये। अब तुम मेरे बाण समूहों से पीड़ित हो तत्काल यमलोक पहुँचोगे। लक्ष्मण यह सुनकर बोल उठे- राजन्! महान् प्रभावशाली पुरुष केवल डींग नहीं मारते। तुम इस तरह व्यर्थ ही प्रलाप कर रहे हो। मैंने तो तुम्हारे बल, वीर्य, प्रताप को अच्छी तरह समझ लिया है। इसलिए आओ मुझसे युद्ध करो। उनके ऐसा कहने पर रावण ने कुपित हो उन पर पंखवाले बाण छोड़े। तब लक्ष्मण ने अपने तेज धारवाले बाणों से सबको काट डाला। अब अपने समस्त बाणों को सहसा खंडित होते हुए देख रावण क्रोध से भर गया और उसने दूसरे तीखे बाण छोड़े। लेकिन लक्ष्मण उससे विचलित नहीं हुए। उन्होंने भी अपने धनुष से भयंकर बाणों की वर्षा की और रावण के

Mookerji sharma (CF-S) Jammu Collection

छोड़े हुए उन सब बाणों को काट डाला। तब रावण लक्ष्मण की फुर्ती से विस्मित होता हुआ उन पर पुनः तीखे बाण छोड़ने लगा। लक्ष्मण ने भी रावण को ऐसा करते देख वज्र के समान भयानक वेग और तीखे धार वाले पैने बाणों को अपने धनुष पर रखा। परन्तु रावण ने लक्ष्मण के सभी बाणों को काट कर अपने तेजस्वी बाण से लक्ष्मण जी के ललाट पर चोट की। इस बाण से पीड़ित हो लक्ष्मण विचलित हो उठे। किन्तु फिर शीघ्र ही अपने को सम्हालते हुए उन्होंने अपने बाणों से रावण का धनुष ही काट डाला। धनुष कट जाने पर रावण को लक्ष्मण ने तीन बाण मारे। उन बाणों से पीड़ित हो राजा रावण व्याकुल हो उठा और फिर बड़ी कठिनाई से सचेत हो सका। उस समय रावण का सारा शरीर ही मेदे और रक्त से भीग गया। तब उस अवस्था में रावण ने युद्धस्थल में ब्रह्माजी की दी हुई शक्ति उठा ली। वह शक्ति धूम्रयुक्त अग्नि के समान दिखलायी पड़ती थी। तब रावण ने वह जलती हुई शक्ति बड़े वेग से लक्ष्मण पर चलायी। अब लक्ष्मण के द्वारा अपने बाणों से उस पर प्रहार करने के बाद भी वह शक्ति लक्ष्मण के विशाल वक्षःस्थल में घुस गयी। यद्यपि लक्ष्मण बड़े शक्तिशाली थे फिर भी वे उस शक्ति से आहत हो पृथ्वी पर गिर पड़े और जलने से लगे। तब उन्हें इस तरह विह्वल होते देख रावण उनके पास जा पहुँचा और उन्हें अपनी दोनों भुजाओं से उठाने लगा। लेकिन जो रावण देवताओं सहित हिमालय, मन्दराचल, मेरू गिरी अथवा तीनों लोकों को अपनी भुजाओं द्वारा उठा लेने की शक्ति रखता था वह लक्ष्मण को उठाने में समर्थ न हो सका। उस समय ब्रह्मा की शक्ति से छाती में चोट खाने पर भी लक्ष्मण ने भगवान् विष्णु के अचिन्तनीय अंशरूप चिंतन किया। इसी समय क्रोध से भरे हुए वायु पुत्र हनुमानजी रावण की ओर दौड़ पड़े और अपने बज्र सरीखे मुक्के को रावण की छाती पर दे मारा। उस मुक्के की मार से रावण ने धरती पर घुटने टेक दिये और काँपता हुआअन्ततोगत्वागिर पड़ा। उसके मुख, नेत्र और कानों से बहुत-सा रक्त गिरने लगा और वह चक्कर काटता हुआ रथ के पिछले भाग में निश्चेष्ट होकर जा बैठा। किन्तु वहाँ भी वह अपनी सुध-बुध खोकर तड़पता और छटपटाता रहा। रावण की यह अवस्था देखकर सभी ऋषि, देवता, असुर और वानर हर्षनाद करने लगे। तत्पश्चात् हनुमानजी लक्ष्मण को उठाकर श्री

Mookerji sharma (I ... Collection

रघुनाथ के निकट ले आये। तब युद्ध में पराजित हुए लक्ष्मण को छोड़कर वह शक्ति पुनः रावण के रथ पर लौट आयी। थोड़ी देर बाद रावण ने फिर अपना महातेजस्वी धनुष उठाया और पैने बाण अपने हाथों में ले लिये। इधर लक्ष्मण भी भगवान विष्णु के अचिन्तनीय अंश रूप से अपना चिंतन करके स्वस्थ और निरोग हो गये। तत्पश्चात् वानर सेना के बड़े-बड़े वीर मार गिराये गये हैं देखकर रघुनाथजी ने रावण पर धावा किया। उस समय हनुमानजी श्रीराम से बोले- प्रभो! जैसे भगवान् विष्णु गरुड़ पर चढ़कर दैत्यों का संहार करते हैं वैसे ही आप मेरी पीठ पर चढ़कर इस राक्षस को दण्ड दें। हनुमानजी की यह बात सुनकर श्रीरघुनाथ जी सहसा महाकपि की पीठ पर चढ़ गये और कुपित होकर रावण की ओर दौड़ते हुए अपने धनुष की तीव्र टंकार प्रकट की। फिर गंभीर बाणी में बोले- रावण! तू मेरे बाणों से बचकर कहाँ जायेगा। राक्षसराज मैं इस समय लक्ष्मण के तिरस्कार का बदला लेते हुए तुझे पुत्र पौत्रों सहित यमलोक भेज दूँगा। श्रीराम की यह बात सुनकर रावण महान् रोष से भर गया और अपने दीप्तिशाली बाणों द्वारा श्रीराम के वाहन बने हुए हनुमानजी को बुरी तरह घायल कर दिया। युद्धस्थल में रावण के सायकों से आहत होने पर भी हनुमानजी का शौर्य और भी अधिक बढ़ गया। लेकिन हनुमान को घायल होते देख श्रीराम क्रोधित हो गये और फिर रावण पर आक्रमण करके उसके रथ के पहिए, घोड़े, ध्वज, पताका, सारथि अशनि शूल सहित उसके रथ को अपने पैने बाणों से तिल-तिल करके काट डाला। तत्पश्चात् अपने अशनि के समान तेजस्वी बाण से रावण की विशाल और सुन्दर छाती पर वेगपूर्वक आघात किया। जो रावण बज्र और शनि के आघात से भी कभी विचलित नहीं होता था उस समय श्रीराम के बाणों से घायल होकर आर्त हो उठा और उसके हाथों से धनुष टूट कर भूमि पर आ गिरा। तब श्रीराम ने रावण के देदीप्यमान मुकुट को भी सहसा काट गिराया। उस समय धनुष न होने से रावण अपना प्रभाव खो बैठा और श्रीहीन दिखलायी पड़ने लगा। उसकी यह अवस्था देखकर श्रीराम ने रावण से कहा- मेरी सेना के अनेक वीरों के मर जाने पर भी, मैं तुझे मौत के अधीन नहीं कर रहा हूँ। जा, लंका में कुछ देर विश्राम करने के बाद फिर धनुष लेकर निकलना और फिर मेरा बल देखना। रावण इतना सुनते ही तुरन्त लंका में

घुस गया। उसका दर्प और अभिमान सब मिट्टी में मिल चुका था और वह स्वयं बाणों से पीड़ित हो रहा था। तदनन्तर रावण के चले जाने पर लक्ष्मण सहित श्रीराम ने सारे वानरों के शरीर से बाण निकाले। जिस समय रावण युद्ध स्थल से भागा उस समय उसका पराभव देखकर देवता, असुर, नाग, ऋषि आदि सभी प्रसन्न हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५९)

साठवाँ सर्ग

पराजित रावण की आज्ञा से कुंभकर्ण का जगाया जाना

तदनन्तर रावण जब लंकापुरी पहुँचा तब उसका अभिमान चूर-चूर हो गया था। उसकी सारी इन्द्रियाँ व्यथा से व्याकुल हो गयी थीं। भगवान् श्रीराम के बाण ब्रह्मदण्ड के प्रतीक जान पड़ते थे। उनकी दीप्ति चपला के समान चंचल थी। उन्हें याद कर रावण बहुत व्यथित हो उठा और राक्षसों की ओर देखकर कहने लगा- मैंने जो बहुत बड़ी तपस्या की थी वह निश्चय ही व्यर्थ गयी। क्योंकि आज पराक्रमी रावण को एक मनुष्य ने परास्त कर दिया। ब्रह्माजी ने कहा था कि तुम्हें मनुष्यों से भय प्राप्त होगा यह सफल हुआ। मैंने मनुष्यों से अभय होने की वर याचना नहीं की थी। पूर्व-काल में इक्ष्वाकु वंशी राजा अनरण्य ने मुझे शाप देते हुए कहा था कि दुर्मते! मेरे ही वंश में एक ऐसा श्रेष्ठ पुरुष होगा जो तुझे पुत्र मंत्री सहित समरांगण में मार डालेगा। लगता है अनरण्य ने जिसकी ओर इशारा किया था यह राम वही है। इसके सिवा वेदवती ने भी उसके साथ जबर्दस्ती बलात्कार करने के कारण मुझे शाप दिया था कि मेरी मृत्यु स्त्री के कारण होगी। लगता है वही वेदवती जनकनंदिनी सीता के रूप में प्रकट हुई है। इसी तरह उमा नन्दीश्वर रम्भा और वरुण कन्या ने भी जैसा-जैसा कहा था वैसा ही परिणाम मुझे प्राप्त हुआ है। सच है ऋषियों की बात कभी झूठी नहीं होती। उन्हीं के शाप ही मुझ पर संकट लाने में सहायक हुए हैं अतः तुम लोग संकट को टालने का प्रयत्न करो। तुम लोग लंका की रक्षा के लिए सब ओर डट जाओ साथ ही निंद्रा के अधीन कुंभकर्ण को भी जगाओ। महाबाहु कुंभकर्ण सभी राक्षसों में श्रेष्ठ है। वह युद्धस्थल में वानरों

और उन राजकुमारों को शीघ्र ही मार डालेगा। किन्तु यदि इस घोर संकट में भी कुंभकर्ण मेरी सहायता करने में समर्थ नहीं रहा तो इन्द्र के समान बलशाली होने पर भी मेरा उससे प्रयोजन ही क्या ? मैं उसे लेकर क्या करूँगा ? रावण की यह बात सुनकर समस्त राक्षस बड़ी घबराहट में पड़कर कुंभकर्ण के घर गये। वे अपने साथ रावण की आज्ञा पाकर उसके लिए बहुत सारी खाने पीने की सामग्री भी लेकर गये। कुंभकर्ण एक गुफा में रहता था जिसकी लम्बाई चौड़ाई सब ओर से एक योजन की थी। उसमें राक्षसों के प्रवेश करते ही महाबली कुंभकर्ण की सांस के वेग से वे सहसा पीछे ठेल दिये गये। फिर बड़ी कठिनाई से पूरा प्रयत्न करके वे उस गुफा के भीतर घुस सके। उस समय निद्रा में निमग्न हुआ कुंभकर्ण गहरी खुर्राटें ले रहा था। अतः वे सब राक्षस एकत्र हो उसे जगाने की चेष्टा करने लगे। उसके सर्प के समान सांस लोगों को चक्कर में डाल देता था। उस समय उन महाकाय निशाचरों ने कुंभकर्ण के सामने प्राणियों के मेरू पर्वत जैसे ढेर लगा दिये थे। उन लोगों ने उसके पास नाना प्रकार के माँस भी रख दिये। तत्पश्चात् उसकी स्तुति करते हुए गंभीर ध्वनि से गर्जना करने लगे। उसे जगाने के लिए शंख, भेरी और प्रणव बजने लगे। ताल ठोंकने, गर्जने और सिंहनाद का स्वर सब ओर सुनायी पड़ने लगा। लेकिन उस महान् कोलाहल से भी कुंभकर्ण नहीं जग सका। तब उसी अवस्था में उन्होंने उसकी छाती पर पर्वत शिखरों, मूसलों, गदाओं, मुद्गरों और मुक्कों से मारना शुरू किया। लेकिन इस तरह से वे राक्षस बाजे बजाते हुए और गरजते रहे तो भी कुंभकर्ण की निद्रा नहीं टूटी। तब उन्होंने पहले से भी ज्यादा प्रयत्न आरम्भ किया। वे घोड़ों, ऊँटों, गदहों हाथियों को डंडों, कोड़ों तथा अंकुशों से मार-मार कर उसके ऊपर ठेलने लगे और सारी शक्ति लगाकर भेरी, मृदंग तथा शंख बजाने लगे उस समय उस महान कोलाहल से पर्वतों और वनों सहित सारी लंका गूँज उठी। परन्तु कुंभकर्ण नहीं जागा, नहीं जागा। तब वहाँ आते हुए सभी राक्षसों को बड़ा क्रोध आया और वे उसे जगाने के लिए अन्य पराक्रम करने लगे। कोई धौंसे बजाने लगे, कोई महान् कोलाहल करने लगे तो कोई उसके सिर के बाल नोचने लगे। और कोई दाँतों से उसके कान काटने लगे। दूसरे राक्षसों ने उसके दोनों कानों में सौ घड़े पानी डाल दिया। कोई-कोई राक्षस कांटेदार मुद्गर हाथ में लेकर उन्हें उसके

छाती तथा अन्य अंगों पर गिराने लगे। तत्पश्चात् रस्सियों से बँधी हुई शघ्नियों द्वारा उस पर सब ओर से चोटें पड़ने लगीं। फिर भी उस महाकाय राक्षस की नींद नहीं टूटी। इसके बाद उसके शरीर पर हजारों हाथी दौड़ाये गये। तब उनके आघात से उसकी नींद टूट गयी और वह भूख से पीड़ित हो सहसा अंगड़ाई लेता हुआ उछलकर खड़ा हो गया। उस समय जम्हाई लेते हुए कुंभकर्ण का पाताल जैसा मुख मेरूपर्वत के शिखर पर उगे हुए सूर्य के समान दिखाई दिया था। उसके मुख से जो सांस निकलती थी वह पर्वत से चली हुई वायु के समान प्रतीत होती थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अग्नि और विद्युत के समान दीप्तिमयी दिखाई पड़ती थी। तब राक्षसों ने वहाँ रखी हुई खाने पीने की प्रचुर सामग्री उसे दिखाई। उस भोजन सामग्री को देखकर कुम्भकर्ण बात की बात में बहुतेरे भैंसों और सुअरों को चट कर गया। तदनन्तर प्यास बुझाने के लिए रक्त पान किया। फिर चर्बी से भरे हुए कितने ही घड़े साफ करते हुए कई घड़े मदिरा पी गया। लेकिन उस समय भी निद्रा के कारण वह अप्रसन्न दिखलाई पड़ रहा था। फिर भी असने राक्षसों को सान्त्वना देते हुए पूछा- तुम लोगों ने आदर करके मुझे किसलिए जगाया है? राक्षसराज रावण तो कुशल से हैं? वहाँ कोई भय तो उत्पन्न नहीं हुआ? यदि ऐसी कोई बात होगी तो मैं आज ही राक्षस राज के भय को उखाड़ फेकूँगा। मुझ जैसे व्यक्ति को कोई छोटे मोटे कारण से नींद से नहीं जगाया जायेगा। अतएव तुम लोग ठीक-ठीक बताओ मेरे जगाये जाने का क्या कारण है? कुम्भकर्ण के पूछने पर सचिव यूपाक्ष ने हाथ जोड़ कर कहा- महाराज! इस समय हमें देवताओं से नहीं बल्कि मनुष्यों से बेहद भय प्राप्त हुआ है जो हमें सता रहा है। ऐसा भय हमें कभी दैत्य और दानवों से भी नहीं प्राप्त हुआ था। महाबली वानर तथा सीताहरण से संतप्त हुए श्रीराम की ओर से हमें यह महान् भय प्राप्त हुआ है। पहले तो वानरों ने लंकापुरी जला दी थी। फिर हाथियों और साथियों सहित राजकुमार अक्ष को भी मार डाला। श्रीराम ने राक्षसराज रावण को भी युद्ध में हराकर जीवित छोड़ दिया और कहा- लंका को लौट जाओ। महाराज की जो दुर्दशा दैत्य और दानव भी नहीं कर सके थे वह राम ने कर दी। रावण की पराजय की बात सुनकर कुंभकर्ण बोला- यूपाक्ष! मैं अभी वानर तथा लक्ष्मण सहित श्रीराम को मारकर रावण के दर्शन

करूँगा। यह सुनकर महोदर ने कहा- महाबाहो! पहले आप चलकर रावण की बात सुन लीजिए। फिर गुण दोष पर विचार कर शत्रुओं को परास्त कीजियेगा। यह सुनकर राक्षसों से घिरा हुआ कुंभकर्ण वहाँ से चलने की तैयारी करने लगा। तदनन्तर राजमार्ग पर कुंभकर्ण के चलते समय नगर के बाहर खड़े हुए वानर सहसा उस विशालकाय राक्षस को देखकर सेनापतियों सहित सहम गये। उनमें से कुछ भागकर श्रीराम की शरण में गये तो कोई पीड़ित हो सभी दिशाओं में भाग गये और कितने ही भय से पीड़ित हो इधर-उधर धरती पर लेट गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में साठवँ सर्ग पूरा हुआ। (६०)

इकसठवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम को कुंभकर्ण का परिचय देना

तत्पश्चात् हाथ में धनुष लेकर श्रीराम ने भी महाकाय कुंभकर्ण को देखा। वह पर्वत के समान दिखलायी देता था और राक्षसों में सबसे बड़ा था। उसे देख कर वानरों की वह विशाल सेना पुनः भागने लगी। तब अपनी सेना के भागते तथा कुंभकर्ण को बढ़ते देख श्रीराम चन्द्रजी को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने विभीषण से पूछा- यह लंका मेंपर्वतके समान विशालकाय राक्षस कौन है? जिसे देखकर सारे वानर इधर-उधर भाग चले हैं। बताओ, यह कोई राक्षस है या असुर? तब विभीषण ने इस प्रकार कहा- भगवान् जिसने युद्ध में वैवस्वत, यम और देवराज इन्द्र को भी पराजित किया था वह यह विश्रवा का प्रतापी पुत्र कुंभकर्ण है। इसने युद्ध में देवता, दानव, यक्ष, नाग, राक्षस और किन्नरों को सहस्रों बार मार भगाया है। कुंभकर्ण स्वभाव से ही महातेजस्वी और बलवान् हैं। इस महाकाय राक्षस ने जन्म लेते ही भूख से पीड़ित हो, कई सहस्र प्रजाजनों को खा डाला था। जब सहस्रों प्रजा जन इसका आहार बनने लगे तब भय से पीड़ित हो वे सब देवराज इन्द्र की शरण में गये और उनके सम्मुख अपना कष्ट निवेदन किया। इससे बज्रधारी इन्द्र को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने तीखे बज्र से कुंभकर्ण को घायल कर दिया। तब यह महाकाय राक्षस क्षुब्ध होकर रोष पूर्वक सिंहनाद करने लगा।

उसके इस सिंहनाद को सुनकर प्रजा वर्ग और भी भयभीत हो उठा। तदनन्तर कुपित हुए कुंभकर्ण ने इन्द्र के ऐरावत हाथी के एक दाँत को उखाड़ कर उससे इन्द्र की छाती पर प्रहार किया। इन्द्र इससे अत्यंत व्याकुल हो उठे और उनकी छाती में जलन होने लगी। तब इन्द्र ने ब्रह्माजी के पास जाकर कुंभकर्ण की दुष्टता का विस्तारपूर्वक वर्णन किया और कहा- भगवन्! यदि यह नित्यप्रति इसी प्रकार प्रजा का भक्षण करता रहा तो थोड़े ही समय में सारा संसार सूना हो जायेगा। यह सुनकर ब्रह्मा ने सब राक्षसों के साथ कुंभकर्ण को भी बुलाया। किन्तु उसे देखते ही वे थर्रा उठे और बोले- विश्रवा ने तुझे जगत् के विनाश हेतु ही उत्पन्न किया है। अतः मैं तुझे शाप देता हूँ कि आज से तू मुर्दे के समान सोता रहेगा। तब रावण को इससे बड़ी घबराहट हुई और उसने कहा- प्रजापते! यह आपका नाती है। इसे इस प्रकार शाप देना कदापि उचित नहीं। आपकी बात कभी झूठी नहीं होती इसलिए इसे सोना ही पड़ेगा इसमें संदेह नहीं। परन्तु आप, इसके सोने और जागने का समय निश्चित कर दें। तब ब्रह्मा ने कहा- यह छः मास तक सोता रहेगा और एक दिन जगेगा। उस दिन यह विचरण करता हुआ अग्नि के समान मुँह फैलाकर बहुत से लोगों को खा जायेगा। भगवन्! रावण ने इस समय मुसीबत से भयभीत होकर कुंभकर्ण को जगाया है। यह अभी अपने शिविर से निकला है इसीलिए रोष भरकर सभी वानरों को खा जाने के लिए इधर उधर दौड़ रहा है। अब कुंभकर्ण से निर्भय रहने के लिए सब वानरों से कह दिया जाय कि यह कोई व्यक्ति नहीं बल्कि माया द्वारा निर्मित यंत्र मात्र है। यह सुनकर श्रीराम ने नील से कहा- अग्निनंदन! जाओ सारी सेनाओं की मोर्चेबंदी करके युद्ध के लिए तैयार रहो और लंका के द्वारों और राजमार्गों पर अधिकार जमाकर वहीं डटे रहो। यह सुनकर नील ने सभी सैनिकों को यथोचित कार्य करने का आदेश दिया। उस समय गवाक्ष, शरभ, हनुमान और अंगद आदि पर्वताकार वानर पर्वत शिखर लेकर लंका के द्वार पर डट गये। और श्रीराम की आज्ञा से वृक्षों द्वारा शत्रु सेना को पीड़ित करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६१)

बासठवाँ सर्ग

कुंभकर्ण का रावण के भवन में प्रवेश करना

जब कुंभकर्ण निद्रा और मद से व्याकुल हो राजमार्ग से जा रहा था उस समय सभी मकानों से उस पर फूल बरसाये जा रहे थे। राक्षसों सहित कुंभकर्ण रावण के भवन में जाते समय जब एक-एक पैर आगे बढ़ाता था तब-तब पृथ्वी काँप उठती थी। तत्पश्चात् भाई के भवन में जाकर जब उसने भीतर प्रवेश किया तब उसने उसे उद्विग्न अवस्था में पुष्पक विमान पर विराजमान देखा। कुंभकर्ण को आया देख रावण ने उसे अपने पास बुला लिया। तब रावण को प्रणाम कर कुंभकर्ण ने पूछा- राजन्! कौन-सा कार्य आ पड़ा है? किसलिए तुमने मुझे आदर के साथ जगाया है? बताओ तुम्हें किससे भय प्राप्त हुआ है? यह सुनकर रावण अपने भाई से बोला- महावीर! तुम्हें सोये हुए बहुत समय व्यतीत हो गया है। तुम गाढ़ी निंद्रा में निमग्न होने के कारण नहीं जानते कि मुझे राम से भय प्राप्त हुआ है। वे सुग्रीव के साथ समुद्र लाँघकर यहाँ आये हैं और हमारे कुल का विनाश कर रहे हैं। हमारे जो मुख्य-मुख्य राक्षस वीर थे उन्हें वानरों ने युद्ध में मार डाला है। किन्तु रणभूमि में मुझे वानरों का संहार होता किसी प्रकार दिखलायी नहीं पड़ता। वीर! इस समय हमारे ऊपर जो यह भय आ पड़ा है तुम इससे हमारी रक्षा करो और आज इन वानरों को नष्ट कर दो। इसीलिए मैंने तुम्हें जगाया है। हमारा सारा खजाना खाली हो गया है। अतः मुझ पर अनुग्रह करके आज इन वानरों को नष्ट कर दो। इसलिए मैंने तुम्हें जगाया है। परनतप, मैंने आज के पहले कभी किसी भाई से ऐसी अनुनय-विनय नहीं की थी। तुम्हारे ऊपर मेरा बड़ा स्नेह है और मुझको तुमसे बड़ी आशा है। तुमने देवासुर संग्राम में भी कितने ही देवताओं और असुरों को बुरी तरह परास्त किया है। अतः तुम्हीं यह सारा पराक्रम पूर्ण करो। इस समय तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं दिखलायी देता। तुम अपने तेज से शत्रुओं की सेना को उसी तरह छिन्न-भिन्न कर दो जैसे प्रचण्ड वायु शरद मेघ को छिन्न भिन्न कर देती है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

कुंभकर्ण का रावण को उसके कुकृत्यों के लिए उपालम्भ देना

रावण का यह प्रलाप सुनकर कुंभकर्ण ठहाका मारकर हंसने लगा और बोला- भाई साहब ! तुम्हें शीघ्र ही अपने पापकर्म का फल मिल गया है। जैसे कुकर्मी पुरुषों को नर्क में पड़ना निश्चित है उसी प्रकार तुम्हें भी इसका फल मिलना अवश्य सम्भावी है। राजन् ! पहले बल के घमण्ड में तुमने इसकी कोई परवाह न की जो ऐश्वर्य के अभिमान में पहले करने योग्य काम को पीछे करता है और पीछे करने योग्य काम को पहले करता है वह नीति तथा अनीति को कुछ नहीं जानता। जो राजा सचिवों के साथ विचार करके साम-दाम और दण्ड के प्रयोग को काम में लाता है वही उत्तम नीति मार्ग पर विद्यमान है ऐसा समझना चाहिए। राक्षसराज ! नीतिज्ञ पुरुषों को चाहिए कि वह धर्म, अर्थ और काम इन सबको उपयुक्त समय में ही सेवन करे। राक्षस शिरोमणे! राजा को चाहिए कि वह मंत्रियों से अच्छी तरह सलाह करके समय के अनुसार उन्हीं कार्यों को करे जिनके परिणाम अच्छे हैं। जो मंत्री ज्ञान से शून्य और अर्थशास्त्र से अनभिज्ञ होते हैं उन मंत्रियों की बात कभी नहीं माननी चाहिए। अतः ऐसे मंत्रियों को कार्य से अलग कर देना चाहिए। वे तो काम बिगाड़ने वाले होते हैं। कुछ बुरे मंत्री साम आदि उपायों के ज्ञाता शत्रुओं के साथ मिल जाते हैं और अपने स्वामी का विनाश करवाने के लिए उनसे विपरीत कार्य करवाते हैं। जब किसी कार्य के निश्चय के लिए मंत्रियों की सलाह ली जा रही हो उस समय राजा व्यवहार के द्वारा ही उन मंत्रियों को पहचानने का प्रयत्न करे जो घूस आदि लेकर शत्रुओं से मिल गये हैं। वे अपने मित्र से बने रहकर वास्तव में शत्रु का काम करते हैं। जो राजा चंचल हैं और सहसा बिना सोचे विचारे ही किसी भी कार्य के लिए दौड़ पड़ता है उसकी इस दुर्बलता को शत्रु उसी तरह ताड़ जाते हैं जैसे क्रौंच पर्वत के छेद को पक्षी। जो राजा शत्रु की अवहेलना करके अपनी रक्षा का प्रबंध नहीं करता वह अनेक अनर्थों का भागी होता है और उसे अपने राज्य से नीचे उतार दिया जाता है। तुम्हारी पत्नी मन्दोदरी और छोटे भाई विभीषण ने पहले तुमसे जो कुछ कहा था वही हमारे लिए हितकर था। यों, तुम्हारी जैसी इच्छा हो करो। अब कुंभकर्ण की ऐसी बात सुनकर रावण ने भौंहें टेढ़ी कर ली और कुपित होकर

उससे कहा- तुम इस समय गुरू और आचार्य की भाँति मुझे उपदेश दे रहे हो। किन्तु इससे लाभ क्या होगा? इस समय तो जो उचित हो और आवश्यक कार्य हो वही काम करो। मैंने तुम लोगों की बात नहीं मानी थी। लेकिन अब जो बीत गयी सो बीत गयी। बुद्धिमान लोग बीती बात पर शोक नहीं करते। वीर! यदि तुम पर मेरा स्नेह है और यदि अपने भीतर यथेष्ट पराक्रम समझते हो तो युद्ध करो। तब रावण को इस तरह दीन वचन बोलते हुए देखकर कुंभकर्ण धीरे-धीरे मधुर वचन बोलने को उद्यत हुआ और उन्हें सान्त्वना देते हुए बोला- पृथ्वीनाथ! अब तुम्हें मेरे जीते जी मन में ऐसा भाव नहीं लाना चाहिए। मैंने तो भातृ स्नेह के कारण ही ऐसी बातें कही थीं। इस समयभाई के लिए जो कुछ करना उचित होगा वही करूँगा। अब रणभूमि में मेरे द्वारा शत्रु का संहार देखो। आज तुम देखोगे कि राम के मारे जाने परवानरों की सेना किस तरह भागी जा रही है। मैं संग्राम भूमि से राम का कटा हुआ सिर लाऊँगा जिसे देखकर सीता शोक सागर में डूब जायेगी। अपने भाई बन्धुओं के मारे जाने से जो लोग अत्यंत शोक में डूबे हुए हैं आज युद्ध में शत्रु का नाश कर उनके आँसू पोछूँगा। आज सुग्रीव को भी खून से लथपथ हुए संग्राम भूमि में पड़ा हुआ देखोगे। ये राक्षस तथा मैं सब लोग दशरथ पुत्र राम को मार डालने की इच्छा रखते हैं। अब हम सब तुम्हें विजय का आश्वासन देते हैं। इसलिए तुम अपना दुख भूल जाओ। इस समय तुम युद्ध के लिए केवल मुझे आदेश दो। शत्रुओं से जूझने के लिए तुम्हें और किसी ओर देखने की आवश्यकता नहीं। मैं महाबली शत्रु इन्द्र, अग्नि, वायु, यम, कुबेर तथा वरुण को भी उखाड़ फेंकूँगा। ये मेरे सिंहनाद करने पर ही भय से थर्रा उठेंगे। यदि मैं बिना शस्त्र के रण भूमि में शत्रुओं को रौंदता हुआ विचरने लगा तो कोई मेरे सामने नहीं ठहर सकेगा। यदि राम मेरे मुट्ठी का वेग सह लेंगे तो मेरे बाण समूह अवश्य ही उनका खून चूस लेंगे। इसलिए हे राजन्! मेरे रहते हुए क्यों चिंता की आग में झुलस रहे हो। मैं अभी शत्रुओं का नाश करने के लिए रणभूमि में जाने को तैयार हूँ। अब तुम राम का भय दूर कर दो साथ ही राक्षसों का बध करने वाले उस हनुमान को भी मैं जीवित नहीं छोडूँगा मैं अन्य वानरों को भी खा कर तुम्हारे कष्ट को दूर कर दूँगा। मेरे कुपित होने पर देवता भी धराशायी हो जायेंगे। इस समय दशरथ कुमार श्रीराम का बध करके मैं तुम्हें

निरन्तर सुख देने वाला सौभाग्य प्रदान करना चाहता हूँ। राजन् ! अब मौज करो, मदिरा पियो और मानसिक दुख दूर करके सब कार्य सुचारुरूप से करो। आज राम मेरे द्वारा यमलोक पहुँचा दिये जायेंगे फिर सोता सदा के लिए तुम्हारे वश में हो जायेगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मोकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६३)

चौंसठवाँ सर्ग

महोदर का रावण को बिना युद्ध के ही इच्छित वस्तु के प्राप्ति का उपाय बताना

तदनन्तर कुंभकर्ण का यह वचन सुनकर महोदर ने कहा- कुंभकर्ण ! तुम उत्तम कुल में हुए हो। किन्तु तुम्हारी बुद्धि निम्न श्रेणी की है इसलिए तुम ढीठ और घमण्डी हो इसलिए सभो विषयों में क्या कर्तव्य है उसे नहीं जानते। राक्षस शिरोमणि रावण नोति अनोति तथा देशकाल के लिए उचित कर्तव्य को जानते हैं। जिस अर्थ, धर्म और काम को तुम पृथक-पृथक आश्रय वाले बता रहे हो उन्हें ठीक -ठोक समझाने की तुम्हारे भोतर शक्ति नहीं। सीता हरण होना रावण के लिए निश्चित था और उसका समर्थन हम लोगों ने किया। अतः हमारे राजा शत्रु के साथ जो इस तरह का व्यवहार कर रहे हैं यह उनका अतुलनोय साहस है। और जो तुम इस प्रकार साहस पूर्ण बात कह रहे हो कि तुम अकेले ही जाकर शत्रुओं का विनाश कर दोगे तो यह तुम्हारे लिए असम्भव है। क्योंकि जो राक्षस रामचन्द्र के बाणों से बचकर जनस्थान से भागकर सेना में चले आये थे वे अभी तक उनके भय से काँप रहे हैं। फिर तुम किस प्रकार अकेले विजय प्राप्त कर सकते हो। इसलिए तुम्हारा अकेले युद्ध में जाना मैं किसी प्रकार उचित नहीं समझता। दशरथ कुमार श्रीराम अत्यंत कुपित हुए सिंह के समान पराक्रमी एवं भयंकर हैं। क्या तुम उनसे भिड़ने का साहस करते हो। क्या तुम जानबूझकर सोते हुए सर्प को जगाना चाहते हो। तुम्हारी मूर्खता पर आश्चर्य होता है। तत्पश्चात् वह रावण से बोला- महाराज ! आप विदेह कुमारी को अपने सामने पाकर भी किसलिए विलम्ब

कर रहे हैं। अब मुझे एक ऐसा उपाय सूझा है जिससे सीता आपके वश में होकर रहेगी। आप उसे सुनिये और यदि ठीक जँचे तो उसे काम में लाइये। आप नगर में घोषणा करा दें कि महोदर, द्विजिह्व, सँह्रादी, कुंभकर्ण और वितर्दन ये पाँचों राम का बध करने के लिए जा रहे हैं। हम लोग बलपूर्वक राम से युद्ध करेंगे। यदि हम विजयी हुए तो सीता को वश में करने के लिए और दूसरे किसी उपाय की आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। और यदि हम युद्ध करते हुए मारे न जाकर जीवित लौट आये तो हम राम नाम से अंकित बाणों से अपने को घायल कराकर खून से लथपथ हो यह कहते हुए युद्ध भूमि से वापस लौटेंगे कि हमने राम और लक्ष्मण को खा लिया है। उस समय आप सारे नगर में यह घोषित कर दें कि भाई और सेना सहित राम मारा गया है। इतना ही नहीं फिर आप अपने सेवकों की इच्छित वस्तुएं उपहार में दें और स्वयं भी खुशी मनाते हुए मद्यपान करें। तत्पश्चात् जब सब ओर यह अफवाह फैल जाये कि राम साथियों सहित राक्षसों के आहार बन गये हैं और सीता के कानों में भी यह बात पड़ जाये तब आप सीता के पास जायें और उसे धीरज बँधाकर भाँति-भाँति भोग और राज आदि का लोभ दिखायें। तब सीता अपने को अनाथ मानते हुए आपके अधीन हो जायेगी। मेरी समझ में यही सब से सुन्दर नीति है। युद्ध में आपकी मृत्यु हो सकती है। अतः आप युद्ध में जाने के लिए उत्सुक न हों। महाराज! जो राजा बिना युद्ध किये ही शत्रु पर विजय पा लेते हैं उनकी सेना नष्ट नहीं होती। उसका जीवन भी संशय में नहीं पड़ता और वे दीर्घ काल तक लक्ष्मी और कीर्ति का उपभोग करता है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६४)

पैंसठवाँ सर्ग

कुंभकर्ण की रथ यात्रा

महोदर की यह बात सुनकर कुंभकर्ण उसे डांटते हुए बोला- राजन्! आज मैं उस दुरात्मा राम का बध करके तुम्हारे दुख को दूर कर दूँगा। महोदर जो भीरु मूर्ख और झूठे ही अपने को पंडित मानने वाले होंगे उन्हीं राजाओं को तुम्हारे द्वारा कही जाने वाली चिकनी-चुपड़ी बातें सदा अच्छी लगेंगी।

यह देखो, अब मैं शत्रु को जीतने के लिए समर भूमि में जा रहा हूँ। तुम लोगों ने अपनी खोटी नीति के कारण जो विषम परिस्थिति पैदा कर दी है अब इस विषम संकट को सर्वदा के लिए टाल देता हूँ। तब कुंभकर्ण की ऐसी बात सुनकर रावण हँसते हुए बोला- महोदर श्रीराम से बहुत डर गया है। इसलिए वह युद्ध को पसंद नहीं करता। कुंभकर्ण! बल की दृष्टि से कोई तुम्हारी समानता करने वाला नहीं है। तुम अब युद्धभूमि में जाओ और उन दोनों राजकुमारों और वानरों को मार कर खा जाओ। कुंभकर्ण से ऐसा कहकर रावण ने पुनः अपना नया जन्म हुआ-सा माना। इधर रावण की यह बात सुनकर कुंभकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। वह शत्रु संहार करने हेतु एक तीखा शूल लेकर लंकापुरी के बाहर निकला और रावण से बोला- मैं अकेला ही युद्ध के लिए जाऊँगा। अपनी यह सारी सेना यहीं रखो। आज मैं भूखा हूँ और मेरा क्रोध भी बढ़ा हुआ है। कुंभकर्ण की यह बात सुनकर रावण बोला- कुंभकर्ण! तुम हाथ में शूल और मुद्गर धारण करनेवाले सैनिकों से घिरे रहकर युद्ध करो क्योंकि वे वानर तुम्हें अकेला या असावधान देखकर दाँतों से काट-काट कर नष्ट कर डालेंगे। तुम सेनाओं के साथ घिरकर सब तरह से सुरक्षित होकर यहाँ से जाओ और शत्रुदल का संहार को। तत्पश्चात् उसने कुंभकर्ण के गले और अंगों में विभिन्न आभूषण पहनाये। तदनन्तर उसकी छाती में एक सोने का कवच बाँधा गया जो भारी से भारी आघात सहन करने में समर्थ था। तब सारे अंगों में आवश्यक आभूषण धारण करके हाथों में शूल लिए वह राक्षस कुंभकर्ण रावण को प्रणाम कर युद्ध के लिए आगे बढ़ा। उसके यात्रा के समय शंख और दुंदुभि आदि बाजे भी बजवाये गये। उसके साथ कितने ही महामनस्वी रथी इत्यादि भी गये। तदनन्तर महाबली कुंभकर्ण ने बड़ा उग्र रूप धारण किया जिसे देखने पर भय मालूम होता था। उस समय वह छः सौ धनुषों के बराबर विस्तृत और सौ धनुषों के बराबर ऊँचा हो गया। उसकी आँखें दो गाड़ी के पहिये के समान जान पड़ती थीं। वह विशाल पर्वत के समान भयंकर दिखाई देता था। तत्पश्चात् उसने राक्षस सेना की व्यूह रचना की फिर अट्टहास करता हुआ राक्षसों से बोला- राक्षसों! जैसे आग पतंगों को जलाती है उसी प्रकार मैं कुपित होकर आज प्रधान-प्रधान वानरों के एक-एक झुंड को भस्म कर डालूँगा। वास्तव में वानरों से हमारा कोई बैर नहीं।

लंकापुरी पर घेरा डालने के प्रधान कारण हैं राम। अतएव मैं सबसे पहले उन्हीं को मारूँगा। फिर तो वानर सेना अपने आप मरी सी हो जायेगी। कुंभकर्ण की यह बात सुनकर राक्षसों ने भयानक गर्जना की। किन्तु कुंभकर्ण के रण की ओर पैर बढ़ाते ही भारी अपशकुन होने लगे। समुद्र तथा वनों सहित सारी पृथ्वी काँपने लगी तथा गीदड़ियाँ आग उगलती हुई भयानक बोलियाँ बोलने लगीं। कुंभकर्ण के शूल पर गीध आ बैठा और उसकी बाँयी आँख फड़कने लगी। उसी समय जलती हुई उल्का आ गिरी तथा सूर्य की प्रभा क्षीण हो गयी। किन्तु कुंभकर्ण इन सबकी परवाह किये बिना युद्ध के लिए निकल पड़ा। उस समय उस पर्वताकार राक्षस को देखकर समस्त वानर इधर-उधर भाग चले। वानरों को इस प्रकार भागते देखकर कुंभकर्ण हर्ष के साथ बारम्बार गर्जना करने लगा। उसके इस गर्जना से बहुत से वानर कटे वृक्ष के समान पृथ्वी पर गिरने लगे। लगता था वह भगवान् काल रुद्र के समान शत्रुओं का विनाश करने के लिए पुरी से बाहर निकला है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६५)

छाछठवाँ सर्ग

कुंभकर्ण को देखकर वानरों का पलायन और अंगद का उन्हें समझाकर लौटाना

तदनन्तर कुंभकर्ण के परकोटा के बाहर निकलते ही सभी वानर भागने लगे तो अंगद ने नल, नील, गवाक्ष और कुमुद को सम्बोधित करके कहा- वानर वीरो! अपने उन अलौकिक पराक्रमों को भुलाकर तुम लोग साधारण वन्दरों की भाँति कहाँ भागे जा रहे हो। अच्छा होगा कि तुम लोग लौट आओ क्योंकि यह राक्षस तो हमारे साथ युद्ध करने की शक्ति ही नहीं रखता। इसने माया से हमें डराने हेतु व्यर्थ ही घटाटोप फैला रखा है। हम शीघ्र ही अपने पराक्रम से इसे नष्ट कर देंगे। तब उन वानरों ने बड़ी कठिनाई से धैर्य धारण किया और हाथों में वृक्ष लेकर रणभूमि की ओर लौट पड़े। लौटने पर उन लोगों ने कुंभकर्ण के ऊपर ऊँचे-ऊँचे पर्वतीय शिखरों, शिलाओं तथा खिले हुए वृक्षों से प्रहार करना आरंभ किया। किन्तु कुंभकर्ण के अंगों पर

गिरनेवाली बहुतेरी शिलायें स्वयं चूर-चूर होकर गिर पड़ती थीं। उधर क्रोध से भरा हुआ कुंभकर्ण अत्यंत सावधान हो, वानर सेना को बुरी तरह रौंदने लगा। तब वानर ऊँची नीची भूमि को लाँघते हुए बड़ी तेजी से भागने लगे। कोई समुद्र में गिरा तो कोई आकाश में उड़ता रह गया। कोई-कोई तो जिस मार्ग से लंका आये थे उसी मार्ग से भागने लगे। भय से उनकी कान्ति फीकी पड़ गयी थी। उस समय कितने ही रीछ वृक्षों पर जा चढ़े और कितनों ने पर्वतों की शरण ली। तब उन वानरों को इस तरह भागते देख अंगद फिर बोले- वानर वीरो! ठहरो और लौट आओ। हम सब मिलकर युद्ध करेंगे। यदि तुम भाग गये तो सारी पृथ्वी की परिक्रमा करके भी कहीं तुम्हें ठहरहने के लिए स्थान मिल सके ऐसा मुझे नहीं दिखलायी देता। क्योंकि सुग्रीव की आज्ञा के बिना कहीं भी जाने से तुम बच नहीं सकोगे। इसलिए सब लौट आओ। क्यों अपने प्राण बचाने के फिक्र में पड़े हो। इससे तुम्हारी स्त्रियाँ तुम्हारा उपहास करेंगी जो तुम्हारे लिए मृत्यु के समान ही दुखदायी होगा। तुम जन समुदाय में बैठकर जो डींग हाँका करते थे कि हम प्रचन्ड वीर हैं और स्वामी के हितैषी हैं तुम्हारी वे डींगवे सब बातें आज कहाँ चली गयीं। इसलिए तुम लोग भय छोड़ो और सत्पुरुषों द्वारा सेवित मार्ग का आश्रय लो। इस समय यदि हम शत्रुओं के हाथ मारे भी गये तो हमें ब्रह्म लोक की प्राप्ति होगी जो कुयोगियों (जो योगी न हो) के लिए बहुत दुर्लभ है। कुंभकर्ण श्री रघुनाथजी के सामने जाने पर जीवित नहीं बच सकेगा। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि के सामने जाकर पतंगा भस्म हो जाता है। यदि हम लोग प्रख्यात वीर होकर भी एक योद्धा का सामना नहीं कर सकेंगे तो हमारा सारा यश मिट्टी में मिल जायेगा। अंगद के ऐंसा कहने पर उन लोगों ने उत्तर दिया- राक्षस कुंभकर्ण ने हमारा घोर संहार मचा रखा है। अतः यह ठहरने का समय नहीं। हम जा रहे हैं क्योंकि हमें जान प्यारी है। इतना कहकर उन वानर यूथपतियों ने विभिन्न दिशाओं की शरण ली। तब अंगद ने फिर सम्मान के साथ उन्हें लौटाया। उस समय वे अंगद से प्रसन्न हो सुग्रीव की आज्ञा की प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये और तुरन्त ही कुंभकर्ण का सामना करने के लिए रणक्षेत्र की ओर बढ़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

सरसठवाँ सर्ग

कुंभकर्ण का श्रीराम के हाथों बध

युद्ध की प्रचण्ड अभिलाषा से लौटे हुए वे वानर मरने की इच्छा करके बड़े हर्ष से आगे बढ़े और बड़े-बड़े पर्वत शिखर उठाकर कुम्भकर्ण पर धावा बोल दिया। परन्तु उस समय क्रोध से भरे कुंभकर्ण ने गदा उठाकर शत्रुओं को घायल करके उन्हें चारों ओर बिखेर दिया। उस मार से सात आठ सौ वानर धराशायी हो गये। लेकिन फिर भी वानर बड़ी कठिनाइयों से धैर्य धारण कर पर्वत शिखर हाथ में लेकर संग्राम भूमि में डटे रहे। तत्पश्चात् द्विविद ने एक पर्वत उखाड़कर कुंभकर्ण पर आक्रमण किया किन्तु वह पर्वत कुंभकर्ण तक न जाकर उसकी सेना में जा गिरा। उस पर्वत शिखर ने राक्षसों की सेना के कितने ही घोड़े हाथियों और दूसरे राक्षसों को कुचल डाला तब उन राक्षस सेना के रथियों ने गर्जते हुए वानर यूथपतियों के मस्तकों को काटना आरम्भ किया। उधर वानर भी बड़ी तेजी से राक्षसों का संहार करने लगे। तब हनुमानजी आकाश में जाकर उस पर पर्वत शिखरों, शिलाओं और नाना प्रकार के वृक्षों की वर्षा करने लगे। किन्तु कुंभकर्ण ने उन सबके टुकड़े टुकड़े कर डाले और अपना शूल लेकर वानरों की सेना पर हमला किया। यह देखकर हनुमानजी ने एक पर्वत शिखर हाथ में लेकर कुंभकर्ण के मस्तक पर बड़े वेग से प्रहार किया। इस वार से कुंभकर्ण का सारा शरीर रक्त से गीला हो गया। फिर तो उसने अपने बिजली के समान चमकने वाले शूल से हनुमानजी पर प्रहार कर उनकी छाती को विदीर्ण कर डाला। हनुमानजी भी इससे व्याकुल हो रक्त का वमन करने लगे। यह देखकर राक्षसों के हर्ष की सीमा न रही। इससे वानर सेना भयभीत होकर भागने लगीं। तब नील ने उस वानर सेना को धैर्य बंधाने के लिए कुंभकर्ण पर एक पर्वत का शिखर चलाया। किन्तु उस पर्वत शिखर को अपने ऊपर आता देख कुंभकर्ण ने उस पर मुक्के का आघात किया। जिससे वह शिखर चूर चूर होकर बिखर गया। तत्पश्चात् ऋषभ, शरभ, नील गवाक्ष और गंधमादन इन पांच प्रमुखों ने कुंभकर्ण पर धावा किया। वे महाबली कुंभकर्ण को चारों ओर से घेरकर उसे पर्वतों, वृक्षों, मुक्कों, और लातों से मारने लगे। यद्यपि वे कुंभकर्ण पर जोर जोर से प्रहार करते थे पर कुंभकर्ण को ऐसा लगता था मानों वे उसे धीरे से छू रहे हैं। इसी बीच उसने ऋषभ को अपनी दोनों भुजाओं में भर लिया। इससे ऋषभ के मुंह से खून बहने लगा और वे पृथ्वी पर गिर पड़े। फिर कुंभकर्ण ने शरभ को मुक्के से मारकर, नील को घुटने से रगड़ दिया

और गवाक्ष को थप्पड़ दे मारा। तत्पश्चात् गंधमादन को बड़े वेग से लात मारी। उसके प्रहार से व्यथित हुए वानर पलाश वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़े। उन वानरों के धराशायी होने पर हजारों वानर एक साथ कुंभकर्ण पर टूट पड़े और उसके ऊपर चढ़कर उसे दांतों से काटने लगे। तब जैसे गरूड़ साँप को अपना आहार बनाता है उसी प्रकार कुंभकर्ण वानरों पर प्रहार किया जिससे वे अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। अंगद के अचेत हो जाने पर कुंभकर्ण वही शूल लेकर सुग्रीव की ओर दौड़ा। उसे अपनी ओर आते देख सुग्रीव ने तुरंत उछलकर एक पर्वत शिखर उठा लिया और कुंभकर्ण पर धावा किया। अपने ऊपर आक्रमण करते देख कुंभकर्ण अपने सारे अंगों को फैला कर उस वानरराज के सामने खड़ा हो गया। उसे सामने देखकर सुग्रीव उससे बोले-राक्षस! तूने बहुत से वानरों को खाकर बड़ा दुष्कर्म किया है और कितने ही सैनिकों को अपना आहार बना लिया है। अब इन मामूली बंदरों को छोड़ दे और मेरे चलाए हुए इस पर्वत की एक ही चोट को सहन कर। यह सुनकर कुंभकर्ण बोला- तुम प्रजापति के पौत्र तथा ऋक्षराज के पुत्र हो। इसलिए इस तरह गरज रहे हो। उस समय सुग्रीव ने उस शैल शिखर को घुमाकर सहसा उसके ऊपर छोड़ दिया। इसके द्वारा उन्होंने कुंभकर्ण की छाती में गहरी चोट पहुंचायी। किन्तु उसके विशाल वक्षस्थल पर से टकराकर वह शिखर सहसा चूर चूर हो गया। यह देखकर सारे वानर शोक में डूब गये। तब कुंभकर्ण ने रोष में आकर बिजली के समान चमकनेवाले उस शूल को घुमाकर सुग्रीव के बध के लिए चलाया। किन्तु इसी बीच हनुमानजी ने उछलकर उस शूल को दोनों हाथों से पकड़ लिया और उसे वेगपूर्वक तोड़ डाला। हनुमानजी के द्वारा शूल को तोड़ा गया देखकर वानर सेना बड़े हर्ष से भर गयी और बारम्बार सिंहनाद करने लगी। यह देखकर वह राक्षस भय से थर्रा उठा। तब उसने मलय पर्वत का शिखर उठाकर सुग्रीव के निकट जा, उन पर दे मारा। उस शिखर से आहत हो वानरराज सुग्रीव अपनी सुध-बुध खो बैठे और युद्धभूमि में गिर पड़े। तत्पश्चात् कुंभकर्ण सुग्रीव के पास गया और उन्हें उठा लिया। वह सुग्रीव को हर ले गया। उन्हें लेकर वीर राक्षस राज लंका की ओर चल पड़ा। उस समय उसने मन ही मन यह मान लिया कि इनके मारे जाने से श्रीराम सहित यह सारी वानर सेना स्वतः नष्ट हो जाएगी। इधर वानर राज सुग्रीव के पकड़ लिए जाने पर बुद्धिमान पवन कुमार सोचने लगे कि सुग्रीव के इस प्रकार पकड़ लिए जाने पर मुझे क्या करना चाहिए। अब मैं पर्वताकार रूप धारण करके उस राक्षस का नाश कर डालूं अथवा मुक्कों से मार मार के

उस राक्षस का विनाश कर दूं। फिर जब वह मेरे हाथों मारा जाएगा तब मैं वानर राज सुग्रीव को छुड़ा लाऊँ अथवा वे अपने प्रयत्न से ही उसकी कैद से छुटकारा पा जाएंगे। मेरी समझ से उस चोट से अचेत हुए वानर राज सुग्रीव को अभी तक चेत नहीं हुआ है। लेकिन यदि मैं इन्हें छुड़ाता हूँ तो इससे उनके मन में खेद होगा। अब मुझे एक मुहुर्त तक उनके छूटने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। तब तक मैं भागी हुई वानर सेना को धैर्य बँधाता हूँ। ऐसा विचार कर हनुमानजी पुनः वानर सेना को आश्वासन देकर उन्हें भागने से रोक लिये। उधर लंका में वहाँ के निवासी कुंभकर्ण का फूलों की वर्षा करके स्वागत सत्कार करने लगे। इसी बीच सुग्रीव को धीरे धीरे होश आ गया। तब वे कुंभकर्ण की भुजाओं में दबे हुए सोचने लगे- इस प्रकार इस राक्षस की पकड़ में आकर कैसे इससे बदला ले सकता हूँ। अब मैं वही करूँगा जिससे वानरों का कार्य सिद्ध हो। ऐसा सोचकर सुग्रीव ने सहसा अपने तीखे नखों से कुंभकर्ण के दोनों कान नोच लिए और दाँतों से उसकी नाक काट ली। फिर अपने पैरों के नाखून से उस राक्षस की दोनों पसलियां फाड़ डालीं। इससे कुंभकर्ण का सारा शरीर लौहलुहान हो गया। फिर तो वह रोष में भर गया और सुग्रीव को भूमि पर पटकर कर उसे रगड़ने लगा। अन्य राक्षस भी उस पर सब ओर से चोट कर रहे थे। किंतु इसी बीच सुग्रीव सहसा गेंद की भांति तेजी से उछल पड़े और श्रीराम चंद्रजी से आ मिले। उस समय महाबली कुंभकर्ण अपनी नाक और कान कट जाने के कारण बहुत भयानक दिखलायी पड़ने लगा। उसने पुनः शत्रु के सामने जाकर युद्ध करने का विचार किया। फिर यह सोचकर कि उसके पास कोई हथियार नहीं हैं उसने अपने हाथों में एक बड़ा सा मुद्गर ले लिया। तदनन्तर कुंभकर्ण लंकापुरी से निकलकर वानर सेना को युद्ध स्थल में आहार बनाने लगा। उस समय भूखा होने के कारण वह रक्त और मांस के लिए लालायित हो रहा था। अब वह बड़ी उतावली के साथ बहुत से वानरों को समेटकर अपने मुँह में झोंकने लगा। तब उसके द्वारा भयभीत हुए वानर श्रीराम की शरण में गए। उधर कुंभकर्ण कुपित हो सौ वानरों को एक साथ अपनी दोनों भुजाओं में भरकर उन्हें अपना आहार बना लेता। उसके शरीर में उस समय चर्बी और रक्त लिपटे हुए थे। वह विशाल रूपधारी काल के समान वानरों पर शूलों की वर्षा कर रहा था। तब शत्रुओं का

संहार करनेवाले सुमित्रा कुमार लक्ष्मण उस राक्षस के साथ युद्ध करने लगे और कुपित होकर उसके शरीर पर सात बाण चला दिए। फिर दूसरे बाण लिए और उन्हें भी उस पर छोड़ दिया। लेकिन कुंभकर्ण ने लक्ष्मण के उस अस्त्र को निस्तेज कर दिया और लक्ष्मण का तिरस्कार करते हुए बोला- लक्ष्मण! मैं युद्ध में यमराज को बिना कष्ट उठाये ही जीत लेने की शक्ति रखता हूं। लेकिन इस समय तुमने मेरे साथ युद्ध करके अद्‌भुत वीरता का परिचय दिया। क्योंकि समर भूमि में जो मेरे सामने खड़ा रह जाए वह सचमुच प्रशंसा का पात्र है। ऐसे समय इन्द्र भी मेरे सामने नहीं ठहर सकते। लेकिन तुम बालक होकर अपने पराक्रम से मुझे संतुष्ट कर दिया है। अतः अब मैं तुम्हारी अनुमति लेकर युद्ध में श्रीराम के सम्मुख जाना चाहता हूँ। अब मैं केवल राम को मारना चाहता हूँ क्योंकि उनके मारे जाने पर सारी शत्रु सेना स्वतः मर जाएगी। तब कुंभकर्ण की ऐसी बात सुनकर लक्ष्मण रणभूमि में ठहाका मारकर हँस पड़े और उससे प्रशंसा मिश्रित वाणी में बोले- वीर कुंभकर्ण! तुम्हारे महान पौरूष के आगे इन्द्र आदि भी नहीं ठहर सके। तुम्हारा यह कथन बिलकुल सत्य है। मैंने स्वयं अपनी आँखों से तुम्हारा पराक्रम देख लिया है। अब ये रहे दशरथ नंदन भगवान् श्रीराम जो तुम्हारे सम्मुख पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हैं। लक्ष्मण की यह बात सुनकर कुंभकर्ण ने तुरंत लक्ष्मण को लांघकर श्रीराम पर ही संधान किया। उस समय वह अपने पैरों के धमाके से पृथ्वी कम्पित सी किए देता था। तब उसे आता देख श्रीराम ने रौद्रास्त्त का प्रयोग करके कुंभकर्ण के हृदय स्थल पर अनेक बाण मारे। तदनन्तर कुंभकर्ण श्रीराम के बाणों से घायल हो सहसा उन पर टूट पड़ा। उस समय कुंभकर्ण के मुख से आग की लपटें निकल रही थीं और व्याकुलता के कारण उसके हाथ से गदा छूटकर पृथ्वी पर गिर गई। इसके साथ ही उसके सारे आयुध भी भूमि पर बिखर गए। अब अपने पास कोई हथियार न देखकर उसने मुक्कों से वानरों का संहार आरम्भ किया फिर खून से लथपथ हो वानर भालुओं और राक्षसों को भी खाता हुआ चारों ओर दौड़ने लगा। इसी बीच उसने एक भयंकर पर्वत का शिखर उठाया और उसे रामचंद्रजी को लक्ष्य करके चला दिया। लेकिन श्री राम ने उस पर्वत शिखर को सात बाण मारकर बीच में ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया। किन्तु वह पर्वत

शिखर ने भूमि पर गिरते-गिरते भी दो सौ वानरों को धराशायी कर दिया। तब यह देखकर लक्ष्मण ने श्रीराम से कहा-यह राक्षस रक्त की गंध से मतवाला होकर अपने और राक्षसों में अब कोई भेद ही नहीं रख रहा है और दोनों ही पक्ष के योद्धाओं को खा रहा है। अतएव श्रेष्ठ वानर यूथपतियों में जो प्रधान लोग हैं वे सब ओर से इसके ऊपर चढ़ जाएं और इसके शरीर पर ही बैठे रहें। तब भारी मार से पीड़ित हो वह दूसरों वानरों को नहीं खा सकेगा। लक्ष्मण की यह बात सुनकर सभी वानर यूथपति हर्ष के साथ कुंभकर्ण पर चढ़ गए। किन्तु उनके चढ़ते ही कूंभकर्ण ने अपनी देह हिलाकर उन्हें उसी प्रकार गिरा दिया जैसे बिगड़ैल हाथी महावत को। यह देखकर श्रीराम एक उत्तम धनुष हाथ में लेकर उस रुष्ट हुए राक्षस की ओर दौड़ पड़े तथा बड़े वेग से उस पर धावा कर दिया। उस समय अत्यंत वीर वानरों ने उन्हें चारों ओर से घेर रखा था। अब जैसे ही उन्होंने देखा कि कुंभकर्ण मस्तक पर किरीट धारण किए हुए सब ओर धावा कर रहा है और उमड़ते हुए मेघ की तरह मुँह से रक्त की वर्षा कर रहा है। तब उसे देखकर श्रीराम ने अपना धनुष खींचा। किन्तु उस धनुष की टंकार सुनते ही कुंभकर्ण अत्यंत कुपित हो उठा और उसे सहन न कर सकने के कारण श्रीराम की ओर दौड़ पड़ा। उसे इस प्रकार अपनी ओर आते देख श्रीराम बोले-राक्षस राज! आओ मैं धनुष लेकर खड़ा हूँ। मुझे राक्षसों का विनाश करनेवाला समझो। अब तुम भी दो घड़ी में ही मरनेवाले हो। तब यह जानकर कि यही श्रीराम हैं कुंभकर्ण मेघ के समान गर्जना करता हुआ श्रीराम से बोला-राम! मुझे बिराध, कबन्ध और खर नहीं समझना। मैं मारीच और बाली भी नहीं हूँ। मैं कुंभकर्ण तुमसे लड़ने आया हू। श्रीराम! तुम इक्ष्वांकु वंश के वीर पुरुष हो अतः मेरे अंगों पर अपना पराकम दिखलाओं तुम्हारे बल विक्रम देखकर ही मैं तुम्हें खाऊँगा। कुंभकर्ण की यह बात सुनकर श्रीराम ने उस पर बहुत से बाण छोड़े। लेकिन उन बाणों की गहरी चोट खाकर भी वह राक्षस न तो क्षुब्ध ही हो सका न व्यथित ही। इसके विपरीत वह भयंकर और वेगशाली गदा चारों ओर घुमा-घुमाकर उनके बाणों के वेग को नष्ट करने लगा। यह देखकर भगवान श्रीराम ने वायब्य नामक दूसरा अस्त्र उस राक्षस पर चलाया और मुद्‌गर सहित उसकी दाहिनी बाँह काट डाली। तब तो बाँह कट जाने पर वह राक्षस भयानक आवाज से

चीत्कार करने लगा। लेकिन इधर श्री रघुनाथजी के द्वारा काटी गई बाँह मुदगरोंसमेत वानरों की सेना में जा गिरी। जिसके नीचे दबकर कितने ही वानर सैनिक अपने प्राणों से हाथ धो बैठे। उस समय एक बाँह कट जाने पर कुंभकर्ण शिखर हीन पर्वत के समान प्रतीत होने लगा। तदनन्तर उसने एक ही हाथ से एक ताड़ का वृक्ष उखाड़ लिया और श्रीराम पर धावा किया। तब श्रीराम ने एक सुवर्ण भूषित बाण निकालकर उसे ऐन्द्रास्त्र से विभूषित किया और उसके द्वारा राक्षस की दूसरी बाँह को भी वृक्ष सहित काट गिराया। उन दोनों भुजाओं के कट जाने पर वह राक्षससहसाआर्तनाद करता हुआ श्रीराम पर टूट पड़ा। उसे आक्रमण करते देख श्रीराम ने दो तीखे अर्द्धचंद्राकार बाण लेकर कुंभकर्ण के दोनों पैर भी उड़ा दिये। तब दोनों बाँहों और पैरों के कट जाने पर उसने अपना विकराल मुख फैलाया और राम को पाने के लिए उन पर टूट पड़ा। उस समय श्रीराम ने सुवर्ण जड़ित पंखवाले अपने तीखे बाणों से उसका मुँह भर दिया। उस समय मुँह भर जाने से वह बोलने में भी असमर्थ हो गया और बड़ी कठिनाई से आर्तनाद करता हुआ मूर्च्छित हो गया। इसके बाद भगवान् श्रीराम ने ब्रह्मदंड के समान एक भयंकर बाण लेकर उस निशाचर पर छोड़ दिया। वह बाण अपनी प्रभा से दसों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ बड़े बेग से चला और कुंभकर्ण के मस्तक को धड़ से अलग कर दिया। उस समय श्रीराम के बाणों से कटा हुआ मस्तक लंका में जा गिरा और अपने धक्के से सड़क के आसपास कितने मकानों और दरवाजों को धराशायी कर दिया। उसी प्रकार उस राक्षस का विशाल धड़ भी जो हिमालय के समान जान पड़ता था तत्काल समुद्र के जल में गिर पड़ा और बड़े-बड़े ग्रहों, मत्स्यों को पीसता हुआ समुद्र के भीतर समा गया। उसको इस तरह मरते देख सारे देवता हर्ष से तुमुलनाद करने लगे। देव समूह को दुख देने वाले कुंभकर्ण के बध होते ही बहुसंख्यक वानरों को बड़ी प्रसन्नता हुई। कुंभकर्ण को रणभूमि में मारकर रघुनाथजी उसी प्रकार हर्ष से भर उठे जैसे वृत्रासुर को मारकर इन्द्र।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६७)

अड़सठवाँ सर्ग

कुंभकर्ण के वध का समाचार सुनकर रावण का विलाप करना।

कुंभकर्ण का राम के द्वारा बध होने पर सभी राक्षस रावण के पास जाकर बोले- महाराज! महाबली कुंभकर्ण वानरों को अपना आहार बनाकर स्वयं भी काल के गाल में चले गये। उनका धड़ समुद्र में समा गया है और मस्तक लंका के द्वार पर पड़ा है। पराक्रमी कुंभकर्ण मारा गया। यह सुनकर रावण शोक में मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने चाचा के निधन के समाचर से देवांतक, नरांतक, त्रिशिरा और अतिकाय भी दुख से पीड़ित होकर फूट-फूटकर रोने लगे। फिर रावण भी चेत आने पर रो-रोकर कहने लगा-हा महाबली कुंभकर्ण। तुम शत्रुओं के दर्प को चूर करनेवाले थे किन्तुअसमय मेंही मुझे असहाय छोड़कर यमलोक चले गये। इस समय मैं नहीं के बराबर हूँ। क्योंकि मेरा दाहिना हाथ कुंभकर्ण धाराशायी हो गया है। भाई! तुम्हें तो बज्र का प्रहार भी कभी कष्ट नहीं पहुँचा सकता था। वही आज राम के बाणों से आहत हो कैसे भूतल पर सो गये हो। तुम्हारे मारे जाने से देवता भी आज हर्षित हो रहे हैं। निश्चय ही अब अवसर पाकर सारे वानर लंका के दुर्गम द्वारों पर चढ़ आयेंगे। अब मुझे न राज्य से कोई मतलब है, न सीता से क्योंकि कुंभकर्ण के बिना मेरे जीने का मन ही नहीं अब मेरा भी मर जाना ही अच्छा है। मैंने विभीषण की कही हुई बातों को अस्वीकार किया था। अब वही अप्रत्यक्ष रूप से मेरे ऊपर घटित हो रहा है। मैंने धर्म परायण विभीषण को घर से निकाल दिया था उसी कर्म का शोकदायक परिणाम यह मुझे भोगना पड़ रहा है। इस प्रकार छोटे भाई कुंभकर्ण के लिए विलाप करते हुए रावण व्यथित होकर पुनः पृथ्वी पर गिर पड़ा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकिं निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ (६८)

उनहत्तरवाँ सर्ग

रावण के पुत्रों और भाइयों का युद्ध के लिए आना

रावण को इस तरह विलाप करते देख त्रिशिरा ने कहा-राजन्! इसमें संदेह नहीं कि हमारे मझले चाचा कुंभकर्ण महान् पराक्रमी थे। किन्तु आप

उनके लिए जिस प्रकार विलाप कर रहे थे वह आपको शोभा नहीं देता। प्रभो! आप तीनों लोकों से लोहा लेने की शक्ति रखते हैं क्योंकि आपके पास ब्रह्मा जी की दी हुई शक्ति, कवच तथा धनुषबाण हैं। मेघ गर्जना के समान शब्द करनेवाले रथ भी हैं। आपने एक ही शस्त्र से दवता और दावनों को अनेक बार पछाड़ा है। अतः आप इसी तरह राम को भी दण्ड दे सकते हैं। महाराज आपकी इच्छा हो तो आप यही रहें और युद्ध के लिए मैं जाऊँगाऔर शत्रु को जड़ से उखाड़ फेकूंगा। त्रिशिरा की यह बात सुनकर रावण को इतना संतोष हुआ कि उसने अपना नया जन्म-सा हुआ माना। त्रिशिरा की यह बात सुनकर देवांतक, नरातक और अतिकाय भी युद्ध में जाने के लिए उत्साहित हो उठे। वे सबके सब माया विशारद तथा देवताओं का भी दर्प दलन करने वाले राक्षस थे। उन सबको शस्त्रों और शास्त्रों का उत्तम ज्ञान था तथा सब ने तपस्या द्वारा वरदान प्राप्त किये थे। तब रावण ने यह सुनकर अपने पुत्रों को हृदय से लगाकर उन्हें नाना प्रकार के आभूषणों से विभूषित किया। फिर उन्हें आशीर्वाद देकर रणभूमि में भेजा। रावण ने अपने पुत्रों की रक्षा के लिए महापार्श्व और महोदर को भी उनके साथ भेजा। उस समय महोदर ऐरावत कुल में उतपन्न हुआ सुदर्शन नामक हाथी पर बैठा। राजकुमार त्रिशिरा एक उत्तम रथ पर सवार हुआ। उस रथ में सवार हो तीन किरीटों से युक्त पुत्र अतिकाय भी एक उत्तम रथ पर सवार हुआ। वह आभूषणों से विभूषित हो अपनी प्रभा से ही प्रकाश का विस्तार करता हुआ मेरू पर्वत के समान सुशोभित हो रहा था। नरांतक उच्चैःश्रवा के समान श्वेतवर्णवाले एक वेगशाली अश्व पर सवार हुआ। देवांतक स्वर्णभूमि परिघ लेकर समुद्रमंथन के समय दोनों हाथों से मंदराचल उठाए हुए भगवान् विष्णु जैसा प्रतीत हो रहा था। महापार्श्व हाथ में गदा लेकर युद्ध स्थल में गदाधारी कुबेर की तरह शोभा पा रहा था। तब आज या तो हम शत्रुओं को परास्त कर देंगे या स्वयं ही मृत्यु की गोद में सदा के लिए सो जाएंगे। ऐसा विचार कर वे वीर राक्षस युद्ध के लिए आगे बढ़े। ये युद्ध विशारद निशाचर गर्जते, सिंहनाद करते और बाण हाथ में लेकर उन्हें शत्रुओं पर छोड़ देते। उन राक्षसों के गर्जने, ताल ठोंकने और सिंहनाद करने से पृथ्वी कंपित होने लगी और आकाश फटने-सा लगा। तत्पश्चात् नगर सीमा से बाहर निकलकर उन राक्षसों ने वानर

सेना को पर्वत शिखर और बड़े-बड़े वृक्ष उठाए हुए युद्ध के लिए तैयार खड़ी हुई देखा। उस समय महाबली वानरों ने भी राक्षस सेना की ओर दृष्टिपात किया। तब निशाचरों की उस सेना को आती हुई देखकर सारे वानर प्रहार करने का अवसर पाकर बारम्बार गर्जना करने लगे। वानर यूथपतियों का यह उच्च स्वर से किया हुआ गर्जन -तर्जन सुनकर राक्षस गण उसे सहन न कर सके और स्वयं भी भीषण सिंहनाद करने लगे। उस समय राक्षसों और वानरों के उस युद्ध ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। राक्षसों ने जब बाण समूहों की वर्षा द्वारा वानरों को आगे बढ़ने से रोका तब वे भयंकर पराक्रमी वानर उन पर वृक्षों, शिलाओं और शैल शिखरों की अनुपम वर्षा करने लगे। राक्षस और वानर दोनों ही युद्ध में सिंह के समान दहाड़ मार रहे थे। युद्ध स्थल में कितने ही कुपित हुए वानरों ने राक्षसों को शिलाओं की मार से कुचल दिया। उस समय प्रधान-प्रधान राक्षसों के शरीर पर्वत शिखरों से ढंक गये। तब उन पर्वत शिखरों और वानरों के मुक्कों की मार खाकर बहुत से राक्षसों की आंखें बाहर निकल आई थी। तब उस समय राक्षसों ने भी अपने पैने बाणों से बहुत से वानर शिरोमणियों को विदीर्ण कर दिया और बहुतों को शूलों, मुद्गरों, खंगों, प्रासों और शक्तियों से मार गिराया। थोड़ी ही देर में वह युद्ध भूमि वानरों और राक्षसों द्वारा चलाए गए पर्वत शिखरों तक तलवारों से आच्छादित हो रक्त प्रवाह से सिंच गई। उस समय राक्षसों द्वारा शैल शिखरों को तोड़ फोड़ दिये जाने पर वे सब वानर राक्षसों के अत्यंत निकट जाकर अपने हाथ पैरों के द्वारा ही अद्भुत युद्ध करने लगे। इससे राक्षसों के शरीर के कवच आदि छिन्न-भिन्न हो गये। और उनके शरीर से उसी प्रकार रक्त बहने लगा जैसे पेड़ अपने तनों से गोंद बहाया करते हैं। वानरों की सारी चेष्टाएं गर्व से भरी तथा हर्ष और उत्साह से युक्त थीं। इस प्रकार भयंकर मार-काट मचाते हुए वे राक्षसों की लाशें गिरा रहे थे। राक्षसों को इस प्रकार मरते हुए देखकर महर्षि तथा देवगण हर्षनाद करने लगे। तत्पश्चात् वायु के समान तीव्र घोड़े पर सवार हो, हाथ में तीखी शक्ति लिए नरांतक ने वानरों की सेना में घुसकर अकेले ही सात-सौ वानरों को चीर डाला और क्षण भर में वानर यूथपतियों की एक बड़ी सेना का संहार कर डाला। वह जिस मार्ग से निकल जाता वही स्थल धराशायी हुए पर्वताकार वानरों से ढंका हुआ दिखाई

Mookerji sharma ... Jammu Collection

देता और वहां रक्त तथा मांस की कीच मच जाती थी। वानर जब तक वृक्ष और पर्वत शिखरों को उखाड़ते तब तक वे भाले की चोट खाकर बज्र के मारे हुए पर्वत की भांति ढह जाते। उस समय वानर वीर भय के मारे न तो भाग पाते न खड़े रह पाते थे। नरांतक उस समय भी पड़े हुए और जाते हुए वानरों पर भाले की चोट कर देता था। उसके एक ही भाले की मार से झुंड के झुंड वानर धरती पर सो गये। जब सुग्रीव ने देखा कि वानरों की सेना नरांतक से भयभीत होकर भाग रही है तो उन्होंने अंगद से कहा-बेटा वह जो घोड़े पर बैठा हुआ वानर सेना में हलचल मचा रहा है उसका जाकर सामना करो और उसके प्राणों का अंत कर दो। तब अंगद, जिनके पास कोई हथियार न था और केवल नख और दाढ़ ही जिनके अस्त्र-शस्त्र थे, नरांतक के पास पहुंचकर बोले- ओ निशाचर! ठहर जा, इन साधारण बंदरों को मारकर तू क्या करेगा ? तेरे भाले की चोट बज्र की तरह असह्य है किन्तु जरा तू इसको मेरी छाती पर तो मार। अंगद की यह बात सुनकर नरांतक लंबी सांस लेता हुआ बालिपुत्र अंगद के पास आकर खड़ा हो गया और अपने भाले को घुमाकर उसे अंगद पर दे मारा। बालिपुत्र अंगद का वक्षस्थल बज्र की तरह कठोर था। नरांतक का भाला उससे टकराकर टूट गया और जमीन पर जा गिरा। तब अंगद ने नरांतक के घोड़े के मस्तक पर बड़े जोर से थप्पड़ मारा। इस प्रहार से घोड़े का सिर कट गया, पैर नीचे को धंस गये, आँखें फूट गईं और जीभ बाहर निकल आई। इस तरह वह अश्व प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। घोड़े की मृत्यु से नरांतक के क्रोध की सीमा न रही। उसने भी तत्काल एक मुक्का तानकर अंगद के मस्तक पर मारा। मुक्के की मार से अंगद का सिर फूट गया। उससे गर्म-गर्म खून की धारा बहने लगी और वे मूर्च्छित हो गये। पर थोड़ी ही देर में होश आते ही वे उस राक्षस की शक्ति देखकर आश्चर्यचकित रह गये। फिर अंगद ने अपना ऐसा मुक्का ताना जिसका वेग मृत्यु के समान था। मुक्के से अंगद ने नरांतक की छाती पर प्रहार किया। मुक्के के आघात से नरांतक का हृदय विदीर्ण हो गया और वह बज्र के मारे हुए पर्वत की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ा। नरांतक के मारे जाने पर वानरों और देवताओं ने बड़ा हर्षनाद किया। श्रीराम को हर्ष पहुँचाने वाले इस महान् कार्य को करने के पश्चात् अंगद पुनः युद्ध के लिए हर्ष और उत्साह से

भर उठे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६९)

सत्तरवाँ सर्ग

त्रिशिरा, महोदर तथा महापार्श्व का बध

नरान्तक के मारे जाने पर देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर ये श्रेष्ठ राक्षस हाहाकार करने लगे। तब महोदर, देवान्तक, और त्रिशिरा ने एक साथ अंगद पर आक्रमण कर दिया। उस समय अंगद ने विशाल शाखाओं से भरे हुए एक पेड़ को उखाड़ लिया और देवान्तक को दे मारा। किन्तु त्रिशिरा ने अपने भयंकर बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। यह देखकर अंगद त्रिशिरा पर वृक्षों और शिलाओं की वर्षाकरने लगे। किन्तु महोदर ने अपने परिघ से उसे तोड़ फोड़ डाला और अपने परिघ तथा सायकों से अंगद को चोट पहुँचाई। लेकिन अंगद के मन में उन तीनों के एक साथ धावा करने पर भी कोई व्यथा न हुई बल्कि उन्होंने महान वेग प्रकट करके महोदर के हाथी के मस्तक पर जोर से थप्पड़ मारा जिससे हाथी की दोनों आँखें निकलकर पृथ्वी पर गिर गईं और वह तत्काल मर गया। फिर अंगद ने उस हाथी का एक दाँत उखाड़ लिया और उसी से देवान्तक पर चोट की। देवान्तक इस चोट से काँपने लगा और उसके शरीर से खून बहने लगा। तब उसने बड़ी मुश्किल से अपनी परिघ उठाकर अंगद पर दे मारी। उसी समय त्रिशिरा ने भी अपने बाणों द्वारा अंगद के ललाट पर चोट पहुँचाई। इसी समय अंगद की सहायता के लिए हनुमान और नील भी आ पहुँचे। अंगद को निशाचरों से घिरा देख नील ने त्रिशिरा पर एक पर्वत शिखर चलाया किन्तु त्रिशिरा ने अपने बाणों से उसे विदीर्ण कर दिया। इससे उत्साहित हो देवान्तक ने अपने परिघ से हनुमान जी पर धावा किया। हनुमान जी ने उछलकर अपना बज्र सरीखे मुक्के से देवान्तक के मस्तक पर प्रहार किया। इससे देवान्तक का मस्तक फट गया और वह प्राण शून्य हो पृथ्वी पर गिर पड़ा। देवान्तक के मरने के पश्चात् त्रिशिरा को बड़ा क्रोध हुआ और उसने नील की छाती पर अपने पैने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। देवान्तक की मृत्यु से महोदर ने भी

कुपित हो नील पर बाणों की वर्षा की। इन बाण समूहों के निरन्तर वर्षाहोने से नील मूर्छित हो गया किन्तु पुनः होश आने पर उसने तुरन्त वृक्ष समूहों से भरा हुआ एक शैल शिखर उखाड़ लिया और उसे महोदर के मस्तक पर दे मारा। उसके आघात से महोदर प्राण शून्य होकर पृथ्वी पर कटे वृक्ष की भाँति गिर पड़ा। अब महोदर की मृत्यु से त्रिशिरा के क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल धनुष हाथ में लेकर हनुमान जी को पैने बाणों से बींधना शुरू किया। तब पवनकुमार ने कुपित होकर उसके ऊपर पर्वत शिखर चलाया। किन्तु त्रिशिरा ने अपने बाणों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस प्रहार को व्यर्थ हुआ देख हनुमान जी ने त्रिशिरा के ऊपर वृक्षों की वर्षा आरम्भ की। किन्तु त्रिशिरा ने उन वृक्षों की वर्षा को अपने पैने बाणों से छिन्न-भिन्न कर दिया। तब हनुमान जी कूदकर त्रिशिरा के पास जा पहुँचे और उसके घोड़े को अपने नखों से विदीर्ण कर डाला। यह देखकर त्रिशिरा ने हाथ में शक्ति लेकर उसे पवनकुमार पर चला दिया किन्तु हनुमान जी ने उसे शरीर में लगने के पहले ही पकड़ लिया और उसे तोड़-फोड़ डाला। तब त्रिशिरा ने हाथ में तलवार लेकर हनुमान जी की छाती पर भरपूर चोट की। इससे घायल होकर हनुमान जी ने उल्टे त्रिशिरा की छाती पर एक तमाचा जड़ दिया। इसे सह न सकने के कारण त्रिशिरा अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह देखकर हनुमानजी ने भयंकर गर्जना की। किन्तु हनुमान जी की यह गर्जना राक्षस से न सही गई और वह तुरन्त उछलकर खड़ा हो गया। हनुमान जी को एक मुक्का मारा। इससे हनुमान जी को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने उस राक्षस का मस्तक पकड़ लिया और उसके तीनों मस्तकों को अपनी तलवार से काट डाला। अब त्रिशिरा के मरने पर सभी वानर हर्षनाद करने लगे। त्रिशिरा, महोदर, देवान्तक तथा नरान्तक को काल के गाल में गया हुआ जानकर महापर्श्व ने कुपित होकर एक तेजस्विनी गदा हाथ में ले ली और वानरों की ओर दौड़ पड़ा। तब ऋषभ नामक बलवान् वानर उछलकर महापार्श्व के सामने आकर खड़े हो गए। उस समय ऋषभ को सामने खड़े देखकर महापार्श्व ने अपने बज्रतुल्य गदा से उसकी छाती पर प्रहार किया। इससे ऋषभ की छाती क्षत-विक्षत हो गयी और वे कांप उठे। तत्पश्चात् होश आने पर ऋषभ ने कुपित होकर एक मुक्का तानकर महापार्श्व की छाती पर प्रहार किया। फिर तो

महापार्श्व कटे हुए वृक्ष की भाँति सहसा पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसी समय ऋषभ उसकी गदा हाथ में लेकर भयंकर गर्जना करने लगे। महापार्श्व दो घड़ी तक मुर्दों की भाँति पड़ा रहा और फिर होश आने पर उछलकर खड़ा हो गया और ऋषभ को गहरी चोट पहुँचाई। उस चोट से ऋषभ मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। दो घड़ी के बाद उन्होंने उठकर महापार्श्व की उसी गदा को घुमाकर उसी निशाचर पर दे मारी। फिर तो वह रक्त बहाता हुआ बज्र के मारे हुए पर्वत शिखर की भाँति तत्काल धराशायी हो गया और उसकी जीवन लीला समाप्त हो गई। अब महापार्श्व के मरते ही राक्षसों की वह विशाल सेनाहथियार फेंककर चारों ओर भागने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७०)

इकहत्तरवाँ सर्ग

अतिकाय का भयंकर युद्ध और लक्ष्मण द्वारा उसका बध

अतिकाय ने जब सुना कि उसके भाई और उसके चाचाओं (महोदर और महापार्श्व) का संहार हो गया है तब उस महातेजस्वी निशाचर को बड़ा क्रोध आया। उसे ब्रह्मा जी से वरदान प्राप्त हुआ था। उसने तत्काल सहस्रों सूर्यों के समूह की भाँति देदीप्यमान तेजस्वी रथ पर आरूढ़ होकर वानरों पर धावा किया। फिर धनुष की टंकार करके अपना नाम सुनाया और बड़े जोर से गर्जना की। उसके शरीर की विशालता देखकर वानर ऐसा मानने लगे कि कुंभकर्ण पुनः उठकर खड़ा हो गया और इससे भयभीत होकर वे एक दूसरे का सहारा लेने लगे। वानरों के चित्त पर मोह छा जाने के कारण वे शरणागत् वत्सल भगवान श्रीराम के शरण में गए। उस समय अतिकाय को आता देखकर श्रीराम को भी बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने वानरों को सान्त्वना देते हुए विभीषण से पूछा- विभीष ! यह रथ पर बैठा हुआ पर्वताकार निशाचर कौन है ? इसकी आँखें सिंह के समान तेजस्वी हैं तथा इसका शूल महादेव जी के शूल के समान तीखा है। यह बिजलियों से घिरे हुए मेघ के समान प्रकाशित हो रहा है। इसके पताका में राहु का चिह्न अंकित है तथा सूर्य के किरणों के समान इसके चमकीले बाण दसों दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी

Mookerji s... JAMMU Collection

प्रत्यंचा से मेघों की गर्जना के समान टंकार ध्वनि प्रकट होती है। गले में लाल रंग की माला धारण किए और महान् पर्वत के समान आकारवाला यह धीर-वीर निशाचर, जो काले रंग का दिखाई देता है तथा जिसका विशाल मुख काल के मुख के समान भयंकर है यह कौन है? इसकी बाँहों में सोने के बाजूबंद बँधे हैं और उन भुजाओं के द्वारा यह विशालकाय निशाचर दो ऊँचे शिखरों से युक्त गिरिराज हिमालय के समान शोभा पाता है। महाबाहो ! तुम मुझे इस श्रेष्ठ राक्षस का परिचय दो। तब विभीषण श्रीराम से बोले-भगवन् ! यह रावण का ही पराक्रमी पुत्र अतिकाय है। यह वृद्ध पुरुषों की सेवा करनेवाला, वेद, शास्त्रों का ज्ञाता तथा अस्त्र वेत्ताओं में श्रेष्ठ है। इसी के बाहुबल का सहारा लेकर लंका निर्भय रहती आई है। इसका नाम अतिकाय है। इसने ब्रह्माजी की आराधना करके अनेक दिव्यास्त्र प्राप्त किए हैं और उनसे बहुत से शत्रुओं को पराजित किया है। ब्रह्मा जी उसे देवताओं और असुरों से न मारे जाने का वरदान दिया है। इसने अपने बाणों द्वारा इन्द्र के बज्र और वरुण के पाश को भी सफल नहीं होने दिया। पुरुषोत्तम ! यह अपने सायकों द्वारा वानर सेना का संहार करे इससे पहले आप ही इस राक्षस को परास्त करने का प्रयत्न करें। विभीषण श्रीराम से इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि अतिकाय वानरों की सेना में घुस आया और गर्जना करता हुआ अपने धनुष को टंकार देने लगा। तब उस राक्षस को आते देख कुमुद, द्विविद, मैंद, नील और शरभ आदि श्रेष्ठ वानर पर्वत शिखर धारण किए हुए एक साथ उस पर टूट पड़े। किन्तु अतिकाय ने अपने बाणों से शत्रुओं द्वारा चलाए हुए उन तमाम पर्वत शिखरों और वृक्षों को बींध डाला। फिर तो उससे सबने हार मान ली। इसी बीच धनुष और तरकस धारण किए हुए निशाचर श्रीराम के पास आ पहुँचा और गर्व से इस प्रकार बोला- मैं धनुष और बाण लेकर रथ पर बैठा हूँ। किसी साधारण प्राणी से मेरा युद्ध करने का विचार नहीं। जिसके अंदर पराक्रम हो वही आकर मुझसे युद्ध करे। उसकी यह बात सुनकर लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और वे तुरन्त धनुष उठाकर अतिकाय के सामने आकर अपने धनुष को खींचने लगे। उस समय लक्ष्मण के धनुष की भयानक टंकार सुनकर अतिकाय को बड़ा विस्मय हुआ और वह रोष में भरकर लक्ष्मण से इस प्रकार बोला- लक्ष्मण ! तुम अभी बालक हो। पराक्रम करने में

कुशल नहीं हो। मेरे जैसे काल के समान राक्षस से तुम जूझने की इच्छा क्यों रखते हो। मेरे तीरों का वेग हिमालय भी नहीं सह सकता। अतः तुम धनुष छोड़कर लौट जाओ और अपने प्राणों को न गवांओ। यदि अपने अहंकार के कारण लौटना नहीं चाहते तो खड़े रहो। तुम अभी यमलोक की यात्रा करोगे। मेरे ये तीखे बाण जो सुवर्ण से विभूषित हैं, भगवान् शंकर के त्रिशूल की समानता रखते हैं। ये बाण ही तुम्हारे खून पियेंगे। अतिकाय का यह वचन सुनकर सुमित्रा कुमार लक्ष्मण को भी बड़ा क्रोध आया और वे कहने लगे- दुरात्मन्! केवल वचनों से आदमी बड़ा नहीं होता। अब तू धनुष बाण लेकर मेरे सामने खड़ा हो जा और पौरुष दिखला। तुम्हारा सारा पराक्रम देख लेने के बाद मैं तेरे मस्तक को अपने बाणों से उसी प्रकार काट गिराऊँगा जैसे वायु पके हुए ताड़ के फल को उसके वृक्ष से नीचे गिरा देती है। आज मेरे बाण तेरे शरीर के रक्त का पान करेंगे। तू मुझे बालक न समझ बल्कि अपना काल समझ। वामन रूप धारी भगवान् विष्णु देखने में बालक ही तो थे किन्तु अपने तीन ही पगों से उन्होंने समूची त्रिलोकी नाप ली। लक्ष्मण के वचन सुनकर अतिकाय के क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल अपने धनुष पर बाण रखकर उसे लक्ष्मण पर चला दिया। तब लक्ष्मण ने एक अर्धचन्द्राकार बाण को अपनी ओर आते देख उसे सर्प के तुल्य एक तीखे बाण से काट डाला। उस बाण को खंडित हुए देख अतिकाय कुपित हो उठा। और उसने तत्काल अपने पाँच बाणों को धनुष पर रखा। पर वे बाण अभी छूट भी नहीं पाए थे कि लक्ष्मण ने अपने पैने सायकों से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर लक्ष्मण ने तुरन्त एक तेज बाण अपने हाथों में लिया और उसे धनुष पर चढ़ाकर अतिकाय पर छोड़ दिया। उस बाण ने जाकर अतिकाय के ललाट में गहरा आघात किया। लक्ष्मण के बाण से पीड़ित हो कर अतिकाय काँप उठा। पर शीघ्र ही सम्हलकर वह राक्षस बोला- शाबास! इस प्रकार अमोघ बाण का प्रयोग करके तुमने बराबरी की शत्रुता दिखलाई है। इतना कहकर अतिकाय रथ पर ही सवार होकर आगे बड़ा। उस समय उस राक्षस वीर ने क्रमशः एक, तीन, पाँच और सात सायकों को लेकर धनुष पर चढ़ाया और उन्हें वेग पूर्वक चला दिया। परन्तु लक्ष्मण ने बिना किसी घबराहट के उन बाण समूहों को तेज धारवाले बहुसंख्यक सायकों द्वारा काट गिराया। उन बाणों के कट जाने से अतिकाय को

Mookerji Sharma (T S) Jammu Collection

बड़ा क्रोध हुआ और उसने झट एक तीखा बाण हाथ में लिया और लक्ष्मण की छाती में आघात किया। इससे लक्ष्मण की छाती से तीव्र गति से रक्त बहने लगा। किन्तु सामर्थ्यशाली लक्ष्मण ने उन बाणों को अपनी छाती से निकाल कर एक तीखा सायक अपने हाथों में लिया एवं उसे दिव्यास्त्र से संयोजित करके आग्नेयास्त्र से अभिमन्त्रित किया। फिर उस सर्वशक्ति से सम्पन्न हुए बाण को अतिकाय के ऊपर चला दिया। तब आग्नेयास्त्र से अभिमंत्रित उस बाण को अपनी ओर आते देख निशाचर अतिकाय ने तत्काल अपने भयंकर बाण को सूर्यास्त्र से अभिमंत्रित करके चलाया। किन्तु वे दोनों बाण मार्ग में ही आपस में टकराकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तदनन्तर अतिकाय ने कुपित होकर त्वष्टा देवता के मंत्र से अभिमंत्रित करके एक सींक का बाण छोड़ा। परन्तु लक्ष्मण ने उसे ऐन्द्रास्त्र से काट दिया। सींक के बाण को इस तरह नष्ट होते देख अतिकाय के क्रोध की सीमा न रही। तब उसने एक सायक को याम्यास्त्र से अभिमंत्रित किया और उसे लक्ष्मण पर चला दिया। किन्तु लक्ष्मण ने उसे वायव्यास्त्र द्वारा नष्ट कर दिया और शीघ्र अतिकाय पर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। अतिकाय ने उस समय एक दिव्य कवच बाँध रखा था। लक्ष्मण के बाण अतिकाय तक पहुँचकर उसके कवच से टकरा कर पृथ्वी पर गिर जाते। उन बाणों के असफल होते ही उस राक्षस ने भी लक्ष्मण पर भयंकर बाणों की वर्षा की। उन बाणों से सुमित्रा कुमार के मर्म स्थल पर बड़ी चोट पहुँची और वे दो घड़ी तक अचेतनावस्था में पड़े रहे। होश आने पर लक्ष्मण ने बाणों की वर्षा कर शत्रु के रथ की ध्वजा को काट कर गिरा दिया और चार उत्तम सायकों से रणभूमि में उसके घोड़ों और सारथी को भी यमलोक पहुँचा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने राक्षस के बध के लिए अनेक अमोघ बाण छोड़े किन्तु वे राक्षस के शरीर को वेध न सके। तदनन्तर वायु देवता ने उनके पास आकर कहा- सुमित्राकुमार! यह राक्षस ब्रह्माजी के वरदान के कारण अमोघ कवच से ढंका है। अतः बह्मास्त्र से इसे विदीर्ण कर डालो अन्यथा यह मारा नहीं जा सकेगा। वायु देवता की बात सुनकर लक्ष्मण ने एक बाण को ब्रह्मास्त्र से अभिमंत्रित करके धनुष पर रखा और उस अभिमंत्रित बाण को रावण के बेटे अतिकाय पर चला दिया। लक्ष्मण के उस बाण का वेग बहुत तेज था। इसलिए उसे देखकर जब अतिकाय ने उस पर

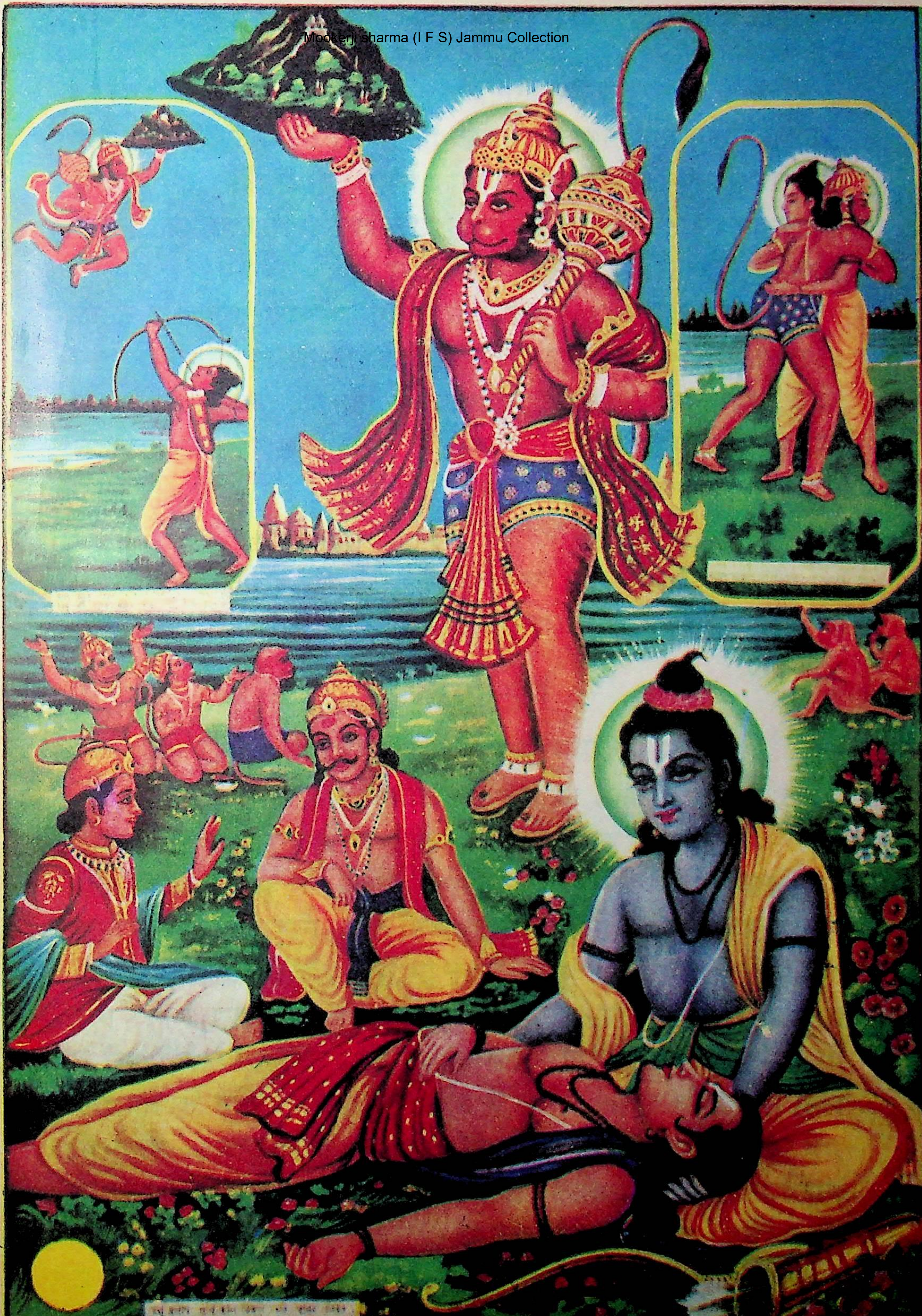

लक्ष्मण शक्ति

बहुत से पैने बाण चलाए तो भी वह रुका नहीं तथा बड़े वेग से अतिकाय के पास आ पहुँचा। लेकिन इस पर भी अतिकाय अधीर नहीं हुआ और उसे शक्ति, गदा आदि से नष्ट करने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु अग्नि के समान प्रज्वलित बाण ने उसके सभी अस्त्रों को व्यर्थ करते हुए उसके मस्तक को धड़ से अलग कर दिया। उसका धड़ सहसा पृथ्वी पर आ गिरा और उसके वस्त्र तथा आभूषण सब ओर बिखर गए। उसके मरते ही सारे निशाचर व्यथित हो उठे और वे विकृत स्वरों से जोर-जोर से चिल्लाने लगे। तत्पश्चात् उत्साहहीन होकर वे सब लंकापुरी की ओर भाग गये। इधर दुर्जय शत्रु के मारे जाने से सभी वानर हर्ष से भरकर लक्ष्मण की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उस समय वानर समूह से सम्मानित हो वे तुरन्त श्रीराम के पास गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७१)

बहत्तरवाँ सर्ग

रावण की चिंता और पुरी के रक्षा का प्रबंध

लक्ष्मण के द्वारा अतिकाय के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण उद्विग्न हो उठा और बोला- ये महाबली राक्षस जो युद्ध में कभी पराजित नहीं होते थे आज राम के द्वारा उनका संहार हो गया है। मेरे बेटे इन्द्रजित् ने उन दोनों भाइयों को वरदान स्वरूप मिले हुए नागपाश में बाँध भी लिया था और जिसका बंधन देवता और असुर भी नहीं खोल सकते थे, उससे वें दोनों भाई राम लक्ष्मण न जाने कैसे मुक्त हो गए। मेरी आज्ञा पाकर जो-जो राक्षस युद्ध के लिए निकले उन सबको महाबली वानरों ने मार गिराया। अब मैं किसी ऐसे वीर को नहीं देख रहा हूँ जो युद्ध में लक्ष्मण सहित श्रीराम को और विभीषण को नष्ट कर दे। निश्चय ही राम का बल महान् है। मैं उन वीर रघुनाथ को साक्षात नारायण का रूप मानता हूँ। राक्षसों! अब तुम सावधान रहकर इस पुरी की तथा उस बाटिका की जहाँ सीता रखी गई है, विशेष रूप से रक्षा करना। अशोक बाटिका में कब कौन आता जाता है इस पर भी अच्छी तरह ध्यान रखना। वानरों की ओर से कभी उपेक्षा नहीं रखना चाहिए। तुम

Mookerji Sharma (RSS) Jammu Collection

लोगों को इसबात का भी ध्यान रखना चाहिए कि शत्रु सेना आक्रमण तो नहीं कर रहा है अथवा पूर्ववत् जहाँ की तहाँ खड़ी हुई है। रावण का यह आदेश सुनकर समस्त महाबली राक्षस उस सारी बातों का यथावत् पालन करने लगे और रावण दुःख और शोक से भरकर हीन भाव से अपने महल में चला गया। इस समय उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और वह मृत्यु को याद कर लंबी-लंबी साँसें लेने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७२)

तिहत्तरवाँ सर्ग

इन्द्रजित् के ब्रह्मास्त्र से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना

संग्राम भूमि में सारे वीर राक्षसों के निधन से रावण को चिंतित हुआ देखकर राक्षसराज कुमार इन्द्रजित् ने उससे यह बात कही- तात ! जब तक इन्द्रजित् जीवित है तब तक आप चिंता और मोह में न पड़िए। इन्द्रजित् के बाणों से घायल हो कर कोई अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकता है। अब आप मेरी इस प्रतिज्ञा को सुन लें कि मैं आज ही लक्ष्मण सहित राम को अपने अमोघ बाणों से पूर्णतया नष्ट करूँगा आज इन्द्र, यम, वरुण, रुद्र सभी मेरे पराक्रम को देखेंगे। ऐसा कहकर इन्द्रजित् ने रावण की आज्ञा ली और गदहे से जुते एवं युद्ध सामग्री से सम्पन्न वेगशाली रथ पर सवार हुआ। उस रथ पर आरूढ़ हो वह निशाचर सहसा उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ युद्ध हो रहा था। उस समय बहतु से महाबली राक्षस भी उसके पीछे-पीछे चले। वे सब विभिन्न सवारियों पर आरूढ़ हो अपने हाथों से प्रास, पट्टिश, खड्ग, फरसे आदि ले रक्खे थे। विशाल सेना से घिरे हुए अपने पुत्र को प्रस्थान करते देख राजा रावण ने उससे कहा- बेटा ! कोई भी ऐसा प्रतिद्वन्द्वी रथी नहीं है जो तुम्हारा सामना कर सके। जब तुमने देवराज इन्द्र को परास्त कर दिया तब एक मनुष्य को जीत लेना तुम्हारे लिए कौन-सी बड़ी बात है ? तुम अवश्य ही उस रघुवंशी राम का बध करोगे। रावण के उस आशीर्वाद को ग्रहण कर इन्द्रजित् रणभूमि में जा पहुँचा और रथ के चारों ओर राक्षसों को खड़ा कर दिया। फिर बीच में रथ से उतरकर उसने विधिपूर्वक अग्निदेव का पजन

किया और श्रेष्ठ मंत्रों का उच्चारण करते हुए अग्नि में आहुति दी। होम के लिए काले रंग के जीवित बकरे का गला पकड़ा तब एक ही बार दी हुई आहुति से अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उस समय उस अग्नि से वे सभी चिह्न प्रकट हुए जो पूर्वकाल में उसे अपनी विजय दिखा चुके थे। अग्निदेव की शिखा दक्षिणावर्त दिखाई देने लगी। उनका वर्ण सुवर्ण के समान सुंदर था और वे इस रूप में स्वयं प्रकट होकर उसके दिए हुए हविष्य को ग्रहण कर रहे थे। उस अग्नि में आहुति देकर उसने ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया तब सभी प्राणी भयभीत हो उठे। तत्पश्चात् उसने अपने आपको आकाश में अदृश्य कर लिया। इसके बाद वह राक्षस सेना में गया जो युद्ध की इच्छा से भीषण गर्जना करते हुए वानरों पर भीषण प्रहार कर रही थी। इन्द्रजित् शत्रुओं के प्रति क्रोध से भरा था उसने निशाचरों से कहा- तुम लोग वानरों को मार डालने की इच्छा से उत्साहपूर्वक युद्ध करो। तब राक्षसगण जोर-जोर से गर्जना करते हुए वानरों पर भयंकर बाणों की वर्षा करने लगे। इन्द्रजित् भी राक्षसों से घिरा विभिन्न अस्त्रों द्वारा वानर सेना पर बाणों की वर्षा करने लगा। तब वानर भी रावण कुमार पर शैल शिखरों और वृक्षों की वर्षा करने लगे। उस समय इन्द्रजित् ने कुपित होकर बहुत से वानरों के शरीर को छिन्न-भिन्न कर डाला। वानरों के शरीर के छिन्न-भिन्न हो जाने पर उनकी विजय की आशा पर तुषरापात हो गया और वे अचेत से होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ खून से लथपथ हो व्यथित होकर इधर-उधर भागने लगे। लेकिन जिन्होंने श्रीराम के लिए अपने प्राणों का मोह भी छोड़ दिया था वे युद्ध भूमि में डटे रहे और किसी तरह पीछे न हटे। समरांगण में खड़े वे वानर रावण कुमार पर वृक्षों, पर्वत शिखरों और शिला की वर्षा करने लगे। वृक्षों और शिलाओं की वर्षा राक्षसों के प्राण हर लेने वाली थी। किन्तु रावण पुत्र ने अपने बाणों द्वारा उसे दूर हटा दिया और युद्ध भूमि में वानर सैनिकों को विदीर्ण करना शुरू कर दिया। उसने अट्ठारह तीखे बाणों से गन्धमादन को घायल करके दूर खड़े नल पर भी नौ बाणों का प्रहार किया। तत्पश्चात् सात सायकों द्वारा मैन्द को और पाँच बाणों द्वारा गज को भी बींध डाला। फिर दस बाणों से जाम्बवान् को और तीस सायकों से नील को घायल कर दिया। तदनन्तर भयानक सायकों का प्रहार करके उसने सुग्रीव, अंगद तथा द्विविद

को भी घायल कर दिया। इस तरह रावण कुमार ने अन्यान्य श्रेष्ठ वानरों को भी अपने बाणों की मार से व्यथित कर दिया। वह अपनी सेना के ऊपरी भाग को छोड़कर उस महासमर में तुरंत सेना के ऊपर जा पहुँचा और स्वयं आकाश में अदृश्य रहकर भयानक बाणों की वर्षा करने लगा। उस समय इन्द्रजित् के बाणों से क्षत-विक्षत हो जाने से वानर गण विकृत स्वर से चीखते चिल्लाते हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। रण भूमि में वानर सेनाओं पर जो पैनी धारवाले बाण गिर रहे थे केवल उन्हीं को वानर देख रहे थे। माया से छिपे हुए उस राक्षस को कहीं नहीं देख पाते थे। वह वानरों की सेना में बढ़े हुए प्रज्वलित पावक के समान दीप्तिमान तथा चिंगारियों सहित उज्ज्वल आग प्रकट करने वाले शूल, खड्ग और फरसों की दुःसह वृष्टि करने लगा। उस समय उन बाणों से घायल होकर अधिकांश वानर यूथपति रक्त से नहा उठे। कितने ही वानर जब आकाश की ओर देखते तभी उनकी नेत्रों में बाणों की चोट लगती और वे पृथ्वी पर गिर पड़ते। इस इन्द्रजित् ने हनुमान, अंगद, सुग्रीव, गंधमादन, सुषेण, जाम्बवान् आदि कितने ही श्रेष्ठ वानरों को घायल कर दिया। तत्पश्चात् वह लक्ष्मण सहित श्रीराम पर सूर्य की किरणों के समान चमकीले बाण समूहों की वर्षा करने लगा। उन बाणों की वर्षा की कोई परवाह न करके श्रीराम लक्ष्मण से बोले- यह इन्द्रजित् ब्रह्मास्त्र का सहारा लेकर वानर सेना को धराशायी करने के पश्चात् अब तीखे बाणों द्वारा हम दोनों को भी पीड़ित कर रहा है। इसने अपने भीषण शरीर को अदृश्य कर लिया है। ऐसी दशा में हम लोग इसे कैसे मार सकते हैं। लगता है यह स्वयं भगवान् ब्रह्मा का अस्त्र है। अतः बुद्धिमान सुमित्रा कुमार! तुम मन में किसी प्रकार की घबराहट न लाकर मेरे साथ चुपचाप यहाँ खड़े होकर इन बाणों की मार सहो। इस समय सुग्रीव की सारी सेना धराशायी हो गई है और जब हम दोनों भी इस युद्ध में अचेत होकर गिर जाएंगे तब यह राक्षस विजय लक्ष्मी को पाकर लंकापुरी में लौट जाएगा। उस समय ऐसा ही हुआ। इन दोनों को युद्ध में पीड़ित कर राक्षस कुमार ने बड़े हर्ष के साथ गर्जना की। तब वानर सेना सहित श्रीराम और लक्ष्मण को मूर्च्छित कर वह लंकापुरी को वापस लौट गया। वहाँ पाहुँचकर उसने अपने पिता से प्रसन्नता पूर्वक सारा

समाचार कह सुनाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७३)

चौहत्तरवाँ सर्ग

हनुमानजी का हिमालय से दिव्य औषधियों का लाना

युद्ध के मुहाने पर जब श्रीराम और लक्ष्मण निश्चेष्ट होकर पड़ गए तब उनकी सेना किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई। उस समय विभीषण ने सैनिकों को आश्वासन देते हुए कहा- वानर वीरो! आप लोग भयभीत न हों। क्योंकि इन दोनों रघुवंशियों ने ब्रह्माजी के वचनों का आदर करते हुए अपना हथियार नहीं उठाया था। इसलिए इन पर ऐसा संकट आया। यह अस्त्र इन्द्रजित् को बह्माजी ने स्वयं दिया था और यह बह्मास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है। उसी की मार्यादा की रक्षा करते हुए ये दोनों धराशायी हुए हैं। तत्पश्चात् उन्होंने हनुमान जी से कहा- इन वानर सैनिकों को जो-जो जीवित हैं चलकर हमें उनको आश्वासन देना चाहिए। उस समय रात हो गई थी। इसलिए हनुमान और विभीषण दोनों अपने हाथ में मशाल लिए हुए रणभूमि में विचरने लगे। उस समय उन लोगों ने सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, जाम्बवान्, सुषेण, मैन्द, नल तथा द्विविद इन सब वानरों को युद्ध में घायल होकर पड़ा हुआ देखा। ऐसे समय में विभीषण जाम्बवान् के पास पहुँचे और बोले- आर्य! इन तीखे बाणों के प्रयोग से आपके प्राण तो नहीं निकल गए हैं? तब जाम्बवान् बड़ी कठिनाई से बोले- पराक्रमी राक्षसराज! मैं केवल स्वर से तुम्हें पहचान रहा हूँ। इस समय मेरे सभी अंग पैने बाणों से बिंधे हैं अतः मैं आँखें खोलकर तुम्हें नहीं देख सकता। विभीषण! अतः अब यह तो बताओ, वायु पुत्र हनुमान कहीं जीवित हैं? तब विभीषण ने पूछा- आप दोनों रघुवंशियों को छोड़कर केवल पवन कुमार हनुमान जी को क्यों पूछ रहे हैं? तब जाम्बवान् बोले- राक्षसराज़! मैं हनुमान जी को क्यों पूछ रहा हूँ सुनो! बात यह है कि अगर वीरवर हनुमान जीवित होंगे तो मेरी मरी हुई सेना को भी जीवित ही समझो। किन्तु यदि उनके प्राण निकल गए होंगे तो हम लोग जीते हुए भी मृतक के तुल्य हैं। जाम्बवान् की

बात सुनकर हनुमान उनके पास आ गए और पैर पकड़कर विनीत भाव से प्रणाम किया। हनुमान जी की बातों से जाम्बवान् ने अपना पुनर्जन्म हुआ-सा माना और हनुमान जी से कहा- वानर सिंह! जाओ सम्पूर्ण वानरों की रक्षा करो। यह तुम्हारे ही पराक्रम का समय है। मैं दूसरे किसी को इसके योग्य नहीं देखता। तुम सेनाओं को हर्ष प्रदान करो और श्री राम और लक्ष्मण के शरीर से बाण निकालो तथा इन्हें स्वस्थ करो। हनुमान तुम्हें समुद्र के ऊपर-ऊपर उड़कर पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर जाना चाहिए। वहाँ पहुँचने पर तुम्हें ऊँचे सुवर्णमय पर्वत ऋषभ तथा कैलाश शिखर का दर्शन होगा। वहाँ तुम्हें उन दोनों शिखरों के बीच में एक औषधियों का पर्वत दिखाई देगा। उसमें इतनी चमक है जिसकी तुलना कहीं नहीं। वह पर्वत सब प्रकार के औषधियों से सम्पन्न है। तुम्हें उसके शिखर पर उत्पन्न चार औषधियाँ दिखाई देंगी। उनके नाम हैं मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सुवर्ण करणी और संधानी। पवन कुमार उन औषधियों को लेकर तुम शीघ्र यहाँ लौट आओ और वानरों को प्राण दान दो। जाम्बवान् की बात सुनकर वीर हनुमान एक पर्वत के शिखर पर खड़े हो गए और उस पर्वत को पैरों से दबते हुए दूसरे पर्वत के समान दिखाई देने लगे। चरणों के भार से पीड़ित हो वह पर्वत धरती में धंस गया। उस समय पर्वत के धंसते ही लंका का विशाल और ऊँचा द्वार भी हिल गया। मकान और दरवाजे ढह गए। हनुमान जी ने उस पर्वत को दबाकर पृथ्वी और समुद्र में भी हलचल पैदा कर दी। तत्पश्चात् वहाँ से आगे बढ़कर वे मेरू और मन्दराचल के समान ऊँचे पर्वत पर चढ़ गए। वह पर्वत नाना प्रकार के झरनों से भरपूर था। उसमें भाँति-भाँति की लताएँ और वृक्ष भी थे। उस पर्वत का सेवन देवता और गंधर्व करते थे। पवन कुमार वहाँ के रहनेवाले यक्ष और किन्नरों तथा गंधर्वों को व्यथित करते हुए मेघ के समान बढ़ने लगे। वे मुख को फैलाकर निशाचरों को डराते हुए जोर-जोर से गर्जना करने लगे। तदनन्तर वे अपनी सर्पाकार पूँछ ऊपर उठाए तथा पीठ को झुकाकर बड़वानल अग्नि के समान अपना मुख फैलाकर प्रचण्ड वेग से आकाश में उड़े। फिर सम्पूर्ण दिशाओं को खींचते हुए वे हिमालय की ओर चले। उस समय उनका वेग अपने पिता वायु के समान ही था। वे अनेकानेक पर्वतों, सरोवरों, नदियों, तालाबों और समृद्धशाली जनपदों को देखते हुए बड़े वेग

से आगे बढ़ने लगे और सहसा हिमालय पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ अनेक प्रकार के सोते बह रहे थे। बहुत-सी कन्दराएँ और झरने शोभा बढ़ा रहे थे। उस पर्वत राज का सबसे ऊँचा शिखर सुवर्णमय दिखाई दे रहा था। वहाँ पहुँचकर हनुमान जी ने बड़े-बड़े पवित्र आश्रम देखे जिसमें देवर्षियों का समुदाय निवास करता था। यहाँ सब ओर दृष्टि डालने के पश्चात् उनकी दृष्टि सम्पूर्ण औषधियों के उत्तम पर्वत पर पड़ी जो सब प्रकार के दीप्तिमती औषधियों से देदीप्यमान हो रहा था। अग्नि के समान प्रकाशित होने वाले उस पर्वत को देखकर हनुमान जी को बड़ा विस्मय हुआ। वे कूदकर औषधियों से भरे उस गिरिराज पर चढ़ गए और पूर्वोक्त चारों औषधियों की खोज करने लगे। तब उस पर्वत पर रहने वाली तमाम महौषधियाँ यह जानकर कि कोई हमें लेने आ रहा है तत्काल अदृश्य हो गईं। उन औषधियों को न पाकर हनुमानजी कुपित होकर बार-बार गर्जना करने लगे और उस पर्वतराज से बोले- तुम रघुनाथ जी पर कृपा नहीं कर सके। ऐसा निश्चय तुम किस बल पर कर रहे हो। अब तुम मेरे बाहुबल सेपराजित होकर अपने को सब ओर बिखरा हुआ देखो। ऐसा कहकर उन्होंने वेग से उस पर्वत शिखर को सहसा उखाड़ लिया। वेग से उखाड़े जाने के कारण असकी बहुत-सी चोटियां बिखर कर गिर गईं। उस पर्वत का ऊपरी भाग अपनी प्रभा से प्रज्वलित हो रहा था। तब उसे उखाड़कर साथ ले हनुमानजी देवेश्वरों और अशुरेश्वरों सहित सम्पूर्ण लोकों को भयभीत करते हुए बड़े वेग से आकाश में उड़ चले। उस समय बहुत से आकाशचारी प्राणी उनकी स्तुति कर रहे थे। सूर्य के समान चमकते हुए उस पर्वत शिखर को हाथ में लेकर हनुमान जी सूर्य के ही पथ पर जा पहुँचे। उस समय वे दूसरे सूर्य की भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उस समय उन्हें लौटा हुआ देखकर वानर जोर-जोर से गर्जना करने लगे। उन्होंने भी उन सबको देखकर बड़े हर्ष से सिंहनाद किया। लेकिन उस तुमुल नाद को सुनकर लंकावासी निशाचर और भी भयानक स्वर से चीत्कार करने लगे। तत्पश्चात् वे दोनों राजकुमार उन महौषधियों को सूँघकर स्वस्थ हो गए। उनके शरीर से बाण निकल गए और घाव भर गए। इसके अलावा जो प्रमुख-प्रमुख वानर वहाँ हताहत हुए थे वे भी उन श्रेष्ठ औषधियों की सुगंध से रात के अंत तक निरोग होकर उठ खड़े हुए। उनके भी शरीर से बाण

निकल गए और उनकी पीड़ा जाती रही। लंका में जबसे वानरों और राक्षसों की लड़ाई शुरू हुई थी तभी से वानर वीरों द्वारा जो-जो राक्षस रणभूमि में मारे जाते थे वे प्रतिदिन रावण की आज्ञा से समुद्र में फेंक दिए जाते थे। ऐसा इसलिए होता था कि वानरों को यह मालूम न हो कि बहुत से राक्षस मार डाले गए। तत्पश्चात् हनुमान जी पुनः औषधियों के उस पर्वत को यथास्थान पहुँचा कर श्रीरामजी से आ मिले।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७४)

पचहत्तरवाँ सर्ग

लंकापुरी दहन और राक्षसों और वानरों का युद्ध

तत्पश्चात् वानरराज सुग्रीव ने हनुमान से कहा- कुंभकर्ण मारा गया तथा रावण के पुत्रों का भी संहार हो गया है। इसलिए रावण का लंकापुरी की रक्षा का प्रबंध करना कठिन है। इसलिए अपनी सेना में जो महाबली हैं वे सब के सब मशाल लेकर शीघ्र ही लंकापुरी पर धावा करें। सुग्रीव की यह आज्ञा पाकर सूर्यास्त होने पर भयंकर प्रदोषकाल में वे सभी श्रेष्ठ वानर मशाल हाथ में लेकर लंका की ओर चले। यह देखकर द्वार रक्षा के कार्य में नियुक्त हुए राक्षस सहसा भाग खड़े हुए। फिर तो समस्त वानर दरवाजों अट्टालिकाओं, सड़कों, गलियों और महलों में बड़े हर्ष के साथ आग लगाने लगे। वह आग सहस्त्रों घरों को जलाने लगी। कहीं अगर जल रहा है तो कहीं चंदन। कहीं हीरे मोती दग्ध हो रहे थे तो कहीं रेशमी वस्त्रों के साथ आभूषण और इसके साथ ही अस्त्र-शस्त्र भी जल रहे थे। घोड़ों और हाथी के गहने तथा योद्धाओं के कवच इन सब को अग्निसब ओर से जला रही थी। धीरे-धीरे अग्निदेव ने सभी राक्षसों के घरों को भी अपने में लपेट लिया। मदिरा पान किए हुए राक्षसों तथा शय्याओं पर सोई हुई स्त्रियों, एवं बच्चों को गोद में लेकर भागती हुई महिलाओं को भी अग्निदेव ने नहीं छोड़ा। मूँगे तथा माणिक्य से सुसज्जित एवं पर्वताकार गृहों को भी प्रज्वलित आग ने जला दिया। सतमहले मकान में सोई हुई सुन्दरियां जब आग से जलने लगीं तब सारे आभूषण फेंककर वे हाय-हाय कहकर चिल्लाने लगीं। वे जलते हुए गगन

चुम्बी भवन दूर से ऐसे जान पड़त थे मानो हिमालय के शिखर सब ओर से दग्ध हो रहे हैं। उस समय हाथियों और घोड़ों के स्वामी ने अपने-अपने पशुओं को खोल दिया था। वे भयभीत होकर इधर-उधर भाग रहे थे। वानरों द्वारा जिसमें आग लगाई गई थी वह लंकापुरी दो ही घड़ी में संसार के घोर संहार के समय दग्ध हुई पृथ्वी के समान प्रतीत होती थी। धुएं से आच्छादित और आग से संतप्त होकर उच्च स्वर से आर्तनाद करती हुई लंका की नारियों का करुण क्रन्दन सौ योजन दूर तक सुनाई देता था। भागते हुए राक्षसों पर युद्ध की इच्छा करनेवाले वानर टूट पड़ते और उस समय वानरों की गर्जना और राक्षसों के आर्तनाद से सारी पृथ्वी गूँज उठी। इधर बाण निकल जाने से स्वस्थ हुए दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण ने भी अपने बाण उठा लिए श्रीराम चन्द्रजी के धनुष की टंकार वानरों की गर्जना और राक्षसों के कोलाहल से भी ऊपर उठकर सुनाई पड़ती थी। श्रीराम के छोड़ेहुए बाणों द्वारा लंकापुरी का वह द्वार जो कैलाश शिखर के समान ऊँचा था टूटफूटकर भूतल पर बिखर गया। तब श्रीराम के भयंकर बाणों को देखकर राक्षसपतियों ने युद्ध के लिए बड़ी भयंकर तैयारी की। उस समय उन्हें वह रात्रिकाल काल रात्रि के समान प्रतीत हो रही थी। उधर सुग्रीव ने आदेश दिया- वानर वीरो! जो युद्ध में मुँह मोड़कर भाग जाए उसे तुम लोगों को पकड़कर मार डालना चाहिए। सुग्रीव की इच्छा और आज्ञा के अनुसार जब मुख्य-मुख्य वानर जलते मशाल हाथ में लिए नगर द्वार पर जाकर डट गए। तब रावण को बड़ा क्रोध आया। उस समय क्रोध से भरे हुए रावण ने कुंभकर्ण के दो पुत्र कुंभ और निकुंभ को यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ एवं कम्पन आदि प्रमुख राक्षसों के साथ युद्ध के लिए भेजा। तब रावण के आदेश से वे राक्षस बारम्बार गर्जनाकरते हुए लंकापुरी के द्वार के बाहर निकले। राक्षसों की वह विशाल सेना ध्वजा पताकाओं से सुशोभित थी। सैनिकों के हाथ में उत्तमखड्गऔर फरसे चमक रहे थे। चमकते हुए शूल, गदा, तलवार, तोमर और धनुष आदि से युक्त हुई वह सेना भयानक विक्रम और पुरुषार्थ प्रकट करनेवाली थी तथा मेघों की गर्जना के समान सिंहनाद से निनादित होने के कारण बड़ी भयंकर दिखाई देती थी। राक्षसों की उस सेना को आते देखकर वानर सेना भी आगे बढ़ी और उच्च स्वर से गर्जना करने लगी। तब राक्षसों की विशाल सेना भी

बड़े वेग से उछलकर शत्रुसेना की ओर उसी तरह उछलती हुई अग्रसर हुई जैसे पतंग आग पर टूट पड़ते हैं। तब युद्ध की इच्छावाले वानर भी उन्मत्त होकर पत्थरों, वृक्षों और मुक्कों से निशाचरों को मारते हुए उन पर टूट पड़े। इसी प्रकार भयानक पराक्रमी निशाचर भी अपने तीखे बाणों से सामने आए हुए वानरों के मस्तक सहसा काटकर गिराने लगे। वानरों ने भी दाँतों से निशाचरों के कान काट लिए और मुक्कों से मार-मारकर उनके मस्तक विदीर्ण कर दिए। एक वीर जब दूसरे विपक्षी योद्धा को मारने लगता है तब दूसरा आकर उसे मारने लगता है। उस समय वानरों और राक्षसों में बड़ा भयंकर युद्ध हो रहा था। उस युद्ध स्थल में राक्षस दस-दस या सात-सात वानरों को एक साथ मार गिराते थे और वानर भी दस-दस या सात-सात राक्षसों को एक साथ धराशायी कर देते। तत्पश्चात् राक्षसों के वस्त्र खुल गए, कवच और ध्वज टूट गए। उस राक्षसी सेना को रोककर वानरों ने सब ओर से घेर लिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७५)

छिहत्तरवाँ सर्ग

वानरों द्वारा प्रमुख राक्षसों का बध

जब वानरों और राक्षसों का यह युद्ध चल रहा था उस समय अंगद संग्राम के लिए उत्सुक होकर वीर कम्पन का सामना करने के लिए आगे आए। कम्पन ने तब अपनी गदा के प्रहार से अंगद को मूर्च्छित कर दिया। चेत आने पर अंगद ने भी एक पर्वत शिखर उठाकर उस राक्षस पर दे मारा। उस प्रहार से पीड़ित हो कम्पन पृथ्वी पर गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गए। कम्पन को मारा गया देख शोणिताक्ष ने रथ पर ही बैठकर अंगद पर धावा किया। उस समय उसके पैने बाणों ने अंगद को बड़ी चोट पहुँचाई। इससे अंगद का सारा शरीर बिंध जाने से उसने भी बड़े वेग से राक्षस के भयंकर धनुष, रथ और बाणों को कुचल डाला। यह देखकर शोणिताक्ष कुपित हो तत्काल ही ढाल तलवार हाथ में लेकर रथ से कूद पड़ा। इतने में ही बलवान् अंगद ने उसकी तलवार छीनकर बड़े जोर से सिंहनाद किया।

Mookerji sharma (IPS) Jammu Collection

फिर अंगद ने उसके कंधे पर तलवार का वार किया और उसके शरीर को इस तरह चीर दिया मानो उसने यज्ञोपवीत पहन रखा हो। इतने में प्रजंघ को साथ लिए यूपाक्ष ने कुपित हो रथ से अंगद पर आक्रमण किया। इसी बीच शोणिताक्ष ने अपने को सम्हालकर लोहे की गदा उठाई और अंगद का पीछा किया। फिर यूपाक्ष और प्रजंघ भी अंगद पर गदा लेकर चढ़ आए उस समय मैन्द और द्विविद अंगद की रक्षा के लिए उसके निकट आकर खड़े हो गये। वे दोनों अपने योग्य विपक्षी नेता की तलाश कर रहे थे। इतने में तलवार, बाण और गदा लिए हुए बहुत से राक्षस कुपित होकर वानरों पर टूट पड़े। ये तीन वानर सेनापति उन तीन प्रमुख राक्षसों के साथ उलझे हुए थे। उस समय उन वानरों ने रणभूमि में वृक्ष लेकर निशाचरों पर चलाएं। परन्तु महाबली प्रजंघ ने अपनी तलवार से उन सब वृक्षों को काट गिराया। तत्पश्चात् उन लोगों ने राक्षसों के रथों और घोड़ों पर वृक्ष पर्वत शिखर चलाए परन्तु यूपाक्ष तथा शोणिताक्ष ने अपने बाण समूहों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् प्रजंघ ने एक बड़ी तलवार उठाकर अंगद पर वेगपूर्वक आक्रमण किया। किन्तु उसे निकट आया देख वानरराज अंगद ने उसे अश्वकर्ण नामक वृक्ष से मारा। साथ ही उसकी बाँह पर, जिसमें तलवार थी, उन्होंने एक घूंसा मारा। अंगद के उस आघात से वह तलवार छूटकर पृथ्वी पर आ गिरी। मूसल जैसी उस तलवार को पृथ्वी पर पड़ी देखकर प्रजंघ ने अपना बज्र के समान मुक्का चलाना प्रारम्भ किया और अंगद के ललाट पर बड़े जोर से मुक्का मारा जिससे अंगद को दो घड़ी तक चक्कर आता रहा। इसके बाद होश आने पर अंगद ने प्रजंघ को ऐसा घूंसा मारा जिससे उसका सिर धड़ से अलग हो गया। रणभूमि में अपने चाचा के मारे जाने पर यूपाक्ष की आँखों में आँसू आ गये। उसके बाण समाप्त हो चुके थे इसलिए तुरंत ही रथ से उतरकर उसने अपने हाथ में तलवार ले ली। उसी समय द्विविद ने फुर्ती से उसके छाती में चोट की और बलपूर्वक उसे पकड़ लिया। तब भाई को पकड़ा गया देखकर शोणिताक्ष ने द्विविद की छाती में गदा मारी। शोणिताक्ष से मार खाकर महाबली द्विविद विचलित हो उठा। तत्पश्चात् उसने फिर अपनी गदा उठाई तब द्विविद ने झपट के उसे छीन लिया। इसी बीच पराक्रमी मैंद ने आकर यूपाक्ष की छाती पर एक थप्पड़ मारा। तत्पश्चात् द्विविद ने अपने नखों से शोणिताक्ष का मुँह

नोंच लिया और उसे बलपूर्वक पृथ्वी पर पटककर पीस डाला। तब मैन्द ने भी यूपाक्ष को अपनी दोनों बाँहों से इस तरह दबाया कि वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इन प्रमुख वीरों के मारे जाने पर राक्षस राज की सेना व्यथित होकर उस ओर भागी जहाँ कुंभकर्ण का पुत्र युद्ध कर रहा था। उस समय कुंभ ने उन्हें खूब सान्त्वना दी किन्तु इधर वानर युद्ध में सफल होने के कारण जोर-जोर से गर्जना करने लगे। कुंभ ने भीबड़े-बड़ेराक्षस वीरों को मारा गया देखकर अत्यंत दुष्कर कर्म करना आरम्भ कर दिया। उसने तत्काल धनुष उठाकर विषैले बाणों की वर्षा आरम्भ करते हुएद्विविद को घायल कर दिया। इससे द्विविद अत्यंत व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब द्विविद को घायल हुआ देखकर मैन्द बहुत बड़ी शिला उठाकर वेगपूर्वक दौड़े। लेकिन कुंभ ने अपने बाणों से उस शिला के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। तत्पश्चात् उसने अपने बाणों से मैन्द के मर्म स्थल पर गहरी चोट पहुँचायी। इस आघात से मैन्द भी मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। मैन्द और द्विविद अंगद के मामा थे। दोनों वीरों को घायल हुआ देखकर अंगद धनुष लेकर खड़े हुए और कुंभ के ऊपर बड़े वेग से टूट पड़े। तब पराक्रमी कुंभ ने बहुत से बाण चलाकर अंगद को भी बींध डाला। किन्तु अंगद इससे जरा भी कम्पित नहीं हुए और राक्षस के मस्तक पर शिलाओं और वृक्षों की वर्षा आरम्भ कर दी। किन्तु कुंभ ने उन्हें बीच में ही नष्टकर दिया। तत्पश्चात् अंगद को अपनी ओर आते देख कर कुंभ ने दो बाणों से भौंहों में प्रहार किया। उससे अंगद की भौंहों से रक्त बहने लगा और उनकी आँखें बंद हो गईं। तब उन्होंने एक हाथ से अपनी आँखों को ढँका और दूसरे से पास ही खड़े एक सील वृक्ष को पकड़ा। फिर छाती का सहारा लेकर तने सहित उस वृक्ष को उखाड़ लिया। वह वृक्ष मंदराचल के समान ऊँचा था। अब अंगद ने उसे देखते ही देखते कुंभ पर दे मारा। किन्तु इसी समय सात बाण मारकर कुंभ ने उस वृक्ष के भी टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इससे अंगद व्यथित होकर मूर्च्छित हो गए। इसी समय श्रेष्ठ वानरों ने इसकी सूचना जाकर श्रीराम को दी। यह सुनकर उन्होंने जाम्बवान् आदि वानर वीरों को युद्ध में जाने की आज्ञा दी। उनके आदेश से सभी वानर कुंभकर्ण कुमार पर टूट पड़े। तब उन महाबली यूथपतियों को आक्रमण करते देख कुंभ ने अपने बाण समूहों द्वारा उन्हें इस प्रकार रोक दिया कि उनका आगे बढ़ना

तो दूर रहा, वे उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देख पाते थे। तब सुग्रीव ने स्वयं ही रणभूमि में कुंभ पर धावा किया। वे नाना प्रकार के वृक्ष उखाड़कर उस राक्षस पर फेंकने लगे। लेकिन कुंभ ने अपने तीखे बाणों से उन सब वृक्षों को काट डाला। किन्तु सुग्रीव इससे विचलित न होकर उछलकर उसके रथ पर चढ़ गए और उसके धनुष को छीनकर टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् उन्होंने कुंभ से कहा- कुंभ! तुम्हारा पराक्रम और बाणों का वेग अद्‌भुत है। अपने पिता का अनुसरण केवल तुम्हीं कर सके हो। यद्यपि देवता लोग तुम्हें युद्ध में परास्त नहीं कर सके लेकिन बहाबाहो अब तुम अपना पराक्रम प्रकट करो और मेरे भी बल को देखो। आज सब प्राणी रणभूमि में इन्द्र तथा शम्बरासुर की भांति मेरे साथ तुम्हारे अद्‌भुत, महायुद्ध को देखें। अब तक मैंने जो तुम्हारा बध नहीं किया था उसका कारण था लोगों का उपालम्भ भय। लोग यह कहकर मेरी निंदा करते कि कुंभ युद्ध करते-करते थक गया था। उस दशा में सुग्रीव ने उसे मारा। अतः तुम अब थोड़ा विश्राम कर लो फिर मेरा बल देखो। सुग्रीव के अपमान युक्त वचनों को सुनकर कुंभ उत्तेजित हो गया और अपनी दोनों भुजाओं से सुग्रीव को पकड़ लिया फिर मस्त हाथियों की तरह वे एक दूसरे से गुंथ गये। उस समय दोनों परिश्रम के कारण अपने मुख से धूमयुक्त ज्वाला उगलने लगे और उनके पैरों के आघात से धरती नीचे को धंसने लगी। इतने में ही सुग्रीव ने कुंभ को उठाकर बड़े वेग से समुद्र के जल में फेंक दिया। उसमें गिरते ही कुंभ एकदम नीचे की तल में चला गया। किन्तु इसके बाद कुंभ उछलकर फिर बाहर आया और सुग्रीव को पटककर उसकी छाती पर मुक्के से प्रहार किया। उसका वेगशाली मुक्का सुग्रीव की हड्डियों पर बड़े वेग से लगा। कुंभ से इस प्रकार आहत होने पर सुग्रीव ने भी अपना बज्रतुल्य मुक्का सम्हाला और कुंभ की छाती पर बलपूर्वक आघात किया सुग्रीव के उस मुक्के की चोट खाकर उसका वक्षःस्थल चूर-चुर हो गया और वह तत्काल धराशायी हो गया। उस समय सुग्रीव के द्वारा युद्ध में उस निशाचर के मारे जाने पर पर्वतों और वनों सहित सारी पृथ्वी कांपने लगी और राक्षसों के हृदय में भय समा गया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ (७६)

Mookerji Library, Jammu Collection

सत्तहत्तरवाँ सर्ग

हनुमानजी के द्वारा निकुंभ का वध

सुग्रीव के द्वारा अपने भाई कुंभ को मारा गया देखकर निकुंभ ने वानर राज को इस प्रकार देखा मानों वह उसे दग्ध कर देगा। तब उस वीर ने अपने हाथ में एक परिघ लिया जो यमदण्ड के समान भयंकर तथा राक्षसों का भय नाश करनेवाला था। उस परिघ को घुमाता हुआ पराक्रमी राक्षस निकुंभ जोर जोर से गर्जना करने लगा। निकुंभ के परिघ घुमाने सेअलका पुरी, गंधर्वों के उत्तर भवन, तारे, नक्षत्र चंद्रमा तथा बड़े-बड़े ग्रहों के साथ आकाश मंडल घूमता-सा प्रतीत होने लगा। उस समय राक्षस और वानर भय के मारे हिलडुल भी न सके। केवल महाबली हनुमान उस राक्षस के सामने अपनी छाती खोलकर खड़े हो गये। तब उस राक्षस ने उस परिघ को वीर हनुमान जी के छाती पर दे मारा। हनुमानजी की छाती बड़ी सुंदर और विशाल थी। उसके टकराते ही उस परिघ के सैकड़ों टुकड़े होकर बिखर गए। मानो आकाश से एक साथ सौ उल्काएं गिरी हों। लेकिन हनुमान जी उस प्रहार से जरा भी विचलित नहीं हुए और उन्होंने एकमुक्का ताना और उससे निकुंभ की छाती पर कसकर प्रहार किया। इससे निकुंभ विचलित हो उठा फिर थोड़ी ही देर में सम्हल कर हनुमानजी को कसकर पकड़ लिया। उसके द्वारा पकड़ लिए जाने पर भी हनुमानजी ने अपने ब्रजतुल्य मुक्के से उस पर प्रहार किया। फिर उसके चंगुल से अपने को छुड़ाकर वे पृथ्वी पर खड़े हो गये और तत्काल ही निकुंभ को पकड़कर पृथ्वी पर गिरा कर उसे खूब रगड़ा। फिर वे वेग से उछलकर उसकी छाती पर चढ़ बैठे और दोनों हाथों से गला मरोड़कर उन्होंने उसके मस्तक को उखाड़ दिया। तब निकुंभ के प्राण त्याग करने पर सभी वानर हर्ष के साथ गरजने लगे तथा सम्पूर्ण दिशाएं कोलाहल से भर गयीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सत्तहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७७)

अठहत्तरवाँ सर्ग

मकराक्ष का युद्ध के लिए प्रस्थान

कुंभ और निकुंभ के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण को बड़ा क्रोध

हुआ। फिर वह शोक से भरा हुआ खर पुत्र मकराक्ष से बोला बेटा! मेरी आज्ञा से विशाल सेना के साथ जाओ और बंदरों सहित उन दोनों भाई राम और लक्ष्मण को मार डालो। यह सुनकर मकराक्ष ने हर्षपूर्वक कहा- बहुत अच्छा। तब उसने अपने सेनाध्यक्ष से कहा शीघ्र रथ ले आओ और सेना को भी बुलवाओ। मकराक्ष की बात सुनकर निशाचर सेनापति ने रथ और सेना उसके पास लाकर खड़ी कर दी। इसके बाद मकराक्ष ने समस्त राक्षसों से कहा-निशाचरों! तुम लोग आगे रहकर युद्ध करो। मुझे रावण ने राम और लक्ष्मण को मारने की आज्ञा दी है। आज मैं अन लोगों का बध करके रहूँगा। मकराक्ष के वचन सुनकर नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित समस्त बलवान् निशाचर युद्ध के लिए सावधान हो गये। तत्पश्चात् हाथी के समान चिंग्घाड़ते हुए वे विशालकाय निशाचर मकराक्ष को चारों ओर से घेरकर युद्ध भूमि की ओर चल पड़े। उस समय सहसा मकराक्ष के हाथ से चाबुक छूटकर नीचे आ गिरा। दैवयोग उस राक्षस का ध्वज भी धराशायी हो गया। उस रथ में जुते हुए घोड़े विचित्र चालें भूल गये। उनके मुख पर आँसू की धारा बह रही थीं। उस समय उन सब अपशकुनों को देखकर भी मकराक्ष ने उनकी कोई परवाह नहीं की और सबके सब उस स्थान पर गये जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण विद्यमान थे। उन राक्षसों की अंगकांति मेघहाथी और भैसों के समान काली थी। उनमें युद्ध कौशल विद्यमान था। वे निशाचर आपस में पहले मैं युद्ध करूंगा, 'पहले में युद्ध करूंगा' ऐसा कहते हुए वहाँ सब ओर चक्कर लगााने लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्ध काण्ड में अठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ (७८)

उन्नासीवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा मकराक्ष का वध

प्रधान-प्रधान वानरों ने जब देखा कि मकराक्ष नगर से निकला आ रहा है तब वे सहसा सतर्क हो युद्ध के लिए खड़े हो गये। फिर वानरों और निशाचरों का बड़ा भयंकर युद्ध शुरू हो गया। उस समय मकराक्ष ने अपने बाणों से वानरों को अत्यंत घायल कर दिया। तब सारे वानर इधर-उधर

Mookerji Bhawan Jammu Collection

भागने लगे। यह देखकर श्री राम ने बाणों की वर्षा करके राक्षसों को आगे बढ़ने से रोका। उस समय मकराक्ष क्रोध की आग में जलता हुआ बोला- हे राम ! ठहरो मेरे साथ तुम्हारा द्वंद्व युद्ध होगा। आज मैं अपने धनुष के पैने बाणों से तुम्हारे प्राण हर लूंगा। उस दिन दण्डक वन में तुमने मेरे पिता का बध किया था। उसे याद कर मेरा रोष बढ़ता जा रहा था। आज मेरे बाणों के वेग से तुम्हें उसी यमराज के राज्य में पहुँचना होगा जहाँ तुम्हारे हाथ से मारे गये निशाचर पहुँचे होंगे। तुम रणभूमि में अस्त्रों से, गदा से अथवा दोनो भुजाओं से जिससे भी अभ्यास हो उसी के द्वारा आज मेरे साथ युद्ध करो। मकराक्ष की यह बात सुनकर श्री राम जोर से हँसते हुए उस राक्षस से बोले- निशाचर! क्यों व्यर्थ डींग हांकता है। तेरे मुख से बहुत सी ऐसी बातें निकल रही हैं जो वीर पुरुष के योग्य नहीं हैं। यह ठीक है कि दण्डक वन में मैंने चौदह हजार राक्षसों के साथ तेरे पिता खर का दूषण का तथा त्रिशिरा का बध किया था और उसके मांस से कितने ही गीधों, कौवों और गीदड़ों को तृप्त किया था। अब लगता है आज तेरे मांस से वे भरपेट भोजन पायेंगे। श्री राम की यह बात सुनकर मकराक्ष ने उनके ऊपर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। उस समय उसके धनुष के टंकार से ऐसा शब्द होता था जैसे आकाश में मेघ गर्ज रहे हों। इस युद्ध में दोनों के ही शरीर बाणों से विंध गए थे। फिर भी उनका बल दुगुना बढ़ता जाता था। श्रीराम के बाणों को वह निशाचर काट देता और राक्षसों के सायकों को श्रीराम दो टूक कर डालते। तदनन्तर श्री राम चंद्र जी ने क्रोध में भरकर उस राक्षस के धनुष को युद्ध भूमि में काट दिया और आठ नाराचों द्वारा उसके सारथि को पीट दिया। फिर बाणों से उसके रथ को छिन्न-भिन्न करते हुए उसके घोड़ों को भी मार गिराया। तब रथ हीन हो जाने पर मकराक्ष जमीन पर खड़ा हो गया। किन्तु पृथ्वी पर खड़े होते ही उस राक्षस ने अपने हाथ में एक शूल ले लिया जों समस्त प्राणियों को भयभीत करने वाला था। वह महान शूल शंकरजी का दिया हुआ था इसलिए उसे देखकर सम्पूर्ण देवता भयभीत हो गए और चारों दिशाओं में भाग गये। तब उस निशाचर ने उस शूल को घुमाकर श्रीराम के ऊपर क्रोध पूर्वक चलाया। उस समय श्रीराम ने उस शूल को अपनी ओर आते देखकर चार बाण मारकर आकाश में ही उसको काट डाला। इससे वह शूल खंडित होकर भारी

उल्का के समान भूतल पर बिखर गया। यह देखकर आकाश में स्थित सभी प्राणी श्रीराम को साधुवाद देने लगे। तत्पश्चात् उस शूल के टुकड़े होते देखकर मकराक्ष घूंसा तानकर श्रीराम से बोला- अरे खड़ा रह! खड़ा रह! उसे घूंसे से अपने ऊपर आक्रमण करते देख श्रीराम ने अपने धनुष पर आग्नेयास्त्र का संधान किया और तत्काल उस राक्षस पर प्रहार किया। उस बाण के आघात से राक्षस का हृदय विदीर्ण हो गया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। मकराक्ष को श्री राम के बाणों से मरा हुआ देखकर देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्ध काण्ड में

उन्नासीवाँ सर्ग पूरा हुआ (७९)

अस्सीवाँ सर्ग

रावण की आज्ञा से इन्द्रजित् द्वारा घोर युद्ध

मकराक्ष के मारे जाने की खबर सुनकर रावण रोष से भरकर दाँत पीसने लगा। तब चिंता में डूबा हुआ उसने इन्द्रजित् को युद्ध में जाने की आज्ञा दी। वह कहने लगा- वीर! तुम महापराक्रमी हो। इसलिए राम और लक्ष्मण को छिपकर या प्रत्यक्ष रूप से मार डालो। रावण के ऐसा कहने पर इन्द्रजित् ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और अग्नि की स्थापना करके उसमें विधिपूर्वक हवन किया। उस समय उसने तलवार आदि सरपत का काम दे रहे थे। उसने तोमर सहित शस्त्र रूपी सरपत अग्नि के चारों ओर बिछा दीं। उसके बाद काले रंग के बकरे का गला पकड़कर उसे अग्नि में होम किया। तब एक ही बार किए गये उस होम से अग्नि प्रज्वलित हो उठी। उसमें धुवाँ नहीं था बल्कि बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। उस अग्नि में वे सभी चिह्न प्रकट हुए जो विजय की सूचना देते थे। उस समय अग्नि देव ने स्वयं प्रकट होकर उस हविष्य को ग्रहण किया। तत्पश्चात् इन्द्रजित् यज्ञ सम्बंधी सभी देवताओं को तृप्त कर अन्तर्धान होने की शक्ति से सम्पन्न हो सुंदर रथ पर आरूढ़ हुआ। चार घोड़ों, पैनें बाणों तथा अपने भीतर रखे हुए विशाल धनुष से युक्त वह रथ अत्यंत शोभा पा रहा था। उस सूर्य तुल्य तेजस्वी रथ और ब्रह्मास्त्र से सुसज्जित हुआ वह महाबली रावण कुमार इन्द्रजित् दूसरों के

Mookerji Chenna (CFS) Jammu Collection

लिए दुर्जय हो गया था। तत्पश्चात् वह अन्तर्धान शक्ति से सम्पन्न हो इस प्रकार बोला- उन दोनों भाइयों राम लक्ष्मण को मारकर अपने पिता रावण को उत्कृष्ट जय प्रदान करूँगा। ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गया। तत्पश्चात् युद्ध स्थल में आकर उस निशाचर ने, वानरों के बीच खड़े हो बाण समूहों की वर्षा करते हुए श्रीराम और लक्ष्मण को युद्ध में विराजमान देखा। तब उन दोनों की दृष्टि से ओझल हो वह राक्षस उन्हें पैने बाणों से बींधने लगा। उसके बाणों से व्यथित हो श्रीराम और लक्ष्मण ने भी अपने अपने धनुष पर बाणों का संधान करके दिव्य अस्त्र प्रकट किये और सूर्य तुल्य तेजस्वी बाण समूहों से आकाश को आच्छादित करके इन्द्रजित् का अपने बाणों से स्पर्श भी नहीं किया। तब इन्द्रजित् ने माया से धूमजनित अंधकार की सृष्टि की और आकाश को ढंक दिया। उस समय उसकी प्रत्यंचा की टंकार सुनाई देती थी। पहियों की घरघराहट तथा घोड़ों की टाप की आवाज भी कानों में नहीं पड़ती थी और सब ओर विचरते हुए उस राक्षस का रूप भी नहीं दिखलाई पड़ता था। इसी बीच उस घने अंधकार में वह पत्थरों तथा बाणों की वर्षा करने लगा। इस तरह उसने अपने बाणों से श्री राम के सम्पूर्ण अंगों में घाव कर दिये। तब वे दोनों वीर भी सोने के पंखों से सुशोभित तीखे बाण छोड़ने लगे। वे कंक पत्रयुक्त बाण आकाश में पहुंचकर इन्द्रजित् को क्षत विक्षत करके रक्त में डूबोते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ते थे। उस समय वे दोनों नरवीर अपने ऊपर गिरते हुए सायकों को अनेक भल्ल मारकर काट गिराते थे। जिस ओर से तीखे बाण आते दिखाई देते उसी और वे दोनों भाई, दशरथ कुमार, श्रीराम और लक्ष्मण अपने उत्तम अस्त्रों को चला दिया करते थे। इन्द्रजित् की वेगपूर्ण गति, रूप, धनुष और बाणों को कोई देख नहीं पाता था। उसके द्वारा घायल और आहत होकर कितने ही वानर अपने प्राणों से हाथ धो बैठे तथा सैकड़ों योद्धा मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब लक्ष्मण को बड़ा क्रोध आया और उन्होंने अपने भाई श्रीराम से कहा- आर्य! अब मैं समस्त राक्षसों के संहार के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करूँगा। यह सुनकर श्रीरामचंद्र जी बोले- भाई! एक के कारण समस्त राक्षसों का बध करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है। महाबाहो! जो युद्ध न करता हो, छिपा हो हाथ जोड़कर शरण में आया हो, युद्ध से भाग रहा हो अथवा पागल हो, ऐसे व्यक्ति को तुम्हें नहीं मारना

Mookerji sharma Jammu Collection

चाहिए। अब मैं ही इन्द्रजित् के बध का प्रयत्न करता हूँ। आओ हम लोग विषैले सर्पों की भांति भयंकर तथा अत्यंत वेगशाली अस्त्रों का प्रयोग करें। यह मायावी राक्षस बड़ा नीच है। इसने अन्तर्धान शक्ति से अपने रथ को छिपा लिया है। यदि यह दिखाई पड़ जाए तो वानर यूथपति इस राक्षस को अवश्य मार डालेंगे। तथापित इस तरह छिपे होने पर भी मेरे बाणों से दग्ध होकर यह प्राण शून्य होकर भूतल पर अवश्य गिरेगा। इतना कहकर श्रीराम उस क्रूर का बध करने के लिए तत्काल ही इधर-उधर देखने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८०)

इक्यासीवाँ सर्ग

इन्द्रजित् द्वारा मायामयी सीता का बध

महात्मा श्रीराम के मनोभावों को समझकर इन्द्रजित् युद्ध से निवृत्त होकर लंका में चला गया। वहाँ आने पर राक्षसों के बध का स्मरण कर वह क्रोध से आँखें लाल करता हुआ पुनः युद्ध के लिए निकला। वह राक्षसों की बहुत बड़ी सेना लेकर नगर के पश्चिम द्वार से पुनः बाहर आया और राम तथा लक्ष्मण को युद्ध के लिए उद्यत देख इन्द्रजित् ने उस समय माया प्रकट की। उसने मायामयी सीता का निर्माण कर उसे अपने रथ पर बैठा लिया और विशाल सेना के घेरे में रखकर उसका बध करने का विचार किया। उसने सब को मोह में डालने का विचार करके माया से बनी हुई उस सीता को मारने का निश्चय किया। उस समय उसे युद्ध के लिए निकलते देखकर सभी वानर क्रोध से भर गये और हाथ में शिला उठाये युद्ध की इच्छा से उस पर टूट पड़े। हनुमानजी सबसे आगे थे। उन्होंने पर्वत का एक बहुत बड़ा शिखर हाथ में ले रखा था जिसे उठाना बहुत कठिन था। लेकिन जब अन्होंने इन्द्रजित् के रथ पर सीता जी को देखा तो उनकी खुशी मारी गयी। सीता उस समय एक वेणी धारण किए हुए बहुत दुखी दिखाई पड़ रही थीं। उनके शरीर पर मलिन वस्त्र थे तो भी वे बहुत सुंदर दिखाई देती थीं। उन्होंने सीता को थोड़े ही दिन पहले देखा था इसलिए वे शीघ्र पहचान गये। वे इन्द्रजित् के रथ पर बैठी हुई आनंद शून्य हो रही थीं। यह देखकर हनुमानजी मुख्य-मुख्य वानरों को साथ लेकर

Mookerjee Library, BJP, Jammu Collection

रावण पुत्र की ओर दौड़े। तब वानर सेना को अपनी ओर आता देख रावण कुमार को क्रोध की सीमा न रही। उसने तत्काल तलवार को म्यान से बाहर निंकाला और सीता के सिर के केश पकड़कर उन्हें घसीटा। सीता जी के केश पकड़े गये देखकर हनुमान को बड़ा दुःख हुआ। वे अपने नेत्रों से दुःखजनित आँसू बहाने लगे। उस समय वे कुपित हो इन्द्रजित् से बोले- तू अपने विनाश के लिए ही तुला है। तभी सीता के केशों को स्पर्श कर रहा है। तेरा जन्म ब्रह्मर्षियों के कुल में हुआ है तथापि तूने राक्षस जाति के स्वभाव का ही आश्रय लिया है। तेरी यह करतूत नीच पुरुषों के योग्य ही है। निष्ठुर! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है जो तू इतनी निर्दयता से मार रहा है। नीच अब तू मेरे हाथ पड़ गया है और इसलिए तेरा जीना कठिन है। ऐसी बातें कहते हुए हनुमानजी अत्यंत कुपित हो शिला आदि आयुध धारण करनेवाले वानर वीरों के साथ इन्द्रजित् पर टूट पड़े। वानरों के सैन्य समुदाय को आक्रमण करते देख, भयानक, क्रोधवाले, राक्षसों की सेना के द्वारा इन्द्रजित् ने उसे आगे बढ़ने से रोका। फिर बाणों से वानर वाहिनी में हलचल मचाते हुए इन्द्रजित् ने हनुमान से कहा- वानर! सुग्रीव, राम और तुम सब लोग जिसके लिए यहाँ तक आये हो, उस सीता को मैं अभी देखते-देखते तुम्हारे सामने मार डालूँगा। इसके साथ ही मैं राम, लक्ष्मण, सुग्रीव, तुम्हारा और उस अनार्य विभीषण का भी बंध कर डालूँगा। ऐसा कहकर इन्द्रजित् ने स्वयं ही तेजधारवाली तलवार से उस रोती हुई मायामयी सीता पर घातक प्रहार किया। इससे उस मायामयी सीता के शरीर के दो टुकड़े हो गये और वह तपस्विनी पृथ्वी पर गिर पड़ी। तब उस स्त्री का बध करके इन्द्रजित् ने हनुमान जी से कहा- देख लो, मैंने राम की प्यारी पत्नी का सिर काट डाला है। अब तुम लोगों का युद्ध के लिए परिश्रम करना व्यर्थ है। इतना कहकर इन्द्रजित् रथ पर ही बैठा हुआ जोर-जोर से सिंहनाद करने लगा। उसने इस प्रकार मायामयी सीता का बध करके अपने मन में बड़ी प्रसन्नता का अनुभव किया। उसे हर्ष से भरा देखकर वानर विषाद में पड़कर भाग खड़े हुए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्ध काण्ड में इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ (८१)

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

बयासीवाँ सर्ग

हनुमानजी के नेतृत्व में वानरों का निशाचरों से युद्ध और इन्द्रजित् का निकुम्भिला मंदिर में जाना

इन्द्रजित् के भयंकर सिंहनाद को सुनकर वानर सभी दिशाओं की ओर जोर-जोर से भागने लगे। उन्हें इस तरह भागते हुए देख हनुमानजी बोले-वानरों! तुम शोकग्रस्त होकर क्यों भागे जाते हो? तुम्हारा सारा शौर्य कहाँ चला गया? मैं युद्ध में आगे-आगे चलता हूँ तुम सब मेरे पीछे-पीछे आ जाओ। शूरवीरों को युद्ध में पीठ दिखलाना अनुचित है। हनुमानजी की बात सुनकर वानरों का चित्त प्रसन्न हो गया और उन वीरों ने कुपित होकर हाथों में पर्वत शिखर और वृक्ष उठा लिये। फिर जोर-जोर से गर्जना करते हुए राक्षसों पर टूट पड़े। तब वानर सैनिकों से घिरे हुए हनुमानजी यमराज के समान राक्षसों का संहार करने लगे। इन्द्रजित् का अत्याचार देखकर उस समय उनका क्रोध और बढ़ गया। इसलिए हनुमानज जी ने इन्द्रजित् के रथ पर एक बहुत बड़ी शिला फेंकी। किन्तु यह देखकर सारथि अपने रथ को वहाँ से हटाकर बहुत दूर ले गया। इससे वह शिला इन्द्रजित् तक न पहुँचकर धरती फोड़कर उसके भीतर समा गई। किन्तु उस गिरती हुई शिला ने बहुतेरे राक्षसों को कुचल डाला। तब भयानक पराक्रमी वानर हाथों में पर्वत शिखर और वृक्ष उठाए इन्द्रजित् की ओर दौड़े और वृक्षों द्वारा भयंकर रूपधारी निशाचरों को बलपूर्वक मार गिराया। वे रणभूमि में गिरकर छटपटाने लगे। अपनी सेना को वानरों द्वारा व्यथित होते देख इन्द्रजित् क्रोधित हो अस्त्र-शस्त्र लिए शत्रुओं के सामने आया और अपने बाण समूहों से बहुत से वानर वीरों को हताहत करने लगा। तब हुनमानजी ने वानरों को युद्ध को रोकने का आदेश देते हुए कहा- बंधुओं! अब लौट चलो। अब इस सेना को संहार करने की आवश्यकता नहीं रह गई। हम लोग जिनके लिए युद्ध कर रहे थे वे सीता तो मारी गयीं। अब इस बात की सूचना भगवान् श्रीराम और सुग्रीव को दे देनी चाहिए। फिर वे लोग इसके लिए जैसा सोचें-समझें, वैसा ही हम लोग भी करेंगे। तब हनुमाने जी को श्रीराम चंद्र जी के पास जाते देख दुरात्मा इन्द्रजित् होम करने की इच्छा से निकुंभिला देवी के मंदिर में गया। निकुम्भिला देवी के मंदिर में जाकर इन्द्रजित् ने अग्नि में आहुति दी।

Mookerji sharma (T-S) Jammu Collection

तदनन्तर यज्ञ भूमि में जाकर उस राक्षस ने अग्निदेव को होम के द्वारा तृप्त किया। उस समय तीव्र तेज वाले अग्निदेवता संध्याकाल के सूर्य की भांति प्रकट हुए थे। इन्द्रजित् यज्ञ के विधान का ज्ञाता था। उसने समस्त राक्षसों के अभ्युदय के लिए विधिपूर्वक हवन करना शुरू किया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ (८२)

तिरासीवाँ सर्ग

सीता के मारे जाने की बात सुनकर श्रीराम का शोक से मूर्च्छित होना

उस समय राक्षसों और वानरों के उस महान युद्ध घोष को सुनकर श्रीराम ने जाम्बवान् से कहा- सौम्य ! हनुमानजी ने निश्चय ही दुष्कर कर्म किया है क्योंकि उनके आयुधों का यह महाभयंकर शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ता है। अतः ऋक्षराज तुम सेना के साथ जाओ और हनुमानजी की सहायता करो। तब ऋक्षराज जाम्बवान् सेना से घिरे हुए उस स्थान पर गये जहाँ हनुमानजी थे। वहाँ उन्होंने युद्ध से लौटते हुए हनुमानजी को देखा। अब हनुमानजी जाम्बवान् की सेना को रोककर और उन्हें भी साथ लेकर श्रीराम के पास आए और दुःखी होकर बोले- प्रभो ! हम लोग युद्ध करने में लगे हुए थे उस समय इन्द्रजित् ने हमारे देखते-देखते रोती हुई सीता को मार डाला। इसलिए विषाद में डूबा हुआ यह समाचार मैं आपको बताने आया हूँ। हनुमानजी की यह बात सुनकर श्रीराम मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देखकर समस्त वानर सब ओर से वहाँ आ पहुँचे। भाई की यह अवस्था देखकर लक्ष्मण को बड़ा दुःख हुआ। वे तुरंत उन्हें अपनी दोनों भुजाओं में भरकर बैठ गये और बोले- आर्य ! आप सदा शुभमार्ग पर स्थित रहनेवाले हैं, फिर भी धर्म आपको अधर्मों से बचा नहीं पाया। इसलिए मेरा विचार है कि धर्म सुखकर साधन नहीं है। जहाँ धर्म है वहाँ सुख भी अवश्य है। ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि ऐसी स्थिति में आप जैसे धर्मात्मा पुरुष पर विपत्ति नहीं पड़नी चाहिए और यदि अधर्म ही दुःख का साधन अवश्य होता है तो रावण को नर्क में पड़े रहना चाहिए था। अतएव धर्म सुख देने वाला तथा

अधर्म सुख देनेवाला अर्थात् दोनों विपरीत फल देनेवाले हो गए हैं। यदि धर्म से सुख तथा अधर्म से दुःखप्राप्त करने का अटल नियम होता है तो धर्म पूर्वक चलनेवालों को दुःखनहीं मिलता। धर्माचरण करनेवाले को सुख मिलना ही चाहिए। किन्तु अधर्मी सुख भोगते हैं और धर्मात्मा दुःखउठाते हैं। अतः धर्म और अधर्म निरर्थक हैं अथवा विपरीत फलदाता हैं। हे राम ! यदि मायाचारी पुरुष धर्म या अधर्म से मारे जाते हैं तो धर्म या अधर्म क्रिया रूप होने के कारण तीन ही क्षणों तक रहता है। चतुर्थ क्षण में तो वह स्वयं नष्ट हो जाएगा। फिर नष्ट हुआ अधर्म या धर्म किसका बध करेगा। यदि कहो कि विधि के द्वारा पापी का नाश होता है और वह दूसरों को नष्ट करता है तो उस पाप का फल विधि को ही मिलना चाहिए। पापी को नहीं। हे शत्रुसूदन ! धर्म दुःखों को दूर करता है यह बात किसी ने देखी नहीं क्योंकि वह अव्यक्त है। यदि धर्म सत् होता तो आपको वह असत् दुखी न करता। आपने जो इतना दुःख अनुभव किया है उससे यही सिद्ध होता है कि धर्म नहीं है और यदि है तो दुर्बल या कातर है। यदि धर्म बल अथवा पुरुषार्थ का अंग मात्र है तो धर्म को छोड़र पराक्रम पूर्वक बर्ताव कीजिए जैसे आप धर्म को प्रधान मानकर धर्म में लगे हैं उसी प्रकार बल को प्रधान मानकर बल या पुरुषार्थ में प्रवृत्त होइए। यदि आप सत्यात्मक धर्म का पालन कर रहे हैं अर्थात् पिता की आज्ञा मानकर वन में आये हैं तो क्या आप उसके लिए दोषी नहीं हैं। यदि दोषी हैं तो क्या आपने यथार्थ धर्म का पालन किया है ? हे शत्रुनाशक ! यदि धर्म ही प्रधान होता तो इन्द्र विश्वरूप मुनि की हत्या करके फिर यज्ञ का अनुष्ठान न करते। रघुनंदन ! धर्म से खिन्न जो पुरुषार्थ है उससे मिला हुआ धर्म एवं पुरूषार्थ में से किसी एक का आश्रय लेना धर्म ही है। आपने उस दिन राज्य का त्याग करके धर्म के मूलभूत अर्थ का अनुच्छेद कर डाला है। जो मंद बुद्धि मानव अर्थ से वंचित है, उसकी सारी क्रियाएं उसी तरह छिन्न-भिन्न हो जाती हैं जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटी-छोटी नदियाँ सूख जाती हैं। जो पुरुष सुख में पला हुआ है, वह यदि प्राप्त हुए अर्थ को त्यागकर सुख चाहता है तो उस अभीष्ट सुख के लिए अन्याय पूर्वक अर्थोपार्जन करने में प्रवृत्त होता है। इसलिए उसे ताड़न बंधन आदि दोष प्राप्त होते हैं। जिसके पास धन है उसी के अधिक मित्र होते हैं। अर्थ का त्याग करने से मित्र का अभाव आदि दोष प्राप्त होते हैं।

आपने राज्य को छोड़ते समय किस लाभ को सोचकर अपनी बुद्धि में अर्थ त्याग की भावना को स्थान दिया था ? जिसके पास धन है, उसके धर्म और कर्मरूप सारे प्रयोजन सिद्ध होते हैं इसलिए सब कुछ उसके अनुकूल बन जाता है। जो निर्धन हैं, वह अर्थ की इच्छा रखकर उसका अनुसंधान करने पर भी उसे नहीं पा सकता है। नरेश्वर ! हर्ष, काम, दर्प, धर्म, क्रोध, शम और दम ये सब धन होने से ही सफल होते हैं। वीर ! आप पूज्य पिता की आज्ञा पालन करने के लिए राज्य छोड़कर वन में चले आए और सत्य के ही पालन पर डटे रहे। परन्तु इस राक्षस ने आपकी पत्नी को, जो आपको प्राणों से भी अधिक प्यारी थीं, हर लिया। अब इन्द्रजित् ने हमें जो महान् दुख दिया है, उसे मैं अपने पराक्रम से दूर करूँगा। अतः चिंता छोड़कर उठिए। महाबाहो ! आप परम बुद्धिमान् और परमात्मा हैं। इस रूप में अपने आपको क्यों नहीं समझ रहे हैं। मैंने यह जो कुछ कहा है वह सब आपके प्रिय कार्य को करने के लिए ही कहा है। जनकनंदिनी के मृत्यु का वृत्तांत जानकर मेरा रोष बढ़ गया है। अतः आज अपने बाणों द्वारा हाथी, रथ घोड़े और राक्षस राज रावण सहित सारी लंका को धूल में मिला दूँगा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ (८३)

चौरासीवाँ सर्ग

विभीषण का श्रीराम को इन्द्रजित् की माया का रहस्य बताना

जब लक्ष्मण श्रीराम को इस प्रकार का आश्वासन दे रहे थे उसी समय विभीषण वानर सैनिकों को यथोचित स्थान पर लगाकर वहाँ आए। वहाँ आकर उन्होंने देखा कि महात्मा लक्ष्मण शोक में मग्न हैं तथा वानरों के नेत्रों में आँसू भी भरे हुए हैं। तब श्रीराम को लक्ष्मण की गोद में मूर्च्छित होकर लेटे हुए देखकर उन्होंने पूछा- क्या बात है ? तब लक्ष्मण ने कहा- सौम्य ! हनुमान जी के मुख से यह सुनते ही कि इन्द्रजित् ने सीता को मार डाला है श्रीरघुनाथ जी मूर्च्छित हो गए। इस पर विभीषण ने दृढ़ स्वरों में श्रीराम से कहा- महाराज ! हनुमान जी ने दुखी होकर जो आपको समाचार सुनाया है मैं इसे समुद्र सोख लेने के समान असंभव मानता हूँ। रावण तो सीता का बध कभी

करने ही नहीं देगा। वह जानकी मायामयी थीं ऐसा आप निश्चित समझिए। इस समय वह निकुंभिला मंदिर में जाकर होम करेगा। तब इन्द्रजित् को जीत पाना सम्पूर्ण देवताओं के लिए भी कठिन होगा। इन्द्रजित् ने ऐसा इसलिए किया कि जिससे हम लोगों के मोह में पड़ जाने से उसके इस कार्य में विघ्न न पड़े। जब तक उसका होम कर्म समाप्त हो उसके पहले ही इस मिथ्या दुख को त्याग कर हम लोग सेना सहित निकुंभिला मंदिर में चलें। क्योंकि आपको शोक में पड़ा देख सारी सेना दुःख में पड़ी है। अतः आप स्वस्थ चित्त होकर यहीं रहिए और सेना सहित हम लोगों के साथ लक्ष्मण जी को भेज दीजिए। ये नरश्रेष्ठ लक्ष्मण अपने बाणों से इन्द्रजित् को होमकर्म त्याग देने के लिए विवश कर देंगे। इससे वह मारा जा सकेगा। जैसे बज्रधारी इन्द्र दैत्यों के बध के लिए वज्र का प्रयोग करते हैं वैसे दैत्य बध के लिए आप लक्ष्मण जी को जाने की आज्ञा दीजिए। वह राक्षस शिरोमणि जब अपना अनुष्ठान निर्विघ्न पूरा कर लेगा तो देवता और असुर भी उसे नहीं जीत सकेंगे। अपना कर्म पूरा करके जब युद्ध की इच्छा से रणभूमि में वह खड़ा होगा तो उस समय देवताओं को भी उसके पराक्रम से अपने जीवन की रक्षा के विषय में महान् संदेह होने लगेगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८४)

पचासीवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण को युद्ध में जाने की आज्ञा देना

भगवान् श्रीराम शोक से पीड़ित थे। अतः विभीषण ने उनसे जो कुछ कहा उस पर वे पूरा ध्यान नहीं दे सके। तदनन्तर वे विभीषण से बोले- विभीषण! तुमने अभी-अभी जो बातें कही हैं उन्हें मैं फिर सुनना चाहता हूँ। बोलो तुम क्या कहना चाहते हो? यह सुनकर विभीषण फिर बोले- आपकी आज्ञानुसार मैं आपकी सेना को यथास्थान स्थापित करके आया हूँ। अब मुझे यह निवेदन करना है कि आपके दुखी होने से हम लोगों के हृदय में भी बड़ा संताप हो रहा है। आपका यह मिथ्या शोक शत्रुओं का हर्ष बढ़ानेवाला है। यदि आप सीता को पाना चाहते हैं तो निशाचरों का बध करने के लिए

[illegible] Jammu Collection

उत्साह से काम लीजिए। इस समय आप मेरी एक बात ध्यान देकर सुनें! इन्द्रजित् निकुंभिला मंदिर की ओर गयाहै।इसलिए कुमार लक्ष्मण अभी विशाल सेना लेकर उस पर आक्रमण करें। धनुर्धर लक्ष्मण अपने सर्प तुल्य बाणों से इन्द्रजित् का बध करने में समर्थ हैं। रावण कुमार ने ब्रह्मा जी की तपस्या करके उनसे ब्रह्मशिर नामक अस्त्र तथा मन चाहे गति से चलनेवाले घोड़े प्राप्त किए हैं। यदि मंदिर में उसने हवन कर्म पूरा कर लिया तो हमें उसके हाथों मरा ही समझिए। ब्रह्मा जी ने उसे वरदान देते समय कहा था कि हवन सम्बन्धी कार्य करने के पहले ही जो शत्रु तुमको मारने के लिए आक्रमण करेगा उसी के हाथों तुम्हारा बध होगा। राजन्! उसकी मृत्यु का विधान इसी तरह हुआ है। इसलिए उसके बध के लिए लक्ष्मण को आज्ञा दीजिए। फिर उसके मरने पर रावण को मरा ही समझिए। तब श्रीराम शोक त्याग कर बोले- विभीषण! उस भयंकर राक्षस की माया मैं जानता हूँ। वह ब्रह्मास्त्र का ज्ञाता युद्ध में वरुणं सहित सम्पूर्ण देवताओं को भी अचेत कर सकता है। तब इतना कह उन्होंने वीर लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! वानर राज सुग्रीव की पूरी सेना को साथ ले हनुमान आदि सैनिकों से घिरे रहकर तुम राक्षस राज इन्द्रजित् का बध करो। विभीषण उसकी माया को अच्छी तरह जानते हैं। अतः ये अपने मंत्रियों के साथ तुम्हारे पीछे-पीछे जाएंगे। श्रीराम की बात सुनकर पराक्रमी लक्ष्मण ने श्रेष्ठधनुष हाथ में लिया तत्पश्चात् श्रीराम के चरण छूकर बोले- आर्य! आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण रावण कुमार का बध करके लंका में उसी प्रकार गिरेंगे जैसे हँस कमलों से भरे हुए सरोवरों में उतरते हैं। इतना कहकर लक्ष्मण युद्ध की इच्छा से तुरन्त वहाँ से चल दिए। उनके साथ कई हजार वानर वीरों के साथ हनुमान और अपने मंत्रियों सहित विभीषण भी पीछे-पीछे चले। उस समय वेगपूर्वक आगे बढ़कर उन्होंने मार्ग में खड़ी हुई जाम्बवान् की सेना को देखा। कुछ रास्ता तय कर लेने के पश्चात् लक्ष्मण ने दूर से ही रावण की सेना को मोर्चा बाँधे खड़ी हुई देखा। उस समय वे मायावी राक्षस को जीतने के लिए निकुंभिला नामक स्थान में पहुँचकर एक जगह खड़े हो गए। उस समय उनके साथ हनुमान, अंगद और विभीषाण भी थे और उन्हीं, को साथ लेकर लक्ष्मण ने उस अंधकार के समान काली शत्रु सेना में प्रवेश

किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८५)

छियासीवाँ सर्ग

वानरों और राक्षसों का युद्ध, लक्ष्मण का इन्द्रजित् को युद्ध के लिए ललकारना

तदनन्तर वहाँ पहुँचकर विभीष ने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! यह जो सामने शत्रु सेना खड़ी है उसके साथ वानर वीर शीघ्र ही युद्ध छेड़ दें और आप इस वाहिनी के व्यूह का भेदन करने का प्रयत्न करें। इसका मोर्चा हट जाने पर राक्षस राज का पुत्र इन्द्रजित् भी यहीं दिखाई देगा। अतः आप इस हवनकर्म के समाप्ति के पहले बज्रतुल्य बाणों की वर्षा करते हुए शीघ्र शत्रुओं पर धावा कीजिए। विभीषण की बात सुनकर लक्ष्मण ने रावण के पुत्र को लक्ष्य करके बाणों की वर्षा आरम्भ की। साथ ही बड़े-बड़े वृक्ष लेकर भालू और वानर भी राक्षस सेना पर टूट पड़े। तब वे राक्षस भी वीरता के साथ उनका सामना करने लगे। उस समय उनके कोलाहल से सम्पूर्ण लंकापुरी गूँज उठी। साथ ही राक्षस तथा भालू वानर भी एक दूसरे के लिए भय पैदा करने लगे। इधर जब इन्द्रजित् ने सुना कि उसकी सेना शत्रुओं द्वारा पीड़ित होकर भय में पड़ गई है तो वह अनुष्ठान समाप्त होने के पहले ही युद्ध के लिए उठ खड़ा हुआ। उस समय वह क्रोधित हो अंधकार से निकलकर एक सुसज्जित रथ पर सवार हो गया और तुरन्त उसके साथ ही उसकी सेना भी लक्ष्मण को सब ओर से घेरकर खड़ी हो गई। तब हनुमान जी एक वृक्ष को उखाड़कर अपने सहायकों के साथ राक्षस सेना को दग्ध करने लगे। यह देखकर सहस्त्रों राक्षस हनुमान जी पर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा करने लगे। उस समय हनुमान जी ने भी कुपित होकर राक्षसों का महान् संहार किया। हनुमान जी को राक्षसों का संहार करते देख इन्द्रजित् ने अपने सारथि से कहा- जहाँ यह वानर युद्ध कर रहा है, वहीं चलो। सारथि द्वारा वहाँ पहुँचा दिए जाने पर इन्द्रजित् ने हनुमान जी के मस्तक पर बाणों, तलवारों और फरसों की वर्षा आरम्भ कर दी। तब हनुमान जी

रोष में भरकर बोले- रावणकुमार! यदि बड़े शूरवीर हो तो आओ मेरे साथ मल्ल युद्ध करो। इस वायु पुत्र से जीवित बचकर निकल नहीं सकोगे। यदि इस युद्ध में तुम मेरा वेग सह लोगे तो तुम राक्षसों में श्रेष्ठ समझे जाओगे। इन्द्रजित् धनुष उठाकर हनुमान जी का बध करना ही चाहता था कि विभीषण ने लक्ष्मण को इन्द्रजित् का परिचय दिया- सुमत्रि कुमार! यह रथ पर बैठा हुआ व्यक्ति ही इन्द्रजित् है। अतः आप अपने भयंकर बाणों द्वारा इसका बध कर दें। यह सुनकर लक्ष्मण ने रथ में बैठे हुए उस भयंकर दुर्जय राक्षस को देखा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८६)

सत्तासीवाँ सर्ग

इन्द्रजित् और विभीषण की रोषपूर्ण बातचीत

विभीषण धनुर्धर लक्ष्मण को लेकर आगे बढ़े। उस समय विभीषण ने एक घनघोर वन में प्रवेश करके लक्ष्मण को इन्द्रजित् के कर्मानुष्ठान का स्थान दिखाया। वहाँ एक बरगद का वृक्ष था, जो श्याम मेघ के समान सघन और देखने में भयंकर था। विभीषण ने लक्ष्मण को वहाँ की सब वस्तुएँ दिखाकर कहा- सुमित्रा नन्दन! यह बलवान् रावण कुमार प्रतिदिन यहाँ आकर भूतों को बलि देता है। उसके बाद युद्ध में प्रवृत्त होता है। इसी से यह राक्षस संग्राम भूमि में सम्पूर्ण भूतों के लिए अदृश्य हो जाता है। अतः जब तक वह इस बरगद के नीचे आए उसके पहले ही आप रथ सारथि और घोड़े सहित इसे नष्ट कर दें। बहुत अच्छा- कहकर लक्ष्मण अपने धनुष की टंकार करते हुए वहाँ खड़े हो गए। इतने में ही इन्द्रजित् अग्नि के समान तेजस्वी रथ पर बैठा हुआ वहाँ दिखलाई पड़ा। उस समय लक्ष्मण ने इन्द्रजित् से कहा- रावण कुमार! मैं तुम्हें युद्ध के लिए ललकारता हूँ। तुम अच्छी तरह सम्हल कर मेरे साथ युद्ध करो। इन्द्रजित् ने वहाँ विभीषण को भी उपस्थित देखकर कठोर शब्दों में कहा- राक्षस! यहीं तुम्हारा जन्म हुआ है और यहीं तुम बढ़कर इतने बड़े हुए। तुम मेरे चाचा भी हो फिर तुम मुझसे क्यों द्रोह करते हो? तुममें न तो कुटुम्बीजनों के प्रति अपने पन का

भाव है और न अपनी जाति का अभिमान है। तुममें मर्यादा, भ्रातृ प्रेम या धर्म कुछ भी नहीं है। तुमने स्वजनों का त्याग करके दूसरों की गुलामी स्वीकार की है। दूसरे लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों और स्वजन गुणहीन ही क्यों न हों किन्तु वह गुणहीन स्वजन दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। निशाचर तुमने लक्ष्मण को इस स्थान तक ले आकर, मेरे बध का प्रयत्न करके जो निर्दयता दिखलाई है ऐसा पुरुषार्थ तुम्हारे जैसा स्वजन ही कर सकता है। उस समय भतीजे के ऐसा कहने पर विभीषण ने कहा- तू आज जैसी शेखी बघारता है इससे लगता है तुझे मेरे स्वभाव का पता नहीं। अधम! यद्यपि मेरा जन्म राक्षसों के ही कुल में हुआ है तथापि मेरा शील-स्वभाव राक्षसों का-सा नहीं है। क्रूरतापूर्ण कर्म में मेरा मन नहीं लगता। जब मेरे शील स्वभाव के कारण मुझे घर से निकाल दिया गया तब मैं दूसरे सत्पुरुष का आश्रय क्यों न लूँ। जिस पुरुष ने पाप करने का दृढ़ निश्चय कर लिया हो उस पुरुष का त्यागकर प्राणी उसी प्रकार सुखी होता है जैसे हाथ पर बैठे हुए जहरीले सर्प को त्यागने से। पराए धन का अपहरण, पर-स्त्री के साथ संसर्ग और अपने सुहृदों पर संदेह- ये तीन दोष विनाशकारी बताए गए हैं। महर्षियों का बध, देवताओं का विरोध और धर्म के प्रतिकूल चलना ये दोष मेरे भाई में मौजूद हैं इसलिए मुझे तेरे पिता का त्याग करना पड़ा। अब तो न लंकापुरी रहेगी, न तू रहेगा और न तेरे पिता ही रह जाएंगे। तू अत्यंत अभिमानी और उद्दण्ड बालक है। तू काल पाश में बँधा हुआ है इसलिए मुझे जो चाहे कह ले। नीच राक्षस! तूने मुझसे जो कठोर बात कही है उसी का यह फल है कि तुझ पर यह घोर संकट आया है। अब लक्ष्मण से युद्ध कर यमलोक जा और वहाँ देवताओं को संतुष्ट कर। आज चाहे तू अपने समस्त सायकों का व्यय कर ले फिर भी लक्ष्मण के हाथों बच नहीं सकता।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सत्तासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८७)

अट्ठासीवाँ सर्ग

लक्ष्मण और इन्द्रजित् की बातचीत

विभीषण की बात सुनकर इन्द्रजित् क्रोध से मूर्च्छित-सा हो गया। उस

समय वह भयंकर धनुष लेकर युद्ध के लिए तैयार था इसलिए लक्ष्मण तथा अन्य वानर वीरोंसे बोला- शत्रुओं! आज मेरा पराक्रम देखना। तुम लोग आज मेरे बाणों को अपने शरीर पर उसी तरह धारण करोगे जैसे आकाश से होने वाली वर्षा को भूतल पर प्राणी अपने ऊपर धारण करते हैं। आज अपने अस्त्रों से मैं तुम सब लोगों को यम लोक पहुँचा दूँगा। जिस समय मैं बाणों की वर्षा आरम्भ करूँगा उस समय कौन मेरे सम्मुख ठहर सकेगा? लक्ष्मण! अब मैं उस रात के युद्ध के समान ही तुम दोनों को मूर्च्छित कर दूँगा। मेरे साथ जो तुम युद्ध करने के लिए तैयार हो इससे यह स्पष्ट जान पड़ता है कि तुम सब यमलोक जाना चाहते हो। तब इन्द्रजित् की गर्जना सुनकर लक्ष्मण कुपित हो उठे और उससे बोले- निशाचर! जो कहता नहीं बल्कि काम पूरा करके दिखाता है, वही पुरुष बुद्धिमान है। दुर्मते! तुम अपना काम पूरा करने में असमर्थ हो। उस दिन युद्ध में अपने को छिपाकर तुमने जिस मार्ग को अपनाया था वह चोरों का मार्ग था। आज मैं तुम्हारे बाणों के मार्ग में खड़ा हूँ। आज तुम अपना वह तेज दिखलाओ। केवल बढ़-बढ़कर बातें क्यों बना रहे हो।लक्ष्मण के ऐसा कहने पर इन्द्रजित् ने उन पर अपने बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। इससे लक्ष्मण क्षत-विक्षत हो रक्त से नहा उठे। तब इन्द्रजित् अपना पराक्रम दिखलाकर लक्ष्मण के पास जा पहुँचा और जोर-जोर से गर्जना करता हुआ बोला- लक्ष्मण! मेरे धनुष से छूटे हुए ये बाण तुम्हारे जीवन का अंत कर देनेवाले हैं। इस समय जब तुम्हारे प्राण छूटेंगे तब तुम्हारी लाश पर झुंड के झुंड गीदड़ और बाज टूट पड़ेंगे और इस अवस्था में मेरे हाथों से मारे जाने पर राम भी तुमको देखेंगे। इन्द्रजित् को इस तरह कठोर बातें करते हुए सुनकर लक्ष्मण बोले- दुर्बुद्धि राक्षस! बकवास का सहारा छोड़ दे और कुछ करके दिखा। तू अब देख लेना, मैं तेरे ऊपर बिना कोई आक्षेप किए और अपनी आत्म, प्रशंसा किए ही तेरा बध करूँगा। ऐसा कहकर लक्ष्मण ने उस राक्षस की छाती पर पाँच नाराच मारे। सर्प के समान दिखलाई देनेवाले वे बाण राक्षस की छाती पर जा लगे। इससे आहत हो उसने अपने तीन बाणों से लक्ष्मण को भी घायल करके बदला चुकाया। एक ओर लक्ष्मण और दूसरी ओर इन्द्रजित्। इन दोनों का ही संग्राम देखने योग्य था। ये दोनों उस समय दो सिंहों की भाँति

लड़ते हुइ दिखलाई पड़ते थे। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने क्रोधित सर्प की भाँति लम्बी-लम्बी साँस खींचते हुए अपने धनुष पर अनेक बाण रखे और उन्हें इन्द्रजित् पर चलाया। उसकी टंकार ध्वनि से इन्द्रजित् का मुख उदास हो गया और वह चुपचाप लक्ष्मण की ओर देखने लगा। यह देखकर विभीषण ने लक्ष्मण से कहा- महाबाहो! इन्द्रजित् में जो लक्षण दिखलाई पड़ते हैं उससे यह जान पड़ता है कि निःसन्देह इसका उत्साह भंग हो गया है। अतः आप इसके बध के लिए शीघ्रता करें। यह सुनकर लक्ष्मण ने विषधर सर्पों के समान बाणों को धनुष पर चढ़ाया और उसे इन्द्रजित् को लक्ष्य करके चला दिया। उस समय लक्ष्मण द्वारा चलाए हुए बाण से इन्द्रजित् विक्षुब्ध होकर दो घड़ी के लिए मूर्च्छित हो गया। थोड़ी देर बाद होश आने पर वह रोष से भरकर लक्ष्मण के सामने गया और कठोर वाणी में बोला- सुमित्रा कुमार! मैंने पहले युद्ध में जो पराक्रम दिखलाया था उसे क्या तुम भूल गए? उस महायुद्ध में बज्र एवं अग्नि के समान तेजस्वी बाणों द्वारा मैंने तुम दोनों भाइयों को पहले ही धरती पर सुला दिया था। मालूम होता है अब उन सब बातों की याद तुम्हें नहीं रह गई। यदि पहले युद्ध में तुमने मेरा पराक्रम नहीं देखा है तो उसे आज दिखा दूँगा। ऐसा कहकर उसने तीखी धारवाले सात बाणों से लक्ष्मण जी को घायल कर दिया और दस उत्तम सायकों द्वारा हनुमान जी पर प्रहार किया। उसने अपने बाणों से विभीषण को भी क्षत-विक्षत कर दिया। लेकिन यह सब देखकर लक्ष्मण बोले- यह तो कुछ भी नहीं है। इतना कहकर उन्होंने हाथ में भयंकर बाण लेकर इन्द्रजित् पर चला दिया और कहने लगे- तुम्हारे ये बाण बहुत हल्के और कमजोर हैं। इससे कष्ट नहीं होता बल्कि सुख ही मिलता है। ऐसा कहते हुए धनुर्धर वीर लक्ष्मण ने इन्द्रजित् पर बाणों की वर्षा कर दी। लक्ष्मण के इन बाणों से इन्द्रजित् के सीने का कवच ऐसे टूट गया जैसे आकाश से तारे टूटते हैं। कवच कट जाने से और वानरों के प्रहार से उसके सारे अंगों में घाव हो गए। तब उसने अपने सहस्त्रों बाणों से लक्ष्मण को घायल कर दिया। इससे लक्ष्मण का भी कवच छिन्न-भिन्न हो गया। अतः दोनों के अंग क्षत-विक्षत हो गए और उनके शरीर लहूलुहान हो गए। दोनों ही वीर एक दूसरे पर बाणों का प्रहार करते हुए अपनी-अपनी विजय

के लिए प्रयत्नशील थे। वहाँ जूझते हुए उन दोनों वीरों का बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया। परन्तु वे दोनों न युद्ध से विमुख हुए और न उन्हें थकावट हुई। उन्होंने अपने अस्त्रों के प्रदर्शन के द्वारा आकाश में छोटे-बड़े बाणों का जाल सा बाँध दिया। बाण चलते समय उन दोनों की हथेली और प्रत्यंचा का भयंकर एवं तुमुल नाद पृथक-पृथक सुनाई देता जो श्रोताओं के हृदय में कम्पन पैदा कर देता था। वे दोनों योद्धा नाराचों से घायल हो शरीर से खून बहा रहे थे। उनके हजारों बाण आकाश में तीखे शस्त्रों से टकराते और उन्हें तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डालते। एक दूसरे को जीतकर लाने की इच्छा से लक्ष्मण और इन्द्रजित् रह-रहकर भयंकर बाणों की वर्षा करते किन्तु इस पर भी उन दोनों में कोई थकने वाला न था। इस तरह युद्ध करते-करते उन दोनों का बहुत समय व्यतीत हो गया किन्तु उनमें से कोई भी युद्ध से विमुख न हुआ। तब लक्ष्मण को युद्ध से होनेवाली थकान को मिटाने के लिए विभीषण युद्ध के मुहाने पर आकर खड़े हो गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८८)

नवासीवाँ सर्ग

इन्द्रजित् के सारथी और घोड़े का बध

लक्ष्मण और इन्द्रजित् को युद्धासक्त होकर जूझते देखकर विभीषण अपना धनुष लेकर युद्ध के मुहाने पर खड़े हो गए। फिर वहाँ खड़े होकर उन्होंने तेज धारवाले हथियार लेकर राक्षसों पर बरसाना आरम्भ किया। वे बाण राक्षसों पर गिर गिर कर उनके अंगों को जलाने लगे। विभीषण समयोचित कर्तव्य जानते थे इसलिए उन्हें वानरों के लिए राक्षसों का बध करना प्रिय था। अतएव उन्होंने वानरों को प्रोत्साहन देते हुए कहा-वानरेश्वरो! सामने खड़ी हुई सेना ही अब रावण के पास बची है। इस समय इन्द्रजित् के मारे जाने पर रावण को छोड़कर उसकी सारी सेना को मरी हुई समझो। वीर प्रहस्त, कुंभकर्ण, निकुंभ, कुंभ, धूम्राक्ष जाम्बुमाली, तीक्ष्णवेग आदि सारे वीर मारे जा चुके हैं। अब इसे भी जीत लो। यह भतीजा होने के नाते मेरा पुत्र है किन्तु श्रीराम के लिए मैं अपने इस भतीजे को भी

Mookerji sharma (I.S.) Jammu Collection

मारने के लिए तैयार हूँ। लेकिन जब मैं इसे मारना चाहता हूँ तो आँसू मेरी दृष्टि बंद कर लेते हैं। अतः ये महात्मा लक्ष्मण ही इसका विनाश करेंगे। यह सुनकर हर्ष और उत्साह से भरकर वानर अपनी पूँछ पटकने लगे और नाना प्रकार के शब्द करते हुए राक्षसों को पत्थरों, नखों और दाँतों से पीटने लगे। वानरों और राक्षसों का यह महायुद्ध देवासुर संग्राम की भाँति भयंकर हो चला था। उस समय हनुमान जी ने लक्ष्मण को अपनी पीठ से उतार दिया और स्वयं भी कुपित हो एक साल वृक्ष उखाड़ कर सहस्त्रों राक्षसों का संहार करने लगे। उस समय दूसरी ओर लक्ष्मण और इन्द्रजित् रणभूमि में जूझते हुए एक दूसरे पर भयंकर चोट करने लगे। युद्ध में लगे उन दोनों वीरों के हाथों में इतनी फुर्ती थी कि उनके बाणों का निकालना, उसे धनुष पर रखना और उसे पकड़कर कान तक खींचना आदि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। उनके छोड़े गए बाण समूहों से पूरा आकाश ही ढँक गया। तत्पश्चात् वे दोनों एक दूसरे के पास पहुँचकर जूझने लगे। एक दूसरे के भयंकर प्रहार से यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि विजय किसकी होगी। इसी बीच सूर्यास्त हो जाने से सब ओर अंधेरा फैल गया और रक्त से भरी सहस्त्रों बड़ी-बड़ी नदियां बह चलीं। उस समय मांस भक्षी भयंकर जन्तु अपनी वाणी द्वारा भयानक शब्द निकालने लगे। उस समय न तो वायु ही चलती थी और न आग ही जलती। तब अपने चार बाणों से लक्ष्मण ने इन्द्रजित् के रथ के चारों घोड़ों को बाँध दिया। तत्पश्चात् दूसरे तीखे सुन्दर चमकीले भल्ल छोड़कर इन्द्रजित् के सारथी का मस्तक धड़ से अलग कर दिया। सारथी के मारे जाने पर इन्द्रजित् ने स्वयं सारथी का काम सम्हाला उस समय घोड़ों को रोकने के लिए इन्द्रजित् जब हाथ बढ़ाता तब लक्ष्मण उसे अपने तीखे बाणों से बेंधने लगते और जब वह युद्ध के लिए धनुष उठाता तब लक्ष्मण उसके घोड़ों पर बाणों का प्रहार करते। तदनन्तर सारथी को भी मारा गया देखकर रावण कुमार ने युद्ध विषयक उत्साह त्याग दिया और वह शोक में डूब गया। उसकी यह स्थिति देखकर वानर यूथपति बड़े प्रसन्न हुए और लक्ष्मण की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। फिर प्रमाथी, शरभ, रभस और गंधमादन ये चार वानर सहसा उछलकर इन्द्रजित के चारों घोड़ों पर कूद पड़े। तब उनसे रौंदे जाने के

कारण घोड़ों के अंगभंग हो गए और वे प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। सारथी और घोड़ों को मरा हुआ देख इन्द्रजित् रथ से कूद पड़ा और बाणों की वर्षा करता हुआ लक्ष्मण की ओर बढ़ा। उस समय पराक्रमी लक्ष्मण ने उत्तम बाणों की वर्षा करते हुए इन्द्रजित् को घायल कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८९)

नब्बेवाँ सर्ग

इन्द्रजित् का बध

तदनन्तर पृथ्वी पर खड़े हुए इन्द्रजित् का क्रोध बहुत बढ़ गया। उस समय इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनों के हाथों में धनुष थे। वे एक दूसरे पर हाथियों के समान प्रहार करते हुए युद्ध में लगे हुए थे। इधर वानर और राक्षस भी एक दूसरे से भिड़े हुए थे। इसी बीच इन्द्रजित् ने राक्षसों का हर्ष बढ़ाते हुए कहा- श्रेष्ठ निशाचरो! चारों दिशाओं में अंधकार छा रहा है। अतः यहाँ अपने और पराए की पहचान नहीं हो पा रही है। इसलिए मैं जाता हूँ। ऐसा कह कर वह वानरों को चकमा देकर दूसरे रथ के लिए लंकापुरी चला गया। फिर रथ और सारथी का प्रबंध कर मन्दोदरी कुमार काल शक्ति से प्रेरित हो नगर के बाहर निकला। उस समय इन्द्रजित् को पुनः रथ पर बैठा हुआ देखकर लक्ष्मण और विभीषण को बड़ा विस्मय हुआ। तत्पश्चात् क्रोध से भरे हुए रावण कुमार ने अपने बाणों से हजारों वानर यूथपतियों को गिराना शुरू किया। उसके बाणों की मार खाकर वे वानर तत्काल सुमित्रा कुमार की शरण में जा पहुँचे। इससे लक्ष्मण ने क्रोध में आकर फुर्ती के साथ राक्षस कुमार के धनुष को काट दिया। यह देख निशाचर ने भी तुरन्त ही दूसरा धनुष उठाकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ाई। किन्तु लक्ष्मण ने तीन बाण मारकर उस धनुष को भी काट दिया। धनुष कट जाने पर लक्ष्मण ने इन्द्रजित् की छाती पर गहरी चोट पहुँचाई। धनुष कट जाने से और उन बाणों की चोट खाकर मुँह से रक्त वमन करते हुए रावण कुमार ने पुनः एक मजबूत धनुष हाथ में लिया। यह देखकर लक्ष्मण ने उस पर बाणों की घोर वर्षा आरम्भ कर दी और प्रत्येक राक्षसों को

Mookerji sharma Jammu Collection

तीन-तीन बाण मारकर घायल कर दिया। साथ ही इन्द्रजित् को गहरी चोट पहुँचाई। यद्यपि इन्द्रजित् ने भी लक्ष्मण पर लगातार बहुत बाण बरसाए। परन्तु लक्ष्मण अपने पास तक पहुँचने के पहले ही उन बाणों को काटदेते और फिर उसी बीच अपने भल्ल से उसके सारथी के मस्तक को भी उड़ा दिया। तत्पश्चात् उस रथ के घोड़ों को भयभीत करने के लिए उन्हें बाणों से बेंधने लगे। यह देखकर इन्द्रजित् ने लक्ष्मण को दस बाण मारे किन्तु वे शीघ्र ही लक्ष्मण के कवच से टकराकर वहाँ नष्ट हो गए। लक्ष्मण का कवच अभेद्य है ऐसा जानकर रावण कुमार इन्द्रजित् ने लक्ष्मण के ललाट पर सुन्दर पंखवाले तीन बाण मारे। तब उसके बाणों से पीड़ित हो लक्ष्मण ने तुरंत पाँच बाणों का संधान किया और उनके द्वारा इन्द्रजित् के मुखमंडल को क्षत-विक्षत कर दिया। इस युद्ध में लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों के शरीर लहू-लुहान हो गए। फिर भी वे आपस में भिड़कर एक दूसरे के सभी अंगों को भयंकर बाणों का निशाना बनाने लगे। इसी बीच क्रोध में भरकर इन्द्रजित् ने विभीषण के मुख पर तीन बाणों का प्रहार किया। इस तरह विभीषण को घायल कर इन्द्रजित् ने उन सभी वानर यूथपतियों पर एक-एक बाण का प्रहार किया। तत्पश्चात् विभीषण ने भी क्रोध में आकर अपनी गदा से इन्द्रजित् के चारों घोड़ों को मार डाला। उसका सारथी पहले ही मारा जा चुका था और अब घोड़े भी मार डाले गए। उस रथ से कूद कर रावण कुमार ने अपने चाचा पर शक्ति का प्रहार किया। उस शक्ति को आते देखकर लक्ष्मण ने शक्ति से काट डाला। तदनन्तर विभीषण ने भी कुपित हो इन्द्रजित् की छाती पर पाँच बाण मारे। इससे क्रोधित हो इन्द्रजित् ने यमराज का दिया हुआ उत्तम बाण उठाया। तब उसे इन्द्रजित् को अपने धनुष पर रखते हुए देखकर लक्ष्मण ने भी दूसरा बाण उठाया। उस बाण की शिक्षा महात्मा कुबेर ने स्वप्न में प्रकट होकर स्वयं उन्हें दी थी। वह बाण देवताओं और असुरों के लिए भी असह्य एवं दुर्जय था। तब ज्यों ही लक्ष्मण और इन्द्रजित् के एक साथ छूटे हुए बाणों की टक्कर हुई त्यों ही उसमें दारुण अग्नि प्रकट हुई और वे ग्रहों की भाँति टकराते हुए सैकड़ों टुकड़े होकर संग्राम भूमि में गिर पड़े। उन दोनों ही बाणों के व्यर्थ हो जाने से लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों ही लज्जा एवं रोष से भर उठे।

तत्पश्चात् लक्ष्मण ने वारुणास्त्र उठाया साथ ही इन्द्रजित् ने भी रौद्रास्त्र उठाया और वारुणास्त्र का असर काटने के लिए उसे छोड़ दिया। लेकिन लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र का प्रयोग करके इन्द्रजित् के अस्त्र को शांत कर दिया। अब अपने अस्त्र को विफल होते देख इन्द्रजित् अचेत सा हो गया और शीघ्र ही आसुर नामक शत्रु नाशक तीखे बाणों का प्रयोग किया। फिर तो उसके उस धनुष से चमकते हुए क्रूर, मुद्गर शूल, गदा, खड्ग और फरसे निकलने लगे। तब उस भयंकर आसुरास्त्र को प्रकट हुआ देख तेजस्वी लक्ष्मण ने महेश्वरास्त्र का प्रयोग किया जिसे समस्त प्राणी भी व्यर्थ नहीं कर सकते थे। उस महेश्वरास्त्र ने आसुरास्त्र को नष्ट कर दिया। उस समय आकाश में रहनेवाले प्राणी लक्ष्मण को घेर कर खड़े हो गए तथा ऋषि, पितर, देवता, गरुड़, गन्धर्व तथा नाग इन्द्र को आगे करके लक्ष्मण की रक्षा करने लगे। तत्पश्चात् सुमित्रा कुमार ने दूसरा उत्तम बाण अपने धनुष पर रखा जिसका स्पर्श आग के समान जलाने वाला था और जिसमें रावण कुमार को विदीर्ण कर देने की शक्ति थी। उसका आघात सह लेना बहुत कठिन था तथा देवताओं द्वारा उस बाण की सदा पूजा की गई थी। पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में इन्द्र ने उसी बाण से दानवों पर विजय पाई थी। उसका नाम ऐन्द्रास्त्र था। वह युद्ध के अवसरों पर कभी असफल नहीं हुआ था। तब उस बाण को धनुष पर रखकर उसे खींचते हुए लक्ष्मण ने कहा- यदि भगवान् श्रीराम धर्मात्मा और सत्य प्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थ में उनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई पुरुष नहीं है तो हे अस्त्र! तुम रावण पुत्र का बध कर डालो। युद्ध भूमि में ऐसा कहते हुए लक्ष्मण ने उसे इन्द्रजित की ओर छोड़ दिया। तब धनुष से छूटते ही उस ऐन्द्रास्त्र ने इन्द्रजित् के मस्तक को धड़ से काटकर धरती पर गिरा दिया। उस समय जैसे वृत्तासुर का बध होने से देवता प्रसन्न हुए थे उसी प्रकार इन्द्रजित् के मारे जाने से विभीषण सहित समस्त वानरगण प्रसन्न हो उठे। तत्पश्चात् इन्द्रजित् को धराशायी हुआ जान राक्षसों की वह विशाल सेना वानरों की मार खाकर चारों दिशाओं में भागने लगी। उनमें से कई डर के मारे लंका में घुस गए और कई समुद्र में कूद पड़े और कई तो पर्वत की चोटी पर चढ़ गये। जैसे सूर्यास्त होने पर उसकी किरणें यहाँ नहीं ठहरतीं उसी प्रकार इन्द्रजित् के

धराशायी होने पर जल स्वच्छ हो गया। आकाश भी निर्मल दिखाई देने लगा। तत्पश्चात् इन्द्रजित् को समरांगण में मारा गया देखकर हर्ष से भरे हुए वानर यूथपति लक्ष्मण का अभिनंदन करते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। उनका चित्त हर्ष से भरा हुआ था और वे लक्ष्मण की जय-जय कार करते हुए श्री रामचन्द्र जी से कथाएँ कहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९०)

इक्यानबेवाँ सर्ग

लक्ष्मण तथा विभीषण आदि का श्रीराम को इन्द्रजित् के बध का समाचार सुनाना

संग्राम भूमि में इन्द्रजित् का बध करके लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् उन्होंने विभीषण और हनुमान जी का सहारा लेकर श्रीराम चन्द्र के सामने आकर प्रणाम किया और तब विभीषण बोले- प्रभो! इन्द्रजित् के बध का भयंकर कर्म सम्पन्न हो गया है। महात्मा लक्ष्मण ने ही उनका मस्तक काटा है। उस समय यह सुनकर कि लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजित् का बध हुआ है। श्रीराम को अनुपम हर्ष हुआ और वे बोले- शाबाश लक्ष्मण! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। आज तुमने बड़ा पराक्रम दिखलाया है। अब समझ लो हम लोग युद्ध में विजयी हो गए। इतना कहकर उन्होंने लक्ष्मण को हृदय से लगा लिया। उस समय लक्ष्मण अपने शरीर में धँसे हुए बाणों के द्वारा अत्यंत पीड़ित हो रहे थे। उनके अंगों में जगह-जगह घाव हो गये थे और उन्हें साँस लेने में भी पीड़ा हो रही थी। तब श्रीराम ने उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए आश्वासन दिया-वीर! तुमने अपने दुष्कर पराक्रम से परम कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किया। आज बेटे के मारे जाने से युद्ध स्थल में रावण को भी मैं मरा हुआ मानता हूँ। उस दुरात्मा के बध हो जाने से मैं आज वास्तव में विजयी हो गया हूँ। इस तरह तुमने रावण की दाहिनी बाँह काट डाली है जो उसका सबसे बड़ा सहारा था। विभीषण और हनुमान ने

भी युद्ध भूमि में महान् पराक्रम कर दिखाया है। अब उस राक्षस के मारे जाने से रावण निश्चय ही युद्ध के लिए निकलेगा। फिर उसे मैं अपनी सेना द्वारा घेरकर मार डालूँगा। फिर तुम जैसे सहायकों के रहते हुए मुझे सीता और भूमंडल के राज्य को प्राप्त करने में कोई कठिनाई न होगी। इस प्रकार लक्ष्मण को आश्वासन देकर उन्होंने सुषेण को बुलाकर कहा- बुद्धिमान सुषेण! तुम शीघ्र ही ऐसा उपचार करो जिससे लक्ष्मण पूर्णतः स्वस्थ हो जाएं। इनके शरीर से तुम बाण निकाल दो और घाव अच्छा कर दो। ऐसा उपाय करो जिससे इनकी पीड़ा कम हो जाए। श्री राम के ऐसा कहने पर सुषेण ने लक्ष्मण की नाक में एक बहुत ही उत्तम औषधि लगा दी। उसकी गंध सूँघते ही लक्ष्मण के शरीर से बाण निकल गए। उनकी सारी पीड़ा दूर हो गई। उनके शरीर में जितने भी घाव थे वे भर गए। फिर श्रीराम की आज्ञा से सुषेण ने विभीषण एवं अन्य वानरों की तत्काल चिकित्सा कर दी। उस समय लक्ष्मण को निरोग होते देख श्रीराम अत्यंत प्रसन्न हो गए और वे लक्ष्मण की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९१)

बानबेवाँ सर्ग

रावण का शोक

रावण के मंत्रियों ने जब इन्द्रजित् के बध का समाचार सुना तो वे रावण के पास जाकर बोले- महाराज! युद्ध में विभीषण की सहायता पाकर लक्ष्मण ने आपके महा तेजस्वी पुत्र को मार डाला है। युद्ध में अपने पुत्र के बध का समाचार सुनकर रावण को घोर मूर्छा आ गई। फिर बहुत देर के बाद होश में आने पर वह विलाप करने लगा- पुत्र! तुम तो पहले इन्द्र पर भी विजय पा चुके हो फिर लक्ष्मण के वश में कैसे पड़ गए। जब तुम कुपित होने पर अपने बाणों से काल को भी विदीर्ण कर सकते थे तो फिर आज लक्ष्मण पर विजय पाना कैसे संभव नहीं हो सका? आज मुझे यम का महत्व अधिक जान पड़ने लगा। इस समय तुम्हारी मृत्यु से समस्त देवता,

लोकपाल तथा महर्षि सुख की नींद सो रहे होंगे। पुत्र! आज तुम लंकापुरी के समस्त राक्षसों को, अपनी माँ को, अपनी पत्नियों को तथा मुझे छोड़कर कहाँ चले गए? हाय! राम, लक्ष्मण और सुग्रीव अभी जीवित हैं। ऐसी अवस्था में तुम मेरे हृदय का काँटा निकाले बिना यहाँ से चले गए। इस प्रकार विलाप करते हुए रावण के हृदय में अपने पुत्र के बध का स्मरण हो आया और वह क्रोध से भर गया। अंत में बहुत सोच विचार कर उसने सीता को ही मार डालना अच्छा समझा। उस समय कालाग्नि के समान कुपित हो वह जिस दिशा की ओर दृष्टि डालता, उस दिशा में खड़े हुए राक्षस भयभीत होकर खंभे आदि की आड़ में छिप जाते। तब अत्यंत कुपित हुआ रावण युद्ध में राक्षसों को स्थापित करने की इच्छा से बोला- निशाचरो! मैंने सहस्रों वर्षों तक तपस्या करके ब्रह्मा जी को संतुष्ट किया है और उसी के फलस्वरूप मुझे देवताओं और असुरों से कभी भय नहीं है। उन्हीं का दिया हुआ मेरे पास एक कवच भी है और वह देवासुर संग्राम में बज्र के प्रहार से भी नहीं टूट सका। उसी संग्राम में प्रसन्न हुए ब्रह्मा जी ने मुझे बाण सहित विशाल धनुष प्रदान किया था। आज मेरे उसी विशाल धनुष के सैकड़ों मंगल वाद्यों के ध्वनि के साथ श्रीराम और लक्ष्मण के बध करने के लिए उठाया जाए। फिर वह दीनता पूर्ण स्वरों में सम्पूर्ण निशाचरों से बोला- मेरे बेटे ने मायामयी सीता का बध किया था किन्तु आज मैं उस झूठ को सच करके दिखाऊँगा। राम को चाहनेवाली उस सीता का मैं विनाश कर दूँगा। मंत्रियों से ऐसा कहकर उसने सहसा हाथ में तलवार ली और उस स्थान पर जाने लगा जहाँ सीता मौजूद थीं। उस समय वह सीता का बध करने के लिए पूर्ण रूप से तत्पर हो गया था। यद्यपि उसके सुहृद उसे बारम्बार ऐसा करने से रोक रहे थे। तो भी वह रुक नहीं रहा था। तब रावण को हाथ में तलवार लेकर आता हुआ देखकर जनक नंदिनी के मन में बड़ी व्यथा हुई। वे विलाप करती हुई बोलीं-यह राक्षस जिस तरह कुपित होकर स्वयं मेरी ओर दौड़ा आ रहा है इससे जान पड़ता है कि मुझे अनाथ की भाँति मार डालेगा। अथवा इसके सिंहनाद को सुनकर लगता है कि मेरे ही कारण आज इसने राम और लक्ष्मण को मार गिराया है। यदि मेरे ही कारण उन दोनों राजकुमारों का विनाश हुआ है तो मेरे जीवन को

Mookerji sharma (JF S) Jammu Collection

धिक्कार है। यह भी हो सकता है कि अपने पुत्रों के शोक के कारण इसने मुझे मारने का निश्चय किया हो। मुझ जैसी मूर्ख नारी ने हनुमान की बात भी नहीं मानी। यदि उस समय उनकी पीठ पर बैठकर चली गई होती तो इस तरह बारम्बार शोक न करना पड़ता। मेरी सास एक ही बेटे की माँ है। यदि वे अपने पुत्र के विनाश का समाचार सुनेंगी तो निश्चय ही उनका हृदय फट जाएगा। फिर वे अचेत होकर आग में अथवा सरयू के जल में समा जाएंगी। उस कुबड़ी मंथरा को धिक्कार है जिसके कारण मेरी सास को यह पुत्र दुख देखना पड़ा। सीता को इस प्रकार विलाप करते देख सुपार्श्व नामक बुद्धिमान मंत्री ने रावण से कहा- महाराज दशग्रीव! आप तो साक्षात् कुबेर के भाई हो फिर धर्म को त्यागकर सीता बध की इच्छा कैसे कर रहे हो? वीर! आप सदैव अपने कर्तव्य पालन में लगे रहे फिर अपने हाथ से एक स्त्री का बध करना आप कैसे ठीक समझते हो। अब अपना क्रोध इस जानकी पर न उतारकर युद्ध में चलकर राम पर उतारो। अतः आज चतुर्दशी को युद्ध की तैयारी करके कल आमावस्या को युद्ध के लिए प्रस्थान करो। इस युद्ध में आप श्रीराम का बध करके मिथिलेश कुमारी सीता को प्राप्त कर लेंगे। तब मित्र के कहे हुए उस धर्मानुकूल वचन को मानकर रावण महल में लौट आया और फिर अपने सुहृदों के साथ राज सभा में प्रवेश किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९२)

तिरानबेवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा राक्षस सेना का संहार

सभा में पहुँचकर रावण अत्यंत दुखी एवं दीन होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठा और योद्धाओं से हाथ जोड़कर बोला- वीरो! तुम लोग सैनिकों से घिरकर नगर के बाहर निकलो और युद्धभूमि में एक मात्र राम को चारों ओर से घेरकर मार डालो। अथवा कल मैं ही महासमर में अपने तीखे बाणों से राम के शरीर को छिन्न-भिन्नकर उसे मार डालूँगा। रावण की आज्ञा मानकर वे सब योद्धा लंका से बाहर निकले और नाना प्रकार के

अस्त्रों से वानरों पर प्रहार करने लगे। फिर वानर भी राक्षसों पर पेड़ों और पत्थरों की वर्षा करने लगे। उस समय राक्षसों और वानरों के इस तुमुल युद्ध ने महा भयंकर रूप धारण कर लिया। रणभूमि में खून की कितनी ही नदियाँ बह चलीं। तदनन्तर पर्वताकार राक्षसों की विशाल सेना विभिन्न अस्त्र-शस्त्र लेकर वानरों को मारने लगी। राक्षसों द्वारा मारी जाती हुई विशाल सेना श्रीराम के शरण में गई। यह देखकर श्रीराम ने धनुष लेकर राक्षसों की सेना में प्रवेश कर बाणों की भीषण वर्षा आरम्भ कर दी। जैसे वन में चलती हुई हवा बड़े-बड़े वृक्षों को हिलाती और तोड़ डालती है तो भी देखने में नहीं आती उस प्रकार श्रीराम निशाचरों की सेना को विचलित कर उनकी धज्जियाँ उड़ा देते तो भी राक्षस उन्हें नहीं देख पाते थे। श्रीराम चन्द्र जी राक्षस सेना को दग्ध कर रहे थे तो भी वे राक्षस उन्हें देख नहीं सके। महात्मा श्रीराम ने राक्षसों को गन्धर्व नामक दिव्यास्त्र से मोहित कर दिया था। अतः वे राक्षस रणभूमि में कभी तो हजारों राम देखते थे और कभी उन्हें एक ही राम का दर्शन होता था। वे श्रीराम के धनुष की सुनहरी कोटि तो चक्र की भाँति घूमती देखते थे किन्तु साक्षात् श्रीराम को नहीं देख पाते थे। उस समय श्रीराम ने अकेले ही दिन के आठवें भाग डेढ़ घंटे में ही आग के ज्वाला के समान तेजस्वी बाणों द्वारा इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसों के दस हजार रथों की अट्ठारह हजार हाथियों की, चौदह हजार सवारों सहित घोड़ों की तथा दो लाख पैदल निशाचरों की सेना का संहार कर डाला। जब घोड़े और रथ नष्ट हो गए तथा ध्वज तोड़-फोड़ डाले गए तब मरने से बचे हुए निशाचर शांत हो लंकापुरी को भाग गए। तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियों ने श्रीराम को इस कार्य के लिए साधुवाद देकर उनकी प्रशंसा की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९३)

चौरानबेवाँ सर्ग

राक्षसियों का विलाप

अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाले भगवान् श्रीराम के द्वारा

हजारों शूरवीर राक्षस मारे गए। यह देखकर मरने से बचे हुए सारे निशाचर घबरा उठे और लंका में पहुँचकर राक्षसियों से मिल बहुत ही दुखी एवं चिंतामग्न हो गए। तब जिनके पति, पुत्र और भाई बंधु मारे गए थे वह अनाथ राक्षसी झुंड की झुंड एकत्र होकर दुःख से पीड़ित हो विलाप करने लगीं- हाय! वह विकराल रूप वाली बुढ़िया शूर्पणखा वन में कामदेव के समान रूपवाले श्रीराम के पास कामभाव लेकर किस तरह जाने का साहस कर सकी? कहाँ सर्वगुण सम्पन्न, महान् बलशाली, सुंदर मुखवाले श्रीराम और कहाँ सभी गुणों से हीन दुर्मुखी राक्षसी। उसके ही काम वासना के कारण खर दूषण का विनाश हुआ तथा रावण ने भी यह महान् बैर बाँध लिया। राक्षस विराध भी सीता को पाना चाहता है किन्तु श्रीराम ने एक ही बाण में उसका काम तमाम कर दिया। यह एक ही दृष्टांत उनके अजेय शक्ति को समझने के लिए काफी था। खर दूषण और त्रिशिरा का विनाश भी उनकी अजेयता को समझने के लिए पर्याप्त था। रक्त भोगी कबंध, जिसकी बाँहें एक-एक योजन लम्बी थीं और जो क्रोधवश बड़े जोर से सिंहनाद करता वह भी श्रीराम के हाथों मारा गया। इसके अलावा बालि जैसे मेरू पर्वत के समान महाकाय पुरुष को भी श्रीराम ने एक ही बाण में मार गिराया। यह उनकी शक्ति का अनुमान लगाने के लिए काफी था। विभीषण ने धर्म और अर्थ से युक्त जो बात कही थी वह सभी राक्षसों के लिए हितकर थी। किन्तु मोहवश रावण को वह अच्छी न लगी। महाबली कुंभकर्ण, अतिकाय, इन्द्रजित् सभी उन लोगों के हाथ मारे गये। फिर भी रावण श्रीराम के प्रभाव को नहीं समझ पा रहा है। उस समय 'हाय मेरा बेटा मारा गया'। 'मेरे भाई को प्राणों से हाथ धोना पड़ा,' आदि लंका के घर-घर से राक्षसियों के शब्द सुनाई देते थे। हमारे प्रमुख वीर श्रीराम के हाथ से मारे गए। अब हम भी अपने जीवन से निराश हो चली हैं। हमें इस भय का कोई अंत नहीं दिखाई देता अतएव हम अनाथ की भाँति विलाप कर रही हैं। दशानन रावण ने ब्रह्मा जी से वर प्राप्त किया है। इसी घमण्ड के कारण श्रीराम के भय को नहीं समझता। वे युद्ध में जिसे मारने को तुल जाएँ उसे कोई बचा नहीं सकता। ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर रावण को दानवों, देवताओं तथा राक्षसों की ओर

से अभय दान दिया था, पर मनुष्यों की ओर से अभय प्राप्त होने की याचना उसने की ही नहीं थी। अतः मुझे ऐसा लगता है इन्हीं मनुष्य रूपी राम के हाथों रावण का अंत होने वाला है। बलवान् रावण ने अपने तप के प्रभाव से देवताओं को पीड़ा पहुँचाई। तब उन्होंने उससे छुटकारा पाने के लिए ब्रह्मा जी की आराधना की। जिससे संतुष्ट हो ब्रह्मा जी ने कहा आज से समस्त दानव तथा राक्षस भय से मुक्त होकर लोकों में विचरण किया करेंगे। तब देवताओं ने मिलकर महादेव जी की आराधना की। उस समय महादेव जी ने संतुष्ट होकर कहा- तुम लोगों के हित के लिए एक दिव्य नारी का आविर्भाव होगा जो समस्त राक्षसों के विनाश का कारण बनेगी। उसी के फलस्वरूप यह सीता रावण सहित हम सब को खा जाएगी। दुर्बुद्धि रावण के अन्याय से ही ऐसा हुआ है। अब जगत में ऐसा कोई वीर नहीं दिखाई पड़ता जो संकट में पड़ी हम राक्षसियों को शरण दे सके। इस समय महात्मा विभीषण ने समयोचित कार्य किया है। उन्हें जिनसे भय दिखाई पड़ा उसी के शरण में चले गए। इतना कहकर राक्षसियां एक दूसरे को भुजाओं में भरकर करुण क्रन्दन करने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९४)

पन्चानबेवाँ सर्ग

रावण का रणभूमि में आकर पराक्रम दिखलाना

रावण ने लंका के घर-घर से आती हुई राक्षसियों का विलाप सुना। वह दो घड़ी तक लंबी साँस लेता हुआ कुछ सोचने लगा फिर प्रलयाग्नि के समान रूप धारण कर पास खड़े हुए निशाचरों से बोला- निशाचरो! महोदर, महापार्श्व, तथा विरुपाक्ष से शीघ्र जाकर कहो- तुम लोग मेरी आज्ञा से तुरन्त ही सेना को कूच करने का आदेश दो। तब स्वामी की विजय चाहने वाले सभी महारथी, वीर यथोचित रीति से रावण का आदर सम्मान करके उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हो गए। रावण क्रोध से अर्द्ध मूर्च्छित-सा होकर बड़े जोर से हँस पड़ा और महोदर, महापार्श्व तथा विरुपाक्ष से कहने लगा- आज मैं अपने छूटे हुए तीखे बाणों द्वारा राम लक्ष्मण को यमलोक पहुँचा दूँगा। आज शत्रु का बध करके कुंभकर्ण, प्रहस्त

Mookerji Bhawan Library, Jammu Collection

तथा इन्द्रजित के मारे जाने का भरपूर बदला चुका दूँगा। मेरे बाण मेघों की घटा के समान सब ओर छा जाएंगे तब बाणों का जाल बिछाते हुए मैं वानरों और मुख्य मुख्य यूथों का पृथक-पृथक बध करूँगा। कमल केसरी सी कान्तिवाले वानरों का यूथ सरोवरों के समान है। उनके मुख सरोवरों के भीतर प्रफुल्ल कमल के समान सुशोभित होते हैं। आज मैं हाथी के समान उसमें प्रवेश कर उसे मथ डालूँगा। मैं अपने एक-एक बाण से सौ-सौ वानरों को विदीर्ण करूँगा। आज मैं निर्जीव हुए वानरों से यहाँ की भूमि को पाट दूँगा जिसे फिर बड़े ही यत्न करने पर देखा जा सकेगा। अब जल्दी मेरा रथ तैयार किया जाए। शीघ्र धनुष लाया जाए तथा मरने से बचे हुए निशाचर मेरे पीछे-पीछे चलें। रावण की यह बात सुनकर महापार्श्व ने वहाँ खड़े हुए सेनापतियों से कहा- सेना को शीघ्र कूच करने की आज्ञा दो। यह सुनकर सेनाध्यक्ष घर-घर जाकर राक्षसों को युद्ध के लिए तैयार होने का आदेश देने लगे। तब थोड़ी देर में भयंकर मुख एवं आकारवाले राक्षस गर्जना करते हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सब के हाथों में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे। इस प्रकार सेनाध्यक्षों ने विशाल सेना ले आकर रावण के सामने खड़ी कर दी। इसी बीच सारथि ने एक रथ लाकर खड़ा कर दिया। उस रथ में उत्तम दिव्यास्त्र रखे थे और नाना प्रकार के अलंकारों से वह रथ सजाया गया था। उस रथ को देखकर सभी राक्षस आश्चर्य चकित हो उठे। वह रथ करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी था और उसमें आठ घोड़े जुते हुए थे। रावण उस भयंकर रथ पर आरूढ़ हो गया। तत्पश्चात् बहुत से राक्षसों से घिरा हुआ वह सहसा युद्ध के लिए चल पड़ा। उस समय सब ओर वाद्यों का महान् नाद गूँज उठा। साथ ही उसमें राक्षसों के कलह की ध्वनि भी मिली हुई थी। "सीता को चुराने वाला दुराचारी ब्रह्म-हत्यारा रावण छत्र एवं चँवर लगाए श्रीराम से युद्ध करने आ रहा है।" फिर तो उस महानाद को सुनकर सभी वानर सहसा भय से भाग चले। तदनन्तर रावण की आज्ञा से महापार्श्व, महोदर तथा विरुपाक्ष भी रथ पर आरूढ़ हो सिंहनाद करते हुए पुरी से निकले। उनके बीच वह महारथी रावण उस द्वार से बाहर निकला जहाँ श्रीराम और लक्ष्मण मौजूद थे। उस समय सूर्य की प्रभा फीकी पड़ गई थी। समस्त दिशाओं में अंधकार छा गया और पशु-पक्षी अशुभ बोली

बोलने लगे। तत्पश्चात् बादल रक्त की वर्षा करने लगे। घोड़े लड़खड़ा कर गिर गये। ध्वज के अग्रभाग पर गीध आकर बैठ गया और गीदड़ियाँ अमंगल सूचक बोली बोलने लगीं। राक्षस दशग्रीव के युद्ध हेतु निकलते ही रणभूमि में उसकी मृत्यु के सूचक लक्षण प्रकट होने लगे। आकाश से उल्कापात हुआ और उससे बज्र के समान गड़गड़ाहट पैदा हुई। यह भयंकर उत्पात देखकर भी रावण ने उनकी परवाह न की और काल से प्रेरित हो मोहवश अपने ही बध के लिए निकल पड़ा। तब उन महाकाय राक्षसों के रथ का गंभीर घोष सुनकर वानरों की सेना भी युद्ध के लिए उनके सामने आकर डट गई। फिर तो देखते ही देखते राक्षसों और वानरों का तुमुल युद्ध छिड़ गया। उस समय रावण स्वर्ण भूषित बाणों द्वारा वानर की सेनाओं में भारी मारकाट मचाने लगा। उसने बहुतों की छाती छेदी तो बहुतों के कान उड़ा दिये। वानर उससे घायल होकर अपने प्राण त्यागने लगे। वह जहाँ-जहाँ भी जाता वानर यूथपति उसके बाणों का वेग न सह सके।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में पन्चानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९५)

छियानबेवाँ सर्ग

सुग्रीव द्वारा विरूपाक्ष का बध

इस प्रकार जब रावण ने अपने बाणों से अनेकों वानरों के अंग भंग कर डाले तब धाराशायी हुए वानरों से वह सारी रणभूमि पट गई। उस समय बड़े वेग से वानरों का संहार करता हुआ वह राक्षस राज श्रीराम के निकट जा पहुंचा। उधर सुग्रीव ने देखा कि वानर सैनिक रावण से खदेड़े जाकर समर भूमि से भाग रहे हैं तब उन्होंने सेना को स्थिर रखने का भार सुषेण को सौंप कर स्वयं युद्ध करने का विचार किया। तब सुग्रीव ने उच्चस्वर से गर्जना की और बड़े-बड़े वृक्षों को उखाड़कर उन विभिन्न आकृतिवाले राक्षसों पर फेंकना शुरू किया। उनके साथ ही समस्त वानर यूथपति राक्षसों की सेनाओं पर बड़े बड़े पत्थरों की वर्षा करने लगे। वानरों द्वारा चलाए हुए इन शैल खण्डों से अनेक राक्षस धराशायी होने लगे। तब

Mookerji sNanha TruSt, Jammu Collection

राक्षसों का इस तरह विनाश होते देख विरूपाक्ष हाथ में धनुष ले अपना नाम घोषित करता हुआ रथ से कूद पड़ा औरहाथी की पीठ पर जा चढ़ा और भीषण गर्जना करता हुआ राक्षसों को स्थिर रहने का आदेश देकर सुग्रीव को पैंने बाणों से घायल करने लगा। तब सुग्रीव ने शीघ्रता से एक वृक्ष उखाड़कर विरूपाक्ष के हाथी पर दे मारा इस मार से वह हाथी थोड़ा पीछे हटकर पीड़ा से चीत्कार करने लगा। उस समय विरूपाक्ष हाथी से कूदकर सुग्रीव की ओर बढ़ा। यह देखकर सुग्रीव ने एक बहुत बड़ी शिला हाथ में ली और उसे विरूपाक्ष के शरीर पर क्रोधपूर्वक दे मारा। विरूपाक्ष ने पीछे हटकर अपनी आत्मरक्षा की और सुग्रीव पर तलवार चलाई। विरूपाक्ष की तलवार से घायल होकर वानर राज सुग्रीव मूर्च्छित होकर थोड़ी देर तक धरती पर पड़े रहे। फिर सम्हलकर मुट्ठी बांधकर विरूपाक्ष की छाती पर वेगपूर्वक एक मुक्का मारा। इस पर क्रोधित होकर विरूपाक्ष ने अपनी तलवार से सुग्रीव का कवच काट गिराया और साथ ही उन पर पैरों का आघात किया। उसके इस आघात से सुग्रीव पृथ्वी पर गिर पड़े। पर पुनः उठकर सुग्रीव ने बज्र के समान भीषण शब्द करनेवाला थप्पड़ दे मारा। अपने युद्ध कौशल से उस राक्षस ने अपने को वार से बचाकर सुग्रीव की छाती पर एक मुक्का मारा। तब सुग्रीव ने विरूपाक्ष के ललाट पर दूसरा महान् थप्पड़ मारा। इसका आघात इन्द्र के बज्र के समान दुःरूह था। इससे आहत हो विरूपाक्ष पृथ्वी पर गिर पड़ा और रक्त का वमन करने लगा। वानरों ने देखा कि वह राक्षस और भी अधिक भयंकर हो गया है। तत्पश्चात् आर्तनाद करता हुआ काल के गाल में समा गया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में छियानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९६)

सत्तानबेवाँ सर्ग

सुग्रीव के साथ महोदर का घोर युद्ध तथा महोदर का वध

अपनी सेना का विनाश और विरूपाक्ष के बध से राक्षस राज का क्रोध दूना हो गया। तब रावण ने अपने पास खड़े महोदर से कहा- इस समय मेरी विजय तुम्हीं पर निर्भर है। अब तुम्हारा लंका के अन्न का बदला

चुकाने का समय आ गया है। इसलिए अच्छी तरह युद्ध करो। महोदर रावण की आज्ञा पाकर तुरंत आग की तरह शत्रु सेना में घुस गया। फिर महान पराक्रम दिखलाता हुआ उसने वानरों का संहार करना आरम्भ किया। तदनन्तर राक्षसों द्वारा पीड़ित हुए वे सब वानर भागकर सुग्रीव की शरण में गये। अपनी सेना को भागती देख, सुग्रीव ने पास खड़े हुए महोदर पर एक शिला उठाकर आक्रमण किया। किन्तु महोदर उससे जरा भी नहीं हिला और उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिया। उसके टुकड़े होते देख सुग्रीव का क्रोध बहुत बढ़ गया। उन्होंने तब एक शाल वृक्ष लेकर उस राक्षस पर फेंका। किन्तु उस राक्षस ने उसके भी टुकड़े टुकड़े कर डाले। इसी समय सुग्रीव को पृथ्वी पर पड़ा हुआ एक परिघ दिखाई दिया। उन्होंने फुर्ती से उस परिघ द्वारा उस राक्षस के उत्तम घोड़ों को मार डाला। महोदर ने उस समय रथ से कूदकर अपनी गदा उठा ली और उसे सुग्रीव पर चला दिया। उस गदा को अपनी ओर आती देख सुग्रीव ने परिघ उठाकर उसे राक्षस की गदा पर आघात किया। इससे वह गदा गिर गई किन्तु उससे टकराने के कारण सुग्रीव का परिघ टूटकर पृथ्वी पर आ गिरा। तब सुग्रीव ने भूमि पर गिरा हुआ एक मूसल उठाया और उस राक्षस पर दे मारा। इसी समय उस राक्षस ने भी उस पर एक गदा फेंकी। इससे गदा और मूसल दोनों टकराकर पृथ्वी पर आ गिरे। तदनन्तर अपने आयुधों के टूट जाने पर वे घूसों से एक दूसरे को मारने लगे। फिर आपस में थप्पड़ का वार करते हुए दोनों ही पृथ्वी पर आ गिरे। फिर दोनों ही उछल-उछलकर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। तब महोदर ने थोड़ी ही दूर पर पड़ी हुई ढाल सहित एक तलवार उठा ली। उधर सुग्रीव ने भी वहाँ गिरे हुए एक खड्ग को ढाल सहित उठा लिया। इसी बीच महोदर ने अपनी वह तलवार सुग्रीव के विशाल कवच पर दे मारी। कवच में लगी हुई तलवार को जब वह राक्षस खींचने लगा उसी समय सुग्रीव ने महोदर के शिरस्त्रांण सहित मस्तक को अपने खड्ग से काट दिया। मस्तक कट जाने से महोदर पृथ्वी पर गिर पड़ा और फिर उसकी सेना वहाँ नहीं दिखाई दी। इस प्रकार वानर राज सुग्रीव महोदर को मारकर विजयी हो युद्ध के मुहाने पर बड़ी शोभा पाने लगे। उस समय देवता, सिद्ध, गंधर्व आदि बड़े हर्ष से उनकी ओर देखने

लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९७)

अट्ठानबेवाँ सर्ग

अंगद के द्वारा महापार्श्व का बध

सुग्रीव के द्वारा महोदर के मारे जाने पर उनकी ओर देखकर महापार्श्व के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। तब उसने बाणों द्वारा अंगद की सेना में भयंकर हलचल मचा दी। वह राक्षस मुख्य-मुख्य वानरों के मस्तक धड़ से काट काटकर गिराने लगा। महापार्श्व की भयंकर बाणों की वर्षा से वानरों की चेतना जाती रही। उस समयवानरों को पीड़ित होते देख अंगद ने एक लोहे का परिघ उठाकर महापार्श्व पर दे मारा। इससे महापार्श्व की सुध बुध जाती रही। वह मूर्च्छित हो सारथि सहित रथ से नीचे आ गिरा। इसी समय तेजस्वी जाम्बवान् ने अपने यूथ से बाहर निकलकर पर्वत के समान एक विशाल शिला हाथ में ले ली और उससे उस राक्षस के घोड़ों को मार डाला तथा उसके रथ को भी चूर-चूर कर डाला। दो घड़ी बाद होश आने पर महाबली महापार्श्व ने बहुत से बाणों द्वारा पुनः अंगद को घायल कर दिया और गवाक्ष तथा जाम्बवान् को भी बहुत से बाण मारे। तब अंगद के क्रोध की सीमा न रही और उन्होंने भयंकर परिघ उठा लिया और उसे घुमाते हुए दूर खड़े हुए महापार्श्व पर वेग से चला दिया। उससे उसके हाथों से बाण और धनुष तथा मस्तक से टोप गिर गया। तत्पश्चात् अंगद ने कुपित हो उसके गाल में एक थप्पड़ मारा। इससे क्रोधित हो महापार्श्व ने एक हाथ में बहुत बड़ा फर्शा लिया और उसे बालिपुत्र अंगद पर दे मारा। किन्तु अंगद ने कतराकर अपने को बचा लिया। फिर अंगद ने क्रोध में भर बज्र के समान मुट्ठी बांधी और महापार्श्व के छाती पर दे मारी। तब वह घूंसा लगते ही महापार्श्व का हृदय फट गया और वह मरकर पृथ्वी पर आ गिरा। महापार्श्व के मरते ही रावण का क्रोध बढ़ गया। उसी समय हर्ष से भरे हुए वानर सिंहनाद करने लगे। वानरों का वह महान सिंहनाद लंकापुरी को बींधता हुआ सा प्रतीत हुआ। इस पर वह राक्षस राज पुनः

रोषपूर्वक युद्ध के लिए उत्सुक हो रणभूमि में खड़ा हो गया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९८)

निन्यानबेवां सर्ग

श्रीराम का रावण से युद्ध

महाबली वीर विरूपाक्ष तो मारा ही गया साथ ही साथ महोदर और महापार्श्व भी काल के गाल में डाल दिए गये। यह देखकर रावण को बड़ा क्रोध आया। तब उसने सारथि को रथ बढ़ाने की आज्ञा देते हुए कहा-सूत! मेरे मंत्री मारे गये। अतः आज मैं राम और लक्ष्मण को मारकर इस दुख को दूर करुँगा। ऐसा कहकर रावण अपने रथ की गड़गड़ाहट से दसों दिशाओं को गुंजाता हुआ बड़ी तेजी से रघुनाथ जी की ओर बढ़ा। उस समय रावण ने तामस नामवाले अत्यंत भयंकर महाघोर अस्त्र को प्रकट किया और इससे वानरों को भस्म करना आरम्भ किया। यह अस्त्र साक्षात् ब्रह्मा जी का बनाया था इसलिए वानर उसके वेग को न सह सके। यह देखकर भगवान् श्रीराम युद्ध के लिए तैयार हो स्थिर भाव से खड़े हो गये। तदनन्तर लक्ष्मण सहित खड़े हुए महातेजस्वी श्रीराम ने रणभूमि में जब रावण को आते देखा तो वे अत्यंत हर्षित हो उठे और अपने धनुष को दृढ़ता से पकड़ लिया। उस समय उनके धनुष की टंकार से ऐसा लग रहा था जैसे सारी पृथ्वी को विदीर्ण कर डालेंगे। सैकड़ों राक्षस तो उसकी टंकार सुनते ही आतंकित होकर धराशायी हो गये। उस समय लक्ष्मण अपने पैने बाणों के द्वारा रावण से स्वयं युद्ध करना चाहते थे इसलिए वे धनुष तानकर अग्निशिखा के समान तेजस्वी बाण छोड़ने लगे। लेकिन रावण उनके प्रत्येक बाणों को अपने सायकों द्वारा आकाश में ही काट गिराता। इस तरह लक्ष्मण को लांघता हुआ वह श्रीराम के पास जा पहुँचा। वहाँ पहुँचकर वह उनके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा। श्रीराम ने तब उतावली से कई भल्ल हाथ में लिए और रावण के बाणों को उन तीखे भल्लों से काट डाला। फिर श्रीराम और रावण एक दूसरे पर पैनें बाणों की वर्षा करने लगे। किन्तु

Mookerji Jammu (J&K) Jammu Collection

बाणों के वेग से एक दूसरे को घायल करते हुए भी वे दोनों वीर पराजित नहीं होते थे। गीध की सुंदर पाँख के सुंदर परों से सुशोभित बाणों की अनवरत वर्षा से आकाश ऐसा जान पड़ता था मानो उसमें बहुत से झरोखे लगे हों। उन लोगों ने अपने बाणों से आकाश में अंधकार व्याप्त कर रखा था। दोनों ही महान् धनुर्धर थे। अतः वे जिस मार्ग से जाते उसी से बाणों की लहर सी उठने लगती। तदनन्तर रावण ने श्रीराम के ललाट में नाराचों की माला सी पहना दी। श्रीराम ने उस माला को अपने सिर पर धारण किया किन्तु वे व्यथित नहीं हुए। तत्पश्चात् श्रीराम ने रौद्रास्त का प्रयोग किया। किन्तु ये बाण रावण के कवच पर गिरे जिससे रावण व्यथित न हो सका। तब उन्होंने पुनः रावण के ललाट पर उत्तम अस्त्रों का प्रयोग कर उसे घायल कर दिया। इससे क्रोध से मूर्च्छित हुए रावण ने आसुर नामक महाभयंकर अस्त्र प्रकट किया। ये बाण मुख फैलाए जबड़े चाटते हुए पांच मुखवाले भयंकर सर्पों के समान जान पड़ते थे। इसके अलावा रावण ने अन्य बाणों का प्रयोग भी किया। तत्पश्चात् उस आसुरास्त्र से घिरे श्रीराम ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया और उसके द्वारा उन्होंने अग्नि, सूर्य, चंद्र, केतु, ग्रह, नक्षत्र, उल्का तथा प्रज्वलित बाण प्रकट किये। तथा उसके आसुरास्त्र को नष्ट कर दिया। तब सुग्रीव आदि वानर हर्षनाद करते हुए श्रीराम को घेर कर खड़े हो गये।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९९)

सौवाँ सर्ग

रावण की शक्ति से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना

अपने बाणों को नष्ट होते हुए देख राक्षस राज रावण ने और भी कुपित होकर दूसरे भयंकर अस्त्र छोड़ने का आयोजन किया। उस समय रावण के धनुष से बज्र के समान दृढ़ और चमकते हुए शूल, मुद्गर क्रूरपाश तथा अन्य तीखे-तीखे अस्त्र छूटने लगे। लेकिन श्रीराम ने गांधर्व नामक श्रेष्ठ अस्त्र से रावण के उस अस्त्र को शांत कर दिया। तब रावण ने उसे भी काटने के लिए सूर्यास्त्र का प्रयोग किया। उस समय रावण के धनुष

से बड़े बड़े तेजस्वी अस्त्र प्रकट होने लगे। लेकिन श्रीराम ने अपने बाण समूहों द्वारा रावण के उन चक्रों और विचित्र आयुधों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। उस अस्त्र को नष्ट हुआ देख रावण ने दसबाणों द्वारा श्रीराम के मर्मस्थान पर गहरी चोट पहुँचाई किन्तु श्रीराम जी उससे जरा भी विचलित नहीं हुए और रावण को ढेर सारे बाण मार कर उसके सारे अंगों में घाव कर दिया। इसी बीच महाबली लक्ष्मण ने कुपित हो सात सायक लिये और रावण की ध्वजा के कई टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर एक बाण द्वारा सारथि का मस्तक भी काट लिया। इतना ही नहीं उन्होंने पाँच पैने बाण मारकर उस राक्षस राज के धनुष को भी काट गिराया। तदनन्तर विभीषण ने उछलकर अपनी गदा से रावण के घोड़ों को मार डाला। घोड़ों के मारे जाने पर रावण को भाई पर बड़ा क्रोध आया। तब रावण ने भाई को मारने के लिए बज्र के समान एक प्रज्वलित शक्ति चलाई। किन्तु लक्ष्मण ने तीन बाण मारकर उसे बीच में ही काट दिया। उस समय विभीषण को मारने के लिए रावण ने फिर एक ऐसी शक्ति हाथ में ली जो अपने अमोघता के लिए विख्यात थी। काल भी उसके वेग को सह सकने में असमर्थ था। उस समय विभीषण को संकट में पड़ा देखकर लक्ष्मण उन्हें पीछे करके स्वयं उसके आगे खड़े हो गए और रावण पर बाणों की वर्षा करने लगे। यह देखकर रावण ने कहा- अपने बल पर घमण्ड करनेवाले लक्ष्मण! तुमने ऐसा प्रयास करके विभीषण को बचा लिया। इसलिए अब उस राक्षस को छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर शक्ति का प्रयोग करता हूँ। यह मेरे हाथों से छूटते ही तुम्हारे प्राणों का हरण कर लेगी। इतना कहकर रावण ने उस शक्ति को लक्ष्मण पर चला दिया। तब लक्ष्मण की ओर आती हुई उस शक्ति को लक्ष्य करके श्रीराम बोले- लक्ष्मण का कल्याण हो और तुम व्यर्थ हो जाओ किन्तु रावण के द्वारा छोड़ी हुई वह शक्ति तुरंत लक्ष्मण की छाती में डूब गई। उस समय शक्ति से उनका हृदय घायल हो जाने के कारण लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़े। महातेजस्वी श्रीराम पास ही खड़े थे। वे लक्ष्मण को इस अवस्था में देखकर भ्रातृस्नेह के कारण चिंता में डूब गये। फिर यत्न से अपने पर काबू पाकर लक्ष्मण की ओर देखकर रावण से अत्यंत भयंकर युद्ध करने लगे। किन्तु इधर लक्ष्मण रणभूमि में खून से लथपथ पड़े थे। लक्ष्मण की छाती में घुसे

हुए बाणों को कोई भी निकालने में सफल नहीं हो पा रहा था क्योंकि वह शक्ति लक्ष्मण के शरीर को विदीर्ण करती हुई धरती तक पहुँच गयी थी। तब महाबली रघुनाथ जी ने उस भयंकर शक्ति को अपने दोनों हाथों से पकड़कर लक्ष्मण के शरीरसे निकाला और कुपित होसमरांगण में ही उसे तोड़ डाला। श्रीराम जब लक्ष्मण के शरीर से शक्ति निकाल रहे थे उस समय महाबली रावण उनके सम्पूर्ण अंगों पर मर्मभेदी बाणों की वर्षा करता रहा। किन्तु उन बाणों की कोई परवाह न करके लक्ष्मण को हृदय से लगाकर श्रीराम और हनुमान और सुग्रीव से बोले- तुम लोग लक्ष्मण को इसी तरह सब ओर से घेर कर खड़े हो जाओ और मुझे अपना पराक्रम दिखलाने दो। वानरों! मैं इसीक्षण तुम्हारे सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि कुछ ही देर यह संसार रावण से रहित दिखाई देगा या राम से। मुझे अब तक जो कष्ट उठाना पड़ा है। मैं आज रावण का बध करके उन सारे दुःखों से छुटकारा पाऊँगा। जिसके कारण मैं यह वानरों की विशाल सेना साथ लाया हूँ और बाली को मारकर सुग्रीव को राज्य पर बिठाया तथा जिसके लिए ही समुद्र पर पुल बाँधा गया वही पापी रावण आज मेरे सामने युद्ध में खड़ा है। वानरो! आज तुम लोग पर्वत के शिखरों पर बैठकर मेरे और रावण के इस युद्ध को सुखपूर्वक देखो। आज संग्राम में देवता, गंधर्व, सिद्ध, ऋषि सभी राम का रामत्व देखें। ऐसा कहकर भगवान् राम सावधानहो अपने सुवर्ण भूषित तीखे बाणों से युद्ध भूमि में रावण को घायल करने लगे। तब एक दूसरे पर छोड़े हुए राम और रावण के भयंकर बाण परस्पर टकराने से बड़ा भयंकर शब्द कर रहे थे। उनके धनुष की टंकार समस्त प्राणियों में त्रास उत्पन्न कर देती और अद्भुत प्रतीत होती। तत्पश्चात् श्रीराम के बाण समूहों की वर्षा से आहत एवं पीड़ित हुआ रावण भय के मारे वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में सौवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१००)

एक सौ एकवाँ सर्ग

हनुमानजी द्वारा लाई हुई औषधि से लक्ष्मण का सचेत हो उठना

रावण ने अपनी शक्ति से लक्ष्मण को युद्ध में धराशायी कर दिया था। तब

रावण से युद्ध करने के बाद भगवान् श्रीराम ने सुषेण से कहा- ये वीर लक्ष्मण रावण की शक्ति से घायल होकर पृथ्वी पर पड़े हैं और छटपटा रहे हैं। अतः ऐसी अवस्था में इन्हें देखकर मेरा शोक बढ़ता जा रहा है। ये मुझे प्राणों से भी बढ़कर प्रिय हैं। ये यदि मर गये तो मेरे लिए प्राणों के रखने और सुख भोगने का क्या प्रयोजन। इन्हें कराहते हुए देखकर मेरी भी इच्छा मरने की हो रही है। तब वे चिंता और शोक में डूबकर विलाप करने लगे। वीर! अब मुझे संग्राम में विजय भी मिल जाए तो भी मुझे कोई प्रसन्नता न होगी। जब संग्राम के मुहाने पर लक्ष्मण ही सदा के लिए सो गये तो युद्ध जीतने से क्या लाभ? जिस तरह वन में आते समय लक्ष्मण मेरे पीछे पीछे चले आये उसी तरह यमलोक में जाते समय मैं भी इनके पीछे पीछे जाऊँगा। प्रत्येक देश में स्त्रियाँ मिल सकती हैं जाति भाई भी पाये जा सकते हैं किन्तु ऐसा कोई देश नहीं जहाँ मुझे सहोदर भाई मिल सके। वीर लक्ष्मण के बिना मैं राज्य लेकर क्या करूँगा और माता सुमित्रा, कौशल्या तथा कैकेयी को क्या जवाब दूँगा। भरत और शत्रुघ्न को क्या उत्तर दूँगा। अतः मेरे लिए यहीं मर जाना उत्तम होगा। हाँ भाई लक्ष्मण! तुम मुझे यहाँ अकेले छोड़कर परलोक को जा रहे हो? उठो! आँख खोलकर मुझे देखो क्योंकि मैं बहुत दुखी हो रहा हूँ। तुम मुझे शोक से पीड़ित होने पर सदैव धैर्य बँधाया करते थे फिर इस समय मुझे सांत्वना क्यों नहीं देते? तब श्रीराम के इस शोक को देखकर सुषेण ने उनको आश्वासन देते हुए कहा-पुरुष सिंह! आप इस चिंता को छोड़िए क्योंकि लक्ष्मण मरे नहीं बल्कि इनका शरीर शिथिल होकर भूतल पर पड़ा है। साँस चल रही है और हृदय बारंबार कम्पित हो रहा है। यह लक्ष्मण के जीवित होने की सूचना दे रहा है। तत्पश्चात् श्रीराम से ऐसा कहकर उन्होंने पास खड़े हुए हनुमानजी से कहा- सौम्य! तुम शीघ्र ही यहाँ से महोदय पर्वत पर, जिसका पता जाम्बवान् तुम्हें पहले ही बता चुके हैं, जाओ, और उसके दक्षिण शिखर पर उगती हुई विशल्य करणी सावर्ण्यकरणी, संजीव करणी तथा संधानी नाम से प्रसिद्ध महौषधियों को यहाँ ले आओ। वीर! उन्हीं से लक्ष्मण के जीवन की रक्षा हो सकेगी। तब उनके कहने से हनुमानजी महोदय गिर पर गए किन्तु औषधि न पहचान सकने के कारण वह चिंता में पड़ गए। उस समय

Moolchand Sharma (IFS) Jammu Collection

उन्होंने मन ही मन विचार किया क्यों न मैं इस शिखर को ही ले चलूं। इसी शिखर पर सुखदायिनी औषधि उत्पन्न होती है। ऐसा मुझे अनुमानतः ज्ञात होता है क्योंकि सुषेण ने ऐसा ही कहा था। ऐसा सोचकर वे उस श्रेष्ठ पर्वत के पास जा पहुँचे और उसे तीन बार हिलाकर उखाड़ लिया फिर उसे लेकर वे ऊपर उछले। उस समय उनका वेग महान था। तत्पश्चात् शिखर को सुषेण के निकट पहुँचाकर उसे पृथ्वी पर रख दिया और सुषेण से बोले- कपिश्रेष्ठ! औषधियों को न पहचान सकने के कारण ही मैं इस सारे पर्वत शिखर को ही लेता आया हूँ। तब सुषेण ने उनकी प्रशंसा करते हुए उन औषधियों को उखाड़ लिया और उसे कूट पीसकर लक्ष्मण जी के नाक में दे दिया। उस अवस्था में उस औषधि को सूंघते ही उनके शरीर से बाण निकल गए और वे निरोग होकर भूतल से उठकर खड़े हो गये। उस समय लक्ष्मण को इस तरह खड़ा देखकर सभी वानर साधु-साधु कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् लक्ष्मण को हृदय से लगाकर कहने लगे- वीर! बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं तुम्हें पुनः मृत्यु के मुख से लौटा हुआ देखता हूँ। तुम्हारे बिना न तो मैं सीता की ही कामना करता हूँ न विजय की। श्री राम की बात सुनकर लक्ष्मण धीरे-धीरे बोले- आपने रावण का बध कर विभीषण को लंका का राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी इसलिए आप रावण का बधकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। ये सूर्यदेव अपना भ्रमण कार्य पूरा करके जब तक अस्ताचल को नहीं चले जाते तब तक इस दुरात्मा रावण का बध मैं देखना चाहता हूँ। आर्य यदि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना चाहते हैं तो शीघ्र ही रावण को मारकर मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०१)

एक सौ दोवाँ सर्ग

इन्द्र के भेजे रथ पर बैठकर श्रीराम का रावण के साथ युद्ध

लक्ष्मण की बात सुनकर शत्रुवीरों का संहार करनेवाले श्रीराम ने धनुष लेकर उस पर बाणों का संधान किया। उन्होंने सेना के मुहाने पर रावण को लक्ष्य करके उन भयंकर बाणों को छोड़ना आरम्भ किया। उस

समय रावण एक दूसरे रथ पर सवार होकर श्रीराम की सेना पर चढ़ आया और उन्हें भी बाणों सी बींधना आरम्भ किया। उस समय श्रीराम भूमि पर खड़े थे और राक्षस रथ पर बैठा था। ऐसी दशा मे तेजस्वी इन्द्र ने अपने सारथि मातलि को बुलाकर कहा-सारथे! रघुकुल तिलक श्रीराम भूमि पर खड़े हैं। मेरा रथ लेकर तुम शीघ्र उनके पास जाओ और उनसे कहो कि यह रथ देवराज ने आपकी सेवा में भेजा है। तब सारथि इन्द्र की बात सुनकर बोला-देवेन्द्र! मैं शीघ्र ही आपके रथ को लेकर उनके पास जाऊँगा और अनके लिए सारथि का कार्य भी करुँगा तत्पश्चात् मातलि इन्द्र के रथ को लेकर भूतल पर उतरा और श्रीराम के सम्मुख जाकर बोला-महाबलि श्री रघुवीर! इन्द्र ने अपना यह रथ आपको समर्पित किया है। इसकेसाथ ही यह इन्द्र का विशाल धनुष है तथा यह अग्नि के समान तेजस्वी कवच है। यह प्रकाशमान बाण तथा निर्मल शक्ति भी उन्होंने आपके लिए भेजी है। वीरवर! अब आप इस रथ पर आरूढ़ हो- उस राक्षस का बध करें। मातलि के ऐसा कहने पर श्रीराम ने उस रथ की परिक्रमा की और उस पर सवार हो गये। तत्पश्चात् श्रीराम और उस राक्षस रावण में द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हुआ।

उस समय उसके द्वारा चलाए गांधर्व अस्त्र को गांधर्व अस्त्र से तथा दैव अस्त्र को दैव अस्त्र से नष्ट कर दिया। तब इससे कुपित हो रावण ने भयानक राक्षसास्त्र को चलाया। फिर तो वे बाण विषैले सर्प होकर श्रीराम के निकट आने लगे। वे बाण वासु की नाग की भांति असह्य थे। उन विषैले बाणों से फिर सम्पूर्ण दिशाएं ही आच्छादित हो गईं। तब विषैले सर्पों के विनाश के लिए श्रीराम ने तत्काल गारूड़ास्त्र को प्रकट किया। तब वे बाण सुवर्णमय गरूड़ बनकर सब ओर विचरने लगे और देखते ही देखते उन गरूड़ाकार बाणों ने उन सर्पाकार बाणों कासंहारकर डाला। अपने अस्त्रों को फिर विफल होते देख रावण श्रीराम पर भयंकर बाणों की वर्षा करने लगा तथा उनसे श्रीराम और मातलि दोनों को घायल कर दिया। फिर ध्वज को निचले भाग में गिराकर इन्द्र के घोड़ों को भी क्षत-विक्षत कर दिया। यह देखकर देवता, गंधर्व, चारण आदि सभी विषाद में डूब गये। उस समय दस मस्तक और बीस भुजाओं से युक्त दशग्रीव रावण धनुष लिए मैनाक पर्वत के समान दिखलाई पड़ने लगा। राक्षस रावण से बार बार

आहत होने के कारण श्रीराम अपने सायकों का संधान नहीं कर पा रहे थे। तब श्रीराम सहसा कुपित हो उठे। उन्हें कुपित होते देख सभी प्राणी भय से थर्रा उठे। और पृथ्वी कांपने लगी। सिंहों और बाघों से भरा हुआ पर्वत हिल गया। समुद्रों में ज्वार आ गया। आकाश में रुखे बादल गरजते हुए चक्कर लगाने लगे। इन आपातों को देखकर रावण के भीतर भी भय समा गया। उस युद्ध को देखकर वहाँ खड़े हुए असुर रावण को सम्बोधित करते हुए बोले-रावण! तुम्हारी जय हो। उधर देवता श्रीराम से बार-बार कहने लगे-रघुनंदन! आपकी जय हो, जय हो। इसी समय रावण ने श्रीराम पर प्रहार करने के लिए एक बहुत बड़ा हथियार उठाया। यह बहुत भयंकर तथा सम्पूर्ण शत्रुओं का संहारक था। उसका नाम था शूल। तब उस शूल को लेकर रावण ने विशाल गर्जना की और श्रीराम से कठोर वाणी में कहा-राम यह शूल बज्र के समान शक्तिशाली है। इसे मैंने रोषपूर्वक अपने हाथों में लिया है। यह लक्ष्मण सहित तुम्हारे प्राणों को तत्काल हर लेगा। आज तुम्हारा बध करके सेना के मुहाने पर जो शूरवीर राक्षस मारे गये हैं उन्हीं की अवस्था में तुम्हें भी पहुँचा दूँगा। ऐसा कहकर राक्षस राज रावण ने श्री रघुनाथ जी के ऊपर वह शूल चला दिया। रावण के हाथ से छूटते ही वह शूल आकाश में आकर चमक उठा। तब श्रीराम ने उस शूल को अपनी ओर आते देखकर धनुष तानकर बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी। लेकिन जैसे आग पतंगों को जला देता है उसी तरह उस शूल ने श्रीराम के धनुष से छूटे हुए समस्त बाणों को जलाकर भस्म कर दिया। यह देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होंने मातलि द्वारा लायी गयी इन्द्र की शक्ति अपने हाथ में ले ली। तत्पश्चात् श्रीराम ने जब उसे चलाया तब वह शक्ति राक्षस राज के उस शूल पर ही पड़ी और वह महान शूल टुकड़े-टुकड़े होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। इसके बाद श्रीराम चंद्रजी ने अपने पैने बाणों से रावण के अत्यंत वेगशाली घोड़ों को भी घायल कर दिया तथा तीन तीखे तीरों से रावण की छाती छेद डाली और उसके ललाट पर भी चोट पहुँचाई। तब उन बाणों की मार से रावण का सारा शरीर क्षत विक्षत हो उठा और उसने रणभूमि में अत्यधिक रोष प्रकट किया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०२)

एक सौ तीनवाँ सर्ग

श्रीराम का रावण को घायल करना

तब क्रोध के कारण रावण के नेत्र अग्नि के समान प्रज्वलित हो उठे। उस समय उसने भी तत्काल अपना धनुष उठाकर अपने बाणों से श्री रघुनाथजी को पीड़ित करना आरम्भ किया और सहस्त्रों बाण धाराओं से उन्हें आच्छादित कर दिया लेकिन श्रीराम इससे जरा भी विचलित नहीं हुए और रावण के बाणों को काटते हुए स्थिर भाव से खड़े रहे। तदनन्तर कुपित हो रावण ने श्रीराम की छाती में सहस्त्रों बाण मारे। तब उन बाणों के आघात से कुपित हो श्रीराम ने प्रलय काल के सूर्य की भांति तेजस्वी सायकों को हाथ में ले लिया और उन्हें रावण पर चलाने लगे। उस समय परस्पर बाण चलाते हुए वे एक दूसरे को नहीं देख पाते थे। इसी समय क्रोध में भरे हुए श्रीराम ने रावण से हँसते हुए कठोर वाणी में कहा- नीच राक्षस! तू मेरे परोक्ष में मेरी असहाय स्त्री को उठा लाया है फिर भी तू अपने को शूरवीर समझता है। पर, तूने बल के घमण्ड से वैदेही के रूप में अपनी मौत बुलाई है। तू बड़ा शूरवीर, बल सम्पन्न और साक्षात् कुबेर का भाई है, तो इसीलिए तूने यह परम प्रशंसनीय और महान् यशवर्धक काम किया है? अब तू भी उस पाप कर्म का फल अभी प्राप्त कर ले। यदि तूने मेरे सामने सीता का अपहरण किया होता तो मेरे सायकों से मारा जाकर अपने भाई खर का अब तक दर्शन करता होता। मैं तुझे अपने बाणों से अभी यमलोक पहुँचाता हूँ। आज मेरे बाणों से कटकर पृथ्वी पर गिरे हुए तेरे मस्तक को मांसभक्षी जीव जंतु घसीटेंगे। रावण! आज मेरे बाणों से प्राणशून्य होकर पड़े हुए तेरे शरीर की आँखें पक्षी उसी तरह खीचेंगी जैसे गरूड़ साँप को खींचते हैं। ऐसा कहकर श्रीराम ने रावण पर बाणों की घोर वर्षा आरम्भ कर दी। उस समय श्रीराम का रणभूमि में पराक्रम, उत्साह और अस्त्रबल बढ़कर दूना हो गया। तथा उनका हाथ बड़ी तेजी से चलने लगा। वानरों द्वारा चलाए हुए पत्थर और श्रीराम के चलाए हुए बाणों से रावण का हृदय व्याकुल हो उठा। इसके कारण उसमें श्रीराम के पराक्रम का सामना करने की क्षमता ही नहीं रह गई श्रीराम के शीघ्रतापूर्वक चलाए गए बाण उसकी मृत्यु के सायक बनने लगे और उसका मृत्युकाल समीप आ पहुँचा। रावण

की ऐसी अवस्था देखकर उसका सारथि बिना किसी घबराहट के उसके रथ को रणभूमि से दूर हटाकर बाहर ले आया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०३)

एक सौ चारवाँ सर्ग

रावण का सारथि को फटकारना

रावण उस समय काल की शक्ति से प्रेरित हो रहा था। अतः वह कुपित होकर सारथि से बोला- दुर्बुद्धे! तू मेरे अभिप्राय को जाने बिना ही किसलिए शत्रु के सामने से मेरा रथ हटा लाया है? तूने आज मेरे यश और पराक्रम पर पानी फेर दिया। इस तरह रथ को दूर हटाकर तूने मुझे शत्रु की दृष्टि में कायर सिद्ध कर दिया। यदि तू बहुत दिनों से मेरे साथ रहने के कारण यदि तुझे मेरे गुणों का स्मरण है तब मेरे रथ को शीघ्र लौटा ले चल। कहीं ऐसा न हो कि मेरा शत्रु भाग जाए? तब उसके सारथिनेबड़े विनय के साथ बोला महाराज! मैं डरा नहीं, बल्कि यह सोचकर कि इस कार्य से आपका हित होगा, यह सोचकर ही मैंने ऐसा किया। मैं तो सदैव आपके प्रिय और हितकर कर्म करने में तत्पर रहनेवाला हूँ। आप मुझ पर यह दोषारोपण न करें। मैंने जिस कारण से आपके रथ को पीछे हटाया उसे बता रहा हूँ। सुनिए- उस समय मैंने यह समझा था कि आप घमासान युद्ध के कारण थक गये हैं। क्योंकि मैने आपमें अधिक पराक्रम नहीं पाया। मेरे घोड़े भी रथ को खींचते-खींचते थक गए थे। इनके पाँव लड़खड़ा रहे थे और ये दुखी हो गए थे। साथ ही उस समय मेरे सामने जो-जो लक्षण प्रकट हुए वे भी अमंगलसूचक थे। सारथि को देशकाल की, लक्षणों की जानकारी भी रखनी चाहिए। अतः आपको तथा इन घोड़ों को थोड़ी देर तक विश्राम देने और खेद दूर के लिए मैंने जो यह कार्य किया है वह सर्वथा उचित था। वीर! मैंने मनमानी करने के लिए नहीं बल्कि स्वामी की रक्षा के लिए रथ को दूर हटाया है। स्वामी अब आप आज्ञा दें मुझे क्या करना चाहिए। सारथि के इस कथन से रावण बहुत संतुष्ट हुआ और युद्ध के लिए आतुर होकर बोला-सूत! अब रथ को सीधे राम के सामने ले चलो। रावण युद्ध भूमि में

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

शत्रु को मारे बिना घर नहीं लौटेगा। उस समय रावण ने सारथि को पुरस्कार के रूप में अपने हाथ का एक सुंदर आभूषण उतार कर दे दिया। तब रावण की आज्ञा पाकर सारथि ने उस रथ को युद्ध के मुहाने पर श्रीराम के समीप पहुँचा दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०४)

एक सौ पाचवाँ सर्ग

अगस्त्य मुनि का श्रीराम को विजय के लिए आदित्य हृदय के पाठ की सम्मति देना

इधर राम भी युद्ध से थककर चिंता करते हुए रणभूमि में खड़े थे कि इतने ही में रावण पुनः उनके सामने उपस्थित हो गया। यह देखकर अगस्त्य मुनि श्रीराम के पास आकर बोले-महाबाहो राम! यह सनातन गोपनीय स्तोत्र सुनो। वत्स! इसके जप से तुम युद्ध में अपने समस्त शत्रुओं पर विजय पा जाओगे। इस गोपनीय स्तोत्र का नाम 'आदित्य हृदय' है। साथ ही यह चिंता मिटानेवाला तथा आयु बढ़ानेवाला उत्तम साधन है। हे रामचंद्र! जिस समय भगवान् भास्कर उदय हों उस समय उनका पूजन श्रद्धा सहित करो। क्योंकि ये किरण धारण करनेवाले देव तीनों लोकों की रक्षा करने वाले हैं। यही सृष्टि के निर्माण करनेवाले ब्रह्मा हैं, और ये ही संसार का पालन करे करनेवाले विष्णु तथा ये ही प्रलयकर्त्ता शिव हैं। इन्हीं को शत्रुओं का नाश करनेवाले स्कंद समझो तथा इन्हीं का रूप इन्द्र भी है। ये ही धन-धान्य देनेवाले कुबेर भी हैं। हे राघव ! ये ही यम, चंद्रमा, वरूण, वसु, वायु, मनु और सब प्राणियों के रक्षक हैं। इन्हीं के द्वारा सब ऋतुओं का विकास होता है। और इन्हीं का रथ सब मूर्तियों में वर्तमान है। ये ही समस्त लोकों के अंधकार का नाश करनेवाले हैं। ये ही समस्त जगत के स्वामी हैं तथा समस्त भूमंडल पर भ्रमण करनेवाले हैं। तत्पश्चात् अगस्त्य मुनि ने भगवान् भास्कर को समस्त देवताओं का रूप मानकर नमस्कार किया फिर बोले- हे रामचन्द्र इसलिए तुम एकाग्र चित्त होकर इन देवाधिदेव जगदीश्वर की पूजा करो। इस आदित्य हृदय का तीन बार जप करने से तुम

Mohan Sharma (IFS) Jammu Collection

युद्ध में विजय पाओगे यह कहकर अगस्त्य जी जैसे आये थे वैसे ही चले गये। उनका उपदेश सुनकर श्रीराम का शोक दूर हो गया। उन्होंने शुद्ध चित्त से आदित्य हृदय को धारण किया और सूर्य की ओर देखते हुए वसु का तीन बार जप किया। तब वे हर्ष सहित रावण पर विजय पाने हेतु आगे बढ़े। उस समय देवताओं के मंध्य में खड़े हुए भगवान् सूर्य ने कहा- रघुनंदन! अब जल्दी करो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ पाचवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०५)

एक सौ छहवाँ सर्ग

रावण की पराजय सूचक उत्पातों का वर्णन

रावण के सारथि ने उत्साह से युक्त होकर अपने रथ को आगे बढ़ाया वह रथ शत्रु को कुचल देनेवाला था और उसके भीतर युद्ध की आवश्यव सामग्री भरी हुई थी। श्रीराम ने रावण के उस रथ को देखा। उसकी क्रांति बड़ी भयंकर थी और उसमें रखे हुए धनुष से वह बाणों की धारावाहिक वर्षा कर रहा था। उस समय उसे देखकर श्रीराम ने सारथि से कहा- मातले! देखो मेरे शत्रु रावण का रथ बड़े वेग से आ रहा है। वह जिस महान् वेग से पुनः आ रहा है इससे प्रतीत होता है कि उसने समर भूमि में अपने बध का निश्चय कर लिया है। अब तुम सावधानी से रथ को आगे बढ़ाओ। श्रीरामचंद्र के इस वचन को सुनकर मातलि रावण के विशाल रथ को दाहिने रखते हुए श्रीराम सहित रथ को आगे बढ़ाया। उसके पहिए से इतनी धूल उड़ी कि रावण उसे देखकर काँप उठा। वह भी अब आँख फाड़े हुए श्रीराम पर बाणों की वर्षा करने लगा। उस समय श्रीराभ ने भी क्रोधित हो इन्द्र का धनुष हाथ में लिया और तब श्रीराम और रावण में भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ। उस युद्ध के समय ऐसे भयंकर उत्पात होने लगे जो रोंगटे खड़े कर देनेवाले थे। मेघ रावण के रथ पर रक्त की वर्षा करने लगे और जिस जिस मार्ग से रावण का रथ जाता था उसी उसी ओर आकाश में मंडराता हुआ गीधों का महान् समुदाय दौड़ा जाता। वहाँ की भूमि दिन में जलती हुई सी दिखाई देती। इसके साथ ही बड़ी बड़ी उल्काएं

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

गिरने लगीं और राक्षसों की भुजाएँ इतनी निकम्मी हो गईं मानों उन्हें किसी ने जकड़ लिया। सूर्यदेव की किरणें काले रंग की दिखाई देने लगीं। साथ ही गीदड़ियां मुखों से आग उगलती हुई अमंगल सूचक बोली बोल रही थीं। उसी समय बिना बादल के ही रावण की सेना पर बिजलियाँ गिरीं। उसके घोड़े अपने जघन स्थल से आग की चिंगारियाँ एवं नेत्रों से आँसू बरसा रहे थे। इस तरह से सब लक्षण रावण के विनाश की सूचना देने लगे थे। इधर श्रीराम के सामने भी अनेक शकुन प्रकट हुए जो सब प्रकार से मंगलमय और विजय सूचक थे। यह सब देखकर श्रीराम ने रावण को मरा हुआ समझा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ छहवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०६)

एक सौ सातवाँ सर्ग

श्रीराम और रावण का घोर युद्ध

श्रीराम और रावण में अत्यंत क्रूरतापूर्वक द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ। इस समय राक्षस और वानरों की विशाल सेना हाथ में हथियार लिए रहने पर भी एक दूसरे पर आक्रमण नहीं कर रहे थे बल्कि वे निश्चेष्ठ होकर श्री राम और रावण का युद्ध देखने में लगे थे। राक्षस रावण की ओर देख रहे थे और वानर श्रीराम की ओर। श्रीराम को यह विश्वास था कि जीत मेरी ही होगी और रावण को भी यह निश्चय हो गया था कि उसे अवश्य ही मरना होगा। फिर भी वे दोनों अपना सारा पराक्रम वहाँ दिखलाने लगे। उस समय रावण ने अपने बाणों को लेकर क्रोधपूर्वक श्रीराम के रथ पर फहराती हुई ध्वजा को अपना निशाना बनाया और उन बाणों को छोड़ दिया। किन्तु वे बाण ध्वजा तक पहुँचने के पहले ही धरती पर गिर पड़ते। तब श्रीराम ने उसकी ध्वजा की ओर निशाना साधकर अपना सायक चलाया जो दशानन के ध्वजा को काटकर पृथ्वी में समा गया। यह देखकर रावण ने अपने तेजस्वी बाणों से श्रीराम चंद्र के घोड़ों को घायल करना शुरू किया। लेकिन वे घोड़े दिव्य थे इसलिए न तो वे लड़खड़ाए और न अपने स्थान से विचलित हुए। उन घोड़ों को घबराहट में न पड़ता देख

Mookerji Sharma (B-S) Jammu Collection

रावण का क्रोध और भी बढ़ गया। इससे वह पुनः बाणों की वर्षा करते हुए गदा, चक्र, परिघ शूल आदि अन्यान्य शूलों की वर्षा करने लगा। उस समय वह शस्त्र वर्षा श्रीराम के रथ को छोड़कर सब ओर से वानर सेना पर पड़ने लगी। तदनन्तर श्रीराम ने रावण को बाण चलाने में अधिक परिश्रम करते देख हँसते हुए तीखे बाणों का संधान किया और उन्हें सैकड़ों तथा हजारों की संख्या में छोड़ा। उनका चलाया हुआ कोई भी बाण लक्ष्य पर पहुँचे बिना नहीं रहता था। फिर भी आपस में शस्त्र वर्षा करते हुए जब श्रीराम और रावण के बाण आपस मे टकराते तब पृथ्वी पर गिर जाते। इस प्रकार युद्ध में लगे हुए श्रीराम और रावण को सम्पूर्ण प्राणी चकित चित्त से निहारने लगे। एक दूसरे के बध के प्रयत्न में लगे हुए वे दोनों वीर बड़े भयानक दिखलाई पड़ते थे। उन दोनों के सारथि कभी रथ को चक्कर काटते हुए ले जाते तो कभी सीधे मार्ग से दौड़ाते हुए, फिर कभी आगे की ओर और कभी पीछे की ओर लौटाते थे। इस प्रकार श्रीराम रावण को पीड़ित करने लगे और रावण श्रीराम को पीड़ा पहुँचाने लगा। तत्पश्चात् वे दोनों रथ युद्धस्थल में भांति-भांति की गति का प्रदर्शन करने के बाद आमने सामने आकर खड़े हो गये। उस समय वहाँ खड़े हुए उन रथों के युगंधर (हरसों की संधि) युगंधर से, घोड़ों के मुख विपक्षी घोड़ों के मुख से तथा पताकाएं पताकों से मिल गईं। तत्पश्चात् श्रीराम ने अपने धनुष से छूटे हुए चार पैने बाणों से रावण के चारों तेजस्वी घोड़ों को पीछे हटने के लिए विवश कर दिया। घोड़ों के पीछे हटने पर रावण क्रोध के वशीभूत होकर श्रीराम पर तीखे बाणों की वर्षा करने लगा। लेकिन श्रीराम को इससे जरा भी व्यथा न हुई। तब रावण ने सारथि मात लि को लक्ष्यकर के बज्र के समान बाण छोड़े। पर मात लि भी इससे व्यथित न हो सका। किन्तु श्रीराम चंद्र को यह देखकर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। अतः उन्होंने बाणों का जाल सा बिछाकर अपने शत्रु को युद्ध से विमुख कर दिया। उन्होंने शत्रु के रथपर बीस -तीस, साठ, सौ और हजार-हजार बाणों की वर्षा की। उधर रावण भी कुपित हो उठा और गदा तथा मूसलों की वर्षा से श्रीराम को पीड़ा देने लगा। तब उन दोनों के भयंकर युद्ध को देखकर सारी पृथ्वी कॉंप उठी। सूर्य की प्रभा लुप्त हो गई और वायु की गति भी रुक गई। उस समय सब के मुँह

से यही बात निकलने लगी- गौ और ब्राह्मणों का कल्याण हो और श्री रघुनाथजी युद्ध में राक्षस राज पर विजय पावें। गंधर्व और अप्सरा इस युद्ध को देखकर कहने लगे- गगन-गगन के तुल्य हैं, समुद्र-समुद्र के समान है तथा राम और रावण का युद्ध राम और रावण के युद्ध के ही समान है। तदनन्तर श्रीराम ने कुपित हो अपने धनुष पर एक विषधर सर्प के समान बाण का संधान किया और उसके द्वारा कुंडलों से युक्त रावण का एक मस्तक काट डाला। उसका कटा हुआ सिर तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा जिसे तीनों लोकों के प्राणियों ने देखा। किन्तु शीघ्र ही उसकी जगह रावण का वैसा ही दूसरा नया सिर उत्पन्न हो गया। रावण के उस सिर को श्री राम ने पुनः अपने सायकों द्वारा काट डाला। उसके कटते ही फिर दूसरा नया सिर उत्पन्न होता हुआ दिखाई पड़ा। इस प्रकार श्रीराम द्वारा उसके सौ सिर काट डाले गये। तथापि उसके जीवन का नाश होने के लिए उसके मस्तकों का अंत होता नहीं दिखाई देता था। तब श्रीराम चिंतित होकर सोचने लगे- अहो! मैंने जिन बाणों से मारीच, खरदूषण, विराध तथा कबंध को मार गिराया। जिन बाणों से बाली के प्राण लिए तथा सागर को क्षुब्ध कर दिया आज ये ही मेरे सब सायक रावण के ऊपर निस्तेज हो गये हैं, इसका क्या कारण हो सकता है? फिर उन्होंने सतत् सावधान होकर रावण की छाती पर बाणों की झड़ी लगा दी। रावण भी रथ पर बैठा हुआ श्रीराम को गदा और मूसलों की वर्षा से पीड़ित करता रहा। तत्पश्चात् उस युद्ध ने भयंकर रूप धारण कर लिया। श्रीराम और रावण का वह युद्ध न रात में ही बंद होता था और न दिन में। तदनन्तर श्रीराम की युद्ध में विजय न होती देख इन्द्र के सारथि ने श्रीराम से शीघ्रतापूर्वक मंत्रणा दी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०७)

एक सौ आठवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा रावण का बध

मातलि ने श्रीराम को कुछ याद दिलाते हुए कहा- प्रभो! आप इसके बध के लिए ब्रह्माजी के अस्त्र का प्रयोग करें। देवताओं ने इसके विनाश

का जो समय बताया वह अब आ पहुँचा है। मात लि के ऐसा कहने पर श्री राम चंद्र को उस अस्त्र का स्मरण हो आया। उन्होंने तुरंत अगस्त्य मुनि का दिया हुआ एक बाण हाथ में लिया, जो ब्रह्माजी का बनाया हुआ था और युद्ध में अमोघ था। यह पहले इन्द्र के लिए तीनों लोकों पर विजय पाने के लिए बनाया गया था। इसका निर्माण सम्पूर्ण भूतों के तेज से हुआ था और उसमें सूर्य के समान ज्योति निकलती रहती थी। उसमें बड़े-बड़े दरवाजों परिघों तथा पर्वतों को तोड़-फोड़ देने की शक्ति थी। देखने में वह बड़ा भयंकर था और युद्ध में वह यमराज का भयावह रूप धारण कर लेता था। वह उत्तम बाण समस्त लोकों तथा इक्ष्वाकु वंशियों के भय का नाशक था। श्रीरघुनाथजी जब उस बाण का संधान करने लगे तब सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और धरती डोलने लगी। फिर श्रीराम ने उसे धनुष पर रखकर बड़े यत्न से रावण पर चला दिया। तब वह दुर्धर्ष बाण काल के समान रावण की छाती पर जा लगा और दुरात्मा रावण के हृदय को विदीर्ण कर डाला। इस प्रकार रावण के प्राण हरकर खून से रंगा हुआ वह शोभाशाली बाण पुनः विनीत सेवक की भांति श्रीराम चंद्र के तरकस में लौट आया। बाण की चोट से रावण प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण को निर्जीव पृथ्वी पर पड़ा देखकर सम्पूर्ण निशाचर भयभीत हो गये तथा उनके मुख पर करुणायुक्त आँसुओं की धारा बह चली। तब वानर हर्ष और उत्साह से भरकर जोर-जोर से गर्जना करने लगे। आकाश में मधुर दुन्दुभियां बजने लगीं। तब वायु भी दिव्य सुगंध बिखेरती हुई मंद गति से प्रवाहित होने लगी। अंतरिक्ष से श्रीराम पर फूलों की वर्षा होने लगी और समस्त देवता और चारणों को महान् हर्ष हुआ। श्रीराम, सुग्रीव, अंगद तथा विभीषण का मनोरथ सफल करते हुए स्वयं भी प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् समस्त देवताओं को शांति मिल गई और सुग्रीव, विभीषण, अंगद तथा लक्ष्मण ने अपने सुहृदों के साथ श्रीराम की विधिवत् पूजा की।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०८)

Mookerji sharma ... Jammu Collection

एक सौ नवाँ सर्ग

श्रीराम का रावण की अंत्येष्टि संस्कार के लिए आदेश देना

उस समय पराजित हुए भाई को मरकर रणभूमि में पड़ा देखकर विभीषण का हृदय शोक के वेग से व्याकुल हो गया और वे विलाप करने लगे- हा विख्यात पराक्रमी भाई दशानन्! तुम तो सदा बिछौने पर सोया करते थे। आज इस तरह मारे जाकर भूमि पर क्यों पड़े हो? वीर वर! आज तुम्हारे ऊपर जो संकट आ पड़ा है इसके लिए मैंने तुम्हें पहले से ही आगाह कर दिया था लेकिन अहंकार के कारण तुम्हें मेरी बात न रुचि और न तो प्रहस्त, न इन्द्रजित् ने, न कुंभकर्ण ने और न अतिकाय ने ही मेरी बातों को कोई महत्व दिया। आज यह उसी का फल हम लोगों के सामने आया है। हाय! धैर्य ही जिसके पत्ते थे, हठ ही सुंदर फूल था तपस्या ही बल और शौर्य ही मूल था, उस रावण रूपी महान वृक्ष को आज रणभूमि में श्रीराम रूपी प्रचंड वायु ने रौंद डाला। तेज ही जिनके दाँत थे, वंश परम्परा ही जिनके पृष्ठ भाग था, क्रोध ही जिसके नीचे के अंग थे और प्रसाद ही जिसका सूंड था वह रावण रूपी गंध हस्ती 'हाथी' आज इक्ष्वाकुवंशी श्रीराम रूपी सिंह के द्वारा सदा के लिए पृथ्वी पर सुला दिया गया है। राक्षस सैनिक जिसकी पूंछ, ककुद् एवंसिंग थे तथा पराक्रम और उत्साह आदि प्रकट करने में जो वायु के समान था, उस रावण रूपी सांड़ को श्रीराम रूपी व्याघ्र ने नष्ट कर दिया। तब श्रीराम ने विभीषण को समझाया-विभीषण! यह रावण समरांगण में असमर्थ होकर नहीं मारा गया। इसने प्रचंड पराक्रम प्रकट किया, इसका उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था। इसे मृत्यु से कोई भय नहीं था। यह तो दैवात् रणभूमि में धराशायी हुआ। जो समरांगण में मारे जाते हैं उनके लिए शोक नहीं करना चाहिए। जिस वीर ने इन्द्रजित सहित तीनों लोकों को युद्ध में भयभीत कर रखा था वही इस समय काल के अधीन हो गया तो इसके लिए शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि युद्ध में सदा किसी को विजय ही विजय मिले ऐसा पहले भी कभी नहीं हुआ। वीर पुरुष रण में या तो शत्रु को मार गिराता है या स्वयं मर जाता है। क्षात्रवृत्ति का आश्रय लेनेवाले वीरों के लिए तो यह बड़े आदर की वस्तु है। इसलिए अब तुम सात्विक बुद्धि का आश्रय लो तुम निश्चिंत हो जाओ और अब आगे प्रेत

संस्कार आदि के सम्बंध में जो कार्य करना है उस पर विचार करो। तब विभीषण बोले- प्रभो! पूर्व काल में युद्ध के अवसरों पर समस्त देवताओं तथा इन्द्र ने भी जिसे कभी पीछे नहीं हटाया था वही वेदांत वेत्ता महातपस्वी मेरा भाई आज प्रेत भाव को प्राप्त हुआ है। अतः में आपकी कृपा से इसका प्रेत कृत्य करना चाहता हूँ। तब श्रीराम ने रावण के लिए स्वर्गादिउत्तम लोकों की प्राप्ति करानेवाला अन्त्येष्टि कर्म करने की आज्ञा दी। उन्होंने कहा- विभीषण! वैर जीवन काल तक ही रहता है। मरने के बाद उस बैर का अंत हो जाता है। अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है इसलिए तुम इसका संस्कार करो। इस समय यह जैसे तुम्हारे स्नेह का पात्र है। उसी तरह मेरा भी स्नेह का भाजन है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ नौवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०९)

एक सौ दसवाँ सर्ग

रावण की स्त्रियों का विलाप

उस समय रावण के मारे जाने का समाचर सुनकर शोक से व्याकुल हुई राक्षसियाँ अंतःपुर से निकल पड़ीं। लोगों के बार-बार मना करने पर भी वे धरती की धूल में लोटने लगती थीं। वे राक्षसों के साथ लंका के उत्तरी दरवाजे से निकलकर भयंकर युद्धभूमि में प्रवेश कर अपने पति की खोज करने लगीं। हां आर्य पुत्र! हा नाथ! की पुकार मचाती हुई वे सब की सब उस रण भूमि में जहाँ बिना मस्तक की लाशें पड़ी थीं, गिरती पड़ती भटकने लगीं। उसी समय वे क्रन्दन करती हुई उस जगह पहुँचीं जहाँ कोयलों के ढेर की भांति रावण मरा पड़ा था। उसे देखते ही वे वन की लताओं के समान उसके अंगों पर गिर पड़ीं। तब कोई तो उसके गले से लगकर रोने लगीं और कोई मरे हुए स्वामी का मुख देखकर मूर्च्छित होने लगीं। फिर इस प्रकार पति देवता रावण को मरकर धरती पर गिरा हुआ देखकर वे आर्तभाव से विलाप करने लगीं। वे बोलीं- हाय! जिन्होंने यमराज और इन्द्र को भी भयभीत कर रखा था वे ही हमारे प्राणनाथ आज समरांगण में मारे जाकर सदा के लिए सो गए हैं। जो देवताओं, असुरों, यक्षों तथा

राक्षसों के लिए सदा अवध्य रहे हैं, वे ही आज एक पैदल मनुष्य के हाथों से मारे जाकर भूमि पर सो रहे हैं। इस प्रकार की बात करती हुई रावण की दुखी स्त्रियाँ वहाँ फूट फूटकर रोने लगीं तथा दुख से आतुर होकर पुनः विलाप करने लगीं- प्राणनाथ! आपने सदा हित की बात बताने वाले सुहृदों की बात अनसुनी कर दी। इसका फल यह हुआ कि आपने अपने को रणभूमि में और हम लोगों को महान् दुख के समुद्र में गिरा दिया। यदि आपने मिथिलेश कुमारी सीता को राम के पास लौटा दिया होता तो इससे विभीषण का मनोरथ भी सफल हो जाता और हमें विधवा भी न होना पड़ता किन्तु आप इतने निष्ठुर निकले कि सीता को बलपूर्वक कैद में रख तथा राक्षसों को हम स्त्रियों को तथा अपने आपको एक साथ नीचे गिरा दिया। राक्षस शिरोमणे! आपका स्वेच्छाचार ही हमारे विनाश का कारण हुआ। ऐसी बात भी नहीं। वास्तव में देव ही सब कुछ कराता है। देव का ही मारा हुआ जाता है या मरता है। इस युद्ध में वानरों का, राक्षसों का और आप का विनाश दैवयोग से ही हुआ है। दैव के विधान को कोई पलट नहीं सकता। इस प्रकार राक्षस की सभी स्त्रियाँ दुख से पीड़ित हो आँखों में आँसू भरकर कुररी की भाँति विलप करने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ (११०)

एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग

मंदोदरी का विलाप तथा रावण के शव का दाह संस्कार

उस समय रावण की ज्येष्ठ एवं प्यारी पत्नी इस प्रकार विलाप करने लगी-महाराज़! कुबेर के छोटे भाई! जब आप क्रोध करते थे उस समय इन्द्र भी आपके सामने खड़ा होने में भय खाते थे। बड़े-बड़े ऋषि, गंधर्व चारण भी आपके भय से चारों दिशाओं में भाग गये थे। वही आज आप युद्ध में एक मानव मात्र राम से परास्त हो गये। राजन्! क्या आपको इससे लज्जा नहीं आती। आपके वेग को सह लेना किसी के लिए संभव नहीं था फिर आप जैसे वीर को एक वनवासी मनुष्य ने कैसे मार डाला। इस युद्ध में आपका राम के द्वारा मारा जाना संभव अथवा विश्वास योग्य नहीं जान

पड़ता। ऐसा लगता है कि साक्षात काल ही आपके विनाश के लिए श्रीराम के रूप में यहाँ आ पहुँचा था। अथवा यह भी असंभव है कि साक्षात् इन्द्र ने आप पर आक्रमण किया है। लेकिन इन्द्र की शक्ति ही क्या जो आपकी ओर आँख उठाकर देख सके। यह श्री राम निश्चय ही महान् योगी और सनातन परमात्मा हैं। इनका आदि, मध्य और अंत नहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि सत्य पराक्रमी भगवान विष्णु ही समस्त लोकों का हित करने की इच्छा से, वानर रूप में प्रकट हुए देवताओं के साथ आकर राक्षसों सहित आपका बध किया है। क्योंकि आप देवताओं के शत्रु तथा समस्त संसार के लिए भयंकर थे। आपने पहले अपने इन्द्रियों को वश में रखकर तीनों लोकों में विजय पाई किन्तु उन्हीं इन्द्रियों ने ही अब आपको परास्त किया। जनस्थान में बहुतेरे राक्षसों से घिरे रहकर भी जब उन्होंने आपके भाई खर को मार डाला था, तभी मैंने समझ लिया था कि श्रीराम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। जिस लंका में देवताओं का भी घुसना कठिन था वहीं जब हनुमान जी बलपूर्वक घुस आये उसी समय हम लोग भावी अनिष्ट की आशंका से व्यथित हो उठी थीं। उस समय बार-बार समझाने पर भी आपने मेरी बात नहीं मानी। आज उसी का फल मिला है। भगवती सीता रोहिणी और अरुन्धती से भी बढ़कर पतिव्रता हैं। उनका तिरस्कार कर आपने बड़ा अनुचित कार्य किया है। प्राणनाथ! आपने अपने मन में सीता के साथ समागम की कामना की थी किन्तु आज उन पतिव्रता देवी की तपस्या से जलकर भस्म हो गए हैं। उस सीता का अपहरण करते समय ही आप जलकर राख नहीं हुए यही आश्चर्य की बात है। प्राण बल्लभ! इसमें संदेह नहीं कि समय आने पर कर्ता को उसके पाप का फल अवश्य मिलता है। आपके घर में सीता देवी से भी अधिक सुन्दर रूपवाली दूसरी युवतियाँ मौजूद हैं। किन्तु मोहवश आपने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। सीता न तो कुल में, न रूप में और न गुणों में मुझसे बढ़कर हैं। फिर भी मोह में पड़कर आप इसे समझ नहीं पाए। आपने सीता के कारण मृत्यु को स्वयं बुला लिया। वे तो अब शोक रहित होकर श्रीराम के साथ विहार करेंगी। किन्तु मैं शोक के घोर समुद्र में गिर पड़ी। हाय! मुझ मंद-भागिनी ने कभी जिसके विषय में सोचा तक नहीं था वही मुझे वैधब्य

का दुख प्रदान करने वाली मृत्यु आपको प्राप्त हो गई है। दानवराज मय मेरे पिता, राक्षस राज रावण मेरे पति और इन्द्र पर भी विजय प्राप्त करनेवाला इन्द्रजित् मेरा पुत्र है, यही सोचकर मैं अत्यंत गर्व से भरी रहती थी किन्तु न जाने कैसे आप जैसे प्रभावशाली लोगों को यह अज्ञात भय प्राप्त हो सका है। जो चिकने इन्द्रमणि के समान श्याम, नीलम और मोतियों एवं फूलों की मालाओं से सुसज्जित और बिहार स्थलों में अधिक कांतिमान था वही आप का शरीर तीखे बाणों से भरा हुआ है। अतः इसके कारण मैं आपके शरीर का आलिंगन भी नहीं कर पा रही हूँ। आज आप का यह श्याम शरीर जिस पर रक्त की अरुण छटा छा रही है बज्र की मार से चूर-चूर होकर बिखरे हुए पर्वत के समान जान पड़ता है। नाथ! यह सत्य है। हाय आप श्रीराम के हाथों कैसे मारे गए? आप तो मृत्यु के भी मृत्यु थे फिर स्वयं मृत्यु के अधीन कैसे हो गए? आपने कैलाश पर्वत उठाया और अपने पराक्रम को प्रकट करते हुए समस्त संसार को क्षोभ में डाल दिया। आपने साधु पुरुषों की हिंसा की और विपक्षियों को मारकर अपने पक्षों को भी मौत के घाट उतारा। आप धर्म की व्यवस्था को तोड़ने वाले तथा संग्राम में माया की सृष्टि करनेवाले थे। देवताओं, मनुष्यों और असुरों की कन्याओं को इधर-उधर से हर ले आने वाले थे। अब आपके समान शूरमा के धराशायी होने पर मैं इस शरीर को धारण कर रही हूँ। यह मेरी पाषाण-हृदयता का परिचायक है। राक्षराज! आप तो बहुमूल्य पलंगों पर शयन करते थे। फिर यहाँ धरती पर धूल में लिपटे हुए क्यों सो रहे हैं? राजन्! आप जिस दुर्गम और विशाल मार्ग पर गए हैं मुझ दुखिया को भी वहीं ले चलिए। हाय! मुझे यहीं छोड़कर आप अन्यत्र क्यों चले जाना चाहते हैं। मैं आपके लिए रो रही हूँ और आप मुझसे बोलते क्यों नहीं। आप अपनी स्त्रियों से बड़ा प्रेम करते थे लेकिन आज आपकी सभी स्त्रियाँ परदा हटाकर बाहर निकल आई हैं तो भी आप क्रोध क्यों नहीं करते? राजन्! आपने बहुत-सी कुल ललनाओं को जो गुरुजनों की सेवा में लगी रहने वाली थीं तथा धर्मपरायण थीं, विधवा बनाया तथा उनका अपमान किया, अतः उस शोक से संतप्त होकर उन लोगों ने आपको शाप दे दिया था, उसी का यह फल है कि आपको मृत्यु के अधीन होना पड़ा। महाराज! पतिव्रताओं के आँसू इस पृथ्वी पर व्यर्थ नहीं

Mookerji Sharma / CC-O. Jammu Collection

गिरते। यह कहावत प्रायः आपके ऊपर ठीक-ठीक घटी है। आप अपने को बड़ा शूरवीर मानते थे फिर पराई स्त्री चुराने का यह नीच कर्म आपने कैसे किया? सोचिए! यह कितनी बड़ी कायरता थी। महाबाहो! मेरे देवर विभीषण सत्यवादी और भविष्य के ज्ञाता थे। उन्होंने हर कर लाई हुई सीता को देखकर कहा- अब राक्षसों के विनाश का समय आ पहुँचा है। उनकी यह बात सही निकली। काम और क्रोध से उत्पन्न हुए दोष के कारण यह सारा ऐश्वर्य नष्ट हो गया। आप अपने बल और पुरुषार्थ के लिए विख्यात थे। अब आप के विनाश से मैं महान् दुख में पड़ गई हूँ। इसलिए बारम्बार अपने लिए ही शोक करती हूँ। आपने अपने घमण्ड में मतवाले हो, मारीच, विभीषण, कुंभकर्ण किसी की कल्याणकारी बात नहीं मानी। उसी का यह फल आपको प्राप्त हुआ है। मैं शोक से पीड़ित हो रही हूँ और आप गहरी नींद में सोए हुए हैं। ऐसा क्यों हो रहा है? मैं युद्ध कुशल सुमाली की दौहित्री हूँ। आप मुझसे बोलते क्यों नहीं? वीरवर! आप जिस तेजस्वी परिघ के द्वारा शत्रुओं का संहार किया करते थे वही आज श्रीराम के बाणों से सहस्त्रों टुकड़ों में विभाजित हो इधर-उधर बिखरा पड़ा है। अब आपकी मृत्यु पर मेरे हृदय के हजारों टुकड़े नहीं हो जाते अतः मुझ पाषाण हृदया नारी को धिक्कार है। इस प्रकार विलाप करती हुई मन्दोदरी के नेत्रों में आँसू भरे हुए थे। फिर वह सहसा मूर्च्छित होकर रावण की छाती पर गिर पड़ी। उसकी सौतें भी शोक से अत्यंत आतुर हो रही थीं। उन्होंने ऐसी अवस्था में मंदोदरी को धीरज बंधाते हुए कहा- महारानी! क्या आप नहीं जानती कि संसार का स्वरूप अस्थिर है। लक्ष्मी अस्थिर रहनेवाली हैं। उनके ऐसा कहने पर मंदोदरी फूट-फूट कर रोने लगी। तब राम ने विभीषण से कहा- इन स्त्रियों को धैर्य बंधाओ और अपने भाई का दाह संस्कार करो। उस समय विभीषण बोले- भगवान्! जिसने सदाचार का त्याग कर दिया था, जो सब के लिए अहित में संलग्न रहनेवाला था ऐसा मेरा ज्येष्ठ भाई रावण पूज्य होने पर भी मुझसे सत्कार पाने योग्य नहीं। विभीषण की यह बात सुनकर श्रीराम चन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। अतः वे विभीषण से इस प्रकार बोले- राक्षस राज! अब मुझे तुम्हारा भी प्रिय करना है क्योंकि तुम्हारे ही प्रभाव से मेरी विजय हुई है। यह निशाचर भले अधर्मी रहा हो। परन्तु संग्राम में सदा तेजस्वी और

शूरवीर रहा है। वैर मरने तक ही रहता है। मरने के बाद उसका अंत हो जाता है। अब इस समय जैसे यह तुम्हारा भाई है वैसे ही मेरा भी भाई है। इसलिए इसका दाहसंस्कार करो। ऐसा करने से तुम यश के भागी होगे। तब विभीषण रावण के दाहकर्म की शीघ्रतापूर्वक तैयारी करने लगा। तत्पश्चात् भाँति-भाँति के वाद्य घोषों के द्वारा स्तुति करनेवाले मागधों ने जिसका अभिवादन किया राक्षस राज रावण के उस शव को रेशमी वस्त्र में ढँककर उसे सोने के दिव्य विमान पर रखने के पश्चात् राक्षस जाति के ब्रह्मण आँखों में आँसू भरकर वहाँ खड़े हो गए। तत्पश्चात् विभीषण आदि राक्षस उसे कंधे पर उठाकर तथा अन्य सब लोग हाथ में सूखे काठ लिए दक्षिण दिशा में श्मशान भूमि की ओर चले। अंतःपुर की सारी स्त्रियाँ भी रोती हुई शव के पीछे-पीछे चलीं। आगे पहुँचने पर मलय चंदन तथा अन्य प्रकार के चंदनों द्वारा बनायी गई चिता पर उसके शव को सुलाकर विधिपूर्वक उसका दाह-संस्कार किया गया। तत्पश्चात् विभीषण ने स्नान करके भीगे वस्त्र पहने हुए ही तिल, कुश और जल द्वारा रावण को जलान्जलि दी। तत्पश्चात् रावण की स्त्रियों को बारम्बार सांत्वना देकर उनसे घर चलने के लिए अनुनय विनय की। तब स्त्रियों के पुरी में प्रवेश कर जाने के बाद राक्षस राज विभीषण श्रीराम के पास आकर विनीत भाव से खड़े हो गए। श्रीराम भी उस समय लक्ष्मण, सुग्रीव तथा समस्त सेना के साथ शत्रु का बध करके बहुत प्रसन्न थे। तदनन्तर इन्द्र के दिए धनुष, बाण और विशाल कवच को त्यागकर तथा अपने दोष को छोड़कर उन्होंने शांतभाव धारण कर लिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१११)

एक सौ बारहवाँ सर्ग

विभीषण का राज्याभिषेक

तदनन्तर राबण वध का दृश्य देखकर सभी देवता और गंधर्व आदि अपने-अपने विमान से यथास्थान लौट गए। इधर इन्द्र का सारथि मातलि भी श्रीराम की आज्ञा से अपने रथ के साथ दिव्य लोक को चले गए। तत्पश्चात् श्रीराम ने सुग्रीव का आलिंगन करके लक्ष्मण की ओर दृष्टि

डाली। तब लक्ष्मण ने उनके चरणों को प्रणाम किया और फिर वानर सैनिकों से सम्मानित हो वे सेना की छावनी पर लौट आए। वहाँ आकर रघुनाथ जी ने लक्ष्मण से कहा- सौम्य! अब तुम लंका में जाकर विभीषण का अभिषेक करो, क्योंकि ये मेरे प्रेमी, भक्त और उपकार करनेवाले हैं। मेरी बड़ी इच्छा है कि मैं इन्हें लंका के राज्य पर अभिषिक्त देखूँ। तब लक्ष्मण ने भी प्रसन्नता के साथ वानरों से समुद्र का जल ले आने के लिए कहा। तब वे मन के समान वेग-शाली वानर शीघ्रता पूर्वक समुद्र का जल लेकर लौट आए। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने सागर के जल से वेदोक्त रीति से विभीषण को लंका के राज्य पद पर अभिषिक्त कर दिया। उसके पश्चात् लंका के सभी राक्षसों और वानरों ने भी उनका अभिषेक किया। उस समय हर्ष से भरे हुए नगरवासी निशाचर विभीषण को अर्पित करने के लिए दही, अक्षत, मिठाई, लावा और फूल ले आए। तब विभींषण ने सब मांगलिक वस्तुएं लेकर श्रीराम और लक्ष्मण को भेंट कर दीं। उनकी प्रसन्नता के लिए श्रीराम चन्द्र ने उन वस्तुओं को स्वीकार कर लिया। और हाथ जोड़कर खड़े हुए हनुमान जी से कहा- सौम्य! अब तुम महाराज विभीषण की आज्ञा से लंका नगरी में प्रवेश करके सीता से उनका कुशल समाचार पूछो। साथ ही उनसे लक्ष्मण सहित मेरा कुशल समाचार भी कहना। तुम उन्हें यह प्रिय समाचार भी सुना दो कि रावण युद्ध में मारा गया। तत्पश्चात् उनका संदेश लेकर लौट आओ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११२)

एक सौ तेरहवाँ सर्ग

हनुमानजी की सीता जी से बातचीत

भगवान् राम का आदेश पाकर पवनपुत्र हनुमान जी ने निशाचरों से सम्मानित होते हुए लंकापुरी में प्रवेश किया। पुरी में प्रवेश कर विभीषण की आज्ञा से वे अशोक वाटिका में गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने सीताजी को अपने आगमन की सूचना दी। उस समय सीता जी आनन्द शून्य हो राक्षसियों से घिरी बैठी थीं। हनुमान जी उन्हें प्रणाम कर चुपचाप खड़े हो

गए। किन्तु सीता उन्हें पहचान कर भी चुपचाप बैठी रहीं। तब हनुमान जी ने कहा- विदेह नन्दिनी! श्रीराम जी, लक्ष्मण और सुग्रीव के साथ सकुशल हैं। अपने शत्रु रावण का बध करके उन्होंने आपकी कुशल पूछी है। देवि! उन्होंने युद्ध में रावण को मार डाला है। अब मैं आपको यह प्रिय समाचार सुनाकर अधिक से अधिक प्रसन्न देखना चाहता हूँ। आपके पतिव्रत धर्म के प्रभाव से श्रीराम ने यह विज़य पाई है। उन्होंने यह भी संदेश दिया है कि देवि मैंने तुम्हारे उद्धार के लिए जो प्रतिज्ञा की थी उसे पूर्ण कर दी। अब तुम रावण के घर में रहकर भी भयभीत न होना। देवि! ये विभीषण भी हर्ष से भरकर आपके दर्शन की इच्छा से अभी यहीं आ रहे हैं। यह सुनकर सीता को बड़ा हर्ष हुआ और उनका गलाभर आने के कारण वे कुछ नहीं बोल सकीं। तब हनुमान जी ने फिर कहा- देवि! आप क्या सोच रहीं हैं। मुझसे बोलती क्यों नहीं? हनुमान जी के ऐसा कहने पर सीता देवी आत्मविभोर होकर गद्‌गद् वाणी से बोलीं- अपने स्वामी के विजय समाचार से मैं आनन्द विभोर हो उठी थी इसलिए कुछ बोल न सकी। वीर इस प्रिय संवाद सुनाने के लिए मैं तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ। किन्तु इस भूमण्डल में ऐसी कोई वस्तु नहीं दिखाई पड़ती जिसे देकर तुम्हें संतुष्ट किया जा सके। सीता जी के ऐसा कहने पर हनुमान जी हाथ जोड़कर बोले- देवि! इस समय मैं आपके इस वचन से भी सब कुछ पा गया हूँ। सौम्य! आपका यह वचन तो देवताओं के राज्य से भी बढ़कर है। तब सीताजी उनकी बात सुनकर बोलीं- वीर! ऐसी वाणी केवल तुम ही बोल सकते हो। तुम वायु देवता के प्रशंसनीय पुत्र हो। शारीरिक बल, शास्त्र ज्ञान, मानसिक बल, क्षमा, धैर्य, विनय आदि सभी गुण तुममें एक साथ विद्यमान हैं। तब हनुमान जी पुनः हर्ष से बोल उठे- देवि! अब मैं आपकी आज्ञा से इन सब राक्षसियों को जो पहले आपको बहुत डराती धमकाती रही हैं मार डालना चाहता हूँ। सबकी सब विकट आकार वाली क्रूर और विकराल हैं। इनके नेत्रों और केशों से भी क्रूरता टपकती है। अतः मैं तरह-तरह के आघातों से इन्हें मार डालना चाहता हूँ जिन्होंने अब तक आपसे क्रूरता पूर्वक बातें की हैं। इन्हें मैं पटक-पटक कर मार डालना चाहता हूँ। तब हनुमान जी के ऐसा कहने पर करुणामय स्वभाववाली सीता मन ही मन सोच विचार कर बोलीं- कपि श्रेष्ठ! ये

बेचारी राजा के आश्रय में रहने के कारण अपराधी न थीं। अतः स्वामी की आज्ञा पालन करनेवाली इन दासियों पर कौन क्रोध करेगा? ये सारे कष्ट मेरे दुष्कर्मों के कारण ही हुए। मेरे पूर्व जन्म के कर्मों ने ही मुझे ऐसा कष्ट प्राप्त कराया। अतएव महाबाहो! तुम इनके मारने की बात न कहो। मेरे लिए दैव का ही ऐसा विधान था। इसलिए रावण की दासियों का यदि कुछ अपराध भी है तो मैं उन्हें क्षमा करती हूँ। पवन कुमार! ये तो मुझे उस राक्षस की आज्ञा से धमकाया करती थीं। जब से वह मारा गया है तब से इन लोगों ने मुझे डराना-धमकाना छोड़ दिया है। श्रेष्ठ पुरुष दूसरों की बुराई करनेवाले पापियों के पाप कर्म नहीं अपनाते अर्थात् बदले में स्वयं भी उनके साथ भी पापपूर्ण बर्ताव नहीं करना चाहते। श्रेष्ठ पुरुष को चाहिए कि कोई पापी हो अथवा पुण्यात्मा, उन सब पर दया करें। क्योंकि संसार में ऐसा एक भी प्राणी नहीं है जिससे कोई न कोई अपराध न हुआ हो। सीता जी के ऐसा कहने पर हनुमान जी ने उनसे कहा- देवि! आप श्रीराम की पत्नी हैं अतः आपको ऐसे गुणों से सम्पन्न होना ही चाहिए। अब आप अपनी ओर से श्री रघुनाथ जी के लिए कोई संदेश दें। यह सुनकर सीता जी बोलीं- मैं अपने भक्तवत्सल स्वामी का दर्शन करना चाहती हूँ। तब सीता जी का हर्ष बढ़ाते हुए हनुमान जी ने कहा- देवि! जैसे शची देवराज इन्द्र का दर्शन करती हैं उसी प्रकार आप भी मनोहर मुखवाले उन श्रीराम और लक्ष्मण को आज ही देखेंगी। तत्पश्चात् वहाँ से लौटकर हनुमान जी ने श्रीराम से सीताजी का संदेश कह सुनाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११३)

एक सौ चौदहवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा से विभीषण का सीता को उनके समीप ले आना

हनुमान जी ने श्रीराम से कहा- भगवन्! जिनके लिए यह सारा युद्ध आदि कर्म किए गए उन सीता देवी को आप दर्शन दें। वे आपका दर्शन शीघ्र करना चाहती हैं। तब हनुमान जी के ऐसा कहने पर श्रीराम जी सहसा ध्यानस्थ हो गए। उनकी आँखें डबडबा आईं और वे पास ही खड़े विभीषण

से बोले- तुम विदेह नन्दिनी सीता को मस्तक पर से स्नान करके दिव्य अंगराज आदि से विभूषित करके शीघ्र मेरे पास ले आओ। श्रीराम के ऐसा कहते ही विभीषण बड़ी उतावली के साथ अंतःपुरमें गए औरअपने स्त्रियों को भेजकर सीता को अपने पहुँचने की खबर दी। तब सीता का दर्शन स्वयं करने के पश्चात् उन्होंने सीता से कहा- विदेह राजकुमारी! आप अंगराज तथा दिव्य-वस्त्राभूषणों से भूषित हो सवारी पर बैठिए। आपके स्वामी आपको देखना चाहते हैं। यह सुनकर सीता बोलीं- राक्षस राज! मैं बिना स्नान किए ही अभी पतिदेव का दर्शन करना चाहती हूँ। यह सुनकर विभीषण बोले- देवि! आपके स्वामी ने जैसी आज्ञा दी है आपको वैसा ही करना चाहिए। उस समय स्वामी की आज्ञा मानकर उन्होंने स्नान करके श्रृंगार किया और चलने के लिए तैयार हो गईं। तब विभीषण सीता देवी को एक शिविका में बैठाकर भगवान् श्रीराम के पास ले आए और बोले-प्रभो! सीता देवी आ गई हैं। उस समय सीता जी के आगमन का समाचार सुनकर उन्होंने विभीषण से कहा- सीता से कहो वे शीघ्र मेरे पास आवें। श्रीराम की यह आज्ञा सुनकर विभीषण ने तुरन्त दूसरे लोगों को वहाँ से हटाना शुरू किया। किन्तु यह देखकर श्रीराम ने विभीषण को उलाहना देते हुए कहा-तुम किसलिए मेरा अनादर कर के इन सब लोगों को कष्ट दे रहे हो। इस काम को रोक दो। क्योंकि यहाँ जितने लोग हैं वे सब मेरे आत्मीय स्वजन हैं। विपत्तिकाल में शारीरिक या मानसिक पीड़ा के अवसरों पर, युद्ध में, स्वयंवर में, यज्ञ में अथवा विवाह में स्त्री को देखना दोष की बात नहीं। सीता इस समय विपत्तिमेंहैं और मानसिक कष्ट से युक्त हैं। अतः इसका परदे के बिना सब के सामने आना दोष की बात नहीं। अतएव जानकी शिविका छोड़कर पैदल ही यहाँ आएं और सभी वानर उनका दर्शन करें। श्रीराम चन्द्र की इस चेष्टा से लक्ष्मण, हनुमान तथा सुग्रीव तीनों ही व्यथित हो उठे। उन्होंने अनुमान लगाया कि श्रीराम सीता पर अप्रसन्न ही जान पड़ते हैं। उस समय आगे-आगे सीता और पीछे-पीछे विभीषण चलते हुए श्रीरघुनाथ जी के पास जा पहुँचे। उस समय सीता जी का मुख सौम्य भाव से युक्त था। तब प्रियतम के सुन्दर मुख को सीता ने जी भरकर निहारा और अपने मन की पीड़ा दूर

की।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११४)

एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग

सीता के चरित्र पर संदेह कर श्रीराम का उन्हें ग्रहण करने से इंकार

मिथिलेश कुमारी सीता को अपने समीप खड़ी देखकर श्रीराम चन्द्र बोले- भद्रे! शत्रु को पराजित कर मैंने तुम्हें उसके चंगुल से छुड़ा लिया। आज मेरे शोक का अंत हो गया। आज सब ने मेरा पराक्रम देख लिया। जब तुम आश्रम में अकेली थीं उस समय वह चंचल चित्तवाला राक्षस तुम्हें हर ले गया। यह दोष जो मेरे ऊपर दैवयोग से लग गया था उसे मैंने हर संभव प्रयत्न से दूर कर दिया। हनुमान जी ने जो समुद्र लाँघा और लंका का विध्वंस किया, उनका यह प्रशंसनीय कार्य आज सफल हो गया। सुग्रीव और विभीषण का पराक्रम और परिश्रम भी निष्फल नहीं गया। इस तरह श्रीराम की बातें सुनकर सीता जी की आँखों में आँसू आ गए। वे अपने स्वामी की हृदयवल्लभा थीं किन्तु लोकापवाद के भय से श्रीराम का हृदय उस समय विदीर्ण हो रहा था। वे राक्षसों और वानरों की भरी सभा में सीता से पुनः बोले- अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिए मनुष्य का जो कर्तव्य है वह सब मैंने रावण का बध करके पूर्ण किया। परन्तु तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मैंने जो यह युद्ध का परिश्रम उठाया और मित्रों के पराक्रम से इसमें विजय पाई। वह सब तुम्हें पाने के लिए नहीं किया गया है। यह सब मैंने सदाचार की रक्षा, अपवाद का निवारण और अपने सुविख्यात वंश पर लगे हुए कलंक को धोने के लिए किया है। लेकिन अब तुम्हारे चरित्र में संदेह का अवसर उपस्थित है। अतः इस समय तुम मुझे अत्यंत अप्रिय जान पड़ती हो। इसलिए सीता मेरी अनुमति है कि तुम जहां चाहो चली जाओ। ऐसा कौन कुलीन पुरुष होगा जो तेजस्वी होकर भी दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को मन से ग्रहण कर सकेगा। रावण तुम्हें गोद में उठा ले गया। अतः अपने कुल को महान् बताते हुए मैं तुम्हें कैसे ग्रहण कर सकता हूँ। जिस उद्देश्य से तुम्हें जीता था वह सफल हो गया है।

इसलिए अब तुम जहाँ चाहो जा सकती हो। भद्रे! इस समय तुम चाहो भरत या लक्ष्मण के संरक्षण में सुख पूर्वक रहने का विचार कर सकती हो। शत्रुघ्न, विभीषण, सुग्रीव के पास भी, जहाँ तुम्हारा मन लगे, रह सकती हो। तदनन्तर श्रीराम के मुख से ऐसे अप्रिय वचन सुनकर वे रोती हुई आँसू बहाने लगीं।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११५)

एक सौ सोलहवाँ सर्ग

सीता का श्रीराम को उपालम्भपूर्ण उत्तर देना

श्रीराम की कठोर बातें सुनकर विदेह कुमारी सीता के मन में बड़ी व्यथा हुई। तब नेत्रों से भीगे हुए अपने मुख को अंचल से पोंछती हुई वे धीरे-धीरे गद्‌गद् वाणी से अपने पति देव से इस प्रकार बोलीं- वीर! आप मुझे ऐसे कर्ण कटु बातें क्यों सुना रहे हैं? महाबाहो! आप मुझे जैसा समझते हैं मैं वैसी नहीं हूँ। नीच श्रेणी की स्त्रियों का आचरण देखकर यदि आप समूची स्त्री जाति पर ही संदेह करते हैं तो यह उचित नहीं। यह जो मेरे वश में रहनेवाला हृदय है वह तो सदा आपमें ही लगा रहता है। किन्तु ये अंग जो पराधीन थे उनसे यदि मेरा किसी दूसरे से स्पर्श हो गया तो उसके लिए मैं अबला क्या कर सकती थी। प्राणनाथ! हमारा अुराग साथ-साथ बढ़ा है। इतने पर भी आप मुझे नहीं समझ सके तो मैं सदा के लिए मारी गई। नृपश्रेष्ठ! इस समय आपने केवल ओछे मनुष्यों की भाँति ही अनुसरण कर निम्नकोटि की स्त्रियों के स्वभाव को ही सामने रखा है। राजा जनक के यज्ञ से उत्पन्न होने से मैं, जानकी कहलाई और भूतल से प्रकट होने के कारण मेरे अंदर जो अलौकिक आचार-विचार विद्यमान हैं उनकी ओर आपने कोई ध्यान नहीं दिया। आप के प्रति मेरे हृदय में जो शील है, वह सब आपने एकदम भुला दिया। इतना कहकर आँखों में आँसू भरकर उन्होंने लक्ष्मण से कहा- लक्ष्मण! मेरे लिए चिता तैयार कर दो। क्योंकि अब मैं झूठे आरोपों से कलंकित होकर जीवित नहीं रहना चाहती। तब श्रीराम का संकेत पाकर उन्होंने सीता के लिए चिता तैयार

कर दी। उस समय श्रीराम के, संहारकारी यमराज के समान, रूप को देखकर कोई उनकी ओर देखने का साहस न कर सका। तब सीता जी श्रीराम की प्रदक्षिणा करके प्रज्वलित अग्नि के पास गईं और देवताओं तथा ब्राह्मणों को प्रणाम कर इस प्रकार बोलीं- यदि मेरा हृदय एक क्षण के लिए भी श्रीरघुनाथ जी से दूर न हुआ हो तो अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें। यदि में निष्कलंक होऊँ और श्रीरघुनाथ जी के सिवा और किसी के बारे में न सोचा हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें। ऐसा कहकर सीताजी ने अग्नि की परिक्रमा की और जलती हुई आग में समा गईं। सोने की बनी हुई वेदी के समान विशाल लोचना सीतादेवी को सम्पूर्ण भूतों ने आग में गिरते हुए देखा। जैसे यज्ञ में मंत्रों द्वारा धीमी धारा डाली जाती है वैसे ही दिव्य आभूषणों से विभूषित सीता को अग्नि में गिरती हुई देखकर सभी स्त्रियाँ चीख उठीं। उनके अग्नि में प्रवेश करते समय राक्षस और वानर जोर-जोर से हा-हाकार करने लगे। उनका वह अद्‌भुत आर्तनाद चारों ओर गूँज उठा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

एक सौ सत्रहवाँ सर्ग

भगवान् श्रीराम के पास देवताओं का आगमन

श्रीराम हा-हाकार करनेवाले वानर और राक्षसों की बात सुनकर दुखी होकर दो घड़ी तक सोचते रहे। इसी समय विश्रवा के पुत्र कुबेर, यमराज, इन्द्र, महादेव जी तथा ब्रह्मा जी सब रघुनाथ जी के पास गए और अपनी भुजाओं को उठाकर उनसे बोले- श्रीराम! आप ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं और सर्वव्यापक हैं फिर इस समय आग में गिरी हुई सीता की उपेक्षा कैसे कर रहे हैं? आप समस्त देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु ही हैं, तब इस बात को आप कैसे नहीं समझ पा रहे हैं। शत्रुओं को संताप देनेवाले देव! सृष्टि के आदि अंत और मध्य में आप ही दिखाई देते हैं। तब आप एक साधारण मनुष्य की भाँति सीता की उपेक्षा कैसे कर रहे हैं? यह सुनकर श्रीराम ने देवताओं से कहा- देवगण! मैं तो अपने को दशरथ पुत्र

राम ही समझता हूँ। अब मैं जो हूँ और जहाँ से आया हूँ वह सब आप ही मुझे बताइए। तब ब्रह्मा जी बोले- श्रीराम! आप मेरी सच्ची बात सुनिए। आप भगवान् नारायण तथा अविनाशी परब्रह्म हैं। आप ही परम धर्म और चार भुजाधारी श्री हरि हैं। आप ही विष्णु और महाबली कृष्ण हैं। इन्द्र को भी उत्पन्न करनेवाले महेन्द्र और युद्ध का अंत करने वाले पद्मनाभ भी आप ही हैं। आप सिद्धि और साध्यों के आश्रय तथा पूर्वज हैं। आप श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ परमात्मा हैं। आप के आविर्भाव और तिरोभाव को कोई नहीं जानता। समस्त प्राणियों, गौवों और ब्राह्मणों में भी आप ही दिखाई देते हैं। आपके सहस्त्रों चरण, सैकड़ों मस्तक और सहस्त्रों नेत्र हैं। आप ही विराट पुरुष नारायण हैं। सभी के हृदय में रमण करनेवाले परमात्मा हैं। मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ और सरस्वती आपकी जिह्वा, वेद आपके संस्कार, सम्पूर्ण विश्व आप का शरीर और पृथ्वी आपकी स्थिरता है। अग्नि आप का कोप और चन्द्रमा प्रसन्नता है। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ रघुवीर! आपने रावण का बध करने के लिए ही इस लोक में मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया था। श्रीराम आप के हाथों रावण मारा गया। अब आप अपने दिव्य धाम में पधारिए। आपका दर्शन एवं स्तवन अमोघ है। आप में भक्ति रखनेवाले मनुष्य ही अमोघ होंगे। आप पुराण पुरुष हैं। आप में भक्ति रखनेवाला लोक परलोक में अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेगा तथा उनका कभी पराभव न होगा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११७)

एक सौ अट्ठारहवाँ सर्ग

मूर्तिमान अग्नि का सीता को लेकर प्रकट होना

ब्रह्मा जी के कहे हुए इन शुभ वचनों को सुनकर मूर्तिमान अग्निदेव सीता को पिता की भाँति गोद में लिए चिता से ऊपर को उठे और अरुणपीत कांति से प्रकाशित होनेवाली उन सीता को श्रीराम को समर्पित करते हुए कहा- श्रीराम! यह आपकी पत्नी सीता है। इसमें कोई पाप या दोष नहीं है। इसने मन, वाणी, बुद्धि अथवा नेत्रों द्वारा सिवा आपके और

Mookerji Sharma Jammu Collection

किसी पुरुष का आश्रय नहीं लिया। अपने अपहरण होने के समय यह बेचारी सूने आश्रम में अकेली थी। अतः यह बेवश थी। रावण के कैद में रहकर भी इसका चित्त आप में ही लगा रहा। अतएव इसका भाव सर्वथा शुद्ध है। अब आप इसे सादर स्वीकार करें। अग्निदेव की यह बात सुनकर श्रीराम के नेत्रों में आनन्द के आँसू छलक आए। तदनन्तर श्रीराम ने अग्निदेव को उत्तर दिया- भगवन्! लोगों में सीता जी की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिए यह शुद्धिविषयक परीक्षा आवश्यक थी। यदि मैंने यह परीक्षा न ली होती तो लोग यही कहते थे कि दशरथ पुत्र राम बड़ा ही मूर्ख और कायर है। यद्यपि मैं भी जानता हूँ कि जनक दुलारी सीता का हृदय सदा मुझमें लगा रहता है और ये सदा मेरी इच्छानुसार ही चलती हैं फिर भी तीनों लोकों के प्राणियों के मन में विश्वास दिलाने के लिए एक मात्र सत्य का सहारा लेकर मैंने अग्नि में प्रवेश करतीहुईसीता को रोकने की चेष्टा नहीं की। ये दूसरे के लिए अग्नि शिखा के समान ही अलभ्य हैं। ये रावण के अन्तःपुर में रहकर भी व्याकुलता या घबराहट में नहीं पड़ सकती थीं। क्योंकि ये मुझसे इसी तरह अभिन्न हैं जैसे सूर्य देव से उनकी प्रभा। आप सभी लोकपाल मेरे हित कीबात कह रहे हैं और आप लोगों का मुझपर बड़ा स्नेह है। अतः आप सभी देवताओं के हितकर वचन का मुझे अवश्य पालन करना चाहिए। ऐसा कहकर श्रीराम सीता से मिलकर सुख का अनुभव करने लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११८)

एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मण का महादेवजी की आज्ञा से विमान से आए हुए राजा दशरथ को प्रणाम करना

श्रीराम की बातें सुनकर महादेव जी बोले- महाबाहु कमल नयन! आप धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं। आपने रावण बध का कार्य सम्पन्न कर दिया। यह बड़े सौभाग्य की बात है। रावण जनित भय और दुःख सारे लोकों में बढ़े हुए अंधकार के समान था जिसे आपने युद्ध में गिरा दिया।

महाबली वीर! अब आपको दुखी भरत, यशस्वी कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा से मिलकर तथा ब्राह्मणों को धन देकर परमधाम जाना चाहिए। श्रीराम! देखिए ये आपके पिता राजा दशरथ विमान पर बैठे हैं। इस लोक में यही आपके यशश्वी गुरू हैं। आप जैसे सुपुत्र ने इन्हें तार दिया है। अब आप भाई लक्ष्मण के साथ इन्हें नमस्कार करें। महादेव जी की बात सुनकर लक्ष्मण सहित श्रीराम ने उच्च स्थान पर बैठे हुए अपने पिता जी को प्रणाम किया। उस समय उनके पिता निर्मल वस्त्र धारणकर अपनी दिव्य शोभा से देदीप्यमान थे। वे भी अपने प्यारे पुत्र श्रीराम को देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें बाँहों में भरकर बोले- राम! तुमसे विलग होकर मुझे स्वर्ग का सुख तथा देवताओं द्वारा प्राप्त हुआ सम्मान भी अच्छा नहीं लगता था। आज तुम शत्रुओं का वध करके पूर्ण मनोरथ हो गए। आज तुम्हें सकुशल देखकर मैं सारे दुखों से छुटकारा पा गया। सौम्य! आज इन देवताओं के द्वारा मुझे मालूम हुआ कि रावण का बध करने हेतु स्वयं भगवान् तुम्हारे रूप में अवतीर्ण हुए थे। श्रीराम कौशल्या का जीवन सार्थक है जो अपने पुत्र को घर में हर्ष और उल्लास के साथ देख सकेगी। अयोध्यावासी भी तुम्हारा राज्याभिषेक देखकर कृतार्थ हो जाएंगे। भरत बड़ा ही धर्मात्मा एवं बलवान् है। मैं उसके साथ तुम्हारा मिलन शीघ्र ही देखना चाहता हूँ। सौम्य! तुमने मेरी प्रसन्नता के लिए वन में चौदह वर्ष व्यतीत किए। अब तुम्हारी वह अवधि पूरी हो चुकी और तुमने रावण को मारकर देवताओं को संतुष्ट कर दिया है। अतः अब तुम राज्य पर प्रतिष्ठित हो दीर्घायु प्राप्त करो। तब राजा के इतना कहने पर श्रीराम बोले- धर्मज्ञ महाराज! आपने जो कैकेयी से कहा था कि मैं भरत सहित तेरा त्याग करता हूँ। यह शाप अब उन्हें न छूने पाए और उन दोनों को आपकी कृपा मिले। तब दशरथ ने श्रीराम की बात मान ली और फिर लक्ष्मण को गले से लगाते हुए कहा- वत्स! तुमने विदेह नंदिनी सीता की भक्तिपूर्वक सेवा करके मुझे बहुत प्रसन्न किया है। अब उसके फल स्वरूप तुम्हें उत्तम स्वर्ग और महत्व प्राप्त हो गए। तुम इस तरह निरन्तर श्रीराम की सेवा करते रहो क्योंकि ये ही शत्रुओं को संताप देनेवाले, देवताओं के हृदय एवं परम गुह्य-तत्व हैं। तुमने सीता के साथ शांतिभाव से इनकी

सेवा करते हुए धर्माचरण का फल और महान् यश प्राप्त किया है। तत्पश्चात् उन्होंने सीता को बेटी कहकर पुकारा और मधुर वाणी से बोले- सीते! तुमको इस त्याग को लेकर श्रीराम पर कुपित नहीं होना चाहिए। क्योंकि ये तुम्हारे हितैषी हैं और तुम्हारी पवित्रता दिखलाने के लिए ही इन्होंने ऐसा व्यवहार किया था। तुम्हारा यह कर्म अन्य नारियों के यश को ढक लेगा। इस प्रकार अपने दोनों पुत्र और सीता को उपदेश देकर वे विमान पर बैठकर देवराज इन्द्र के लोक को चले गए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११९)

एक सौ बीसवाँ सर्ग

श्रीराम के अनुरोध से इन्द्र का मरे हुए वानरों को जीवित करना

महाराज दशरथ के लौट जाने पर इन्द्र ने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा- नरश्रेष्ठ! तुम्हें हमारा जो दर्शन हुआ है वह व्यर्थ नहीं जाना चाहिए। हम तुम पर प्रसन्न हैं इसलिए तुम्हारी जो इच्छा हो मुझसे कहो। इन्द्र के ऐसा कहने पर श्रीराम प्रसन्न होकर बोले- यदि आप मुझ पर कृपालु हैं तो मैं यह प्रार्थना करूँगा कि मेरे लिए युद्ध में पराक्रम करके जो वानर यमलोक चले गए हैं, वे सब नया जीवन पाकर उठ खड़े हों। ये सब जीवित होकर आपकी कृपा से मुझसे फिर मिलें- यही वर मैं चाहता हूँ। देवराज! मैं इन्हें निरोग तथा बल पौरुष से सम्पन्न देखना चाहता हूँ। ये जहाँ रहें वहाँ फल फूल की भरमार रहे तथा जल से भरी नदियाँ बहें। यह सुनकर इन्द्र ने प्रसन्नता पूर्वक कहा- तात! आपने जो यह वर माँगा है वह बहुत बड़ा है फिर भी जब मैंने कहा है तो वह अवश्य सफल होगा। अब जो युद्ध में मारे गए हैं और राक्षसों ने जिनके मस्तक तथा भुजाएं काट डालें हैं वे सब वानर और लंगूर जी उठें। इन्द्र के इस प्रकार कहने पर वे सब श्रेष्ठ वानर सो कर जगे हुए की भाँति सहसा उठकर खड़े हो गए। तब श्री राम चन्द्र का मनोरथ सफल होता हुआ देखकर समस्त श्रेष्ठ देवता अत्यंत प्रसन्न हो लक्ष्मण सहित श्रीराम की स्तुति करके बोले- राजन्! अब आप यहाँ से अयोध्या पधारें और समस्त वानरों को विदा

कर दें। सीता को, जो आप पर अनुराग रखती हैं, सान्त्वना दीजिए और भरत जो आपके शोक से पीड़ित हो रहे हैं, उनसे मिलिए। अब आप शीघ्र शत्रुघ्न और माताओं से मिलें और अपना अभिषेक कराएँ। श्रीराम और लक्ष्मण से ऐसी बात कह कर देवराज इन्द्र सहित और उनके साथ आए हुए सभी देवता अपन-अपने लोक चले गए। तत्पश्चात् श्रीराम ने भाई लक्ष्मण सहित सब को विश्राम करने की आज्ञा दी।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२०)

एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग

श्रीराम का अयोध्या जाने को तैयार होना

उस रात्रि को विश्राम करके जब शत्रु सूदन श्रीराम दूसरे दिन प्रातःकाल सुखपूर्वक जगे तब विभीषण ने हाथ जोड़कर कहा- रघुनन्दन! स्नान के लिए जल, अंगराज, वस्त्र, चंदन आदि आपकी सेवा में उपस्थित हैं। यहाँ शृंगार कला को जानने वाली नारियाँ आपको स्नान कराएंगी। उस समय विभीषण की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- मित्र! तुम सुग्रीव आदि वानरों को स्नान करने के लिए अनुरोध करो। अब भरत, जो मेरे लिए अत्यधिक कष्ट उठा रहे हैं, उनसे मिले बिना मुझे न तो स्नान अच्छा लगता है, न वस्त्र और न आभूषणों का धारण करना। अब तो तुम इस बात की ओर ध्यान दो कि हम किस तरह जल्दी से जल्दी अयोध्यापुरी लौट सकें। क्योंकि वहाँ तक पैदल यात्रा करने वालों के लिए यह मार्ग बहुत दुर्गम है। उनके कहने पर विभीषण बोले- राजकुमार! आप इसके लिए चिंतित न हों। कुबेर से छीना हुआ यह पुष्पक विमान आपको एक दिन में अयोध्यापुरी पहुँचा देगा। श्री रघुनाथ जी! यदि आप मुझे अपना कृपा पात्र समझते हैं तो भाई लक्ष्मण और सीता के सहित कुछ दिन यहीं विराजिए। रघुनंदन! मैं आपको प्रसन्न करना चाहता हूँ। इसलिए आपसे ऐसी विनय कर रहा हूँ। विभीषण के ऐसा कहने पर श्रीराम ने समस्त वानरों और राक्षसों को सुनाते हुए उनसे कहा- वीर! तुमने सब प्रकार की चेष्टाओं द्वारा मेरा सम्मान और पूजन किया है। तुम्हारी प्रार्थना मैं अस्वीकार नहीं कर सकता। किन्तु इस समय

मेरा मन भरत को देखने के लिए उतावला हो रहा है उनके सिवा माता कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, मित्र गुह एवं नगर और जनपद देखने की बड़ी इच्छा हो रही है। विभीषण इस समय तुम मुझे क्रोधित हुए बिना जाने की अनुमति दो। और शीघ्र मेरे लिए पुष्पक विमान को यहाँ मंगवाओ। श्रीराम के ऐसा कहने पर राक्षसराज विभीषण ने बड़ी उतावली से उस सूर्य तुल्य तेजस्वी विमान का आह्वान किया। वह विश्वकर्मा का बनाया हुआ विमान सुमेरु शिखर के समान ऊँचा और मोती, चांदी से सुसज्जित बड़े-बड़े कमरों से विभूषित था। उसका फर्श स्फटिक मणि से जड़ा हुआ था। उसमें नीलम के बहुमूल्य सिंहासन थे जिनपर बहुमूल्य बिस्तर बिछे हुए थे। उसका वेग मन के समान था। तब इच्छानुसार चलने वाले उस विमान को देखकर लक्ष्मण सहित श्रीराम को बड़ा विस्मय हुआ।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२१)

एक सौ बाईसवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा से विभीषण द्वारा वानरों का विशेष सम्मान

फूलों से सजे हुए पुष्पक विमान वहाँ उपस्थित करके विभीषण ने श्रीरघुनाथजी से पूछा- प्रभो! अब मैं आपकी क्या सेवा करूँ? तब श्रीराम लक्ष्मण को सुनाते हुए बोले- विभीषण! इन सारे वानरों ने युद्ध में बड़ा परिश्रम किया है। अतः तुम नाना प्रकार के रत्न और धन आदि से इनका सत्कार करो। इन वानरों के सहयोग से ही तुमने लंका पर विजय पाई है। इस समय ये वानर अपना काम पूरा कर चुके हैं। अतः इन्हें रत्न और धन आदि देकर इस कर्म को सफल करो। तुम कृतज्ञ होकर जब इनका इस प्रकार सम्मान और अभिनन्दन करोगे तब ये वानर यूथपति बहुत संतुष्ट होंगे। श्रीराम की आज्ञा पाकर विभीषण ने उन सब वीरों को रत्न तथा धन देकर सत्कार किया। वानर यूथपतियों को रत्न और धन से पूजित हुआ देख भगवान् श्रीराम, लजाती हुई सीता को अंक में लेकर पराक्रमी बंधु लक्ष्मण के साथ उस उत्तम विमान पर आरूढ़ हुए। विमान पर बैठकर श्रीराम ने सुग्रीव से कहा- वानर श्रेष्ठ वीरों! आपने अपने इस मित्र का कार्य

मित्रोचित रीति से भलीभाँति सम्पन्न किया। अब आप सब अपने अभीष्ट स्थान को चले जायँ। विभीषण! तुम भी लंका में मेरे दिए हुए अपने राज्य पर स्थिर रहो। अब इन्द्र आदि देवता भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इस समय मैं अपने पिता की राजधनी अयोध्या को जाऊँगा। इसके लिए मैं आप सब की अनुमति चाहता हूँ। यह सुनकर विभीषण हाथ जोड़कर कहने लगे- भगवन्! हम भी अयोध्यापुरी को चलना चाहते हैं। वहाँ राज्याभिषेक के समय आपके श्री विग्रह की झाँकी करके, माता कौशल्या के चरणों में मस्तक झुकाकर हम शीघ्र ही अपने घर लौट आएँगे। इस अनुरोध को सुनकर श्री राम ने विभीषण तथा सुग्रीव और अन्य वानरों से कहा- मित्रों! यह तो मेरे लिए प्रिय से भी प्रिय बात होगी। यदि मैं सभी सुहृदों के साथ अयोध्या चल सकूँ तो इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। सुग्रीव! तुम सब वानरों के साथ इस विमान पर आरूढ़ हो जओ। राक्षस राज विभीषण! तुम भी मंत्रियों सहित विमान पर आरूढ़ हो। तब वानरों सहित सुग्रीव और मंत्रियों सहित विभीषण उस पुष्पक विमान पर चढ़ गए। उन सब के चढ़ जाने पर वह विमान श्रीराम की आज्ञा पाकर आकाश को उड़ चला। वे सब वानर और राक्षस उस विमान में बड़े सुख से फैलकर बैठे हुए थे। किसी को किसी से धक्का नहीं खाना पड़ता था।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२२)

एक सौ तेईसवाँ सर्ग

यात्रा करते हुए श्रीराम का सीताजी को मार्ग के स्थान दिखलाना

श्रीराम की आज्ञा पाकर वह हंसयुक्त उत्तम विमान महान् शब्द करता हुआ आकाश में उड़ने लगा। उस समय श्रीराम ने सब ओर दृष्टि डालकर सीता से कहा- विदेहनन्दिनी! त्रिकूट पर्वत पर बसी इस लंकापुरी को देखो। यह कितनी सुन्दर दिखाई पड़ती है। इधर इस युद्ध भूमि को देखो जहाँ वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध हुआ था। सीते! तुम्हारे लिए ही मैंने यहाँ रावण का बध किया। यहीं पर कुंभकर्ण, प्रहस्त, इन्द्रजित् आदि राक्षसों का संहार हुआ। युद्धोन्मत्त कुंभ और निकुंभ, कुंभकर्ण के दोनों पुत्र भी यहीं

मृत्यु को प्राप्त हुए। अकम्पन, शोणिताक्ष आदि महाबली राक्षसों का बध इसी जगह पर हुआ। यहीं रावण की पत्नी मंदोदरी ने अपने पति के लिए विलाप किया था। यह समुद्र का तीर्थ दिखलाई पड़ता है जहाँ समुद्र को पार करने के लिए हम लोगों ने रात बिताई थी। यहीं मेरा बँधवाया हुआ नल सेतु नामक पुल भी है जो तुम्हारे लिए ही बाँधा गया था। यहीं उस सुवर्णमय पर्वत राज हिरण्यनाभ को तो देखो जो हनुमान को विश्राम देने के लिए समुद्र के ऊपर उठ आया था। यह समुद्र के उदर में जो विशाल टापू है यहाँ महादेव जी ने मुझपर कृपा की थी और मेरे द्वारा स्थापित होकर यहीं विराजमान हुए। यह सेतुबंध के नाम से पूजित और विख्यात होगा। यहीं राक्षस राज विभीषण मुझसे आकर मिले थे। सीते! यह विचित्र वन प्रान्त से सुशोभित किष्किंधा दिखाई देती है। यहीं मैंने बाली का बध किया था। यह सुनकर सीता जी ने श्रीराम से कहा- महाराज! मैं सुग्रीव की तारा आदि प्रिय भार्याओं को अपने साथ अयोध्या ले चलना चाहती हूँ। सीता के ऐसा कहने पर किष्किंधा में अपने विमान को रुकवाकर श्रीराम ने सुग्रीव से कहा- वानर श्रेष्ठ! तुम समस्त वानर यूथपतियों से कहो कि वे अपनी स्त्रियों को साथ ले लें। सब सीता के साथ अयोध्या चलें। तुम भी अपनी स्त्रियों को साथ ले लो। तब श्रीराम के कहने पर सुग्रीव ने अन्तःपुर में प्रवेश करके तारा से भेंट की और बोले- तुम सीता को प्रसन्न करने के लिए और श्री रघुनाथ जी की आज्ञा से प्रधान वानरों की स्त्रियों को शीघ्र अपने साथ ले चलने की तैयारी करो। वहाँ आप सभी को अयोध्यापुरी एवं महाराज दशरथ की रानियों के दर्शन कराएंगे। सुग्रीव की बात सुनकर तारा ने समस्त वानर पत्नियों को बुलाकर कहा- सखियों! सुग्रीव की आज्ञानुसार तुम सब अपने पतियों समेत अयोध्या चलने को तैयार हो जाओ। वहाँ पुरी के साथ-साथ हम महाराज दशरथ की समस्त रानियों के भी दर्शन करेंगे। तारा की ऐसी आज्ञा पाकर सभी वानर पत्नियाँ शृंगार करके उस विमान पर चढ़ गईं। फिर ऋष्यमूक पर्वत निकट आने पर श्रीराम ने सीता से कहा- सीते! यह देखो सामने यह ऋष्यमूक पर्वत है। यहीं मैं बानर राज सुग्रीव से मिला था। और यहीं पम्पापुर नामक पुष्करिणी के तट पर मैंने धर्मपरायण शबरी का दर्शन किया था। इधर वह स्थान हैं, जहाँ मैंने कबन्ध नामक

Mookerji sharma (IAS) Jammu Collection

असुर का बध किया था। सीते! जनस्थान में जो यह शोभाशाली वृक्ष दिखलाई पड़ता है यहीं पक्षि-प्रवर जटायु तुम्हारी रक्षा करने के कारण रावण के हाथों से मारे गए थे। यह वह स्थान है जहाँ खर, दूषण और त्रिशिरा मौत के घाट उतारे गए थे। यहीं हमारा आश्रम है, जहाँ से रावण ने तुम्हारा अपहरण किया था। यह महात्मा अगस्त्य का आश्रम है तथा यह महात्मा सुतीक्ष्ण का आश्रम है जहाँ सहस्त्र नेत्रधारी इन्द्र पधारे थे। इस स्थान पर मैंने राक्षस विराध का बध किया था। सीते! उस तापसाश्रम में मुनिवर अत्रि और अनसूया के दर्शन हुए थे। सीते! यह चित्रकूट है जहाँ भरत मुझे लौटाने के लिए आए थे। यह देखो! इस यमुना के तट पर भरद्वाज आश्रम दिखलाई पड़ रहा है। यह गंगा के किनारे शृंगवेरपुर है जहाँ मेरा मित्र गुह रहता है। यह धूप मालाओं से अलंकृत सरयू नदी दिखलाई देती है जिसके तट पर पिता की राजधानी अयोध्यापुरी है। सीते! अब तुम इस पुरी को प्रणाम करो। तत्पश्चात् विभीषण सहित सब राक्षस उछल-उछलकर उस पुरी के दर्शन कर उल्लसित होने लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ तेइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२३)

एक सौ चौबीसवाँ सर्ग

श्रीराम का भरद्वाज आश्रम पर उतरकर मुनियों से मिलना

श्रीरामचन्द्र जी ने चौदहवाँ वर्ष पूरा होने पर पंचमी तिथि को भरद्वाज आश्रम पहुँचकर मुनि भरद्वाज को प्रणाम किया और उनसे पूछा- भगवन्! आपने अयोध्यापुरी के बारे में कुछ सुना है? सब कुशल मंगल तो है। यह सुनकर भरद्वाज मुनि ने मुस्कुराते हुए श्रीराम से कहा- श्रीराम भरत तो आपकी आज्ञा के अधीन चरण पादुका को सामने रखकर सारा कार्य करते हैं। आपके नगर और घर में सब कुशल है। पहले जब आप वन की यात्रा कर रहे थे, उस समय आपने चीरवस्त्र धारण कर रक्खा था। आप राज्य से वंचित किए गए थे। उस समय आपको देखकर मेरे मन में बड़ी करुणा हुई थी। लेकिन इस समय तो आप शत्रु पर विजय पाकर लौटे हैं। इस रूप में आपको. देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। रघुवीर! आपने जनस्थान में

रहकर जो विपुल सुख, दुख उठाए हैं वे सब मुझे मालूम हैं। मारीच का कपट रूप धारण करना, सीता का हरण, कबन्ध का बध, सुग्रीव के साथ मैत्री होना, आपके हाथों से बाली का मारा जाना हनुमान का लंकापुरी दहन, समुद्र पर सेतु का निर्माण तथा रावण का युद्ध में बध होना ये सारी बातें मुझे तप के प्रभाव से ज्ञात हैं। इसके अलावा मेरे प्रवृत्ति नामक शिष्य यहाँ से अयोध्यापुरी जाते रहते हैं। अतः वहाँ का भी सब वृतान्त मुझे मालूम होता रहता है। श्रीराम यहाँ भी मैं आपको एक वर देता हूँ आपकी जो इच्छा हो माँग लें। अब आज मेरा आतिथ्य ग्रहण कर कल सबेरे ही अयोध्या को जाइएगा। तत्पश्चात् श्रीराम ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए ये आशीर्वाद माँगा- भगवन्! यहाँ से अयोध्या जाते समय मार्ग के सब वृक्षों पर समय न होने पर भी फल उत्पन्न हो जाएं और वे सबके सब मधु की धारा टपकानेवाले हों। यह सुनकर भरद्वाज मुनि के बहुत अच्छा कहते ही वहाँ के सारे वृक्षों में फल आ गए और सभी मधु की धारा बहाने लगे। फिर तो सभी वानर उन बहुसंख्यक दिव्य फलों का रुचि अनुसार आस्वादन करने लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२४)

एक सौ पचीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का गुह तथा भरत जी को श्रीराम के आगमन की सूचना देना

श्रीराम ने समस्त वानरों पर दृष्टिपात करने के पश्चात् वानर वीर हनुमान जी से कहा- कपि श्रेष्ठ! तुम शीघ्र ही अयोध्या में जाकर इस बात का पता लगा लो कि राजभवन में सब सकुशल तो हैं न? शृंगवेरपुर में निषाद राज गुह से भी मिलना और मेरी ओर से कुशल पूछना। उस समय मित्र निषाद राज प्रसन्न होकर तुम्हें अयोध्या का मार्ग और भरत का समाचार बताएगा। फिर भरत के पास जाकर तुम मेरी ओर से उनका कुशल पूछना और उन्हें सीता एवं लक्ष्मण सहित मेरे लौटने का समाचार बताना। बलवान् रावण के द्वारा सीता के हरे जाने, सुग्रीव की मैत्री और बाली का

Mookerji sharma (ET-S) Jammu Collection

वध, सीता जी की खोज, रावण का बध आदि का पूरा वृतान्त उन्हें सुना देना। सौम्य! भरत से यह भी कहना कि श्रीराम शत्रुओं को जीतकर वानर राज सुग्रीव तथा अन्य महाबली मित्रों के साथ प्रयाग तक आ पहुँचे हैं। यह बात सुनकर भरत की जैसी मुख मुद्रा हो और उस पर ध्यान रखना तथा भरत का मेरे प्रति जो भाव हो उसे जानने का प्रयत्न करना। हो सकता है बाप दादों का राज्य पा जाने से उनका मन पलट गया हो। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो तो भरत बेखटके समस्त भूमण्डल का राज्य करें और मैं अन्यत्र रहकर तपस्वी जीवन व्यतीत करूँगा। वानरवीर! उनके निश्चय को जानकर तुम इस आश्रम में शीघ्र लौटो। श्रीराम के इस आदेश को सुनकर हनुमान जी शीघ्र अयोध्या की ओर चल दिए और वायु मार्ग से यमुना और गंगा को लाँधकर शृंगवेरपुर जा पहुँचे। फिर गुह से भेंट कर सुन्दरवाणी में बोले - तुम्हारे मित्र श्रीराम, लक्ष्मण और सीता सहित आ रहे हैं। वे प्रयाग में हैं। आज की रात भरद्वाज मुनि के आश्रम में बिता कर कल वे वहाँ से चलेंगे। गुह से इतना कहकर वे बिना कोई सोच विचार के बड़े वेग से आगे को उड़ चले। मार्ग में उन्हें परशुराम तीर्थ, बालुकिनी नदी, वरूथी, गोमती और भयानक सालवन के दर्शन हुए। इस तरह वे दूर तक रास्ता लाँघते नन्दिग्राम के समीपवर्ती खिले हुए वृक्षों के पास जा पहुँचे। अयोध्या से एक कोस की दूरी पर उन्होंने आश्रमवासी भरत को देखा, जो चीर वस्त्र और काला मृग चर्म धारण किए हुए बहुत दुखी और दुर्बल दिखाई देते थे। भाई के वनवास के दुख ने उन्हें बहुत कृश कर दिया था। वे बड़े नियम से रहते और उनका अन्तःकरण शुद्ध था और वे ब्रह्मर्षि की तरह तेजस्वी दिखाई पड़ते थे। रघुनाथ जी के दोनों चरण पादुकाओं को सामने रखकर वे पृथ्वी का शासन करते थे। उनके पास जो मंत्री, सेनापति और पुरोहित रहते थे वे भी गेरुए वस्त्र पहनते थे। तब मनुष्य रूप में आए हुए धर्म की भाँति धर्मज्ञ भरत के पास पहुँचकर हनुमान जी हाथ जोड़कर बोले- देव! आप दण्डकारण्य में चीर वस्त्र और जटा धारण करके रहने वाले जिन श्रीराम के लिए चिंतित हो रहे हैं वे ही अब रावण को मारकर, वैदेही, लक्ष्मण और अपने अन्य महाबली मित्रों के साथ वापस आ रहे हैं। हनुमान जी के ऐसा कहते ही कैकेयी कुमार भरत सहसा आनन्द विभोर हो पृथ्वी पर गिरकर

मूर्च्छित हो गए। तत्पश्चात् बड़े वेग से उठकर हनुमान जी को अपनी भुजाओं में भर लिया और फिर उन्हें आँसुओं से नहलाते हुए बोले-भैया! तुम कोई देवता हो या मनुष्य जो मुझ पर कृपा कर के यहाँ पधारे हो? सौम्य! जो तुमने यह प्रिय संवाद सुनाया है। इसके बदले मैं कौन-सी प्रिय वस्तु तुम्हें प्रदान करूँ? तथापि इसके बदले मैं तुम्हें एक लाख गौयें, सौ उत्तम गाँव और सोलह कुमारी कन्याएँ पत्नीरूप में समर्पित करता हूँ। यह कहकर वे श्रीराम के दर्शन के लिए उत्सुक हो हनुमान जी से शीघ्र दर्शन कराने के लिए अनुरोध करने लगे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड
में एक सौ पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२५)

एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग

हनुमान जी का भरत को श्रीराम के वन सम्बन्धी वृतान्त सुनाना

मेरे स्वामी श्रीराम को वन में गए बहुत वर्ष बीत गए। तब से इतने वर्षों बाद मुझे आज उनकी आनन्द दायिनी चर्चा सुनने को मिली है। सौम्य! अब यह बताओ कि श्रीराम और वानरों का यह मेल-जोल कैसे संभव हुआ। राजकुमार भरत के इस प्रकार पूछने पर हनुमान जी ने वन विषयक सारा वृतान्त उनसे कह सुनाया- प्रभो! आपकी माता के वर के प्रभाव से और पिता की आज्ञा से श्रीराम वन को गए। तदनन्तर चित्रकूट पर्वत पर आकर आपने उनसे राज्य ग्रहण करने का अनुरोध किया था परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। अब जो घटना आगे घटी है आप उसे भी सुन लें। चित्रकूट से चलकर श्रीराम दण्डक वन में गए जो बड़ा ही भयानक था। वहाँ जाते ही उन तीनों के सामने महान् गर्जना करता विराध राक्षस दिखाई दिया। किन्तु वह श्रीराम के हाथों मारा गया। तत्पश्चात् वे शरभंग मुनि के रमणीक आश्रम पर पहुँचे। शरभंग मुनि श्रीराम के सम्मुख ही स्वर्गलोक चले गए। तदनन्तर वे सब मुनियों को प्रणाम कर जन स्थान में आए। वहाँ शूर्पणखा नामक राक्षसी श्रीराम के पास काम भाव लेकर आई तब लक्ष्मण ने उस राक्षसी के नाक कान काट लिए। उस शूर्पणखा के प्रेरणा से भेजे गये चौदह हजार राक्षसों का श्रीराम ने अकेले ही बध किया। इस घटना से दुखी

हो वह राक्षसी लंका में रावण के पास गई। तब रावण ने अपने अनुचर मारीच की सहायता लेकर सीता का हरण कर लिया। उस समय उनकी रक्षा के लिए आए हुए जटायु को भी रावण ने मार गिराया। उस समय एक पर्वत पर रहनेवाले पर्वतों के समान ही विशाल शरीरवाले वानरों ने सीता को लेकर जाते हुए रावण को देखा। तत्पश्चात् रावण ने सीता को ले जाकर अशोक बाटिका में ठहराया और चिकनी-चुपड़ी बातों में उन्हें प्रलोभन देने लगा। लेकिन सीता ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इधर श्रीराम सीता की खोज करते हुए विशाल वन में जा पहुँचे। वहाँ उनकी भेंट कबन्ध नामक राक्षस से हुई। तब कबन्ध का उद्धार कर वे उसी के कहने से ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचकर सुग्रीव से भेंट की। वे अपने भाई बाली के द्वारा राज्य से निष्कासित कर दिए गए थे। अतः उनके भाई बाली को मारकर श्रीराम ने उन्हें किष्किंधा का राजा बना दिया। तब सुग्रीव ने सीता की खोज में दस करोड़ वानर चारों दिशाओं में भेजे। तत्पश्चात् हम लोगों के दक्षिण दिशा में पहुँचने पर जटायु का भाई सम्पाती नामक गीध हमें मिला। उन्होंने हमें बताया कि सीता लंका में रावण के भवन में निवास करती है। तब मैं सौ योजन समुद्र को लाँघकर लंका में अशोक बाटिका में बैठी हुई सीता से मिला। वहाँ पहुँचकर मैंने सीता को पहचान के लिए श्रीराम नाम से अंकित अंगूठी उन्हें दी। साथ ही उनकी ओर से पहचान की तौर पर उनका चूड़ामणि लेकर मैं कृतकृत्य होकर लौट आया। फिर उसे राम को देकर उन्हें सीता का समाचार बताया। तब राम ने सेना को प्रोत्साहन देते हुए लंकापुरी को नष्ट कर डालने का विचार किया। इसके बाद समुद्र पर नल नामक वानर से पुल बँधवाया और सेना सहित सागर के पार जा पहुँचे। वहाँ रावण सहित प्रमुख राक्षसों का बधकर वानरों के साथ पुष्पक विमान द्वारा किष्किंधा आए। अब वे प्रयाग पहुँचकर भरद्वाज मुनि के समीप ठहरे हैं। जिनका दर्शन आप कल पुष्य नक्षत्र के योग में बिना किसी विघ्न बाधा के कर सकेंगे। हनुमान जी की वाणी सुनकर भरत अत्यंत प्रसन्न होकर बोले- आज बहुत दिनों के बाद मेरा मनोरथ सफल हुआ।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२६)

एक सौ सत्ताईसवाँ सर्ग

अयोध्या में श्रीराम के स्वागत की तैयारी

हनुमान जी से इस परमानन्द देनेवाले समाचार को सुनकर भरत ने शत्रुघ्न को हर्ष पूर्वक आज्ञा दी- नगर में सारे देव स्थानों की पूजा बाजों के साथ होनी चाहिए। फिर नगर के सभी लोग राम जी के दर्शन के लिए नगर के बाहर चलें। शत्रुघ्न ने तब भरत की आज्ञा पाकर कई हजार मजदूरों की टोलियाँ बनाकर उन्हें आज्ञा दी- तुम लोग ऊँची नीची भूमियों को समतल कर दो। राज मार्ग पर अधिक भीड़ न हो। इसकी व्यवस्था के लिए सैकड़ों मनुष्य सब ओर लग जाएं। दशरथ की सभी रानियाँ रथों पर सवार हो नन्दिग्राम में आ पहुँची। भरत भाई की चरणपादुकाओं को सिर पर धारण किए हुए शंखों और भेरियों के गंभीर ध्वनि के साथ आगे चले। चीर वस्त्र पहने हुए भरत जी उस समय हर्ष से विभोर हो रहे थे। भरत जी ने जब देखा कि अयोध्यापुरी के सभी नागरिक नन्दिग्राम में आ गए हैं तब उन्होंने हनुमान जी से कहा- वानर वीर! वानरों का स्वभाव बड़ा चंचल होता है इसलिए कहीं अपने उसी गुण के अनुसार राम के आने की झूठी खबर तो नहीं उड़ा दी है। क्योंकि मुझे इस समय न तो राम और न ही वानर दिखाई पड़ रहे हैं। भरत जी की बात सुनकर हनुमान जी बोले- भरद्वाज मुनि की कृपा से रास्ते के सभी वृक्ष सदा फलने फूलने वाले हो गए हैं। उन्हें पाकर वानर अपनी भूख प्यास मिटाने लगे हैं। देवराज इन्द्र ने भी श्रीरामचन्द्र को ऐसा ही वरदान दिया था। किन्तु अब देखिए हर्ष से भरे हुए वानरों का कोलाहल सुनाई पड़ रहा है। मैं समझता हूँ वानर सालवन को आन्दोलित कर रहे हैं। लीजिए यह रहा पुष्पक विमान, इसे विश्वकर्मा ने बनाया है और श्रीराम ने रावण को मारकर उसे प्राप्त किया है। इसी में सीता सहित दोनों रघुवंशी तथा सुग्रीव और विभीषण भी विराजमान हैं। तब हनुमान जी के इतना कहते ही, सभी पुरवासी एक साथ चिल्ला उठे- अहो! वह श्री राम चन्द्र जी आ रहे हैं। उस समय भरत जी श्रीराम को दृष्टि लगाए हाथ जोड़कर खड़े हो गए। उन्होंने दूर से ही अर्घ्यपाद्य आदि से उनका पूजन किया। तब श्रीराम पर दृष्टि पड़ते ही भरत ने विनीत भाव से उन्हें प्रणाम किया। इतने में ही श्रीराम की आज्ञा से वह विमान पृथ्वी पर उतर आया।

उस समय श्रीराम ने भरत जी को विमान पर चढ़ा लिया। वहाँ पहुँचकर भरत ने पुनः उन्हें साष्टाँग प्रणाम किया। और फिर लक्ष्मण का प्रणाम ग्रहण कर उन्होंने सीता जी को प्रणाम किया। उसके बाद भरत ने सभी प्रमुख वानरों का आलिंगन किया और फिर सुग्रीव को गले लगा कर कहा- सुग्रीव! तुम हम चारों के भाई हो। फिर विभीषण को सान्त्वना देते हुए कहा- राक्षस राज! बड़े सौभाग्य की बात है कि आपकी सहायता पाकर श्री रघुनाथ जी ने अत्यंत दुष्कर कार्य पूरा किया है। इस समय शत्रुघ्न ने भी श्रीराम और लक्ष्मण को प्रणाम कर सीता जी के चरणों में शीश झुकाया। तत्पश्चात् माता कौशल्या के पास पहुँचकर फिर सम्पूर्ण माताओं का अभिवादन करते हुए वे राज पुरोहित वसिष्ठ जी के पास आए। उस समय अयोध्या के समस्त नागरिकों ने श्रीराम का स्वागत किया। तत्पश्चात् भरत ने चरण पादुका लेकर श्रीराम को पहनाते हुए कहा- प्रभो! धरोहर के रूप में रखा हुआ आपका यह राज्य मैं आपको सौंप रहा हूँ। आप राज्य का खजाना, कोठार घर और सेना सब कुछ देख लें। आपके प्रताप से ये सारी वस्तुएं पहले से दसगुनी हो गई हैं। तत्पश्चात् वे भरत को गोद में बैठाकर विमान के द्वारा ही सेना सहित उनके आश्रम पर गए। वहाँ सेना सहित भूमि पर उतरकर श्रीराम उस विमान से बोले- विमान राज! मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि तुम अब देव प्रवर कुबेर के पास ही चले जाओ और उन्हीं की सवारी में ही रहो। तब उनकी आज्ञा से विमान वेग पूर्वक कुबेर जी की सेवा में चला गया। तत्पश्चात् श्रीराम ने अपने सखा पुरोहित वसिष्ठ पुत्र सुयज्ञ के पैर छुए और उन्हें सुन्दर आसन पर बैठाकर स्वयं एक दूसरे आसन पर बैठे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२७)

एक सौ अट्ठाईसवाँ सर्ग

भरत का श्रीराम को राज्य लौटाना, श्रीराम की नगर यात्रा

तत्पश्चात् भरत ने मस्तक पर अंजलि बाँधकर अपने बड़े भाई सत्य पराक्रमी श्रीराम से कहा- आपने मेरी माता का सम्मान किया और यह राज्य मुझको दे दिया। जैसे आपने मुझे दिया था उसी तरह मैं फिर आपको

वापस दे रहा हूँ। वीर! जैसे गदहा घोड़े की और कौवा हंस की गति का अनुसरण नहीं कर सकता उसी तरह मैं आपके मार्ग का अनुकरण नहीं कर सकता। रघुनन्दन! अब तो मेरी यही इच्छा है कि जगत् के सब लोग आपका राज्याभिषेक देखें। आप विविध वाद्यों की मधुर ध्वनि तथा कांची और नूपुरों की झंकार सुनकर सोएं और जागें। जब तक नक्षत्र मंडल घूमता है और जब तक पृथ्वी स्थित है तब तक आप इस संसार के स्वामी बने रहें। तब भरत की बात मानकर श्रीराम एक सुन्दर आसन पर विराजमान हुए। तदनन्तर जटा को शोधनकर श्रीराम ने स्नान किया फिर पीताम्बर वस्त्र और आभूषणों की शोभा से प्रकाशित होते हुए वे सिंहासन पर विराजमान हुए। उस समय दशरथ की सभी मनस्विनी रानियों ने स्वयं अपने हाथों से सीता जी का मनोहर श्रृंगार किया। तत्पश्चात् शत्रुघ्न जी की आज्ञा से सुमन्त्र जी एक सर्वांग सुन्दर रथ जोतकर ले आए। उस रथ पर श्रीरामचन्द्र ने सुग्रीव और हनुमान सहित प्रस्थान किया। सीता भी वानर स्त्रियों के साथ नगर देखने गईं। उस समय राजा दशरथ के मंत्री,वसिष्ठ जी को आगे करके श्रीराम चन्द्र के राज्याभिषेक के विषय में आवश्यक विचार करने लगे। तदनन्तर उन्होंने सेवकों से कहा- तुम लोग श्रीराम के अभिषेक केलिए जो आवश्यक करना है वह मंगल कार्य तुरन्त करो। यह आदेश देने के बाद वे सब श्रीराम चन्द्र के दर्शन के लिए नगर के बाहर निकले। जिस रथ पर श्रीराम बैठे थे उसके घोड़ों की लगाम अपने हाथ में ले ली। फिर शत्रुघ्न ने उनके ऊपर छत्र लगाया। लक्ष्मण उन पर चंवर डुला रहे थे। विभीषण उनके बगल में छत्र लिए हुए थे। उस समय देवता आदि उनकी स्तुति कर रहे थे। तत्पश्चात् एक विशाल हाथी पर सवार होकर सुग्रीव चलने लगे और अन्य वानर नौ हाजार हाथियों पर सवार होकर चले। सारे वानरों ने उस समय अपना रूप मनुष्यों जैसा बनाकर रखा था। तब अयोध्यापुरी जाते हुए श्रीराम को देखकर वहाँ के लोगों ने आगे बढ़कर उन्हें बधाई दी। श्रीराम ने बदले में उनका भी अभिनन्दन किया। उस समय नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा की भाँति श्रीराम अपनी दिव्य कांति से प्रकाशित हो रहे थे और रासते में वे अपने मंत्रियों से सुग्रीव की मित्रता, हनुमान जी के अद्भुत पराक्रम की चर्चा करते जा रहे थे। उन्होंने उनसे विभीषण के मिलन का प्रसंग भी

सुनाया। ये बातें करते हुए श्रीराम ने अयोध्यापुरी में प्रवेश किया। तब वहाँ से अपने पिता के रमणीय भवन में गए। तत्पश्चात् अपनी माताओं के चरणों में शीश झुकाते हुए भरत से कहा- भरत ! मेरा जो अशोक वाटिका से घिरा हुआ रत्नों से जड़ित विशाल भवन है वह सुग्रीव को दे दो। यह आज्ञा पाकर भरत सुग्रीव को लेकर उस भवन में चले गए। शत्रुघ्न ने सुग्रीव से कहा- प्रभो ! भगवान् श्रीराम के अभिषेक हेतु जल लैने के लिए अपने दूतों को आज्ञा दें। तब सुग्रीव ने श्रेष्ठ वानरों को चार सोने के घड़े देते हुए कहा- तुम लोग कल प्रातः काल ही चारों समुद्रों के जल से भरे हुए घड़ों के साथ उपस्थित हो। तब वे सब समुद्रों और पांच सौ नदियों से भी सोने के बहुत से कलश भर लाए। उन श्रेष्ठ वानरों के द्वारा लाए हुए जल को लेकर शत्रुघ्न ने श्रीराम के अभिषेक के लिए पुरोहित वसिष्ठ जी तथा अन्य सुहृदों को समर्पित कर दिया। तदनन्तर अन्य पुरोहितों एवं वसिष्ठ जी ने सीता सहित श्रीराम को दिव्य चौकी पर बैठाया और श्रीराम चन्द्र जी का राज्याभिषेक किया। तब समस्त देवताओं ने भी समस्त औषधियों और रसों से श्रीराम का अभिषेक किया। तत्पश्चात् वसिष्ठ जी ने अन्य ब्राह्मणों सहित रत्न जटित मुकुट को श्रीरामचन्द्र के सिर पर रखा। उस समय सफेद छत्र शत्रुघ्न ने लिया और चँवर सुग्रीव ने लिया साथ ही विभीषण ने दूसरा चँवर हाथ में ले लिया। वायु ने इन्द्र की आज्ञानुसार श्रीराम को मोतियों की माला दी। उस समय अप्सराएं नृत्य करने लगीं और समस्त सूखी हुई पृथ्वी फल से लद गई। भगवान् श्रीराम ने उस समय ब्राह्मणों को एक लाख घोड़े, उतनी ही गौवें तथा सौ साड़ और तीस करोड़ अशर्फियाँ दान में दीं और उन्होंने सुग्रीव को मणियों की एक दिव्य माला भेंट की। फिर अंगद को दो बाजू बंद भेंट किए फिर उस मुक्ताहार को जिसे वायु देवता ने भेंट किया था उसे श्रीराम ने सीता के गले में डाल दिया। तब सीता ने उस हार को हनुमान जी को भेंट कर देने का विचार किया। उस समय श्रीराम ने उनकी भावना को समझकर कहा- भामिनी ! तुम जिस पर संतुष्ट हो उसे यह हार दे दो। तब सीता ने उस हार को वायुपुत्र हनुमान को दे दिया। उस हार को पहनकर हनुमान जी उसी प्रकार शोभित होने लगे जैसे श्वेत बद्दलों की माला से कोई पर्वत सुशोभित हो। फिर अन्य श्रेष्ठ वानरों को भी आभूषणों द्वारा यथायोग्य

सम्मान किया गया। इस प्रकार श्रीराम से सत्कार पाकर सभी वानर अपने-अपने नगरों को चले गए। महायशस्वी विभीषण भी सभी निशाचरों के साथ लंकापुरी लौटे। तदनन्तर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- धर्मज्ञ लक्ष्मण! इस भूमण्डल के राज्य पर तुम भी मेरे साथ प्रतिष्ठित होकर युवराज पद पर स्थित हो। किन्तु लक्ष्मण ने उस पद को स्वीकार नहीं किया। तब श्रीराम ने भरत को युवराज पद पर अभिषिक्त किया। श्रीराम ने राज्य पाकर ग्यारह सहस्त्र वर्षों तक उसका पालन किया तथा सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया। श्रीराम के शासन काल में कभी विधवाओं का विलाप नहीं सुनाई पड़ता था। कहीं दुष्ट जंतुओं का भय नहीं था और न कहीं रोगों की आशंका थी। कोई अनर्थकारी कार्यों में हाथ नहीं डालता था और प्रजावर्ग में केवल राम, राम, राम की ही चर्चा होती थी। ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र लोभ रहित होकर अपने-अपने कार्यों में लगे रहते थे। यह आदि काव्य रामायण जो महर्षि वाल्मीकि द्वारा निर्मित है धर्म, यश तथा आयु की वृद्धि करनेवाला है तथा राजाओं को विजय देने वाला है। राज्याभिषेक के इस प्रसंग को सुनकर पुत्र के इच्छुक मनुष्य को पुत्र और धन के इच्छुक मनुष्य को धन की प्राप्ति होती है। इस विजय कथा रूप सम्पूर्ण रामायण को सुनकर मुनष्य दीर्घ आयु प्राप्त करता है। इसके सुनने से समस्त देवता श्रोताओं पर प्रसन्न होते हैं और उनके विघ्नकारी ग्रह नष्ट हो जाते हैं। रजस्वला स्त्रियाँ इसे सुनकर श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म देती हैं। जो नित्य इस सम्पूर्ण रामायण का श्रवण एवं पाठ करता है उस पर विष्णु स्वरूप श्रीराम सदा प्रसन्न रहते हैं। रामायण को हृदय में धारण करने और सुनने से सब देवता सन्तुष्ट होते हैं और पितरों को भी सदा तृप्ति मिलती है। जो भक्तिभाव रखकर इस रामायण संहिता को लिखते हैं उनका स्वर्ग में निवास होता है। वह इस भूतल पर अपने सभी मनोरथों को प्राप्त कर लेता है। अतः संमृद्धि की इच्छा रखते हुए सत्पुरुषों को इस इतिहास का नियमपूर्वक श्रवण करना चाहिए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के युद्धकाण्ड में एक सौ अट्ठाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२८)

युद्धकाण्ड समाप्त

उत्तरकाण्ड

पहला सर्ग

श्रीराम के दरबार में महर्षियों का आगमन

राक्षसों का संहार करने के बाद जब भगवान् श्रीराम ने अपना राज्य प्राप्त कर लिया उस समय सम्पूर्ण ऋषि, महर्षि श्रीरघुनाथ जी का अभिनन्दन करने के लिए अयोध्यापुरी में आए। पूर्व दिशा में निवास करने वाले नृषंगु, कवष, धौम्य एवं कौशेय आदि अपने शिष्यों के साथ वहाँ उपस्थित हुए। इसी तरह उत्तर दिशा में नित्य निवास करनेवाले वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम और जमदग्नि तथा भरद्वाज मुनि पधारे। ये सभी मुनिगण श्री रघुनाथ जी के राज्य भवन में पहुँचकर अपने आगमन की सूचना देने के लिए ड्योढ़ी पर खड़े हो गए। तत्पश्चात् द्वारपाल से सूचना मिलने पर श्री रामचन्द्र बोले- तुम जाकर उन लोगों को आदरपूर्वक यहाँ ले आओ। उनके आने पर श्रीरामचन्द्र हाथ जोड़कर खड़े हो गए और शुद्धभाव से प्रणाम कर उन्हें बैठने के लिए आसन दिए। तत्पश्चात् श्रीराम ने शिष्यों और गुरुजनों सहित उन सबका कुशल समाचार पूछा। इतना पूछने पर उन महर्षियों ने कहा- हमारे लिए तो सर्वत्र कुशल ही कुशल है। आपने सम्पूर्ण लोगों की रुलाने वाले रावण का बध किया यह सब के लिए सौभाग्य की बात है। इस समय आप लोगों को हम सकुशल देख रहे हैं यह कितने आनन्द की बात है। आप के भाई लक्ष्मण भी आपके हित में लगे रहने वाले हैं। अब इस सब के साथ ही आप यहाँ सानन्द विराज रहे हैं यह हमारा अहोभाग्य है। प्रहस्त, विकट, विरुपाक्ष , कुंभकर्ण, त्रिशिरा, देवान्त, नरान्तक सभी को आपने समरांगण में मार गिराया। ये समस्त राक्षस अस्त्र शस्त्र के पारंगत विद्वान थे। परन्तु अपने अन्तक तुल्य बाणों से इन सबको मौत के घाट उतार दिया। राक्षस राज रावण देवताओं के लिए अवध्य था।

उसके साथ द्वन्द्व युद्ध में आप उतर आए और आपको विजय भी मिली। इस युद्ध में आपके द्वारा रावण का पराभव हुआ यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। बड़ी बात तो यह हुई कि द्वन्द्व युद्ध में लक्ष्मण के हाथों इन्द्रजित् का बध हुआ। श्रीराम! ये तथा और भी बहुत से इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस आपके द्वारा मारे गए। यह बड़े आनन्द की बात है। अब संसार को अभयदान प्रदान कर आप बधाई के पात्र हो गए। मुनियों की बात सुनकर श्रीराम को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हाथ जोड़कर पूछने लगे- महर्षियों! निशाचर रावण तथा कुंभकर्ण दोनों ही महान् बल और पराक्रम से सम्पन्न थे। इन दोनों को छोड़कर आप इन्द्रजित् की प्रशंसा क्यों करते हैं? अन्य दुर्धर्ष वीरों को छोड़कर आप इन्द्रजित् की ही प्रशंसा क्यों करते हैं? उसमें कौन-सा बल और पराक्रम था और वह किस कारण से रावण से बढ़कर सिद्ध होता है? यदि यह गोपनीय न हो तो मैं इसे सुनना चाहता हूँ। आप लोग बताने की कृपा करें। यह मेरी आज्ञा नहीं बल्कि अनुरोध है। मुनीश्वर वह राक्षस इन्द्रजित् पिता से अधिक शक्तिशाली और इन्द्र पर भी विजय प्राप्त करने वाला कैसे हो गया? कृपाकर के आज ये सारी बातें आप मुझे बताएँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में पहला सर्ग पूरा हुआ। (१)

दूसरा सर्ग

महर्षि अगस्त्य के द्वारा पुलस्त्य के गुण और तपस्या का वर्णन

श्रीराम का यह प्रश्न सुनकर अगस्त्य जी ने कहा- श्रीराम! इन्द्रजित् कैसे इतना बली हुआ इसका वर्णन करने से पहले मैं आपको रावण के कुल, जन्म तथा वरदान प्राप्ति आदि का प्रसंग सुनाता हूँ। प्राचीन काल में ब्रह्माजी के पुलस्त्य नामक एक बहुत ही तेजस्वी पुत्र हुए। ब्रह्माजी के पुत्र होने के नाते देवता उनसे बड़ा प्रेम करते थे। एक बार पुलस्त्य राजर्षि तृणबिन्दु के आश्रम में गए और वहीं रहकर वेदों का स्वाध्याय और तपस्या करने लगे। परन्तु कुछ कन्याएं उनके आश्रम में जाकर उनकी तपस्या में विघ्न डालने लगीं। वे प्रतिदिन वहाँ जाकर गातीं, बजाती और नाचती

थीं। इससे महातेजस्वी पुलस्त्य मुनि कुछ रुष्ट होकर बोले- कल से जो कन्या मेरे दृष्टिपथ में आएगी, वह निश्चय ही गर्भधारण कर लेगी। उनकी बात सुनकर उन कन्याओं ने भयभीत होकर उस स्थान पर आना छोड़ दिया। लेकिन तृण बिन्दु की पुत्री ने इस शाप को नहीं सुना था इसलिए वह बेखटके उनके आश्रम में आकर विचरने लगी। पर वहाँ उसने अपने किसी सखी को आई हुई नहीं देखा। उस समय पुलस्त्य जी वेदों का स्वाध्याय कर रहे थे। उस वेद ध्वनि को सुनकर कन्या उसी ओर चली गई और पुल्स्तय जी का दर्शन किया। किन्तु महर्षि का दर्शन करते ही उसके शरीर पर पीला पन छा गया और गर्भ के लक्षण प्रकट हो गए। तब अपनी कन्या को इस अवस्था में देखकर तृण बिन्दु ने पूछा- तुम्हारे शरीर की ऐसी दशा कैसे हुई। तुम शरीर को जिस रूप में धारण कर रही हो यह तुम्हारे लिए अनुचित है। उस समय कन्या हाथ जोड़कर बोली- पिताजी! मैं उस कारण को समझ नहीं पाती जिससे मेरा रूप ऐसा हो गया है। अभी कुछ देर पहले मैं पुलस्त्य के दिव्य आश्रम पर अपनी सखियों को खोजने के लिए अकेली गई थी। लेकिन मुझे वहाँ अपनी कोई सखी नहीं दिखाई पड़ी। यह देखकर मैं भयभीत होकर यहाँ चली आई। तब तृण बिन्दु को अपनी तपस्या से सब कुछ ज्ञात हो गया। यह समझ लेने पर वे तुरन्त अपनी पुत्री के साथ पुलस्त्य जी के पास गए और बोले- महर्षे! मेरी यह कन्या स्वयं अपने गुणों से ही विभूषित है। अतः आप इसे भिक्षा के रूप में ग्रहण कर लें। जब आप तपस्या से थक जाएं तब यह आपकी सेवा करेगी। महर्षि ने बहुत अच्छा कहकर उसे स्वीकार कर लिया। तब वह कन्या भी अपने गुणों से उन्हें संतुष्ट करते हुए उन्हीं के आश्रम में रहने लगी। इससे प्रसन्न होकर एक दिन मुनि पुलस्त्य ने उससे कहा- सुन्दरी! तुमसे प्रसन्न होकर आज मैं तुम्हें अपने ही समान एक पुत्र प्रदान करता हूँ जो माता-पिता के कुल की प्रतिष्ठा बढ़ाएगा और पौलस्त्य नाम से विख्यात होगा। मैं जिस समय वेद का स्वाध्याय कर रहा था उस समय तुमने आकर उसका विशेष रूप सेश्रवण किया था। तुम्हारा वह पुत्र विश्रवा अथवा विश्रवण कहलाएगा। फिर उसने थोड़े ही दिन में एक श्रेष्ठ पुत्र को जन्म दिया जो विश्रवा के नाम से विख्यात होकर पिता के

Mookerji Shastri (J.S) Jammu Collection

समान ही तपस्वी हुआ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में दूसरा सर्ग पूरा हुआ। (२)

तीसरा सर्ग

विश्रवा से वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति

पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा थोड़े ही समय में पिता की भाँति तपस्या में मग्न हो गए। मुनिवर विश्रवा के उत्तम आचरण कोदेखकर महामुनि भरद्वाज ने अपनी कन्या का विवाह उनके साथ कर दिया। तत्पश्चात् उनके गर्भ से महामुनि विश्रवा ने एक अद्भुत् और पराक्रमी पुत्र पैदा किया। उस समय पुलस्त्य मुनि ने अपने दिव्य दृष्टि से जान लिया कि यह बालक आगे चलकर धन का स्वामी होगा। तब प्रसन्न होकर उन्होंने विश्रवा के पुत्र होने के कारण उस बालक का नाम वैश्रवण रखा। महात्मा वैश्रवण ने बड़े होने पर सहस्त्रों वर्षों तक कठोर तपस्या की। तब उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माजी उनसे वर मांगने के लिए कहा। उस समय वैश्रवण ने कहा- मैं लोकहित करने के विचार से लोकपाल होना चाहता हूँ। तब ब्रह्माजी बोले- बेटा! मैं तुम्हें यह लोकपाल का पद प्रदान करते हुए अक्षय निधियों का स्वामी बनाता हूँ। यह सूर्य तुल्य पुष्पक विमान है इसे भी तुम अपने सवारी के लिए ग्रहण करो। ऐसा कहकर ब्रह्माजी चले गए। तब वैश्रवण मुनि ने हाथ जोड़कर अपने पिता से कहा- भगवन्! मैंने ब्रह्मा जी से मनोवांछित फल प्राप्त कर लिया है किन्तु उन्होंने मेरे लिए कोई निवास स्थान नहीं बताया है। अब मेरे लिए आप ही किसी स्थान की खोज कीजिए। तब विश्रवा मुनि बोले- धर्मज्ञ! दक्षिण समुद्र तट पर एक त्रिकूट नाम का पर्वत है। उसके शिखर पर एक विशाल पुरी है। बेटा! तुम निःसंदेह वहाँ जाकर रह सकते हो। यद्यपि विश्वकर्मा ने उसे राक्षसों के लिए बनाया था किन्तु विष्णु के भय से राक्षस उसे त्यागकर चले गए। पिता की आज्ञा प्राप्त कर धर्मात्मा वैश्रवण त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बनी लंकापुरी में निवास करने लगे। उनके निवास करने के थोड़े ही दिनों बाद वह पुरी सहस्त्रों हृष्ट-पुष्ट राक्षसों से भर गई। उनकी आज्ञा से वे राक्षस वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगे।

वैश्रवण भी राक्षसों के राजा हो बड़ी प्रसन्नता के साथ वहाँ रहने लगे और कभी-कभी पुष्पक विमान के द्वारा आकर अपने माता-पिता से मिल जाया करते।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में तीसरा सर्ग पूरा हुआ। (३)

चौथा सर्ग

राक्षस वंश का वर्णन

अगस्त्य जी की कही हुई बात को सुनकर श्रीराम को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने मन ही मन सोचा- राक्षस कुल की उत्पत्ति तो मुनिवर विश्रवा से मानी जाती है। यदि उनसे भी पहले लंकापुरी में राक्षस रहते थे तो उनकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई। यह सोचकर उन्होंने अगस्त्य जी से पूछा- भगवन् कुबेर और रावण से पहले भी यह लंकापुरी राक्षसों के अधिकार में थी। यह बात मुझे बहुत आश्चर्यजनक लग रही है। हमने तो यही सुन रखा था कि राक्षसों की उत्पत्ति पुलस्त्य जी से हुई। तब ये दूसरे राक्षस कहाँ से आ गए? क्या ये राक्षस रावण, कुंभकर्ण आदि से ज्यादा बलवान् थे? उन्हें भगवान् विष्णु ने किस अपराध में लंकापुरी से मार भगाया। उस समय श्री रघुनाथ जी की बात सुनकर अगस्त्य मुनि ने कहा- रघुनन्दन! जल से प्रकट हुए कमल से उत्पन्न हुए बह्माजी ने पूर्वकाल में समुद्रगत जल की सृष्टि करके उसकी रक्षा हेतु अनेक प्रकार के जल जंतुओं को उत्पन्न किया। तब भूख प्यास से पीड़ित हो वे जन्तु ब्रह्माजी के पास जाकर बोले- अब हम क्या करें? उस समय ब्रह्माजी ने उनसे मुस्कराते हुए कहा- जल जन्तुओं! तुम यत्नपूर्वक इस जल की रक्षा करो। यह सुनकर उनमें से कुछ ने कहा- हम इस जल की रक्षा करेंगे और कुछ ने कहा- हम इसका यक्षण (पूजन) करेंगे। यह सुनकर ब्रह्माजी बोले- तुममें से जिन लोगों ने रक्षा करने की बात कही है वे राक्षस हों और जिन्होंने यक्षण करना स्वीकार किया है वे यक्ष के नाम से विख्यात हों। तब से वे जीव राक्षस और यक्ष दो जातियों में बँट गए। उन राक्षसों में हेति और प्रहेति नामक दो भाई थे। उनमें प्रहेति धर्मात्मा था, अतः तत्काल तपोवन में जाकर तपस्या करने लगा। परन्तु हेति

ने विवाह के लिए प्रयत्न किया। तब उसका विवाह काल की कुमारी बहन भया से कर दिया गया। भया के गर्भ से विधुवकेश नामक राक्षस का जन्म हुआ। विद्युत्केश के बड़े होने पर हेति ने उसका विवाह कर देने का निश्चय किया। इसके लिए उसने संध्या की पुत्री सालकटङ्कटा का वरण किया। तदनन्तर उसने मन्दराचल पर जाकर एक कांतिमान बालक को जन्म दिया। लेकिन वह अपने बेटे को भुलाकर पति के साथ रमण करने लगी। उधर उसका छोड़ा हुआ पुत्र मेघ की गंभीर गर्जना के समान शब्द करने लगा। फिर अपनी मुट्ठी मुँह में डालकर धीरे-धीरे रोने लगा। उस समय भगवान शंकर पार्वती के साथ वायुमार्ग से जा रहे थे। उन्हें उस बालक के रोने की आवाज सुनाई दी। तब उसकी दयनीय स्थिति को देखकर माता पार्वती के हृदय में बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। यह देखकर भगवान शंकर ने उस बालक को माता की अवस्था के समान ही नौ जवान बना दिया। श्री राम! तत्पश्चात् पार्वती जी ने यह वरदान दिया कि आज से ये राक्षसियां जल्दी ही गर्भ धारण करेंगी। फिर शीघ्र उसका प्रसव करेंगी और उनका पैदा किया हुआ बालक तत्काल माता के ही समान अवस्था का हो जाएगा। विद्युत्केश का वह पुत्र सुकेश नाम से प्रसिद्ध शंकर जी से प्राप्त आकाशचारी विमान प्राप्त कर सुखपूर्वक सर्वत्र विचरने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में चौथा सर्ग पूरा हुआ। (४)

पाँचवाँ सर्ग

सुकेश के पुत्र माल्यवान्, सुमाली और माली का वर्णन

अगस्त्य जी बोले- श्रीराम! तत्पश्चात् एक दिन ग्रामणी नामक गंधर्व ने राक्षस सुकेश से अपनी देववती नामक कन्या का विवाह कर दिया। तदनन्तर समय आने पर सुकेश ने देववती के गर्भ से तीन अग्नियों के समान पुत्र उत्पन्न किए। इनके नाम थे। माल्यवान् सुमाली और माली। बड़े होने पर जब उन्हें मालूम हुआ कि हमारे पिता को तपोबल के द्वारा वरदान एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति हुई है तो वे तीनों भाई मेरू पर्वत पर चले गए और भयंकर नियमों का पालन करते हुए कठोरतप करने लगे। उनकी वह

तपस्या समस्त प्राणियों को भय देने वाली थी। तब एक दिन भगवान ब्रह्मा उनके पास आए और बोले- मैं तुम्हें वर देने आया हूँ। उस समय ब्रह्माजी को आया देख वे सब बोले- देव यदि आप हमारे तप से संतुष्ट होकर वर देना चाहते हैं तो ऐसी कृपा कीजिए, जिससे हमें कोई परास्त न कर सके हम शत्रुओं का बध करने में समर्थ हों तथा हम लोगों का परस्पर प्रेम भी बना रहे। यह सुनकर ब्रह्माजी बोले- तुम सब ऐसे हो जाओगे। श्रीराम! तब इस वर को पाकर वे सब देवताओं और असुरों को बड़ा कष्ट देने लगे। फिर एक दिन वे विश्वकर्मा के पास पहुँचकर बोले- आप हमारे लिए भी हिमालय, मेरू अथवा मंदराचल पर चलकर एक विशाल निवास स्थान का निर्माण कीजिए। यह सुनकर विश्वकर्मा ने उन राक्षसों को एक ऐसे निवास स्थान का पता बताया जो त्रिकूट पर्वत पर लंकापुरी के नाम से बसा था। फिर कहा- वीरो! लंका के दुर्ग का आश्रय लेकर बहुत से राक्षसों के साथ जब तुम वहाँ निवास करोगे उस समय शत्रुओं के लिए तुम पर विजय पाना कठिन होगा। तब विश्वकर्मा की बात सुनकर वे राक्षस सहस्त्रों अनुचरों के साथ उस पुरी में आकर बस गए। श्रीराम इन्हीं दिनों नर्मदा नामक एक गंधर्वी थी। उसके तीन कन्याएं थीं। उसने उनका विवाह सुकेश के तीनों पुत्रों के साथ कर दिया। उनमें माल्यवान् की स्त्री का नाम सुन्दरी था। माल्यवा्न ने उसके गर्भ से जिन सन्तानों को जन्म दिया उन्हें बता रहा हूँ सुनिए। वे थे बज्रमुष्टि, विरुपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त। इधर निशाचर सुमाली की पत्नी केतुमती भी बड़ी सुन्दरी थी। उसने भी जो सन्तानें उत्पन्न कीं उनके नाम हैं- प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस, भासकर्ण। इनके सिवा राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी और कुंभीनसी पवित्र मुस्कान वाली उसकी चार कन्याएं थीं। माली की पत्नी वसुदा थी। प्रभो! माली ने जो संतानें पैदा कीं उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, आप सुनिए। अनल, अनिल, हर और सम्पाति- ये चार निशाचर माली के ही पुत्र थे जो विभीषण के मंत्री हैं। तब माल्यवान् आदि तीनों श्रेष्ठ राक्षस अपने बाहुबल अभिमान से युक्त हो इन्द्र आदि देवताओं, ऋषियों, नागों तथा यक्षों को पीड़ा देने

लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में पाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५)

छठा सर्ग

देवताओं का भगवान शंकर की सलाह से राक्षसों के बध के लिए भगवान् विष्णु की शरण में जाना

अगस्त्य जी बोले- रघुनन्दन! तब राक्षसों से पीड़ित हो समस्त देवता भगवान् शंकर की शरण में जाकर बोले- भगवन्! ब्रह्माजी के वरदान से उन्मत्त हुए सुकेश के पुत्रों ने अपनी साधना के द्वारा समस्त प्रजा को पीड़ित कर रखा है। हमारे निवासों को उजाड़ डाला है तथा स्वर्ग पर अधिकार जमा लिया है। माली, सुमाली और माल्यवान् ये तीनों राक्षस कहते हैं कि वे ही विष्णु हैं, वे ही रुद्र हैं और वे ही ब्रह्मा हैं। उनके सैनिक हमें बड़ा कष्ट दे रहे हैं। अतः आप उनका संहार कीजिए। तब सुकेश के प्रति घनिष्टता रखने के कारण भगवान् शंकर उनसे बोले- देवगण! मैंने सुकेश के जीवन की रक्षा की है। ये असुर उनके ही पुत्र हैं। अतः मैं इनका वध नहीं करूँगा। तुम इसके लिए तत्काल भगवान् विष्णु के पास जाओ। वे अवश्य उनका नाश करेंगे। तब उन देवताओं ने भगवान् विष्णु के पास जाकर अपनी मुसीबत कह सुनाई। फिर बोले- मधुसूदन! अब आप उन असुरों का बध करके हमारा हित करें। इस समय आपके सिवा ऐसा कोई नहीं दिखाई देता जो हमें अभयदान दे सके। देवताओं का कष्ट सुनकर भगवान् विष्णु उन्हें अभय प्रदान करते हुए बोले- देवताओं! मैं सुकेश नामक राक्षस को जानता हूँ। मैं उनके पुत्रों को भी जानता हूँ। वे अभिमान से उन्मत्त हो उठे हैं। अतः मैं क्रोधपूर्वक उनका विनाश करूँगा। तुम लोग इसके लिए निश्चिंत हो जाओ। तब देवतागण इस आश्वासन से प्रसन्न हो अपने-अपने घरों को चले गए। उस समय माल्यवान् को जब इसका पता चला तब उसने अपने वीर भाइयों से कहा- सुनने में आया है कि देवतागण हमसे भयभीत होकर हमारे विनाश हेतु भगवान शंकर के पास गए थे। तब शंकर जी ने उनसे कहा सुकेश के पुत्र उनके हाथों द्वारा

रण भूमि में मारे जाने योग्य नहीं हैं। अतः इस कार्य के लिए तुम लोग पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु की शरण में जाओ। तब उन नारायण देव ने भयभीत हुए देवताओं से कहा- मैं उन देवद्रोहियों का शीघ्र विनाश कर डालूँगा। अतः तुम लोग निर्भय हो जाओ। राक्षस शिरोमणियो ! इस प्रकार श्रीहरि ने हमें मारने की प्रतिज्ञा की है। अतः हम सब को भी अपने कर्तव्य पर विचार कर लेना चाहिए। हिरण्यकशिपु, कालनेमि, शुम्भ, निशुंभ आदि सभी उनके हाथों मारे गए। यद्यपि उन सबने सैकड़ों यज्ञ किए थे और हर प्रकार की माया जानते थे। तथापि उन नारायण देव को जीतना बड़ा दुष्कर कार्य है। माल्यवान् की यह बात सुनकर उसकेभाइयों ने कहा- राक्षस राज ! हम लोगों ने स्वाध्याय, दान और यज्ञ किए हैं। हमें रोग व्याधि से रहित आयु भी प्राप्त हुई है। अतः हमें मृत्यु से कोई भय नहीं। नारायण, इन्द्र, रुद्र और यमराज सभी मेरे सामने आने से डरते हैं। विष्णु के मन में हमारे प्रति जो द्वेष भावना अत्पन्न हुई है वह देवताओं के चुगली खाने से हुई है। अतः हम सब लोग एकत्र हो एक दूसरे की रक्षा करते हुए साथ-साथ चलें और देवताओं का बध कर डालने की चेष्टा करें। तब ऐसा विचार कर उन राक्षसों ने विभिन्न वाहनों पर सवार होकर युद्ध के लिए कूच कर दिया। उस समय काल की प्रेरणा से पृथ्वी और आकाश में अनेक भयंकर उत्पात प्रकट होने लगे जो राक्षसों के विनाश की सूचना दे रहे थे। फिर भी बल के घमण्ड में मतवाले हुए राक्षसों ने, जो काल के पाश में बँध चुके थे, इसकी कोईपरवाहन की और युद्ध के लिए चलते ही गए और लौटे नहीं। राक्षसों की वह सेना महान मेघों की गर्जना के समान कोलाहल करती हुई विजय पाने की इच्छा से देवलोक की ओर बढ़ती जा रही थी। तब देवताओं के दूतों से सारी बातें सुनकर भगवान् नारायण ने भी युद्ध करने का विचार किया। उन्होंने सहस्त्रों सूर्य के समान दीप्तिमान दिव्य कवच धारण किया फिर बाणों से भरा तरकस लिए हुए गरुड़ पर सवार हो गए। इसके अलावा भी उन्होंने सायकों से परिपूर्ण दो चमचमाते हुए तूणीर भी बाँध रखे थे। इस तरह तैयार होकर वे उन राक्षसों का संहार करने के लिए तुरन्त चल पड़े। उस समय समस्त सिद्ध, देवर्षि, गन्धर्व आदि उनके गुण गाने लगे। तत्पश्चात् शत्रु सेना के निकट पहुँचने पर गरुड़ के पंखों के तीव्र वायु के

झोंकों को खाकर वह सेना क्षुब्ध हो उठी। उसके सैनिकों के रथों की पताकाएं चक्कर खाने लगीं और सब के हाथों से अस्त्र-शस्त्र गिर गए। तब वे सहस्रों निशाचर भी लक्ष्मीपति को चारों ओर से घेर कर उन पर चोट करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में छठा सर्ग पूरा हुआ। (६)

सातवाँ सर्ग

भगवान् विष्णु द्वारा राक्षसों का संहार

अगस्त्य जी फिर बोले- भगवान् विष्णु का श्री विग्रह उज्ज्वल श्याम वर्ण से सुशोभित था और वे निशाचर नीले रंग के दिखाई देते थे। अतः उस समय उनके द्वारा भगवान् विष्णु पर की जानेवाली अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा से ऐसा लग रहा था जैसे अंजन गिरी को चारों ओर से घेर कर मेघ उन पर जल की धारा वर्षा रहे हों। लेकिन उनके द्वारा चलाए हुए तीर भगवान् विष्णु के शरीर में प्रवेश करके उसी प्रकार लीन हो जाते थे जैसे प्रलय काल में समस्त लोक उन्हीं में प्रवेश कर जाते हैं। इस युद्ध में राक्षसों की सेना आकाश में ही खड़ी थी। उस समय जैसे मछली महासागर पर प्रहार करे उसी प्रकार वे निशाचर अस्त्र-शस्त्रों द्वारा श्री हरि पर चोट करते। लेकिन भगवान् विष्णु द्वारा पूर्व रूप से खींचकर छोड़े गए बाणों ने सैकड़ों और हजारों निशाचरों के टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर जैसे शरभ से सिंह, सिंह से हाथी, हाथी से बाघ और बाघ से चीता, चीता से कुत्ते और कुत्ते से बिलाव। बिलाव से साँप और साँप से चूहे डरकर भागते हैं वैसे ही वे सब राक्षस प्रभावशाली विष्णु की मार खा-खाकर लंका की ओर भागने लगे। जब नारायण के बाणों से आहत हुई राक्षस सेना भागने लगी तब सुमाली ने रण-भूमि में बाणों की वर्षा करके उन हरि को आगे बढ़ने से रोका। यह देखकर राक्षसों ने पुनः धैर्य धारण करते हुए भगवान् विष्णु पर वेग पूर्वक आक्रमण किया तब भगवान् ने अपने बाणों द्वारा सुमाली के सारथि का मस्तक काट डाला। इससे रथ के घोड़े बे-लगाम होकर इधर-उधर चक्कर काटने लगे। उन घोड़ों के चक्कर काटने से राक्षस राज

सुमाली भी चक्कर काटने लगा। सुमाली को इस तरह भटकते देखकर माली भी युद्ध के लिए उद्यत हो उठा और धनुष लेकर गरुड़ की ओर धावा किया तथा महाबाहु विष्णु पर भी आक्रमण कर दिया। किन्तु भगवान् विष्णु माली के छोड़े हुए बाणों से जरा भी विक्षुब्ध नहीं हुए और अपनी धनुष की टंकार करके माली के ऊपर बाण समूहों की वर्षा आरम्भ कर दी। फिर उस राक्षस के मुकुट, ध्वज और धनुष को काटकर घोड़ों को भी मार गिराया। तत्पश्चात् रथहीन होकर माली छलांग मारकर नीचे आ गया और गरुड़ को अपनी गदा से गहरी चोट पहुँचाई। इससे गरुड़ वेदना से व्याकुल हो गये और युद्ध से स्वयं भी विमुख होकर भगवान् विष्णु को भी विमुख-सा कर दिया। तब विष्णु ने माली के बध की इच्छा से पीछे की ओर मुड़कर अपना सुदर्शन चक्र चलाया और माली के मस्तक को काट गिराया। इससे देवताओं को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे भगवान् को साधुवाद देते हुए अपनी सारी शक्ति से सिंहनाद करने लगे। माली को मारा गया देखकर माल्यवान् और सुमाली शंकित होकर लंका की ओर भागे। इसी बीच गरुड़ की पीड़ा कुछ कम होने पर वे भी अपने पंखों से राक्षसों को खदेड़ने लगे। तब बहुत से राक्षसों के शीश चक्र के प्रहार से कट गए और बहुतेरे बाणों से पीड़ित हो आकाश से समुद्र में आ गिरे। उस समय राक्षसों की जो सेना उन्मत्त-सी प्रतीत होती थी वह सेना भगवान् विष्णु के बाण समूहों से आवृत्त होकर अपने सायकों का परित्याग कर भाग निकली। शेष वहाँ बचे हुए राक्षस चक्र और तलवार से धराशायी होने लगे। वहाँ इस तरह धराशायी हुए वे राक्षस नील पर्वतों के समान दिखाई पड़ते थे। उनसे वहाँ का भू भाग इस तरह आच्छादित हो गया कि कहीं तिल रखने की जगह नहीं दिखाई देती थी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७)

आठवाँ सर्ग

माल्यवान् की पराजय तथा सुमाली का रसातल प्रवेश

अगस्त्य जी बोले- श्रीराम! भगवान् विष्णु ने जब राक्षसों की सेना

को पीछे से मारना आरम्भ किया तब माल्यवान् अपने नेत्रों को क्रोध से लाल करता हुआ बोला- नारायण देव! लगता है आप छात्र धर्म को बिलकुल भूल गए तभी तो युद्ध से रित हुए तथा डरकर भागते हुए राक्षसों को भी मार रहे हैं। सुरेश्वर! जो युद्ध से विमुख हुए सैनिकों के बध का पाप करता है उसे स्वर्ग नहीं मिल पाता। अब मैं खड़ा हूँ। देखता हूँ कि आप में कितना बल है। दिखलाओ आप में कितनी शक्ति है? यह सुनकर भगवान् विष्णु ने कहा- देवताओं में तुम लोगों से बड़ा भय उत्पन्न हुआ है। मैंने राक्षसों के संहार की प्रतिज्ञा कर उन्हें अभयदान दिया है। और इस रूप में मैंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया है। इसलिए यदि तुम लोग भागकर रसातल में भी चले जाओ तो भी मैं तुम लोगों का बध किए बिना नहीं छोड़ूँगा। यह सुनकर माल्यवान् ने अपनी शक्ति के प्रहार से भगवान् विष्णु का वक्षःस्थल विदीर्ण कर डाला। तब भगवान् विष्णु ने उसी शक्ति को अपनी छाती से निकालकर माल्यवान् पर दे मारा। उनके इस प्रहार से माल्यवान् का कवच कट गया और वह गहरी मूर्छा में डूब गया। किन्तु जल्दी ही सम्भल कर काँटों से जड़े हुए शूल को हाथ में लेकर भगवान् की छाती पर गहरा आघात किया। उस समय आकाश में राक्षसों का हर्षनाद गूँज उठा। वे एक साथ बोल उठे- बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। तब इस तरह भगवान् विष्णु को घायल कर उसने गरुड़ पर भी प्रहार किया। किन्तु गरुड़ ने अपने पंखों की हवा से उस राक्षस को उसी तरह उड़ा दिया जैसे प्रबल आँधी सूखे पत्तों के ढेर को उड़ा देती है। तब अपने भाई को इस तरह हवा में उड़ा हुआ देखकर सुमाली अपने सैनिकों के साथ लंका की ओर चला गया। उस समय माल्यवान् भी लज्जित होकर अपनी सेना में जा मिला। अब भगवान् विष्णु से किसी भी प्रकार सामना न कर सकने के कारण वे सब निशाचर लंका छोड़कर अपनी स्त्रियों के साथ पाताल में रहने के लिए चले गए और वहाँ राक्षस सुमाली का आश्रय लेकर रहने लगे। श्रीराम! आपने पुलस्त्य वंशी जिन-जिन राक्षसों का विनाश किया है उनकी अपेक्षा प्राचीन राक्षसों का पराक्रम अधिक था। भगवान् विष्णु के अलावा उन राक्षसों का बध करने के लिए और कोई समर्थ भी न था। आप भी सनातन देव भगवान् नारायण ही हैं और राक्षसों के बध हेतु ही यहाँ अवतीर्ण हुए हैं। नरेश्वर! इस प्रकार

मैंने राक्षसों की उत्पत्ति की पूरी कथा आपको सुना दी है। अब आप रावण तथा उसके पुत्रों के जन्म की सारी कथा सुनिए। उस समय राक्षसों के पाताल चले जाने पर धनाध्यक्ष कुबेर ने लंका को अपना निवास स्थान बनाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८)

नवाँ सर्ग

रावण आदि का जन्म

कुछ काल पश्चात् राक्षस सुमाली अपनी सुन्दरी कन्या को साथ लेकर रसातल से निकला और मर्त्यलोक में सब ओर विचरने लगा। उस समय भूतल पर विचरते हुए उसने कुबेर को देखा जो पुष्पक विमान द्वारा अपने पिता विश्रवा के दर्शन हेतु जा रहे थे। सुमाली उस समय सोचने लगा क्या करने से हम राक्षसों का भला होगा? तब इस पर कुछ देर विचार करने के बाद वह अपनी कन्या कैकशी से बोला- बेटी! अब तुम विवाह योग्य हो गयी हो। किन्तु मुझे इस समय इस बात की चिंता अधिक सता रही है कि तुम्हारे लिए क़िस प्रकार के पुरुष का वरण किया जाए? बेटी मेरे विचार से तुम प्रजापति के कुल में उत्पन्न पुलस्तनंदन विश्रवा का स्वयं चलकर पति के रूप में वरण करो और उनकी सेवा में रहो। पुत्री! ऐसा करने से निश्चय ही तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे जैसे ये धनेश्वर कुबेर हैं। पिता की ऐसी आज्ञा पाकर कैकसी उस स्थान पर गई जहाँ मुनिवर विश्रवा तपस्या कर रहे थे। फिर वहाँ पहुँचकर वह मस्तक झुकाते हुए उनके सामने चुपचाप खड़ी हो गई और बारम्बार धरती पर रेखा खींचने लगी। यह देखकर उन परम उदार महर्षि ने पूछा- भद्रे! तुम किसकी कन्या हो? तुम यहाँ क्यों आई हो? मुझसे तुम्हारा क्या काम है? उनकी यह बात सुनकर कन्या ने हाथ जोड़कर कहा- मुने! मैं पिता की आज्ञा से आपकी सेवा में आई हूँ। बाकी बातें आप अपने प्रभाव से स्वयं जान लें। मेरे मुख से न कहलाएं। यह सुनकर मुनि कुछ काल तक ध्यान लगाने के बाद बोले- भद्रे! तुम्हारे मन का भाव मुझे मालूम हो गया है। तुम मुझसे पुत्र पाना चाहती

हो। किन्तु तुम ऐसी बेला में आई हो जब मैं सायं काल का अग्निहोत्र कर रहा था इसलिए तुम्हारे जो पुत्र होंगे वे क्रूर स्वभाव वाले तथा शरीर से भी भयंकर होंगे। तुम क्रूरता पूर्ण कर्म करनेवाले राक्षसों को ही पैदा करोगी। मुनि का यह वचन सुनकर कैकसी उनके चरणों पर गिर पड़ी और बोली- मुझे ऐसे दुराचारी पुत्रों के पाने की अभिलाषा नहीं है। आप मुझ पर कृपा करें। तब मुनि विश्रवा पुनः बोले- तुम्हारा जो सब से छोटा एवं अंतिम पुत्र होगा वह मेरे वंश के अनुरूप धर्मात्मा होगा। तत्पश्चात् कैकसी ने कुछ काल के अनन्तर अत्यंत भयानक और क्रूक स्वभाव वाले एक राक्षस को जन्म दिया। जिसके दस मस्तक, बड़ी-बड़ी दाढ़ी, ताँबे जैसे ओंठ,बीस भुजाएं, विशाल मुख और चमकीले केश थे। उसका रंग कोयले जैसा था। उसके पैदा होते ही मुँह में अंगार लिएं गीदड़ियाँ एवं मांस भक्षी गिद्ध आदि दायीं ओर मण्डलाकार घूमने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य अशुभ लक्षण भी प्रकट हुए। उस रावण के दस ग्रीवाओं को देखकर विश्रवा ने उसका नाम दशग्रीव रक्खा। उसके बाद कुंभकर्ण का जन्म हुआ और तत्पश्चात् शूर्पणखा का जन्म हुआ। फिर सब से अंत में विभीषण जन्में जो कैकसी के अंतिम पुत्र थे और जिनके पैदा होते ही अंतरिक्ष से साधु-साधु की ध्वनि सुनाई देने लगी। इधर कुंभकर्ण बहुत उन्मत्त निकला। वह भोजन से कभी तृप्त नहीं होता था। वह तीनों लोकों में घूम-घूमकर धर्मात्मा महर्षियों को खाता फिरता था। किन्तु विभीषण बचपन से ही धार्मिक थे। वे नियमित आहार करते हुए इन्द्रियों को काबू में रखते थे। इसके कुछ दिन बाद ही वैश्रवण (कुबेर) पुनः पुष्पक विमान में चढ़कर अपने पिता के दर्शन के लिए निकले। तब उन्हें देख कैकसी अपने पुत्र दशग्रीव के पास आई और बोली-ऐसा कोई यत्न करो जिससे वैश्रवण की भाँति तेज और वैभव से सम्पन्न हो जाओ। माँ की बात सुनकर दशग्रीव बोला- माँ! तुम चिंता छोड़ो। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने पराक्रम से शीघ्र ही वैश्रवण के समान या उनसे भी बढ़कर हो जाऊँगा। तदनन्तर उसने मन में विचार किया। मैं अपना मनोरथ तपस्या द्वारा ही पूर्ण कर सकूँगा। यह सोचकर वह गोकर्ण के पवित्र आश्रम पर जाकर अनुपम तपस्या करने लगा। फिर उस तपस्या से संतुष्ट हो ब्रह्मा जी ने उसे विजय

दिलाने वाले वरदान दिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९)

दसवाँ सर्ग

रावण आदि की तपस्या और वर प्राप्ति

इतना सुनकर श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से पूछा- ब्रह्मन्! उन तीनों भाइयों ने वन में किस प्रकार, कैसी तपस्या की? महर्षि ने कहा- रघुनंदन! उन तीनों भाइयों ने वहाँ पृथक्-पृथक् धर्म विधियों का अनुष्ठान किया। कुंभकर्ण ने ग्रीष्म ऋतु में पंचाग्नि तपाकर, वर्षा ऋतु में मूसलाधार वृष्टि में खड़े होकर और शरद ऋतु में पानी में बैठकर दस हजार वर्षों तक तपस्या की। धर्म में प्रवृत्ति रखनेवाले विभीषण ने पांच हजार वर्षों तक एक पाँव से खड़े रह कर तथा दूसरे पाँच हजार वर्षों तक दोनों हाथ उठाकर सूर्य की आराधना की। रावण ने दस हजार वर्षों तक उपवास करके तपस्या की। एक हजार वर्ष बीतने पर वह अपना सिर काटकर अग्नि में होम कर देता। दस हजार वर्ष बीतने पर जब वह अपना दसवाँ सिर अग्नि में होम करने को प्रस्तुत हुआ तो ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा- दशग्रीव! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। धर्मज्ञ! तुम्हारे मन में जिस वर को पाने की इच्छा हो- उसे शीघ्र माँगो। यह सुनकर दशग्रीव बोला- भगवन्! प्राणियों के लिए मृत्यु के सिवा दूसरा कोई शत्रु नहीं इसलिए मैं अमर होना चाहता हूँ। यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले- तुम्हें सर्वथा अमरत्व नहीं मिल सकता। इसलिए दूसरा कोई वर माँगो। तब दशग्रीव ने फिर हाथ जोड़कर कहा- प्रजापते! मैं गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के लिए अवध्य हो जाऊँ। क्योंकि इनके अतिरिक्त मैं अन्य प्राणियों को तिनके के समान तुच्छ समझाता हूँ। तब ब्रह्मा जी ने कहा- राक्षस प्रवर! तुम्हारा यह वचन सत्य होगा। इसके अलावा मैं तुम्हें यह भी वर देता हूँ कि तुमने पहले जिन-जिन मस्तकों का हवन किया है वे सब तुम्हारे लिए फिर पूर्ववत् प्रकट हो जाएंगे। इसके साथ मैं एक दुर्लभ वर और दे रहा हूँ- तुम अपने मन से जब जैसा रूप धारण करना चाहोगे उस समय तुम्हारा वैसा ही रूप हो जाएगा। ब्रह्मा के इतना

कहते ही राक्षस दशग्रीव के वे मस्तक जो उसने पहले आग में होम कर दिए थे पूर्ववत् प्रकट हो गए। तत्पश्चात् ब्रह्मा जी विभीषण से बोले-धर्मात्मन्! अब तुम भी कोई वर माँगो। यह सुनकर विभीषण बोले- यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो वही मेरे लिए सब कुछ है। फिर भी यदि आप प्रसन्न होकर कुछ देना चाहते हैं तो सुनिए- बड़ी से बड़ी आपत्ति पड़ने पर भी मेरी बुद्धि धर्म में ही लगी रहे और बिना सीखे ही मुझे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाए। बह्मा जी बोले- वत्स! तुम धर्म में स्थित रहने वाले हो-इसलिए जो कुछ चाहते हो सब पूरा होगा। मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करता हूँ। तत्पश्चात् ब्रह्मा जी जब कुंभकर्ण को वर देने को उद्यत हुए तब देवता हाथ जोड़कर बोले- प्रभो! आप कुंभकर्ण को वरदान न दीजिए क्योंकि आप जानते हैं कि यह दुर्बुद्धि निशाचर किस तरह लोकों को त्रास देता है। यह अब तक ऋषि और मनुष्यों के समेत कितने ही अन्य प्राणियों को खा चुका है। यदि इसे वर प्राप्त हुआ तो यह तीनों लोकों को खा जाएगा। तब प्रजापति ने सरस्वती को बुलाकर कहा- वाणि! तुम कुंभकर्ण की जिह्वा पर विराजमान होकर देवताओं के अनुकूल वाणी के रूप में प्रकट हो। यह सुनकर सरस्वती कुंभकर्ण के मुख में समा गई। तत्पश्चात् ब्रह्मा जी के पूछने पर कुंभकर्ण ने कहा- देव! मेरी इच्छा है कि मैं अनेकानेक वर्षों तक सोता रहूँ। ऐसा ही हो, कहकर ब्रह्माजी देवताओं के साथ चले गए। सरस्वती जी ने भी उस राक्षस को छोड़ दिया। सरस्वती के हटते ही जब दुष्ट कुंभकर्ण को चेत हुआ तब वह पछताता हुआ बोला- अहो, आज मेरे मुख से ऐसी बात क्यों निकल गई? लगता है सारे देवताओं ने ही मुझे मोह में डाल दिया था। इस प्रकार वे तीनों भाई वर पाकर श्लेष्मातक वन में चले गए और वहाँ सुख पूर्वक रहने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०)

ग्यारहवाँ सर्ग

पिता के आदेश से कुबेर का लंका छोड़ना

रावण आदि राक्षसों को वर प्राप्त हुआ है यह जानकर सुमाली नामक

राक्षस अपने अनुचरों सहित भय छोड़कर रसातल से निकला। उसके साथ ही मारीच, प्रहस्त, विरुपाक्ष और महोदर अपने चार मंत्रियों सहित रसातल से ऊपर आये। वे सब के सब रोषावेश में भरे थे। तत्पश्चात् वे सब दशग्रीव के पास आकर और उसे छाती से लगाकर बोले- महाबाहो! जिसके कारण हम लंका छोड़कर रसातल में चले गए थे उन भगवान् विष्णु से प्राप्त होने वाला भय अब हमसे सदा के लिए दूर हो गया। यह लंका नगरी, जिसमें आपके भाई कुबेर रहा करते हैं, पहले हमारी थी। अब यदि साम, दाम अथवा बल प्रयोग द्वारा इसे पुनः वापस लिया जा सके तो हम लोगों का काम बन जाए। साथ ही हम तुम्हें लंका का राजा बनाएंगे इसमें संदेह नहीं। यह सुनकर रावण अपने नाना से बोला- कुबेर तो मेरे बड़े भाई हैं। अतः आपको उनके बारे में मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। रावण का यह कोरा जवाब सुनकर वह राक्षस चुप हो गया। तदनन्तर कुछ समय बाद प्रहस्त ने उसे समझाया- दशग्रीव! आप मेरी एक बात सुनें- प्रजापति कश्यप की दो पत्नियां- दित और अदिति, दोनों सगी बहनें हैं। अदिति ने देवताओं को जन्म दिया जो इस समय त्रिभुवन के स्वामी हैं और दिति ने दैत्यों को जन्म दिया। धर्मज्ञ! पहले वन, पर्वत और समुद्रों सहित यह सारी पृथ्वी दैत्यों के अधिकार में ही थी। किन्तु भगवान् विष्णु ने युद्ध में दैत्यों को मारकर त्रिलोकी का यह अक्षय राज्य देवताओं को दे दिया। इसलिए ऐसा विपरीत आचरण आप ही नहीं करेंगे? देवताओं और असुरों ने भी पहले इसी नीति से काम लिया है। तब रावण प्रसन्न होकर बोला- बहुत अच्छा तुम लोग जैसा कहोगे वैसा ही करूँगा। फिर उसी दिन वह निशाचरों के साथ लंका के निकटवर्ती वन में गया और प्रहस्त को अपना दूत बनाकर कहा- प्रहस्त! तुम जाकर कुबेर से कहो- राजन्! यह लंकापुरी राक्षसों की है अतः आप यह लंकापुरी हमें लौटा दें। तब प्रहस्त ने लंकापुरी में पहुँचकर कुबेर से कहा- महाप्राज्ञ धनेश्वर! आपके भाई दशग्रीव ने मुझे आपके पास भेजा है और कहलाया है कि यह रमणीय लंकापुरी पहले भयानक पराक्रमी सुमाली आदि राक्षसों के अधिकार में रही है। अतः उन्होंने कहलाया है कि यह लंका जिनकी वस्तु है उनहें लौटा दी जाए। प्रहस्त के मुख से यह बात सुनकर वैश्रवण ने उत्तर दिया- राक्षस!

जिस समय यह लंका राक्षसों से सूनी थी उस समय मेरे पिता ने मुझे यहाँ बसाया। फिर भी तुम जाकर रावण से कहो कि यह पुरी और यह निष्कंटक राज्य जो कुछ भी मेरे पास है तुम्हारा है। तुम आकर इसका उपभोग करो। मेरा यह सारा राज्य और धन तुमसे बँटा हुआ नहीं है। इतना कहकर कुबेर अपने पिता विश्रवा मुनि के पास गये और उनसे रावण का संदेश कह सुनाया और पूछा- पिताजी! अब मुझे क्या करना चाहिए? कृपा करके बताएं। तब विश्रवा मुनि ने कहा- बेटा! दशग्रीव ने मेरे निकट ऐसी ही बात कही थी। किन्तु मैंने तब उसे फटकारते हुए कहा- अरे! ऐसा करने से तेरा पतन हो जाएगा। किन्तु इसका कुछ फल नहीं हुआ। बेटा! इस समय रावण वर पाकर मदमस्त हो उठा है। इसलिए महाबाहो! अब तुम ही लंका छोड़कर अपने अनुचरों सहित कैलाश पर्वत पर चले जाओ और वहाँ रहने के लिए दूसरा नगर बसाओ। वहाँ नदियों में श्रेष्ठ मन्दाकिनी नदी बहती है। इसलिए तुम वहीं जाओ क्योंकि उस राक्षस के साथ तुम्हारा वैर करना उचित नहीं। तब कुबेर पिता का मान रखते हुए लंका से कैलाश को चले गए। उस समय प्रहस्त दशग्रीव के पास जाकर बोला- लंका खाली हो गई है। कुबेर उसे छोड़कर चले गए हैं। अब आप हम लोगों के साथ उसमें प्रवेश करके अपने धर्म का पालन कीजिए। तब रावण ने उस लंकापुरी में प्रवेश करके अपना राज्याभिषेक करवाया और फिर देखते ही देखते समूची लंका राक्षसों से पूर्णतः भर गई। उधर कुबेर ने पिता की आज्ञा से कैलाश पर्वत पर अपने लिए शोभाशाली अलकापुरी नगरी बसाई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११)

बारहवाँ सर्ग

शूर्पणखा तथा रावण आदि का विवाह

अगस्त्य जी कहने लगे- अपना अभिषेक हो जाने पर रावण अपने भाइयों के साथ लंकापुरी में रहने लगा। तब से अपनी बहन शूपर्णखा के ब्याह की चिंता हो गई। तत्पश्चात् उसने कालका का पुत्र विद्युज्जिह्व से अपनी बहन शूर्पणखा ब्याह दी। फिर बहन का ब्याह करके राक्षस रावण

एक दिन स्वयं शिकार खेलने के लिए वन में गया। वहाँ उसकी भेंट दिति के पुत्र मय से हुई। उसके साथ एक सुन्दर कन्या भी थी। उसे देखकर रावण ने पूछा- आप कौन हैं? और इस तरह अपनी कन्या के साथ यहाँ किसलिए भ्रमण कर रहे हैं। तब निशाचर मय बोला- सुनो, मैं आपको अपना वृतान्त यथार्थरूप से बता रहा हूँ। तात्! स्वर्ग में हेमा नामक अप्सरा को देवताओं ने मुझे अर्पित कर दिया था। मैं उसके साथ एक सहस्र वर्षों तक घूमता रहा। किन्तु एक दिन वह देवताओं के कार्य से स्वर्ग चली गई। मैंने उसके लिए माया से एक नगर का निर्माण किया था जो पूर्णतः सोने का बना है। मैं अब उसी के वियोग से दुखी होकर अपनी कन्या को साथ लेकर इस वन में आया हूँ। राजन्! अब मैं इस पुत्री के लिए योग्य पति पाना चाहता हूँ। तात्! हेमा के गर्भ से दो पुत्र भी हुए जिसमें पहले पुत्र का नाम मायावी और दूसरे का नाम दुन्दुभि है। तात! मैंने तुम्हें अपना परिचय दे दिया है अब मैं तुम्हारे बारे में जानना चाहता हूँ। उस समय रावण विनीत भाव से बोला- मैं पुलस्त्य पुत्र विश्रवा का बेटा हूँ। मेरा नाम दशग्रीव है। तब रावण की बात सुनकर दैत्यराज मय अपनी बेटी का हाथ रावण के हाथ में देता हुआ बोला- राजन्! यह मेरी बेटी मन्दोदरी है। तुम इसे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करो। उस समय रावण ने मयासुर की बात मान ली और अग्नि को प्रज्वलित कर मन्दोदरी का पाणिग्रहण किया। तत्पश्चात् मयासुर ने रावण को उत्कृष्ट तपस्या से प्राप्त एक शक्ति भी प्रदान की जिसके द्वारा रावण ने लक्ष्मण को घायल भी किया था। इसके बाद लंकापुरी में लौटकर उसने बलि की दौहित्री बज्र ज्वाला को कुंभकर्ण की पत्नी एवं गंधर्व राज शैलूष की कन्या सरमा को विभीषण की पत्नी बनाया। इस प्रकार वे तीनों राक्षस विवाहित हो कर लंका में सुख पूर्वक रमण करने लगे। तदनन्तर मन्दोदरी ने मेघनाद को जन्म दिया जो इन्द्रजित् के नाम से जाना जाता है। रावण का वह पुत्र पैदा होते ही रोते-रोते मेघ के समान गंभीर नाद किया था इसलिए उसका नाम मेघनाद रखा गया। कालान्तर में वह माता-पिता को हर्ष प्रदान करता हुआ अग्नि के समान बढ़ने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१२)

तेरहवाँ सर्ग

रावण का अत्याचार करना

अगस्त्य जी ने आगे बताया- श्रीराम ! तत्पश्चात् कुछ काल बाद ब्रह्मा जी की भेजी हुई निद्रा, जंभाई आदि के रूप में मूर्तिमती हो कुंभकर्ण के भीतर तीव्र वेग से प्रकट हुई। तब कुंभकर्ण रावण से बोला- भैया ! मुझे नींद सता रही है। अतः मेरे लिए शयन करने योग्य घर बनवा दें। यह सुनकर रावण ने सुयोग्य शिल्पियों को बुलाकर कुंभकर्ण के लिए एक सुखद और मनोहर शयनागार बनवा दिया। तब कुंभकर्ण निद्रा के वशीभूत हो कई हजार वर्षों तक उसमें सोता रहा। कुंभकर्ण के सो जाने पर रावण उच्छृंखल हो ऋषियों, गंधर्वों और यक्षों के समूह को पीड़ा देने लगा। यही नहीं वह नदियों में हाथी की भाँति क्रीड़ा करता हुआ उनकी धाराओं को छिन्न-भिन्न कर देता। वृक्षों को झकझोर कर उखाड़ फेंकता और पर्वतों को बज्र की भाँति तोड़-फोड़ देता। तब भाई के नाते कुबेर ने एक दूत भेजकर उसे समझाना चाहा। दूत पहले विभीषण से मिला। फिर विभीषण ने राजसभा में बैठे हुए रावण से मिलाया। तब वह दूत रावण की जय-जयकार करता हुआ बोला- वीर महाराज ! आपके भाई कुबेर ने कहलाया है कि दशग्रीव ! तुमने अब तक जो कुकृत्य किये हैं, इतना ही बहुत है। अब तुम्हें सदाचार अनुशरण करते हुए धर्म के मार्ग पर स्थित रहना चाहिए। तुम्हारे द्वारा बहुत से ऋषियों का बध हुआ इसलिए तुमसे इसका बदला लेने के लिए देवताओं का विचार विमर्ष आरम्भ हो गया है। राक्षस राज ! तुमने हमें लंका से निकाल दिया है पर बालक अपराध भी करें तो भी बान्धव उसकी रक्षा करते हैं। एक बार मैं धर्म का अनुष्ठान करने के लिए हिमालय पर गया था। वहाँ इन्द्रियों को वश में करके मैंने कठोर रौद्र व्रत धारण किया। तब मुझे वहाँ उमा-सहित भगवान् महादेव जी का दर्शन हुआ। उस समय यह जानने के लिए कि ये कौन हैं मैंने उन पर अपनी दायीं दृष्टि डाली। उस समय देवी रुद्राणी अनुपम रूप धारण करके वहाँ खड़ी थीं। देवी के दिव्य प्रभाव से उस समय मेरी बायीं आँख जल गई और दूसरी भी धूल से भर गई। तदनन्तर मैंने पर्वत के दूसरे विस्तृत तट पर जाकर चार सौ वर्षों तक मौन भाव से उस महान् व्रत को धारण किया। तब महादेव जी ने प्रकट होकर मुझसे कहा- धनेश्वर ! मैं तुम्हारी तपस्या से

बहुत प्रसन्न हूँ। अनघ! तुमने इस समय तप से मुझे जीत लिया है। अतः तुम मेरे मित्र बनकर रहो। इस प्रकार भगवान् शंकर का मित्र बनकर जब मैं लौटा तब तुम्हारे पापपूर्ण कर्मों की बात सुनी। इसलिए अब तुम अपने पाप कर्म से हट जाओ। क्योंकि देवता तुम्हारे बध का उपाय सोच रहे हैं। यह सुनकर रावण क्रोध से दांत पीसता हुआ बोला- दूत! मैंने तेरा अभिप्राय समझ लिया है। अब न तो तू जीवित रह सकता है, न मेरा भाई ही, जिसने तुझे यहाँ भेजा है। कुबेर मेरे बड़े भाई हैं अतः उनका बध करना उचित न समझकर अब तक मैंने उन्हें छोड़ रखा था। लेकिन अब मैंने निश्चय किया है कि अपने बाहुबल से तीनों लोकों को जीतूँगा। मैं इसी मुहूर्त में एक-एक करके चारों लोक पालों को यमलोक पहुँचाऊँगा। ऐसा कह रावण ने तलवार से उस दूत के दो टुकड़े कर डाले और उसे राक्षसों को खाने के लिए दे दिया। तत्पश्चात् रावण तीनों लोकों पर विजय पाने की इच्छा से स्वस्तिवाचन करके रथ पर चढ़ा और उस स्थान पर गया जहाँ धनपति कुबेर रहते थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में तेरहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१३)

चौदहवाँ सर्ग

मंत्रियों सहित रावण का यक्षों पर आक्रमण

अगस्त्य जी बोले- रघुनन्दन! तत्पश्चात् अभिमानी रावण महोदर, प्रहस्त, मारीच, शुक, सारण तथा धूम्राक्ष को लेकर लंका से निकला और दो घड़ी में कैलाश पर्वत पर जा पहुँचा। अपने भाई को युद्ध के लिए आया देखकर कुबेर ने भी यक्षों को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। तदनन्तर यक्ष और राक्षसों में घनघोर युद्ध छिड़ गया। उस समय रावण का एक- एक सचिव हजार-हजार यक्षों से युद्ध करने लगा। लेकिन यक्षों ने भी अपने पराक्रम से शत्रु सेना का वेग रोक दिया। तब रावण ने कालखण्ड के समान भयंकर गदा उठाकर यक्षों की सेना में प्रवेश कर उन्हें यमलोक पहुँचाना आरम्भ किया। फिर महोदर और शुक आदि भी यक्षों को मारने लगे। तब उनकी संख्या कम होते देख कुबेर ने दूसरे महाबली यक्षराजों को युद्ध के लिए भेजा। इसी समय कुबेर का भेजा हुआ संयोध कंटक नामक यक्ष भी बहुत बड़ी सेना के साथ

वहाँ आ पहुँचा। उसने आते ही विष्णु की भाँति चक्र से रणभूमि में मारीच पर प्रहार किया। इससे दो घड़ी तकमूर्च्छितहोने के बाद पुनः होश में आने पर वह राक्षस पुनः युद्ध करने लगा। उससे वह यक्ष भाग खड़ा हुआ। तब रावण ने कुबेरपुरी के फाटक में प्रवेश किया। वहाँ सूर्यभानु नामक द्वार पाल ने उसे अंदर जाने से रोक दिया किन्तु रावण इससे न रुका और भीतर घुस गया। तब द्वारपाल ने फाटक में लगे एक खम्भे को उखाड़कर दशग्रीव के ऊपर दे मारा। इससे उसके शरीर से रक्त की धारा बह चली किन्तु ब्रह्मा जी के वरदान के प्रभाव से उस यक्ष के द्वारा मारा न जा सका। तब रावण ने उस खम्भे को लेकर उस यक्ष पर प्रहार किया इससे उस यक्ष का शरीर चूर-चूर हो गया। फिर तो रावण के पराक्रम देख सभी यक्ष भाग निकले।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१४)

पन्द्रहवाँ सर्ग

कुबेर की पराजय

अगस्त्य जी ने कहा- श्रीराम! हजारों यक्षों को भयभीत होकर भागते हुए देखकर कुबेर ने तब माणिभद्र नामक एक महायक्ष से कहा- मेरा भाई रावण, पापात्मा एवं दुराचारी है। अतः तुम उसे मार डालो। महाबाहु माणिभद्र दुर्जय वीर थे। वे चार हजार यक्षों की सेना लेकर फाटक पर गए और राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। उस समय राक्षसों और यक्षों के उस तुमुल युद्ध को देखकर सभी देवता, गंधर्व, ऋषि आश्चर्य में पड़ गए। उस रणभूमि में प्रहस्त ने एक हजार यक्षों का संहार कर डाला। फिर महोदर ने दूसरे एकसहस्रों यक्षों का विनाश किया। मारीच ने कुपित हो दो हजार यक्षों को धराशायी किया। इसी समय धूम्राक्ष ने आकर माणिभद्र की छाती में मूसल का प्रहार किया। किन्तु माणिभद्र इससे विचलित न होकर एक गदा घुमाकर धूम्राक्ष के मस्तक पर दे मारी। इससे धूम्राक्ष धरती पर गिर पड़ा। तब यह देखकर रावण ने माणिभद्र पर धावा किया। उस समय दशानन् को क्रोध में भरा देखकर माणिभद्र ने उसके ऊपर तीन शक्तियों द्वारा प्रहार किया। चोट खाकर रावण ने माणिभद्र के मुकुट पर वार किया। तब इस प्रहार को माणिभद्र

Mookerji sharma (IPS) Jammu Collection

न सह सके और वे युद्ध से भाग गये। इसी समय गदाधारी कुबेर आ पहुँचे। उसके साथ मंत्री भी थे। अब रावण के पास पहुँचकर कुबेर ने कहा- दुर्बुद्धि दशग्रीव ! तुम मेरे समझाने पर भी नहीं समझ रहे हो। जब तुम इस कुकर्म का फल पाकर नरक में पड़ोगे तब मेरी बात समझ में आएगी। यह शरीर क्षण भंगुर है। इसे पाकर जो तप का उपार्जन नहीं करता उसे दुष्कर्मों का फल मिलता है। संसार में पुरुषों को समृद्धि, सुंदर रूप, बल और वैभव आदि की प्राप्ति पुण्य कर्मों के अनुष्ठान से ही होती है। तुम्हारी बुद्धि इस समय पापासक्त हो रही है। अतः शास्त्रों के निर्णय के अनुसार कि दुराचारियों से बात नहीं करनी चाहिए, मैं तुमसे कोई बात नहीं करूँगा। इसी तरह रावण के मंत्रियों से भी कहकर उन्होंने उन पर शस्त्रों द्वारा प्रहार आरम्भ किया। इससे मारीच आदि राक्षस तो आहत होकर भाग निकले। लेकिन रावण आहत होकर भी अपने स्थान से विचलित नहीं हुआ और भाई से युद्ध करता हुआ उसने माया का आश्रय लेकर अपने लाखों रूप धारण कर लिये। फिर दशग्रीव ने एक बहुत बड़ी गदा अपने हाथ में ली और उसे कुबेर के मस्तक पर दे मारी। इस प्रहार से कुबेर रक्त से नहा उठे और कटे हुए वृक्ष की भाँति पृथ्वी पर गिर पड़े। तब देवता उन्हें उठाकर नन्दनवन ले गए और उन्हें वहां चेत कराया। अब रावण ने प्रसन्न होकर उनके पुष्पक विमान को भी अपने अधिकार में कर लिया। वह देवताओं का ही वाहन था और कभी टूटने फूटने वाला नहीं था। इसका निर्माण ब्रह्मा (विश्वकार्म) द्वारा हुआ था। वह सब प्रकार की मनोवांछित वस्तुओं को देनेवाला था। अतः अपने पराक्रम से जीते हुए उस इच्छानुसार चलने वाले विमान पर आरूढ़ हो राजा रावण अहंकार की अधिकता से ऐसा मानने लगा कि मैंने तीनों लोकों को जीत लिया है। इस प्रकार वैश्रवण को परास्त कर रावण कैलाश से नीचे उतरा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में पन्द्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१५)

सोलहवाँ सर्ग

नन्दीश्वर का रावण को शाप देना

अगस्त्य जी बोले- श्रीराम! अपने भाई को जीतकर रावण शरवण

नामक विशाल सरकन्डों के वन में गया। जहाँ महासेन कार्तिकेय की उत्पत्ति हुई थी। उसके पास ही कोई पर्वत था। श्रीराम! जब रावण उस पर चढ़ने लगा तब देखता है कि पुष्पक विमान की गति रुक गई है। तो रावण सोचने लगा कि स्वामी की इच्छानुसार चलने वाला यह पुष्पक विमान रुका क्यों? संभव है इस पर्वत के ऊपर कोई रहता हो उसी का यह कर्म हो। तब मारीच ने कहा- राजन्! हो सकता है यह विमान कुबेर के सिवा किसी दूसरे का वाहन न बनना चाहता हो इसीलिए उसके बिना यह रुक गया हो। इसी बीच भगवान् शंकर के पार्षद नन्दीश्वर रावण के पास आ पहुँचे, जो देखने में बहुत विकराल थे। वे रावण से निशंक होकर बोले- दशग्रीव! लौट जाओ। इस पर्वत पर भगवान् शंकर क्रीड़ा करते हैं। यहाँ नाग, यक्ष, देवता, गन्धर्व, राक्षस सभी प्राणियों का आना जाना बंद कर दिया गया है। यह सुनकर रावण कुपित होकर बोला- कौन है यह शंकर! ऐसा कहकर वह पर्वत के मूल भाग में आ गया। वहाँ पहुँचकर उसने देखा, भगवान् शंकर से थोड़ी ही दूर पर चमचमाता हुआ शूल हाथ में लिए नन्दी दूसरे शिव की भाँति खड़े हैं। उनका मुँह वानर के समान था। उन्हें देखकर रावण ठहाका मारकर हँसने लगा- तब शिव के दूसरे स्वरूप भगवान नन्दी वहाँ पास ही खड़े हुए निशाचर दशमुख से इस प्रकार बोले- तुमने वानर रूप में देखकर मेरी अवहेलना की है। अतः तुम्हारे कुल का विनाश करने के लिए मेरे ही समान पराक्रम, रूप और तेज से सम्पन्न वानर उत्पन्न होंगे। उनके नख और दाँत ही उनके अस्त्र होंगे तथा मन के समान उनका तीव्र वेग होगा। बलशाली होंगे और चलते फिरते पर्वत के समान दिखाई देंगे। निशाचर! मैं तुम्हें अभी मार डालने की शक्ति रखता हूँ। तुम अपने कुकृत्यों द्वारा पहले ही मारे जा चुके हो। इसलिए मरे हुए को मारने से क्या लाभ? उस समय दशानन् उन बातों की कोई परवाह न करके बोला- पशुपते! जिसके कारण यात्रा करते समय मेरे पुष्पक विमान की गति रुक गई थी उसे ही अब मैं जड़ से उखाड़ फेंकता हूँ। ऐसा कहकर दशग्रीव ने पर्वत के निचले भाग में अपनी भुजाएं लगाईं और उसे उठा लेने का प्रयत्न किया। तब तो वह पर्वत हिलने लगा। इससे भगवान शंकर के सारे गण काँप उठे और पार्वती जी भी भगवान् शंकर से लिपट गईं। तब भगवान् शंकर ने खिलवाड़ में ही उसे पैर के अंगूठे से दबा दिया। तब दशग्रीव की

भुजाएं भी उस पर्वत के नीचे दब गई और इसी के कारण वह पीड़ा से आर्तनाद करने लगा। इस नाद को सुनकर तीनों लोकों के प्राणियों ने समझा कि प्रलय काल आ गया है। तदनन्तर दशग्रीव के मंत्रियों ने समझाया- महाराज! अब आप नीलकंठ महादेव जी को संतुष्ट कीजिए। उनके सिवा आपकी और कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। तब हाथों की पीड़ा से रोते कराहते उसने एक हजार वर्षों तक भगवान् शंकर का वेद मंत्रों द्वारा स्तवन किया। तब महादेव जी ने रावण की तपस्या से प्रसन्न हो रावण की भुजाओं को उस संकट से मुक्त करते हुए कहा- वीर! मैं तुम्हारे पराक्रम से प्रसन्न हूँ। तुमने पर्वत से दब जाने के कारण जो भयानक राव (आर्तनाद) किया था इससे राक्षस राज अब तुम रावण के नाम से प्रसिद्ध हो जाओगे। भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर लंकेश्वर बोला- यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह भी वर दें कि ब्रह्मा जी द्वारा दी हुई आयु का जितना अंश बीत गया हो वह भी पूरा का पूरा प्राप्त हो जाए। इसे आप पूर्ण कीजिए साथ ही अपनी ओर से एक शस्त्र भी दीजिए। रावण की यह बात सुनकर शंकर ने उसकी आयु का जो अंश बीत गया था उसको पूरा कर दिया साथ ही उसे चन्द्रहास नामक खड्ग देते हुए कहा- तुम्हें कभी इसका तिरस्कार नहीं करना होगा। यदि तुम्हारे द्वारा इसका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पास लौट आएगा। इस प्रकार भगवान् शंकर से नया नाम पाकर पुष्पक विमान पर आरुढ़ हो रावण पृथ्वी पर दिग्विजय हेतु भ्रमण करने लगा। फिर तो अपने को अजेय समझने वाले प्राणी भी उस निशाचर के आगे अपनी पराजय स्वीकार करने लगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१६)

सत्रहवाँ सर्ग

रावण द्वारा तिरस्कृत कन्या वेदवती का रावण को श्राप देना

अगस्त्य जी बोले- तत्पश्चात् रावण भूतल पर विचरता हुआ हिमालय के वन में आकर सब ओर चक्कर लगाने लगा। वहाँ उसने एक तपस्विनी कन्या को देखा। उस समय उस सुन्दरी कन्या को देखकर रावण

Mookerji Bhawan, Jammu Collection

का चित्त काम के वशीभूत हो गया। तब उसने अट्टहास करते हुए पूछा- भद्रे! तुम्हारे इस रूप की कहीं तुलना नहीं। यह पुरुषों के हृदय में काम जनित उन्माद पैदा करने वाला है। अतः तुम्हारे लिए इस तप में संलग्न होना उचित नहीं। तुम्हारा सम्बन्ध किस पुण्यात्मा से है और किस फल के लिए यह परिश्रम किया जा रहा है। रावण के ऐसा पूछने पर वह कन्या उसका सत्कार करती हुई बोली- मैं वृहस्पति के पुत्र श्रीमान् कुशध्वज की पुत्री हूँ। पिता से वाङ्मयी कन्या के रूप में मेरा प्रादुर्भाव हुआ था। मेरा नाम वेदवती है। मेरे पिता की इच्छा थी कि भगवान् विष्णु उनके दामाद हों इसलिए वे उनके अतिरिक्त मुझे और किसी के हाथ नहीं देना चाहते थे। इससे बलाभिमानी दैत्यराज शम्भु ने उन पर कुपित हो उनकी हत्या कर दी। इससे मेरी माता मेरे पिता के शव को लेकर आग में प्रवेश कर गईं। फिर मैं पिताजी के मनोरथ पूर्ण करने के लिए यह महान् तप कर रही हूँ। पौलस्त्य नन्दन! आप जाइए। मैंने तप द्वारा आपको भी पहचान लिया है। तब रावण काम बाण से पीड़ित हो विमान से उतर गया और उस कन्या से बोला- तुम बड़ी गर्वीली मालूम होती हो। भीरू! सोचो तुम्हारी जवानी बीती जा रही है। मैं लंका का राजा दशग्रीव हूँ। तुम मेरी भार्या हो जाओ। भद्रे! तुम जिसे चाहती हो वह विष्णु बल, पराक्रम और वैभव किसी चीज में मेरी समानता नहीं कर सकता। यह सुनकर वेदवती बोली- नहीं! ऐसा न कहो। भगवान् विष्णु तो तीनों लोकों के अधिपति हैं। वेदवती की यह बात सुनकर राक्षस ने उस कन्या के केश पकड़ लिए और अपने तलवार से तत्काल उसके केशों को मस्तक से अलग कर दिया। तब वेदवती अग्नि की स्थापना कर उसमें जलती हुई बोली- तूने मेरा तिरस्कार किया है इसलिए मैं इस जीवन को न रखकर अग्नि में प्रवेश करूँगी और तेरे ही बध के लिए फिर उत्पन्न होऊँगी। अब अपने सत्कर्मों से मेरी यह इच्छा है कि मैं अगले जन्म में सती साध्वी अनियोजित कन्या के रूप में किसी धर्मत्मा पिता की पुत्री बनूँ। इतना कहकर वह जलती हुई आग में समा गई। तदनन्तर दूसरे जन्म में वह कन्या पुनः एक कमल में प्रकट हुई। उस समय उसकी कान्ति कमल के समान ही सुन्दर थी। उस राक्षस ने पहले की ही भाँति फिर वहाँ से उस कन्या को प्राप्त कर लिया। रावण उस कन्या को लेकर अपने घर गया।

वहाँ उसने अपने मंत्री को वह कन्या दिखाई। वह मंत्री बालक-बालिकाओं के लक्षणों को जानने वाला था। उसने उसे देखकर बताया कि यदि यह कन्या आपके घर रही तो आपके बध का कारण बनेगी। राजा रावण ने तब उसे समुद्र में फेंक दिया। तत्पश्चात् वही राजा जनक के भू-भाग के जोते जाने पर फिर प्रकट हुई। प्रभो ! महाराज जनक की प्रकट हुई वेदवती कन्या आपकी पत्नी हुई और आप ही सनातन विष्णु हैं। यही वेदवती पहले सत्युग में पकट हुई। फिर त्रेता में रावण बध हेतु राजा जनक के कुल में सीता के रूप में पैदा हुई और सीता से उत्पन्न होने के कारण मनुष्य इस देवी को सीता कहते हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१७)

अट्ठारहवाँ सर्ग

रावण सेमरूत्त की पराजय

अगस्त्य जी बोले- रघुनन्दन ! वेदवती के अग्नि में प्रवेश कर जाने पर रावण पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो पृथ्वी पर सब ओर भ्रमण करने लगा। उसी यात्रा के बीच रावण उशीर बीज नामक नगर में पहुँचा और उसने देखा कि रा ना मरूत्त देवताओं के साथ बैठकर यज्ञ कर रहे हैं। उस समय बृहस्पति के भाई संवर्त देवताओं से घिरे उस यज्ञ को करा रहे थे। तब ब्रह्मा जी के वरदान से अजेय हुए रावण को देखकर सभी देवता विभिन्न रूपों में स्थित हो गए। इन्द्र ने मोर, धर्मराज ने कौआ, कुबेर ने गिरगिट और वरुण ने हंस के तिर्यग्य योनि में प्रवेश किया। तब रावण मरूत्त के पास पहुँचकर बोला- मुझसे युद्ध करो या अपने मुख से कह दो आप पराजित हुए। तब राजा मरूत्त के पूछने पर रावण बोला- भूपाल ! मैं कुबेर का छोटा भाई रावण हूँ। मैं वह रावण हूँ जिसने अपनेभाई कुबेर को जीत कर यह विमान छीन लिया है। यह सुनकर मरूत्त ने रावण से कहा- तुम धन्य हो, जिसने रण भूमि में अपने भाई को पराजित किया। दुर्बुद्धि खड़ा रह। इस समय तू मेरे हाथ से जीवित बचकर नहीं जा सकता। तदनन्तर राजा मरूत्त हाथ में धनुष बाण लेकर युद्ध के लिए निकले। तब संवर्त ने उसका रास्ता

रोक कर कहा- राजन्! इस समय तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है। क्योंकि यदि यह माहेश्वर यज्ञ पूरा न हुआ तो आपके कुल को नष्ट कर डालेगा। जो यज्ञ की दीक्षा ले चुका है उसके लिए युद्ध का अवसर कहाँ? तब आचार्य के इस कथन से राजा मरूत्त युद्ध से विमुख हो यज्ञ के लिए उन्मुख हो गए। तब शुक्र ने यह घोषणा कर दी कि महाराज रावण की विजय हो गई। तदनन्तर उस यज्ञ में आकर बैठे हुए ऋषियों को खाकर रावण फिर पृथ्वी पर विचरने लगा। उधर रावण के चले जाने पर सारे देवता फिर अपने स्वरूप में प्रकट हो उन-उन प्राणियों को (जिनके रूप में वे प्रकट हुए थे) वरदान देने लगे। सब से पहले इन्द्र ने मोर से कहा- तुम्हें अब सर्प का कोई भय नहीं रहेगा। मेरे सहस्त्र नेत्रों के चिह्न तुम्हारे आंखों में प्रकट होंगे और मेरे वर्षा करने पर तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। श्री राम! उसके पहले मोरों के पंख केवल नीले रंग के होते थे। तत्पश्चात् धर्मराज ने कौवे से कहा- तुम पर कोई भी रोग अपना प्रभाव नहीं डाल सकेंगे। तुम्हें मृत्यु का भय न होगा, जब तक तुम्हें कोई मार न दे। जो मानव परलोक में स्थित अपने बन्धु-बान्धवों को तृप्त करने की इच्छा रखते होंगे वे पहले तुम्हें भोजन कराएंगे। तत्पश्चात् वरुण ने हंस से कहा- तुम्हारे शरीर का रंग चन्द्रमंडल-सा शुद्ध एवं फेन के समान उज्ज्वल होगा। मेरे जल का आश्रय ले तुम सदा कान्तिमय बने रहोगे। श्रीराम! इसके पहले हंस पूर्णतः श्वेत नहीं था। तत्पश्चात् कुबेर ने गिरगिट से कहा- मेरी प्रसन्नता से तुम्हारा काला रंग सुनहले रंग में बदल जाएगा। इस प्रकार उन्हें उत्तम वर देकर वे सब देवता उस यज्ञोत्सव के समाप्त होने पर राजा मरूत्त के साथ पुनः स्वर्गलोक को चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में अट्ठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१८)

उन्नीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा अनरण्य का वध

अगस्त्य जी बोले- श्रीराम! तत्पश्चात् रावण अन्य नरेशों के नगरों में युद्ध की इच्छा से जाता और वहाँ पहुँचकर राजाओं से कहता- राजाओ!

तुम मुझसे युद्ध करो या कह दो तुम हार गए। तब वे राजा गण रावण की प्रसन्नता को देखकर कहने लगे- राक्षस राज! हमने तुमसे हार मान ली। इस तरह दुष्यंत, सुरथ, गाधि, गय, राजा पुरूरवा आदि सबने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् वह अयोध्यापुरी में पहुँचा और वहाँ के राजा अनरण्य से मिल कर बोला- राजन्! तुम मुझसे युद्ध करो या कह दो कि तुम हार गये। तब यह सुनकर राजा अपनी सारी सेना लेकर राक्षस के बध के लिए नगर के बाहर निकले। श्रीराम! फिर तो राजा अनरण्य और निशाचर रावण में बड़ा युद्ध हुआ। लेकिन उस समय राजा की सेना ने यद्यपि बहुत देर तक युद्ध किया किन्तु अंत में सब काल के गाल में समा गए। तब अनरण्य क्रोध से मूर्च्छित होते हुए रावण का सामना करने के लिए आए और राक्षस राज के मस्तक पर आठ सौ बाण मारे। पर वे बाण निशाचर के शरीर पर कहीं घाव नहीं कर सके। तत्पश्चात् रावण ने कुपित होकर राजा के मस्तक पर एक तमाचा मारा। इससे आहत हो राजा अनरण्य व्यथित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और थरथर काँपने लगे। तब रावण अट्टहास करता हुआ बोला- लगता है तुमने मेरे बल और पराक्रम के बारे में नहीं सुना था। तब राजा ने भी कहा- राक्षस राज! तू अपने मुँह से अपनी प्रशंसा कर रहा है। यह तो काल की गति के कारण हुआ है। तूने अपने व्यंग्यपूर्ण वचनों से इक्ष्वाकुवंश का अपमान किया है इसलिए मैं तुझे शाप देता हूँ कि यदि मैंने दान, पुण्य और तप किए हैं और मेरे द्वारा प्रजा का ठीक-ठीक पालन हुआ हो तो मेरे वंश में दशरथ नंदन प्रकट होकर तेरे प्राणों का अपहरण करेंगे। रघुनंदन फिर राजा अनरण्य स्वर्ग लोक को सिधारे और रावण वहाँ से अन्यत्र चला गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१९)

बीसवाँ सर्ग

नारद जी का रावण को समझाना

अगस्त्य जी आगे बोले- श्रीराम! इसके बाद रावण मनुष्यों को भयभीत करता हुआ पृथ्वी पर विचरने लगा। तब एक दिन पुष्पक विमान

से यात्रा करते समय उसे बादलों के बीच मुनिश्रेष्ठ देवर्षि नारद जी मिले। उस समय रावण ने उनका अभिवादन किया और उनके आगमन का कारण पूछा। नारद जी यह सुनकर बोले- रावण! मैं तुम्हारे बल विक्रम से बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने अनेक युद्ध करके मुझे समान रूप से संतुष्ट किया है। अब मैं तुमसे कुछ सुनने योग्य बातें कहूँगा। उसे सुनो- तात्! तुम देवताओं के लिए अवध्य होकर इन निरीह मनुष्यों का बध क्यों कर रहे हो। ये तो मृत्यु के अधीन होकर स्वयं मरे हुए हैं। इस लोक के प्राणी तो भूख, प्यास और जरा आदि से अपने आप क्षीण हो रहे हैं। इसलिए दैव के मारे हुए मर्त्यलोक का तुम विनाश न करो। यहाँ कुछ मनुष्य तो गाने-बजाने और नाचने में मग्न हैं और कुछ नेत्रों से आँसू बहाते हुए रोते रहते हैं। यह तो माता, पिता, पत्नी आदि के सम्बन्ध को लेकर मोहवश हो परमार्थ से भ्रष्ट हो रहे हैं, ऐसे मनुष्यों को क्लेश पहुँचाकर तुम्हें क्या मिलेगा? तुमने तो इस मनुष्य लोक को जीत ही लिया है। इसमें कोई संदेह नहीं। मरने के बाद इन प्राणियों को यमलोक जाना पड़ता है अतः यदि शक्ति हो तो तुम यमराज को अपने काबू में करो। उनको जीत लेने पर तुम सब को जीत सकते हो इसमें संदेह नहीं। तब नारद जी की बात सुनकर रावण बोला- इस समय तो मैं दिग्विजय हेतु रसातल में जाने को उद्यत हूँ। यह सुनकर नारद बोले-शत्रु सूदन! रसातल का मार्ग भी यमराज की पुरी से होकर जाता है। तब रावण मुस्कराता हुआ बोला- देवर्षे! मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली है। अब मैं यमराज का बध करने के लिए दक्षिण दिशा को जाता हूँ। मैंने चारों लोकपालों को भी परास्त करने की प्रतिज्ञा की है। अतः मैं इस समय यमपुरी को प्रस्थान कर यम को स्वयं मौत के घाट उतारूँगा। इतना कहकर रावण मुनिवर को प्रणाम कर मंत्रियों सहित दक्षिण दिशा को चला गया। तब नारद जी ध्यान मग्न होकर सोचने लगे- जो स्वयं काल स्वरूप हैं वे ही यमराज इस रावण द्वारा कैसे जीते जाएँगे। काल ही सब का साधन है। यह अब और किस साधन से काल पर विजय प्राप्त करेगा। अतः मेरे मन में बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया है। अतः इस राक्षस राज का युद्ध देखने के लिए मैं स्वयं यम लोक जाऊँगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२०)

इक्कीसवाँ सर्ग

रावण का यमलोक पर आक्रमण

अगस्त्य जी बोले- रघुनन्दन ! तदनन्तर नारद मुनि रावण के आक्रमण का समाचार बताने के लिए यमलोक गए। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि यमदेवता अग्नि को साक्षी के रूप में सामने रखकर प्राणियों को कर्म के अनुसार फल देने की व्यवस्था कर रहे थे। उस समय नारद मुनि को आया देखकर यमराज ने उनका आतिथ्य सत्कार करने के बाद कहा- मुने ! आपके यहाँ आगमन का क्या उद्देश्य है ? मुनि बोले- मैं आपको एक आवश्यक बात बता रहा हूँ। आप उसके लिए कोई उचित व्यवस्था कर लें। वास्तव में दशग्रीव नामक निशाचर आपको वश में करने के उद्देश्य से यहाँ आ रहा है। मैं उसी की सूचना देने यहाँ आया हूँ। नारद जी इस प्रकार की बातें कर ही रहे थे कि तब तक वहाँ रावण का विमान आ पहुँचा। वहाँ दशग्रीव ने देखा कि बहुत से प्राणी अपने पाप और पुण्य का फल भोग रहे हैं। उनके सैनिक और सेवक कितने ही प्राणियों को दुख और क्लेश पहुँचा रहे थे। किसी को रक्त की वैतरणी पार करने को विवश किया जाता तो किसी को असिपत्र वन में पीड़ित किया जा रहा था। कितनों को तलवार की धार पर दौड़ाया जाता तो कितनों को भूखे प्यासे रख कर तड़पाया जा रहा था। कितने ही प्राणी मैल और कीचड़ में सने इधर-उधर भाग रहे थे। फिर दूसरी ओर रावण ने देखा कुछ पुण्यात्मा अपने आप पुण्यों के प्रभाव से अच्छे-अच्छे घरों में रहकर संगीत और वाद्यों की मनोहर ध्वनि सुन रहे थे। दूसरे धर्मात्मा पुरुष सुवर्ण और मुक्ताओं से अलंकृत हो यौवन के मद में मस्त हुए सुन्दर स्त्रियों के साथ अपनी अंगकान्ति से प्रकाशित हो रहे थे। तब रावण ने अपने पाप कर्मों के कारण यातना भोगने वाले प्राणियों को अपने पराक्रम से मुक्त कर दिया। यह देखकर उन पापियों की रक्षा करने वाले रक्षक अत्यंत कुपित हो राक्षस राज पर टूट पड़े। तब तो सम्पूर्ण दिशाओं की ओर से धावा करने वाले धर्मराज के शूरवीर योद्धाओं का महान् कोलाहल आरम्भ हुआ। उस पुष्पक विमान पर हजारों शूरवीर यमदूत चढ़कर उसे तहस नहस करने लगे। यमदूतों को इस तरह आक्रमण करते देख रावण के महावीर मंत्री और स्वयं रावण भी पर्वतों तथा पर्वत शिखरों को उखाड़कर पूरी शक्ति के साथ युद्ध करने लगे।

Mookerji ... Jammu Collection

तत्पश्चात् रावण के मंत्रियों को छोड़कर सीधे दशग्रीव पर शूलों की वर्षा करना आरम्भ किया। उस समय रावण का सारा शरीर शस्त्रों की मार से जर्ज़र हो गया। तब बलवान् रावण ने अपने अस्त्र बल से यमराज के सैनिकों पर शूल, गदा, प्रास, शक्ति, तोमर, पत्थर और वृक्षों आदि से प्रहार करना आरम्भ किया। तब वे सैनिक भी सैकड़ों और हजारों की संख्या में एकत्र हो उसके सारे आयुधों को नष्ट भ्रष्ट कर उस भयंकर राक्षस को ही मारने लगे। इससे रावण का कवच कटकर गिर गया और उसके शरीर से रक्त की धारा बहने लगी। इससे रावण कुपित हो पुष्पक विमान छोड़कर धरती पर खड़ा हो गया और अपने धनुष पर उसने पाश्वत नामकदिव्य अस्त्र का संधान किया। फिर उस बाण को छोड़ते ही उसका रूप चारों ओर फैलाते हुए दावानल के समान प्रतीत होने लगा। तब तो उस बाण की ज्वाला से यमराज के सारे सैनिक दग्ध होकर इन्द्रध्वज के समान नीचे गिर पड़े। तदनन्तर अपने मंत्रियों के साथ वह पराक्रमी राक्षसं पृथ्वी को कम्पित करता हुआ बड़े जोर से सिंहनाद करने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२१)

बाईसवाँ सर्ग

यमराज और रावण का युद्ध

अगस्त्य मुनि बोले- तब उस सिंहनाद को सुनकर यमराज ने समझ लिया कि शत्रु विजयी हुआ और मेरी हार हो गई। यह समझकर यमराज ने अपने सारथि से कहा- मेरा रथ ले आओ। रथ आने पर यमदेवता उस पर आरूढ़ हुए। उस समय साक्षात् काल को कुपित हुआ देख तीनों लोकों में हलचल मच गई। तदनन्तर सारथि ने सुंदर घोड़ों को हाँका और वह रथ भयानक आवाज करता हुआ उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ राक्षस राज रावण खड़ा था। मृत्यु देवता को उस समय अपने सामने देख रावण के सचिव भाग निकले किन्तु दशग्रीव के मन में इससे न तो क्षोभ हुआ न भय। रावण के पास पहुँचकर यमराज ने अपने अस्त्रों से उसके मर्म स्थलों को छेद डाला। इस प्रकार यमराज ने नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग कर सात

रातों तक युद्ध किया और रावण को युद्ध से विमुख-कर दिया। उस समय राक्षस राज रावण और प्रेत राज के उस युद्ध के कारण सभी लोकों में प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया। तत्पश्चात् रावण ने भी चार बाण मार कर मृत्यु को और सात बाणों से यम के सारथि को भी पीड़ित कर दिया। फिर जल्दी-जल्दी लाखों बाण मारकर यमराज के मर्म स्थलों पर गहरी चोट पहुँचाई। इस पर यमराज़ के क्रोध की सीमा न रही। उनके मुख से वह रोष अग्नि बनकर प्रकट हुआ। तब मृत्यु देव ने अत्यंत कुपित होकर वैवस्वत यम से कहा- आप मुझे छोड़िए और आज्ञा दीजिए। मैं समराङ्गण में इस पापी राक्षस को अभी मारे डालता हूँ। जिसे मैं देख लूँ वह बलवान् होने पर भी जीवित नहीं रह सकता। उस समय मृत्यु की यह बात सुनकर प्रतापी धर्मराज ने उससे कहा- तुम ठहरो, मैं ही इसे मार डालता हूँ। इतना कहकर यमराज ने अपने अमोघ काल दण्ड को हाथ में उठाया। वह काल दण्ड दृष्टि में आने मात्र से प्राणियों के प्राण का अपहरण कर लेता है। फिर जिसे इसका स्पर्श हो जाए उसका संहार होना कौन-सी कठिन बात है। अब यमराज उस दण्ड से रावण पर प्रहार करना ही चाहते थे कि सहाक्षात् ब्रह्मा जी वहाँ आ पहुँचे और बोले- महाबाहु वैवस्वत! तुम इस कालदण्ड द्वारा रावण का बध न करो। मैंने इसे देवताओं द्वारा न मारे जा सकने का वरदान दिया है, उसे तुम्हें असत्य नहीं करना चाहिए। इस अमित तेजस्वी कालदण्ड को पूर्वकाल में मैंने ही बनाया था। यह किसी भी प्राणी पर व्यर्थ नहीं जाता। अतः तुम इसे रावण के मस्तक पर न गिराओ। इसके पड़ने पर यह एक मुहूर्त भी जीवित नहीं रह सकता। इसलिए रावण की रक्षा कर के तुम मुझे सत्यवादी बनाओ। तब यह सुनकर यमराज ने ब्रह्मा जी से कहा-यदि ऐसी बात है तो लीजिए इस दण्ड को मैंने हटा लिया। आप हम सब लोगों के प्रभु हैं इसलिए आपकी आज्ञा पालन करना हमारा कर्तव्य है। इस समय वरदान से युक्त होने के कारण जब मेरे द्वारा इस राक्षस का बध हो ही नहीं सकता तो इसके साथ युद्ध करके ही क्या करूँगा। इसलिए मैं इसकी दृष्टि से ओझल होता हूँ। यह कहकर यमराज रथ और घोड़ों सहित वहाँ से अंतर्धान हो चला गया। तदनन्तर यमराज तथा महामुनि नारद जी ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ

Mool Chand Sharma (I.F.S.) Jammu Collection

स्वर्ग में चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२२)

तेईसवाँ सर्ग

रावण के द्वारा वरुण पुत्रों की पराजय

अगस्त्य जी बोले- श्रीराम! यमराज को पराजित करने के बाद रावण अपने सहायकों से मिला। उस समय प्रहारों से उसका शरीर भी जर्जर हो रहा था। तब वे महाराज की जय कहते हुए उसके मंगल की कामना करने लगे। तत्पश्चात् रसातल में जाने की इच्छा से रावण समुद्र में घुसा। वहाँ नागराज वासुकी द्वारा पालित भोगवती पुरी में प्रवेश करके उसने नागों को अपने वश में कर लिया और वहाँ से हर्षपूर्वक मणिमयी पुरी की ओर प्रस्थान किया। उस पुरी में निवात कवच नामक दैत्य रहते थे, जिन्हें ब्रह्मा जी से उत्तम वर प्राप्त थे। उस समय रावण ने वहाँ जाकर सब को युद्ध के लिए ललकारा। वे दैत्य भी युद्ध के लिए सदा उन्मत्त और उत्साहित रहते थे। अतः उनका राक्षसों के साथ युद्ध आरम्भ हो गया। किन्तु उनके युद्ध करते हुए एक वर्ष से अधिक समय व्यतीत हो गया पर जीत किसी पक्ष की न हुई। तब भगवान् ब्रह्मा एक उत्तम विमान पर बैठकर वहाँ आए और निवात कवचों को युद्ध करने से रोकते हुए बोले- दानवो! तुम दोनों को एक-सा ही वरदान मिला है इसलिए तुममें से कोई एक दूसरे को परास्त नहीं कर सकते। अच्छा हो, तुम लोग आपस में मैत्री कर लो। तब रावण को उनके साथ मैत्री करके बड़ी प्रसन्नता हुई। अब रावण वरुण के घर का पता लगाता हुआ रसातल में सब ओर घूमने लगा। इसी बीच कालकेय नामक दानवों के पास पहुँचकर उसने उन सब का संहार कर डाला और अपने बहनोई विद्युज्जिह्व को भी मार डाला। तब रावण ने वरुण का दिव्य भवन देखा जहाँ सुरभि नाम की गौ खड़ी थी। जिसके थनों से दूध बह रहा था और उसके दूध की धारा से सारा क्षीर सागर भरा था। उस सुरभि नामक गाय की परिक्रमा करके रावण नाना प्रकार की सेनाओं से सुरक्षित महाभयंकर वरुणालय में प्रवेश किया और वरुण के सेनापतियों को घायल

कर उनके द्वारा वरुण को संदेश भेजते हुए कहलाया कि रावण उनसे युद्ध करने के लिए आया है। इसलिए या तो उनसे युद्ध कीजिए या अपनी पराजय स्वीकार कर लीजिए। तब यह सूचना पाकर वरुण के पुत्र और पौत्र क्रोध से भरे हुए युद्ध के लिए निकले। उनके साथ गौ और पुष्कर नामक सेनाध्यक्ष भी थे। किन्तु रावण ने एक ही क्षण में वरुण की सारी सेना को मार गिराया। अब भूतल पर स्थित होने के कारण उन्होंने जब रावण को पुष्पक विमान पर बैठे देखा तो वे भी शीघ्रगामी रथों पर चढ़कर आकाश में जा पहुँचे। उस समय उन वरुण पुत्रों ने अपने अग्नितुल्य तेजस्वी बाणों से रावण को युद्ध से विमुख करते हुए नाना प्रकार के स्वरों में सिंहनाद किया। तब महोदर ने वरुण के घोड़ों पर कसकर गदा का प्रहार किया। फिर तो वे घोड़े गदा की चोट खाकर धराशायी हो गए। तथा रथ और सारथी भी चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। यह देखकर वरुण के पुत्र रथों को छोड़कर आकश में खड़े हो गए और महोदर को क्षत-विक्षत करके रावण को एक साथ घेर लिया। तब रावण अग्नि के समान रोष से जलता हुआ वरुण पुत्रों के मर्म स्थलों पर महाघोर बाणों की वर्षा करने लगा। किन्तु पैदल होने के कारण युद्ध में वरुण पुत्र बहुत कष्ट पाने लगे। तत्पश्चात् रावण के पुनः बाण वर्षा करने से वरुण पुत्र युद्ध से विमुख हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तदनन्तर रावण ने वरुण के सेवकों से कहा- अब वरुण से जाकर कहो कि वे स्वयं युद्ध के लिए आयें। यह सुनकर वरुण के सेवकों ने कहा- जल के स्वामी वरुण संगीत सुनने के लिए ब्रह्मलोक गए हैं। अब युद्ध से लाभ ही क्या? उनके वीर पुत्र तो तुमसे परास्त हो ही गए। तब रावण हर्षनाद करता हुआ आकश मार्ग से लंका की ओर चल दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२३)

चौबीसवाँ सर्ग

रावण द्वारा अपहृत् देवता आदि की कन्याओं का विलाप

लंका लौटते समय रावण बड़े हर्ष से भरा था। उसने मार्ग में अनेकानेक **नरेशों, ऋषियों,** देवताओं और दानवों की कन्याओं का

Mookerji Bhawan (CSS) Jammu Collection

अपहरण किया। वह जिस कन्या या स्त्री को सौन्दर्य पूर्ण देखता, उसके बन्धु जनों का बधकर, उसे विमान पर बिठा लेता। इस तरह उसने बहुत-सी सुन्दर कन्याओं को विमान पर चढ़ा लिया। तब जैसे नदियाँ सागर को भरती हैं उसी प्रकार उन सुन्दर नारियों ने भय और शोक से निकले हुए अपने अमंगल जनक अश्रुओं से उस विमान को भर दिया। दशग्रीव के वश में पड़ी हुई शोकाकुल अबलाएं सिंह के पंजे में पड़ी हुई हिरणियों के समान दुखी हो रही थीं। कोई सोचती थी यह राक्षस मुझे खा जाएगा, कोई इस चिंता में पड़ी थीं कि यह मुझे मार डालेगा। फिर वे एक साथ विलाप करने लगतीं- हाय! मेरे बिना मेरा नन्हा बेटा कैसे रहेगा? मेरी माँ की क्या दशा होगी? आदि बातें कहती हुई वे शोक सागर में डूब जातीं वे कहने लगतीं- यह नीच निशाचर! परायी स्त्रियों के साथ रमण करता है, इसलिए स्त्री के कारण ही इस दुर्बुद्धि राक्षस का बध होगा। उन श्रेष्ठसती साध्वी नारियों ने जब ऐसी बातें कहीं तब आकाश में देवताओं की दुन्दुभियाँ बज उठीं और वहाँ फूलों की वर्षा होने लगी। उस समय पतिव्रता स्त्रियों के शाप को सुनकर रावण की शक्ति घट गई और वह निस्तेज-सा हो गया। इस तरह अबलाओं का विलाप सुनते हुए रावण ने लंकापुरी में प्रवेश किया। किन्तु इसी समय सहसा उसकी बहन शूर्पणखा उसके सामने आकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह देखकर रावण ने उसे उठाकर सान्त्वना दी और इसका कारण पूछा। तब शूर्पणखा आँखों में आँसू भरकर बोली- राक्षस राज! तुम बलवान् थे। इसीलिए तुमने बलपूर्वक मुझे विधवा बना दिया। तुमने अपने पराक्रम में जिन चौदह हजार कालकेय नामक दैत्यों का बध कर दिया था उन्हीं में मेरे महाबली पति भी थे। तुमने उन्हें भी मार डाला। तुम नाम मात्र को मेरे भाई हो। वास्तव में तुम मेरे शत्रु निकले। क्या तुम्हें युद्ध में अपने बहनोई की रक्षा नहीं करनी चाहिए थी? तब रोती कलपती बहन को रावण ने समझाया- बहन अब रोना व्यर्थ है। मैं तुम्हें दान, मान और अनुग्रह द्वारा संतुष्ट करने की चेष्टा करूँगा। रणोन्मत्त होने पर मैं बहनोई को पहचान न सका। इसीलिए वे मेरे हाथों मारे गए। अब तुम ऐश्वर्यशाली भाई खर के पास चलकर रहो। तुम्हारा मौसेरा भाई खर चौदह हजार राक्षसों का अधिपति

होगा और शीघ्र ही वह दण्डकारण्य की रक्षा में जाने वाला है। महाबली दूषण उसका सेनापति होगा। वह सदा तुम्हारी आज्ञा का पालन करता रहेगा। ऐसा कहकर उसने चौदह हजार राक्षसों की सेना को खर के साथ जाने की आज्ञा दी। फिर उन लोगों के साथ शूर्पणखा भी दण्डक वन में आकर रहने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२४)

पचीसवाँ सर्ग

यज्ञों द्वारा मेघनाद को सफलता

खर को राक्षसों की विशाल सेना देकर रावण बहुत ही स्वस्थ और प्रसन्न हो गया। तत्पश्चात् रावण लंका के निकुंभिला नामक उपवन में गया। निकुंभिला में पहुँचकर देखा कि वहाँ एक यज्ञ हो रहा है। वहाँ उसने अपने पुत्र मेघनाद को देखा तब उसे आलिंगन करते हुए पूछा- बेटा! यह क्या कर रहे हो? ठीक-ठीक बताओ। किन्तु मेघनाद यज्ञ के नियमानुसार मौन रहा। उस समय पुरोहित शुक्राचार्य ने समझाया- राजन्! मैं इसे बता रहा हूँ आप ध्यान देकर सुनें। आपके पुत्र ने सात यज्ञों का अनुष्ठान किया है। इसने अग्निष्टोम, अश्वमेध, बहुसुवर्णक, राजसूय यज्ञ, गोमेध तथा वैष्णव से छः यज्ञ पूर्ण कर यह माहेश्वर यज्ञ किया है। इन यज्ञों से इसे पशुपति से बहुत से वर तथा आकाशचारी रथ भी प्राप्त हुए हैं। इसके साथ ही तामसी नामकी माया उत्पन्न हुई है। जिससे अंधकार उत्पन्न किया जा सकता है। इसके प्रयोग करने पर किसी को भी प्रयोग करने वाले की गतिविधि का पता नहीं चल सकता। राजन्! अब यह अनेक तरह के अस्त्र-शस्त्र प्राप्त कर आपके दर्शन की इच्छा से यहाँ खड़ा है। यह सुनकर रावण बोला- बेटा! यह जो कुछ तुमने किया वह ठीक नहीं था क्योंकि इससे मेरे शत्रु आदि का पूजन हुआ। अस्तु, जो हुआ सो हुआ। आओ अब घर चलें। तत्पश्चात् रावण अपने पुत्र और विभीषण के साथ जाकर उन सब स्त्रियों को विमान से उतारा जिन्हें वह हर कर ले आया था। तब उन स्त्रियों को रोती बिलखती देख विभीषण ने कहा- राजन्! यह आचरण

कुल और धन का नाश करने वाला है। इनके बन्धु-बान्धवों को मार कर आप इन्हें हर लाए और इधर आपकी आज्ञा का उल्लंघन कर के मधु नामक दैत्य ने मेरी मौसेरी बहन कुंभीनसी का हरण कर लिया है। उस समय मेघनाद यज्ञ कर रहा था। मैं जल में खड़ा तप कर रहा था तथा कुंभकरण सो रहा था। रावण को यह वृत्तान्त सुनकर बड़ा क्रोध आया और उसने सेना को तैयार होने की आज्ञा दी। मेघनाद सेना के साथ आगे-आगे चला। इस प्रकार रावण अपनी अजेय सेना के साथ मधु दैत्य के स्थल पर पहुँचा। वहाँ पहुँच कर रावण ने कुंभनसी को देखा। इस समय कुंभनसी ने रावण के चरणों में अपना मस्तक रखकर कहा- यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे पति का बध न कीजिए। क्योंकि वैधव्य के समान दूसरा कोई दुख नहीं। इसलिए मुझे विधवा न करो। तब रावण ने अपनी बहन से कहा- वत्स! मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करूँगा। अब तुम उसको मुझे सौंप दो, मैं उसे लेकर देवलोक पर विजय करने जाऊँगा। तब कुंभनसी ने मधु को जगाकर कहा- मेरे भाई दशग्रीव आए हैं। वे तुम्हारी सहायता से देवलोक जीतना चाहते हैं। तब मधु ने उठकर रावण का सत्कार किया। फिर रावण एक दिन वहाँ ठहरकर दूसरे दिन वहाँ से जाने को उद्यत हुआ और मधु के साथ कैलाश पर्वत पर कुबेर के निवास स्थान पर गया और सेना को ठहरने का आदेश दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पचीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२५)

छब्बीसवाँ सर्ग

रावण का रंभा से बलात्कार

जब सूर्य अस्ताचल को चले गए तब दशग्रीव ने अपनी सेना के साथ कैलाश पर ही ठहर जाना उचित समझा। फिर वहाँ चन्द्रोदय होते ही निशाचरों की विशाल सेना गहरी निद्रा में निमग्न हो गई। लेकिन रावण उसके शिखर पर बैठकर विभिन्न स्थानों की नैसर्गिक छटा निहारने लगा। वहाँ चारों ओर तरह-तरह के पुष्प खिले हुए थे। शीतल, मंद, सुगंधित पवन चल रही थी। किन्नरों के जोड़े मधुर स्वर में गान कर रहे थे। कुबेर

के भवन से अप्सराओं के नृत्य और गायन की आवाज आ रही थी। ऐसे सभी उद्दीपन उपकरणों के कारण वह काम के अधीन हो गया और बार-बार लम्बी साँसें लेता हुआ चन्द्रमा की ओर देखने लगा। इसी बीच अप्सराओं में सर्वश्रेष्ठ रम्भा उस मार्ग से आ निकली। वह दिव्य पुष्पों से अपना श्रृंगार किए हुई थी और उसका मुख चन्द्रमा के समान मनोहर था। अब रावण की दृष्टि जैसे ही उस पर पड़ी वह कामदेव के बाणों का शिकार हो गया और उसने रंभा का हाथ पकड़कर मुस्कुराते हुए कहा- वारारोहे! कहाँ जा रही हो? किसका भाग्य उदय हुआ है जो तुम्हारा उपभोग करेगा। तुम्हारे देह से कमल की सुगंध आ रही है। आज तुम्हारे इन स्तनों का उपभोग कौन करेगा? इस समय इन्द्र, विष्णु, अश्विनी कुमार कोई भी देवता मेरी समानता नहीं कर सकता इसलिए तुम मुझको छोड़कर न जाओ। इस शिला पर बैठकर ही मेरे साथ रमण करो। रावण की यह बात सुनकर रंभा डर से काँपती हुई बोली- आप मेरे ससुर हैं। क्योंकि मैंने यह श्रृंगार आपके भाई कुबेर के पुत्र नल कूबर के लिए किया है। इस समय मैं उन्हीं के पास जा रही हूँ। क्योंकि वह मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। अपनी पुत्र वधू के साथ बलात्कार करना क्या आपको शोभा देगा? रम्भा की यह बात सुनकर रावण बोला- तुम मेरी पुत्र वधू होने की बात कर रही हो, सो यह विचार तो उन स्त्रियों के लिए ही है जिनका एक ही पति हो। तुम तो अप्सरा हो इसलिए तुम्हारा काम ही देवताओं को प्रसन्न करना है। तुम इस समय किसी देवता के बजाय मुझे प्रसन्न करो। इतना कहकर रावण ने वहीं रम्भा के साथ भोग किया। उस समय रम्भा के सारे वस्त्र और आभूषण अस्त-व्यस्त हो गए तथा उसकी पुष्प मालाएं टूट गईं। तब वह उसी अवस्था में नल कूबर के पास जा पहुँची और उनसे सारा वृतान्त कह सुनाया। उस समय नल कूबर इस समाचार को सुनकर अत्यंत क्रोधित हो उठा और रावण को श्राप दिया कि वह आज सेदूसरी किसी ऐसी स्त्री के साथ संभोग नहीं कर सकेगा जो उसे चाहती न हो। अन्यथा उसे न चाहने वाली स्त्रियों के साथ बलात्कार करने पर उसके मस्तक के सात टुकड़े हो जाएंगे। यह सुनकर देवता फूलों की वर्षा करने लगे और रावण ने उसको न चाहने वाली स्त्रियों से बलात्कार करना

छोड़ दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२६)

सत्ताइसवाँ सर्ग

सेना सहित रावण का इन्द्र लोक पर आक्रमण

तदनन्तर रावण सेना और सवारियों सहित इन्द्रलोक जा पहुँचा। रावण का आगमन सुनकर इन्द्र अपने आसन से उठकर समस्त देवताओं से बोले तुम सब लोग रावण से युद्ध करने को तैयार हो जाओ। लेकिन इन्द्र को रावण से भय हो गया था अतः वे दुखी होकर भगवान् विष्णु के पास आए और बोले- देव! बलशाली रावण मेरे साथ युद्ध करने आ रहा है। वह केवल ब्रह्मा जी के वरदान से प्रबल हो गया है। आप देवताओं के भी देवता अर्थात् ईश्वर हैं। अतः देव! आप ही मुझे ऐसा कोई उपाय बताइए जिससे मेरी विजय हो। क्या आप स्वयं चक्र या तलवार लेकर रावण से युद्ध करेंगे? तब नारायण देव बोले- देवराज! तुम्हें भयभीत नहीं होना चाहिए। तुम मेरी बात सुनो। इस रावण को सारे देवता और असुर भी मिलकर नहीं मार सकते। क्योंकि वरदान पाने के कारण इस समय वह अजेय हो गया है। इसके अलावा मैं युद्ध स्थल में रावण का सामना करने नहीं जाऊँगा, पर मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ मैं ही रावण और उसके सैनिकों को मार कर देवताओं को आनन्दित करूँगा। अब तुम इस समय जाकर देवताओं से मिलकर उसके साथ युद्ध करो। तदनन्तर रुद्र, आदित्य, वसु आदि देवता भी युद्ध के लिए तैयार होकर अमरावती पुरी से बाहर निकले और फिर उन दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध छिड़ गया। उस समय सुमाली, मारीच, प्रहस्त आदि महाबलवान् राक्षस देव सेना को इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिये जैसे पवन बादलों को नष्ट कर देता है। तब देव सेना को भागती हुई देखकर आठवें वसु सावित्र को बड़ा क्रोध हुआ। वे अपनी सेना के साथ शत्रुओं को पीड़ित करने लगे। उन्होंने अपने पराक्रम से सुमाली को आगे बढ़ने से रोक दिया और उसके साथ अपनी गदा से सुमाली पर बलपूर्वक प्रहार किया। उसकी चोट लगते ही सुमाली का काम तमाम हो गया। फिर

न तो उसकी हड्डी का पता चला और न मस्तक का। तब सुमाली को मारा गया देख शेष राक्षस समर भूमि में खड़े न रह सके।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सत्ताईसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२७)

अट्ठाईसवाँ सर्ग

मेघनाद और जयन्त का युद्ध

सुमाली को मारा गया देखकर मेघनाद ने भागती हुई सेना को रोका और देवताओं से लोहा लेने के लिए स्वयं खड़ा हुआ। दिव्य रथ पर सवार हो वह देवताओं की सेना में जा घुसा। मेघनाद को देखते ही सभी देवता इधर-उधर भागने लगे। तब उन देवताओं को फटकारते हुए इन्द्र बोले - देवताओं! भय न करो और युद्ध क्षेत्र में लौट आओ। अब मेरा पुत्र जयन्त, जो किसी से परास्त नहीं हुआ, युद्ध के लिए आ रहा है। उस समय जयन्त को आया देख सभी देवता जयन्त को चारों ओर से घेरकर रावण के पुत्र पर प्रहार करने लगे। और जयन्त ने भी मेघनाद के सारथि को घायल कर दिया। फिर तो मेघनाद भी जयन्त को अपने बाणों की वर्षा से पीड़ित करने लगा। तत्पश्चात् मेघनाद अन्तर्धान होकर, माया से अंधकार फैलाकर, मायावी युद्ध करने लगा। इस युद्ध को देखकर सभी देवता घबरा उठे। इसी बीच दैत्य राज पुलोभा जो जयन्त का नाना था, जयन्त को लेकर समुद्र में घुस गया। तब जयन्त के लापता होने पर देवताओं की सेना में भगदड़ मच गई। यह सब देखकर इन्द्र ने मातलि को बुलाकर कहा- मेरा रथ ले आओ। तत्पश्चात् रुद्रों, वसुओं, आदित्यों, अश्विनी कुमारों और मरुद्गणों से घिरे हुए इन्द्र नाना प्रकार से अस्त्र शस्त्र लिए पुरी से बाहर निकले। इसी बीच रावण भी विश्वकर्मा के बनाए हुए दिव्य रथ पर सवार हुआ और महेन्द्र के सामने जा पहुँचा। फिर तो देवताओं और राक्षसों में घोर युद्ध होने लगा। दुष्टात्मा रावण भी नाना प्रकार के अस्त्रों से घोर युद्ध करने लगा। वह किसी को पकड़कर खा जाता तो किसी को मसल देता। तदनन्तर घोर युद्ध करते हुए देवताओं ने राक्षसों को युद्ध भूमि से मार भगाया। धरती पर पड़े हुए राक्षसों का उस युद्ध में मारा जाना जादू का सा

आश्चर्य जनक कार्य मालूम पड़ता था। इस बीच रावण देवताओं को मारता हुआ इन्द्र के सामने जा पहुँचा। तब इन्द्र ने अपने धनुष को खींचकर रावण के मस्तक पर अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी बाण मारे। उस समय रावण ने भी भयंकर बाणों की वर्षा आरम्भ की और इससे चारों ओर घोर अंधकार छा गया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२८)

उन्तीसवाँ सर्ग

रावण का देव सेना के बीच होकर निकलना

उस समय देवताओं की सेना ने बहुत से राक्षसों को यमलोक पहुँचा दिया। उस अंधकाराच्छन युद्ध में मात्र इन्द्र और रावण ही मोहित नहीं हो पाए थे। तब रावण यह देखकर कि उसकी सारी सेना क्षण भर में मारी गई है, क्रोध से भर उठा। इस समय रोष में भरकर उसने अपने सारथि से कहा- सूत! शत्रुओं की सेना का जहाँ तक अंत है तुम उसके मध्य भाग से चलो। आज मैं अपने पराक्रम से सभी देवताओं का बध करूँगा। रावण का यह आदेश सुनकर सारथि ने मन के समान वेगशाली घोड़ों को शत्रुसेना के बीच से हाँक दिया। तब इन्द्र ने देवताओं से कहा- देवगण! मैं चाहता हूँ कि इस दशग्रीव को, जीवित अवस्था में ही, भलीभाँति कैद कर लिया जाए क्योंकि यह ब्रह्मा जी के वर के प्रभाव से मारा नहीं जा सकता। उस समय रावण ने उत्तर की ओर से देव सेना में प्रवेश किया और इन्द्र ने दक्षिण दिशा की ओर से राक्षस सेना में। फिर इन्द्र ने बिना किसी घबराहट के दशमुख रावण का सामना किया। तब रावण का पुत्र मेघनाद ने कुपित होकर शत्रु की सेना में प्रवेश किया और महादेव जी से प्राप्त तमोमयी माया से अपने को छिपा लिया और शत्रुओं पर वहीं से बाणों की वर्षा करने लगा। उस समय इन्द्र ऐरावत पर सवार हो मेघनाद को ढूँढ़ने लगे। लेकिन उस समय इन्द्र को थका हुआ देखकर मेघनाद उनको बाँध कर अपनी सेना में ले आया। तदनन्तर इन्द्र को बँधा देखकर देवतागण कुपित होकर रावण पर भीषण बाणों की वर्षा करने लगे। तब रावण क्षुब्ध होकर युद्ध से विमुख

हो उठा। यह देखकर मेघनाद बोला- हमने देव सेना के स्वामी इन्द्र को जीत लिया है। अब आप आइए। हम लोग निश्चिंत होकर घर लौट चलें। इस समय आप अपने शत्रु को बलपूर्वक कैद कर इच्छानुसार तीनों राज्यों का सुख भोगिए। मेघनाद का यह वचन सुनकर देवता निराश होकर चले गए। तब रावण बोला- पुत्र! तुम्हारे अतुलनीय पराक्रम से मेरी आत्मा परम संतुष्ट हो गई है। अब तुम इन्द्र को रथ पर बैठाकर सेना सहित लंका की ओर चलो। मैं भी मंत्रियों सहित तुम्हारा अनुसरण करते हुए आ रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में उन्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (२९)

तीसवाँ सर्ग

ब्रह्मा जी का इन्द्रजित को वरदान देकर इन्द्र को उसकी कैद से छुड़ाना

मेघनाद जब इन्द्र को जीतकर अपने नगर में ले गया तब ब्रह्मा जी भी वहाँ आ पहुँचे और बोले- तुम लोगों का पराक्रम देखकर मैं प्रसन्न हूँ। आज से तुम्हारा पुत्र इन्द्रजित् के नाम से विख्यात होगा। महाबाहो! अब तुम इन्द्र को छोड़ दो। और बतलाओ इसके बदले तुम देवताओं से क्या चाहते हो। यह सुनकर इन्द्रजित् बोला- मैं इसके बदले अमरत्व चाहता हूँ। तब ब्रह्मा जी ने समझाया- इस भूतल पर अमरत्व का वर पाना संभव नहीं। यह सुनकर इन्द्रजित् ने कहा- अच्छा तब मुझे यह वरदान दें कि युद्ध में जब मैं अग्नि मंत्र पढ़कर आहुति दूँ तो अग्नि से घोड़े सहित रथ शीघ्र प्रकट हो जाया करें और जब तक मैं उस रथ पर सवार रहूँ किसी से मारा न जा सकूँ। यदि युद्ध के निमित्त किए जाने वाले जप और होम को पूर्ण किए बिना ही मैं समरांगण में युद्ध करने लगूँ तभी मेरा विनाश हो। देव! सब तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं परन्तु मैंने पराक्रम द्वारा ही इस अमरत्व का वरण किया है। यह सुनकर ब्रह्मा जी ने एवमस्तु कहकर इन्द्रजित् से इन्द्र को मुक्त करवा दिया। उस समय इन्द्र दुखी होकर पराजय का कारण सोचने लगे। तब ब्रह्मा जी ने उन्हें चिन्तित देखकर कहा- यदि इस समय तुम्हें अपने अपमान का दुःख है तो बताओ तुमने पूर्व काल में बड़ा भारी दुष्कर्म

क्यों किया था। देवराज! पहले मैंने अपनी बुद्धि से जिन प्रजाओं का उत्पादन किया था। उन सब की अंग कान्ति, भाषा, रूप और अवस्था एक जैसी थी। फिर मैंने प्रजाओं के विषय में विशेषता लाने के लिए कुछ विचार किये थे। तब प्रजाओं की अपेक्षा विशिष्ट प्रजा प्रस्तुत करने के लिए मैंने एक नारी की सृष्टि की। अद्भुत रूप गुणों से सम्पन्न उस नारी का नाम अहल्या' (जिसमें हल्य अथवा निंदनीय रूप न हो) रक्खा। उस समय मुझे यह चिंता होने लगी कि यह किसकी पत्नी होगी। किन्तु तुम अपने पद के गर्व में बिना मुझसे पूछे उसे अपनी ही पत्नी मानने लगे। तब मैंने उसे धरोहर के रूप में महर्षि गौतम के हाथों सौंप दिया। तत्पश्चात् उनके इन्द्रिय संयम को देखकर मैंने उस कन्या को उसे पत्नी के रूप में दे दिया। उस समय तुम्हारा मन काम के अधीन हो चुका था इसलिए तुमने मुनि के आश्रम में जाकर उसके साथ बलात्कार किया। मुनि ने तुम्हें ऐसा करते हुए देखकर शाप दे दिया। उसी शाप के कारण ही तुम्हारी ऐसी विपरीत दशा हुई है। उन्होंने शाप देते हुए कहा था कि इन्द्र तुमने कामदेव के वश होकर मेरी भार्या के साथ बलात्कार किया इसलिए तुम शत्रु के द्वारा बलपूर्वक युद्ध में बाँधे जाओगे। पराई स्त्री के साथ गमन का दुराचार मनुष्य लोक में भी प्रचलित हो जाएगा और तुम इस पाप के आधा के भागी बनोगे। तुम अपने पद पर भी अटल न रह सकोगे। तत्पश्चात् तुमको शाप देकर मुनि ने अहल्या को शाप दिया- दुष्टे! तू मेरे आश्रम के पास ही अदृश्य होकर रह और अपने रूप और सौन्दर्य से भ्रष्ट हो जा। तब अहल्या ने विनीत वचनों के द्वारा गौतम मुनि को प्रसन्न करते हुए कहा- विप्र वर! देवराज ने आपका ही रूप धारण कर मुझे कलंकित किया है। अतः यह अपराध मुझसे अनजान में हुआ है। इसलिए आपको मुझ पर कृपा करनी चाहिए। अहल्या के यह कहने पर गौतम ने कहा- भद्रे! इक्ष्वाकु वंश में एक महातेजस्वी वीर श्रीराम का अवतार होगा। वे साक्षात् विष्णु होंगे और विश्वामित्र आदि के कार्यों से तपोवन पधारेंगे। जब तुम उनका दर्शन करोगी तब पवित्र हो जाओगी और फिर मेरे पास आकर रहने लगोगी। इतना कहकर गौतम मुनि आश्रम छोड़कर चले गए। अहल्या उसी आश्रम में तप करने लगी। इन्द्र अब तुम अपनी दुर्दशा का कारण समझ गए होगे। अब तुम वैष्णव

यज्ञ करो और पवित्र होकर स्वर्ग जाओ। इस समय तुम अपने पुत्र के विषय में चिंता न करो। वह अपने नाना पुलोमा के साथ समुद्र में छिपा बैठा है। ब्रह्मा की आज्ञानुसार वैष्णव यज्ञ करने के उपरान्त इन्द्र फिर स्वर्गलोक का शासन करने लगे। श्रीराम! इन्द्र को जीतकर मेघनाद ने जो पराक्रम दिखलाया उसका वर्णन मैंने आपसे कह सुनाया। उस समय महर्षि की यह बात सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोगों को बड़ा विस्मय होने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३०)

इक्तीसवाँ सर्ग

रावण का महिष्मती नगर में जाना

तत्पश्चात् श्रीराम ने अगस्त्य मुनि को प्रणाम कर विस्मय से पूछा- भगवन्! क्या उन दिनों वहाँ कोई भी क्षत्रिय नरेश अधिक बलवान् नहीं था जिससे असंख्य राजाओं को रावण से पराजित होना पड़ा। तब अगस्त्य मुनि ने हँसते हुए कहा- श्रीराम! रावण इसी प्रकार सब राजाओं को सताता हुआ पृथ्वी पर विचरने लगा और फिर एक दिन वह महिष्मती नामक नगरी में जा पहुँचा जहाँ अग्निदेव सदा विद्यमान रहते थे। वहीं अग्नि के समान तेजस्वी अर्जुन नामक राजा राज्य करता था। जिस दिन रावण वहाँ पहुँचा उस दिन अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा नदी में जल क्रीड़ा करने गया था। तब रावण ने राजा के मंत्रियों से पूछा- मंत्रियों! ठीक-ठीक बताओ राजा अर्जुन कहाँ है? मैं रावण उससे युद्ध करने आया हूँ। लेकिन उस समय मंत्रियों के मुख से अर्जुन के बाहर जाने की बात सुनकर वह वहाँ से हटकर विन्ध्य गिरि पर चला आया। वह गिरि इतनी ऊँची थी कि उसका शिखर बादलों में समाया हुआ-सा जान पड़ता था। इसके सर्वोच्च शिखर के तट से जो शीतल धाराएं गिर रही थीं उनसे वह अट्टहास करता हुआ-सा प्रतीत होता था। स्फटिक समान निर्मल जल का स्रोत बहाने वाली नदियों के कारण वह जिह्वावाले फनों से उपलक्षित शेष नाग के समान दिखाई पड़ता था। विन्ध्याचल की शोभा देखता हुआ रावण नर्मदा नदी के तट पर जा पहुँचा। सरिताओं में श्रेष्ठ, नर्मदा परम सुन्दरी

प्रियतमा नारी के समान प्रतीत होती थी। तब राक्षस शिरोमणि दशमुख रावण ने पुष्पक विमान से उतरकर नर्मदा के जल में डुबकी लगाई फिर जल से बाहर निकलकर मंत्रियों के साथ उसके तट पर बैठा और शुक, सारण तथा अन्य मंत्रियों से बोला- सूर्य देव अपनी प्रचण्ड किरणों से सम्पूर्ण जगत् को तपा रहे हैं किन्तु इस समय मुझे यहाँ बैठा हुआ देखकर चन्द्रमा के समान शीतल हो गए हैं। मेरे भय से ही नर्मदा का जल शीतल-सुगन्धित होकर मन्दगति से बह रहा है। तुम लोग इस समय राजाओं द्वारा घायल कर दिए गए हो। अतः तुम सब इस मंगलकारिणी नर्मदा नदी में स्नान करो। इस महानदी में स्नान करके तुम पाप-ताप से मुक्त हो जाओगे। रावण के ऐसा कहने पर प्रहस्त, शुक, सारण, महोदर और धूम्राक्ष ने नर्मदा में स्नान किया। तदनन्तर रावण ने भी पुनः नर्मदा में स्नान किया। तत्पश्चात् जप करके अपने साथ लाए हुए सुवर्णमय शिवलिंग को बालू की वेदी पर स्थापित कर उसका पूजन किया। फिर वह उनका भलीभाँति पूजन कर उनके सामने गाने और हाथ फैलाकर नाचने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इक्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३१)

बत्तीसवाँ सर्ग

अर्जुन की भुजाओं से नर्मदा के प्रवाह का अवरुद्ध होना

नर्मदा के तट पर जहाँ रावण महादेव जी को फूलों की माला अर्पित कर रहा था उसी से थोड़ी दूरी पर राजा अर्जुन अपनी स्त्रियों के साथ नर्मदा के जल में क्रीड़ा कर रहा था। अर्जुन की हजार भुजाएं थीं। उसने बल को जाँचने के लिए बहुसंख्यक भुजाओं द्वारा नर्मदा के वेग को रोक दिया। उस समय अर्जुन के द्वारा रोका हुआ नर्मदा का वह जल तट पर पूजा करते हुए रावण के पास तक पहुँच गया और उसी ओर उल्टी गति से बहने लगा। तब उसके वेग से पूजा के लिए एकत्र की हुई सामग्री को बहते हुए देखकर रावण कुपित होकर आश्चर्य से नर्मदा की ओर देखने लगा। रावण उस समय मौन धारण किए था। इसलिए उसने संकेत करके शुक और सारण को नदी के उल्टा बहने के कारण को मालूम करने की आज्ञा दी। राक्षस

शीघ्र ही आकाश मार्ग से चले। दो कोस चलने पर उन्हें सारण के वृक्ष के समान ऊँचा एक पुरुष, स्त्रियों के साथ जल विहार करता दिखाई दिया। तब यह मालूम कर कि उसकी हजार भुजाओं से नदी का वेग रुक गया है वे दोनों राक्षस लौट आए और रावण से कहने लगे- राक्षस राज! यहाँ से थोड़ा ही दूर पर कोई साल वृक्ष के समान विशालकाय पुरुष है। जो बाँध की तरह नर्मदा का जल रोक कर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा है। तब यह जानकर कि यही अर्जुन है रावण युद्ध की लालसा से उसी ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर मदोन्मत्त स्त्रियों के साथ अर्जुन को जल बिहार करते देख रावण क्रुद्ध होकर उसके मंत्रियों से बोला- जाकर अपने स्वामी से कहो कि रावण युद्ध करने आया है। यह सुनकर अर्जुन के मंत्रियों ने कहा- वाह रे रावण वाह! तुम इस समय स्त्रियों के साथ क्रीड़ा विलास करते हुए अर्जुन के साथ युद्ध करने का हौसला दिखा रहे हो। यदि तुम्हें जूझने की बड़ी जल्दी पड़ी है तो पहले रणभूमि में हम सब से भिड़कर देख लो। यह सुनकर रावण के मंत्री अर्जुन के अमात्यों पर टूट पड़े और उन्हें मार-मार कर खाने लगे। इस प्रकार रावण के और अर्जुन के मंत्रियों में घोर युद्ध हुआ। उस युद्ध में रावण के मंत्री अर्जुन की सेना का संहार करने लगे। तब अर्जुन के सेवकों ने उससे रावण के उस क्रूर कर्म का समाचार सुनाया। यह सुनकर अर्जुन ने अपनी स्त्रियों से कहा- तुम लोग डरना मत। फिर रोष से अपनी गदा उठाकर राक्षसों पर आक्रमण कर दिया। तब प्रहस्त ने उसके ऊपर मूसल का प्रहार किया जिसे अर्जुन ने अपनी गदा से रोक लिया। तत्पश्चात् एक भारी गदा जिसे पाँच सौ भुजाओं से उठाकर चलाया जाता है, उसे घुमाता हुआ अर्जुन प्रहस्त की ओर दौड़ा। प्रहस्त इससे धाराशायी हो गया। यह देखकर रावण के अन्य मंत्री भाग खड़े हुए। तब बीस भुजा वाले राक्षसों के राजा रावण और सहस्त्र भुजाधारी अर्जुन में बड़ा घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन की गदा के प्रहार से रावण की छाती में घाव हो गया और उससे रक्त की धारा बह चली, किन्तु रावण इससे जरा भी व्यथित न होकर बारम्बार अर्जुन पर गदा का प्रहार करता रहा। उस समय जैसे साँड़ अपने सींगों से और हाथी अपने दाँतों से अगले भाग में प्रहार करता है उसी प्रकार वे दोनों एक दूसरे पर गदाओं की चोट करते थे।

तत्पश्चात् अर्जुन की चलाई हुई गदा के प्रहार से पीड़ित हो रावण एक धनुष पीछे हट गया और आर्तनाद करता हुआ बैठ गया। तब दशग्रीव को व्याकुल देख अर्जुन ने सहसा उछलकर उसे पकड़ लिया और उसे मजबूत रस्सियों से बाँध दिया और फिर हर्ष से बादलों के समान बार-बार गरजने लगा। रावण को बँधा देखकर देवताओं ने अर्जुन के ऊपर फूल बरसाये। इसी बीच प्रहस्त ने होश संभाला और रावण को बँधा हुआ देखकर कुपित होकर अर्जुन की ओर दौड़ा। अर्जुन ने उन्हीं के शस्त्रों से उन्हें मार भगाया और फिर राजा अर्जुन ने उस बँधे हुए रावण को साथ लेकर अपनी पुरी में प्रवेश किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड बत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३२)

तैंतीसवाँ सर्ग

पुलस्त्य जी का रावण को अर्जुन की कैद से छुड़वाना

रावण के पकड़े जाने की खबर जब पुलस्त्य जी ने सुनी तो वे संतान के प्रति होने वाले स्नेह के कारण, कृपा परवश हो गए और अर्जुन से मिलने के लिए भूतल पर चले आये। उस समय उनके तेज के कारण उनकी ओर देखना बहुत ही कठिन जान पड़ता था। तब अर्जुन के सेवकों ने उन्हें पहचान कर, अर्जुन को उनके शुभागमन की सूचना दी। सेवकों के द्वारा जब अर्जुन को पता चला कि पुलस्त्य जी पधारे हैं तो वे सिर पर अंजलि बांधें, तपस्वी मुनि की अगवानी के लिए आगे बढ़ आए। फिर उनके चरणों में सिर झुकाकर पाद्य अर्घ्य से उनकी पूजा करते हुए उनसे पूछा- द्विजेन्द्र! आपका दर्शन दुर्लभ है। फिर भी आज मैं उसका लाभ उठा रहा हूँ। ब्रह्मन्! यह राज्य, ये स्त्री, पुत्र और हम सब लोग आपके ही हैं। कृपया आज्ञा दें हम आपकी क्या सेवा करें। पुलस्त्य जी ने राजा का कुशल समाचार पूछने के बाद कहा- हे राजन्! तुमने मेरे रण दुर्जय पौत्र को संग्राम में बाँध लिया। ऐसा करके तुमने मेरे इस बच्चे का यश पी लिया है। अब तुम मेरे कहने से इस दशानन को छोड़ दो। मेरी यही याचना है। तब पुलस्त्य जी के इस आज्ञा को शिरोधार्य कर के अर्जुन ने रावण को बंधन से मुक्त कर

Mookerji sharma (M.S.) Jammu Collection

दिया और अग्नि को साक्षी बनाकर ऐसी मित्रता स्थापितकियाजिसके द्वारा किसी की हिंसा न हो। इसके बाद पुलस्त्य मुनि को प्रणाम कर राजा अर्जुन अपने घर लौट गया। इस प्रकार रावण को अर्जुन के हाथों पराजित होना पड़ा। अतः श्रीराम! इस संसार में बलवान् से बलवान् वीर पड़े हुए हैं और इसलिए अपना कल्याण चाहने वाले को दूसरों की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। तब सहस्रबाहु अर्जुन की मैत्री पाकर रावण पुनः घमण्ड से भरकर सारी पृथ्वी पर विचरता हुआ नरेशों का संहार करने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३३)

चौंतीसवाँ सर्ग

बाली के द्वारा रावण का पराभव

अर्जुन से छुटकारा पाने पर रावण पुनः सारी पृथ्वी पर विचरण करने लगा और जिसे भी बल में बढ़ा-चढ़ा सुनता उसके पास पहुँचकर युद्ध के लिए ललकारता। इसी बीच एक दिन बाली द्वारा पालित किष्किंधा पुरी में रावण जाकर बाली को युद्ध के लिए ललकारने लगा। उस समय बाली के मंत्री तार, तारा के पिता सुषेण , अंगद तथा सुग्रीव ने रावण से कहा- इस समय बाली बाहर गए हैं। आप दो घड़ी ठहर जाइए। राक्षसराज! यह भी समझ लें कि जब भी आप बाली से टक्कर लेंगे तब वही आपके जीवन का अंतिम क्षण होगा। फिर भी आपको मरने की बहुत जल्दी है तो दक्षिण समुद्र के तट पर चले जाइए। वहीं आपको पृथ्वी पर स्थित हुए अग्निदेव के समान बाली का दर्शन होगा। तब रावण ने यह सुनकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो गया तथा दक्षिण समुद्र की ओर प्रस्थान किया। वहाँ रावण ने प्रभातकालीन सूर्य की भाँति अरुण प्रभा से उद्भासित बाली को सन्ध्योपासन करते हुए देखा। उस समय पुष्पक विमान से उतरकर रावण शीघ्र दबे पाँव बाली को पकड़ने के लिए बढ़ा। किन्तु दैवयोग से बाली ने उसे देख लिया और उसने निश्चय किया कि जब यह पापात्मा रावण मुझे पकड़ने की इच्छा से निकट आएगा तो उसी समय मैं इसे काँख में पकड़कर लटका लूँगा। इधर रावण भी बाली को पकड़ने की घात में था। फिर क्या था? पकड़ने की इच्छा से रावण को पास

आते ही बाली ने स्वयं उसे पकड़ कर अपनी काँख में लटका लिया और बड़े वेग से आकाश में उछले। इस प्रकार रावण के हर लिए जाने पर उसके मंत्री उसे बाली से छुड़ाने के लिए कोलाहल करते हुए उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। किन्तु वे श्रेष्ठ राक्षस बहुत प्रयत्न करने के बाद भी बाली के पास नहीं पहुँच सके। तब वानरराज ने क्रमशः सभी समुद्रों के तट पर पहुँचकर संध्या वंदन किया फिर वे शत्रु को ढोते हुए उत्तर समुद्र की ओर गए। वहाँ भी सन्ध्योपासना का कार्य पूरा कर वे रावण को ढोने के कारण कुछ थके हुए से किष्किंधा पुरी के निकट आए। वहाँ किष्किंधा के उपवन में पहुँचकर उन्होंने अपनी काँख से छोड़ते हुए रावण से पूछा- कहो जी, तुम कहाँ से आए हो? बाली का अद्भुत पराक्रम देखकर रावण बोला- मैं रावण हूँ। युद्ध की इच्छा से यहाँ आया तो वह युद्ध आपसे मिल गया। वानर वीर! ऐसी तेज गति तो मन, वायु और गरुड़ में ही होती है। अब अग्नि को साक्षी बनाकर मैं आप से मित्रता कर लेना चाहता हूँ। तब वानर राज ने भी अग्नि जलाकर आपस में भाई चारे का सम्बन्ध जोड़ा और अपने पास उसे तीन महीने तक रखा। श्रीराम! बाली में बहुत अधिक और अनुपम बल था। लेकिन आपने अपनी बाणाग्नि से उसको उसी प्रकार जला दिया जैसे दीपक पतिंगों को जला देता है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३४)

पैंतीसवाँ सर्ग

हनुमान जी की उत्पत्ति और सूर्य, राहु तथा ऐरावत पर आक्रमण

तब भगवान् श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से विनम्रता से पूछा- महर्षि! इसमें संदेह नहीं कि रावण और बाली के बल की तुलना नहीं थी। लेकिन मेरी समझ से इनका बल हनुमान जी के बल की बराबरी नहीं कर सकता था। जिस समुद्र को देखकर वानर सेना घबरा उठी थी उसे वे एक ही छलाँग में लाँघ गए। और लंका में रावण के अंतःपुर में गए। सीता से भेंट करके उन्हें धैर्य बँधाकर रावण के किंकरों और पुत्रों को मार गिराया। तत्पश्चात् रावण से वार्तालाप कर सारी लंकापुरी को ही जला डाला। मुनिवर! मैंने इन्हीं के

बाहुबल से लंका पर विजय पाई है। लेकिन मैं यह नहीं समझता कि जिस समय बाली और सुग्रीव का विरोध हुआ। उस समय सुग्रीव का हित करने के लिए इन्होंने उसी प्रकार बाली को क्यों नहीं भस्म कर डाला। तब महर्षि अगस्त्य हनुमान जी के सामने ही बोले- जिनका शाप कभी व्यर्थ नहीं जाता ऐसे मुनियों ने इन्हें पूर्वकाल में शाप दे दिया था कि बल रहते हुए भी इन्हें अपने पूरे बल का पता नहीं रहेगा। यदि इनका चरित्र सुनना हो तो अब बता रहा हूँ सुनिए। बहुत पहले से सुमेरू पर्वत पर हनुमान जी के पिता केसरी राज्य करते हैं।उनकी अंजना नामक पत्नी के गर्भ से वायुदेव ने एक उत्तम पुत्र को जन्म दिया था। एक दिन माता अंजना फल लेने के लिए आश्रम से गहन वन में चली गईं। इधर माता से बिछुड़ जाने के कारण शिशु हनुमान भूख के कारण जोर-जोर से रोने लगे। उसी समय इन्हें लाल रंग के सूर्य उदित होते हुए दिखाई पड़े। फिर तो हनुमान जी उसे फल समझकर उसे पाने के लिए उछल पड़े। उस समय अपने पुत्र को सूर्य की ओर जाते देखकर उसको दाह के भय से बचाने के लिए वायु देव भी बर्फ के ढेर की भाँति शीतल होकर उनके पीछे-पीछे चलने लगे। तब अपने और अपने पिता के बल से वह कई सहस्त्र योजन आकाश लाँघ कर सूर्यदेव के निकट पहुँच गए। सूर्य देव ने तब यह सोचकर कि अभी यह बालक है और इससे अभी देवताओं के बहुत से कार्य होने हैं, इन्हें जलाया नहीं। जिस दिन हनुमान जी सूर्य देव को पकड़ने के लिए उछले थे, उसी दिन राहु सूर्य देव पर ग्रहण लगाना चाहता था। हनुमान जी ने जब सूर्य के रथ के ऊपर भाग में स्पर्श किया तब राहु भयभीत होकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ और इन्द्र के सम्मुख भौंहें टेढ़ी करके बोला- इन्द्र! आपने चन्द्रमा और सूर्य को मुझे अपनी भूख मिटाने के लिए दिया था किन्तु अब उसे दूसरे के हवाले क्यों कर दिया। आज अमावस्या होने के कारण मैं सूर्यदेव को ग्रस्त करने की इच्छा से गया था कि इसी समय सहसा दूसरे राहु ने आकर सूर्य को पकड़ लिया। यह वृत्तान्त सुनकर इन्द्र बड़े आश्चर्य में पड़ गए और ऐरावत पर सवार हो, राहु को आगे करके, वे सूर्य के निकट आने लगे। तब हनुमान जी राहु को आते देखकर उसे ही फल समझकर उसको खाने को दौड़ पड़े। यह देख राहु डर कर पीछे को भागा। उसी समय इनकी दृष्टि ऐरावत पर पड़ी तब उन्होंने उसे भी फल ही समझा और उसकी ओर दौड़ने लगे। उस

समय इन्द्र को इनकी बाल्यावस्था देखकर अधिक क्रोध नहीं आया। फिर भी उन्होंने धीरे से अपने बज्र को इनकी ढोड़ी से मारा। इससे इनकी बायीं ओर की हड्डी टूट गयी और वे मूर्छित होकर गिर पड़े। यह देखकर इनके पिता पवन देव को बड़ा क्रोध आया। सब प्राणियों में जो पवन की गति है वह उन्होंने बंद कर दी और इनको लेकर गुफा में बैठ गये। तब हवा की गति बंद होते ही संसार के सब प्राणी घबरा उठे। उनकी साँस रुकने लगी। फिर तो चारों ओर हा-हाकार मच उठा। तब सब देवता, ब्रह्माजी के पास गये और बोले-आपने हमारे जीवन के लिए पवन को दिया है। किन्तु उन्होंने अपनी गति बंद कर ली है। अब आप ही इस कष्ट से हमें छुड़ाइये। तब ब्रह्मा जी ने उनसे कहा- प्रजाओ! इन्द्र ने आज पवनतनय को बज्र से मारा है इसी से वे रुष्ट हो गये हैं। अतः अब हमें उस स्थान पर चलना चाहिए जहाँ हम सब को पीड़ित करने वाले पवन देव बैठे हैं। तब ब्रह्माजी सभी देवताओं को लेकर उस स्थान पर गए जहाँ वायु देव अपने पुत्र को लेकर बैठे हुए थे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में पैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (३५)

छत्तीसवाँ सर्ग

ब्रह्माजी आदि देवताओं का हनुमानजी को जीवितकर उन्हें वरदान देना

पुत्र के मारे जाने से वायु देवता बहुत दुखी थे। ब्रह्माजी को देखकर वे उस शिशु को लिए ही उनके आगे खड़े हो गये। तब ब्रह्माजी ने उनके उस शिशु पर हाथ फेरा इससे शिशु हनुमान जीवित हो गये। इससे वायुदेवता भी प्रसन्न होकर पूर्ववत् अपना संचार करने लगे। तब ब्रह्माजी वायुदेवता का हित करने की इच्छा से देवताओं से कहने लगे। देवताओं! इस बालक के द्वारा भविष्य में आप लोगों के बहुत से कार्य सिद्ध होंगे। अतः वायुदेवता की प्रसन्नता के लिए आप सब इन्हें वर दें। तब इन्द्र बोले- मेरे बज्र से इसकी ठुड्डी टूट गई है इसलिए इस बालक का नाम हनुमान होगा। आज से यह मेरे बज्र द्वारा भी नहीं मारा जा सकेगा। तब सूर्य देव बोले- मैं इसको अपने तेज का सौवाँ भाग देता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं इसे शास्त्रों का ज्ञान प्रदान

करूँगा। वरुण ने वर दिया- दस लाख वर्षों की आयु हो जाने पर भी जल से इसकी मृत्यु नहीं होगी। कुबेर ने वर दिया युद्ध में कभी इसे विषाद न होगा तथा मेरी यह गदा संग्राम में इसका बध न कर सकेगी। भगवान् शंकर ने यह कहा- यह मेरे और मेरे आयुधों द्वारा भी अवध्य होगा। विश्वकर्मा बोले- मेरे बनाए हुए सभी अस्त्रों से यह बालक अवध्य होगा। अंत में ब्रह्मा जी ने कहा- यह दीर्घायु महात्मा तथा सब प्रकार से ब्रह्म दण्डों से अवध्य होगा। तत्पश्चात् वे वायुदेव से बोले- तुम्हारा यह पुत्र मारुति शत्रुओं के लिए भयंकर और मित्रों के लिए अभयदाता होगा। यह इच्छानुसार रूप धारण कर जहाँ चाहे जा सकेगा। यह युद्ध में रावण का संहार एवं राम के अनेक प्रिय कार्य करेगा। तब हनुमानजी बहुत से वर पाकर निर्भय हो महर्षियों के आश्रम में जा जाकर उपद्रव किया करते। वे महात्माओं के यज्ञोपयोगी पात्र फोड़ डालते और उनके वल्कलों को चीर फाड़ डालते इससे महर्षिगणों ने कुपित होकर उन्हें शाप दिया-वानर वीर! तुम जिस बल का आश्रय लिए हो उसे दीर्घ काल तक भूले रहोगे। फिर जब कोई तुम्हारी कीर्ति का स्मरण दिलाएगा तभी तुम्हारा बल बढ़ेगा। तब हनुमानजी का प्रभाव और तेज घट गया। इधर बाली और सुग्रीव के पिता ऋक्ष राज थे। वे चिरकाल तक वानरों के राज्य का शासन कर मृत्यु को प्राप्त हुए। तब उनके देहावसान के बाद बाली को राजा और सुग्रीव को युवराज बनाया गया। पहले तो उन दोनों भाइयों में अटूट प्रेम था लेकिन जब उन दोनों में बैर उठ खड़ा हुआ तब भी हनुमानजी शाप वश अपने बल को न जान सके और बाली और सुग्रीव के युद्ध में चुपचाप खड़े तमाशा देखते रहे। ये शक्तिशाली हनुमानजी व्याकरण का अध्ययन करने के लिए सूर्य की ओर मुखकर उनके आगे-आगे उद्यांचल से अस्ताचल तक जाते थे। सम्पूर्ण शास्त्रों में पारंगत हनुमाजी विद्याओं के पढ़ने और तपस्या करने में वृहस्पति के समान हुए। श्रीराम! सम्पूर्ण जगत में इस पराक्रमी बजरंगी के सामने कौन ठहर सकता है। वास्तव में ये तथा इन्हीं के समान दूसरे-दूसरे महाकपीश्वर सुग्रीव, मैंद, द्विविद, नील, गज, गवाक्ष, सब की सृष्टि देवताओं ने आपके सहयोग के लिए ही की है। अगस्त्य मुनि के वचनों को सुनकर राम सहित सब वानर और राक्षस आश्चर्य चकित हो गये। तत्पश्चात् अगस्त्य जी बोले- श्रीराम आपने जो कुछ पूछा वह मैंने कह

Mookambikananda (T-S) Jammu Collection

सुनाया। अब हम लोगों को जाने की आज्ञा दीजिए। तब श्रीराम हाथ जोड़ कर बोले- मुनीश्वर! आपके दर्शन से हम सब कृतार्थ हुए। कृपया यज्ञ आरम्भ होते समय आप सब उसमें सम्मिलित होकर उस यज्ञ को पूरा करा दीजिएगा। ऐसा ही होगा कहकर वे सब वहाँ से जाने को उद्यत हुए। फिर सूर्यास्त होने पर श्रीराम चन्द्र जी सन्ध्योपासना करके अंतःपुर में पधारे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सत्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३६)

सैंतीसवाँ सर्ग

श्रीराम का सभासदों के साथ राजसभा में बैठना

वह रात बीतने पर जब सबेरा हुआ तब प्रातःकाल श्रीराम को ज़गाने वाले बंदीजन राज महल में एकत्र हुए और मनोहर ध्वनि करते हुए उनकी स्तुति करने लगे- कौशल्या जी का आनन्द बढ़ाने वाले श्री रघुवीर! आप जागिए। आपका पराक्रम भगवान् विष्णु के समान तथा रूप अश्विनी कुमार के समान है। आप की क्षमा पृथ्वी, तेज सूर्य और गंभीरता समुद्र के समान है। आपके समान राजा न पहले थे न भविष्य में होंगे। फिर जब इस प्रकार धर्मात्मा श्री राम की स्तुति बंदी गण और सूत लोगों ने की तो जिस प्रकार भगवान् विष्णु जागकर शेष शैया पर बैठते हैं, ठीक उसी प्रकार श्रीराम जागकर अपनी शैया पर बैठ गए। तत्पश्चात् शौच तथा स्नानादि से निवृत होकर श्रीराम जी देवमंदिर को गए। जब वे राज भवन के बाहरी फाटक पर आए ठीक उसी समय वशिष्ठ तथा अन्य पुरोहित भी वहाँ आ गए। श्रीराम चन्द्र के आसन पर बैठने के पश्चात् उनके समीप खड़े हुए सभी राजागण, सुग्रीव आदि वानर, विभीषण आदि राक्षस तथा ऋषिगण श्रीराम के समीप उसी तरह बैठे जैसे स्वर्ग के समस्त देवता सहस्रलोचन इन्द्र के पास बैठते हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सैंतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (३७)

Mookerji sharma HRS Jammu Collection

अड़तीसवाँ सर्ग

श्रीराम चंद्र के द्वारा नरेशों की विदाई

तदनन्तर कुछ दिन बीतने पर एक दिन श्रीराम ने राजा जनक से हाथ जोड़कर कहा- राजन्! मैथिल और इक्ष्वाकुवंश के सम्बंधों को आपने बड़े प्रेमपूर्वक निबाहा इसके लिए हम आप के कृतज्ञ हैं। पृथ्वीनाथ! अब आप हमारे भेंट किये गये ये रत्न लेकर अपनी राजधानी को पधारें। आपकी सहायता के लिए भरत और शत्रुघ्न भी पीछे-पीछे जाएंगे। तब जनकजी बोले- राजन्! मैं आपके दर्शन और व्यहार से प्रसन्न हूँ। आपने मेरे लिए जो रत्न एकत्र किए हैं, वह सब मैं अपनी सीता आदि पुत्रियों को देता हूँ। ऐसा कहकर वे प्रसन्नचित से मिथिलापुरी को चल दिये। तत्पश्चात् श्रीराम ने अपने मामा युधजित् से कहा- महाराज! केकय राज वृद्ध हैं। इसलिए आपका आज ही वहाँ जाना अच्छा होगा। तब यह सुनकर युधाजित् भी अपने देश को चले गये। तदनन्तर श्रीराम ने काशी के राजा प्रतर्दन को प्रेमपूर्वक विदा किया। काशीराज को विदा करके श्रीराम ने अन्य तीन सौ भूपालों से कहा- आप लोगों के प्रभाव और तेज से ही दुरात्मा रावण मारा गया। सीता हरण की बात सुनकर भरत ने राक्षसों पर आक्रमण करने के लिए ही आप सब लोगों को यहाँ बुलाया था। तब से आज तक आप लोगों का बहुत समय व्यतीत हो गया। अब आप लोगों का भी अपने नगर को लौट जाना उचित जान पड़ता है। तब यह सुनकर अन्य राजाओं ने कहा- हमारे सौभाग्य से ही आप सीता को लौटा लाएं। श्रीराम आप हमारी जो प्रशंसा कर रहे हैं हम इसके योग्य नहीं। अतः हम लोग अपनी अपनी पुरी को जाने की आज्ञा चाहते हैं। अब हम लोग केवल यही चाहते हैं कि हम लोग आपके हृदय में सदैव बसे रहें। तब श्रीराम के ऐसा ही होगा, कहने पर वे सब राजा अपने-अपने देश को चले गये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में अड़तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (३८)

उन्तालीसवाँ सर्ग

राजाओं का श्रीराम के लिए भेंट देना

तदनन्तर श्रीराम से विदा होकर वे राजा लोग पृथ्वी को कम्पित करते हुए अपनी सेनाओं के साथ अपने अपने नगर को चले। मार्ग में वे घमण्ड में भरकर आपस में कहते- हम लोगों ने युद्ध में श्रीराम और रावण को आमने सामने लड़ते हुए नहीं देखा। भरत ने युद्ध समाप्त होने पर हम लोगों को व्यर्थ बुलाया। यदि सब राजा गए होते तो राक्षसों का संहार जल्दी हो जाता। तत्पश्चात् अपने अपने नगरों में उन नरेशों ने श्रीराम चंद्रजी को प्रसन्न करने के लिए नाना प्रकार के रत्न और अनेकों अन्य उपहार भेजे। उन राजाओं से भेंट स्वरूप अनंत धनराशि प्राप्त कर भरत और लक्ष्मण ने उन्हें लाकर श्रीराम के सामने रख दिया। श्रीराम ने उस भेंट को सुग्रीव, विभीषण तथा अन्य वानरों में बाँट दिया। तदनन्तर उन्होंने हनुमान और अंगद को गोद में बिठाकर सुग्रीव से कहा- सुग्रीव! तुम्हारे पुत्र और अंगद हनुमान ने बड़े उत्साह से हमारा हित साधन किया है। इसलिए ये सब हमारे आदर के पात्र हैं। इतना कहकर श्रीराम ने अपने शरीर से बहुमूल्य आभूषण उतारकर उन्हें पहनाए। तत्पश्चात् वे समस्त वानर भूपतियों से बोले- वानरवीरों! आप लोग मेरे सुहृद, शरीर और भाई हैं। आपने ही मुझे संकटों से उबारा है। आप जैसे श्रेष्ठ सुहृदों को पाकर राजा सुग्रीव धन्य हैं। ऐसा कहकर श्रीराम ने उन्हें भी यथायोग्य आभूषण देकर उनका अभिनंदन किया। मधु के समान पिंगल वर्ण वाले उन वानरों का वहाँ एक महीने से अधिक समय बीत गया किन्तु रघुनाथ जी के प्रति भक्ति होने के कारण वह समय एक मुहूर्त के समान ही जान पड़ा।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में उन्तालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (३९)

चालीसवाँ सर्ग

वानर, रीछों और राक्षसों की बिदाई

इस प्रकार वहाँ सुखपूर्वक रहते हुए रीछों, वानरों और राक्षसों में श्रीराम

ने सुग्रीव को सम्बोधित करके कहा- सौम्य! अब तुम देवताओं के लिए दुर्जय किष्किंधापुरी में जाओ और वहाँ मंत्रियों के साथ निष्कंटक राज्य का पालन करो। महाबाहो! हनुमान और अंगद का तुम विशेष ध्यान रखना। महाबली नल, सुषेण, वीर ऋक्षराज,जाम्बवान् आदि पर भी तुम प्रेम पूर्ण दृष्टि रखना। ऐसा कहकर उन्होंने सुग्रीव को बारम्बार हृदय से लगाया और फिर विभीषण से कहा-राक्षस राज! तुम अब जाकर धैर्य पूर्वक लंका का शासन करो। राजन्! तुम अधर्म में मन मत लगाना क्योंकि जिनकी बुद्धि ठीक होती है वे दीर्घकाल तक पृथ्वी का सुख भोगते हैं। उस समय श्रीराम चंद्र का यह भाषण सुनकर रीछों, वानरों और राक्षसों ने 'धन्य-धन्य' कहकर अनकी बारम्बार प्रशंसा की और बोले- महाबाहु श्रीराम! आपके स्वभाव में सदा मधुरता रहती है। आपकी बुद्धि और पराक्रम अद्‌भुत हैं। इसी बीच हनुमानजी श्रीराम से विन्नम होकर बोले- भगवन्! संसार में जब तक लोग आपकी कथा कहें तब तक मैं उस अमृत रूपी कथा को सुनने को जीवित रहूँ। मेरी आप में अटल भक्ति हो। आप मुझे कभी न भूलें। तब हनुमानजी को छाती से लगाकर श्रीराम ने कहा-सौम्य! तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। मैं यह वरदान देता हूँ कि जब तक मेरी कथा का प्रसार रहेगा तब तक तुम जीवित रहोगे। क्योंकि तुमने जो उपकार किये हैं उनमें से एक-एक के लिए मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ। इतना कहकर श्रीरघुनाथजी ने अपने कंठ से एक चंद्रमा के समान उज्ज्वल हार निकाला और उसे हनुमानजी के गले में डाल दिया। तत्पश्चात् श्रीराम के विदाई के शब्द सुनकर वे महाबली वानर एक-एक करके वहाँ से उठे और उन्हें प्रणाम कर चल दिये। उस समय सब के सब नेत्रों में आँसू बहाते हुए श्रीराम के भावी विरह से व्यथित हो उठे। उस समय वे श्रीराम को छोड़ने के लिए उसी तरह से विवश थे जैसे जीवात्मा शरीर को विवशतापूर्वक छोड़ती है।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में चालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ (४०)

इकतालीसवाँ सर्ग

कुबेर के भेजे हुए पुष्पक विमान का आना

रीछों, वानरों और राक्षसों को विदाकर श्रीराम सुख और आनंद पूर्वक

वहाँ रहने लगे। सहसा एक दिन उन्हें आकाश से यह मधुर वाणी सुनाई दी- सौम्य श्रीराम! कृपया आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी ओर दृष्टिपात करें। प्रभो! मैं कुबेर के भवन से लौटा हुआ पुष्पक विमान हूँ। मैं जब आपकी आज्ञा मानकर कुबेर की सेवा में गया तो उन्होंने मुझसे कहा- विमान! श्रीराम ने रावण को युद्ध में मारकर तुम्हें जीता है। इसलिए अब मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम उन्हीं की सवारी में रहो। भगवान्! इस प्रकार मैं महात्मा कुबेर की आज्ञा पाकर आपके पास आया हूँ। तब पुष्पक विमान को पुनः आया हुआ देखकर श्रीराम उससे बोले- विमानराज पुष्पक! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। इतना कहकर उन्होंने धूप और चन्दन आदि से उसका पूजन किया और कहा- अब तुम जाओ। मैं यथा समय तुम्हारा उपयोग करता रहूँगा। तब पुष्पक 'एवमस्तु' कहकर चला गया। उस विमान के अदृश्य होने पर भरत जी श्रीराम से बोले- वीरवर! आप देव स्वरूप हैं इसीलिए आपके शासन काल में मनुष्येतर प्राणी भी मनुष्यों के समान बोलते हुए दिखाई पड़ते हैं और आपके राज्य में सभी हृष्ट-पुष्ट और निरोग दिखाई पड़ते हैं। और चारों ओर हर्ष का साम्राज्य छाया रहता है। यह सुनकर श्रीराम चन्द्र को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इकतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४१)

बयालीसवाँ सर्ग

अशोक वाटिका में श्रीराम और सीता का विहार

स्वर्ण भूषित पुष्पक विमान को विदा करके श्रीराम ने अशोक वाटिका (अंतःपुर में विहार योग्य उपवन) में प्रवेश किया। वहाँ चंदन, अगरु, आम, कटहल, महुआ तथा विभिन्न प्रकार के पुष्पों के समूह थे। उस वाटिका में निर्मल जल से भरी हुई चारों ओर फूलों के वृक्षों से सुशोभित स्फटिकमणि के सीढ़ियों से युक्त अनेक बड़ी बावलियाँ थीं। इन्द्र के चन्दन कानन और कुबेर के नेत्ररथ वन के समान उस समय रामचन्द्र की वाटिका शोभा पा रही थी। वहाँ अनेक ऐसे भवन थे जिनके भीतर बैठने के लिए बहुत से आसन सजाए गए थे। जैसे देवराज इन्द्र शची को सुधापान कराते

हैं उसी प्रकार श्रीराम ने अपने हाथ से पवित्र पेय मधु लेकर सीता जी को पिलाया। इस समय राजा राम के समीप नृत्य और गीत की कला में निपुण अप्सराएं और नाग कन्याएं किन्नरियों के साथ मिलकर नृत्य करने लगीं। उस समय भगवान् श्रीराम सीतादेवी के साथ सिंहासन पर विराजमान हो रमण करते रहे। फिर भाँति-भाँति के लोगों का उपभोग करते हुए उस राजदम्पत्ति का शिशिर काल बीत गया। श्रीराम पूर्व भाग में धार्मिक कृत्य करते हुए शेष आधे दिन अन्तःपुर में बिताते। इन्हीं दिनों श्रीराम की पत्नी के गर्भ के मंगलमय चिह्न दिखाई दिए। तब वे सीता से बोले- सीते! बताओ मैं तुम्हारी कौन-सी इच्छा पूरी करूँ। उस समय सीता ने कहा- मैं महर्षियों के आश्रम में कुछ दिन रहना चाहती हूँ। तत्पश्चात् श्रीराम उनकी इस इच्छा को पूरी करने का वचन देकर वहाँ से चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बयालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४२)

तैंतालीसवाँ सर्ग

भद्र का पुरवासियों के मुख से अशुभ चर्चा सुनना

सुहृदों के साथ बातचीत करते हुए एक दिन श्रीराम ने भद्र से पूछा- आजकल नगर और राज्य में किस बात की चर्चा विशेष होती है। वे मेरे परिवार के विषय में क्या-क्या बातें करते हैं। श्रीराम चन्द्र के ऐसा पूछने पर भद्र बोला- महाराज! आजकल आपको लेकर पुरवासियों में चर्चाएं ही चलती रहती हैं। तब रघुनाथ जी ने पूछा पुरवासी मेरे विषय में कौन-कौन-सी अशुभ बातें करते हैं। तुम उसे यथार्थ रूप में बताओ। तुम इसके बारे में निश्चिंत और बेखटके कहो। यह सुनकर भद्र हाथ जोड़कर बोला- राजन्! वे कहते हैं श्रीराम ने समुद्र में पुल बाँध कर बड़ा दुष्कर कर्म किया जो पहले किसी देवता अथवा दानवों ने भी नहीं सुना होगा। परन्तु उनके हृदय में एक शंका है कि जिस सीता को रावण अपनी गोद में उठाकर लंका ले गया, और अपने क्रीड़ाकानन अशोक बाटिका में रखा और इस प्रकार वे रावण के वश में होकर वहाँ बहुत दिनों तक रहीं,... उसी सीता से आपको प्रेम करते देख उन्हें बड़ा आश्चर्य होता है। राजा ही ऐसा करेगा तो प्रजा भी

उसका अनुकरण करेगी। यह सुनकर श्रीराम ने पीड़ित होकर समस्त सुहृदों से पूछा- आप लोग बताइए क्या भद्र ठीक कह रहा है? तब सब ने दीनतापूर्ण वाणी में कहा- भद्र का यह कथन निःसन्देह सत्य है। सब के मुख से ऐसी बात सुनकर राम ने तत्काल सबको विदा कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४३)

चौवालीसवाँ सर्ग

श्रीराम के बुलाने पर सब भाइयों का आना

सुहृदों को विदा करके श्रीराम ने द्वारपाल को बुलाकर कहा- तुम शीघ्र जाकर भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को यहाँ बुला लाओ। यह आदेश पाकर द्वारपाल कुछ ही क्षणों में तीनों भइयों को बुला लाया और श्रीराम के पास जाकर बोला- प्रभो! आपके सभी भाई द्वार पर उपस्थित हैं। तब श्रीराम ने सिर झुकाए हुए द्वारपाल को आदेश दिया- तुम तीनों राजकुमारों को शीघ्र मेरे पास ले आओ। तब श्रीराम की आज्ञा पाकर वे तीनों कुमार सिर झुकाए, हाथ जोड़े भवन के भीतर आये। उन्होंने देखा कि श्रीराम का मुख सन्ध्याकाल के सूर्य की भाँति प्रभा शून्य हो रहा था। वहाँ तीनों भाई रामचन्द्र को प्रणाम कर खड़े हो गए। तब श्रीराम ने उनका आलिंगन करते हुए कहा- तुम सब लोग परम नीतिज्ञ और बुद्धिमान् हो। इस समय मैं जो कार्य तुम्हारे सामने उपस्थित करने वाला हूँ उसका तुम सब को मिलकर सम्पादन करना है। उस समय श्रीराम के मुख से ऐसी बात सुनकर सभी चौकन्ने होकर सोचने लगे- न जाने महाराज हमसे क्या कहना चाहते हैं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौवालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४४)

पैंतालीसवाँ सर्ग

श्रीराम का लोकापवादों के विषय में भाइयों को बताना

अपने सब भइयों के आने पर श्रीराम ने सूखे मुख से उनसे कहा-

बन्धुओं! पुरवासियों ने यहाँ मेरे और सीता के विषय में जो चर्चा चलाई है उसी को बता रहा हूँ। उनकी यह सब बातें मेरे हृदय को विदीर्ण किए देती हैं। मैंने इक्ष्वाकुवंश में जन्म लिया है तथा सीता भी जनक के कुल में जन्मी हैं। लक्ष्मण! तुम तो जानते ही हो कि किस प्रकार रावण निर्जन वन में सीता को हरकर ले गया और मैंने उसका विध्वंस भी कर डाला। तत्पश्चात् सीता ने तुम्हारे ही सामने अग्नि में प्रवेश किया था और अग्निदेव ने उन्हें निर्दोष बताया था। इस प्रकार शुद्ध विचार वाली सीता को देवताओं और गंधर्वों के सम्मुख इन्द्र ने मुझे सौंपा था। मेरी अन्तरात्मा भी उन्हें शुद्ध समझती है। यही सोचकर मैं उन्हें अयोध्या भी ले आया। किन्तु अब यह महान् अपयश फैलने लगा है। बन्धुओं! मैं लोकनिंदा के भय से अपने प्राणों और तुम सबको भी त्याग सकता हूँ। फिर सीता को त्यागना कौन सी बात है। अतः लक्ष्मण! कल सबेरे तुम, सारथि सुमंत्र के साथ, सीता को लेकर इस राज्य की सीमा के बाहर छोड़ दो। फिर सीता को वन में छोड़कर तुम शीघ्र लौट आओ। सीता के विषय में अब कोई बात कहना मुझे कष्टप्रद होगा। जो मेरे इस आज्ञा के बीच कूदकर कुछ अनुनय विनय करेंगे वे मेरे शत्रु होंगे। सीता ने पहले मुझसे कहा था कि मैं गंगा तट पर ऋषियों का आश्रम देखना चाहती हूँ अतएव उनकी यह इच्छा भी पूरी की जाए। इस प्रकार कहते हुए उनकी दोनों आँखें आँसुओं से भीग गयीं फिर वे लम्बी साँस लेते हुए भाइयों के साथ महल में चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४५)

छियालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का सीता को गंगा तट पर छोड़ने के लिए जाना

उस रात के बीतने पर जब सुबह हुई तो लक्ष्मण ने सुमंत्र को रथ तैयार करने की आज्ञा दी। तत्पश्चात् शीघ्रगामी घोड़ों से जुते सुन्दर बिछौने से युक्त रथ के आने पर लक्ष्मण राज महल में जाकर सीता से बोले- देवि! आपने महाराज से मुनियों के आश्रम पर जाने के लिए वर माँगा था। अब राजा की आज्ञा से शीघ्र आपको ऋिषियों के आश्रम तक ले चलूँगा।

महात्मा लक्ष्मण के ऐसा कहने पर सीता सहर्ष उनके साथ चलने को तैयार हो गईं। उस समय सीता ने नाना प्रकार के आभूषण और धन, रत्न लिये और बोलीं- इन्हें मैं मुनि पत्नियों को दूँगी। तब लक्ष्मण बहुत अच्छा कहकर उन्हें रथ पर चढ़ाकर वन की ओर चल दिए। उस समय सीता लक्ष्मण से बोलीं- रघुनंदन! इस समय मुझे बहुत अपशकुन दिखाई पड़ रहे हैं और मेरी अधीरता पराकाष्ठा को पहुँच रही है। यह सुनकर लक्ष्मण ने दुखित होकर कहा- माता! ईश्वर सब का कल्याण करेगा। तदनन्तर गोमत्ती के तट पर पहुँचकर उन सब ने रात बिताई। फिर प्रातः काल उठकर लक्ष्मण ने सारथि से कहा- सारथे! जल्दी रथ जोतो। और वे सीता को लेकर पापनाशिनी गंगा के तट पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर लक्ष्मण गंगा की जल धारा को देखकर फूट-फूट कर रोने लगे। तब लक्ष्मण को अत्यंत व्यथित देखकर सीता बोलीं-आज मेरी अभिलाषा पूरी हुई। इस हर्ष के समय तुम रो कर मुझे दुखी क्यों करते हो? मैं तो श्रीराम से बिछुड़कर इस प्रकार शोक नहीं कर रही हूँ फिर तुम इतने नादान क्यों बनते हो? मुझे गंगा पार ले चलो तपस्वी मुनियों के दर्शन कराओ। मैं उन्हें वस्त्र और आभूषण दूँगी। फिर एक रात ठहरकर हम लोग अयोध्यापुरी लौट चलेंगे। सीता के यह वचन सुनकर लक्ष्मण ने अपनी दोनों आंखें पोछीं और सीताजी को नाव पर बैठाकर उन्हें गंगा के पार पहुँचाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छियालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४६)

सैंतालीसवाँ सर्ग

लक्ष्मण का सीता जी को उनके त्यागे जाने की बात बताना

तदनन्तर गंगा के पार पहुँचकर लक्ष्मण आँखों में आँसू भरकर बोले- विदेहनन्दिनी! आज रघुनाथ जी ने, बुद्धिमान होकर भी मुझे यह काम सौंपा है जिसके कारण लोक में हमारी बड़ी निंदा होगी। इसके बजाय मेरी मृत्यु हो जाती तो यह मेरे लिए अत्यंत कल्याण कारक होता। इसके लिए आप प्रसन्न हों और मुझे कोई दोष न दें। इतना कहकर लक्ष्मण हाथ जोड़े हुए पृथ्वी पर गिर पड़े। तब सीता उद्विग्न होकर बोलीं- लक्ष्मण! क्या बात

है? तुम इस तरह संताप क्यों कर रहे हो। तुम्हारे भाई तो कुशल से हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि सारी बातें सच-सच बताओ। तब लक्ष्मग ने कहा- वैदेही! नगर और जनपद में आपके विषय में भयंकर अपवाद फैला है। उन अपवादों को सुनकर ही श्रीराम ने ऐसा किया है। उसे मैं आपके सामने बता भी नहीं सकता। यद्यपि आप सबके सामने निर्दोष सिद्ध हो चुकी हैं फिर भी महाराज ने लोकापवाद के भय से आपको त्यागा है। शुभ्रे! यह रहा गंगा के किनारे महर्षियों का तपोवन। वहीं मुनिवर वाल्मीकि रहते हैं। आप उन्हीं का आश्रय लेकर सुखपूर्वक रहें। देवि! आप श्रीराम चन्द्र को हृदय में रखकर पतिव्रत्य धर्म का पालन करें। यही आपके लिए कल्याण कारी होगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सैंतालीसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४७)

अड़तालीसवाँ सर्ग

सीता का दुःखपूर्वक वचन और श्रीराम के लिए उनका संदेश

लक्ष्मण जी का यह कठोर वचन सुनकर सीता को बड़ा दुख हुआ। वे दो घड़ी के लिए मूर्च्छितहो गईं फिर होश आने पर वे दुखी होकर लक्ष्मण से बोलीं- लक्ष्मण! निश्चय ही विधाता ने मेरे शरीर को दुख भोगने के लिए ही रचा है। पहले वनवास ने मुझे पति के सहित होने पर भी घोर कष्ट पहुँचाया था। अब पति के बिना ही इस वनवास को भोगना कितना कष्टदायक होगा। मैं उन मुनियों से पति के द्वारा त्यागे जाने का क्या कारण बताऊँगी। इस समय मैं गंगा में डूबकर भी प्राण नहीं दे सकती क्योंकि इससे कुल हँसाई होगी। लक्ष्मण! अब तुम मेरी चिंता न करके राजा की आज्ञानुसार मुझे त्यागकर अयोध्या वापस लौट जाओ। वहाँ पहुँचकर सासुओं को मेरा प्रणाम कहना और महाराज को मेरा यह संदेश भी सुनाना- रघुनन्दन! सीता सदैव आपके चरणों की अनुगामिनी रही है। आपने मुझे अपयश से डर कर त्यागा है। अतः आपकी जो लोक निंदा हो रही है उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है। आप सदैव धर्म का पालन करते हुए राज्य करना और अपने प्रजाओं के साथ वैसा ही बर्ताव करना जैसा

Mookerji sharma (H S) Jammu Collection

कि अपने भाइयों के साथ करते हैं। पतिव्रता स्त्री के लिए पति का कार्य प्राण देकर भी करना उचित होता है इसलिए वे मेरे शरीर की चिंता न करें। मेरी ओर से यह भी कहना कि मैं गर्भवती हूँ और इसके लिए लक्ष्मण तुम स्वयं देखते जाओ। सीता के इन वचनों को सुनकर लक्ष्मण को महान् कष्ट हुआ और उन्होंने सीता को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा की और फिर दुख से भरकर बोले- कल्याणी! मैंने पहले भी आपका सम्पूर्ण रूप कभी नहीं देखा है फिर आज श्रीराम के अनुपस्थिति में मैं आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ। इतना कह लक्ष्मण सीता को पुनः प्रणाम करते हुए नाव पर चढ़ गए और मल्लाह को नाव चलाने की आज्ञा दी। उस समय सीता लक्ष्मण को क्रमशः दूर होते हुए देखकर उद्विग्न हो उठी क्योंकि उस समय उन्हें अपना कोई रक्षक नहीं दिखाई दिया। अब वे दुख में भरकर जोर से विलाप करने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अड़तालिसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४८)

उनचासवाँ सर्ग

मुनिकुमारों से समाचार पाकर वाल्मीकि का सीता के पास जाना

जहाँ सीता रो रही थीं वहीं से थोड़ी दूर पर ऋषियों के कुछ बालक थे। वे उन्हें रोते देखकर अपने आश्रम की ओर दौड़े और मुनि से जाकर बोले- भगवन्! किन्हीं तेजस्वी नरेश की पत्नी गंगा के तट पर रो रही हैं। ऐसी स्त्री हम लोगों ने आज तक नहीं देखी। लगता है ये साध्वी देवी अपने लिए कोई रक्षक ढूँढ़ रही हैं अतः आप उनकी रक्षा कीजिए। उन मुनिकुमारों की बात सुनकर धर्मज्ञ महर्षि ने असली बात को जान लिया और वे उस स्थान पर दौड़े आए जहाँ विदेहनन्दिनी सीता विद्यमान थीं। ऋषि को जाते देख उनके शिष्य भी उनके पीछे-पीछे हो लिए। तब सीता के निकट पहुँचकर मुनि ने कहा- पतिव्रते! मैंने योगबल द्वारा सब वृतान्त जान लिया है। तुम राजा जनक की पुत्री और श्रीराम की भार्या हो। लोकापवाद से डरकर तुम्हारे पति ने तुमको त्याग दिया है लेकिन मैंने योगबल से यह जान लिया है कि तुम निष्पाप हो। अब तुम मेरा अर्घ्य स्वीकार कर मेरे आश्रम में मुनि पत्नियों के साथ निवास करो। उनके साथ रहकर तुम अपना सारा कष्ट

भूल जाओगी। यह सुनकर सीता ने महर्षि को प्रणाम किया और महर्षि की आज्ञा पालन करती हुई उनके आश्रम चल दी। वहाँ सीता को देखकर मुनि पत्नियों ने महर्षि के पास आकर कहा- मुनि श्रेष्ठ! आप का स्वागत है। अब हमारे लिए जो आज्ञा हो बताइए। उस समय वाल्मीकि जी बोले- यह सती सीता राजा दशरथ की बहू और राजा जनक की पुत्री हैं। निष्पाप होने पर भी इनके पति ने इन्हें त्याग दिया है। अब इनकी रक्षा करती हुई तुम आदर सहित इन्हें अपने पास रखो। इतना कहकर महर्षि शिष्यों के साथ फिर वापस लौटे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में उनचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (४९)

पचासवाँ सर्ग

लक्ष्मण और सुमंत्र की बातचीत

सीता का जब मुनि के आश्रम में प्रवेश हो गया तब यह देखकर लक्ष्मण सुमंत्र से बोले- सूत! सीता के वियोग से बढ़कर श्रीराम चन्द्र को और क्या दुख हो सकता है। किन्तु उन्होंने पुरवासियों की बात सुनकर ही ऐसा किया। यह कर्म मुझे अत्यंत निर्दयता पूर्ण जान पड़ता है। सीता जी के विषय में अन्यायपूर्ण बात करने वालों के कारण ही श्रीराम को ऐसे कीर्तिनाशक कर्म में प्रवृत्त होना पड़ा। तब लक्ष्मण से यह बात सुनकर सारथि ने कहा- लक्ष्मण! आपको इसके लिए दुखी नहीं होना चाहिए क्योंकि यह बात ब्राह्मणों ने दशरथ जी के सामने ही जान ली थी। उन दिनों दुर्वासा जी ने कहा था कि श्रीराम को शीघ्र ही प्रियजनों का वियोग होगा। दीर्घकाल होने पर श्रीराम तुमको मिथिलेश कुमारी तथा शत्रुघ्न को त्याग देंगे। तब दशरथ जी ने मुझसे कहा था कि तुम्हें दूसरे लोगों के सामने यह बात नहीं बतानी चाहिए। पर तुम्हारी इच्छा देखकर मैंने उनकी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया। दैवी प्रकोप के कारण यह जो दारुण दुःख श्रीराम को मिला है उसका सारा वृतान्त मैं तुम्हें सुना रहा हूँ। परन्तु यह भेद भरत और शत्रुघ्न पर कभी न प्रकट होने पाए। तब लक्ष्मण ने उन्हें विश्वास दिलाते हुए कहा- सूत! अब मुझे उस कथा को विस्तार पूर्वक बताने का कष्ट

Mookerji sharma (I P S) Jammu Collection

करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पचासवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५०)

इक्यावनवाँ सर्ग

मार्ग में सुमंत्र का भृगु ऋषि के शाप की कथा कहना

तब लक्ष्मण की प्रेरणा से सुमंत्र दुर्वासा की कही हुई बतों को सुनाते हुए बोले- अग्नि के पुत्र ऋषि दुर्वासा प्रति वर्ष वशिष्ठ के आश्रम पर आया करते थे। एक दिन आपके पिता भी वसिष्ठ मुनि के दर्शनार्थ उनके आश्रम में गये। वहाँ दुर्वासा मुनि को उपस्थित देखकर उन्होंने दोनों मुनिवरों को प्रणाम किया। तब मुनियों ने भी उन्हें बैठने के लिए उचित आसन दिया। उस समय किसी बात के प्रसंग में दुर्वासा मुनि से राजा दशरथ ने पूछा- मुनिवर! हमारा कुल कब तक चलेगा। श्रीराम तथा अन्य पुत्रों की आयु कितनी है? महर्षि! कृपया इस भविष्य को बताकर मेरी जिज्ञासा कोशान्त कीजिए। तब दुर्वासा ने कहा- राजन्! सुनिए। मैं आपको यह सब पुराने इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली कथाएं सुना रहा हूँ। पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में दैत्य देवताओं से पराजित होकर भृगुमुनि की पत्नी के पास शरण के लिए पहुँचे। तब उन्होंने उनकी रक्षा के लिए अभयदान दे दिया। दैत्यों को भृगु पत्नी द्वारा इस प्रकार रक्षित होते देख विष्णु क्रोधित हो उठे और उन्होंने उसी क्रोध में भुगुपत्नी का शीश अपने चक्र से काट डाला। इससे महर्षि भृगु ने भी उनहें शाप देते हुए कहा- नारायण! स्त्री अवध्य होती है किन्तु आपने इसके बारे में जरा भी विचार न किया और मेरी स्त्री को ही मारकर उससे मेरा वियोग करा दिया। इसलिए आप को मनुष्य लोक में जन्म लेना पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षों तक आपको पत्नी वियोग का कष्ट उठाना पड़ेगा। किन्तु इस प्रकार का शाप देकर उन्हें बड़ा पश्चाताप हुआ और इसके लिए वे विष्णु से प्रार्थना करने लगे। तब भगवान् विष्णु ने कहा कि लोक हित के लिए मैं तुम्हारा यह शाप ग्रहण कर रहा हूँ। राजन्! भृगु ने "जिस विष्णु को शाप दिया था वही विष्णु इस लोक में तुम्हारे पुत्र श्रीराम के रूप में अवतीर्ण हुए हैं। भृगु के शाप से होने वाला पत्नी-वियोग रूप जो

महान् फल है वह उन्हें अवश्य प्राप्त होगा। वे दीर्घकाल तक अयोध्या के राजा होकर रहेंगे और ग्यारह हजार वर्षों तक राज्यकर बैकुण्ठ धाम को पधारेंगे। उनको सीता के गर्भ से दो पुत्र भी प्राप्त होंगे। इतना कहकर दुर्वासा मुनि चुप हो गए। तब राजा दशरथ उन मुनियों को प्रणाम कर अपने नगर लौटे। लक्ष्मण! उस समय दुर्वासा मुनि की कही हुई बातें मैंने भी सुनीं और उन्हें हृदय में धारण कर लिया। जैसा दुर्वासा मुनि का वचन है असके अनुसार श्री रघुनाथ जी सीता के पुत्रों का अयोध्या के बाहर ही अभिषेक करेंगे। अतएव रघुनंदन! अब विधाता का ऐसा विधान समझकर आपको सीता तथा रघुनाथ जी के लिए विलाप नहीं करना चाहिए। उस समय सुमंत्र के मुख से यह अद्भुत् बात सुनकर लक्ष्मण को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ। फिर सूर्य के अस्ताचल चले जाने पर दोनों ने केशिनी नदी के तट पर रात बिताई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इक्यावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५१)

बावनवाँ सर्ग

अयोध्या पहुँचकर लक्ष्मण का दुखी राम से मिलना

केशिनी के तट पर रात बिताकर लक्ष्मण प्रातः काल उठे और वहाँ से आगे बढ़े फिर अयोध्या पहुँचकर वे सोचने लगे, मैं श्रीराम के चरणों के समीप जाकर क्या कहूँगा। तत्पश्चात् राम का भवन सामने ही दिखलाई पड़ने पर वे रथ से उतर कर बेरोक टोक भीतर चले गए। उस समय श्रीराम दुखी होकर एक सिंहासन पर बैठे थे और उनके नेत्र आँसुओं से भरे थे। तब लक्ष्मण उनके पैरों को पकड़ते हुए दीनवाणी में बोले- महाराज! मैं सीताजी को गंगातट पर वाल्मीकि आश्रम के निकट छोड़ कर आपकी सेवा में लौट आया हूँ। पुरुष सिंह! अब आप चिंतित न हों। काल की ऐसी ही गति है। संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अंत मरण। भगवन्! आप आत्मा को संयत रखने में समर्थ हैं। अब आपका शोक पर काबू पाना कठिन नहीं। क्योंकि इससे आपके ऊपर पुनः एक अपवाद लग जाएगा। अतः आप चित्त को एकाग्र कर शोक का त्याग करें। लक्ष्मण के ऐसा कहने

पर श्रीराम बड़ी प्रसन्नता के साथ लक्ष्मण से बोले- तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया। इससे मुझे बड़ा संतोष है। अब तुम्हारे वचनों द्वारा मेरे हृदय से संताप निकल गया है और इससे मुझे बहुत शान्ति मिली है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५२)

तिरपनवाँ सर्ग

राजा नृग को मिलने वाली शाप की कथा

तदनन्तर श्रीराम ने कहा- लक्ष्मण! अब मेरे मन में जो बात है उसे सुनो और सुनकर वैसा ही करो। इस समय पुरवासियों का काम किए हुए मुझे चार दिन व्यतीत हो चुके हैं। अतः तुम पुरोहित और मंत्रियों को बुलाओ और जिन पुरुषों और स्त्रियों को मुझसे कोई काम हो उन्हें उपस्थित करो। प्रजा का काम न करने वाला राजा घोर नरक में पड़ता है। सुना जाता है कि बहुत पहले यहाँ नृग नाम से प्रसिद्ध एक सत्यवादी राजा थे। उन नरदेव ने किसी समय पुष्कर तीर्थ में जाकर ब्राह्मणों को सुवर्ण से भूषित बछड़ों से युक्त एक करोड़ गौयें दान में दीं। उस समय दूसरे गौओं के साथ-साथ एक गरीब ब्राह्मण की बछड़े सहित गाय वहाँ चली आई थी और राजा ने संकल्प करके उसे भी किसी को दान में दे दिया। तब ब्राह्मण बहुत वर्षों तक उसे खोजते हुए इधर-उधर भटकता रहा। आखिर एक दिन कनखल में उसने उस गाय को एक ब्राह्मण के घर देखा- तब उस दरिद्र ब्राह्मण ने उसे अपने दिए हुए शबला नाम से पुकारा। जिसे सुनकर वह गाय उस ब्राह्मण के पीछे हो ली। अब उसका स्वामी भी उस ब्राह्मण के पास पहुँचकर बोला- ब्राह्मण! यह गौ मेरी है। इसको मुझे राजा नृग ने दान में दिया है। फिर तो इसी बात पर दोनों में विवाद शुरू हो गया और इस तरह लड़ते झगड़ते वे दोनों राजा नृग के पास जा पहुँचे। वे राजभवन के दरवाजे पर बहुत दिनों तक टिके रहे पर उन्हें राजा का न्याय नहीं मिला। इससे वे दोनों राजा को शाप देते हुए बोले- तुम प्रार्थी पुरुषों को दर्शन न देकर छिपे हुए हो। अतएव तुम सब प्राणियों से छिपकर रहनेवाले गिरगिट हो जाओगे। फिर जब भगवान् विष्णु वासुदेव नाम से इस धरती पर

अवतरित होंगे तभी तुम्हारा उद्धार होगा। इस तरह राजा नृग उस शाप का उपभोग कर रहे हैं। अतः कार्यार्थी पुरुष मेरे सामने उपस्थित किए जाएँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तिरपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५३)

चौवनवाँ सर्ग

राजा नृग का पुत्र को राज्य देकर शाप का उपभोग करना

श्रीराम की यह बात सुनकर लक्ष्मण श्रीराम से बोले- राजा नृग को थोड़े से अपराध पर ब्राह्मणों ने जो शाप दिया उस पर राजा नृग ने उन ब्राह्मणों से क्या कहा? सौम्य राजा नृग को जब यह पता चला कि वे दोनों ब्राह्मण चले गए तब उन्होंने मंत्रियों, पुरवासियों एवं पुरोहितों को बुलवाकर कहा- आप लोग सावधान होकर मेरी बातें सुनें। नारद और पर्वत ये दोनों ऋषि इन ब्राह्मणों को बताए हुए शाप को मुझे बताकर ब्रह्मलोक को चले गए। अब वसु नामक राजकुमार को राज्य पर अभिषिक्त कर मेरे लिए एक ऐसा गड्ढा बनवायें जिसका स्पर्श सुखद हो। एक गड्ढा वर्षा का निवारण करने वाला, दूसरा सर्दी से बचाने वाला तथा तीसरा गर्मी से बचाने वाला हो। उन गड्ढों के किनारे फल और फूल वाले वृक्ष और लताएं लगवा दी जाएं। बेटा! तुम धर्मानुकूल प्रजा का पालन करो। हमारे विपरीत आचरण करने से हमारी जो दशा हो रही है उसे तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो। अतः तुम इसके लिए संताप न करो। जिसने मुझे संकट में डाला है वह प्राचीन कर्म ही अनुकूल प्रतिकूल फल देने वाला है। उन्हीं कार्यों के अनुसार मनुष्य उन वस्तुओं को पाता है। जिन्हें वह पाने का अधिकारी रहता है। इतना अपने पुत्र से कहकर राजा ने अपने रहने के लिए सुन्दर ढंग से तैयार किए गए गड्ढे में प्रवेश किया और अपने शाप को भोगना आरम्भ किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौवनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५४)

पचपनवाँ सर्ग

राजा निमि और वसिष्ठ का एक दूसरे के शाप से देहत्याग

श्रीराम बोले- लक्ष्मण! यदि इस कथा के अलावा दूसरी कथा सुनने की इच्छा हो तो सुनो। तब लक्ष्मण बोले- महाराज! ऐसी कथा सुनने से मेरी तृप्ति नहीं हो रही है। यह सुनकर श्रीराम ने दूसरी कथा आरम्भ की- लक्ष्मण! महात्मा इक्ष्वाकु के पुत्रों में निमि नामक जो बारहवें पुत्र थे उन्होंने गौतम के आश्रम के निकट एक नगर बसाया जिसका नाम वैजयन्त रखा। उस नगर को बसाकर राजा ने यह विचार किया कि वह एक ऐसा यज्ञ का अनुष्ठान करें जो दीर्घ काल तक चलता रहे। इस यज्ञ को कराने के लिए उन्होंने वसिष्ठ जी को चुना। उस समय वसिष्ठ जी ने कहा- देवराज इन्द्र ने एक यज्ञ के लिए मेरा पहले से ही वरण किया है, जब तक वह यज्ञ समाप्त न हो जाए आप मेरा इंतजार करें। वसिष्ठ के चले जाने पर महर्षि गौतम आकर उस यज्ञ को पूरा कराने लगे। तब निमि ने भृगु, अत्रि और अंगिरा को बुलाकर गौतम मुनि के आचार्यत्व में हिमवान् पर्वत के निकट यज्ञ आरम्भ कर दिया। गौतम मुनि इस यज्ञ को पाँच हजार वर्षों तक कराते रहे। उधर इन्द्र का यज्ञ पूर्ण कर जब वसिष्ठ मुनि निमि के यज्ञ के लिए लौटे तो उस यज्ञ को गौतम के आचार्यत्व में पूरा होते हुए देखकर बड़े क्रुद्ध हो गए और राजा से मिलने के लिए एक मुहूर्त तक दरवाजे पर खड़े रहे। परन्तु उस दिन राजा निमि निद्रा के वशीभूत हो गए थे। इसलिए वसिष्ठ ने उन्हें शाप दिया- राजन्! यज्ञ कराने का मुझको निमंत्रण देकर तुमने दूसरों से यज्ञ पूर्ण कराया। इसलिए मेरे इस तिरस्कार के फलस्वरूप तुम्हारा यह शरीर अचेतन होकर गिर जाएगा। तदनन्तर राजा की नींद खुली तो शाप की बात सुनकर वे वसिष्ठ से बोले- मुझे आपके आगमन की बात मालूम नहीं थी, इसलिए सो रहा था। परन्तु फिर भी क्रोध में आकर आपने मुझे शाप दे दिया है। अतः ब्रह्मर्षे! चिरन्तर शोभा से युक्त आपका शरीर भी अचेतन होकर गिर जाएगा। इसमें संदेह नहीं। इस प्रकार रोष के वशीभूत हुए परस्पर शाप देकर वे दोनों ही विदेह हो गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पचपनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५५)

छप्पनवाँ सर्ग

ब्रह्मा जी के कहने से वसिष्ठ का वरुण के वीर्य में आवेश

तदनन्तर श्रीराम के मुख से यह कथा सुनकर लक्ष्मण जी ने पूछा- राजन्! निमि और वसिष्ठ ने अपने पुराने शरीर को त्याग कर नया शरीर कैसे प्राप्त किया। तब रामचन्द्र जी ने कहा- लक्ष्मण! निमि और वसिष्ठ दोनों तपस्वी तो थे ही अतः देह को त्याग कर वे वायु के रूप में विचरने लगे। उस समय वसिष्ठ जी दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिए बह्मा जी के पास गए और उनसे बोले- भगवन्! मैं राजा निमि के शाप से देहहीन हो गया हूँ। अतः इस कष्ट से छुटकारा दिलाने के लिए आप मुझे दूसरे शरीर की प्राप्ति कराएं। तब ब्रह्मा जी बोले- द्विजश्रेष्ठ! तुम मित्र और वरुण के छोड़े हुए वीर्य में प्रवेश कर जाओ। वहाँ जाने पर अयोनिज रूप से उत्पन्न हो फिर मेरे वश में आ जाओगे। तब ब्रह्मा जी के ऐसा कहने पर वे वरुण लोक को चले गए। उन दिनों मित्र देवता भी वरुण के साथ रहकर समस्त देवेश्वरों से पूजित हो रहे थे। उसी समय अकस्मात उर्वशी सखियों समेत उस स्थान पर आई। तब वरुण ने उसके सौंदर्य को देखकर उसे समागम के लिए आमंत्रित किया। लेकिन उस समय उर्वशी हाथ जोड़कर वरुण से बोली देवेश्वर! मित्र देवता ने मेरा वरण पहले से ही कर लिया है। यह सुनकर काम के वशीभूत हुए वरुण ने कहा- यदि तुम मुझसे समागम नहीं करना चाहती हो तो मैं तुम्हारे समीप ही इस देव निर्मित कुंभ में अपना यह वीर्य छोड़ दूंगा और सफल मनोरथ हो जाऊँगा। तब उर्वशी के 'ऐसा ही हो' कहने पर वरुण ने अपने वीर्य को उस कुंभ में डाल दिया। तदनन्तर मित्र देवता के पास गई। किन्तु उस समय मित्र ने कुपित हो उर्वशी से कहा- दुराचारणि! पहले मैंने तुझे समागम के लिए आमन्त्रित किया था फिर तूने किसलिए मुझे त्याग कर दूसरे पति का वरण किया। इसलिए अब तू मेरे क्रोध से कलुषित हो कुछ काल तक मनुष्य लोक में जाकर निवास करेगी। अब तू काशी देश के राजा पुरुरवा के पास चली जा। वे ही तेरे पति होंगे। तदनन्तर वह पुरुरवा के पास चली गई। वहाँ उसके गर्भ से आयु नामक महाबली पुत्र हुआ, जिसके पुत्र नहुष थे। फिर नहुष ही इन्द्र के छिप जाने पर एक लाख वर्ष तक इन्द्र के पद पर प्रतिष्ठित हुए। इधर उर्वशी भी भूतल

पर अनेक वर्षों तक रही। तत्पश्चात् शाप के क्षय होने पर वह पुनः इन्द्र सभा में चली गई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छप्पनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५६)

सत्तावनवाँ सर्ग

वसिष्ठ का नूतन शरीर धारण

उस दिव्य और अद्भुत कथा को सुनकर लक्ष्मण को बड़ी प्रसन्नता हुई। तब उन्होंने श्री रघुनाथ जी से फिर पूछा- ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी पुनः नूतन शरीर कैसे प्राप्त किया? श्रीराम ने यह सुनकर कहा- रघुश्रेष्ठ! काम से पीड़ित हो जिस कुंभ में वरुण ने वीर्य छोड़ा था। उर्वशी को शाप देकर मित्र ने भी उसी कुंभ में अपना वीर्य त्याग दिया। उस कुंभ से अगस्त्य जी का जन्म हुआ। फिर कुछ समय बाद उसी कुंभ से वसिष्ठ जी का जन्म हुआ। यही वसिष्ठ जी हमारे इक्ष्वाकुवंश के पुरोहित हैं। अब जिस प्रकार राजा निमि की दूसरी उत्पत्ति हुई उसे भी सुनो। शाप के कारण निमि के देह त्याग देने पर भी ऋषियों ने अपना यज्ञ जारी रखा। उस समय राजा का शव गन्धमाला और वस्त्रों में रखकर सुरक्षित रखा गया। फिर यज्ञ समाप्त होने पर जब भृगु मुनि राजा को जीवित करने लगे तब देवताओं ने प्रसन्न होकर कहा- राजन्! बताओ तुम्हारी आत्मा कहाँ स्थापित करें। यह सुनकर राजा निमि की आत्मा ने कहा- सम्पूर्ण जीवधारियों की आँखों में मेरा निवास रहे। तब देवताओं ने निमि की जीवात्मा से कहा- ऐसा ही होगा। तुम वायु रूप होकर समस्त प्राणियों के नेत्रों में विचरते रहोगे और वायु रूप से विचरते हुए आपके सम्बन्धों में जो थकावट होगी उसका निवारण करके विश्राम पाने के लिए प्राणियों के नेत्र बार-बार बंद हो जाया करेंगे। ऐसा कहकर सब देवता चले गए। फिर महात्मा ऋषि पुत्र के लिए राजा निमि के देह को अरणि से मथने लगे। मथने से राजा के शरीर से एक पुत्र निकला। मथने से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम मिथि हुआ। अचेतन शरीर से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम विदेह पड़ा और अपने अद्भुत जन्म के कारण जनक कहलाए। मिथि नाम के कारण जनक वंश

मैथिल कहलाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सत्तावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५७)

अट्ठावनवाँ सर्ग

ययाति को शुक्राचार्य का शाप

तत्पश्चात् लक्ष्मण ने पूछा- नृपश्रेष्ठ! राजा निमि जिस समय यज्ञ की दीक्षा लिए हुए थे उस समय उनको शाप देकर ऋषि ने उनके साथ उचित बर्ताव नहीं किया? तब राम ने कहा- सौम्य! सभी पुरुषों में वैसी क्षमा नहीं दिखाई देती जैसे ययाति में थी। सुनो, राजा नहुष के पुत्र ययाति को दो अनुपम स्त्रियाँ थीं। ययाति वृष पर्वादैत्य की कन्या शर्मिष्ठा को शुक्राचार्य की कन्या देवयानी से अधिक प्रेम करता था। कालान्तर में शर्मिष्ठा और देवयानी से क्रमशः पुरू और यदु नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। किन्तु राजा पुरु के गुणों के कारण, उसे अधिक प्यार करता था। इससे यदु के मन में बड़ा दुख हुआ और वह अपनी माता से बोला- माँ! तुम देव स्वरूप शुक्राचार्य के कुल में उत्पन्न हुई हो फिर भी यहाँ हार्दिक दुःख और अपमान सहती हो। इससे बचने के लिए आओ हम दोनों ही अग्नि में प्रवेश कर जाएं। यदि तुम राजा का दैत्य पुत्री के साथ रमण करना सह सकती हो तो सहो- लेकिन फिर मुझे ही प्राण त्याग करने की आज्ञा दो। तब अपने पुत्र की बात सुनकर देवयानी को भी बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तत्काल अपने पिता शुक्राचार्य का स्मरण किया। तब शुक्राचार्य के पूछने पर देवयानी बोली- राजा हम माँ-बेटे का बड़ा अपमान करते हैं। इससे हम दोनों को बड़ा कष्ट है। अब हम अग्नि में प्रवेश कर अपना प्राण त्याग देंगे। देवयानी की यह बात सुनकर शुक्राचार्य क्रोध में भरकर ययाति को लक्ष्यकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया-ययाति! तुम मेरी कन्या का अपमान कर मेरी भी अवहेलना कर रहे हो। इसलिए तुम वृद्ध के समान होकरसर्वथा शिथिल हो जाओ। शुक्राचार्य राजा ययाति को ऐसा शाप देकर वहाँ से चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अट्ठावनवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५८)

Mookerji sharma (I.E.S) Jammu Collection

उनसठवाँ सर्ग

ययाति का अपने पुत्र पुरु को अपना बुढ़ापा देकर बदले में उसका यौवन लेना

शुक्राचार्य के कुपित होने का समाचार सुनकर ययाति को बड़ा दुःख हुआ। उन्हें ऐसी वृद्धावस्था प्राप्त हुई थी जो दूसरों की जवानी से बदली जा सकती थी। इसलिए उस वृद्धावस्था को पाकर राजा ने अपने पुत्र यदु से कहा-धर्मज्ञ यदु! स्त्रियों के साथ भोग करने से मेरी तृप्ति नहीं हुई। अतः कुछ दिनों के लिए तुम मेरी वृद्धावस्था लेकर अपनी युवावस्था मुझे दे दो। यदु ने तब यह सुनकर ययाति से कहा- आप अपने लाडले बेटे पुरु से ही इस अवस्था का परिवर्तन करें। यदु की बात सुनकर राजा ने पुरु से कहा- महाबाहो! मेरी सुख सुविधा के लिए तुम मेरे इस वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो। तब पुरु हाथ जोड़कर बोले- पिताजी मैं धन्य हुआ। आपकी आज्ञा पालन करने के लिए हर तरह से तैयार हूँ। इस समय पुरु की इस स्वीकारोक्ति को सुनकर ययाति ने अपनी वृद्धावस्था पुरु में संचारित कर दी और स्वयं तरुण होकर सहस्रों यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए कई हजार वर्षों तक पृथ्वी का पालन किया। इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होने पर एक दिन राजा ने पुरु से कहा- पुत्र! अब तुम धरोहर के रूप में रखी हुई वृद्धावस्था मुझे लौटा दो। तुमने मेरी आज्ञा का पालन किया। इसलिए अब राजा के पद पर तुम्हारा अभिषेक करूँगा। तत्पश्चात् राजा देवयानी के बेटे से कुपित होकर बोले- यदु! तुमने मेरी आज्ञा न मानकर मेरा अपमान किया। इसलिए तुम भयंकर राक्षसों और यातुधानों को जन्म दोगे। तुम्हारी संतति भी तुम्हारे ही समान उद्दण्ड होगी। तब राजा ने पुरु को राज्य का उत्तराधिकारी बनाकर वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश किया और पुरू राजा बनकर धर्म से संयुक्त हो उस राज्य का पालन करने लगे। उधर यदु ने भी नगर में तथा दुर्गम क्रौंचवन में सहस्रों यातुधानों को जन्म दिया। लक्ष्मण! शुक्राचार्य के इस शाप को राजा ययाति ने क्षत्रिय धर्म के अनुसार ग्रहण कर लिया किन्तु राजा निमि ने वसिष्ठ जी के शाप को सहन नहीं किया। इसलिए हम सत्पुरुषों के विचार का ही अनुसरण करेंगे जिससे हमें राजा नृग की भाँति दोष न प्राप्त हो। इसलिए हे सौम्य! तुम उठो और राज्य कार्य के लिए आए

हुए प्राणियों को बुलाओ। इस बातचीत के प्रसंग में ही आकाश अरुण किरणों से रंजित हो लाल दिखाई देने लगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में उनसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (५९)

प्रक्षिप्त सर्ग-१

श्रीराम के द्वार पर कार्यार्थी कुत्ते का आगमन

तदनन्तर प्रातः काल होने पर सन्ध्योपासनादि से निवृत हो श्रीराम वसिष्ठ, कश्यप, आदि मंत्रियों से सुशोभित हो राज सभा में बैठे। इस समय श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने द्वार पर खड़े होकर कार्यार्थियों को पुकारा। किन्तु श्रीराम के शासन काल में कार्यार्थी ही न दिखलाई पड़ा। तब लक्ष्मण ने श्रीरघुनाथ जी को राज्य की स्थिति बताई। तदनन्तर प्रसन्न हुए श्रीराम ने पुनः कहा- लक्ष्मण! तुम एक बार फिर जाओ और कार्यार्थी पुरुषों का पता लगाओ। श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण पुनः राज भवन के बाहर निकले। इसके बाद उन्होंने द्वार पर एक कुत्ते को खड़ा हुआ देखा जो उन्हीं की ओर देखकर बारम्बार भौंक रहा था। तब लक्ष्मण ने उससे पूछा- महाभाग! तुम निर्भय होकर बताओ तुम्हारा क्या काम है? लक्ष्मण की बात सुनकर कुत्ता बोला -मैं अभय देने वाले श्रीराम के सम्मुख ही अपना काम बता सकता हूँ। यह सुनकर लक्ष्मण इसकी सूचना देने के लिए श्रीराम के पास गए और फिर लौटकर उससे बोले- यदि तुम्हें कुछ कहना है तो चलकर राजा से कहो। यह सुनकर कुत्ता बोला- सुमित्रा नंदन, हम अधर्म योनि में उत्पन्न होने वाले जीव स्वेच्छा से वहाँ जाने योग्य नहीं हैं। इसलिए इस भवन में प्रवेश करने हेतु उनकी अनुमति आवश्यक है। तब लक्ष्मण ने राज भवन में प्रवेशकर श्रीराम से कहा- इस समय एक कुत्ता कार्यार्थी के रूप में आपके द्वार पर खड़ा है। तब श्रीराम ने उसे सहर्ष अन्दर बुला लिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में प्रक्षिप्त सर्ग पूरा हुआ। (१)

प्रक्षिप्त सर्ग-२

कुत्ते के प्रति श्रीराम का न्याय

श्रीराम की आज्ञा पाकर लक्ष्मण उस कुत्ते को राजभवन में बुला लाए। उस कुत्ते का मस्तक कट गया था। यह देखकर श्रीराम ने उससे कहा- सौम्य! तुम्हें जो कुछ कहना हो उसे मेरे सामने कहो! यहाँ तुम्हें कोई भय नहीं। तब कुत्ता बोला- महाराज! राजा धर्म का रूप होकर प्रजा का पालन करता है। आप धर्म रूप गुणों के सागर हैं। सारी बातों को आप जानते हैं। मैं एक तुच्छ बुद्धि वाला जीव हूँ यदि अज्ञान वश कोई अनुचित बात निकल जाए तो क्षमा कीजिएगा। आप धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते हुए शरण में आए हुए को निर्भय करते हैं। हे अशरण शरण! मुझे सर्वार्थसिद्धि नामक प्रसिद्ध भिक्षु ने डण्डा मारा है। जबकि मैंने उसका कोई अपराध नहीं किया था। तब श्रीराम ने तुरन्त एक द्वारपाल भेजकर सर्वार्थ सिद्धि नामक ब्राह्मण को बुलवाया और कुत्ते को निरपराध मारने का कारण पूछा। इस पर भिक्षुक बोला- राजन्! मैं भूख से पीड़ित होकर भिक्षा के लिए घूम रहा था कि दुर्भाग्य से भिक्षा मिली और यह कुत्ता मेरा मार्ग रोके खड़ा था। तब मैं भूख से व्याकुल तो था ही इसलिए इस कुत्ते पर मुझे क्रोध आ गया और मैंने इसे एक डंडा मार दिया। प्रभो! अब मैं इस अपराध के लिए अवश्य दण्डनीय हूँ। तब श्रीराम ने सभासदों से पूछा- इसके लिए मुझे कौन सा दण्ड देना चाहिए। उस सभा में भृगु कुत्स वसिष्ठ आदि अनेक महर्षि मौजूद थे। उस समय वे सब महामुनि से बोले- आप राज दण्ड के ज्ञाता हैं और स्वयं विष्णु हैं। इसलिए आप जो उचित समझें दण्ड दें। तथापि ब्राह्मण को प्राण दण्ड देना शास्त्र के विरुद्ध है। इसी बीच कुत्ता बोला- राजन्! इस भिक्षुक को दण्ड देने के लिए मेरी प्रार्थना है कि आप इसे दण्ड देने हेतु कालन्जर के एक मठ का महन्त बना दीजिए। यह सुनकर श्रीराम ने उसे कालन्जर का महन्त बना दिया। तब वह ब्राह्मण बड़े हर्ष के साथ हाथी पर सवार होकर वहाँ से चला गया। तत्पश्चात् मंत्रियों ने श्रीराम से पूछा- राजन्! आपने इसे दण्ड देने की अपेक्षा दान से सम्मानित किया है। यह कैसा दण्ड है? उस समय श्रीराम ने उस कुत्ते से कहा- तुम इस दण्ड का भेद बताकर हमारे सभी मंत्रियों का कौतूहल दूर करो। तब कुत्ता बोला-

Mookerji sharma (FTS) Jammu Collection

रघुनन्दन! पूर्व जन्म में मैं महन्त था। धर्माचरण करता हुआ ब्राह्मणों और देवताओं की पूजा किया करता था। किन्तु तो भी मुझे यह अधम गति प्राप्त हुई। फिर तो यह क्रोधी ब्राह्मण मठाधीश होकर अपने साथ ही ऊपर और नीचे के सात-सात पीढ़ियों को भी नरक में गिराकर रहेगा। क्रोधी और अधर्मी ब्राह्मण जो देवता और बालकों तथा स्त्रियों का धन हर लेता है एवं जो अपनी दान दी हुई सम्पत्ति को फिर वापस ले लेता है वह इष्टजनों सहित नष्ट हो जाता है। श्रीराम! जो ब्राह्मण और देवताओं का धन हड़प लेता है वह निश्चय ही एक नरक से दूसरे नरकों में गिरता रहता है। कुत्ते की बात सुनकर श्री रघुनाथ जी बड़े विस्मित हुए और तब वह कुत्ता भी काशी में जाकर कुत्ते योनि में उत्पन्न होने के कारण अन्न जल छोड़कर अपना प्राण त्याग दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में प्रक्षिप्त सर्ग-२ पूरा हुआ। (२)

साठवाँ सर्ग

श्रीराम के दरबार में च्यवन आदि ऋषियों का आना

श्रीराम और लक्ष्मण इस तरह कथा वार्ता करते हुए प्रतिदिन प्रजापालन के कार्य में लगे रहते। एक दिन प्रातः काल होते ही जब श्रीराम राज सभा में आए तो सुमंत्र ने आकर कहा- राजन्! तपस्वी च्यवन मुनिको आगे करके द्वार पर अन्य कई महर्षि खड़े हैं। किन्तु द्वारपाल ने उन्हें भीतर आने से रोक दिया है। तब श्रीराम ने आज्ञा देकर तुरन्त उन ऋषियों को राज भवन के भीतर बुलवाया। उन तपस्वी महात्माओं की संख्या सौ से अधिक थी। उन्होंने तीर्थों के जल और अनेक प्रकार के फल श्रीराम के सामने रखे। तब मुनियों का यथोचित सत्कार करने के बाद श्रीराम ने उनसे पूछा- तपस्वी गण! हमारे योग्य जो सेवा कार्य हो बताइए। यह सेवक आपकी आज्ञा पाने योग्य है। आज्ञा मिलने पर मैं बड़े सुख से आपकी सभी इच्छाओं को पूरी कर सकता हूँ। तब वे महात्मा हर्ष के साथ बोले- राजन्! हम बहुत से महाबली राजाओं के पास गए। किन्तु हमारे कार्य के गौरव को समझकर किसी ने उसमें रुचि नहीं दिखलाई। किन्तु

आपने हमारे प्रति आदर का भाव रखते हुए उसको पूर्ण करने की प्रतिज्ञा की है। इसलिए आप हमारे इस कार्य को अवश्य कर सकेंगे। इसमें संशय नहीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में साठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६०)

इकसठवाँ सर्ग

ऋषियों का लवणासुर के बल और अत्याचार का वर्णन

तब श्रीराम चन्द्र ने पूछा- महर्षियों बताइए मुझे आपका कौन-सा कार्य करना है। श्रीराम के ऐसा पूछने पर च्यवन ऋषि बोले नरेश्वर! सत्य युग में लोला का ज्येष्ठ पुत्र मधु नामक एक बड़ा बुद्धिमान दैत्य था। उसकी मित्रता देवताओं के साथ भी थी। उसने शिव की आराधना करके उनसे एक चमचमाता हुआ शूल प्राप्त किया था जिसे देते समय भगवान् शिव ने कहा था- महान् असुर! जब तक तुम ब्राह्मणों और देवताओं का विरोध नहीं करोगे तब तक यह शूल तुम्हारे पास रहेगा अन्यथा यह अदृश्य हो जाएगा। जो पुरुष निःशंक होकर तुम्हारे सामने युद्ध के लिए आएगा उसे भस्म करके यह शूल पुनः तुम्हारे हाथ में लौट आएगा। तब वह शंकर जी से बोला- भगवन्! आपसे प्रार्थना है कि यह शूल मेरे वंशजों के पास भी सदा रहे। तब भगवान् शिव बोले- तुम्हारी वाणी निष्फल न हो। इसलिए मेरा वर है कि यह शूल तुम्हारे एक पुत्र के पास बराबर रहेगा और जब तक यह शूल उसके हाथ में रहेगा वह सदा अन्य प्राणियों के लिए अवध्य बना रहेगा। श्रीराम कालान्तर में उसकी स्त्री से लवण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बहुत ही दुष्टात्मा था। बचपन से ही लवण की पाप कर्मों में प्रवृत्ति होते देख मधु दुखी होकर इस लोक को छोड़कर वरूणालय को चला गया। साथ ही शिव द्वारा प्राप्त उस शूल का प्रभाव भी अपने पुत्र को बता गया जिसके प्रभाव से लवणासुर तीनों लोकों को पीड़ित कर रहा है। अतः श्रीराम! जैसे आपने रावण को मारा है वैसे ही इसे भी मारकर हम लोगों की रक्षा करें। हम लोग पृथ्वी के समस्त राजाओं के पास हो आए हैं किन्तु किसी से हमें अभय दान नहीं मिला। आप इस कष्ट को दूर करने में समर्थ हैं

अतएव हमारी इस अभिलाषा को पूर्ण करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६१)

बासठवाँ सर्ग

श्रीराम का लवणासुर के आहार-विहार के विषय में पूछना

ऋषियों के इस प्रकार कहने पर श्रीराम ने उनसे हाथ जोड़कर पूछा- लवणासुर क्या खाता है? उसका आचरण कैसा है तथा वह रहता कहाँ है? यह सुनकर ऋषियों ने कहा- श्रीराम! वैसे तो लवणासुर सभी वस्तुओं को खाता है क्रिन्तु तपस्वीगणों को वह विशेष रूप से खाता है। मधुवन में रहता हुआ वह सहस्त्रों सिंह, मृग और ऋषियों को अपना भोजन बनाता है। यह सुनकर श्रीराम बोले- महर्षियो! आप लोग चिंता छोड़ दीजिए। मैं उस दैत्य का वध कर दूँगा। फिर श्री रघुनाथ जी ने अपने भाइयों को सम्बोधित करके कहा- तुममें से कौन उस राक्षस का बध करेगा। तब भरत बोले- यह राक्षस मेरे हिस्से में रहा, इसका बध मैं करूँगा। यह सुनकर शत्रुघ्न अपने आसन से खड़े होकर बोले- नरेश्वर! आपके चले जाने पर भ्राता भरत ने बड़े कष्ट से जीवन व्यतीत किया है उस समय ये फल-फूल खाकर रहते हुए चीर वस्त्र ही धारण किया करते रहे। अतः अब इतना क्लेश उठाने के बाद यह मुझ जैसे सेवक के रहते हुए अधिक कष्ट न उठाएं। तब शत्रुघ्न की यह बात सुनकर श्री राम ने कहा- काकुत्स्थ! अब तुम ही मेरे इस आदेश का पालन करो। मैं तुम्हें मधु के सुन्दर नगर में राजा के पद पर अभिषिक्त कराऊँगा। तुम यमुना जी के तट पर सुन्दर जनपदों की स्थापना कर सकते हो। क्योंकि जो किसी राजा के वंश का उच्छेद कर उसकी राजधानी में किसी दूसरे राजा को स्थापित नहीं करता वह नरक में पड़ता है। अब तुम चुपचाप मेरी बात स्वीकार करो। बालकों को अपने बड़ों की आज्ञा का अवश्य पालन करना चाहिए। मेरा दिया हुआ यह राज्य लो। वसिष्ठ आदि गुरू मंत्रोच्चारण के साथ तुम्हारा अभिषेक करेंगे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बासठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६२)

तिरसठवाँ सर्ग

श्रीराम द्वारा शत्रुघ्न का राज्याभिषेक

श्रीराम के ऐसा कहने पर शत्रुघ्न लज्जित होकर बोले-नरेश्वर! बड़े भाई के होते छोटे भाई का राज्याभिषेक होना उचित नहीं प्रतीत होता। फिर भी मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। मेरे मुख से जो अनुचित शब्द निकल गए थे उसी का परिणाम है कि मेरी इस प्रकार की दुर्गति हो रही है। मुझे भाई भरत के बोलने पर कुछ उत्तर नहीं देना चाहिए था लेकिन मैंने उसमें दखल दिया इसलिए आपने ऐसा आदेश दिया। भगवन्! अब मेरे लिए जो आज्ञा हो चुकी है उसके विरुद्ध मैं कुछ नहीं बोलूँगा। राजन्! मैं आपकी इच्छा का पालन तो अवश्य करूँगा लेकिन इसमें मुझे जो अधर्म प्राप्त होता है उसका नाश आप करें। शत्रुघ्न के ऐसा कहने पर श्रीराम भरत तथा लक्ष्मण आदि से बोले- तुम लोग सावधानी से राज्याभिषेक की सामग्री जुटाओ। मैं शत्रुघ्न का अभिषेक करूँगा। तत्पश्चात् सब सामग्री एकत्र हो जाने पर श्रीराम ने शत्रुघ्न का अभिषेक किया। इस पर नगरवासियों ने आनन्द मनाया और राजा दशरथ की रानियों ने मंगल गीत गाए। तदनन्तर श्रीराम ने शत्रुघ्न से मधुरवाणी में कहा- सौम्य! मैं तुमको यह दिव्य बाण देता हूँ। इसी से तुम लवणासुर का बध करो। महाप्रलय होने पर भगवान् विष्णु ने इस बाण को उत्पन्न किया था और इससे उन्होंने मधु कैटभ को मारकर सृष्टि की रचना की थी। शत्रुघ्न मैंने रावण का बध करने के लिए भी इस बाण का प्रयोग नहीं किया था क्योंकि इससे बहुत से प्राणियों के नष्ट होने की आशंका थी। शंकर जी ने एक त्रिशूल मधु दैत्य को दिया था वही त्रिशूल अब लवणासुर के पास है। उसका वह प्रतिदिन बारम्बार पूजा करता है और उसे महल में गुप्तरूप से रखकर समस्त दिशाओं में जाकर अपने लिए आहार संग्रह करता है। जब कोई युद्ध की इच्छा रखकर उसे ललकारता है तब वह उसी शूल से अपने विपक्षी को मार देता है। अब इस बात को ध्यान में रखकर तुम लवणासुर के बाहर जाते ही उसके घर के द्वार पर खड़े हो जाना जिससे वह शूल तक न पहुँच सके और जब तुम उस राक्षस को महल में घुसने के पहले ही उसे युद्ध के लिए ललकारोगे तब उसका बध अवश्य कर सकोगे। इसलिए मैंने तुम्हें

Mookerji sharma (IT-S) Jammu Collection

शूल से बचने की आवश्यक बातें बता दी हैं क्योंकि महादेव जी के विधान को पलटना बहुत कठिन काम है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तिरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६३)

चौंसठवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा पाकर शत्रुघ्न का प्रस्थान

श्रीराम ने शत्रुघ्न को समझाया- पुरुष श्रेष्ठ शत्रुघ्न! तुम अपने साथ हाथी, घोड़े, रथ तथा आवश्यक सामग्रियों को ले जाओ। दस लाख मुद्रा भी अपने साथ रख लो। रघुनंदन! तुम अपने सैनिकों को सदा प्रसन्न रखने की कोशिश करते हुए इस विशाल सेना को आगे भेजकर तुम पीछे से अकेले ही धनुष लेकर जाना जिससे मधु पुत्र लवण को जरा भी संदेह न हो सके। सौम्य! जैसा मैंने बताया है, उसके सिवा उसके बध का दूसरा कोई उपाय नहीं क्योंकि जो शूल सहित लवणासुर के दृष्टिपथ में आता है वह अवश्य मारा जाता है। तत्पश्चात् श्रीराम के समझाने पर शत्रुघ्न जी ने अपने प्रधान सेनापतियों को बुलाकर कहा- तुम लोग गंगातट पर ठहर जाना। तत्पश्चात् शत्रुघ्न ने कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, राम, लक्ष्मण, भरत, वसिष्ठ आदि को प्रणाम कर युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६४)

पैंसठवाँ सर्ग

महर्षि वाल्मीकि का शत्रुघ्न को कल्माषपाद की कथा सुनाना

अपनी सेना को आगे भेजकर अयोध्या में एक मास रहने के पश्चात् शत्रुघ्न अकेले, ही मधुवन के मार्ग की ओर चल पड़े। फिर रास्ते में दो रात बिताकर वे महर्षि वाल्मीकि के पवित्र आश्रम पर जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर वे वाल्मीकि को प्रणाम कर बोले- भगवन्! मैं श्री रघुनाथ जी के कार्य से इधर आया हूँ। आज यहाँ एक रात बिताकर मैं फिर पश्चिम दिशा की ओर जाऊँगा। तब महर्षि उनका स्वागत करते हुए उन्हें फल मूल आदि खाने को

दिये। तत्पश्चात् फल मूल आदि खाकर वे महर्षि से बोले- मुने! इस आश्रम के निकट जो यज्ञ वैभव दिखाई देता है वह किसका है? महर्षि वाल्मीकि ने बताया- शत्रुघ्न! तुम्हारे पूर्वज सुदास इस भूमण्डल के स्वामी हो गए हैं। उनके वीर सह (पित्र सह) नामक एक पराक्रमी पुत्र था। एक दिन वह वन में शिकार खेलने गया। वहाँ उसने दो राक्षस देखे जो सब ओर निर्द्वन्द्व विचर रहे थे। वे दोनों राक्षस बाघ का रूप धारण कर कई हजार मृगों को खा गए थे लेकिन फिर भी उनकी तृप्ति नहीं हुई थी। तब सौदास की उन पर दृष्टि पड़ते ही वे क्रोध से भर उठे और उसमें से एक को अपने विशाल बाण से मार डाला। तब अपने साथी को मरा हुआ देखकर दूसरे ने संताप करते हुए सौदास से कहा- पापी नरेश! तूने मेरे निरपराध साथी का बध किया है इसलिए मैं इसका बदला लूँगा। ऐसा कह कर राक्षस अन्तर्धान हो गया और कुछ काल बाद सुदास का बेटा सौदास अयोध्या के राजा बने। उन सौदास ने ही इस आश्रम के समीप अश्वमेध नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया था। वसिष्ठ जी उसकी रक्षा करते थे। तदनन्तर यज्ञ समाप्ति के दिन वह राक्षस वसिष्ठ जी का रूप धारण करके आया- बोला राजन्! आज के दिन तुम हमें माँस युक्त भोजन दो। यह सुनकर राजा ने अपने कुशल रसोइये से कहा- तुम लोग आज माँस युक्त भोजन तैयार करो। यह सुनकर रसोइये को बड़ी घबराहट हुई। तब उस राक्षस ने ही रसोइये का वेष बनाकर और फिर मनुष्य माँस युक्त भोजन बनाकर राजा को लाकर दे दिया। राजा ने उस माँस युक्त भोजन को वसिष्ठ जी के सामने रखा। उस समय ब्रह्मर्षि वसिष्ठ तपोबल से सब बात जानकर बोले- तुमने मुझे मानव माँस दिया? अतः तुम नर भक्षी राक्षस हो जाओ। यह सुनकर सौदास को भी क्रोध आ गया और उन्होंने भी हाथ में जल लेकर वसिष्ठ जी को शाप देना चाहा। किन्तु उनकी पत्नी ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। तब सौदास ने उस जल को अपने पैरों में गिरा दिया जिससे उनका पाँव चितकबरा हो गया और वे कल्माषपाद कहलाए। तत्पश्चात् उन्होंने पत्नी सहित विनम्रतापूर्वक मुनि को प्रणाम करते हुए कहा- ब्रह्मर्षे! आप का ही रूप धारण कर मुझको किसी ने ऐसा करने के लिए प्रेरित किया था। वसिष्ठ जी ने यह सुनकर उनसे कहा- मैंने रोष में भरकर यह बात तुमसे कह दी

किन्तु अब इससे छूटने के लिए मैं तुम्हें एक वर दूँगा। राजन्! अब इस शाप का प्रभाव केवल बारह वर्षों तक रहेगा। इसके बाद इसका अंत हो जाएगा और मेरी कृपा से तुम्हें कुछ याद भी न रहेगा। इस प्रकार उन्होंने उसशाप को भोगकर पुनः अपना राज्य पाया। यह सुन्दर उद्यान वही है जिसके बारे में तुम पूछ रहे थे। तदनन्तर मुनि को प्रणाम कर शत्रुघ्न पर्ण कुटी में विश्राम करने चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पैंसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६५)

छाछठवाँ सर्ग

सीता के दो पुत्रों का जन्म

जिस रात को शत्रुघ्न ने पर्णशाला में प्रवेश किया उसी रात को सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उस समय कुछ मुनि कुमारों ने आकर वाल्मीकि जी को सीता के प्रसव का समाचार सुनाया- हे भगवन्! सीता ने दो पुत्र उत्पन्न किए हैं। तब वाल्मीकि बड़ी प्रसन्नता से उस स्थान पर पहुँचकर उस स्थान को भूतों और राक्षसों से रक्षा करने की व्यवस्था की। महर्षि वाल्मीकि ने कुशाओं का एक मुट्ठा और उनके लव लेकर उनके द्वारा उन दोनों बालकों के भूत बाधा का निवारण किया और उनका नाम कुश और लव रखा। तब उस समय आधीरात को श्रीराम और सीता के नाम गोत्र उच्चारण की ध्वनि शत्रुघ्न के कानों में पड़ी। साथ ही उन्हें सीता के दो सुन्दर पुत्र होने का संवाद भी मिला। तब वे सीता जी के पर्णशाला में गए। और बोले- माता जी! यह बड़े सौभाग्य की बात है। फिर सबेरा होने पर पर शत्रुघ्न मुनि से विदा होकर पश्चिम दिशा की ओर चल दिए। आठवें दिन वे च्यवन मुनि के आश्रम में जा पहुँचे और मुनियों से नाना प्रकार की कथाएँ सुनते हुए उन दिनों यमुना तट पर रात बिताने लगे।

इरा प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छाछठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६६)

सरसठवाँ सर्ग

च्यवन मुनि का शत्रुघ्न को लवणासुर के शूल शक्ति का परिचय देना

एक दिन रात को शत्रुघ्न ने च्यवन ऋषि से पूछा- ब्रह्मन्! लवणासुर में

[illegible] sharma (IAS) Jammu Collection

कितना बल है और उसकी शूल में कितनी शक्ति है? उसने शूल द्वारा किन योद्धाओं का बध किया है। यह सुनकर महर्षि च्यवन बोले- रघुनंदन! इस लवणासुर के दुष्कर्म असंख्य हैं। पूर्वकाल में अयोध्यापुरी में युवनाश्व के पुत्र राजा मान्धाता राज्य करते थे। उन्होंने पृथ्वी को अपने अधिकार में कर के देवलोक पर विजय पाने का उद्योग आरम्भ किया और स्वर्ग जा पहुँचे। तब उनके उस उद्योग से देवताओं को बड़ा भय हुआ। तब इन्द्र मान्धाता के पास जाकर बोले- पुरुष प्रवर! अभी तुम सारी पृथ्वी के ही राजा नहीं हुए। फिर देवताओं का लोक कैसे लेना चाहते हो? देखो न, अभी मधुवन में रहने वाला लवणासुर ही तुम्हारी आज्ञा को नहीं मानता। तब वे नरेश मुँह लटकाए हुए पुनः मृत्यु लोक आ पहुँचे और युद्ध की इच्छा से लवण के पास अपना दूत भेजा। उस दूत को देखते ही वह राक्षस उसे तुरन्त खा गया। अब राजा इससे क्रुद्ध होकर बाणों की वर्षा करके उस राक्षस को सब ओर से पीड़ित करने लगे। तब लवणासुर ने अपने शूल को मान्धाता का बध करने के लिए उन पर छोड़ दिया। और वह चमचमाता हुआ शूल सैनिकों सहित मान्धाता का बध करके लवणासुर के हाथ में आ गया। सौम्य! उस शूल की शक्ति असीम और सब से बढ़ी-चढ़ी है। राजन्! कल सबेरे जब तक वह राक्षस उस अस्त्र को न ले उससे पहले शीघ्रता से तुम उसका बध कर डालो और इस प्रकार निश्चय ही तुम्हारी विजय होगी। वह शूल लिए बिना जब मांस का संग्रह करने के लिए निकले तभी उसका बध कर डालो। नरेन्द्र इस तरह तुम्हारी विजय निश्चित होगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सरसठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६७)

अड़सठवाँ सर्ग

लवणासुर के आहार के लिए निकलना और शत्रुघ्न का उसके द्वार पर डट जाना

तब इस प्रकार बात-चीत करते हुए शत्रुघ्न की वह रात बात की बात में बीत गई। सुबह होने पर वह राक्षस मांस संग्रह करने के लिए घर से बाहर निकला। इसी बीच शत्रुघ्न यमुना नदी पार कर हाथ में धनुष लिए मधुपुरी

के द्वार पर खड़े हो गए। तत्पश्चात् मध्याह्न होने पर वह राक्षस हजारों प्राणियों का बोझ लिए वहाँ आ पहुँचा। उस समय उसने शत्रुघ्न को अपने घर के द्वार पर खड़े देखा। तब राक्षस उससे बोला- नराधम! इस हथियार से तू मेरा क्या कर लेगा। लगता है तेरे सिर पर काल मंडरा रहा है। ऐसा कहकर वह राक्षस बारम्बार हँसने लगा। यह देखकर शत्रुघ्न के नेत्रों से रोष के कारण अश्रुपात होने लगा और उस समय वह निशाचर से बोले- दुर्बुद्धे! मैं तेरे साथ द्वन्द्व युद्ध करना चाहता हूँ। मैं दशरथ का पुत्र एवं श्री राम का भाई हूँ। मेरा नाम भी शत्रुघ्न है। शत्रु का हनन करने वाला हूँ। अब तू मुझसे बचकर नहीं जा सकता। तब वह राक्षस बोला- दुर्मते! सौभाग्य की बात है कि आज तू मुझको स्वयं मिल गया। उन्होंने रावण, जो मेरी मौसी का भाई था, को मार डाला। तेरे पहले भी आए हुए सभी लोगों को तुच्छ समझकर तिरस्कृत किया। अब युद्ध की तेरी भी इच्छा है न? मैं तुझे भी अवसर दूँगा। पहले मुझे अस्त्रों से अपने को सुसज्जित कर लेने दे। यह सुनकर शत्रुघ्न बोले- किसी भी बुद्धिमान पुरुष को अपने सामने आए हुए शत्रु को छोड़ना नहीं चाहिए। अतः राक्षस! मैं अभी अपने तीखे बाणों द्वारा तुझ पापी को भी यमराज के घर भेजे देता हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६८)

उन्हत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न लवणासुर का युद्ध

तब शत्रुघ्न की बात सुनकर लवणासुर को बड़ा क्रोध हुआ। वह बोला- अरे! खड़ा रह, खड़ा । तदनन्तर लवण को इस प्रकार बोलते देख शत्रुघ्न ने कहा- राक्षस! जब तूने दूसरे वीरों को पराजित किया था, उस समय शत्रुघ्न का जन्म नहीं हुआ था। आज मेरे बाणों के द्वारा लोग तुझको भी धराशायी होते देखेंगे। शत्रुघ्न के ऐसा कहने पर लवण ने क्रोध में भरकर एक महान वृक्ष लिया और उसे शत्रुघ्न की छाती पर दे मारा। किन्तु शत्रुघ्न ने उसे अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े कर दिया। तब राक्षस ने असंख्य वृक्षों को उखाड़ कर शत्रुघ्न पर चलाए लेकिन शत्रुघ्न ने उन सब को काटते

हुए उस राक्षस पर बाणों की झड़ी लगा दी। किन्तु राक्षस उससे विचलित न होकर एक और वृक्ष उखाड़ा और उसे शत्रुघ्न के सर पर दे मारा। शत्रुघ्न इस चोट से कुछ क्षणों के लिए मूर्छित हो गए। इससे देवताओं और गंधर्वों के समूह में हाहाकार मच गया। तब उन्हें मरा हुआ समझ राक्षस न तो अपने घर में गया और न अपना शूल ले आया बल्कि वह अपनी उस भोजन सामग्री को एकत्र करने लगा। इस बीच दो ही क्षण में शत्रुघ्न को होश आ गया और उन्होंने श्रीराम के दिए अपने उस दिव्य तथा अमोघ बाण को हाथ में लिया। फिर तो बज्र के समान मुख और वेगवाले प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित तथा अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले उस दिव्य बाण से भयभीत होकर सम्पूर्ण जगत् व्याकुल हो गया। इससे देवता, दैत्य, ऋषि आदि घबड़ाकर ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। तब ब्रह्मा जी ने उन लोगों को समझाया कि यह बाण भगवान् विष्णु ने मधु कैटभ को मारने के लिए बनाया था। शत्रुघ्न भगवान के ही अंश हैं। इसलिए वे इस बाण से लवण का बध करेंगे। अतएव इससे तुम लोगों के व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं। यह सुनकर देवतागण वहाँ आ पहुँचे जहाँ शत्रुघ्न और लवणासुर का युद्ध हो रहा था। उस समय शत्रुघ्न ने कान तक धनुष की डोरी खींचकर लवणासुर की छाती में इतने जोरों से मारा कि वह उसकी छाती को चीरकर रसातल को चला गया और फिर वहाँ से लौटकर शत्रुघ्न के पास चला आया। उस बाण के लगते ही लवणासुर कटे हुए वृक्ष की भाँति गिर गया। उसके मारे जाने पर वह शूल सबके देखते ही देखते भगवान् रुद्र के पास चला गया। इस प्रकार उत्तम धनुष बाण धारण करने वाले शत्रुघ्न ने एक ही बाण से लवणासुर को मार कर तीनों लोकों के भय को नष्ट कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में उन्हत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (६९)

सत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न का देवताओं के वरदान पर मधुरापुरी बसाना

लवणासुर के मारे जाने पर इन्द्र आदि देवता शत्रुघ्न से बोले- वत्स!

लवणासुर मारा गया। अब इसके लिए तुम वर माँगो। देवताओं के वचन सुनकर शत्रुघ्न बोले- देवताओ! यह रमणीय मधुपुरी शीघ्र ही मनोहर राजधानी के रूप में बस जाए यही मेरी कामना है। तब देवताओं ने कहा- बहुत अच्छा! ऐसा ही होगा। यह रमणीय पुरी निःसन्देह शूरवीरों की सेना से भर जाएगी। ऐसा कहकर देवता स्वर्ग को चले गए। तब शत्रुघ्न ने गंगातट से अपनी सेना को बुलाया और शत्रुघ्न ने उस सेना को लेकर श्रावण मास से उस पुरी को बसाना शुरू किया। तब से बारहवें वर्ष तक वह पुरी तथा शूरसेन जनपद पूर्ण रूप से बस गया तथा वह सब सुख सुविधा से सम्पन्न हो गयी। वह पुरी यमुना के तट पर अर्ध चन्द्राकार बसी थी तथा अनेकानेक सुन्दर गृहों, चौराहों, बाजारों तथा गलियों से सुशोभित थी। लवणासुर द्वारा बनावाए हुए गृहों को भी सफेदी कराकर नाना प्रकार के चित्रों से सुसज्जित कर दिया गया। अनेकानेक उद्यान और बिहार स्थल उस नगर की शोभा बढ़ाने लगे। तत्पश्चात् मधुरापुरी बसाकर शत्रुघ्न के मन में यह विचार आया कि अयोध्या से आए बारह वर्ष हो गये अब मुझे वहाँ चलकर श्रीरघुनाथ जी के चरणों का दर्शन करना चाहिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७०)

इकहत्तरवाँ सर्ग

शत्रुघ्न का थोड़े से सैनिकों के साथ अयोध्या जाना

तत्पश्चात् बारहवें वर्ष में थोड़े से सेवकों और सैनिकों को साथ ले शत्रुघ्न ने श्रीराम पालित अयोध्या में जाने का विचार किया। अतः अपने मुख्य-मुख्य मंत्रियों तथा सेनापतियों को छोड़कर वे सौ रथ लेकर अयोध्या की ओर चल पड़े। मार्ग में सात-आठ स्थानों पर पड़ाव डालते हुए वे वाल्मीकि के आश्रम में आ पहुँचे और रात में वहीं ठहरे। वहाँ वाल्मीकि ने शत्रुघ्न को सहस्रों सुमधुर कथाएं सुनाईं। अन्त में बोले- पुरुष श्रेष्ठ! लवणासुर तुम्हारे द्वारा मारा गया इससे सारे जगत् में जो भय व्याप्त था वह शांत हो गया। नरश्रेष्ठ! मैं इन्द्र की सभा में बैठा था। जब वह विमानाकार सभा युद्ध देखने के लिए आई तब वहीं बैठे-बैठे तुम्हारे इस युद्ध को मैंने

भली भाँति देखा था। ऐसा कहकर वाल्मीकि ने शत्रुघ्न का मस्तक सूँघा तथा उनका उनके सेनाओं सहित सत्कार किया। . तत्पश्चात् शत्रुघ्न ने भोजन किया और श्रीराम चन्द्र जी के चरित्र का क्रमशः वर्णन सुना जो गीत की मधुरता के कारण बड़ा ही प्रिय जान पड़ा। उस बेला में जो राम चरित उन्हें सुनने को मिला वह पहले से ही काव्य वद्ध कर लिया गया था। वह काव्य गान वीणा के लय के साथ हो रहा था। संस्कृत भाषा में निर्मित होकर व्याकरण, छंद, काव्य आदि लक्षणों से सम्पन्न था।उस काव्य के सभी वाक्य सच्ची घटना को प्रतिपादित करते थे। तब वह अद्भुत काव्य गान सुनकर शत्रुघ्न दो घड़ी के लिए मूर्च्छित हो गए और उनकी आँखों से आँसू की धारा भी बहने लगी। राजा शत्रुघ्न के जो साथी थे वे नतमस्तक होकर बोले यह बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन बातों को हम पहले देख चुके हैं उन्हीं को इस आश्रम में ज्यों की त्यों सुन रहे हैं। तब विस्मय में पड़कर वे शत्रुघ्न से बोले-कि वाल्मीकि जी से इसके बारे में पूछें। किन्तु यह सुनकर शत्रुघ्न ने सैनिकों से कहा- मुनि के इस आश्रम में अनेक आश्चर्यजनक घटनाएं होती रहती हैं। उनके बारे में हमारा पूछ-ताछ करना उचित नहीं। इतना कहकर वे महर्षि को प्रणाम कर अपने खेमे में चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७१)

बहत्तरवाँ सर्ग

वाल्मीकि से विदा हो शत्रुघ्न का अयोध्या के लिए प्रस्थान

उस समय शत्रुघ्न राम चरित्र सम्बन्धी गान के विषय में रात में बहुत देर तक सोचते रहे। रात बीतते ही प्रातः वे नित्य कर्म करके मुनि वाल्मीकि से बोले- अब मैं श्री रघुनाथ जी का दर्शन करना चाहता हूँ। अतः आपकी आज्ञा से मैं अयोध्या जाना चाहता हूँ। उनकी आज्ञा प्राप्तकर वे शीघ्र अयोध्या पहुँचकर मंत्रियों के साथ घिरे हुए श्रीराम की सभा में पहुँचकर प्रणाम करते हुए बोले- महाराज! आपने मुझे जिस काम के लिए आज्ञा दी थी उसे कर आया हूँ। पापी लवण मारा गया और उसकी पुरी भी बस गई। रघुनंदन! आपका दर्शन किए बिना बारह वर्ष तो किसी तरह बीत गये।

अब अधिक काल तक आपसे दूर रहने का साहस मुझमें नहीं होता। शत्रुघ्न की बात सुनकर श्रीराम बोले- सौम्य! राजा परदेश रहने पर भी दुखी नहीं होते, बल्कि प्रजा का भलीभाँति पालन करते हैं। अपने सैनिकों के साथ सात दिन यहाँ रहकर तुम मधुरापुरी चले जाना। श्रीराम की ऐसी बात सुनकर वे दीन वाणी में बोले- जैसी प्रभु की आज्ञा! फिर सात दिन अयोध्या में ठहरकर शत्रुघ्न वहाँ से मधुरा जाने को तैयार हो गए। उस समय भरत और लक्ष्मण की सेना बहुत दूर तक उन्हें पहुँचाने आई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७२)

तिहत्तरवाँ सर्ग

एक ब्राह्मण का अपने मरे बालक को राजद्वार पर लाना

शत्रुघ्न को मधुरा भेजकर श्रीराम, भरत और लक्ष्मण के साथ प्रजा का धर्म पूर्वक पालन करने लगे। तदनन्तर कुछ दिनों बाद एक वृद्ध ब्राह्मण अपने पुत्र की लाश को गोद में लेकर दुःख से रोता हुआ राजद्वार पर आया और दुःख से कहने लगा- हाय! पाँच वर्ष की अवस्था में मेरे पुत्र को मृत्यु ने धर दबाया। मैंने पूर्व जन्म में ऐसा कौन-सा पाप किया था जिससे मैं अपने इकलौते बेटे की मृत्यु अपनी आँखों से देख रहा हूँ। बेटा! तू मेरे किस पाप के कारण असमय ही काल के गाल में चला गया। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी झूठ बोला हो या किसी को सताया हो फिर किस कारण यह पितृकर्म किए बिना बाल्यावस्था में यमराज के घर चला गया। निश्चय ही इसमें श्रीराम का ही कोई महान् दुष्कर्म है जिससे इनके राज्य में रहने वाले बालकों की मृत्यु होने लगी। राजन्! या तो इस बालक को जीवित कर दो अन्यथा मैं स्त्री समेत इस राजद्वार पर अनाथ की भाँति प्राण दे दूँगा। जब राजा दुराचारी होता है तभी प्रजा की अकाल मृत्यु होने लगती है। निश्चय ही राजा के किसी दोष से ही मेरा पुत्र मरा है। महात्मा इक्ष्वाकुवंशियों का यह राज्य अब अनाथ हो गया। इस तरह अनेक प्रकार के वाक्यों से उसने बारम्बार राजा के सामने दुःख निवेदन किया और शोक से संतप्त होकर अपने मरे हुए पुत्र को उठाकर हृदय से

लगाता रहा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड
में तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७३)

चौहत्तरवाँ सर्ग

एक शूद्र के अधर्म आचरण से ही बालक की मृत्यु का कारण

तब रामचन्द्र ने उस बाह्मण के करुण क्रन्दन से दुःखी होकर भाइयों सहित वसिष्ठ, वामदेव, कात्यायन, मार्कन्डेय, कश्यप, जावालि, गौतम और नारद आदि आठ ऋषियों और पुरवासियों को राज सभा में बुलाया और उस सभा में श्रीराम ने अत्यन्त दुखी होकर कहा- द्वार पर जो ब्राह्मण रो रहा है। उसके पुत्र के अकाल मृत्यु का क्या कारण हो सकता है। यह सुनकर नारद मुनि ने कहा- राजन्! उसके मृत्यु का कारण मैं बता रहा हूँ सुनिए। सत्ययुग में केवल ब्राह्मण ही तपस्या करते थे इसलिए किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। सत्ययुग के बाद त्रेता युग आया। इसमें सुदृढ़ शरीर वाले क्षत्रियों की प्रधानता हुई और वे क्षत्रिय भी उसी प्रकार तपस्या करने लगे। इस तरह वे ब्राह्मण के समान शक्तिशाली हो गए। तब मनु आदिधर्मप्रवर्तकों ने सर्वलोक सम्मत चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की स्थापना की। इस युग में अधर्म ने अपना एक पैर रखा है। इस प्रकार चतुर्थांश अधर्म संसार में फैल गया। सतयुग में कृषि से जीविका का चलाना मल के समान त्याज्य समझा जाता था और बिना किसी प्रयत्न के फल-फूल और अन्न आहार के लिए मिलते थे। त्रेता युग में इसी कृषि से जीविका करके लोग अधर्म फैलाने लगे। अधर्म के कारण त्रेता युग में मनुष्यों की आयुक्षीण होने लगी। वैश्य खेती करते थे और ब्राह्मणों और क्षत्रियों की सेवा करते थे तथा शूद्र तीनों वर्ण के लोगों की विशेष रूप से पूजा व आदर सत्कार करने लगे थे। इस प्रकार कृषि रूप अधर्म का एक पाँव वैश्यों और शूद्रों ने फैलाया। तब धीरे-धीरे ब्राह्मणों और क्षत्रियों का प्रभाव घट गया और इस तरह अधर्म का दूसरा पाँव संसार में फैला। तदनन्तर द्वापर युग में तपस्या रूप कर्म वैश्यों को भी प्राप्त होता है किन्तु नर श्रेष्ठ! शूद्र को इन तीनों युग में ही तपस्या करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। श्रीराम! अब एक समय ऐसा

आएगा जब हीन वर्ण का मनुष्य भी तपस्या करने लगेगा। अतएव महाराज! आपके राज्य की किसी सीमा पर कोई खोटी बुद्धिवाला शूद्र महान् तप का आश्रय लेकर तपस्या कर रहा होगा और इसी के कारण इस बालक की मृत्यु हुई। जब किसी राजा के राज्य में कोई अधर्म का काम करता है तो उसका वह कार्य राज्य के लिए दरिद्रता का कारण बन जाता है। अतः आप अपने राज्य में खोज कीजिए और जहाँ कोई दुष्कर्म दिखाई दे उसको रोकने की कोशिश कीजिए। इस से मुनष्यों की आयु बढ़ेगी और इस बालक को भी नया जीवन प्राप्त होगा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७४)

पचहत्तरवाँ सर्ग

श्री राम का पुष्पक विमान से घूमकर शूद्र तपस्वी का पता लगाना

नारद जी के अमृतमय वचन सुनकर श्रीराम चन्द्र को अपार आनन्द हुआ। तब उन्होंने लक्ष्मण से कहा- सौम्य! तुम ब्राह्मण को समझाकर उसके पुत्र के शव को सुगंधित तेल से भरी हुई नाद में रखने का प्रबंध करो जिससे वह खराब न हो। तब श्रीराम ने पुष्पक विमान का स्मरण किया। इससे पुष्पक विमान उपस्थित हो गया। तब श्री रघुनाथ जी भरत और लक्ष्मण को राज्य का कार्य सौंपकर महर्षियों का अभिवादन कर विमान पर आरूढ़ हो पश्चिम दिशा को गए। उस दिशा में बहुत खोजने पर भी कोई दुष्कर्मी न दिखाई पड़ा। तब उत्तर दिशा की ओर गए। फिर वहाँ से उन्होंने पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान किया। वहाँ भी सभी को निष्पाप देखकर वे दक्षिण दिशा में गए। वहाँ शैवल पर्वत के उत्तर भाग में उन्हें एक महान् सरोवर दिखाई दिया। उसी के किनारे एक तपस्वी को तपस्या करते देख श्रीराम वहाँ ठहर गए और तपस्वी से बोले- तुम किस प्रयोजन से इस वृक्ष में उल्टे लटककर घोर तपस्या कर रहे हो? तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र में किस वर्ग के हो इसे भी ठीक-ठीक बताओ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७५)

छिहत्तरवाँ सर्ग

श्रीराम के द्वारा शम्बूक का बध

भगवान् श्रीराम का यह वचन सुनकर वह तपस्वी बोला- श्रीराम! मैं शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं सदेह स्वर्ग में जाकर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ। इस लिए ऐसा उग्र तप कर रहा हूँ। मेरा नामशम्बूक है। वह इस प्रकार कह ही रहा था कि श्रीराम ने म्यान से चमचमाती हुई तलवार निकाली और उससे उसका सिर काट डाला। उस समय देवताओं ने श्रीराम पर फूल बरसाते हुए कहा- देव! आपने इसे मारकर देवकार्य किया है इसलिए हम लोग आप पर प्रसन्न हैं। अब इसके लिए कोई वरदान मांगिए। श्रीराम तब इन्द्र से हाथ जोड़कर बोले- यदि देवता मुझ पर प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मण पुत्र जीवित हो जाये। मैंने उसके सामने पुत्र जीवित कर देने की प्रतिज्ञा की थी। अतः वह झूठी न होने पाए। यह सुनकर देवताओं ने कहा- राजन्! जिस समय आपने शूद्र को मारा था उसी क्षण वह बालक जीवित होकर अपने मात-पिता से जा मिला। नर श्रेष्ठ! अब हम अगस्त्य मुनि को देखने जाते हैं। बारह वर्ष की घोर तपस्या करते हुए अब उनकी दीक्षा समाप्त हुई है। आप भी उन्हें देखने चलें। तब श्रीराम सहित देवता अगस्त्य मुनि के तपोवन में पहुँचे। अगस्त्य ने उन सब देवताओं का यथोचित सत्कार करके उन्हें विदा किया। तत्पश्चात् वे श्रीराम का अतिथि सत्कार करके बोले- राजन्! मुझे देवताओं से मालूम हुआ है कि आपने शूद्र का बध करके ब्राह्मण पुत्र को जिलाया है। रघुनंदन! आप साक्षात् नारायण हैं और ये सारा जगत् आप में ही व्याप्त है। कृपया आज की रात मेरे ही आश्रम में ठहर कर मुझे कृतार्थ करें। राजन्! यह विश्वकर्मा का बनाया दिव्य आभूषण है जो अपने दिव्य रूप और तेज से प्रकाशित है। आप इसे लीजिए क्योंकि यह आपके ही धारण करने योग्य है। तब श्रीराम ने अगस्त्य मुनि से कहा- भगवन्! दान लेने का काम तो केवल ब्राह्मण को ही निंदित नहीं है। फिर क्षत्रिय आपका दान कैसे ले सकता है? कृपया बताइए। तब श्रीराम के पूछने पर अगस्त्य मुनि बोले- पहले सत्ययुग में सारी प्रजा बिना राजा के ही थी। आगे चलकर इन्द्र देवताओं के राजा बनाए गए। तब सारी प्रजा ब्रह्मा जी के पास जाकर बोली- देव! आप

ने इन्द्र को देवताओं का राजा बनाया है। इसी तरह हमारे लिए भी किसी श्रेष्ठ पुरुष को राजा बना दीजिए। तब ब्रह्मा ने इन्द्र सहित सभी लोकपालों को बुलाकर कहा- तुम सब अपने-अपने तेज का एक-एक भाग दो। सब लोकपालों ने ऐसा ही किया। तब उन लोकपालों के तेज का थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर छींकने लगे जिससे क्षुप नामक राजा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने लोकपालों का अंश क्षुप को देकर प्रजा से कहा यही तुम्हारे राजा हैं। तब क्षुप ने इन्द्र के अंश से पृथ्वी का शासन, वरुण के अंश से प्रजा का पालन, कुबेर के अंश से प्रजा के धन धान्य की समृद्धि और यम के अंश से दंडनीय प्रजा को दण्ड दिया। अतः श्रीराम! आप राजा हैं और समस्त लोकपालों का अंश आप में विद्यमान है। इसलिए इन्द्र के अंश का यह आभूषण स्वीकार कीजिए। यह सुनकर सूर्य के समान प्रकाशित उस आभूषण को ग्रहण करते हुए श्रीरामचन्द्र ने पूछा- यह अद्भुत तथा दिव्य आभूषण से युक्त अलंकार आपको कैसे प्राप्त हुआ। तब अगस्त्य मुनि बोले- श्रीराम! इसके लिए मैं चतुर्युगी के त्रेतायुग में जैसा वृत्तान्त घटित हुआ उसे बता रहा हूँ।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७६)

सतहत्तरवाँ सर्ग

महर्षि अगस्त्य का एक स्वर्गीय पुरुष के शव भक्षण का प्रसंग सुनाना

श्रीराम! त्रेतायुग में एक बहुत ही विस्तृत वन था। उस वन में न कोई पशु था न कोई पक्षी। सौम्य! उस वन में तपस्या हेतु उत्तम स्थान का पता लगाने के लिए ही मैं वहाँ गया था। उस वन के मध्य भाग में एक सरोवर था। उसका जल पीने में बहुत स्वादिष्ट था। उसमें कीचड़ न होकर वह सर्वथा निर्मल था। उस सरोवर के पास ही एक पुराना आश्रम था जिसमें एक भी तपस्वी नहीं था। पुरुष प्रवर मैं जेठ की एक रात उस आश्रम में रहा। तत्पश्चात् सबेरे उठकर स्नानादि के लिए उस सरोवर पर गया। उस समय मुझे वहाँ एक शव दिखाई दिया। प्रभो! मैं उस शव के बारे में सोचता हुआ वहीं बैठ गया कि उसी समय मैंने वहाँ एक दिव्य विमान उतरते देखा। उसमें मैंने एक स्वर्गवासी देवता को बैठे हुए देखा जिनके साथ

सहस्रों अप्सराएं दिव्य आभूषणों के साथ बैठी हुई थीं। श्रीराम! फिर उस स्वर्गवासी पुरुष ने विमान से उतरकर देखते ही देखते उस शव का भक्षण किया। उस मांस का भक्षण कर वे उस सरोवर में हाथ-मुँह धोकर विमान पर चढ़ने को उद्यत हुए। तब मैंने उस देव तुल्य पुरुष से पूछा- सौम्य! आप कौन हैं और ऐसा घृणित कार्य क्यों किया? नरेश्वर! तब उन्होंने मेरी बातें सुनकर यह सब मेरे सामने बताया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७७)

अट्ठहत्तरवाँ सर्ग

राजा श्वेत का इस घृणित कार्य का कारण बताना

अगस्त्य जी बोले- श्रीराम! तब मेरे पूछने पर उस स्वर्गीय पुरुष ने कहा- महर्षि इसके लिए मैं अपने पूर्व जन्म की कथा सुनाता हूँ उसे सुनिए! पूर्व काल में मेरे पिता सुदेव विदर्भ देश के शासक थे। उन्होंने मेरी माता के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न किए। मेरा नाम श्वेत और मेरे भाई का नाम सुरथ रखा गया। पिता के स्वर्गवासी होने पर मैंने एक हजार वर्ष तक प्रजा का पालन किया। तत्पश्चात् अपनी मृत्यु को करीब जानकर मैं सुरथ को राज्य सौंपकर इस निर्जन स्थान पर तपस्या करने आया। तत्पश्चात् तीन हजार वर्ष तक कठिन तपस्या करने के बाद मैंने ब्रह्मलोक प्राप्त किया। किन्तु ब्रह्मलोक में भी मैं भूख प्यास से दुखी रहने लगा। तब मैंने ब्रह्मा जी से इसके बारे में पूछा- भगवन्! इस लोक में तो किसी को भूख प्यास नहीं लगती फिर किस कारण से मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं।आखिर यह मेरे कौन-से पाप का फल है। अतः पितामह! मुझे बताएं कि मैं किस वस्तु का भोजन करूँ। तब यह सुनकर ब्रह्मा जी ने कहा- सुदेव नंदन! तुमने तपस्या करते समय अपने ही शरीर के पुष्ट रहने की ओर ध्यान दिया है- किन्तु दान रूपी बीज बोये बिना यहाँ कुछ भी नहीं जमता। अतएव तुम्हारे हृष्ट-पुष्ट शरीर का सुस्वादु माँस ही तुम्हारा आहार है। श्वेत! फिर जब महर्षि अगस्त्य इस वन में पधारेंगे तब तुम इस कष्ट से छुटकारा पा जाओगे। महाबाहो! वे देवताओं का भी उद्धार करने में समर्थ हैं फिर तुम जैसे पुरुष

को संकट से छुड़ाना उनके लिए कौन-सा कठिन कार्य होगा। महर्षि! तब से मैं ब्रह्मा जी की आज्ञा से प्रतिदिन इस स्थान में आकर इस निंदित भोजन को करता हूँ। अब आप ही मुझको इस गहन पाप से बचाइए। क्योंकि आप निश्चित रूप से अगस्त्य ही हैं। मुझसे आप इस आभूषण का दान स्वीकार करें। मुझे कृपा प्रसाद प्राप्त कराएं। उस समय स्वर्गीय राजा की दुख भरी बात सुनकर मैंने उसका उत्तम आभूषण ले लिया। फिर उस आभूषण को लेते ही श्वेत का वह पूर्व शरीर अदृश्य हो गया और राजा भी सुख पूर्वक स्वर्ग चले गए। काकुत्स्थ! यह अद्‌भुत दिखाई पड़ने वाला दिव्य आभूषण वही है।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अठ्ठहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७८)

उन्यासिवाँ सर्ग

इक्ष्वाकु पुत्र राजा दण्ड का राज्य

तदनन्तर अगस्त्य मुनि से इस अद्‌भुत कथा को सुनकर श्रीराम बोले- मुनीश्वर! कृपाकर के बताइए, उस वन में जहाँ राजा श्वेत तपस्या करते थे पशु पक्षी क्यों नहीं रहते थे और ये विदर्भ राज उस सूने वन में तपस्या करने क्यों गए? श्रीराम के वचन सुनकर महर्षि बोले- श्रीराम! सत्ययुग की बात है। इस भूतल पर मनु का राज्य था। उनके ज्येष्ठपुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। तब एक दिन मनु ने उनसे कहा- बेटा! तुम इस भूतल पर राजवंशों की सृष्टि करो। इक्ष्वाकु ने ऐसा करने की प्रतिज्ञा की। उस समय मनु, पुत्र से संतुष्ट होकर बोले- पुत्र! तुम राजवंशों की सृष्टि करते हुए दण्ड के द्वारा दुष्टों का दमन करो, किन्तु किसी को बिना अपराध के दण्ड मत देना। विधिपूर्वक दिया हुआ दण्ड राजा को स्वर्ग में पहुँचा देता है। इतना कह कर मनु समाधि लगाकर स्वर्ग चले गए। उनके स्वर्ग चले जाने पर इक्ष्वाकु इस चिंता में पड़ गए कि मैं किस प्रकार पुत्रों को उत्पन्न करूँ। तब यज्ञ दान आदि कर्मों के द्वारा उन्होंने सौ पुत्र उत्पन्न किए। तात! किन्तु उनमें सबसे छोटा पुत्र मूढ़ और विद्याहीन था। तब यह सोचकर कि एक दिन उस पर अवश्य दण्डपात होगा, उन्होंने उसका नाम दण्ड रख दिया और उसे विन्ध्य

Mookerji sharma (I.A.S.) Jammu Collection

और शैवल पर्वत के बीच का राज्य दे दिया। तब दण्ड ने राजा होने पर अपने रहने के लिए बहुत ही उत्तम नगर बसाया और उसका नाम मधुमन्त्र रखकर शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में उन्यासिवाँ सर्ग पूरा हुआ। (७९)

अस्सीवाँ सर्ग

राजा दण्ड का भार्गव कन्या के साथ बलात्कार

तब श्री राम से इतनी कथा कहने के बाद अगस्त्य ऋषि बोले- श्रीराम! तदनन्तर राजा दण्ड ने इन्द्रियों पर काबू रखकर बहुत वर्षों तक राज्य किया। फिर एक दिन वह चैत्रमास में शुक्राचार्य के रमणीय आश्रम पर आ पहुँचा। वहाँ उसकी दृष्टि शुक्राचार्य की सुन्दरी कन्या पर पड़ी। अब वह काम से पीड़ित होता हुआ उस कन्या से बोला- शुभे! तुम किसकी पुत्री हो। मैं कामदेव से पीड़ित हूँ। इसलिए ऐसा पूछ रहा हूँ। तब भृगु कन्या बोली- राजेन्द्र! मैं शुक्र देवता की ज्येष्ठ पुत्री अरजा हूँ और वे ही तुम्हारे गुरू हैं। नर श्रेष्ठ! वे बड़े तपस्वी हैं। यदि वे कुपित हुए तो तुम्हें महान् विपत्ति में डाल सकते हैं। लेकिन अगर तुम मुझे अपनी भार्या बनाना चाहते हो तो सन्मार्ग पर चलते हुए मेरे पिता से मुझे माँग लो। तुम्हारे याचना करने से मेरे पिताजी अवश्य मुझको तुम्हारे हाथों में सौंप देंगे। तब अरजा के कहने पर काम के अधीन हुए दण्ड ने दोनों हाथ सिर पर जोड़ लिया और कहा- सुन्दरी! कृपा करो! अब समय नष्ट न करो। तुम्हारे लिए मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। इस समय तुम्हें प्राप्त करने में मेरा बध भी हो जाए तो मुझे कोई चिंता नहीं। ऐसा कहकर उस बलवान् नरेश ने उस भार्गव कन्या को बलपूर्वक पकड़कर अपनी भुजाओं में भर लिया और अपनी इच्छा के अनुसार उसके साथ समागम किया। यह अनर्थ करने के बाद दण्ड अपने नगर मधुमन्त चला गया और अरजा रोती हुई अपने पिता के आने की राह देखने लगी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८०)

इक्यासीवाँ सर्ग

शुक्र के शाप से राजा दण्ड और उसके राज्य का नाश

तब दो घड़ी बाद किसी शिष्य से अरजा के ऊपर किए गए बलात्कार की बात सुनकर देवर्षि शुक्र अपने आश्रम को लौट गये। वहाँ अपनी कन्या को दुखी देखकर वे क्रोधित हो शिष्यों से बोले- देखो! सेवकों सहित इस दुरात्मा राजा के विनाश का समय आ गया है। अब इस पाप कर्म का आचरण करने वाला यह दुर्बुद्धि नरेश सात रात के भीतर ही पुत्र, सेना और सवारियों सहित नष्ट हो जाएगा। इसके राज्य को देवराज इन्द्र भारी धूल की वर्षा करके नष्ट कर देंगे। जहाँ तक दण्ड का राज्य है वहाँ तक के समस्त चराचर प्राणी सात रात तक केवल धूल की वर्षा पाकर अदृश्य हो जाएंगे। ऐसा कहकर उन्होंने अपने उस आश्रम में निवास करने वाले लोगों से कहा- अब तुम लोग दण्ड के राज्य की सीमा के अंत में जो देश है वहाँ जाकर बस जाओ। आश्रमवासी मुनियों से ऐसा कहकर शुक्र ने अरजा से कहा- खोटी बुद्धि वाली लड़की! तू यहीं इस आश्रम में मन को परमात्मा के ध्यान में एकाग्र करके रह। जो जीव उन रात्रियों में तुम्हारे समीप रहेंगे वे कभी भी धूल की वर्षा से नहीं मारे जायेंगे। ऐसा कहकर शुक्राचार्य ने दूसरे राज्य में जाकर निवास किया और उनके कथनानुसार राजा दण्ड का वह राज्य सेवक, सेना और सवारियों सहित सात दिन में भस्म हो गया। नरेश्वर! विन्ध्य और शैवल गिरि के मध्य में दण्ड का राज्य था। तब शुक्राचार्य के शाप देने पर वही दण्डकारण्य कहलाया। इस स्थान पर तपस्वी आकर बस गए इसलिए इसका नाम जनस्थान हो गया। श्रीराम आपने जिस विषय में पूछा था वह सब मैंने बता दिया। वत्स! अब मेरे सन्ध्योपासना का समय बीता जा रहा है। अब आप भी जाएं और आचमन तथा स्नान आदि करें।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८१)

बयासीवाँ सर्ग

श्रीराम का अगस्त्य आश्रम से अयोध्यापुरी लौटना

सन्ध्योपासना करके श्रीराम ने पुनः महात्मा कुंभज (अगस्त्य) के

Mohan ... Jammu Collection

आश्रम में प्रवेश किया और वहाँ रात बिताकर सबेरे महर्षि के पास जाकर बोले- महर्षे! अब मैं अपनी पुरी जाने के लिए आज्ञा चाहता हूँ। मैं अपने को पवित्र करने की अभिलाषा से फिर कभी आपके दर्शनार्थ इस आश्रम में आऊँगा। श्रीराम के मधुर वचन सुनकर महर्षि बड़े प्रसन्न होकर बोले- रघुनन्दन! सभी प्राणियों को पवित्र करने वाले तो आप ही हैं। इस भूतल पर जो प्राणी आपको क्रूर दृष्टि से देखते हैं वे यमराज के दण्ड से पीटे जाकर नरक में गिरते हैं और जो आपकी कथाएं कहते हैं वे पवित्र हो कर सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। अब आप निश्चिंत होकर जाइए। मुनि के इतना कहने पर श्रीराम ने अगस्त्य मुनि को तथा अन्य ऋषियों को प्रणाम किया तथा सब का आशीर्वाद प्राप्तकर पुष्पक विमान पर आरूढ़ हो गए। फिर अयोध्यापुरी के रास्ते में जगह-जगह सम्मान पाते हुए मध्याह्न के समय अयोध्यापुरी जा पहुँचे। वहाँ विमान को विदा करके उन्होंने द्वारपाल से भरत और लक्ष्मण को बुला लाने का आदेश दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८२)

तिरासीवाँ सर्ग

भरत के कहने से श्रीराम का राजसूय यज्ञ करने के विचार से निवृत्त होना

क्लेश रहित कर्म करने वाले श्रीराम का यह वचन सुनकर द्वारपाल ने जाकर भरत और लक्ष्मण को बुला लिया। तब श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगाते हुए कहा- मैं ब्राह्मणों का कार्य सिद्ध करने के बाद अब राजसूय यज्ञ करना चाहता हूँ। क्योंकि यही धर्म का पोषक और पाप का नाशक है। तुम लोग मेरी आत्मा हो इसलिए आज के दिन बैठकर इस बात पर विचार करो कि हमारे लिए कौन-सा कर्म लोक तथा परलोक में कल्याणकारी होगा। तब श्रीराम की यह बात सुनकर भरत जी ने हाथ जोड़कर कहा- महाबली रघुनंदन! पुत्र जैसे पिता को देखते हैं उसी प्रकार आपके प्रति सब राजाओं का भाव है। नरेश्वर! फिर आप ऐसा यज्ञ क्यों करते हैं जिससे संसार के सभी राज्यों का विनाश संभव हो जाए। क्योंकि आप के क्रोध से सभी

बलवान् राजाओं का उच्छेद हो जाएगा। इसलिए राजसूय यज्ञ करना आपके लिए उचित नहीं। श्रीराम भरत की इस बात से प्रसन्न होकर बोले-सौम्य! तुम्हारे जैसा बुद्धिमान पुरुष ही ऐसा परामर्श दे सकता है। तुम्हारा कथन सही है। क्षत्रिय वंश की रक्षा के लिए जो बात तुमने कही है उससे मैं सहमत हूँऔर इसलिए मैंने इस राजसूय यज्ञ करने का विचार त्याग दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८३)

चौरासीवाँ सर्ग

लक्ष्मण द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रस्ताव

तदनन्तर भरत के इस प्रकार बात करने पर लक्ष्मण बोले- रघुनंदन! आप समस्त पापों के नाशक अश्वमेध यज्ञ करिए। इन्द्र को जब ब्रह्म हत्या लगी थी तब वे इसी यज्ञ के अनुष्ठान से पाप मुक्त हुए थे। पहले की बात है जब देवता और असुर परस्पर मिलकर रहते थे। उस समय वृत्र नामक एक महाभयंकर असुर रहता था। उसे धर्म का यथार्थ ज्ञान था तथा पृथ्वी का धर्मपूर्वक शासन करता था। महात्मा वृत्रासुर के राज्य में भूमि बिना जोते बोए ही अन्न उत्पन्न करती थी। अचानक एक दिन वृत्र के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं परम उत्तम तप करूँ। क्योंकि तप ही परम कल्याण का साधन है। दूसरा सुख मोहमात्र है। तब वह अपने पुत्र मधुरेश्वर को राजा बनाकर कठोर तप करने लगा। उस समय वृत्रासुर के इस तप को देखकर इन्द्र दुखी होकर विष्णु के पास गए और बोले-महाबाहो! वृत्रासुर ने तप करके समस्त लोकों को जीत लिया है। अतः अब मैं शासन नहीं कर सकता। इसके इस तप से हम देवताओं को तीनों लोकों में रहने तक उसके अधीन होकर रहना पड़ेगा। विष्णो! जब से आपके साथ उसका प्रेम हो गया है तब से उसने सम्पूर्ण लोकों का आधिपत्य प्राप्त कर लिया है। अतः आपके रक्षा करने से यह सारा जगत् शांत और निरोग हो सकता है। ये सब देवता अब आप की ओर देख रहे हैं। अतः आप इसका बध करके देवताओं की सहायता कीजिए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौरासिवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८४)

पचासीवाँ सर्ग

भगवान् विष्णु के तेज का इन्द्र में प्रवेश

लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम ने कहा- लक्ष्मण! अब तुम मुझे वृत्रासुर की पूरी कथा सुनाओ। श्रीराम के इस आदेश को सुनकर लक्ष्मण बोले- इन्द्र आदि देवताओं की प्रार्थना सुनने पर भगवान विष्णु बोले- देवताओं! तुम्हारी प्रार्थना के पहले से ही मैं वृत्रासुर के स्नेह बंधन से बँधा हुआ हूँ। फिर भी मैं तुम लोगों को एक ऐसा उपाय बताऊँगा जिससे देवराज इन्द्र उसका बध कर सकेंगे। मैं अब अपने तेज को तीन भागों में विभक्त करूँगा। उस तेज का एक अंश इन्द्र में प्रवेश करे, दूसारा बज्र में व्याप्त हो जाए तथा तीसरा भूतल को चला जाए। तभी इन्द्र वृत्रासुर का बध कर सकेंगे। यह सुनकर देवतागण बोले- प्रभो! आप अपने तेज द्वारा देवराज इन्द्र को अनुग्रहीत करें। तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी देवता उस वन में गए जहाँ वृत्रासुर तपस्या कर रहा था। उस समय वृत्रासुर का तेज सारे लोकों में व्याप्त हो रहा था। तब देवता लोग घबड़ा कर सोचने लगे- हम इसका बध कैसे करेंगे? वे लोग यही सोच ही रहे थे कि इन्द्र ने दोनों हाथ उठाकर अपना बज्र वृत्रासुर के मस्तक पर दे मारा। वह बज्र अग्नि के समान भयंकर था। अतः उसकी चोट से कटकर वृत्रासुर का सर नीचे आ गिरा। निरपराध वृत्रासुर का बध उचित नहीं था इसलिए इन्द्र ब्रह्म हत्या के भय से वहाँ से भागे। किन्तु ब्रह्म हत्या तत्काल उनके पीछे लगकर उनके देह को पीड़ित करने लगी। तब सारे देवता विष्णु की स्तुति करने लगे- समस्त प्राणियों के रक्षक, जगत् के पिता, भगवान् विष्णु हमें केवल आपका ही सहारा है। वृत्रासुर तो मारा गया आपके तेज से किन्तु ब्रह्म हत्या लगी इन्द्र को। अब उनको इस भय से मुक्त कीजिए। तब विष्णु भगवान् बोले- देवताओं! मुझको प्रसन्न करने के लिए जब इन्द्र अश्वमेध यज्ञ करेंगे तभी देवेन्द्र के पद को पुनः प्राप्त कर लेंगे। यह सुनकर देवता अपने-अपने धाम को चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८५)

Mookerji sharma (IAS) Jammu Collection

छियासीवाँ सर्ग

अश्वमेध के अनुष्ठान से इन्द्र का ब्रह्महत्या से मुक्त होना

लक्ष्मण बोले- वृत्रासुर के मारे जाने पर ब्रह्महत्या से घिरे इन्द्र को बहुत देर तक होश नहीं हुआ। तब इन्द्र के अदृश्य हो जाने पर सारा संसार व्याकुल हो उठा। पानी न बरसने से नदी, तालाब, वन आदि सूख गए। इस प्रकार लोकों को नष्ट होते देख देवता घबड़ा उठे और विष्णु के आज्ञानुसार अश्वमेध यज्ञ करने के लिए वृहस्पति और ऋषियों के साथ उस स्थान पर गए जहाँ इन्द्र मूर्च्छित पड़े थे। तत्पश्चात् जब देवताओं के द्वारा अश्वमेध यज्ञ पूरा हो गया तब ब्रह्महत्या स्वयं आकर बोली- देवताओं! अब बताओ हम कहाँ जाकर रहें? उस समय देवतागण बोले- तुम चार भागों में विभक्त हो जाओ। तब ब्रह्महत्या चार भागों में विभक्त होकर बोली- मैं अपने अंश से वर्ष के चार महीनों तक जल से भरी हुई नदियों में निवास करूँगी। उस समय इच्छानुसार विचरने वाली होऊँगी। दूसरे भाग से मैं सदा भूमि पर निवास करने वाली होऊँगी। मैं अपने तीसरे अंश से प्रतिमास तीन रात तक गर्वीली स्त्रियों में निवास करूँगी और चौथे अंश से मिथ्या दोष लगाकर ब्राह्मण के बध करने वाले दुष्टों में, इस प्रकार चार अंशों से चार स्थानों पर निवास करूँगी। ऐसा कहकर ब्रह्म हत्या जब चली गई तब इन्द्र पवित्र होकर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हो गए। रघुनंदन! अश्वमेध यज्ञ का ऐसा ही प्रभाव है। अतः आप अश्वमेध यज्ञ द्वारा पूजन कीजिए। तब लक्ष्मण के वचन को सुनकर श्रीराम को बड़ी प्रसन्नता हुई।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८६)

सतासीवाँ सर्ग

श्रीराम का लक्ष्मण को राजा इल की कथा सुनाना

लक्ष्मण की बात सुनकर श्रीराम बोले- लक्ष्मण! वृत्रासुर के बध तथा अश्वमेध यज्ञ की जो कथा तुमने कही है सो सब सत्य हैं। सुना जाता है प्राचीन समय में प्रजापति कर्दम के पुत्र इल नामक राजा बड़े धर्मात्मा

हुए। वे अपने पराक्रम से सम्पूर्ण पृथ्वी पर शासन करते थे। प्रजा का पुत्रवत् पालन करने वाले राजा इल से देवता, दैत्य, नाग, राक्षस सभी डरते थे। एक बार शिकार खेलते हुए वे उस वन में जा पहुँचे जहाँ कार्तिकेय का जन्म हुआ था। उस वन में भगवान् शंकर अपने समस्त सेवकों के साथ रहकर गिरिराज कुमारी उमा का मनोरंजन किया करते थे। भगवान् शंकर के प्रभाव से उस वन के पशु, पक्षी आदि सब स्त्री रूप को प्राप्त हो गए थे। महाराज इल उस वन में शिकार खेल ही रहे थे तब वन के समस्त जीवों सहित अपने सैनिकों तथा स्वयं को स्त्री के रूप में देखकर बड़े दुखी हुए। उस समय यह जानकर कि यह सब भगवान् शंकर के प्रभाव से हुआ है वे शिव की शरण में गए। लेकिन उन्हें देखकर भगवान् बोले- राजन्! पुरुषत्व को छोड़कर जो वरदान माँगोगे मैं दूँगा। यह सुनकर राजा उनसे कोई वर न माँगकर देवी पार्वती के पास जाकर बोले- मातेश्वरी! मेरे ऊपर कृपादृष्टि करो। तब इल का अभिप्राय समझकर पार्वती जी बोलीं- मैं आधा वरदान देने की अधिकारिणी हूँ। आधा वरदान भगवान् शंकर से माँग लो। यह सुनकर राजा इल ने कहा- देवि! मैं एक महीने तक स्त्री रहूँ और एक महीने तक पुरुष । आप मुझको यही वर दीजिए। पार्वती जी ने यह वरदान देते हुए कहा- जब तुम पुरुष रहोगे तब तुम्हें स्त्री भाव का स्मरण न रहेगा और जब स्त्री रहोगे तब पुरुषत्व का ज्ञान न रहेगा। लक्ष्मण! यह वरदान पाकर राजा इल एक मास तक पुरुष रहते थे और दूसरे महीने त्रिलोक सुन्दरी नारी इला के रूप में रहने लगे थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में सतासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८७)

अठासीवाँ सर्ग

इला और बुध का एक दूसरे को देखना

श्रीराम की इस कथा को सुनकर लक्ष्मण और भरत दोनों बड़े विस्मित हुए। तब दोनों भाइयों ने उनसे विस्तृत वृतान्त को सुनाने का अनुरोध किया। श्रीराम यह सुनकर बोले- इला पहले मास में ही परम

सुन्दरी स्त्री होकर अपने सहचरी स्त्रियों के साथ उस वन में पर्वत के ऊपर पैदल विचरने लगी। यहीं पर्वत के पास ही एक सुन्दर सरोवर था। उस सरोवर में सोमपुत्र बुध तपस्या करते थे। किन्तु उस समय इला पर दृष्टिपड़ते ही बुध कामदेव के शिकार हो गए। वे सोचने लगे ऐसी सुन्दर स्त्री मैंने पहले कभी नहीं देखी है। यदि यह दूसरे को ब्याही न गई हो तो सर्वथा मेरी स्त्री होने योग्य है। यह सोचकर वे जल से बाहर निकले और उन स्त्रियों से इला के बारे में पूछा- ये लोक सुन्दरी नारी किसकी पत्नी हैं और यहाँ किस लिए आई हैं? तब उनकी सहचरियों ने मधुर वाणी में कहा- यह सुन्दरी हमारी स्वामिनी हैं। अभी विवाहित नहीं हैं और हमारे साथ इसी वन में विचरा करती हैं। तब योग बल से राजा इल का सम्पूर्ण वृतान्त जानकर बुध उनसे बोले- तुम लोग इसी पर्वत पर आश्रम बना लो और यहीं किन्नरी के रूप में विचरो। तुम्हें शीघ्र ही किन्नर पति मिलेंगे। बुध की यह बात सुनकर वे सभी स्त्रियाँ उस पर्वत पर रहने लगीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में अठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८८)

नवासीवाँ सर्ग

बुध और इला का समागम

श्रीराम ने इला की कथा को फिर इस प्रकार कहना आरम्भ किया- उन स्त्रियों को पर्वत के किनारे भेजकर बुध ने उस रूपवती स्त्री से हँसते हुए कहा- मैं चन्द्रमा का पुत्र बुध हूँ। तुम मेरे साथ पत्नी के रूप में विहार करो। तब अपने को एकान्त में देखकर इला ने बुध की बात सहर्ष स्वीकार कर ली और बुध के साथ विहार करने लगी। तब विहार करते-करते पूरा चैत्र का महीना व्यतीत हो गया और आखिरी दिन इला के बजाए इल शैया पर से जाग उठे। फिर समीप के जल के भीतर ऊपर को हाथ उठाए हुए एक तपस्वी को कठोर तप करते हुए देखकर वे उनसे बोले- भगवन्! मैं अपने सेवकों के साथ इस दुर्गम पर्वत पर आ गया था परन्तु मुझे अपनी वह सेना नहीं दिखलाई देती। वे सब मेरे सैनिक कहाँ चले गए।

Meenakshi sharma (IRS) Jammu Collection

उस समय बुध यह जानकर कि शाप के कारण इसे स्त्रीत्व का ज्ञान नहीं है वे राजा से बोले- राजन्! ओले बरसने के कारण तुम्हारे सैनिक मारे गए और तुम भयभीत होकर मेरे आश्रम में सो गए थे। किन्तु अब भय की कोई बात नहीं। तुम अब यहीं मेरे आश्रम में फल फूल खाते हुए सुखपूर्वक रहो। उस समय राजा इल बोले- तपोधन! मैं अब अपनी राजधानी को जाऊँगा और अपनी स्त्री पुत्रों को देखूँगा। यदि मैं नहीं जाऊँगा तो मेरा बड़ा पुत्र शशिबिंदु राजा बन बैठेगा। इसलिए मैं यहाँ नहीं रह सकता। उस समय ब्रह्मवादी बुध ने समझा बुझाकर राजा को एक वर्ष तक वहाँ रखा। वे एक महीने स्त्री के रूप में बुध के साथ विहार करते थे और एक महीने पुरुष के रूप में रहकर धर्म का कार्य करते थे। उस समय नवाँ महीना समाप्त होते ही इला के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसे इला ने बुध को सौंप दिया और वह पुरुरवा नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार क्रमशः एक मास स्त्री और एक मास पुरुष होकर राजा इल ने भोग और धर्म में वर्ष व्यतीत कर दिया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ। (८९)

नब्बेवाँ सर्ग

अश्वमेध के अनुष्ठान से इला को पुरुषत्व की प्राप्ति

श्रीराम की इस अद्भुत कथा को सुनने के बाद लक्ष्मण तथा भरत ने पुनः पूछा- नरश्रेष्ठ! बुध के साथ एक वर्ष तक विहार करने के बाद इला ने क्या किया? इस कथा को भी सुनाइए। श्रीराम ने कहा- एक वर्ष व्यतीत होने पर जब राजा इल फिर पुरुष हुए तब बुध ने च्यवन, दुर्वासा, संवर्त आदि मुनियों को बुलाकर कर्दम पुत्र राजा इल के कल्याण का उपाय सोचने के लिए कहा। जिस समय बुध मुनियों के साथ यह परामर्श कर रहे थे उस समय प्रजापति कर्दम भी पुलस्त्य, क्रतु वषट्कार और ओंकार जैसे द्विजों को लेकर उस आश्रम में आए। उस समय कर्दम ऋषि ने कहा- मुनिवरो! जब तक भगवान् शंकर इनसे प्रसन्न नहीं होते तब तक इनके कल्याण की आशा नहीं। अतः हम लोग इनके निमित्त भगवान् शंकर को

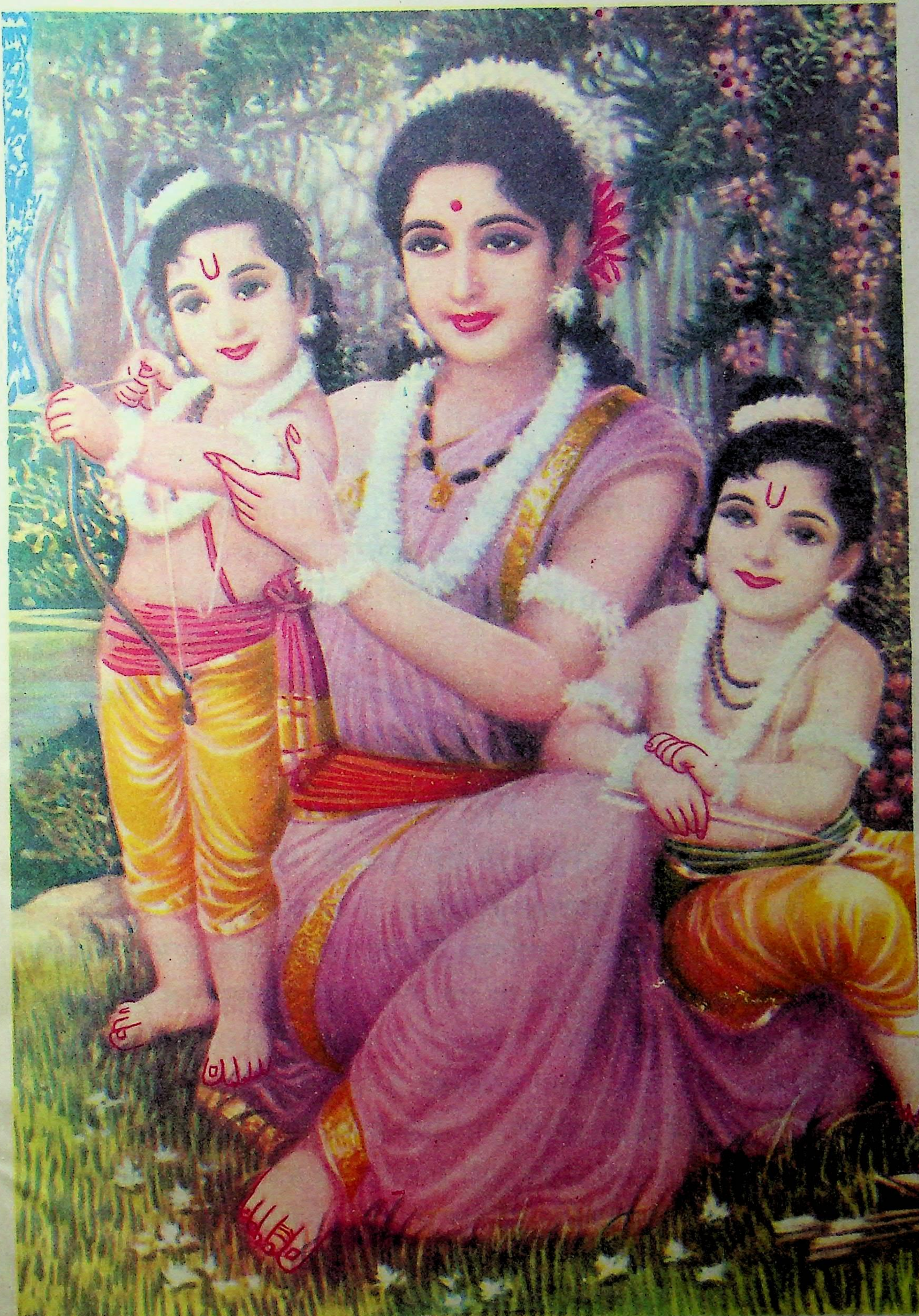

सीता लव कुश

प्रसन्न करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करें। तब वहाँ बैठे हुए ऋषियों ने इसका समर्थन किया और बुध के आश्रम के समीप विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ किया गया। यज्ञ समाप्ति पर भगवान् शंकर ने साक्षात् प्रकट होकर कहा- ऋषियो! तुम्हारी भक्ति और अश्वमेध यज्ञ से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मेरे द्वारा तुम इल का कौन-सा प्रिय कार्य कराना चाहते हो उसे बताओ। यह सुनकर मुनिगण बोले- भगवन्! इल को सदा के लिए पुरुषत्व प्राप्त हो जाए यही हम लोगों की प्रार्थना है। तत्पश्चात् इल को सदा के लिए पुरुषत्व प्रदान कर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गए और ऋषि लोग भी अपने-अपने स्थान को चले गए। उस समय राजा इल ने गंगा यमुना के संगम के निकट एक परम यशस्वी नगर प्रतिष्ठांनपुर बसाया और वहाँ के शासक हुए। फिर समय आने पर वे शरीर त्याग कर ब्रह्मलोक को चले गए और उनका पुत्र पुरुरवा प्रतिष्ठानपुर का राजा हुआ। इस तरह अश्वमेध के प्रभाव से इल ने पुरुषत्व प्राप्त कर और भी दुर्लभ वस्तुएं हस्तगत कर लीं।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९०)

इक्यानबेवाँ सर्ग

श्रीराम के अश्वमेध की तैयारी

श्रीरामचन्द्र की आज्ञा से लक्ष्मण ने अश्वमेध यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों में अग्रगण्य एवं श्रेष्ठ वसिष्ठ, कामदेव, जावालि और काश्यप आदि द्विजों को बुलाया। उनके आने पर श्रीराम ने उन्हें प्रणाम किया और अश्वमेध करने की अनुमति माँगी। ऋषिगण इस विचार को सुनकर अत्यंत हर्षित हो उठे। और उनके इस विचार की प्रशंसा करने लगे। विप्रों की अनुमति पाकर श्रीराम ने कहा- लक्ष्मण! किष्किंधा में शीघ्रगामी दूत भेजकर सुग्रीव को यह यज्ञ देखने के लिए ससैन्य बुलाओ। विभीषण को भी राक्षसों समेत आने का निमंत्रण दो। दूर-दूर से विप्रों और उनकी स्त्रियों को बुलाओ। समस्त नर,नारी और चारणों को भी आमंत्रित करो। गोमती के तट पर नैमिषारण्य में यज्ञ मण्डप का निर्माण कर सब

लोगों को निमंत्रित किया जाए। इसमें आए हुए लोगों का यथोचित आदर सत्कार हो। सबसे आगे सेना को भेजा जाए। फिर एक लाख गाड़ियों पर गेहूँ, चावल, मूँग आदि खाद्य पदार्थ तथा सुवर्ण भेजो। तत्पश्चात् सब माताओं के साथ तुम भी चले जाओ। इस तरह श्रीराम की आज्ञा पाकर शत्रुघ्न सहित भरत ने नैमिषारण्य को प्रस्थान किया। उस समय वहाँ सुग्रीव और विभीषण भी यज्ञ देखने आ पहुँचे थे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में इक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९१)

बानबेवाँ सर्ग

श्रीराम का कृष्णसार नामक घोड़े को छोड़ना

भगवान् शत्रुघ्न के साथ यज्ञ की सभी सामग्री भेजने के पश्चात् श्री राम ने उत्तम लक्षणों से सम्पन्न कृष्णसार नामक घोड़े को छोड़ा। फिर लक्ष्मण को उस अश्व की रक्षा के लिए नियुक्त करके श्रीराम सेना के साथ नैमिषारण्य को गए। वहाँ युद्ध स्थल की बनावट तथा देश विदेश के राजाओं को आया हुआ देखकर श्रीराम चन्द्र बड़े प्रसन्न हुए। उन सब नरेशों का यथोचित आदर भरत और शत्रुघ्न कर रहे थे। ऋषि मुनियों की सेवा में विभीषण लगे हुए थे। ब्राह्मणों के भोजन आदि का प्रबन्ध सुग्रीव के हाथों में था। सभी आए हुए राजाओं के लिए सुन्दर निवास बनाए गए थे। अश्वमेध यज्ञ खूब धूम-धाम से चल रहा था। इसमें जो भी याचक जिस चीज की इच्छा करता उसे वही चीज मिलती। इसके लिए धन धान्य आदि किसी वस्तु की कमी नहीं रह गई थी। याचकों को दान देने के लिए वानर और राक्षस सदैव तत्पर रहते। भगवान् श्रीराम का ऐसा यज्ञ एक वर्ष से भी अधिक काल तक चलता रहा।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९२)

तिरानबेवाँ सर्ग

श्रीराम के यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि का आगमन

इस प्रकार अद्भुत यज्ञ जब चालू हुआ उस समय भगवान् वाल्मीकि

मुनि अपने शिष्यों के साथ पधारे। उन्हें एक सुन्दर पर्णशाला में शिष्यों सहित ठहराया गया। यज्ञ प्रबंधकों ने धन धान्य और फल मूलों से भरी हुई गाड़ियाँ उनकी पर्णशाला में भेज दीं। उस समय महर्षि वाल्मीकि ने लव-कुश से कहा- तुम दोनों एकाग्रचित्त हो सब ओर घूमफिर कर बड़े आनन्द के साथ सम्पूर्ण रामायण काव्य का गान करो। ऋषियों और ब्राह्मणों के पवित्र स्थान पर भी इसका गान करना। यहाँ भोजन हेतु सुस्वादु फल और मूल प्रस्तुत हैं। इनके खाने से तुम थकोगे नहीं और तुम्हारा स्वर ठीक रहेगा। यदि इसके लिए श्रीरामचन्द्र भी निमंत्रण दें तो तुम उनके सामने भी गाना। मेरी जैसी शिक्षा है असके अनुरूप तुम बीस श्लोक का प्रतिदिन गायन करो। इस कथा का गान करते समय तुम्हारे मन में धन प्राप्ति की इच्छा नहीं रहनी चाहिए। क्योंकि कंद मूल खाने वालों का धन से क्या प्रयोजन ? यदि श्रीराम चन्द्र यह पूछें कि तुम लोग किसके पुत्र हो उस समय केवल यही कहना कि हम लोग वाल्मीकि के शिष्य हैं। तुम लोग प्रातःकाल से इस काव्य का गान करना। तब लव और कुश ने ऋषि की कही हुई वाणी को अपने हृदय में धारण कर पर्णशाला में रात भर सुख से रहे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९३)

चौरानबेवाँ सर्ग

लव कुश द्वारा रामायण काव्य का गान

रात बीतने पर जब सबेरा हुआ तब स्नान सन्ध्या से निवृत्त हो उन दोनों भाइयों ने रामायण काव्य का गान आरम्भ किया। लय और ताल से युक्त उस अद्‌भुत गायन को जिसने सुना वह आश्चर्य चकित रह गया। तत्पश्चात् यह कार्य समाप्त होने के बाद श्रीराम चन्द्र ने ऋषि, मुनि, राजा, ब्राह्मण, संगीतज्ञ, शास्त्रों के ज्ञाता, ज्योतिषी, याज्ञिक, चित्रकार आदि जितने गुणी जनों को बुलवाया और सब को यथोचित आसन देने के पश्चात् उन्होंने लव और कुश को बुलाया और उनसे रामायण का गान करने के लिए कहा। तब लव और कुश ने अपना गान प्रारम्भ किया। उस गान को सुनकर सभी श्रोतागण आश्चर्य चकित रह गए। उस काव्य को

सुनते हुए किसी की भी तृप्ति नहीं हो रही थी। वहाँ उपस्थित सभी राजा और ऋषिगण आनन्द विभोर हो उन बालकों की ओर देखने लगे। वहीं उपस्थित सभी लोग यही कहते हुए सुनाई पड़े कि इन बालकों का श्रीराम चन्द्र के साथ अद्‌भुत सामंजस्य है। यदि ये सब राजसी वस्त्र में होते तो इनमें और श्रीराम में कोई अंतर न होता। तत्पश्चात् लव और कुश ने बालकाण्ड के बीस सर्ग कहकर अपना गायन समाप्त किया। तब श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- भाई! इन बालकों को अट्ठारह हजार स्वर्ण मुद्राएं राजकोष से दे दो। जब लक्ष्मण उन मुद्राओं को लव-कुश को अर्पित करने लगे तब उन्होंने उन्हें स्वीकार ही नहीं किया। बालकों द्वारा उस धन के स्वीकार न किए जाने पर सब को बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर श्रीराम ने पूछा- बालकों! यह काव्य कितना बड़ा है। और किसने बनाया है। तब बालकों ने कहा- इस काव्य का निर्माण महर्षि वाल्मीकि ने किया है। उस तपस्वी कवि के बनाए हुए इस महाकाव्य में चौबीस हजार श्लोक और एक सौ उपाख्यान हैं। इसमें आदि से लेकर अंत तक पाँच सौ सर्ग तथा छह कान्डों का निर्माण किया गया है। इसके सिवा उन्होंने उत्तरकाण्ड की भी रचना की है। इसमें आपके जीवन की सारी बातें आ गई हैं। आप यदि इनको सम्पूर्ण सुनने के इच्छुक हैं तो यज्ञ कार्य से निवृत्त हो प्रतिदिन इसको श्रवण कीजिए। यह कहकर लव-कुश अपने आश्रम को गए। इस प्रकार प्रथम दिन कतिपय सर्गों से युक्त सुन्दर स्वर एवं मधुर शब्दों से पूर्ण उस काव्यगान को श्रीराम ने सुना।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९४)

पंचानबेवाँ सर्ग

श्रीराम का सीता से शुद्धता प्रमाणित कराने का विचार

इस प्रकार श्रीराम ऋषियों, राजाओं और वानरों के साथ कई दिनों तक उत्तम रामायण का गान सुनते रहे। छह काण्ड समाप्त होने पर वे दोनों उत्तरकाण्ड गाने लगे। तदनन्तर जब श्रीराम को यह मालूम हुआ कि ये सीता के पुत्र हैं तब उन्होंने दूतों को महर्षि वाल्मीकि के पास इस आशय से

भेजा कि यदि सीता शुद्ध हैं तो अपने शुद्ध होने का विश्वास जनता को दिलाएं। यदि वे मेरा कलंक दूर करना चाहती हैं तो यहाँ सभा में आकर अपने शुद्ध आचरण होने की शपथ ग्रहण करें। तब दूतों ने जाकर महर्षि वाल्मीकि को तुरन्त यह संदेशा कह सुनाया। दूतों से संदेश पाकर महर्षि ने उनको विश्वास दिलाया कि ऐसा ही होगा। स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व है। इसलिए सीता श्रीराम की आज्ञा अवश्य शिरोधार्य करेंगी। यह समाचार भी दूतों ने श्री राम तक पहुँचा दिया। तब श्रीराम ने अत्यंत आनन्द पूर्वक ऋषियों और राजाओं से कहा- आप लोग प्रातःकाल सीता का शपथ लेना अपनी आँखों से देखें। यह सुनकर ऋषिगण और राजाओं के समुदाय ने श्रीराम की प्रशंसा करते हुए कहा- महात्मा! संसार में केवल आप ही बड़ाई के पात्र हैं, क्योंकि ऐसा चरित्र करना केवल आपके लिए ही संभव है। इस प्रकार दूसरे दिन सीता से शपथ लेने का निश्चय करके श्रीराम ने उन सब मुनियों और नरेशों को अपने-अपने स्थान पर जाने की अनुमति दे दी।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में पंचानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९५)

छियानबेवाँ सर्ग

महर्षि वाल्मीकि द्वारा सीता की शुद्धता का समर्थन

दूसरे दिन सबेरा होने पर श्रीराम यज्ञ शाला में पधारे और वहाँ समस्त ऋषियों को बुलवाया। वसिष्ठ, जाबालि, कश्यप, वामदेव, विश्वामित्र, दीर्घतमा, दुर्वासा, पुलस्त्य, शक्ति, भार्गव, वामन, मार्कण्डेय, मौद्गल्य, गर्ग, च्यवन, शतानंद, भरद्वाज, सुप्रभ, नारद, पर्वत और गौतम आदि ऋषि श्रेष्ठ अपने-अपने आसनों पर विराजमान हुए। सम्पूर्ण जनता सीता का शपथ सुनने को लालायित थी। इसी समय महर्षि वाल्मीकि नत-मस्तक सीता को साथ लिए वहाँ पधारे। उस समय सीता के दोनों हाथ जुड़े हुए थे और नेत्रों से झर-झर आँसू बह रहे थे। उस समय वे अपने हृदय मंदिर में केवल श्रीराम का ध्यान किए हुए थीं। ऐसी सीता को देखकर लोगों ने बड़ी प्रशंसा की। उस समय महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम से कहा- राजन्! तुम्हारी पत्नी सीता पतिव्रताओं में श्रेष्ठ है। अत्यंत सदाचारिणी तथा तुम्हारे चरणों

में ही प्रीति रखनेवाली है। अब तुम आज्ञा दो कि यह अपने सदाचारिणी होने की शपथ लें। दोनों पुत्र, लव-कुश सीता के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं। मैं कभी मिथ्या वचन नहीं बोलता। ये दोनों पुत्र तुम्हारे ही वीर्य से उत्पन्न हुए हैं। मैं इन्हें सदाचारिणी समझकर आश्रम पर लाया था। राजकुमार मैंने दिव्य दृष्टि से यह जान लिया था कि सीता का भाव और विचार परम पवित्र है। आप भी यह जानते हैं कि सीता सर्वथा शुद्ध हैं फिर लोकोपवाद के भय से आपने इसका त्याग किया।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में छियानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ। (९६)

सत्तानबेवाँ सर्ग

सीता का शपथ ग्रहण

तदनन्तर वाल्मीकि के ऐसा कहने पर सीता देवी की ओर देखकर श्रीराम बोले- महाभाग! आपके इन वचनों से मुझे जनक नंदिनी सीता पर पूर्ण विश्वास हो गया है। लंका में एक बार देवताओं के समक्ष भी इनकी अग्नि परीक्षा हो चुकी है। उसी के कारण मैंने इन्हें अपने भवन में स्थान दिया था। किन्तु आगे लोकोपवाद उठा अतः यह जानते हुए भी कि सीता निष्पाप हैं, मैंने इनका त्याग किया। लवकुश मेरे ही पुत्र हैं यह भी मुझे विश्वास है। तथापि जन समुदाय में शुद्ध प्रमाणित होने पर ही मिथिलेश कुमारी में मेरा प्रेम हो सकता है। उसी समय ब्रह्माजी के साथ मुख्य देवता भी आदित्य, वसु, रुद्र तथा नाग सिद्ध गण आए। उस समय शीतल मंद समीर चलने लगी और चारों ओर आनन्द हो गया। तब सीता तपस्विनी के अनुरूप गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए हाथ जोड़कर खड़ी हुई और बोलीं- मैं श्रीराम के सिवा और किसी पुरुष का चिन्तन भी नहीं करती। यदि यह सब सत्य है तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें। इसी समय पृथ्वी विदीर्ण हो गई और उसमें से एक सिंहासन निकला। सिंहासन पर देवी पृथ्वी विराजमान थीं। पृथ्वी देवी ने दोनों हाथों से सीता को उठा लिया और सिंहासन रसातल को चला गया। तब देवतागण पुष्प बरसाने लगे। सीता का भूतल प्रवेश देखकर वहाँ आए हुए

सब लोग हर्ष शोक आदि में डूब गये। तत्पश्चात् दो घड़ी तक वहाँ का जन समुदाय मोहाच्छन्न सा हो गया।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९७)

अट्ठानबेवाँ सर्ग

सीता के लिए श्रीराम का खेद

विदेह कुमारी के रसातल में प्रवेश कर जाने पर श्रीराम के समीप सम्पूर्ण वानर तथा ऋषि, मुनि कहने लगे- सीते! तुम धन्य हो। किन्तु स्वयं भगवान् श्रीराम बहुत दुखी हुए। अत्यंत व्यथित हो वे सिर झुकाकर अश्रुपात करते हुए कहने लगे- आज मैं बहुत दुखी हूँ क्योंकि आज मेरी आँखों के सामने हीं मेरी लक्ष्मी के समान सीता अदृश्य हो गयी। फिर क्रोधित होकर बोले- जब हम रावण को मारकर सीता को ले आए तो रसातल से भी हम उन्हें ले आएंगे। बसुंधरे! राजा जनक के हल चलाने पर सीता का जन्म हुआ था। अतएव तुम मेरी सास हो। अब या तो तुम सीता को मुझे लौटा दो अथवा मेरे लिए भी अपनी गोद में जगह दो। जहाँ सीता होगी वहीं मैं भी रहूँगा। यदि तुम अब मुझे जैसी थी वैसे सीता को नहीं लौटाती तो मैं पर्वत और वन सहित सारी भूमि का विनाश कर डालूँगा। तब श्रीराम को क्रोधित होते देख पितामह ब्रह्मा बोले- श्रीराम! तुम विष्णु के अवतार हो तुम्हें इस तरह शोक नहीं करना चाहिए। तुम मन लगाकर वाल्मीकि रचित इस काव्य के उत्तरकाण्ड को सुनो। यह काव्य दिव्य और अद्भुत है। इसमें कोई बात छिपाई नहीं गई है। अतः इस भाग को आप ऋषि-मुनियों सहित सुनिए। इतना कहकर ब्रह्माजी देवताओं के साथ चले गये। तब श्रीराम महर्षि वाल्मीकि से बोले- भगवन्! ये ब्रह्म लोक महर्षि मेरे भावी चरित्रों से युक्त उत्तरकाण्ड का शेष अंश सुनना चाहते हैं। अतः कल सुबह ही उसका गान आरम्भ हो जाना चाहिए। ऐसा निश्चय करके श्रीरघुनाथजी ने समुदाय को विदा कर दिया तथा कुश और लव को साथ लेकर अपनी पर्णशाला में आए। वहाँ सीता का चिन्तन करते-करते

उन्होंने रात व्यतीत की।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९८)

निन्यानबेवाँ सर्ग

श्रीराम की जीवनचर्या

दूसरे दिन प्रातःकाल सब मुनियों और राजाओं को बुलाकर श्री राम अपने पुत्रों को शेष काव्य के गाने की आज्ञा दी। यह सुनकर लव कुश ने गायन प्रारम्भ कर दिया। उधर सीता के रसातल में प्रवेश कर जाने पर उस यज्ञ के अंत में श्रीराम का मन बहुत दुखी हुआ। तदनन्तर श्रीराम ने सब राजाओं को, रीछों, वानरों और राक्षसों को जनसमुदाय तथा ब्राह्मणों को धन देकर विदा किया और अयोध्या आये। वह अयोध्या में अत्यंत शोकपूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए व्यथित रहे। उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया था इसलिए प्रत्येक यज्ञ में स्वर्ण की सीता बनाई जाती थी। श्रीराम ने दस हजार वर्षों तक धर्मपूर्वक राज्य किया। उनके राज्य में मेघ समय पर वर्षा करते थे। कभी अकाल नहीं पड़ता था। सभी दिशाएं प्रसन्न दिखाई देती थी। इसके बाद दीर्घकाल व्यतीत होने पर रानी कौसल्या स्वर्ग लोक को पधारीं। इसके बाद सुमित्रा और कैकेयी भी देह त्यागकर स्वर्ग में सुखपूर्वक राजा दशरथ के पास रहने लगीं। धर्मात्मा श्रीराम ने श्राद्ध में उत्तोमत्तम वस्तुएं ब्राह्मणों को दान में देते हुए बड़े-बड़े विविध यज्ञों का पालन करते हुए श्री रघुनाथजी के कई हजार वर्ष सुखपूर्वक बीत गये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में निन्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ (९९)

सौवाँ सर्ग

केकय देश के ब्रह्मर्षि गार्ग्य का भेंट लेकर आना

कुछ काल के पश्चात् केकय देश के राजा युधाजित् ने अपने पुरोहित ब्रह्मर्षि गार्ग्य को महात्मा श्री रघुनाथजी के पास भेजा। उनके साथ उन्होंने श्रीराम को अर्पण करने के लिए दस सहस्त्र घोड़े, कम्बल, अनेक

Mookerji sharma Collection

रत्न और आभूषण भी भेजे। अंगिरा पुत्र गार्ग्य का आगमन सुनकर श्री राम बहुत प्रसन्न हुए। भाइयों सहित वे एक कोस आगे बढ़कर महर्षि को लिवा लाये और उनका आदर सत्कार करने के बाद उनकी कुशल क्षेम पूछी। फिर मामा द्वारा भेजी हुई भेंट को विनम्रतापूर्वक ग्रहण कर श्री रामचन्द्र ने पूछा- मुनिवर! आपका आगमन क्यों कर हुआ सो कृपा करके कहिए। मेरे मामा ने यदि कोई संदेश दिया हो तो कृपा करके उसको भी बताएं। तब गार्ग्य मुनि बोले- आपके मामा युधाजित् ने जो संदेश दिया है उसे रुचिकर जान पड़े तो सुनिये। उन्होंने कहा है- सिन्धु नदी के किनारे बहुत बड़े प्रदेश का गंधर्व राज शैलूष का पुत्र तीन करोड़ गंधर्वों के साथ राज्य करता है। वह देश बड़ा सुंदर है। आप उन गंधर्वों को जीतकर वहाँ सुंदर गंधर्व नगर बसाइए। इसे सुनकर भरत की ओर देखकर श्रीराम बोले- महर्षि! तक्ष और पुष्कल भरत के ये दोनों पुत्र भरत के साथ सेना लेकर वहाँ जाएंगे और गंधर्वों का नाश करके उस देश को जीत लेंगे। भरत जी दो नगर बसाकर दोनों पुत्रों को राज्यभार सौंप कर लौट आयेंगे। तत्पश्चात् महर्षि गार्ग्य को आगे करके अपने दोनों पुत्रों सहित भरत जी सेना लेकर आगे बढ़े।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड
में सौंवा सर्ग पूरा हुआ। (१००)

एक सौ एकवाँ सर्ग

भरत का गंधर्वों पर आक्रमण

केकय राज युधाजित् ने जब सुना कि महर्षि गार्ग्य के साथ स्वयं भरत सेनापति होकर आ रहे हैं तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई और फिर उन्होंने भी अपनी सेना लेकर भरत जी के साथ जाकर गंधर्व नगर को चारों ओर से घेर लिया। गंधर्वों के साथ भरत का सात दिनों तक बड़ा रोमांचकारी युद्ध हुआ। इसमें चारों ओर रूधिर की धाराएं बह चलीं। उस युद्ध में किसी की पराजय न होते देख आठवें दिन भरतजी ने संवर्त नामक कालास्त्र चलाया। इससे तीन करोड़ गंधर्व क्षण भर में मारे गये। इसके बाद जयघोष और हर्ष ध्वनि के साथ भरत ने तक्षशिला और पुष्कलावत नामक दो नगर बसाये।

Mookerji Sharma (P. S) Jammu Collection

फिर उन्होंने तक्षशिला के राज्य सिंहासन पर तक्ष को एवं पुष्कलावत के राज्य सिंहासन पर पुष्कल को बैठाया। फिर भरत जी वहाँ वर्षों तक रहे और उस समय नगर की खूब व्यवसायिक उन्नति हुई। तत्पश्चात् भरतजी अयोध्या लौटे और उन्होंने श्रीराम के सम्मुख गंधर्वों की पराजय एवं दो नगर बसाकर पुत्रों के राज्याभिषेक करने का सारा वृतांन्त सविस्तार कह सुनाया। यह सुनकर रघुनाथजी उन पर बहुत प्रसन्न हुये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में एक सौ एकवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०१)

एक सौ दोवाँ सर्ग

श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण द्वारा कुमार अंगद और चंद्रकेतु की विभिन्न राज्यों पर नियुक्ति

भरत के मुख से गंधर्व देश का समाचार सुनकर श्रीराम चंद्र बड़े प्रसन्न हुये। तत्पश्चात् लक्ष्मण से बोले- सुमित्रानंदन! तुम्हारे ये दोनों कुमार अंगद और चंद्रकेतु धर्म के ज्ञाता हैं। अतः मैं उनका राज्याभिषेक करना चाहता हूँ। तुम इनके लिए किसी देश का चुनाव करो। सौम्य! ऐसा देश देखो जहाँ निवास करने से दूसरे राजाओं को कष्ट न हो। तब भरत जी बोले- कुमार अंगद का राज्याभिषेक कारूपथ नामक अत्यंत रमणीय देश पर कीजिए। तथा चंद्रकेतु (या चंद्रकांत) को चंद्रकांत नगर में सिंहासनारूढ़ कीजिए। उस समय भरत की बात मानकर लक्ष्मण ने कारूपथ देश को अपने अधीन कर अंगद को वहाँ का राजा बनाया। चंद्रकेतु के लिए चंद्रकांता नामक विख्यातपुरी बसाकर उन्हें वहाँ का राजा बनाया गया। फिर भरत को चंद्रकेतु की सहायता हेतु एवं लक्ष्मण को अंगद की सहायता के लिए छोड़कर अयोध्या लौट आये। लक्ष्मण एक वर्ष तक अंगद की राजधानी में रहकर फिर अयोध्यापुरी लौट आये। उसी तरह भरत जी एक वर्ष से कुछ अधिक काल तक चंद्रकांता नगरी में ठहर कर वापस आ गये। इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते हुए उनके दस हजार वर्ष पूरे हो गये।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में एक सौ दोवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०२)

Mookerji sharma (I.P.S) Jammu Collection

एक सौ तीनवाँ सर्ग

श्रीराम के यहाँ काल का आगमन

तदनन्तर एक दिन काल तपस्वी का वेष धारण कर राजभवन के द्वार पर आकर लक्ष्मण से बोले- मैं महर्षि अतिबल का दूत होकर श्री रामचंद्र के पास एक अत्यंतआवश्यककार्य से आया हूँ। आप उन्हें मेरे आगमन की सूचना दे दें। तब श्रीराम की आज्ञा प्राप्तकर लक्ष्मण उनको श्री राम के पास लिवा ले गये। तदनन्तर श्रीराम ने उनसे कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् उन्हें एक सुवर्ण के आसन पर बैठाया और स्वागत सत्कार के बाद उनसे पूछा- मुनिवर! आप महर्षि अतिबल का संदेश को मुझसे कहें। लेकिन यह सुनकर उन मुनि के कहा- यह संदेश मुझे एकांत में कहने की आज्ञा मिली है। उनकी आज्ञा से आपको यह प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि हम लोगों को कोई बातचीत करते देखेगा अथवा हमारे संदेश को सुनेगा तो आप उसका बध करेंगे। यह सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- महाबाहो! द्वारपाल को विदा कर दो और स्वयं ड्योढ़ी पर खड़े होकर पहरा दो। जो हमारी बात सुनेगा अथवा दोनों की कही बात को सुन लेगा तो वह मेरे द्वारा अवश्य मारा जाएगा। लक्ष्मण को इस प्रकार द्वार पर नियुक्त कर उन्होंने महर्षि से कहा- अब आप निःसंकोच अपनी बात कहें।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में एक सौ तीनवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०३)

एक सौ चारवाँ सर्ग

काल का श्रीराम को ब्रह्माजी का संदेश सुनाना

महाबली महाराज! मुझे पितामह ब्रह्माजी ने यहाँ भेजा है। हिरण्य गर्भ की उत्पत्ति के समय मैं माया द्वारा आपसे उत्पन्न हुआ था इसलिए आपका पुत्र हूँ। मुझे सर्व संहारकारी काल कहते हैं। पितामह ने कहा हैकि सौम्य! लोक रक्षा के लिए जो समय नियत किया गया है वह पूरा हो गया है। पूर्वकाल में समस्त लोकों को माया द्वारा स्वयं महासमुद्र के जल में लीन किया था फिर सृष्टि के आरंभ में सबसे पहले मुझे उत्पन्न किया। फिर अनंत नामक नाग को माया से प्रकटकर आपने मधु और कैटभ नामक दो

महाबली प्राणियों को भी उत्पन्न किया। तत्पश्चात् इन्हीं के अस्थि समूहों से भरी पर्वतों सहित यह पृथ्वी प्रकट हुई। फिर अपनी नाभि से कमल प्रकट किया जिसमें आपने मुझे प्रकट किया और सृष्टि रचने का कार्य मुझे सौंपा। किन्तु उस समय मेरी स्तुति करने पर आपने सृष्टि की रक्षा करने का भार स्वीकार किया और प्राणी मात्र की रक्षा के लिए विष्णु रूप में प्रकट हुए। तत्पश्चात् दुष्टों के संकट से प्राणियों को बचाने के लिए आपने अदिति के गर्भ से पराक्रमी पुत्र के रूप में प्रकट होकर उनकी रक्षा की। रावण द्वारा समस्त लोकों की प्रजा को पीड़ित होते देख स्वयं ग्यारह हजार वर्षों तक मृत्युलोक में निवास करने की अवधि पैदा की थी। नरश्रेष्ठ! अब वह समय पूरा हो गया है और उसी की याद दिलाने के लिए ब्रह्माजी ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है। फिर भी अगर कुछ समय के लिए आप प्रजा पालन करने के उद्देश्य से यहाँ रहना चाहें तो रहें। लेकिन यदि आपकी इच्छा देवताओं को सनाथ कर उन्हें निर्भय करने की हो तो आप देवलोक चलें। यह सुनकर श्रीराम ने कहा-धर्म की हानि होने पर त्रिलोक दुष्टों के हाथों से रक्षा करने के लिए जहाँ से आया हूँ वहीं चला जाऊँगा। मुझे सभी कार्यों में देवताओं को लेकर ही रहना चाहिए।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ चारवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०४)

एक सौ पांचवाँ सर्ग

महर्षि दुर्वासा का आगमन

उन दोनों में जब इस प्रकार बातचीत हो रही थी तभी महर्षि दुर्वासा राजद्वार पर आ पहुँचे और लक्ष्मण से बोले- मैं एक अत्यावश्कीय कार्य से श्रीराम चंद्र के पास आया हूँ, मुझे उनके पास ले चलो। लक्ष्मण बोले- भगवन्! इस समय श्रीराम चंद्र कार्य में व्यस्त हैं आप थोड़ी देर तक ठहरें। यह सुनकर दुर्वासा क्रोधित होकर कहने लगे- मेरी क्रोधाग्नि को मत भड़कने दो। मुझे इसी क्षण राम के पास ले चलो। अन्यथा यह राज्य, नगर, रामचंद्र, भरत तथा तुम लोगों की संतानें सब मेरे शाप का शिकार बनेंगे। उस समय दुर्वासा के ये क्रूर वचन सुनकर लक्ष्मण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये।

फिर कुछ क्षण विचार करने के बाद यह तय किया गया कि सब नाश होने से मेरी मृत्यु ही हो जाना अच्छा है। इसी विचार से लक्ष्मण ने जाकर श्रीराम को मुनि के आगमन की सूचना दी। तब श्रीरामचंद्र शीघ्र ही काल को विदा करके दुर्वासा से मिलें और हाथ जोड़कर बोले- ब्रह्मन! मेरे लिए क्या आज्ञा है? दुर्वासा बोले- धर्म वत्सल आज मेरे हजार वर्ष के उपवास की समाप्ति है मुझे भोजन कराके तृप्त कीजिये। तब रामचंद्र ने प्रसन्न मन से मुनि को भोजन कराकर उन्हें विदा कर दिया। तत्पश्चात् वे काल से अपनी की हुई प्रतिज्ञा को स्मरण कर दुखी हो गये। उनका मुँह नीचे को झुक गया और वे कुछ बोल न सके। फिर इस निर्णय पर पहुँचे कि अब यह सब कुछ भी न रहेगा और यह सोचकर वे चुप हो रहे।

इस प्रकार श्री वाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदि काव्य के उत्तर काण्ड में एक सौ पाचवाँ सर्ग पूरा हुआ (१०५)

एक सौ छठवाँ सर्ग

श्रीराम के त्याग देने पर लक्ष्मण का स्वर्ग गमन

तत्पश्चात् श्रीरामचंद्र जी राहु ग्रस्त चँद्रमा के समान दीन हो गये तब लक्ष्मण ने मधुरवाणी में उनसे कहा- महाबाहो! आपको मेरे लिए किसी प्रकार का दुख नहीं करना चाहिए क्योंकि पूर्व जन्म के कर्मों से बँधी काल की गति ही ऐसी है। सौम्य! आप निश्चित होकर मेरा बध करें क्योंकि प्रतिज्ञा भंग करने वाले नर्क में पड़ते हैं। तब लक्ष्मण को ऐसा कहते देख रामचंद्र अत्यंत दुखी होकर मंत्रियों और पुरोहितों को बुलाकर उनसे मुनि के दूत का आगमन तथा उससे अपनी प्रतिज्ञा तथा दुर्वासा के आगमन की सभी बातें कह सुनाईं। तब वसिष्ठ जी ने कहा- नरश्रेष्ठ! लक्ष्मण से तुम्हारे वियोग तथा आनेवाले विनाश की सूचना मुझे अपने तपोबल से पहले ही मिल गई थी। अब तुम लक्ष्मण का परित्याग कर दो किन्तु प्रतिज्ञा झूठी न करो। क्योंकि इससे धर्म का लोप होता है। तब मुनि वसिष्ठ की बात सुनकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा- सुमित्रानंदन! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ। जिससे धर्म का लोप न हो। श्रीराम के इतना कहते ही लक्ष्मण आँखों में आँसू भरकर बाहर आ गये। और अपने घर न जाकर सरयू के किनारे चले

गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने आचमन किया और फिर सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके प्राण वायु को रोक लिया। तब यह देखकर इन्द्र आदि सब देवता ऋषि तथा अप्सराएं उन पर फूलों की वर्षा करने लगे। उसी समय देवराज इन्द्र उन्हें लेकर स्वर्ग चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ छठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०६)

एक सौ सातवाँ सर्ग

वसिष्ठ जी के कहने से श्रीराम का पुरवासियों का अपने साथ ले चलने का विचार

लक्ष्मण का त्याग करके श्रीराम दुःख और शोक में मग्न हो गए तथा मंत्री पुरोहित और महाजनों से इस प्रकार बोले- आज मैं अयोध्या के राज्य पर भरत का अभिषेक राजा के पद पर करूँगा। इसके लिए सभी सामग्रियाँ एकत्र की जाएँ। इस राज्याभिषेक के बाद मैं वन को चला जाऊँगा और लक्ष्मण के पथ का अनुसरण करूँगा। श्रीराम की यह बात सुनकर प्रजावर्ग के सभी लोग प्राणहीन से हो गए। तदनन्तर भरत जी ने कहा- रघुनंदन मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूँ कि आप के बिना मुझे राज्य नहीं चाहिए। नरेश्वर! आप दक्षिण कोशल में कुश और उत्तर कोशल में लव को राजा बनाइए। शीघ्रगामी दूतों को शत्रुघ्न के पास भेजकर हमारे जाने का वृतान्त सुनाएँ। तब वसिष्ठ जी बोले- श्रीराम! पृथ्वी पर पड़े हुए इन प्रजाजनों की ओर देखो और इनकी इच्छा के अनुसार कार्य करो। वसिष्ठ जी के ऐसा कहने पर श्रीराम ने प्रजाजनों को उठाया और सबसे पूछा कि आप लोगों का कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ। तब प्रजा वर्ग के सभी लोग श्रीराम से बोले- रघुनंदन! आप जहाँ भी जाएंगे हम भी वहीं चलेंगे। हम अपने स्त्री-पुत्रों सहित आपके सन्मार्ग पर चलने को उद्यत हैं। तब पुरवासियों का दृढ़ अनुराग देखकर श्रीराम ने कुश को दक्षिण कोशल के राज्य पर और लव को उत्तर कोशल के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया। फिर दोनों पुत्रों को अपने गोद में बैठाकर रामचन्द्र ने उन्हें कई हजार रथ, हाथी, घोड़े और प्रचुर मात्रा में धन तथा रत्न देकर उन दोनों को उनकी राजधानी भेज

दिया। इस प्रकार उन्हें अपने-अपने नगर भेजकर श्रीराम ने शत्रुघ्न के पास अपने दूत भेजे।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ सातवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०७)

एक सौ आठवाँ सर्ग

श्रीराम का भाइयों, सुग्रीव आदि वानरों एवं रीछों के साथ परमधाम जाने का निश्चय

श्रीराम चन्द्र जी की आज्ञा पाकर उनके दूत मधुरा पहुँचे और शत्रुघ्न से सारी बातें यथावत् कह सुनाई। उन्होंने श्रीराम की प्रतिज्ञा, लक्ष्मण का परित्याग, श्रीराम के पुत्रों का राज्याभिषेक तथा उनके साकेत धाम जाने का निश्चय आदि बातें भी उन्हें बताकर उनसे शीघ्र चलने को कहा। अपने कुल का भयंकर संहार उपस्थित हुआ सुनकर महादुखी शत्रुघ्न ने कांचन नामक पुरोहित को बुलाकर उससे सारी बातें यथावत् कह सुनाई। फिर भाइयों सहित अपने शरीर त्याग करने की बात भी कही। इसके बद उन्होंने अपने दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक किया और सुबाहु को मधुरा और शत्रुघाती को विदिशा का राज्य दिया। तत्पश्चात् धन आदि का विभाज़न कर वे एकमात्र रथ के द्वारा अयोध्या के लिए प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर देखा कि श्रीराम मुनियों के साथ सूक्ष्म रेशमी वस्त्र धारण कर प्रदीप्त अग्नि के समान बैठे हैं। तब उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीराम से कहा- राजन्! अपने दोनों पुत्रों का राज्याभिषेक करके मैं आपके साथ जाने का दृढ़ निश्चय करके आया हूँ। अब आप इसके विरुद्ध मुझे कोई आज्ञा न दें क्योंकि मैं यह नहीं चाहता कि मेरे द्वारा आपकी कोई आज्ञा भंग हो। शत्रुघ्न का इस प्रकार का दृढ़ विचार देखकर श्रीराम बोले- अच्छी बात है तुम भी हमारे साथ चलो। तब उनकी बात समाप्त होते ही इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर रीछ और राक्षसों का समुदाय श्रीराम के दर्शन की इच्छा मन में लिए हुए वहाँ सुग्रीव को आगे कर के पधारे। उन लोगों ने आते ही कहा- राजन्! आप हमको अपने साथ अवश्य ले चलें। अन्यथा हम लोग यमदण्ड से मारे हुए के समान हो जाएँगे। सुग्रीव ने कहा- राजन्! मैं अंगद

Mookerjisharma (OF S) Jammu Collection

का अभिषेक कर आपके साथ चलने के लिए आया हूँ। तब श्रीराम ने उनकी बात स्वीकार करते हुए विभीषण से कहा- राक्षस राज विभीषण! जब तक चन्द्रमा, सूर्य और यह पृथ्वी रहेगी, जब तक भूतल पर मेरी कथा प्रचलित रहेगी, तब तक इस संसार में तुम्हारा राज्य बना रहेगा। इक्ष्वाकु कुल के देवता जगन्नाथ जी (विष्णु भगवान्) की तुम सदा आराधना किया करना। विभीषण ने श्रीराम की आज्ञा शिरोधार्य कर ली। तत्पश्चात् श्रीराम चन्द्र जी हनुमान से बोले- तुमने दीर्घकाल तक जीवित रहने का निश्चय किया है। अपनी इस प्रतिज्ञा को व्यर्थ न करो। जब तक संसार में मेरी कथाओं का प्रचार रहे तब तक तुम मेरी आज्ञा का पालन करते हुए प्रसन्नता पूर्वक विचरते रहो। तब श्रीराम के वचन सुनकर हनुमान जी को बड़ा हर्ष हुआ और वे बोले- भगवन्! मैं आपके इस आदेश का अवश्य पालन करूँगा। इसके बाद जाम्बवान्, मैन्द तथा द्विविद से कहा- जब तक प्रलय और कलियुग न आए तब तक तुम लोग जीवित रहो। तदनन्तर उन्होंने शेष रीछों और वानरों से कहा- तुम लोग अपनी कथनानुसार मेरे साथ चलो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०८)

एक सौ नवाँ सर्ग

श्रीराम के साथ समस्त अयोध्यावासियों का प्रस्थान

तदनन्तर रात बीतने पर जब सुबह हुई तब श्रीराम चन्द्र पुरोहित से बोले- मेरे अग्नि होत्र की प्रज्वलित आग ब्राह्मणों के साथ आगे-आगे चले। महा प्रयाण पथ पर इस यात्रा के समय मेरे बाजपेय यज्ञ का छात्र भी चलना चाहिए। तत्पश्चात् पुरोहित वसिष्ठ जी द्वारा महाप्रस्थान की क्रियाएं विधि पूर्वक सम्पन्न होने पर श्रीराम चन्द्र हाथ में कुश लेकर वेद पाठ करते हुए प्रदीप्त सूर्य के समान सरयूतट पर जाने के लिए घर से निकले। भगवान् श्रीराम के दाहिने पार्श्व में कमल हाथ में लिए हुए श्रीदेवी उपस्थित थीं। वाम भाग में भू देवी विराजमान थीं तथा आगे-आगे उनकी संहार शक्ति चल रही थी। चारों वेद, गायत्री देवी, ओंकार, वषट्कार सभी

भक्ति भाव से श्रीराम चन्द्र के पीछे-पीछे चले। बालक, वृद्ध, भृत्य, अन्तःपुर में रहनेवाली स्त्रियाँ, सपत्नीक, भरत, शत्रुघ्न, मंत्री, प्रजा तथा कर्मचारी सभी श्रीराम का अनुसरण करने लगे। पशु, पक्षी तथा वानरादि सभी किल-किल करते हुए श्रीराम से अपना प्रेम बतला रहे थे। उस समय सभी उत्साहित हो रहे थे और कोई उदास न था। उस समय ऐसा अद्भुत दृश्य देखकर श्रीराम चन्द्र की यात्रा देखने के लिए जो लोग आए थे वे सभी प्रेम से विह्वल होकर श्रीराम के पीछे-पीछे चले। स्थावर या जंगम जो भी प्राणी श्रीराम को जाते हुए देखता था वही उनके साथ हो जाता था। इस समय अयोध्या में साँस लेने वाला कोई छोटा-सा प्राणी भी रह गया हो ऐसा देखने में नहीं आता था।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१०९)

एक सौ दसवाँ सर्ग

भाइयों सहित श्रीराम का विष्णु रूप में प्रवेश

अयोध्या से डेढ़ योजन दूर जाकर भगवान् श्रीराम ने पुण्य सलिला सरयू का दर्शन किया। तब श्रीराम प्रजाजनों के साथ एक उत्तम स्थान पर आए। उसी समय ब्रह्मा कई करोड़ विमान लेकर वहाँ आए। तब पुण्यात्मा देवताओं के आगमन से सारा आकाश ही दिव्य तेज से प्रकाशित हो गया। शीतल मंद सुगंधित हवा बहने लगी। तथा देवतागण लगातार पुष्पों की वर्षा करने लगे और बाजा बजनें लगे। जिस समय श्रीराम चन्द्र ने सरयू में प्रवेश किया उस समय आकाश में ब्रह्माजी बोले- हे विष्णो! आइए! देवतुल्य अपने भाइयों के साथ आकाशलोक में पधारिए। भगवन्! आप वैष्णवी मुनि में अथवा आकाश में जिसमें आपकी इच्छा हो सशरीर प्रवेश करें। आप अचिन्त्य अजर अमर हैं। आपकी माया को कोई जान नहीं पाता। भगवन्! आप जिस शरीर में चाहें प्रवेश करें। आपका कल्याण हो। तब ब्रह्मा के वचनों से प्रसन्न होकर श्रीराम भाइयों के साथ सशरीर वैष्णव लोक में चले गए। ऋषि, गन्धर्व, दैत्य दानव आदि ने विष्णु मय श्रीराम चन्द्र की स्तुति की। उस समय इन्द्रादि देवतागण उन्हें धन्यवाद देते हुए

बोले- विष्णो! आप के आगमन से हमारे सभी मनोरथ सिद्ध हो गए और यह स्वर्ग निष्पाप हो गया। तब विष्णु ने ब्रह्मा से कहा- हे भगवन्! आप हमारे साथ आए हुए प्राणियों को रहने के लिए भी कोई लोक दें क्योंकि ये प्रेमवश अपने प्राणों का मोह छोड़कर मेरे साथ आए हैं। ब्रह्मा बोले- तिर्यक योनि में जो प्राणी आपका चिंतन करते हैं वे मृत्यु के पश्चात् संतानक लोक को जाते हैं। अतः ये सब संतानक लोक में जाएंगे। वानर और रीछ अपने-अपने देव रूप में प्रवेशकर अपने पूर्व रूप को प्राप्त करें तथा सुग्रीव सूर्य मण्डल में प्रवेश करें। देवेश्वर ब्रह्मा ने जब संतानक लोकों की प्राप्ति की घोषणा की तब सरयू के गोप्रतार घाट पर आए उन सब लोगों ने आनन्द के आँसू बहाते हुए सरयू के जल में डुबकी लगाई। तब स्थावर और जंगम सभी तरह के प्राणी सरयू के जल में प्रवेश करके दिव्य लोक में जा पहुँचे। इस प्रकार सभी प्राणी संतानक लोक में जा पहुँचे। इस प्रकार सब प्राणियों को संतानक लोक में स्थान देकर ब्रह्माजी अपने महान् धाम में चले गए।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ। (११०)

एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग

रामायण काव्य का उपसंहार

लव और कुश कहते हैं कि महर्षि वाल्मीकि द्वारा निर्मित यह रामायण नामक श्रेष्ठ आख्यान उत्तरकांड सहित इतना ही है। ब्रह्मा जी ने भी इसका आदर किया है। इस महाकाव्य में उन्हीं भगवान् विष्णु के चरित्र का वर्णन है जो चराचर जगत में व्याप्त हैं, जो मृत्युलोक से स्वर्गलोक में चले गए हैं। इस रामायण महाकाव्य को देवता महर्षिगण इत्यादि बड़े हर्ष से सुनकर परमशक्ति प्राप्त करते हैं। आयु को बढ़ाने वाला तथा पापों का नाश करने वाला वेद के समान इस आख्यान को सुनने से पुत्रहीन पुत्र प्राप्त करता है और निर्धन धन प्राप्त करता है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस महाकाव्य का पाठ करता है वह इस लोक में पुत्र-पौत्र और उस लोक में स्वर्ग पाता है। जो मनुष्य आयु बढ़ानेवाले इस काव्य के एक श्लोक का भी पाठ कर लेता है उसे कोई व्याधि नहीं सताती। जो इस रघुनाथ के चरित्र का पूर्ण पाठ कर

लेता है वह प्राणान्त होने पर भगवान विष्णु के धाम में ही जाता है। इसमें संशय नहीं। यह चरित्र धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों को देने वाला है। जो इसके श्लोक के एक चरण या एक पद का भक्तिभाव से श्रवण करता है वह ब्रह्मा जी के धाम में जाता है। इस प्रकार इस पुरातन आख्यान का आप लोग विश्वास पूर्वक पाठ करें। आपका कल्याण हो और भगवान विष्णु के बल की जय हो।

इस प्रकार श्रीवाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण आदिकाव्य के उत्तरकाण्ड में एक सौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ। (१११)

उत्तरकाण्ड समाप्त

* श्रीवाल्मीकीय रामायण समाप्त *

श्रीरामाय नमः

श्रीजानकीजीवनाष्टकम्

आलोक्य यस्यातिललामलीलां सद्भाग्यभाजौ पितरौ कृतार्थौ ।
तमर्भकं दर्पकदर्पचौरं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ १ ॥
श्रुत्वैव यो भूपतिमात्तवाचं वनं गतस्तेन न नोदितोऽपि ।
तं लीलयाह्लादविषादशून्यं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ २ ॥
जटायुषो दीनदशां विलोक्य प्रियावियोगप्रभवं च शोकम् ।
यो वै विसस्मार तमार्द्रचित्तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ३ ॥
यो वालिना ध्वस्तबलं सुकण्ठं न्ययोजयद्राजपदे कपीनाम् ।
तं स्वीयसन्तापसुतप्तचित्तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ४ ॥
यद्ध्याननिर्धूतवियोगवह्निर्विदेहबाला विबुधारिवन्याम् ।
प्राणान्दधे प्राणमयं प्रभुं तं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ५ ॥
यस्यातिवीर्याम्बुधिवीचिराजौ वंश्यैरहो वैश्रवणो विलीनः ।
तं वैरिविध्वंसनशीललीलं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ६ ॥
यद्रूपराकेशमयूखमालानुरञ्जिता राजरमापि रेजे ।
तं राघवेन्द्रं विबुधेन्द्रवन्द्यं श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ७ ॥
एवं कृता येन विचित्रलीला मायामनुष्येण नृपच्छलेन ।
तं वै मरालं मुनिमानसानां श्रीजानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥ ८ ॥

Published by–

SRI DURGA PUSTAK BHANDAR – 527 A/2, Kakkar Nagar (Dariyabad) Allahabad

Printed at Wheelar's Offset Unit Allahabad.

श्री दुर्गा पुस्तक भण्डार
इलाहाबाद